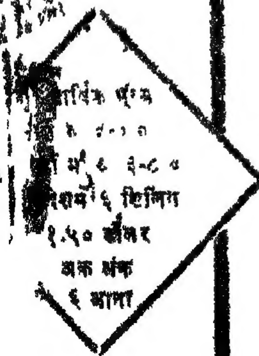
अगस्त
१९३९

सर्वोदय

अयं वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ।





सर्वोदय कार्यालय
वर्धा (मध्यप्रान्त)

अनुक्रमणिका



सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २
(२) वोरा ॲण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाऊस, गणावड, सूरत।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

अगस्त १९३९
वर्धा

सत्य कैसे मिलेगा ?

लब बिबंदो, चश्म बन्दो, गोश बन्द,
गर नबीनी सिररे हक बरमा बिखंद,

(अपने होंठ बन्द रख, आंखें बन्द रख, कान बन्द रख, अितना करने पर यदि तुझे सत्य का गूढ़ तत्त्व न मिले तो मेरी हंसी कर।)

यह मौलाना रूम का शैर है। अिस प्रकार के रत्न कच्छ के चमन कवि कभी कभी मुझे भेजा करते हैं। जब मैं राजकोट में था, अुस वक्त यह शैर अुन्होंने अुसके अर्थ सहित मेरे पास भेजा था। मुझे वह अितना सरस लगा कि 'हरिजनबन्धु' पढ़नेवालों के सामने रखने की अिच्छा हुअी। आज जब कि हम चाहे जैसी बकवास करते हैं, जब कि चाहे जैसी सच्ची झूठी, गन्दी, बातें सुनते हैं, और आंख चाहे जैसी बीभत्सता देखती है, ये वचन हमारे हृदय में तीर जैसे सनसनाते हुअे घुसने चाहिअें। सत्य की खोज की अैसी ही करारी शर्त है। हम अपने कान, आंख, होंठ, बिलकुल बन्द भले ही न करें। यदि करें तो कुछ गंवानेवाले नहीं हैं। तो भी हम अितना तो अवश्य कर सकते हैं कि होठों से असत्य या कड़ुअे वचन न निकालें, कानों से किसी की निन्दा या गलीज बातें न सुनें, आखों से हमारी अिन्द्रियों को चलविचल करनेवाला कुछ न देखें। बल्कि सच ही बोलें, अीश्वर का नाम जपें, कानों से भजन-कीर्तन सुनें, हमें आगे बढ़ावे अैसा कुछ सुनें; और आखों से अीश्वर की माया देखें, सन्तजनों का दर्शन करें। अैसा जो करेगा वही सत्य का दर्शन पायेगा, वही शुद्ध सत्याग्रही बन सकेगा और अुसीकी तपस्या से हम शान्तिमय स्वराज्य की झांकी देख सकेंगे। अिसके बिना सब कुछ व्यर्थ है।

मो. क. गांधी.

"हरिजनबंधु"
ता. २३:७:३९

ओशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

ॐ ओशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

अर्थ—अिस जगत में जो कुछ भी जीवन है वह सब ओश्वर ने बसाया हुआ है। अिसलिअे तू ओश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसी के धन की वासना न कर।

टिप्पणियां--(१) "ओश + आवास्यम्"= "ओशावास्यम्" अितना अेक पूरा पद समझना चाहिअे। "ओशा" और "वास्यम्" अैसे दो पद मानने से व्यञ्जनान्त "ओश्" शब्द स्वीकारना पड़ता है। परन्तु अिस अुपनिषत् की संज्ञा (नाम) तो "ओश", अर्थात् स्वरान्त है।

(२) "जगत्" का अर्थ है "जीने-वाला," "जीवनवान्"। जगत में सभी पदार्थ जीवनवान् हैं। जीवन कहीं गुप्त है, कहीं प्रकट है। सभी ओश्वर ने बसाया है।

(३) ओश्वर की सत्ता का स्वीकार करते ही मनुष्य का स्वामित्व-निरसन अनायास ही हो जाता है।

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:', अिसी अर्थ को स्पष्ट करता है। यही भगवद्गीता की राजविद्या है। यहां त्याग का विधि (विधान या आज्ञा) है, न कि भोग का।

(४) ओश्वर की सत्ता जान कर त्याग-वृत्ति का स्वीकार करने पर दूसरों की भोग-वृत्ति की ओर्ष्या करने का कारण ही नही रह जाता। यही "मा गृध: कस्यस्वित् धनम्" अिस वाक्य से स्पष्ट किया गया है।

वैदिक वाङमय में साधारणत: 'गृध्' धातु अकर्मक है; और "क:" सह "स्वित्" प्रश्नार्थक है। अिसलिअे संभव है कि यहां "मा गृध:," और "कस्यस्वित् धनम्?" अैसे दो भिन्न वाक्य हों। यदि अैसा हो, तो अुनका अर्थ होगा—"तृष्णा मत कर; (क्योंकि) धन किसका है?"

(५) अिस मंत्र में वैदिक धर्म का सारा निचोड़ समाया हुआ है। (१) ओश्वर की सत्ता का स्वीकार। अिसलिअे, (२) स्वयम् त्याग वृत्ति से जीना। और अिसीलिअे, (३) दूसरों की भोगवृत्ति की ओर्ष्या न करना। यह तिहरा वैदिकधर्म है। अिसमें स्वात्मा, परात्मा और परमात्मा संबंधी कर्तव्यों का विवरण है।

(१५:७:३९ के मराठी 'ग्रामसेवावृत्त' से)

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

ॐ अीशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

अर्थ—अिस जगत में जो कुछ भी जीवन है वह सब अीश्वर ने बसाया हुआ है। अिसलिअे तू अीश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसी के धन की वासना न कर।

टिप्पणियां--(१) "अीश + आवास्यम्"= "अीशावास्यम्" अितना अेक पूरा पद समझना चाहिअे। "अीशा" और "वास्यम्" अैसे दो पद मानने से व्यञ्जनान्त "अीश्" शब्द स्वीकारना पड़ता है। परन्तु अिस अुपनिषत् की संज्ञा (नाम) तो "अीश", अर्थात् स्वरान्त है।

(२) "जगत्" का अर्थ है "जीनेवाला," "जीवनवान्"। जगत में सभी पदार्थ जीवनवान् हैं। जीवन कहीं गुप्त है, कहीं प्रकट है। सभी अीश्वर ने बसाया है।

(३) अीश्वर की सत्ता का स्वीकार करते ही मनुष्य का स्वामित्व-निरसन अनायास ही हो जाता है।

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः', अिसी अर्थ को स्पष्ट करता है। यही भगवद्गीता की राजविद्या है। यहां त्याग का विधि (विधान या आज्ञा) है, न कि भोग का।

(४) अीश्वर की सत्ता जान कर त्याग-वृत्ति का स्वीकार करने पर दूसरों की भोग-वृत्ति की अीर्ष्या करने का कारण ही नहीं रह जाता। यही "मा गृधः कस्यस्वित् धनम्" अिस वाक्य से स्पष्ट किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में साधारणतः 'गृध्' धातु अकर्मक है; और "कः" सह "स्वित्" प्रश्नार्थक है। अिसलिअे संभव है कि यहां "मा गृधः," और "कस्यस्वित् धनम्?" अैसे दो भिन्न वाक्य हों। यदि अैसा हो, तो अुनका अर्थ होगा—"तृष्णा मत कर; (क्योंकि) धन किसका है?"

(५) अिस मंत्र में वैदिक धर्म का सारा निचोड़ समाया हुआ है। (१) अीश्वर की सत्ता का स्वीकार। अिसलिअे, (२) स्वयम् त्यागवृत्ति से जीना। और अिसीलिअे, (३) दूसरों की भोगवृत्ति की अीर्ष्या न करना। यह तिहरा वैदिकधर्म है। अिसमें स्वात्मा, परात्मा और परमात्मा संबंधी कर्तव्यों का विवरण है।

(१५:७:३९ के मराठी 'ग्रामसेवावृत्त' से)

'सर्वोदय की यात्रा'

[काका कालेलकर]

अेक साल पूरा हुआ। देश के भाग्यचक्र ने अेक आवर्तन पूरा कर के अेक साल का अितिहास पूरा कर दिया। अिसमें हममें से हर अेक का कुछ न कुछ हिस्सा है ही। हम अपने अच्छे और बुरे कार्य करने से अथवा न करने से, शुभ और अशुभ संकल्प से, देश के अितिहास पर अपनी ओर से कुछ न कुछ असर डालते ही हैं। अेक साल के पहले देश जहाँ था वहाँ आज नहीं है। अेक साल के पहले जहाँ हम थे वहाँ आज नहीं हैं। अिस अेक साल का विचार करते बड़ा आश्चर्य होता है।

सर्वोदय का ख्याल मन में रख कर जब सोचते हैं तो सर्वप्रथम यही अेक बात मन में आती है कि, अिस साल में हमने कितना करना चाहा था और कितना थोडा कर पाये हैं। अगर अेकाग्रता से, अेकनिष्ठा से सर्वोदय का ही काम करते तो मूल संकल्प को बहुत कुछ अमल में ला सकते। किन्तु लोभी आदतें अपनी शक्ति-अशक्ति का हिसाब रखने ही नहीं देतीं। और बहुतसे काम हाथ में लेने से अेक के साथ भी पूरा अिन्साफ नहीं किया जाता। देश के अुत्थान के लिअे जितने क्षेत्रों में काम करना आवश्यक है अुन सब क्षेत्रों के लिये काफी सेवक मिल जायँ तो अेक को अुन सब कामों में फँस जाने की जरूरत नहीं रहेगी। यह बात भी ध्यान में रखने लायक है। जब तक अिस दुनियामें हरेक आदमी अपना अपना बोझ नहीं अुठावेगा तबतक सत्ययुग की स्थापना नहीं होगी। जबतक बहुतसे लोग दूसरे के परिश्रम से लाभ अुठाने की नीयत रखेंगे तबतक आश्रित और आश्रयदाता, मालिक और गुलाम, धूर्त और बेवकूफ, अैसे भेद रहेंगे ही और अुनसे पैदा होनेवाली अनर्थपरंपरा से हम अपनेको नहीं बचा सकेंगे। अपना काम दूसरे के सिर पर डालना अथवा दूसरे का काम अपने सिर पर लेना सर्वथा भयावह है।

सर्वोदय की सेवा हम जितनी चाहते थे अुतनी नहीं कर सके।

संतोष की बात है कि, हमारे लेखकों ने तो अच्छा सहयोग दिया है। अगर अिसीको हम अधिक संगठित करें तो लेखकों की ओर से अिससे भी अधिक सहयोग आसानी से मिल सकेगा। अिसके लिये हमें अपने लेखकमंडल से परिचय बढाना होगा।

यह भी संतोष की बात है कि, पाठकों ने भी सर्वोदय के लेख बडे चाव से पढ कर अपनी ओर से अधिक से अधिक सहयोग दिया है। अगर वे संपादकों के साथ पत्रव्यवहार द्वारा अपना संपर्क बढावेंगे तो सर्वोदय अुनकी अधिक सेवा करने में समर्थ होगा। सर्वोदय गांधी सेवा संघ के वैध-अवैध सब सदस्यों के विचारों का, अध्ययन का, और अनुभवों का प्रतिबिंब बनना चहिये। गांधी सेवा संघ के सदस्य तो दो सौ ढाअी सौ ही होंगे। किन्तु सर्वोदय के—सत्य, अहिंसा, सेवा के—अुपासक तो सारे देश में फैले हुअे हैं। थोडीबहुत श्रद्धा से काम करनेवाले लोग तो सर्वत्र पाये जाते हैं। अुनके सहयोग से ही सर्वोदय सफलता प्राप्त कर सकेगा।

जिनमें गंभीर विचारचर्चा होती है अैसे नियतकालिकों का यह अनुभव है कि, लोग अुन्हें प्रेम और आदर से पढते तो हैं। किन्तु अितने से अुनका प्रचार नहीं बढ़ता। सर्वोदय भी अभीतक घाटे में ही चलता है। सर्वोदय जैसी अुपकारक प्रवृत्ति घाटे में चलाना आसान नहीं है और अशक्य भी नहीं है। अिस घाटे को भर देनेवाला कोअी न कोअी सर्वोदय-प्रेमी मिल ही जायगा। किन्तु कोअी भी प्रवृत्ति अंत में जा कर घाटे में चलाना अच्छा नहीं है।

अिश्तिहारों की आमदनी से अखबार चलाना तो मानों मंदिर के आसपास के कमरे भले-बुरे कामों के लिअे किराये पर दे कर अुस की आमदनी से मंदिर का खर्च चलाने के जैसा है। चोरी का माल चाहे जितना सस्ता मिले तो भी सज्जन अुसे जैसे नहीं खरीदते, वैसा ही चारित्र्य और समाधान का नाश करनेवाले अिश्तिहारों का अपने घर में प्रवेश कराने की शर्त पर अखबार और मासिक सस्ते में लेना यह भी अच्छे लोगों के लिअे शोभास्पद नहीं है।

हमारा विश्वास है कि अपनी ओर से हम पूरी मिहनत करेंगे तो सर्वोदय निश्चित-रूप से स्वावलंबी हो जायगा। लोगों की अभिरुचि शुद्ध रहे या बिगडे, लोगों को जीवनचर्चा में रस तो आना ही है। अुसी रस को ले कर अगर हम जीवन के सब के सब अंगप्रत्यंगों को रोचक रूप से शब्दबद्ध करेंगे और आस्वाद के साथ जीवनचर्चा करेंगे तो अवश्य ही जनता सर्वोदय का समादर करेगी।

कोअी भी मासिकपत्र योग्यता से चलाना अेक बात है; और अुसका प्रचार बढाना दूसरी ही बात है। प्रचार बढाने की अेक स्वतन्त्र कला ही है। अिस कला में कोअी अेक व्यक्ति प्रवीण हो जाय और सर्वोदय का प्रचार बढावे अिसकी अपेक्षा में यह पसंद करूंगा कि सर्वोदय के प्रचार में गांधी सेवा संघ के सदस्य और सर्वोदय के अन्य पाठक, अुस कार्य को अपनी जिम्मेवारी समझ कर, सतत मदद करते रहें।

केवल सर्वोदय खरीदने से पाठकों में यह आत्मीयता शायद नहीं आवेगी। अुनके साथ हमें परिचय भी बढाना चाहिअे।

× × × ×

वर्तमान परिस्थिति

अब देश अेक बहुत महत्त्व के संधिकाल मे आ पहुंचा है। हमारे संघ को ही लीजिये। आत्मशुद्धि, सेवा और संगठन, यही संघ का त्रिविध कार्य है। आत्म-शुद्धि का महत्त्व और अुसकी साधना गांधीजी ने बतायी अुसके अनुसार लोगों ने कम या बेशी प्रयत्न करके अनुभव लिया और गांधीजी की बतायी हुअी साधना निर्विवादरूप से असरकारक है यह भी देख लिया। किन्तु अब लोगों में साधना के बारे में कुछ नये विचार आने लगे हैं और हमारा साधनक्रम कुछ शिथिल, कुछ अनिश्चितसा, हो गया है। जैसे जैसे अनुभव बढता है वैसे वैसे आदर्श का ख्याल अधिक विशुद्ध होने लगता है और साधन में कुछ न कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। हमारे साधनक्रम में जो परिवर्तन हुआ है अुसमें विकास है, प्रयोगपरायणता है, या थकावट की शिथिलता है, यह अच्छी तरह से देखना होगा।

हमारे सेवा के क्षेत्र तो बहुत कुछ बढे हैं और बढते जा रहे हैं। अिस कार्य में

जहाँ आज तक हमीं लोगों का ठेका था वहाँ अब नये नये लोग आ कर अुन अुन क्षेत्रों का कब्जा ले रहे हैं। अुनके साथ काम करते करते हमें सहयोग की कला सीखनी होगी। भिन्न दृष्टि के प्रति सहानुभूति रखनी होगी। और अहिंसा का प्रत्यक्ष परिचय कराना होगा।

संगठन का शास्त्र तो हम अभी नया नया सीख रहे हैं। जिनमें पक्ष–प्रतिपक्ष हैं और प्रतिपक्षी का विरोध करने के लिये संगठन के भीतर संगठन होता है, अैसे संगठन तो दुनिया में सब जगह हुआ करते हैं। अिसमें भी जब दृष्टि दूर तक नहीं पहुंचती, क्षुद्र स्वार्थ प्रबल हो जाता है, अथवा पुरुषार्थ दुर्बल रहता है, तब अंदर अंदर भी बड़े संगठन तोड कर छोटे छोटे संगठन पैदा करने की वृत्ति बढती है। हिन्दुस्तान के सारे अितिहास में हमारी जाति में यही दोष पाया गया है। हमारा राष्ट्र अितना बडा, संस्कारी, अुद्योगशील और समर्थ होते हुअे भी हम बार बार गुलामी में पडे हैं। अिस का प्रधान कारण यही है कि हम दीर्घ देखने की जगह ह्रस्व देखते हैं। अभेद पर जोर देने की जगह भेद को ही बडा बनाते हैं। अपनों को ही पराया समझते हैं और विशाल संगठन को कमजोर कर के छोटे संगठन को आगे बढ़ाने में बडा अुत्साह बताते हैं।

किन्तु गांधी सेवा संघ द्वारा तो हमें अेक नये ही किसम का संगठन कायम करना है। अिसमें किसी का विरोध करने का तत्त्व है ही नहीं। क्योंकि यह सचमुच अहिंसामूलक है।

अहिंसामूलक संगठन का शस्त्र और अुसका शास्त्र अलग ही है। अिसका मूल मंत्र है 'महामनाःस्यात् तद् व्रतम्'। मन बडा रखना, दिल अुदार रखना, आत्मविलोपन करना, और केवल सेवाभाव बढाना, यही अिस संगठन का नया तरीका है। अिसकी बुनियाद में यह विश्वास है कि सज्जनता का असर यथासमय हर अेक के अूपर हो कर ही रहता है। संगठन स्थायी करने का दूसरा मार्ग ही नहीं है।

अिन दिनों हम देखते हैं कि देश में राजनैतिक चर्चा बढ गयी है। पदलालसा बढ गयी है। किन्तु कार्यकरों की संख्या नहीं बढ रही है। अखबारों का और किताबों का पठन बढ रहा है। किन्तु परिस्थिति का अध्ययन नहीं बढ रहा है। अपने अपने विषय में प्रवीणता प्राप्त करने की कोशिश भी लोगों में जितनी होनी चाहिये अुतनी नहीं है। अैसे देश में बडी मुश्किल से स्वार्थत्यागपूर्वक राष्ट्रसेवा करनेवालों का और अेक दूसरे के साथ प्रेम और बंधुता से काम करनेवालों का अेक छोटासा मंडल राष्ट्र ने पैदा किया है। अुसका स्थान लेनेवाले और अुसका कार्य आगे चला सकें अैसे लोग तो बहुत कम पाये जाते हैं, किन्तु अुनके नेतृत्व का अस्वीकार करनेवाले, अुसे तोडनेवाले लोगों की संख्या बहुत बढ रही है। देश के सामने अितना काम पडा हुआ है और कार्यकर अितने कम हैं कि किसी अेक के क्षेत्र में जा कर अुसके काम में दखल देने की जरूरत दूसरे किसी को होनी नहीं चाहिये।

हर अेक क्षेत्र में काम करनेवाले सेवक अद्वितीय हैं, यह कोअी अच्छी स्थिति नहीं है। अेक का काम अुठानेवाला अगर दूसरा तैयार न रहा तो देश में काम की परंपरा टूट जायगी। अनुभव की विरासत राष्ट्र को नहीं मिलेगी। और काम तो कभी बढेगा ही नहीं। सहयोग की शक्ति जब हमारे देश में बढेगी तभी जा कर देश की शक्ति का पूरापूरा अुपयोग हम कर सकेंगे।

अपने अपने स्थान में हरेक को परिस्थिति का स्वामी बनना चाहिअे। अगर यह नामुमकिन हो तो कम से कम परिस्थिति का ज्ञाता तो पूर्णतया बनना ही चाहिअे। और हरेक को अपने काम के प्रारंभ के साथ ही अपना अुत्तराधिकारी भी तैयार करते जाना चाहिअे, केवल अंधप्रवृत्ति चलाने से सर्वत्र संकर ही पैदा होगा, भ्रम ही पैदा होगा। जहाँ सत्य और अहिंसा है वहाँ कार्य-शुद्धि और दृष्टि की निर्मलता—प्रसाद—आप ही आप आ जाता है। जहाँ ये नहीं हैं वहां सत्य और अहिंसा का शुद्ध स्वरूप नहीं है अैसा हम बिना संकोच के कह सकते हैं।

अगर सारी दुनिया में देखा जाय तो अेक तरफ युद्ध की तैयारी बढ रही है, तो अुस के साथ साथ युद्ध का डर भी काफी देख पडता है। दुनियाँ की आर्थिक हालत अितनी खराब हो गयी है कि बडी सामाजिक क्रान्ति हुअे बिना शान्ति प्रस्थापित होनेवाली नहीं है। दुनियाँ का अर्थतन्त्र थोडे से विशाल केन्द्रों मे केन्द्रित हो गया है। अिस केन्द्रीकरण के साथ सर्वोदय की दृष्टि और सर्वोदय की अुदारता न होने से केन्द्रीकरण शापरूप सिद्ध हो रहा है। जहाँ छोटेबडों की—सबकी—भलाअी की दृष्टि है वहाँ पर केन्द्रीकरण और पृथक्करण दोनों का योग्य समन्वय हो जाता है।

हम देखते हैं कि दुनिया में सर्वत्र विचार-भ्रम फैला हुआ है। धर्माधर्म का निर्णय भी करना कठिन हो गया है। अैसी हालत में आदर्श की शुद्धि, असली परिस्थिति की जानकारी और परिणाम का निरीक्षण और ज्वररहित होना आवश्यक है।

सर्वत्र विचित्र सी हालत है। हम अेक बडी क्रान्ति के बीच आ पडे हैं। किन्तु जो लोग क्रान्ति के नाम से चिल्लाते हैं, वे क्रान्ति के स्वामी हैं अैसा तो कहीं अनुभव नहीं होता है। क्रान्ति क्रान्ति करते करते वे स्वयम् क्रान्ति के शिकार बन जाने की सम्भावना अधिक है। आज तो तूफानी दरिया में अपना जहाज अिष्ट बंदरगाह में पहुंचानेवाले क्रान्ति-स्वामी या वरुण-देव की खास जरूरत है।

भारत के अेकमेव लोकमान्य

हमारे लिअे तो आगामी पीढियां अुन्हें आधुनिक भारत के अेक निर्माता के रूप में पूजेंगी। जो अुनके लिअे जीया और अुन्हींके लिअे मरा अैसे व्यक्ति के नाते वे अुनकी पुण्यस्मृति का आदर करेंगी। अैसे आदमी के लिअे यह कहना कि वह मर गया है निपट नास्तिकता है। अुसके जीवन का सनातन तत्त्व हमारे साथ निरंतर है। आअिये, हम अुनकी वीरता, अुनकी सादगी, अुनकी विलक्षण अुद्योगिता और अुनका अुत्कट देशप्रेम अपने जीवन में दाखिल कर भारत के अेकमेव लोकमान्य के लिअे अविनाशी स्मारक निर्माण करें।

—गांधीजी

चर्खाद्वादशी

[७० दिन का कार्यक्रम--२ अगस्त से १० अक्तूबर तक]

"भादो बदी १२ को पूज्य गांधीजी का ७१ वाँ वर्ष शुरू होता है। देश के अुद्धार के लिअे चर्खे को अुन्होंने अग्रस्थान दिया है, अिसलिअे हम अिस मांगलिक दिवस को 'चर्खाद्वादशी' के त्यौहार के रूप में मानते हैं।

पांच वर्ष से राष्ट्रीयशाला की तरफ से कातने का कार्यक्रम रखा जाता है। हर साल पूज्य गांधीजी अिस कार्यक्रम को अपना आशीर्वाद भेजा करते हैं। अेक बार आशीर्वाद भेजते हुअे अुन्होंने लिखा था कि—"आज के शिथिल वातावरण में यह काम मुश्किल है। नीरस भी समझा जाता है। किंतु अविचल श्रद्धा मुश्किल को आसान कर देती है, और जो नीरस प्रतीत होता है अुसे सरस बना देती है। तुम्हारी श्रद्धा तुम्हारे वायुमंडल को अैसा बना दे कि वह चर्खे की शक्ति को पहचान ले।"

दूसरी बार लिखा था कि—"सबको खादी की चेप लग जाये, तो सूत के तार से स्वराज्य सहज ही प्राप्त हो सकता है। में यह कहूँगा कि खादी पर बीस वर्ष पहले मेरा जो विश्वास था, वह आज बढ़ा है, कम तो हुआ ही नहीं।"

ये अुद्‌गार अुनकी जयंति के अवसर पर अिस कार्य को प्रेरणा देने के लिअे काफी हैं। अिस आशिर्वाद से कितनी प्रेरणा मिलती रही है, और कितनी सफलता मिली है, अिसका अंदाज नीचे के आँकडों से किया जा सकता है।

पहले वर्ष के ६६ हजार गज़ कातने के संकल्प में से पाँचवें वर्ष के कार्यक्रम में ७० वाँ वर्ष पूरा होते हुअे ७० दिन में ७० लाख गज़ से भी अधिक कातने का संकल्प किया जा सकता है।

भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से अिस कार्यक्रम में बहुत प्रेम से भाग लेनेवाले लोग अपने नाम दर्ज कराते हैं और अिस तरह लाखों गज़ सूत कत जाता है।

अिस वर्ष भी साबरमती-सत्याग्रहाश्रम-वासी, गांधी-सेवा-संघ के सदस्य, चर्खा-संघ तथा हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्ता, पाठशालाअें, विद्यापीठ तथा राष्ट्रीय शालाअें, अिस कार्यक्रम में सम्मिलित हों और कातने के संकल्प की सूचना भेज दें, यह प्रार्थना है।

अिसके अतिरिक्त, ७०-७० सिक्के दरिद्र-नारायण के प्रीत्यर्थ एकत्र किये जायेंगे। पूज्य गांधीजी जिस कार्य को अुचित समझेंगे अुस कार्य में अुस थैली का अुपयोग काठियावाड़ में ही करेंगे।

सब अिस अवसर को पहचान कर खादी के वेग को बढायेंगे, अैसी आशा है।

गत वर्षों में चर्खा-द्वादशी के दिन पूज्य गांधीजीने सरदार वल्लभभाअी तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और राजकुमारी अमृतकुँवर को हमें प्रेरणा देने के लिअे भेजा था। अिस वर्ष भी किसी भाअी या बहिन को भेजने के लिअे प्रार्थना की गअी है। हम अुनके योग्य बनने के लिअे कार्यक्रम में अुत्साह दिखायें।

(पता—राष्ट्रीयशाला, राजकोट.)

सेवक
नारणदास खु० गांधी"

श्रीनारायणदास गांधी अेक जाग्रत खादी-सेवक हैं। अपने व्यवसायों को करते हुअे भी वे नियमित रीति से रोज लगभग चार घंटे बरसों से कातते हैं। अुनका सूत सारे कुटुंब के कपड़ों के लिअे पर्याप्त हो जाता है। खादी की शक्ति के अूपर अुनका अटल विश्वास है। मेरी श्रद्धा तो मुझे यहाँ तक ले जाती है कि मैं खादीप्रचार को दरिद्रनारायण की, और अुसके द्वारा देश की, अच्छी-से-अच्छी सेवा समझता हूँ। कोअी-कोअी कहते हैं कि यह व्यवसाय मूर्खतापूर्ण है, और मेरी अुत्तरक्रिया के साथ अिसका भी अंत हो जानेवाला है। जो व्यवसाय हिंदू-मुसलमान कातने-बुननेवालों के खीसे में लगभग पाँच करोड़ रुपया पहुँचाता हो, वह व्यवसाय यदि मूर्खतापूर्ण समझा जाये, तो फिर यह विचारणीय है कि बुद्धिमत्तापूर्ण किसे कहा जाये? चाहे जो हो, मेरी आशा तो यह है कि अिस साहसपूर्ण कार्य को पूर्ण प्रोत्साहन मिलेगा। नारायणदास का लोभ हर साल बढ़ता ही जाता है। आजतक तो अीश्वर की कृपा से वे सफल हुअे हैं। अिस बार पहले वर्ष के छासठ हजार के बदले अुन्होंने सत्तर लाख गज सूत प्राप्त करने का लोभ बढ़ा लिया है। साधुपुरुषों का संकल्पबल क्या नहीं कर सकता? सात सौ स्वयंसेवक मिल जायें तो रोज प्रत्येक १००० (अेक हजार) गज कातेगा। और सात हजार हों, तो १०० गज ही हरेक के हिस्से में आयेगा। यहाँ अधिक संख्या का नियम लागू होता है। कातनेवालों की संख्या जितनी ही बढ़े अुतना अच्छा। खादी की कल्पना में करोड़ों मनुष्यों के काम की कल्पना निहित है, अर्थात् करोड़ों का सहयोग होना चाहिअे। हिंदुस्तान में करोड़ों मनुष्यरूपी संचे पड़े हुअे हैं। वे बड़े-बड़े जड़ यंत्रों के मोहताज नहीं। करोड़ों का सहयोग हो, तो बड़े मजे से लोग अपने वस्त्र बना लेंगे, और करोड़ों रुपया विदेश जाने से बच जायगा, तथा करोड़ों में अपने-आप बंट जायगा। आशा है कि अिस साहसपूर्ण कार्य को लोग बढ़ायेंगे, और अुसे सफल बनायेंगे। जो सिक्के जमा होंगे वह और खादी से जो पैसा मिलेगा वह काठियावाड़ के हरिजन-कार्य में, खादी-कार्य में और राजकोट राष्ट्रीय-शाला में बराबर-बराबर बँट जायगा।

'हरिजन सेवक' से] मो० क० गांधी

भूल-सुधार

जुलाअी के 'सर्वोदय' में श्री विनोबा के प्रवचन में २८ वें पृ० के दूसरे स्तंभ में यह वाक्य है:—"सायणाचार्य ने अिस मंत्र का भाष्य करते हुअे 'वध' और 'मृत्यु' के भेद की तरफ ध्यान दिलाया है।"

यह वाक्य गलत है। अुसकी जगह पाठक यह वाक्य पढ़ें:—"'वध' और 'मृत्यु' में यद्यपि सायणाचार्य कोअी भेद नहीं करते तथापि मेरी दृष्टि से अुन दोनों का भेद अत्यन्त स्पष्ट है।"

—सं०

कौओ की नजर से

८. लोकशाही

आज शाम को जब कौआ अिमली-आश्रम को लौटा तो थोडासा बेचैन मालूम हुआ। मैंने अिसकी वजह पूछी तो कहने लगा कि गुजराती भाषा में क्रिया-वाचक प्रत्यय खोजने-वाला कोई बडा चतुर आदमी रहा होगा। अुसने यह बडी खूबी की है कि हरेक क्रिया को अेक अेक तरह की वायु बताया है। 'खाने,' 'पीने' 'बोलने,' 'लड़ने,' 'अुड़ने' आदि क्रियाओं को गुजराती में 'खावा', 'पीवा', 'बोलवा', 'लडवा', 'अुडवा', आदि कहते हैं। मतलब यह कि, सब क्रियायें भिन्न भिन्न प्रकार के 'वात' अथवा पागलपन के जोश हैं। मनुष्यों की सब क्रियाओं में ठीक पागलपन के चिह्न होते हैं। मनुष्यको यह गरूर है न, कि दुनिया में वही अेक विचारवान् प्राणी है? अिसलिअे वह सब क्रियायें विचार-वायु से प्रेरित हो कर ही करता है।

मैं—क्या आज कोअी नयी बात तेरी नजर का शिकार बनी है?

भुशुंडी—हाँ, मनुष्यों में आजकल 'लोकशाही' की जोरों से 'बोलवा' चलती है।

मैं—'लोकशाही' शब्द तो मेरे कान पर भी आया है। लेकिन, वह क्या चीज है, मैं अब तक नहीं जानता।

भुशुंडी—आदमियों के अनेक वादों मेंसे यह भी अेक वाद है। वैसे तो यह बहुत पुराने काल से मनुष्यों में पैदा हुआ है। लेकिन, अुसका अेक नया संचार हिंदुस्तान में आ गया है। हिंदुस्तान में आजकल के अकसर सब पढेलिखे लोग लोकशाही में अपना विश्वास प्रकट करते हैं। स्वयं बापू की भी हिंमत नहीं कि वे कहें कि मैं लोकशाही को नहीं मानता। वे जब से हिंदुस्तान में आये हैं, तब से यह दावा करते हैं कि मैं पूरा पूरा लोकशाही-वादी हूं। लेकिन, दूसरे लोगोंका अुनपर यह अिलजाम है कि वे और अुनके बडे बडे साथी लोकशाही के नियमों से काम नहीं करते। अिस पर से लोकशाही किसे कहना चाहिअे अिसके बारे में बड़ी चर्चा हो रही है।

मैं—क्या लोकशाही जैसी कोअी चीज हम पंछियों में नहीं होती? लोकशाही से कौनसी चीज समझी जाती है?

भुशुंडी—लोकशाही तो सब प्राणियों में है। हम कौओं में तो है ही। अुल्लुओं में भी होगी ही। अकसर झुंड में रहनेवाले सब पशुपंछियों में होती है। लेकिन सब का तरीका अलग अलग होता है।

मैं—मुझे जरा यह बात ज्यादा खोल कर समझाओ, तो मैं भी जान सकूं कि हमारे में लोकशाही किस ढंग की होती है। तुम्हारी लोकशाही का क्या तरीका होता है?

भुशुंडी—हम कौओं की लोकशाही का यह तरीका है कि अेक चतुर कौअे को हम अपना नेता बना लेते हैं। अुसे चुनने में हमारे दिल में अुसका किसी प्रकार का डर नहीं होता। हम देख लेते हैं कि वह हमारे जितना ही होशियार है, हमारी भलाअी चाहनेवाला है, हमारे लिअे अपनी जान भी खतरे में डालने को तैयार रहेगा, और अपने पेट की अपेक्षा हमारे

श्रीनारायणदास गांधी अेक जाग्रत खादी-सेवक हैं। अपने व्यवसायों को करते हुअे भी वे नियमित रीति से रोज लगभग चार घंटे बरसों से कातते हैं। अुनका सूत सारे कुटुंब के कपड़ों के लिअे पर्याप्त हो जाता है। खादी की शक्ति के अूपर अुनका अटल विश्वास है। मेरी श्रद्धा तो मुझे यहाँ तक ले जाती है कि मैं खादीप्रचार को दरिद्रनारायण की, और अुसके द्वारा देश की, अच्छी-से-अच्छी सेवा समझता हूँ। कोअी-कोअी कहते हैं कि यह व्यवसाय मूर्खतापूर्ण है, और मेरी अुत्तरक्रिया के साथ अिसका भी अंत हो जानेवाला है। जो व्यवसाय हिंदू-मुसलमान कातने-बुननेवालों के खीसे में लगभग पाँच करोड़ रुपया पहुँचाता हो, वह व्यवसाय यदि मूर्खतापूर्ण समझा जाये, तो फिर यह विचारणीय है कि बुद्धिमत्तापूर्ण किसे कहा जाये? चाहे जो हो, मेरी आशा तो यह है कि अिस साहसपूर्ण कार्य को पूर्ण प्रोत्साहन मिलेगा। नारायणदास का लोभ हर साल बढ़ता ही जाता है। आजतक तो अीश्वर की कृपा से वे सफल हुअे हैं। अिस बार पहले वर्ष के छासठ हजार के बदले अुन्होंने सत्तर लाख गज सूत प्राप्त करने का लोभ बढ़ा लिया है। साधुपुरुषों का संकल्पबल क्या नहीं कर सकता? सात सौ स्वयंसेवक मिल जायें तो रोज प्रत्येक १००० (अेक हजार) गज कातेगा। और सात हजार हों, तो १०० गज ही हरेक के हिस्से में आयेगा। यहाँ अधिक संख्या का नियम लागू होता है। कातनेवालों की संख्या जितनी ही बढ़े अुतना अच्छा। खादी की कल्पना में करोड़ों मनुष्यों के काम की कल्पना निहित है, अर्थात् करोड़ों का सहयोग होना चाहिअे। हिंदुस्तान में करोड़ों मनुष्यरूपी संचे पड़े हुअे हैं। वे बड़े-बड़े जड़ यंत्रों के मोहताज नहीं। करोड़ों का सहयोग हो, तो बड़े मजे से लोग अपने वस्त्र बना लेंगे, और करोड़ों रुपया विदेश जाने से बच जायगा, तथा करोड़ों में अपने-आप बट जायगा। आशा है कि अिस साहसपूर्ण कार्य को लोग बढ़ायेंगे, और अुसे सफल बनायेंगे। जो सिक्के जमा होंगे वह और खादी से जो पैसा मिलेगा वह काठियावाड़ के हरिजन-कार्य में, खादी-कार्य में और राजकोट राष्ट्रीय-शाला में बराबर-बराबर बँट जायगा।

'हरिजन सेवक' से] मो० क० गांधी

भूल-सुधार

जुलाअी के 'सर्वोदय' में श्री विनोबा के प्रवचन में २८ वें पृ० के दूसरे स्तंभ में यह वाक्य है:—"सायणाचार्य ने अिस मंत्र का भाष्य करते हुअे 'वध' और 'मृत्यु' के भेद की तरफ ध्यान दिलाया है।"

यह वाक्य गलत है। अुसकी जगह पाठक यह वाक्य पढ़ें:—"'वध' और 'मृत्यु' में यद्यपि सायणाचार्य कोअी भेद नहीं करते तथापि मेरी दृष्टि से अुन दोनों का भेद अत्यन्त स्पष्ट है।"

—सं०

कौओ की नजर से

८. लोकशाही

आज शाम को जब कौआ अिमली-आश्रम को लौटा तो थोडासा बेचैन मालूम हुआ। मैंने अिसकी वजह पूछी तो कहने लगा कि गुजराती भाषा में क्रिया-वाचक प्रत्यय खोजनेवाला कोई बडा चतुर आदमी रहा होगा। अुसने यह बडी खूबी की है कि हरेक क्रिया को अेक अेक तरह की वायु बताया है। 'खाने,' 'पीने' 'बोलने,' 'लड़ने,' 'अुड़ने' आदि क्रियाओं को गुजराती में 'खावा', 'पीवा', 'बोलवा', 'लडवा', 'अुडवा', आदि कहते हैं। मतलब यह कि, सब क्रियायें भिन्न भिन्न प्रकार के 'वात' अथवा पागलपन के जोश है। मनुष्यों की सब क्रियाओं में ठीक पागलपन के चिह्न होते हैं। मनुष्यको यह गरूर है न, कि दुनिया में वही अेक विचारवान् प्राणी है? अिसलिअे वह सब क्रियायें विचार-वायु से प्रेरित हो कर ही करता है।

मैं—क्या आज कोअी नयी बात तेरी नज़र का शिकार बनी है?

भुशुंडी—हाँ, मनुष्यों में आजकल 'लोकशाही' की जोरों से 'बोलवा' चलती है।

मैं—'लोकशाही' शब्द तो मेरे कान पर भी आया है। लेकिन, वह क्या चीज़ है, मैं अब तक नहीं जानता।

भुशुंडी—आदमियों के अनेक वादों मेंसे यह भी अेक वाद है। वैसे तो यह बहुत पुराने काल से मनुष्यों में पैदा हुआ है। लेकिन, अुसका अेक नया संचार हिंदुस्तान में आ गया है। हिंदुस्तान में आजकल के अकसर सब पढेलिखे लोग लोकशाही में अपना विश्वास प्रकट करते हैं। स्वयं बापू की भी हिंमत नहीं कि वे कहें कि मैं लोकशाही को नहीं मानता। वे जब से हिंदुस्तान में आये हैं, तब से यह दावा करते हैं कि मैं पूरा पूरा लोकशाही-वादी हूं। लेकिन, दूसरे लोगोंका अुनपर यह अिलजाम है कि वे और अुनके बडे बडे साथी लोकशाही के नियमों से काम नहीं करते। अिस पर से लोकशाही किसे कहना चाहिअे अिसके बारे में बडी चर्चा हो रही है।

मैं—क्या लोकशाही जैसी कोअी चीज़ हम पंखियों में नहीं होती? लोकशाही से कौनसी चीज समझी जाती है?

भुशुंडी—लोकशाही तो सब प्राणियों में है। हम कौओं में तो है ही। अुल्लुओं में भी होगी ही। अकसर झुंड में रहनेवाले सब पशुपंखियों में होती है। लेकिन सब का तरीका अलग अलग होता है।

मैं—मुझे जरा यह बात ज्यादा खोल कर समझाओ, तो मैं भी जान सकूं कि हमारे में लोकशाही किस ढंग की होती है। तुम्हारी लोकशाही का क्या तरीका होता है?

भुशुंडी—हम कौओं की लोकशाही का यह तरीका है कि अेक चतुर कौअे को हम अपना नेता बना लेते हैं। अुसे चुनने में हमारे दिल में अुसका किसी प्रकार का डर नहीं होता। हम देख लेते हैं कि वह हमारे जितना ही होशियार है, हमारी भलाअी चाहनेवाला है, हमारे लिअे अपनी जान भी खतरे में डालने को तैयार रहेगा, और अपने पेट की अपेक्षा हमारे

पेट की ज्यादा चिंता रखेगा। फिर, जब वह हमें सूचना देता है, तब हम विश्वास करते हैं कि वह हमारी भलाओी के लिअे ही दी गअी होगी। अुसके अभिप्राय के बारे में हमें कभी अविश्वास नहीं होता। अिस लिअे हम अुसकी सूचना पर अमल करने के पहले अुस पर सोचते नहीं बैठते। हमें यह अनुभव हो सकता है कि अेकाध बार वह भूल करे। लेकिन, यह कभी नहीं हो सकता कि वह हमें धोखा दे दे। कौओं में विश्वासघात जैसा दुर्गुण कभी पैदा ही नहीं हुआ। अिसलिअे अपने सरदार का हुक्म हम हमेशा तत्परता से बजा लाते है। हमारे सरदार को भी यह यकीन होता है कि अुसने नियुक्त किये हुअे कौअे कभी अपनी जान बचाने के लिअे या अपने पेट के लिअे आम कौओं को धोखा नहीं देंगे। बहुत प्राचीन काल से यही लोकशाही हमारे में चली आयी है। अिसे बदलने की जरूरत हमने अब तक कभी महसूस नहीं की।

मैं—यह तुम्हारा ढंग तो कुछ अजब मालूम होता है कि अेक कौअे की राय से सारे कौअे चलें। हम अुल्लुओं को तो यह बड़ा खतरे का काम मालूम होता है। हम तो कभी वैसा नहीं करेंगे। जब स्वयं अपनी बुद्धि पर विश्वास करने में भी धोखा रहता है तो दूसरे पर अितना विश्वास कैसे किया जा सकता है?

भुशुंडी—तो फिर अुल्लूशाही किस प्रकार की होती है?

मैं—हमारा सब से बड़ा गुण यह है कि अपनी बुद्धि में हमें किसी प्रकार का गरूर नहीं होता। हम मानते हैं कि बुद्धि से चलने में हमेशा धोखा है। वह तो गलती करानेवाली ही कोओी देन है। अिसलिअे न हम अपनी बुद्धि पर विश्वास करते हैं, न किसी दूसरे अुल्लू की। अिस लिअे हम अुसी को अपना सरदार चुनते हैं, जिसमें हमारे नाप से भी कम से कम बुद्धि हो। जो थोड़ी भी बुद्धि चलाने की कोशिश करता हो अुसे कभी अुल्लुओं का सरदार नहीं बनाया जायगा। फिर जब अुल्लूशाह कोई फरमान निकालता है, तब हम यह देखते हैं कि अुसने वह फौरन निकाला है या सोच-विचार कर। अगर फौरन निकाला हो, तो हम बिना सोचे अुस पर अमल करते हैं। लेकिन, जब यह पता चले कि अुसने अेक हुक्म कुछ सोच-विचार के निकाला है, तब हम समझते हैं कि अुस पर अमल तो करना ही होगा, लेकिन अुस हालत में अुसकी सूचनाओं को ठीक अुलट कर हम अमल में लाते हैं। सोच-विचार कर निकाले हुअे हुक्मों पर हमारा विश्वास नहीं बैठता। बस अिसी तरीके से हमारा काम लाखों वर्षों से चलता आया है, और हमारी अितनी तरक्की हुअी है।

भुशुंडी—बड़ा अजब है तुम्हारा तरीका और तुम्हारी तरक्की भी! कौअे तो अुल्लू-शाही में तीन ही दिन में खत्म हो जायंगे।

मैं—हां अकसर तुम ही तो हमारे भक्ष्य होते हो! तुम्हें खत्म करने के लिअे ही तो तुमसे अलग ढंग की हमारी 'शाही' है। खैर। और भी किसी तरह की लोकशाही होती है?

भुशुंडी—हाँ, अेक मैनाओं की लोकशाही होती है। बंदरों की भी अेक अलग तरह की लोकशाही होती है। मधुमक्खी, चींटी,

दीमक आदि जंतुओं में भी भांति भांति की 'लोकशाहियां' होती हैं।

मैं—मैनाओं की लोकशाही कैसी होती है?

भुशुंडी—मैनाओं में अकसर कोअी अेक 'सरदार' नहीं होती। अगर कोअी 'सरदार' बनने की कोशिश करे तो वह पीटी जाती है। जब वे कुछ करने की सोचती हैं, तब अेक जगह जमा होती हैं। फिर, वहां बडी देर तक अेक साथ 'काअूं-काअूं' करती हुअीं जोरों से बहस करती हैं। फिर जो निश्चय होता है, अुसके अनुसार अेकसाथ अुडती हैं। छोटा काम हो या बडा काम हो; अुसे करने के पहले जितनी मैनायें वहां हाजिर हों, 'काअूं-काअूं' की बहस करने के बाद ही अुसका निश्चय करती हैं।

मैं—अच्छा! अैसी लोकशाही बनाने का क्या सबब है?

भुशुंडी—हम कौअे यह विचार रखते हैं कि जब सभी कौओं की बुद्धि बराबर है तो हरेक काम में सब क्यों माथापच्ची करें? जो अेक कौआ निर्णय करेगा, वही दस कौअे मिल कर होनेवाला है। अिस लिअे हुक्म निकालने का काम अेक को सौंप देते हैं। और फिर हरेक कौआ अुसका पालन करने में अपनी अपनी चतुराअी दिखाता है। मैनायें यह विचार रखती हैं कि किसी भी मैना में पूरी बुद्धि नहीं होती। अिसलिअे सब की बुद्धि मिलाने से अच्छा काम होगा। लेकिन, साथ साथ यह भी होता है कि जब सब की बुद्धि मिलाने के लिअे वे बैठती हैं, तो सब की बेवकूफी भी जोडी जाती है। अिसलिअे, सब मिल कर कभी कभी अपना बडा नुकसान भी कर लेती हैं। लेकिन, पशुपंखियों में अेक निष्काम बुद्धि होती है, जिसलिअे वे अुसमें भी सुख से रहती हैं।

मैं—कैसी निष्काम बुद्धि?

भुशुंडी—नहीं समझे? देखो न। क्या हम-तुम सब यह विश्वास नहीं रखते कि प्राणी बुद्धि से चले या मूर्खता से चले, कभी सुख तो कभी दुःख होने ही वाला है? अेक दिन मौत आने ही वाली है। अेकाध दिन मिहनत करने पर भी पूरा खाना नहीं मिलता। तब नफा-नुकसान की दृष्टि से 'शाही' में फेरफार करते रहने ही में आखिर कोअी सयानपन नहीं है।

मैं—हां, यह विश्वास तो हमारा भी है। खैर; अब बंदरशाही कैसी होती है, वह बताओ।

भुशुंडी—बंदरशाही में सब बडे और मजबूत लंगूर पहले आपस में लडते हैं और जो लंगूर सबसे ज्यादा बलवान साबित होता है वह दूसरे लंगूरों को हकाल देता है। फिर वह सब बंदरों का सरदार बनाया जाता है और अुसीकी हुकूमत में वे सब रहते हैं। वह अुनका पालन भी करता है और अुनको पीटता भी है। वह अुनका कुछ भला तो करता है, अुनसे प्रेम भी करता है, लेकिन सब अुससे डरते रहते हैं। 'भीति बिना प्रीति नहीं' यह अुनका विश्वास है।

मैं—यह तो कोअी अच्छी 'शाही' नहीं मालूम होती। मनुष्यों को तो शायद ही वह पसंद आती होगी।

भुशुंडी—नहीं, अैसी कोअी बात नहीं। आखिर मनुष्य बंदर को ही अपना पुरखा मानता है न? अिसलिअे घूम-फिर कर वह बार बार बंदरशाही पर आ कर रुकता है।

मैं—तो क्या बापू भी बंदरशाही पसंद करते हैं ?

भुशुंडी—नहीं। बापू की राय कुछ कुछ कौआशाही से मिलती है। लेकिन, हिंदुस्तान के पढ़े-लिखे बहुत से लोग मैनाशाही को ज्यादा पसंद करते मालूम होते हैं। अिसी-लिअे वे बापू पर बहुत बिगड़ते हैं।

मैं—बापू और दूसरे लोगों में अैसा मतभेद क्यों होता है ? क्या बापू पर भी वे विश्वास नहीं रख सकते ?

भुशुंडीः—असल बात यह है कि हजारों साल से बड़े बड़े मनुष्य अिस खोज में हैं कि मनुष्यों के लिअे अच्छी से अच्छी राज्य-प्रणाली कौनसी है। लेकिन, अब तक वे अिसपर कोअी निश्चय नहीं कर पाये हैं। वे हर प्रकार के प्रयोग कर चुके हैं। पर अेक भी सफल नहीं साबित हुआ। वर्तमान में दुनिया के लोगों में दो पक्ष हो गये हैं। अेक मानता है कि अेक ही आदमी की राय से राज चलना चाहिअे और दूसरा मानता है कि सबकी राय से चलना चाहिअे। दूसरी राय रखनेवाले सब लोग लोकशाही-वाले कहलाते हैं। लेकिन, अिस दूसरे पक्ष की अैसी स्थिति है कि सब की राय किस तरह ली जाय, कितनी बार ली जाय, और बाद में किस तरह राज चलाया जाय, अिस पर सैकड़ों वाद अुठते हैं और अपने को सयाने समझनेवाले किन्हीं दो शख्सों के मत अेक दूसरे से मिलते ही नहीं। अब, बापू का यह दोष है कि वे मानते हैं कि सब आदमी कौअे की तरह सयाने, चतुर और चारित्र्यवान् हो सकते हैं। लेकिन, दूसरे लोग कहते हैं कि बहुत थोड़े आदमी सयाने, चतुर और चारित्र्य-वान् होते हैं। बापू सब पर विश्वास रख कर और सब के विश्वास की आशा रख कर चलना चाहते हैं। लेकिन, दूसरे लोग समझते हैं कि विश्वास अपने माँ-बाप पर भी नहीं रखना चाहिअे। तब मनुष्यों में कौओं की लोकशाही कैसे चले ? अिस लिअे लोग मैनाशाही की ओर झुकते हैं। लेकिन विश्वास के बिना आखिर काम तो चलता नहीं। तब वे असमंजस में पड़ जाते हैं, और सोच-विचार के किसी बेव-कूफ को सरदार बना कर काम करना चाहते हैं। पर आदमियों में सच्चे बेवकूफ भी तो कम होते हैं। अिस लिअे वह सरदार अुनमें से बंदरशाही कायम करने की कोशिश करता है।

मैं—दुनिया में यह अेक बड़ा ताज्जुब है कि मनुष्य अितना बड़ा प्राणी होते हुअे भी, वह अभी तक अपने लिअे कोअी अच्छी 'शाही' खोज नहीं सका है। तुम्हारी क्या राय है ? अुसके लिअे कैसा राज्य अच्छा होगा ?

भुशुंडी—हम क्यों अिसकी चिंता करें ? तुम्हें या मुझे किसीने यह बात पूछी तो है नहीं ?

मैं—नहीं, वैसे तो किसीने नहीं पूछी। लेकिन, 'सर्वोदय' के संपादक शायद पसंद करें तो वे अुसका प्रचार कर सकते हैं। सब मनुष्यों की भलाअी सोचना यही तो अुनका काम है न ? अगर हम कुछ मदद कर सकें तो वह करना हमारा कर्तव्य है।

भुशुंडी—मैं तो अिस नतीजे पर आया हूं कि जो मदद नहीं मांगता अुसे मदद करने जाना बेवकूफी है। फिर भी, तुम्हारा आग्रह

है तो तुम्हें मैं अपने विचार बताता हूं। तुम अुनका चाहे जो अुपयोग करो। मैं 'सर्वोदय' के संपादक को नहीं जानता।

मैं—खैर। मुझे ही बताओ।

भुशुंडी—मेरी यह राय है कि योग्य मानवशाही का निश्चय मनुष्यों को ही करना चाहिअे और अुसके लिअे, जैसा कि कॉंग्रेस कहती है, अेक बडी प्रतिनिधिसभा भी बुलानी चाहिअे। मगर अुसमें आनेवाले प्रतिनिधियों के लिअे यह लाजिमी होना चाहिअे कि वे सब साअिकिल पर चढ़ कर आवें और जब तक परिषद् चले साअिकिल घुमाते रहें। कोअी भी आदमी स्थिर खडा न रहे। साअिकिल चलाते चलाते राज्य-प्रणाली के बारे में जो निर्णय हो, अुसी तरह की मानवशाही स्थापित की जाय।

मैं—यह तो तुमने बडा विचित्र मार्ग बताया! अैसा करने का क्या सबब?

भुशुंडी—मनुष्य के नसीब में यह लिखा है कि वह फेरफारों में सुख माने; किसी भी पद्धति को टिकाने में नहीं। कोअी पद्धति जब टिकती है तब अुसमें से कुछ न कुछ फल पैदा होता है और फल खाना तो मनुष्य के लिअे मना है। वह जब फल चाखने जाता है तब वह ज्यादा दुःख पाता है। अिसीलिअे तो भगवान ने मनुष्य का यह धर्म बताया है कि,

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू र्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि'।

किसी वायु से प्रेरित होकर क्रिया करते रहना अितना ही मनुष्य का अधिकार है। अुस क्रिया का फल ज्यों ही अुत्पन्न होने लगे त्यों ही क्रिया में फेरफार कर देना चाहिअे और फल को पैदा न होने देना चाहिअे। जिस तरह आदमी जबतक साअिकिल चलाता रहे, तभी तक अुस पर से गिरता नहीं अुसी तरह जबतक कोअी भी पद्धति स्थिर न हो तभी तक वह अच्छी समझी जाय। फेरफार करने की क्रिया में से जितना सुख प्राप्त हो, अुतने ही से अुसे संतोष मानना चाहिअे। काम पूरा कर के फल प्राप्त करने की अिच्छा अुसके लिये पाप है। अुसका नियम यह हो कि वह खेत बोवे और जबतक अनाज तैयार न होने लगे तभी तक अुसकी रखवाली करे और बाद में अुसे छोड़ कर दूसरा खेत बोने लगे।

संपादक भाअी, मैं भुशुंडी की यह बात ठीक नहीं समझ सका हूं। यह भी मुझे पता नहीं कि अुसका यह कथन गंभीर है या मजाक में। अुसे ज्यादा साफ करने से वह अिनकार करता है।

आपके
आश्रम का अुल्लू

संकटों के बिना स्वतंत्रता नहीं और बिना रात के सबेरा नहीं। यदि तुम्हें स्वतंत्रता प्राप्त होगी तो वह तुम्हारे निश्चय, अुद्योग और साहसही से। सरकार यदि बलिष्ठ है तो वह तुम्हारी बदोलत बलिष्ठ हुअी है। तुम्हारी आपसी फूट ही अुसका कवच है। तुम्हारी दुर्बलताही अुसकी शक्ति है। तुम्हारा अपने विषय में अज्ञान ही अुसकी सामर्थ्य है। तुम अगर यह जान लो तो सब कुछ तुम्हारा है।

—लोकमान्य तिलक

आवश्यक होने पर सत्याग्रहियों को वैसी ही कडी परीक्षा में अुत्तीर्ण होना पडेगा। संभव है कि वैसा न भी हो। किन्तु अगर वैसी आफत आ ही जावे तो क्या हम हट जायेंगे और कहेंगे कि अितना कष्ट सहने के लिये हम तैयार नहीं हैं? यदि हमलोग अहिंसक रहें तो प्रतिपक्षी लंबे अरसे तक अिस तरह की अमानुषिकता कर नहीं सकेंगे। यदि हम डर कर झुक जायें और हिंसा का रास्ता ले लें तो दूसरी बात है। मैं विश्वास करता हूं कि कोअी भी समूचा राष्ट्र पूरी पूरी आत्माहुति देने के लिअे प्रस्तुत हो कर ही अहिंसक भाव से हिंसा के सम्मुख खडा हो सकता है। किन्तु अिस सत्याग्रह जैसी कीमती चीज को सस्ता समझने से नहीं चलेगा। साक्षात् संघर्ष का चरम पुरस्कार पाने के लिये हमें प्रस्तुत रहना पडेगा।

गत सविनयभंग के समय हम ब्रिटिश सरकार को सजा देने की शक्ति के सामने हार मान चुके हैं; यद्यपि चीन में जो आज हो रहा है अुसकी तुलना में यहां कुछ भी नहीं हुआ था। जिस दिन सत्याग्रह शुरू हुआ ठीक अुसके पहले जो सरकार की निषेधात्मक विज्ञप्ति खास खास लोगों को धमकी देते हुअे निकली थी अुसका असर कलकत्ते में खूब पडा था। जिन लोगों को धमकी दी गयी थी अुन लोगों में से बहुतों ने अुसे मान लिया। गांधीजी को कानून-भंग आन्दोलन सिर्फ अिसी लिअे बंद करना पडा कि लोगों की दुर्बलता के कारण लडाअी और जारी रखना संभव न था। आज ब्रिटिश शक्ति को दुर्बल पा कर अुसके विरुद्ध संघर्ष आरम्भ करें तो अुसका आखिरी जवाब तुरन्त निष्ठुरता और निर्दयता के चरम रूप में मिलेगा। लोग क्या आज अुसे बर्दाश्त कर सकेंगे? अिसकी निशानी कहां है?

जो आज साक्षात् संघर्ष के लिअे अधीर हो अुठे हैं, जो बहुनिंदित कांग्रेस हाअी-कमांड पर कानून अनुवर्ती (विधानवादी) मनोवृत्ति का दोष लगाते हैं वे ही कहें कि कौनसी परीक्षा के जरिये वे जानना चाहते हैं कि लोग आज तैयार हैं? अुसी परीक्षा के जरिये वे जांच कर कहें कि लोग सचमुच तैयार हैं या नहीं।

सशस्त्र युद्ध में प्रत्येक देश अपने अपने शस्त्रास्त्रों के विराट आयोजनों को दिखा दिखा कर जाहिर करता रहता है कि वह युद्ध के लिअे तैयार है। किन्तु हमें तो अहिंसक युद्ध की तैयारी का परिचय देना होगा। कांग्रेस के निर्णय के अनुसार बार-डोली अेक बार तैयार हुआ था किन्तु देश का सुर अुसके सुर के साथ नहीं मिला। युद्ध रोक देना पडा। आज साम्प्रदायिक और प्रादेशिक विद्वेष से तो यही जाहिर हो रहा है कि हम तैयार नहीं हैं। किसी भी नेता के लिअे अिस विषय की अवहेलना करना अुचित नहीं है।

(बंगला 'राष्ट्रवाणी' से)

संरक्षकता का सिद्धान्त

[निर्मल कुमार बसु]

यद्यपि गांधीजी ने भारतीय राष्ट्रसभा (कॉंग्रेस) से अपना अस्तेय अथवा अपरिग्रह का आदर्श स्वीकार ने को कभी नहीं कहा तो भी वे चाहते हैं कि अहिंसा का हर-अेक पुजारी अपने जीवन में अपरिग्रह व्रत का पालन करे। क्यों कि अुनके मत से अपरिग्रह का सिद्धान्त प्रेम या अहिंसा के सिद्धान्त से अनिवार्यरूप से निष्पन्न होता है। जिसका मनुष्यजाति के प्रति सच्चा और गहरा प्रेम हो वह अैसी दशा में कोअी संपत्ति कदापि नहीं रख सकता जब कि दूसरों को अुसके अभाव के कारण दुःख भुगतना पड रहा हो। समाजवादियों के संपत्तिवितरण की भी यही मूलभूत नीति है। क्यों कि वे भी यही कहते हैं कि हर अेक मनुष्य को अुसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना ही चाहिअे। परंतु गांधीजी में और अधिकांश समाजवादियों में भेद यह है कि गांधीजी केवल अहिंसक असहयोग से ही आर्थिक क्रान्ति करना चाहते हैं, अन्य किसी अुपाय से नहीं। संरक्षकता (ट्रस्टीपन) भी अिसी रास्ते आयेगी। लेकिन यदि अुसके आने में देर लगे, या वह बिलकुल ही न आती हुअी दिखाअी दे; और यदि हमारे सामने केवल दो ही बातें रह जाती हैं—अेक तरफ वह संरक्षकता (ट्रस्टीपन) जिसके आने की आशा ही नहीं और दूसरी तरफ संपत्ति का राष्ट्रीय स्वामित्व और अुसकी गैल में आनेवाली अपरिहार्य हिंसा—तो निःसंदेह गांधीजी राष्ट्रीय स्वामित्व के पक्ष में ही अपनी राय देंगे। क्यों कि आखिर वे व्यवहारचतुर ध्येयवादी हैं।

अेक बार अुनसे पूछा गया, "आप अपना संरक्षकता (ट्रस्टीपन) का सिद्धान्त कार्यरूप में कैसे लायेंगे? लोगों को मना कर और समझाबुझा कर?"

अुन्होंने जवाब दिया, "केवल बातों से समझाबुझा कर नहीं। मैं अपने साधन पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करूंगा। कुछ लोग मुझे अपने जमाने का सबसे बडा क्रान्तिकारी कहते हैं। यह गलत भी हो सकता है। लेकिन मैं अपने आपको अेक क्रान्तिकारी—अहिंसक क्रान्तिकारी—मानता हूं। मेरा साधन है असहयोग। कोअी भी व्यक्ति लोगों के, राजीखुशी के या जबरदस्ती के, सहयोग के बिना धनसंचय नहीं कर सकता।" (यंग अिण्डिया २६:१२:३१)

तो फिर संरक्षकता (ट्रस्टीपन) से अुनका क्या मतलब है? क्या अुनके सिद्धान्त के अनुसार संरक्षक (ट्रस्टी) धन का और अुत्पादन के साधनों का स्वामी रह सकता है? या यह सिद्धान्त अुसे लोगों का सार्वकालिक और संपूर्ण सेवक बना कर छोडेगा? अगर दूसरी बात सच हो तो नैतिक दृष्टि से संरक्षकता के सिद्धान्त में कोअी दोष नहीं हो सकता। आअिये, अिस विषय में स्वयं गांधीजी क्या कहते हैं यह देखें।

प्रश्न—"क्या प्रेम या अहिंसा किसी भी प्रकार के परिग्रह और शोषण से सुसंगत है? अगर परिग्रह और अहिंसा का मेल असंभव हो, तो क्या आप अिस बात का समर्थन करेंगे कि अब तक सारे अखिल पूर्ण-

रूप से विकसित या शिक्षित न हो जायें तब तक जमीन और कारखानों की खानगी मालकियत कायम रहे ? अगर राज्य का स्वामित्व जमीन पर कायम किया जाय और राज्यसंस्था जनता के आधीन कर दी जाय तो क्या श्रेयस्कर नहीं होगा " ?

उत्तर–"प्रेम और निरपवाद स्वामित्व में कोअी मेल नहीं हो सकता। सिद्धान्त की दृष्टि से जहां पूर्ण प्रेम है वहां पूर्ण अपरिग्रह भी होना चाहिअे। आज जिनके पास पैसा है अुनसे यह कहा जाता है कि वे अपने आपको गरीबों के अमानतदार समझें और अपनी संपत्ति को गरीबों की थाती समझें। आप यह कह सकते हैं कि यह अमानतदारी अेक कानूनी कल्पना मात्र है। परंतु यदि लोग अुसका चिन्तन करे और अुसे व्यवहार में लाने का सतत यत्न करे तो हमारा अिह लोक का जीवन आज की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेममय होगा। संपूर्ण संरक्षकता (ट्रस्टीपन) यूक्लिड के बिन्दु की परिभाषा के समान केवल भाववाचक है और अुतनी ही अव्यवहार्य भी है। लेकिन यदि हम अुसे प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो दूसरी किसी भी रीति की अपेक्षा दुनिया में समानता प्रस्थापित करने में अधिक सफल होंगे "।

प्रश्न—"जब कि आप यह कहते हैं कि खानगी संपत्ति अहिंसा के प्रतिकूल है तो आप अुसे सहन क्यों करते हैं "?

उत्तर—"जो लोग धन कमाते है और अुसका अपनी अिच्छा से मनुष्यजाति के कल्याण के लिअे अुपयोग नहीं करना चाहते अुनके साथ यह रियायत करनी पडती है "।

प्रश्न—"तो फिर खानगी संपत्ति की जगह राष्ट्रीय मालकियत ही जारी क्यों न की जाय ? जिससे हिंसा की मात्रा तो कम होगी " ?

उत्तर–" राष्ट्रीय मालकियत खानगी मालकियत से अच्छी है। लेकिन अुसमें भी हिंसा है। अिसलिअे मेरी दृष्टि से वह भी आपत्तिजनक है। मेरा यह दृढ विश्वास है कि राज्य यदि पूंजीवाद को हिंसा से दबा देगा तो वह खुद हिंसा की गिडुलियों में फंस जायगा और अहिंसा का विकास करने में कदापि समर्थ नहीं होगा। राज्यसंस्था संगठित और अेकीकृत हिंसा की प्रतिनिधि है। व्यक्ति के आत्मा होती है। राज्य आत्महीन यंत्र है। अुसका अस्तित्व ही हिंसा पर निर्भर है। अिसलिअे आप अुससे हिंसा नहीं छुडा सकते। अतः मैं संरक्षकता (ट्रस्टीपन) का सिद्धान्त अधिक पसन्द करता हूं "।

प्रश्न–" अेक प्रत्यक्ष दृष्टान्त ही ले लीजिये। मान लीजिये कि अेक कलाकार मर गया और अपने बेटे के लिअे विरासत में कुछ चित्र छोड गया। अुसका लडका अुन चित्रों की कोअी कद्र नहीं कर सकता। राष्ट्र के लिअे अुनका क्या मूल्य है यह नहीं समझ सकता। वह अुन चित्रों को बेच देता है या यों ही बिगाड देता है। अिस तरह अेक आदमी की बेवकूफी से राष्ट्र कीमती चीजों से वंचित रह जाता है। अगर यह विश्वास हो जाय कि वह लडका अुन चित्रों का हमारी अिच्छा के अनुसार संरक्षक नहीं बन सकता तो क्या राज्य का न्यूनतम हिंसा का प्रयोग कर के अुन चीजों को अुससे छीन लेना न्याययुक्त नहीं होगा " ?

उत्तर–" हां, सच तो यह है कि राज्य अुन चीजों को ले ही लेगा और अगर वह

न्यूनतम हिंसा से काम लें तो अुसका अैसा करना न्यायोचित होगा। परंतु अिसमें यह डर हमेशा रहा है कि जो लोग राज्य से सहमत नहीं हैं अुनपर वह बेजा बल-प्रयोग करेगा। अगर संपत्तिमान लोग संरक्षकों जैसा व्यवहार करें तो मुझे नितान्त सुख होगा। लेकिन यदि वे अिसमें चूकें, तो मैं समझता हूं कि हमें राज्य की सहायता से न्यूनतम हिंसा से काम ले कर अुनसे अुनकी संपत्ति ले लेनी होगी। अिसीलिअे मैंने गोलमेज परिषद में कहा था कि हम मौजूदा प्रत्येक प्रतिष्ठित स्वार्थ की छानबीन करेंगे और जहां जरूरत हो वहां संपत्ति जब्त भी करेंगे। हर अेक मामले की जांच कर के जहां अुचित मालूम होगा वहां मुआविजा देंगे और जहां मुनासिब जान पड़ेगा वहां बिना कुछ हरजाना दिये जायदाद जब्त कर ली जायगी।

मैं स्वयं राज्यसंस्था में सत्ता केन्द्रित करने की अपेक्षा संरक्षकता की भावना का प्रसार अधिक पसंद करूंगा। क्यों कि मेरी राय में राज्य की हिंसा की बनिस्बत खानगी मालकियत की हिंसा कम हानिकारक है। तथापि यदि राष्ट्रीय मालकियत टल ही न सकती हो तो मैं कम से कम राष्ट्रीय मालकियत का समर्थन करूंगा"। (मॉडर्न रिव्हयू १९३५, पृष्ठ ४१२)

यह कथन गांधीजी को समाजवाद के अत्यन्त निकट लाता है; यद्यपि यह साफ है कि गांधीजी के क्रान्तितंत्र की तह में अराजकतावाद है।

परंतु अेक व्यवहारनिष्ठ मनुष्य के नाते अुन्हें समाजवाद के अधिक से अधिक निकट आना ही पड़ता है। हां, अेक महत्त्वपूर्ण अंतर है। अुनका क्रान्तितंत्र सदैव प्रेम या अहिंसा पर स्थित रहेगा। परस्पर विरोधी स्वार्थों के संघर्ष के अिस कीचड़ में वे अपने तरीके से जितनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आश्वासन दे सकते हैं अुतना किसी दूसरे साधन से नहीं दिया जा सकता। अिसलिअे चाहे व्यवहार्यता के लिहाज से ही क्यों न हो, अन्त में गांधीजी समाजवादी हैं। लेकिन हैं कुछ निराले ढंग के समाजवादी। अुन्होंने अेक बार कहा भी था :—

"मेरी राय में हिन्दुस्थान की और सारे संसार की अर्थ-व्यवस्था अैसी होनी चाहिअे कि अुसमें बिना खाने और कपड़े के कोअी रहने न पावे। दूसरे शब्दों में हर अेक को अपनी गुजरबसर के लिअे काफी काम मिलना चाहिअे। यह आदर्श तभी सिद्ध होगा जब कि जीवन की प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी करने के साधनों पर जनता का अधिकार रहेगा। जिस प्रकार भगवान की पैदा की हुअी हवा और पानी सब को मुफ्त में मयस्सर होते हैं, या होने चाहिअें, अुसी तरह ये साधन भी सबको बेरोकटोक के मिलने चाहिअें। अुन्हें दूसरों को लूटने के लिअे लेनदेन की चीजें हरगिज नहीं बनने देना चाहिअे"।

(यंगअिण्डिया १५ : १ : २८)

यहां भी वे यह नहीं कहते कि राज्यसंस्था के जरिये जनता अुत्पादन के साधनों पर अधिकार करेगी। अुनकी कल्पना के अनुसार छोटे छोटे ग्रामीण समुदायों के द्वारा अुन समुदायों में रहनेवाली देहाती जनता का अधिकार अुत्पादन के साधनों पर रहेगा। अेक व्यवहार्य आवश्यकता के रूप में वे केन्द्रीकृत राज्यसंस्था का अधिकार भी

मंजूर कर लेंगे। बशर्ते कि वह राज्यसंस्था पूर्णरूप से जनता के आधीन हो।

समाजवादियों से गांधीजी के मन्तव्यों की अधिकांश अेकता और साथ ही साथ अहिंसक नीति के विषय में समाजवादियों की नीति से अुनकी नीति का मौलिक भेद—क्योंकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिक से अधिक संरक्षण अहिंसा में ही हो सकता है—गांधीजी ने १५:११:२८ के 'यंग अिण्डिया' में बोल्शेव्हिज़म के बारे में अपनी राय देते हुअे बहुत स्पष्ट शब्दों में समझाया है। पाठकों से अनुरोध है कि वे अुसे कअी बार ध्यान से पढ़ें और मनन करें; और बाद में गांधीजी के आर्थिक या राजनैतिक ध्येयवाद के विषय में कोअी राय कायम करें।

प्रश्न—"बोल्शेव्हिज़म के सामाजिक अर्थशास्त्र के विषय में आप की क्या राय है? अुस अर्थनीति का अनुकरण अिस देश में करना कहां तक अुचित होगा"?

उत्तर—"मुझे यह कबूल करना चाहिअे कि अभी मैं बोल्शेव्हिज़म का अर्थ पूरी तरह नहीं समझ पाया हूं। मैं अितना ही जानता हूं कि अुसका अुद्देश खानगी संपत्ति का नाश करना है। यह तो केवल अपरिग्रह के नैतिक सिद्धान्त का आर्थिक क्षेत्र में विनियोग है। लोग स्वेच्छा से यदि अिसका स्वीकार कर लें, या शान्तिपूर्वक समझानेबुझाने से अुसको मान लें, तब तो अिससे श्रेयस्कर और क्या हो सकता है? लेकिन, मैं जहां तक जानता हूं, बोल्शेव्हिज़म बलप्रयोग का निषेध नहीं करता। अितना ही नहीं; बल्कि खानगी संपत्ति को जब्त करने के लिअे और राष्ट्रीय मालकियत की रक्षा के लिअे वह यथेष्ट बलप्रयोग विहित मानता है। अगर दर असल बात अैसी है तो मैं बिना हिचकिचाये यह कह सकता हूं कि बोल्शेव्हिक सत्ता अपने आज के रूप में बहुत दिन नहीं टिक सकती। क्यों कि मेरा यह दृढ विश्वास है कि हिंसा पर कोअी भी स्थायी चीज़ कायम नहीं की जा सकती। लेकिन फिर भी अिसमें सन्देह नहीं कि बोल्शेव्हिक आदर्श के पीछे असंख्य स्त्रीपुरुषों का पवित्र त्याग है। अिन स्त्रीपुरुषों ने अपना सर्वस्व अुसके लिअे अर्पण कर दिया है। जिस आदर्श को लेनिन जैसे महापुरुषों ने पुनीत किया वह व्यर्थ नहीं हो सकता। अुनके त्याग का अुज्ज्वल अुदाहरण संसार के सामने सदा चमकता रहेगा और जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे वैसे वह अुनके आदर्श को अधिक जीवित और अधिक शुद्ध बनायेगा"।

(अंग्रेजी 'कॉमरेड' से)

अंग्रेजों की राज्यतृष्णा बेहद बढ़ गयी है। अिसलिअे पैसेवालों का प्राबल्य तो बढ़ ही रहा है; परन्तु मालदार लोगों से भी अधिक फौजी आदमियों की प्रतिष्ठा दिन दिन बढ़ती जा रही है।........अिस प्रकार थोड़े लोगों के हाथ में सत्ता दे कर अुनके हुक्म से चलने की नौबत आज अंग्रेज समाज पर आयी हो,.........तो क्या अिससे यह सिद्ध नहीं होता कि अंग्रेज़ राष्ट्र अधिकाधिक गुलाम होता जा रहा है? अुसी प्रकार बुद्धि की जो प्रतिष्ठा थी वह नष्ट हो कर अंग्रेज़ समाज यदि आज शारीरिक बल की ही अधिक अिज्ज़त करने लगा है, तो क्या यह भी कबूल करना नहीं पड़ेगा कि अंग्रेज़ लोग सुधार का रास्ता छोड़ कर जंगलीपन का रास्ता ले रहे हैं?

—लो० तिलक.

हमारा तेजकदम

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अेक बार किसी महान नेता को जनता की तरफ से मानपत्र दिया गया। उसमें उस नेता में बहुत बड़े बड़े गुणों का आरोपण किया गया था। नेता ने उस मानपत्र का स्वीकार करते हुअे कहा कि मैं यह तो नहीं मान सकता कि जिन बड़े बड़े गुणों का मुझमें आरोपण किया गया है वे मुझमें हैं। क्यों कि मैं अपने को अच्छी तरह जानता हूं। लेकिन मुझे इस मानपत्र से यह पता चलता है कि आप मुझे कैसा व्यक्ति बना हुआ देखना चाहते हैं। भगवान करे; और मैं वैसा ही बनूं।

श्री सुभास बाबू ने कई व्याख्यानों और निवेदनों में गांधी सेवा संघ को अेक आदर्श संगठन बताया है और अेक समाजवादी अखबार ने यह संभावना बताई है कि गांधीजी सारी कॉंग्रेस का गांधी सेवा संघ में परिवर्तन करना चाहते हैं। किसी भी सदस्य के ख्याल में कभी यह नहीं आया होगा कि देश के राजकारण में गांधी सेवा संघ संस्था का इतना महत्त्व है कि श्री सुभास बाबू जैसे अेक महान नेता और कई अखबारों को इस हद तक उस का ध्यास लग जाय। फिर भी हमारे भाग्य से संघ को, बिना हमारे प्रयत्न किये आज इस रूप में प्रसिद्ध किया जा रहा है। इस भाग्य को सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य इसका निर्णय करना आज मुश्किल है। संघ के सदस्यों के कामों के अनुसार संघ के लिअे वह सौभाग्य भी हो सकता है और दुर्भाग्य भी। क्योंकि हम अच्छी तरह अपने दिल में समझते हैं कि जिस बलवान संगठनशक्ति या अभिलाषा का प्रमाण-पत्र आज हमें दिया जा रहा है, वह सही नहीं है। पर, ऊपर के दृष्टान्त में बताये हुअे नेता ने जैसा समझा, वैसा हम भी समझ सकते हैं कि किस प्रकार की संगठनशक्ति और अभिलाषा करना हमारे लिअे संभवनीय हो सकता है।

अगर हमने अेक संघ बनाया है और उसमें सदस्यों को भरती भी करते हैं, तो यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हम संगठन में विश्वास करते हैं। चाहे उसका तरीका और उद्देश वगैरा अेक निराले ढंग के भले ही हों। और, अगर हमारे पास भी समाजरचना की अेक विशेष दृष्टि है, और हम श्रद्धा रखते हैं कि उसीका व्यापकरूप में अमल करने से जनता का कल्याण होनेवाला है, तो सारी कॉंग्रेस गांधी सेवा संघ में परिवर्तित हो जाय अैसी अभिलाषा करना अच्छी ही बात माननी चाहिअे।

हमें उन महाशयों का अेहसान मानना चाहिअे जिन्होंने हमारे अस्पष्ट मनोरथ और कच्चे काम को पूरे स्वरूप में हमारे सामने रखने की मिहनत ली है।

लेकिन संगठन और अभिलाषा की सिद्धि सिर्फ मनोरथ करने से ही तो नहीं होती। न सिर्फ दूसरों के वैसा मान लेने भर से होती है। अपने मन के लड्डू और दूसरे की कल्पना के लड्डू दोनों वास्तव में अेक ही हैं। पर अपने मन के लड्डू में यह विशेषता है कि हम मिहनत करें तो अपने

मन के लड्डू को वास्तविक लड्डू भी बना सकते हैं। दूसरे की कल्पना के लड्डू के साथ वैसा नहीं कर सकते।

हमारे सिद्धान्तों के अनुसार हमारा संगठन और अभिलाषा सिद्ध करने का तरीका बेशक हमारे ही ढंग का होगा। दूसरे सिद्धान्तों से चलनेवाली संस्थाओं के ढंग से हम वह करते जायेंगे तो वह कम से कम गांधी सेवा संघका काम तो न होगा। वाममार्गियों के दिल में जो डर है वह शायद यह है कि हम अपने सिद्धान्तों के ढंग से नहीं, बल्कि दूसरे ढंगों से, यह काम कर रहे हैं और आज तक करते आये हैं। उन दूसरे ढंगों में शायद उनकी श्रद्धा है, और वे उन ढंगों के सहारे शायद अपना संगठन करना चाहते हैं।

लेकिन, हमारे लिये तो उनका यह डर अेक चेतावनी है। क्योंकि हमारा तो यह विश्वास है कि जितना हम अपने सिद्धान्तों को छोड़ कर दूसरे तरीकों से काम लेंगे, उतना ही हमारा मकान कच्चा और हमारा हेतु असिद्ध रहेगा।

वाममार्गी तेज़कदम से आगे बढ़ना चाहते हैं। गांधीजी भी देश को तेज़कदम से आगे बढ़ाना चाहते हैं। यह उद्देश सिद्ध करने के दोनों के तरीकों में क्या फर्क है, इसपर ध्यान देना जरूरी है।

पहले हम गांधीजी के तरीके की भूमिका को समझ लें। हिंदुस्तान की आबादी करीब ४० करोड़ है। उसमें से ज्यादा से ज्यादा ४० लाख कॉंग्रेस के मेंबर होंगे। ये मेंबर ४० करोड़ लोगों ने चुने हुअे नहीं हैं, बल्कि, स्वयंनियुक्त हैं। फिर भी, कॉंग्रेस का यह दावा है कि वह सारे हिंदुस्तान की प्रतिनिधि है। यह दावा तभी सही हो सकता है जब कि कॉंग्रेस का हरेक मेंबर, स्वयंनियुक्त होते हुअे भी, अपने को जनता का अेक प्रतिनिधि माने। यानी, सारी जनता के हित का खयाल करने और उसका हित बढ़ाने के लिअे अपने आपको शपथ से बंधा हुआ समझे। अगर ४० लाख मेंबर होते हुअे भी अैसी सौगंध की भावना न हो, तो वह बडी संख्या उसी तरह की है जैसे किसी छोटीसी गली में आग लगने पर तमाशा देखने के लिअे लोगों की खासी भीड लग जाये। वे आग को बुझाने में मदद नहीं, बल्कि अड़चन करेंगे। अैसे पांच हजार प्रेक्षकों से १५ आग-बुझानेवालों का दल (फायर-ब्रिगेड) ज्यादा कामका साबित होगा। ४० करोड़ हिंदुस्तानियों में ४० लाख अैसे आदमी पाने की अपेक्षा करना—अेक जागी हुई जनता में तो—बहुत बडी आशा न होनी चाहिअे। बल्कि, इतनी भी आशा जबतक सफल नहीं होती तबतक यही समझना चाहिअे कि देश में अभी ठीकसे जागृति नहीं हुई है। और यदि भावुकता को छोड़ कर वास्तविक स्थिति का हम निरीक्षण करेंगे तो हमें कबूल करना होगा कि अपने को ४० करोड़ के वकील माननेवाले ये ४० लाख कॉंग्रेसमेंबर नहीं हैं।

तब हम क्या करें? तब हमें यह करना चाहिअे कि जो अैसी भावना से प्रेरित हो चुके हों, उन्हें ४० लाख में से चुन कर उन के द्वारा शेष मेंबरों को इसी भावना से प्रेरित होने को प्रोत्साहित करें, तथा ४० करोड़ जनता की जो सेवा करा सकें वह करायें।

प्रतिनिधियों की संस्थायें बनाने के सही हेतु दो हैं। अेक, यह कि सारी जनता में से

अैसे आदमी किसी तरह खोजे जायें, जो कि, जिम्मेदारी की जो भावना सब अनुभव नहीं कर सकते उसे अनुभव करते हों। और दूसरा, काम पूरा करने का इन्तजाम हो।

इन लोगों को किस तरह ढूंढा जाय यह अेक मुश्किल सवाल है। इसके लिअे चुनाव की पद्धति का आम तौर पर इस्तेमाल होता है। लेकिन, चुनाव की कोई पूरी–पूरी सफल पद्धति अभी तक हाथ नहीं आई है। इसलिअे खोज का जो हेतु है वह बार बार निष्फल ही रह जाता है। फिर भी इसका कुछ उपयोग होता है, इसलिअे उसे छोड देना भी आज असंभव है। लेकिन, उसमें जो त्रुटी रह जाती है, उसे पूरी करने का दूसरा मार्ग लेना भी जरूरी है।

वह यह कि चुने हुअे प्रतिनिधियों के अलावा दूसरा भी अेक वर्ग हो, जो, जिस जिम्मेदारी की भावना की प्रतिनिधियों से अपेक्षा की जाती है, उसे अपनी खुशी से उठा ले और प्रतिनिधियों की मदद करे तथा उनकी त्रुटियां पूरी करता रहे। साफ है कि यह वर्ग चुने हुअे लोगों का नहीं, लेकिन स्वयंनियुक्त ही हो सकता है। यह अेक अैसा वर्ग है, जिसे मतदारों की तरफ से अधिकार कुछ नहीं मिलता, फिर भी जो मतदारों के प्रति अपनी अुतनी और वैसी ही–बल्कि ज्यादा ही–जवाबदारी समझता है, जितनी कि निर्वाचित प्रतिनिधियों को समझनी चाहिअे। इन स्वयंनियुक्त प्रतिनिधियों के ऊपर लोग अपना विश्वास या अविश्वास अेक विधिवत् प्रस्ताव द्वारा प्रकट नहीं करते। जब तक जनता उन-पर विश्वास करती है, तब तक उन्हें विविधरूप से सहयोग देती है, सहायता देती है, उनकी सूचनाओं के अनुसार काम करती है और उनकी इज्जत करती है। जब उनके प्रति अविश्वास हो जाता है, तब बिना कोई प्रस्ताव किये उनसे सब प्रकार का सहयोग हटा लेती है। इसलिअे किस हद तक जनता इन्हें सहयोग देती है और आदर से देखती है यही इनके प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किये जाने का सबूत है।

लेकिन, इसमें भी अेक संकट पैदा होता है। लोगों के विचार और आदतें हमेशा अपनी सच्ची भलाई के अनुकूल नहीं होती और उनमें तबदीली कराने की कोशिश करनेवाले, जनता के सेवक होते हुअे भी, उसका सहयोग पाने में तुरन्त सफल नहीं होते। जो जनता की आदतों और विचारों के सामने कुछ झुक जाते हैं, वे ज्यादा सहयोग और प्रियता प्राप्त करते हैं।

इसलिअे जनता के सहयोग और आदर की मात्रा पर सेवकों का प्रतिनिधि के नाते स्वीकार किया जाना भले ही अवलंबित हो तो भी जनता की उपेक्षा सेवकों की अनुपयोगिता का सबूत नहीं है।

सारांश, जनता के द्वारा स्वीकार किया जाना यह अेक हद तक महत्त्व की चीज है। पर, सर्वोदय में अपनी निष्ठा और उसके लिअे अपनी तत्परता की गहराई, यही उन सेवकों का सच्चा लक्षण है।

गांधी सेवा संघ जैसी संस्था की बुनियाद में असल तत्त्व यही है। वह निर्वाचित प्रतिनिधियों में से बना हुआ अेक दल नहीं है। किन्तु स्वयंसेवकों का संघ है। प्रजाकीय चुनाव से संघ का कोई संबंध नहीं है।

संघ के कितने सदस्य प्रजाकीय चुनावों में सफलतापूर्वक खडे किये जा सकते हैं इससे संघ की अच्छाई का नाप नहीं मिलता। और यह भी नहीं कह सकते कि अैसा व्यक्ति संघ के सदस्य बनने की आवश्यक शर्तें पूरी करता है।

जिन सिद्धान्तों पर चुनाव से बनी हुई संस्थाओं का संगठन किया जाता है, उससे भिन्न सिद्धान्तों पर ही हमारा संगठन हो सकता है। उदाहरणार्थ:–

निर्वाचित संस्थाओं में उम्मीदवार मतदारों के सामने जाता है, और मत की भिक्षा मांगता है। वह कहता है कि "दूसरे उम्मीदवारों से मैं आपका काम करने के लिअे विशेष योग्य हूं। ये मेरी पिछली सेवायें हैं, ये मेरी आगे होनेवाली सेवायें हैं"।

स्वयंनियुक्त संस्था का सदस्य इस तरह कभी नहीं कहता। अगर मतदारों की तरफ से अनुरोध हो तो वह खड़ा होने को राजी भले ही हो जावे, लेकिन स्वयं खडे होने की इच्छा प्रकट नहीं करता। उसे चुनने की जिम्मेदारी स्वयं मतदारों को उठानी पडती है। इसलिअे अगर वह खडा किया जाय तो उसका सफल होना निश्चित ही होना चाहिअे। असाधारण तथा बहुत ही अपवादरूप स्थिति में ही उसका कोई हरीफ हो सकता है। वह हरीफ दूसरे ही मूलभूत सिद्धान्त में माननेवाला होगा। अेक ही सिद्धान्त में मानते हुअे भी अगर कोई उसका हरीफ होना चाहे, तो उसे अपनी उम्मीदवारी वापस ले लेने के लिअे अितना कारण काफी समझ लेना चाहिअे। अगर कुछ मित्र उसपर दबाव भी डालें, तो भी उसका खडे होने से इन्कार करना कभी गलत न होगा। इस तरह अेक 'गांधीवादी' उम्मीदवार के विरुद्ध गांधी सेवा संघ के सदस्य का खडा होना, मेरी दृष्टि में, संघ का संगठन नहीं, बल्कि भंजन है। फिर संघ के ही दो सदस्यों के बीच स्पर्धा होना तो बिलकुल ही सिद्धान्त-नाश है।

साधारण उम्मीदवार मतदारों को कुछ न कुछ लालच बताते हैं। संघ का सदस्य, अगर कुछ बतायेगा, तो अपनी शर्तें पेश करेगा। 'अगर आप मुझे अपना प्रतिनिधि बनाना चाहते हैं, तो आपको यह काम करना होगा और वह काम छोड देना होगा। अमुक बर्ताव में बरदाश्त नहीं कर सकूंगा,' आदि। उसका अैसा करना अपनी महत्ता दिखाने के लिअे नहीं है। लेकिन, इसलिअे कि अगर लोग उसे अपनी मूक-सेवा के मार्ग से छुड़ा कर अेक निर्वाचित संस्था के काम में डालना चाहते हैं, तो जिस हेतु से उसने मूक-सेवा का मार्ग लिया है, उसे उस संस्था द्वारा भी वह ज्यादा सफल करना चाहेगा। प्रतिनिधि होने की सम्मति देने का उसके लिअे और कौनसा कारण हो सकता है?

हमारे लिअे देश की उन्नति का नाप मिल के कपडे की अगह खादी की स्थापना है, उस खादी द्वारा जीवनवेतन के सिद्धान्त की स्थापना है, देहातों को उद्योगों से भर देना है, हरिजनों को दूसरे वर्णों की बराबरी में लाना है, धर्म को सांप्रदायिक संकीर्णता से उठा कर सर्व धर्म के लोगों में भ्रातृभाव पैदा करना है, सब लोगों में सत्य और अहिंसा का संगठन करना है। स्वराज्यप्राप्ति के लिअे यही हमारा साधन है। और प्राप्ति के बाद इसी काम को

पूरा करना हमारा ध्येय है। धारासभाओं में, स्थानिक संस्थाओं में, तथा कौंग्रेस कमिटियों में जाने के लिये हमारी तभी सम्मति हो सकती है, जब कि जो हमें वहां भेजना चाहें, वे उत्साह से इन कामों में सहयोग देना मंजूर करें, और हम यह देखें कि यह उत्साह केवल सदिच्छा नहीं है, बल्कि उसके अनुसार कुछ काम होने का संभव भी है।

इस तरीके से अगर हम तेजकदम से चल सकें तो हमारे लिये यह अच्छी चीज है। जब यह मुमकिन न हो तो हम झूठी बहुमति की लालच में न फँस जायें। वह दिखाऊ प्रगति हमारा नाश ही करायेगी। तब तक हमारे लिअे अपना कदम मूक-सेवा और स्वयं अपनी उन्नति के मार्ग में ही रखना ठीक होगा।

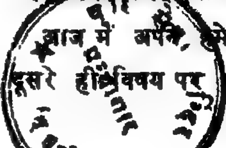
लोकमान्य के चरणों में श्रद्धांजलि

[विनोबा का अेक प्रवचन]

फूलों का उपयोग

अेक बात में प्रारम्भ में ही आपलोगों से कहना चाहता हूं। मेरा यहां जो स्वागत हो रहा है वह प्रेम से ही हो रहा है अिसमें कोअी शक नहीं। ये फूलों की मालाये वगैरह पहनाने में प्रेम तो है ही। लेकिन ये फूलों की मालायें जब मेरे शरीर पर पहनायी जाती हैं तो मुझे मरणप्राय: दुःख होता है। मृत्यु के समान दुःख होता है। फूलों को दूर से ही देखने में मुझे आनंद आता है। वे जहां पेडों पर लगे हुअे होते हैं वहां वे भगवान को चढ़ाये हुअे ही हैं। अुनको वहां से तोड कर पत्थर के भगवान पर चढाने में मुझे संकोच होता है। अेक भगवान के सिर पर से अुतार कर दूसरे भगवान के सिर पर चढाने से क्या मतलब? लेकिन फिर भी देवता को कोअी फूल चढावे तो में सहन कर लूंगा। में खुद अुन्हें तोड कर तो नहीं चढाअूंगा। लेकिन दूसरा कोअी झाड से तोड कर देवता को चढावे तो सहन कर लूंगा। परंतु जब फूल की मालायें मनुष्य को, और खास कर मुझे, पहनायी जाती हैं, तब तो मृत्यु से भी अधिक दुःख होता है। बहुत ही संकोच होता है। मुझे आत्मपरीक्षण की आदत है। में अपने सारे दोष जानता हूं। अिसीलिअे फूलों का स्पर्श होते ही मुझे मृत्यु के समान दुःख होता है। में अगर किसीका आदरसत्कार करना चाहूं, तो अुसके सामने चाहे अपना सिर फोड लूंगा, अपने चमडे के जूते बना कर अुसे पहनाअूंगा, या दूसरा कोअी तरीका खोज लूंगा, परंतु फूल तोड कर नहीं लाअूंगा। अिसके लिअे अगर मनुष्य फूलों को छूअे ही नहीं तो बहुत अच्छा हो! अस्तु।

आज का नैमित्तिक धर्म



आज में अपने, हमेशा के विषय छोड कर दूसरे ही विषय पर बोलने वाला हूं। खादी,

हरिजनसेवा और गीता, मेरे हमेशा के विषय हैं। लेकिन नित्यधर्म नैमित्तिकधर्म से बाधित होता है। आज नैमित्तिकधर्मपालन का दिन है। अैसे अवसर पर नित्यधर्म पीछे रह जाता है और नैमित्तिकधर्म अग्रस्थान ले लेता है। अिस नैमित्तिकधर्म में भी खादी, हरिजनसेवा, गीता, तो आयेगी ही। क्योंकि जीवन के बिलकुल अलग अलग टुकडे किये ही नहीं जा सकते। आज का नैमित्तिक धर्म लोकमान्य का पुण्यस्मरण है। आज तिलक की पुण्यतिथि है।

१९२० में तिलक शरीररूप से हमारे अन्दर नहीं रहे। अुस समय में बम्बअी गया था। चार पांच दिन पहले ही गया था। परंतु डॉक्टर ने कहा 'हाल कोअी डर नहीं है'। अिसलिअे में साबरमती को अेक काम के लिअे जाने को रवाना हुआ। मैं आधा रास्ता भी पार नहीं कर पाया होअूंगा जब कि मुझे लोकमान्य की मृत्यु का समाचार मिला। मेरे अत्यंत निकट आत्मीय, सहयोगी और मित्र की मृत्यु का जैसा परिणाम हो सकता है वैसा ही लोकमान्य के निधन का हुआ। मुझपर बहुत गहरा परिणाम हुआ। अुस दिन से जीवन में कुछ नयापनसा आगया। मुझे अैसा लगा मानों कोअी बहुत ही प्रेम करनेवाला कुटुम्बीय चल बसा हो। अिसमें बिलकुल अत्युक्ति नहीं है। आज अितने वर्ष हो गये। आज फिर अुनका स्मरण करना है। लोकमान्य के चरणों में अपनी तुच्छ श्रद्धाञ्जलि, अपनी गहरी श्रद्धा के कारण मैं चढा रहा हूं।

नाममहिमा

तिलक के विषय में जब मैं कुछ कहने लगता हूं तो मेरे लिअे मुंह से शब्द निकालना मुश्किल हो जाता है। गद्गद् हो अुठता हूं। साधुसंतों का नाम लेते ही मेरी जो स्थिति होती है वही अिस नाम से भी होती है। मैं अपने चित्त का भाव प्रकट ही नहीं कर सकता। अुत्कट भावना शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। गीता का नाम लेते ही मेरी यह स्थिति हो जाती है। मानों स्फूर्ति का संचार होता है। भावनाओं की प्रचंड बाढ आती है। वृत्ति अुमडने लगती है। परंतु यह बडप्पन मेरा नहीं है। बडप्पन गीता का है। वही हाल तिलक के नाम का है। मैं तुलना नहीं करता। क्यों कि तुलना में हमेशा दोष आ जाते हैं। परंतु जिनके नामस्मरण में अैसी स्फूर्ति देने की शक्ति है अुन्हींमें से तिलक भी अेक हैं। मानों अुनके स्मरण मे ही शक्ति संचित है। रामनाम को ही देखिये। कितने जड जीवों का अुस नाम के स्मरण से अुद्धार हो गया अिसकी गिनती कौन करेगा? अनेक अन्दोलन, अनेक ग्रन्थ, अितिहास, पुराण – अिनमे से किसी भी चीज का जितना परिणाम नहीं हुआ होगा अुतना रामनाम का हुआ है और हो रहा है। राष्ट्रों का अुदय हुआ और अस्त हुआ। राज्यों का विकास हुआ और लय हुआ। किन्तु रामनाम की सत्ता अबाधितरूप से विद्यमान है। तुलसीदासजी ने कहा है, ('कहहुं नाम बड राम तें')। " हे राम, मुझे तुझसे तेरा नाम ही अधिक प्रिय है। तेरा रूप अुस समय के अयोध्यावासियों ने और अुस जमाने के नर-वानरों ने देखा। हमारे पास तेरा रूप नहीं है। लेकिन तेरा नाम है। जो महिमा तेरे नाम में है वह तेरे

रूप में नहीं है। हे राम, तूने शबरी, जटायु आदि का अुद्धार किया। लेकिन वे तो सुसेवक थे। अिसमें तेरा बड़प्पन कुछ नहीं। परंतु तेरे नाम ने अनेक खलजनों का अुद्धार किया यह वेद कहते हैं। ("शबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ। नाम अुधारे अमित खल वेद विदित गुण गाथ"।) तुलसीदासजी कहते हैं, राम की महिमा गानेवाले मूढ हैं। राम ने तो बडेबडे सेवकों का ही अुद्धार किया। परंतु नाम ने? नाम ने असंख्य जडमूढों का अुद्धार किया। शबरी तो असामान्य स्त्री थी। अुसका वैराग्य और अुसकी भक्ति कितनी महान! वैसा ही वह जटायु था। अिन श्रेष्ठों का, अिन भक्तजनों का, राम ने अुद्धार किया। कौन बडी बात हुअी? परंतु रामनाम तो दुर्जनों को भी अुबारता है। और दर असल मुझे अिसका अनुभव हो रहा है। मुझसे बडा खल दूसरा कौन हो सकता है? मेरे समान दुष्ट मैं ही हूं। मुझे अिस विषय में दूसरों का मत जानने की जरूरत नहीं। नाम से अुद्धार होता है। जिन्होंने पवित्र कर्म किये, अपना शरीर परमार्थ में खपाया, अुनके नाम में अैसी सामर्थ्य आ जाती है।

मनुष्य की विशेषता

अिसी में मनुष्य की विशेषता है। आहार-विहारादि दूसरी सारी बातों में मनुष्य और पशु समान ही हैं। परंतु जिस प्रकार मनुष्य पशु, या पशुसे भी नीच, बन सकता है अुसी प्रकार पराक्रम से, पौरुष से, वह परमात्मा के निकट भी जा सकता है। मनुष्य में ये दोनों शक्तियां हैं। खूब मांस और अंडे वगैरह खा कर दूसरे प्राणियों को मार कर खा कर वह शेर के समान हृष्टपुष्ट भी बन सकता है; या दूसरों के लिअे अपना शरीर भी फेंक सकता है। मनुष्य अपने लिअे अनेकों का घात करें पशु बन सकता है; या अनेकों के लिअे अपना बलिदान कर पवित्रनामा भी बन सकता है। पशु की शक्ति मर्यादित है। अुसकी बुराअी की भी मर्यादा है। लेकिन मनुष्य के पतन की, या अूपर अुठने की भी, कोअी मर्यादा नहीं है। वह पशु से भी नीचे गिर सकता है और अितना अूपर चढ सकता है कि देवता ही बन जाता है। जो गिरता है वही चढ भी सकता है। पशु अधिक गिर भी नहीं सकता अिसलिअे चढ भी नहीं सकता। मनुष्य दोनों बातों में पराकाष्ठा कर सकता है। जिन लोगों ने अपने जीवन सारे संसार के लिअे अर्पण कर दिये अुनके नाम में बहुत बडी पवित्रता आ जाती है। अुनका नाम ही तारे के समान हमारे सम्मुख रहता है। हम रोज तर्पण करते हुअे कहते हैं, 'वसिष्ठं तर्पयामि', 'भरद्वाजं तर्पयामि', 'अत्रिं तर्पयामि' अिन ऋषियों के बारे में हम क्या जानते हैं? क्या सातआठ सौ पन्नों में अुनकी जीवनी लिख सकते हैं? अेकाध सफहा भी लिख नहीं सकेंगे। लेकिन अुनकी जीवनी न हो तो भी वसिष्ठ यह नाम ही काफी है। यह नाम ही तारक है। और कुछ शेष रहे या न रहे; केवल नाम ही तारे के समान मार्गदर्शक होगा। प्रकाश देगा। मेरी अैसी श्रद्धा है कि सैकडों वर्षों के बाद तिलक का नाम भी अैसा ही पवित्र माना जायगा। अुनका जीवनचरित्र वगैरह बहुतसा नहीं रहेगा। लेकिन अितिहास के आकाश

में अुनका नाम तारे के समान चमकता रहेगा।

' चरित्र ' और ' चारित्र्य ' का भेद

हमें महापुरुषों के चारित्र्य का अनुसरण करना चाहिअे न कि अुनके चरित्र का। दरअसल महत्त्व चारित्र्य का है। शिवाजी महाराज ने सौ दोसौ किले बनवा कर स्वराज्य प्राप्त किया। अिसलिअे आज यह नहीं समझना चाहिअे कि अुसी तरह किले बनाने से स्वराज्य प्राप्त होगा। किन्तु जिस वृत्ति से अुन्होंने अपना जीवन बिताया, और लडाअी की, वह वृत्ति, वे गुण, हमें चाहिअे। जिस वृत्ति से शिवाजी ने काम किया अुस वृत्ति से हम आज भी स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। अिसी लिअे मैंने कहा कि अुस समय का रूप हमारे काम का नहीं है। अुसका भीतरी रहस्य अुपयोगी है। चरित्र अुपयोगी नहीं है; चारित्र्य अुपयोगी है। कर्तव्य करते हुअे अुनकी जो वृत्ति थी वह हमारे लिअे आवश्यक है। अुनके गुणों का स्मरण आवश्यक है। अिसी लिअे तो हिन्दुओं ने चरित्र का बोझ छोड कर नामस्मरण पर जोर दिया। अितने महान व्यक्तियों का सारा चरित्र दिमाग में रखने की कोशिश करें तो अुसीके मारे दम घुटने लगेगा। अिसी लिअे केवल गुणों का स्मरण करना है, चरित्र का अनुकरण नहीं।

अेक मजेदार किस्सा

अेक कहानी मशहूर है। कुछ लडकों ने ' साहसी मुसाफरी ' नाम की अेक पुस्तक पढी। फौरन यह तय किया कि जैसा अुस पुस्तक में लिखा है वैसा करें। अुस पुस्तक में बीसपच्चीस युवक थे। ये भी जहांतहां से बीस पच्चीस अिकट्ठे हुअे। पुस्तक में लिखा था कि वे अेक जंगल में गये। फिर क्या था? ये भी अेक जंगल में पहुंचे। पुस्तक में लिखा था कि अुन लडकों को जंगल में अेक शेर मिला। अब ये बेचारे शेर कहां से लायें? आखिर, अुनमें जो अेक बुद्धिमान लडका था वह कहने लगा, 'अरे भअी, हमने तो शुरू से आखिर तक गलती ही की है। हम अुन लडकों की नकल अुतारना चाहते हैं। लेकिन सब कुछ अुलटा ही हो रहा है। वे लडके अैसी अेकाध पुस्तक पढ कर थोडे ही निकले थे मुसाफरी करने? हमारी तो शुरू में ही गलती हुअी।

वास्तविक श्राद्ध

तात्पर्य यह कि हम चरित्र की सारी घटनाओं का अनुकरण नहीं कर सकते। चरित्र का तो विस्मरण चाहिअे। केवल गुणों का स्मरण पर्याप्त है। अितिहास तो भूलने के लिअे ही है और लोग अुसे भूल भी जाते हैं। लेकिन लडकों के ध्यान में वह सब का सब नहीं रहता अिसके लिअे अुन्हें फिजूल मार पडती है। अितिहास से सिर्फ गुण ही लेने चाहिअे। जो गुण हैं अुन्हें कभी भूलना नहीं चाहिअे। श्रद्धापूर्वक याद रखना चाहिअे। पूर्वजों के गुणों का श्रद्धापूर्वक स्मरण ही श्राद्ध है। यह श्राद्ध पावन होता है। आज का श्राद्ध मुझे पावन प्रतीत होता है। अुसी प्रकार आपको भी अवश्य होता होगा।

तिलक का गुणस्मरण

तिलक का पहला गुण कौनसा था? तिलक जातितः ब्राह्मण थे। लेकिन जो

ब्राह्मण नहीं हैं वे भी अुनका स्मरण कर रहे हैं। तिलक महाराष्ट्र के मराठे थे। लेकिन पंजाब के पंजाबी और बंगाल के बंगाली अुन्हें पूज्य मानते हैं। हिन्दुस्थान तिलक का ब्राह्मणत्व और अुनका मराठापन—सब कुछ भूल गया है। यह चमत्कार है। अिसमें रहस्य है। अिसमें दोहरा रहस्य है। अिस चमत्कार में तिलक का गुण तो है ही। लेकिन हमारे पूर्वजों की कमाअी का भी गुण है। जनता का अेक गुण और तिलक का अेक गुण—अिन दोनों के प्रभाव से यह चमत्कार हुआ कि ब्राह्मण और महाराष्ट्रीय तिलक सारे भारत में सभी जातियों द्वारा पूजे जाते हैं। दोनों के गुण की ओर हमें ध्यान देना चाहिअे।

राष्ट्रीय रामलीला में मैं क्या बनूं?

अिस अवसर पर मुझे अहल्या की कथा याद आ रही है। रामायण में मुझे अहल्या की कथा बहुत सुहाती है। राम का चरित्र ही श्रेष्ठ है। और अुसमें यह कथा बहुत ही प्यारी है। आज भी यह बात नहीं कि हमारे अन्दर राम (सत्त्व) न रहा हो। आज भी राम है। रामजन्म हो चुका है। चाहे किसी को अुसका पता हो या न हो। परंतु आज राष्ट्र में राम है। क्यों कि अन्यथा यह जो थोडा बहुत तेज का संचार देख पडता वह नहीं दिखायी देता। गहराअी से देखें तो आज भी राम का अवतार हो चुका है। यह जो रामलीला हो रही है अिसमें मैं कौनसा हिस्सा लूं, किस पात्र का अभिनय करूं, यह मैं सोचने लगता हूं। राम की अिस लीला में मैं कौन बनूं? क्या लक्ष्मण बनूं? नहीं, नहीं। लक्ष्मण की वह जागृति, वह भक्ति, कहां से लाअूं? तो क्या भरत बनूं? नहीं, भरत की कर्तव्यदक्षता, जिम्मेवारी का बोध, अुसकी दयालुता और त्याग कहां से लाअूं? हनुमान का तो नाम भी लेने की हिम्मत नहीं। अुसकी वह सेवा, वह निष्ठा, वह शक्ति कहां से लाअूं? हनुमान तो मानों राम का हृदय ही है। तो फिर गांठ में पुण्य नहीं है, अिसलिअे क्या रावण बनूं? अूंऽहूं। रावण भी नहीं बन सकता। रावण की अुत्कटता, महत्त्व, महत्त्वाकांक्षा, मेरे पास कहां है? फिर मैं कौनसा स्वांग लूं? किस पात्र का अभिनय करूं? क्या अैसा कोअी पात्र नहीं है जो मैं बन सकूं? जटायु? शबरी?—ये तो सुसेवक थे। अन्त में मुझे अहल्या नजर आयी। अहल्या तो पत्थर बन कर बैठी थी।

अहल्या का आख्यान

सोचा मैं अहल्या का अभिनय करूं। जड पत्थर बन कर बैठूं। अितने में वह अहल्या बोल अुठी, "सारी रामायण में सब से तुच्छ जडमूढ पात्र क्या मैं ही ठहरी? अरे बुद्धिमान, क्या अहल्या का पात्र सब से निकृष्ट है? अरे, मेरी क्या कोअी योग्यता ही नहीं? अरे, राम की यात्रा में तो अयोध्या से ले कर रामेश्वर तक हजारों पत्थर थे, अुनका क्यों नहीं अुद्धार हुआ? मैं कोअी नालायक पत्थर नहीं हूं। मैं भी गुणी पत्थर हूं।" अहल्या की बात मुझे जंच गयी। परंतु अहल्या के पत्थर में गुण थे तो भी यह सारी महिमा केवल अुस पत्थर की नहीं। अुसी प्रकार सारी महिमा राम के चरणों की भी नहीं। अहल्या के समान पत्थर

और राम के चरणों जैसे चरण—दोनों का संयोग चाहिये। राम के चरणों से दूसरे पत्थरों का अुद्धार नहीं हो सका। और न अहल्या के पत्थर का ही दूसरे किसी के चरणों से अुद्धार हुआ।

अहल्या-राम-न्याय

अिसे मैं अहल्या-राम-न्याय कहता हूं। दोनों के मिलाप से काम होता है। यही न्याय तिलक के दृष्टान्त पर भी घटित होता है। तिलक का ब्राह्मणत्व, महाराष्ट्रीयत्व आदि सब भूल कर सारा हिन्दुस्थान अुनकी पूज्य स्मृति मनाता है। अिस चमत्कार में तिलक के गुण और जनता के गुण, दोनों का स्थान है। अिस चमत्कार के दोनों कारण हैं। कुछ गुण तिलक का है और कुछ अुन्हें माननेवाली आम जनता का। हम अिन गुणों का जरा पृथक्करण करें।

तिलक का गुण

तिलक का गुण यह था कि अुन्होंने जो कुछ किया अुसमें सारे भारतवर्ष का विचार किया। तिलक के फूल बम्बअी में गिरे अिसलिअे वहां अुनकी मूर्तियां होंगी। वे पूना में रहे अिसलिअे वहां अुनके स्मारकमन्दिर होंगे। अुन्होंने मराठी में लिखा अिसलिअे मराठी भाषा में अुनके स्मारक होंगे। लेकिन तिलक ने जहां कहीं जो कुछ किया,—चाहे जिस गांव में, चाहे जिस भाषा में क्यों न किया हो—वह सब भारतवर्ष के लिअे किया। अुन्हें यह अभिमान नहीं था कि मैं ब्राह्मण हूं, मैं महाराष्ट्र का हूं। अुनमें अलगपन की, भेद की, भावना नहीं थी। वे महाराष्ट्र में थे तो भी अुन्होंने सारे भारतवर्ष का विचार किया। जिन अर्वाचीन महाराष्ट्रीय विभूतियों ने सारे भारतवर्ष का विचार किया अुनमें से अेक तिलक थे। और दूसरे जो मेरी दृष्टि के सामने आते हैं, वे थे महर्षि न्यायमूर्ति रानडे। तिलक ने महाराष्ट्र को अपनी जेब में रक्खा और सारे हिन्दुस्थान के लिअे लडते रहे। "हिन्दुस्थान के हित में मेरे महाराष्ट्र का भी हित है, अिसीलिअे पूना का हित है, पूने में रहनेवाले मेरे परिवार का हित है और परिवार में रहनेवाले मेरा भी हित है। हिन्दुस्थान के हित का विचार करने से अुसी में महाराष्ट्र, पूना, मेरा परिवार और मैं, सब के हित का विचार आ जाता है" यह तत्त्व अुन्होंने जान लिया था। और अुसीके अनुसार अुन्होंने काम किया। अैसी विशाल अुनकी व्याख्या थी। जो सच्ची सेवा करना चाहता है अुसे वह सेवा किसी मर्यादित स्थान में ही करनी पडेगी। लेकिन अुस मर्यादित स्थान में रह कर की जानेवाली सेवा के पीछे जो वृत्ति रहेगी वह विशाल, व्यापक और अमर्यादित होनी चाहिये।

मर्यादित क्षेत्र और व्यापक सेवा

शालिग्राम मर्यादित है। लेकिन अुसमें मैं जिस भगवान के दर्शन करता हूं वह सर्वब्रह्मांडव्यापी, स्थिरचर, जडचेतन, सब में निवास करनेवाला ही है। तभी तो वह वास्तविक पूजा हो सकती है। 'जलेस्थले तथा काष्ठे। विष्णुःपर्वतमूर्धनि ॥' अुस त्रिभुवनव्यापक विष्णु को यदि वह पुजारी शालिग्राम में नहीं देखेगा तो अुसकी पूजा महज पागलपन होगी। सेवा करने में भी खूबी है, रहस्य है। अपने गांव में रह कर

भी मैं विश्वेश्वर की सेवा कर सकता हूं। दूसरे को न लूटते हुअे जो सेवा की जाती है वह अनमोल हो सकती है; होती भी है।

कुछ दृष्टान्त

तुकाराम ने अपना देहू नामक गांव नहीं छोडा। रामदास दस गांवों में घूमे और सेवा करते रहे। फिर भी दोनों की सेवा का फल अेक है, अनन्त है। यदि बुद्धि व्यापक हो तो अल्प कर्म में से भी अपार कीमत मिलती है। सुदामदेव मुट्ठीभर ही तंदुल ले कर गये। लेकिन अुन तंदुलों में प्रचंड शक्ति थी। सुदामदेव की बुद्धि व्यापक थी। बहुत बडा कर्म करने पर भी कुछ अभागों को बहुत थोडा फल मिलता है। लेकिन सुदामदेव छोटेसे कर्म से बहुत बड़ा फल प्राप्त कर सके। जिसकी बुद्धि शुद्ध, निष्पाप, पवित्र तथा समत्वयुक्त है, भक्तिमय और प्रेममय है, वह छोटीसी भी क्रिया करे तो भी अुसका फल महान होता है। मूल्य बहुत बड़ा होता है। यह अेक महान आध्यात्मिक सिद्धान्त है। मां का पत्र दो ही शब्दों का क्यों न हो। विलक्षण प्रभाव डालता है। वह प्रेम की स्याही से पवित्रता के स्वच्छ कागज़ पर लिखा होता है। दूसरा अेकाध पोथा कितने ही सफेद कागज पर क्यों न लिखा हुआ हो, यदि अुसके मूल में शुभ्र बुद्धि न हो, निर्मल बुद्धि न हो, जो कुछ लिखा गया है वह प्रेम में ढला न हो, तो वह सारा पोथा बेकार है।

व्यापकता की मुहर

परमात्मा के यहां 'कितनी सेवा,' यह सवाल नहीं है। 'कैसी सेवा,' यह सवाल है। तिलक अत्यन्त बुद्धिमान्, विद्वान् नाना शास्त्रों के पंडित थे। अिसलिअे अुनकी सेवा अनेकांगी और बहुत बडी है। परंतु तिलक ने जितनी कीमती सेवा की अुतनी ही कीमती सेवा अेक देहाती सेवक भी कर सकता है। तिलक की सेवा विपुल और बव्हंगी थी। तो भी अुसका मूल्य और अेक तुच्छ सेवक की सेवा का मूल्य बराबर हो सकता है। अेक गाडी भर के जवार रास्ते से जा रही हो। लेकिन अुसकी कीमत में अपनी छोटीसी जेब में रख सकता हूं। अेक दस हजार का नोट अपने खीसे में रख सकता हूं। अुसपर सरकारी मुहर भरी लगी हो। तुम्हारी सेवा पर व्यापकता की मुहर लगी होनी चाहिअे। अगर कोअी बहुत सेवा करे परंतु व्यापक दृष्टि और वृत्ति से न करे, तो अुसकी कीमत व्यापक दृष्टि से की हुअी छोटीसी सेवा की अपेक्षा कम ही मानी जायगी। व्यापक वृत्ति से की हुअी अल्प सेवा अनमोल हो जाती है यह अुसकी खूबी है। आप और मैं सब कोअी सेवा कर सकें अिसीलिअे परमात्मा की यह योजना है। चाहे जहां चाहे जो कुछ भी कीजिये, लेकिन संकुचित दृष्टि से न कीजिये। अुसमें व्यापकता भर दीजिये। यह व्यापकता आज के कार्यकर्ताओं में कम पायी जाती है। कुशल कार्यकर्ता आज संकुचित दृष्टि से काम करते हुअे देख पडते हैं।

तिलक की व्यापकता

तिलक की दृष्टि व्यापक थी अिसीलिअे अुनके चारित्र्य में मिठास और आनन्द है।

हिन्दुस्थान के ही नहीं बरन् संसार के किसी भी समाज के वास्तविक हित का विरोध न करते हुअे चाहे जहां सेवा कीजिये। चाहे वह अेक देहात की ही सेवा क्यों न हो, वह अनमोल है। परंतु यदि बुद्धि व्यापक हो तो। अपनी दृष्टि व्यापक बनाअिये। फिर देखिये आपके कर्मों में कैसी स्फूर्ति का संचार होता है! कैसी बिजली का संचार होता है! तिलक में यह व्यापकता थी। 'मैं भारतीय-हूं,' यह शुरू से ही अुनकी वृत्ति रही। बंगाल में आन्दोलन शुरू हुआ। अुन्होंने दौड़कर अुसकी मदद की। बंगाल को साथ देने के लिअे महाराष्ट्र को खड़ा किया। स्वदेशी का डंका बजवाया। 'जब बंगाल लड़ाअी के मैदान में खड़ा है तो हमें भी जाना ही चाहिअे। जो बंगाल का दुःख है वह महाराष्ट्र का भी दुःख है'। अैसी व्यापकता, सार्वराष्ट्रीयता तिलक में थी। अिसीलिअे पूना के निवासी हो कर भी वे हिन्दुस्थान के प्राण बन गये। सारे देश के प्रिय बने। तिलक सारे भारतवर्ष के लिअे पूजनीय हुअे अिसका अेक कारण यह था कि अुनकी दृष्टि सार्वराष्ट्रीय थी, व्यापक थी।

जनता का गुण

लेकिन अिसका अेक दूसरा भी कारण था। वह था जनता की विशेषता। जनता का यह गुण कार्यकर्ताओं में भी है। क्योंकि वे भी तो जनता के ही हैं। लेकिन अुनको खुद को अिस बात का पता नहीं है। तिलक के गुण के साथ साथ जनता के गुण का स्मरण भी करना चाहिअे। क्योंकि तिलक अपने आप को जनता के चरणों की धूल समझते थे। जनता के दोष, जनता की दुर्बलता, जनता की त्रुटियां, सब कुछ वे अपनी ही समझते थे। वे जनता से अेकरूप हो गये थे। अिसलिअे जनता के गुणों का स्मरण तिलक के गुणों का स्मरण ही है।

भारतीय राष्ट्रधर्म-हमारे पूर्वजों की देन

यह जो जनता का गुण है वह हमारा कमाया हुआ नहीं है। हमारे महान, पुण्यवान, विशालदृष्टि, पूर्वजों की वह देन है। यह गुण मानों हमने अपनी मां के दूध के साथ ही पिया है। अुन श्रेष्ठ पूर्वजों ने हमें यह सिखाया कि मनुष्य किस प्रान्त का या किस जाति का है यह देखने के बदले अितना ही देखो कि वह भला है कि नहीं? वह भारतीय है कि नहीं? अुन्होंने हमें यह सिखाया कि भारतवर्ष अेक राष्ट्र है। कअी लोग कहते हैं कि अंग्रेज यहां पर आये और अुन्होंने हमें देशाभिमान सिखाया। तब कहीं हम राष्ट्रीयता से परिचित हुअे। परंतु यह गलत है। अेक-राष्ट्रीयता की भावना अगर हमें किसीने सिखाअी हो तो वह हमारे पुण्यवान पूर्वजों ने। अुन्हींकी कृपा से यह अनूठी देन हमें प्राप्त हुअी है।

'दुर्लभं भारते जन्म'

हमारे राष्ट्रर्षि ने हमें यह सिखावन दी कि 'दुर्लभं भारते जन्म'। 'दुर्लभं वंगेषु जन्म', 'दुर्लभं गुर्जरेषु जन्म', अैसा अुन्होंने नहीं कहा। ऋषि ने तो यही कहा कि 'दुर्लभं भारते जन्म'। काशी में गंगातट पर रहनेवाले को किस बात की तड़पन होती है? वह अिसके लिअे तड़पता है कि काशी की गंगा की बहंगी भर कर कब रामेश्वर को चढाअूं? मानों काशी

और रामेश्वर अुसके मकान का आंगन और पिछवाड़ा हो। दर असल तो काशी और रामेश्वर में पंद्रह सौ मील का फासला है। परंतु तुम्हें तुम्हारे श्रेष्ठ ऋषिओं ने अैसा वैभव दिया है कि तुम्हारा आंगन पंद्रह सौ मील का है। रामेश्वर में रहनेवाला अिसलिअे तड़पता है कि रामेश्वर के समुद्र का जल काशीविश्वेश्वर के मस्तक पर चढाअूं। वह रामेश्वर का समुद्रजल काशी तक ले जायगा। कावेरी या गोदा के जल में नहानेवाला भी 'जय गंग' 'हरगंगे' ही कहेगा। गंगा सिर्फ काशी में ही नहीं, यहां पर भी है। जिस बरतन में हम नहाने के लिअे पानी लेते हैं अुसे भी गंगाल (गंगालय) नाम दे दिया है। कैसी व्यापक और पवित्र भावना है यह ! यही भारतीय भावना है।

भारतीय राष्ट्रभावना

यह भावना आध्यात्मिक नहीं किन्तु राष्ट्रीय है। अध्यात्मिक मनुष्य 'दुर्लभं भारते जन्म,' नहीं कहेगा। वह कुछ और ही कहेगा। जैसे कि तुकाराम ने कहा 'आमुचा स्वदेश। भुवनत्रया मध्यें वास॥' ('स्वदेशो भुवनत्रयम्')। अुन्होंने आत्मा की मर्यादा को व्यापक किया। सारे दरवाजों, सारे किलों को तोड़ कर आत्मा को प्राप्त किया। तुकाराम के समान महापुरुषों ने—जो कि आध्यात्मिक रंग में रंगे हुअे थे—अपनी आत्मा को स्वैर संचार करने दिया। 'अणोरणीयान् महतो महीयान्,' अिस भावना से प्रेरित हो कर सारे भेदाभेदों को पार कर जो सर्वत्र चिन्मयता का दर्शन कर सके वे धन्य हैं। लोग भी समझ गये कि ये सारे विश्व के हैं। अिनकी कोअी सीमा नहीं है। परंतु 'दुर्लभं भारते जन्म' की जो कल्पना ऋषियों ने की वह आध्यात्मिक नहीं, राष्ट्रीय है।

वाल्मीकि में राष्ट्रभावना

वाल्मीकि ने अपनी रामायण के प्रारंभिक श्लोकों में राम का गुणवर्णन किया है। राम का गुणगान करते हुअे, राम कैसा था अिसका वे वर्णन करते हैं कि 'समुद्र अिव गांभीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव'। 'स्थिरता अूपरवाले हिमालय जैसी और गांभीर्य पैरों के निकटवाले समुद्र जैसा'। देखिये, कैसी विशाल अुपमा है। अेक सांस में हिमालय से ले कर कन्याकुमारी तक का दर्शन कराया। पांच मील अूंचा पर्वत और पांच मील गहरा सागर अेकदम दिखाये। तभी तो यह रामायण राष्ट्रीय हुअी। वाल्मीकि के रोम रोम में राष्ट्रीयत्व भरा हुआ था। अिसीलिअे वे सार्वराष्ट्रीय रामायण रच सके। अुनकी रामायण संस्कृत में है तो भी सब की आदरणीय है। वह जितनी महाराष्ट्र में प्रिय है अुतनी ही मद्रास की तरफ केरल में प्रिय है। श्लोक के अेक ही चरण में अुत्तर हिंदुस्थान और दक्षिण हिंदुस्थान का समावेश किया। विशाल और भव्य अुपमा ! यह हमें मिली हुअी देन है।

हमारे राष्ट्रधर्म की विशेषता

हमसे कोअी पूछे कि तुम कितने हो ? तो हम तुरन्त बोल अुठेंगे हम पैंतीस करोड़ बहनभाअी हैं। अंग्रेज से पूछो तो वह चार करोड़ बतलायेगा। फरासीसी सात करोड़ बतलायेगा। जर्मन छह करोड़ बतलायेगा। बेलजियन साठ लाख बतलायेगा। यूनानी

आध करोड बतलायेगा। और हम? पें-ती-स करोड!! अैसा फरक क्यों हुआ? हमने अिन पेंतीस करोड को अेक माना। अुन्होंने नहीं माना। सच पूछो तो जर्मनों की भाषा और फरासीसियों की भाषा ज्यादह विसदृश नहीं है। जैसी मराठी और गुजराती। यूरोप की भाषायें लगभग अेक-सी हैं। अुनका धर्म भी समान है। भिन्न भिन्न राष्ट्रों में परस्पर रोटीबेटीव्यवहार भी होता है। लेकिन फिर भी अुन्होंने यूरोप के अलग अलग टुकडे कर डाले। हिन्दुस्थान के प्रान्तों ने अपने को अलग अलग नहीं माना। यूरोप के लोगों ने मान लिया। हिन्दुस्थान भी तो रूस को छोड बाकी के यूरोप के बराबर अेक खंड (महाद्वीप) ही है। लेकिन हमने भारत को अेक खंड, यानी अनेक देशों का समुदाय, न मान कर भारतवर्ष के नाम से सारा अेक ही देश माना। अेक राष्ट्र माना।

यूरोप की भेदभक्ति

अुन अभागे यूरोपवासियों ने सारा यूरोप अेक नहीं माना। अुन्होंने यूरोप को अेक खंड (महाद्वीप) माना। अुसके छोटे छोटे टुकडे किये। अेक अेक टुकडे को अपना मान लिया और अेक दूसरे से घनघोर युद्ध किये। पिछले महासमर को ही ले लीजिये। लाखों लोग मरे। वे अेक दूसरे से लडे। लेकिन आपस में नहीं लडे। यह कसूर अुन्होंने नहीं किया। लेकिन हमने भारत को अेक राष्ट्र मान लिया। अिसलिअे हम आपस में लडे।

हमारा दोष भी भूषणभूत है

अंग्रेज या यूरोपीय अितिहासकार हमसे कहा करते हैं कि 'तुम आपस में लडते रहे। अंतस्थ कलह करते रहे।' आपस में लडना बुरा है, यह तो मैं भी मानता हूं। लेकिन यह दोष स्वीकार करते हुअे भी मुझे अिस आरोप पर अभिमान है। हम लडे, लेकिन आपस में। अिसका अर्थ यह हुआ कि हम अेक हैं यह बात अिन अितिहासकारों को भी मंजूर है। अुनके आक्षेप में ही यह स्वीकृति आ गयी है। कहा जाता है कि यूरोपीय राष्ट्र अेक दूसरे से लडे लेकिन अपने ही देश में आपस में नहीं लडे। लेकिन अिसमें कौनसी बडाअी है? अेक छोटेसे मानवसमुदाय को अपना राष्ट्र कह कर यह शेखी बताना कि हमारे अंदर अेकता है, आपस में फूट नहीं है, कौनसी बहादुरी है? मान लीजिये कि मैंने अपने राष्ट्र की 'मेरा राष्ट्र यानी मेरा शरीर' अितनी ही संकुचित व्याख्या बना ली; तो आपस में कभी युद्ध ही नहीं होगा। हां, मैं ही अपने मुंह में चटसे अेक जड दूं तो अलबत्ता लडाअी होगी। परंतु 'मैं ही मेरा राष्ट्र हूं' अैसी व्याख्या कर के मैं अपने भाअी से, मां से, किसी से भी लडूं, तो भी वह आपस की लडाअी नहीं होगी। क्यों कि मैंने तो अपने साढे तीन हाथ शरीर को ही अपना राष्ट्र माना है। सारांश, हम आपस में लडे यह अभियोग सही है। परंतु वह अभिमानास्पद भी है। क्यों कि अिस अभियोग में ही अभियोग लगानेवाले ने यह मान्य कर लिया है कि हम अेक हैं, हमारा अेक ही राष्ट्र है। यूरोप के अभागों ने अिस कल्पना का विनाश किया। हमें अुसकी शिक्षा दी गयी है। अितना ही नहीं, बल्कि वह हमारी रग रग में पैठ गयी है। हम पुराने जमाने में आपस में लडे। तो भी यह अेक-राष्ट्रीयता की भावना आज भी विद्यमान है। महाराष्ट्र

ने पंजाब पर, गुजरात और बंगाल पर, चढाअियां कीं। तो भी यह अेक-राष्ट्रीयता की, आत्मीयता की, भावना नष्ट नहीं हुअी।

जनताव्यापी भावना

जनता के अिस गुण की बदोलत तिलक सब प्रान्तों में प्रिय और पूज्य हुअे। तिलक-गांधी तो अलौकिक पुरुष हैं। सब प्रान्त अुन्हें पूजेंगे ही। परंतु राजगोपालाचार्य, जमनालालजी तो साधारण मनुष्य हैं। लेकिन अुनकी भी सारे प्रान्तों में तिष्ठा है। पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक अुनका आदर करते हैं। हमें अुसका पता भी भले ही न हो, लेकिन अेक-राष्ट्रीयता का यह महान गुण हमारे खून में ही घुल-मिल गया है। हमारे यहां अेक प्रान्त का नेता दूसरे प्रान्त में जाता है, लोगों के सामने अपने विचार रखता है। क्या यूरोप में यह कभी हो सकता है? जरा जाने दीजिये मुसोलिनी को रूस में फासिझम पर व्याख्यान देने। लोग अुसे पत्थर मार मार कर कुचल डालेंगे; या फांसी पर लटका देंगे। हिटलर और मुसोलिनी जब मिलते हैं तो कैसा जबरदस्त बन्दोबस्त किया जाता है। कैसी चुपचाप गुप्तरूप से मुलाकात होती है? मानों दो खूनी आदमी किसी साजिश के लिअे अेक दूसरे से मिल रहे हों। किले, परकोटे, दीवारें सब तरफ खडी कर के सारे यूरोप में द्वेष और मत्सर फैला दिया है अिन लोगों ने। परंतु हिन्दुस्थान में अैसी बात नहीं है। तिलक–गांधी को छोड़ दीजिये। ये अपूर्व आदमी हैं। किन्तु दूसरे साधारण लोगों का भी सर्वत्र आदर होता है। लोग अुनकी बातें ध्यान से सुनते हैं। अैसी यह राष्ट्रीय भावना ऋषियों ने हमें सिखायी है। समाज और जनता में सर्वत्र अिसका असर मौजूद है। अबोधरूप से वह हमारी नसनस में है।

तिलक की जनता से अेकरूपता

हमें अिस गुण का पता नहीं था। आअिये, अब ज्ञानपूर्वक हम अुससे परिचय कर लें। आज तिलक का स्मरण सर्वत्र किया जायगा। अुनके ब्राम्हण होते हुअे भी, महाराष्ट्रीय होते हुअे भी, सब जन सर्वत्र अुनकी पूजा करेंगे। क्यों कि तिलक की दृष्टि व्यापक थी। वे सारे भारतवर्ष का विचार करते थे। वे सारे हिन्दुस्थान से अेकरूप हो गये थे। यह तिलक की विशेषता है। भारत की जनता भी प्रान्ताभिमान आदि का खयाल न करते हुअे गुणों को पहचानती है। यह भारतीय जनता का गुण है। अिन दोनों के गुणों का यह चमत्कार है कि तिलक का सर्वत्र सब लोग स्मरण कर रहे हैं। अेक ही आम की गुठली से पेड़, शाखा, मौर, आम पैदा होते हैं; अुसी प्रकार अेक ही भारत माता के बाहयतः जुदे जुदे पुत्र दिखायी देते हैं। कोअी कोधी, कोअी स्नेहवान्। फिर भी मीठे और मुलायम आम जिस गुठली से पैदा होते हैं अुसीसे झाड की पींड़ भी पैदा होती है। अुसी तरह हम अूपर से कितने ही भिन्न क्यों न दिखायी दें, तो भी अेक ही भारतमाता की संतान हैं यह कदापि नहीं भूलना चाहिअे। यह ध्यान में रख कर प्रेमभाव बढाते हुअे सेवकों को सेवा के लिअे तैयार होना चाहिअे। तिलक ने अैसी ही सेवा की। आशा है आप भी करेंगे।

(मराठी से अनूदित)

प्रश्नोत्तरी

'ळ' 'ड' और 'ळ'

अेक 'सर्वोदयमित्र' पूछते हैं:—

"प्रश्न—हिन्दी में 'ळ' नहीं है। अितना ही नहीं अधिकतर हिन्दी प्रान्त के लोग अुसका अुच्चारण भी नहीं कर सकते। 'सर्वोदय' देखने से शंका होती है कि आप कअी बार 'ळ' लिखने का आग्रह रखते हैं। अुदाहरणार्थ, 'बाळुभाअी' जैसे शब्द में। क्या यह योग्य है? अगर वैसा हो तो, अुदाहरणार्थ 'वाला' शब्द गुजराती में 'वाळा' लिखा जाता है, तो क्या वैसे शब्द मराठी और हिन्दी में भी वैसे ही लिखने चाहिअें? अुदा० 'मशरूवाळा', 'वीरावाळा' आदि। मेरा खयाल है कि 'ल-ळ योरभेद' समझ कर जहां पर अितर भाषाओं में 'ळ' लिखा जाता है वहां हिन्दी में 'ल' कर देना चाहिअे। अगर मेरी राय में भूल हो तो बताअियेगा"।

उत्तर—अिस प्रश्न का जवाब देने के पहले प्राश्निक महोदय को अनेक बधाअियां देनी चाहिअें। भाषाशुद्धि, लेखनशुद्धि, अुच्चारण-शुद्धि, अिन बातों पर अुतना ही ध्यान देना चाहिअे जितना चारित्र्यशुद्धि के लिये आवश्यक माना जाता है। अंग्रेज लोग अपनी भाषा, शब्दों के हिज्जे, शब्दों के अवयव पर देने के आघात, मुहावरे, शिष्टाचार आदि छोटीमोटी बातों पर जो ध्यान देते हैं अुसपर से अुनकी भाषाभक्ति और संस्कृतिनिष्ठा सिद्ध होती है।

किसी भी सवाल की अुपेक्षा कर के जीवन को शिथिल बना देने में न अुदारता है और न सहिष्णुता। वह केवल आलस्य और जडता है। अब हम अपने आदरणीय मित्र के प्रश्न पर गौर करें:—

हिन्दी में 'ळ' अक्षर और अुसका अुच्चारण नहीं है यह बात सही है। किन्तु हिन्दी जब राष्ट्रभाषा होने जा रही है तब अुसे अपने घर में हिन्दुस्थान की सब प्रान्तीय भाषाओं का समुचित आदर करना ही होगा। 'ळ' का अुच्चारण अुडिया, गुजराती, मराठी कानडी, तेलगू, तमिळ, मल्याळम्—अितनी भाषाओं में है ही। हिन्दीवाले कभी कभी अैसा मानते हैं कि 'ड' और 'ळ' में कोअी भेद नहीं है। और 'ड' और 'र' में भी कहीं कहीं भेद नहीं माना जाता है; ज्यादातर बिहार और बंगाल के कुछ हिस्से में। अिस-लिअे ये तीनों अक्षर अेक ही कार्य के लिअे काम में लाने का दोष वे करते हैं। 'ल-ळयोरभेदः' यह जैसा अेक सूत्र है अुसी तरह 'ळ-डयोरभेदः' भी दूसरा सूत्र है। वेदों में कहीं कहीं 'ड' का अुच्चारण 'ळ' किया जाता है और 'ढ' का 'ळ्ह'। 'अग्निमीळे पुरोहितं' और 'समूळ्हमस्यपांसुरे' ये अुदाहरण प्रख्यात हैं।

मराठी में 'कमल' का 'कमळ' कर देते हैं। अुसके स्थान में हिन्दी में हम 'कमल' ही लिखें। किन्तु मराठी में 'आंख' के लिअे जो 'डोळा' शब्द है अुसका अगर आप 'डोला' बना देंगे तो अुसके मानी होंगे "ताजिया"। 'शिक्षा' के लिअे गुजराती में 'केळवणी' शब्द है। अुसका अगर आप 'केलवणी' करेंगे तो वह अुच्चारण असंस्कारी और भद्दा मालूम होगा। हिन्दुस्थान की प्रधान सातआठ भाषाओं में जो अुच्चारण है

अुसे हिन्दी में लेना ही ठीक होगा। कम से कम व्यक्तियों के नाम और अुपनामों में तो अुच्चारणशुद्धि की ओर खास ध्यान देना चाहिये। 'राय' को 'रे' कहना, 'रानडे' को 'रानाडे' कहना, 'गोखले' को 'गोखेल' बनाना और अंग्रेजी 'अेल' के साथ अुसका अनुप्रास जोडना, 'कन्नड' भाषा को 'कनाडी' कह कर अपना अनाडीपन सिद्ध करना, ये सब दोष अब आन्तर्प्रान्तीय जीवन ओतप्रोत करने के दिनों में दूर करने ही होंगे।

'आर्य' को 'आर्या' कहना, 'गुप्त' को 'गुप्ता,' 'सिंह' को 'सिन्हा,' 'ठाकुर' को 'टागोर' 'शारदा' को 'सरडा'– ये दोष भी अैसे ही अक्षम्य हैं।

अपने देश के स्थलनाम, जातिनाम,व्यक्तिनाम आदि परिचित नामों का अुच्चारण तो यथा-स्थान ही होना चाहिये।अिसलिये 'बाळुभाओ', (अगर वह मूल में 'बाळुभाओ,' हो तो,) 'मश्रूवाळा,' 'वीरावाळा' आदि नामों में हम तो 'ळ' रखने के पक्ष में हैं। किन्तु जहां अर्थहानि न होती हो, भद्दापन न प्रतीत होता हो, वहां पर अगर असली 'ळ' का 'ल' या 'ड़' कर दिया जाय (जो योग्य हो) तो हमें कोओ अुज्र नहीं है। दूसरी भाषा के शब्दों में जहां संस्कृत 'ल' की जगह 'ळ' हो गया हो वहां भी हम हिन्दी में 'ल' का ही प्रयोग करें। हिन्दी में जहां 'ल' हो वहां जबरदस्ती 'ळ' का प्रयोग करना ज्यादती होगी। हर अेक भाषा का अक्षर-विन्यास अुसकी विशिष्ट प्रकृति के अनुरूप ही होना चाहिये। हिन्दी की विशिष्ट प्रकृति के विकास को हम आघात पहुंचाना कदापि नहीं चाहेंगे। हम तो अुसे सम्पन्न करना चाहते हैं।

राहुलजी की गलती

हमारे मित्र ने अिसी सिलसिले में और अेक बात कही है:—

२ "श्री राहुल सांकृत्यायनजी की अेक पुस्तक में 'ड़' के बदले 'ळ' का अुपयोग सब जगह किया गया है। अिस पर से अनुमान होता है कि वे शायद समझते हैं कि 'ळ' का अुच्चारण 'ड़' होता है। कृपा कर के हिन्दी पाठकों को 'ड', 'ड़', 'ळ' के अुच्चारणों का भेद समझाअियेगा"।

हमारे मित्र की बात बिलकुल सही है। हिन्दी-वाले नया अुच्चारण सीखने की तकलीफ कम लेते हैं अैसा अक्सर पाया गया है। अंग्रेजों का स्वभाव भी यही है। वे अपनी भाषा के जितने आग्रही हैं अुतनी ही बेदरकारी से दूसरों की भाषा बिगाडते हैं। हिन्दीवाले शायद कहेंगे कि हम अैसे पक्षपाती नहीं हैं। औरों की भाषा के प्रति जो अुदासीनता और शिथिलता हमने रक्खी है वही हम अपनी निजी भाषा के प्रति भी रख रहे हैं। लेकिन अगर अैसी वृत्ति है तो अुसे भी हम पसन्द नहीं करेंगे।

'ड़' और 'ड' के बीच जो भेद है वह हिन्दीवाले जानते ही हैं। अ-हिन्दी प्रान्त के लोगों को यह भेद बताना होगा। यह भेद शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। सुनने से ही वह भेद पकडा जाता है और वह भी आसानी से नहीं। किन्तु 'ळ' और 'ड', 'ड़' का भेद आसानी से बताया जा सकता है। प्रथम 'ल' लेंगे। अिसमें जीभ का अग्र दो दातों के बीच आता है। क्यों कि वह दंत्य वर्ण है। 'ड', 'ड़' अिन दोनों के अुच्चारण के समय जीभ दातों के नजदीक

जो मुंह का गुम्बद है अुसे स्पर्श करती है। 'ट' वर्ण का यह मूर्धन्य स्थान है। अुसमें 'ड' कहते समय जीभ दृढता से गुम्बद को स्पर्श करती है और अेक ही प्रयत्न में अुस स्पर्श को तोड देती है। 'ड़' में वही स्पर्श बहुतकुछ सौम्य या शिथिल होता है और अुच्चारण के समय स्पर्श तोडना सफाअी से नहीं होता। अुसमें कुछ कंप, कुछ आन्दोलन और कुछ अत्यल्प स-कार का घर्षण आता है। अेक तरह की सिसकारने की आवाज़—जिसे अंग्रेजी में 'हिसिंग साअुंड' कहते हैं।

'ळ' में जीभ को मुंह में पलटा कर जहां तक हो सके अन्दर ले जाते हैं। (अुंगली से अगर मुंह के गुंबद को हम टटोलें तो पता चलेगा कि अुस गुंबद के दो भाग हैं। दांत की ओर वाले गुंबद के अधिकांश भाग का स्पर्श कठिन होता है और गले की ओर का जो भाग है वह बिलकुल मुलायम होता है। अंग्रेजी में अुसे 'साफ्ट पैलेट' कहते हैं।) गुंबद के कठिन और कोमल विभाग का जहां संधि है अुस स्थान तक पलटी हुअी जीभ को अूपर ले जा कर घर्षण और कंप के बिना, सफाअी से जीभ की बुहारी से अगर हम गुंबद को साफ करें तो 'ळ' का अुच्चारण स्पष्ट आ जायगा।

अगर अूपर दी हुअी सूचना पाठक ध्यान से पढेंगे और पढ़ कर अुसका अुपयोग करेंगे तो निष्फल होने की संभावन ही नहीं है।

शुद्ध हिन्दी में 'ळ' नहीं आयगा। किन्तु प्रान्तीय भाषा के नाम, विशेषनाम, मुहावरे, और शब्दसमुच्चय लेने में 'ळ' का व्यवहार करना पडेगा। और हिन्दीवालों के लिअे प्रयत्न-पूर्वक 'ळ' का अुच्चारण सीखना आवश्यक है।

प्रश्न—"मेरा ख्याल है कि हिन्दी में 'तैयार' लिखना शुद्ध माना जाता है। आप 'तय्यार' लिखते हैं। अगर अुसके पीछे कोअी खास सबब हो तो कृपया बताअियेगा।"

उत्तर—यह तो मानना ही चाहिअे कि हर भाषा को अपने शब्दों के हिज्जे अपने ही ढंग से करने का पूरा अखतियार है। हिन्दी में अगर सब लोग "तैयार" लिखते हैं तो अुसे बदल कर "तय्यार" की नयी 'वर्णना' (स्पेलिंग) जारी करने का हमें कोअी अधिकार नहीं है। तो भी 'तैयार' की अपेक्षा "तय्यार" की 'वर्णना' ही हमारी दृष्टि से हमलोगों के लिअे अधिक अनुकूल है।

संस्कृत में 'ऐ' का अुच्चारण 'अइ' के जैसा होता है और हिन्दी में अुसी अक्षरका अुच्चारण 'अय्' के जैसा होता है। जब हिन्दी में 'है' लिखा जाता है तब हिन्दीवाले अुसका अुच्चारण करते हैं 'हय्' और अ-हिन्दीवाले अुसे पढते हैं "हअी"। अिस दोष को अगर टालना है और अुच्चारण-शुद्धि की तरफ अधिक ध्यान देना है तो अहिन्दी प्रान्तों के लिअे लिखना चाहिअे 'भारत हमारा देश हय' अन्यथा 'भारत हमारा देश हअी' अैसा अधिकाधिक सुनने के लिअे अुत्तर भारतीय लोगों को 'तय्यार' रहना चाहिअे। जहां वर्णना का विकल्प हो वहां 'ऐ' की जगह हम 'अय' करना ही पसन्द करेंगे। अगर हिन्दीवाले 'तय्यार' को दरगुजर कर सकेंगे तो अुनकी रजामन्दी से हम वही वर्णना जारी करने के पक्ष में हैं। लेकिन अुनकी विचार-पूर्वक बनी हुअी राय के खिलाफ नहीं। हिन्दी शब्दों के 'वर्ण-विन्यास' के विषय में हम अुन्हें सुझा सकते हैं। निर्णय का अधिकार अुनका है। और अुन्हें सहायता देने का हमारा।

२२:६:३९ का० का०

सर्वोदय की दृष्टि

कविवर रवीन्द्रनाथ और पं० जवाहरलाल

जगत में कविवर रवीन्द्रनाथ की महिमा पू० गांधीजी के बराबर है। इन दो भारत-पुत्रों के कारण जगत में हिंदुस्तान का सर ऊंचा अुठा है। राजकीय नेताओं में पं. जवाहरलाल का स्थान गांधीजी से दूसरा कहा जा सकता है। गांधीजी ने कई वार कहा है कि वे उनके वारिस होंगे। इस लिअे ये दो महापुरुष जो कुछ लिखें वह हमारे लिअे बडे आदर से पढने और गौर करने योग्य हो जाता है। उन के विचारों की आलोचना करना बडा कठिन और नाजुक काम है। लेकिन इसी कारण यह आशा करना गैरमुनासिब नहीं कि वे भी जो कुछ लिखें वह बहुत ही सोचविचार कर लिखें। उनके कलम से अेक कम-गौर किया हुआ, या जल्द (हेस्टी) सखुन बडा खतरनाक और गलतफहमी बढानेवाला हो सकता है। उनकी महत्ता के कारण उन पर दोष का आरोप करने में मुझे बडा संकोच होता है। फिर भी उनके दो वक्तव्यों की आलोचना करना जरूरी समझता हूं।

श्री रवीन्द्रनाथ

जुलाई के 'मॉडर्न रिव्यू' में कविवर का 'कॉंग्रेस' के विषय में अेक पत्र प्रकट हुआ है। उसमें गांधीजी की देश और कॉंग्रेस की सेवा की, और अुनके नेतृत्व में कॉंग्रेस ने की हुई अुन्नति की बहुत कद्र की गयी है। पर दूसरी तरफ से आपके दिल में यह शंका पैदा हो गई है कि कॉंग्रेस के मुखियों में शायद अधिकार-मद पैदा हो गया है। आप यह कबूल करते हैं कि आपका आजकल के राजकीय मामलों का ज्ञान बहुत अधूरा है, इसलिअे आपकी यह शंका निराधार भी हो सकती है। फिर भी आपने पं० जवाहरलाल से इस विषय में जवाब मांगा है।

इसी सिलसिले में कविवर ने सरदार वल्लभभाई ने गांधी सेवा संघ के संमेलन में किये हुअे अेक अुद्गार का (शायद अधूरी रिपोर्ट पढ कर) उल्लेख कर के उसपर टीका की है। वे लिखते हैं—

'कॉंग्रेस में शाक्त संप्रदाय धीरे धीरे बढ रहा है। वह महात्माजी के अनुयायियों की, उन्हें हिटलर या मुसोलिनी की बराबरी का जाहिर करने की वृत्ति में अपने सच्चे रूप में प्रकट होता है। क्या यह मुमकिन है कि ये लोग, जब कि उन नरमेध करनेवालों की इतनी इज्जत समझते हैं, अपने निष्काम-योगी तपस्वी गुरु का बताया हुआ सत्य का मंदिर अच्छी तरह पवित्र रख सकेंगे?"

सरदार वल्लभभाई का भाषण जुलाई के 'सर्वोदय' में आ गया है। फिर भी प्रस्तुत उद्गार फिर से यहां दिया जा रहा है।

"लोग मुझे हिटलर कहते हैं। "यह हिटलर है, वह मुसोलिनी है, फलाना सवाअी-हिटलर है," अैसी बातें करते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि गांधीजी से बडा हिटलर मैंने नहीं देखा। अुस जर्मनीवाले हिटलर में और अिसमें अेक बडा भारी फरक है। वह जोर-जबरदस्ती और हिंसा से काम लेता है। अिसकी सत्ता प्रेम पर खडी है। यह प्रेम

ओर अहिंसा से हमारे दिल काबू में कर लेता है। अिसके प्रेम का आक्रमण अैसा है कि अुससे कोअी नहीं बच सकता। अितना बडा लोकसंग्रह अिसी प्रेम की शक्ति की बदौलत हुआ है। अुसकी बराबरी का दूसरा आदमी मुल्क में नहीं है।"

सरदार वल्लभभाई कवि तो हैं ही नहीं। बल्कि विद्वान् भी नहीं हैं। वे खेडा जिले के अेक किसान हैं। और संभव है कि नागरी शैली या रुचि का अंग कहां होता है, वह वे नहीं जान सकते। इसलिअे यह संभव है कि काकसमीक्षकों की दृष्टि में गांधीजी की हिटलर से तुलना करने में हीनोपमा का दोष उन्होंने कर दिया हो। लेकिन, जिस तरह उन्होंने यह तुलना की है, उसमें शक्तिपूजा का स्वरूप देखना मुझे बडी ही 'दूरदर्शिता' मालूम होती है।

यह गलतफहमी शायद गलत रिपोर्ट से हुई हो। फिर भी यह छोटासा अुल्लेख अितना जरूर बताता है कि किस तरह कविवर के दिल में सरदार या कॉंग्रेस के मुखियों के प्रति साशंक वृत्ति पैदा हुई है।

अैसी शंकाओं का निवारण कैसे हो? कविवर इतने बडे आदमी हैं कि कॉंग्रेस के मुखियों में कितना भी अधिकारमद आ गया हो, अुनमें अेक भी अैसा न निकलेगा, जो कविवर के आमंत्रण का निरादर करने की हिम्मत कर सके। क्या ही अच्छा हो, अगर वे जिन जिन के कामों या वृत्तियों के बारे में उन्हें शंका पैदा हो गअी है, उन्हें स्वयं बुला कर सफाई मांगें! आखिर जिन के विषय में बहुत झगडा मचा है अैसी बातें ५-६ से तो अधिक नहीं हैं। केवल बुद्धिभेद करानेवाली अेक कुशंका जगत के सामने फेंक देने के बजाय, अगर वे राजेन्द्र बाबू और सरदार से पूछताछ कर के निश्चितरूप में अपना समाधान या असमाधान प्रकट करें, तो देश की ज्यादा भलाई होगी। जनता भी निःसंशयरूप से समझ सकेगी कि कॉंग्रेस के वर्तमान नेता मणि हैं या कांच हैं।

पं० जवाहरलाल

लेकिन, कविवर को क्या दोष दें; जब कि पं० जवाहरलाल—जो सब बातों से अच्छी तरह वाकिफ हैं—वे भी अेक साफ भूमिका ले कर कॉंग्रेस के आम सभासदों को अेक या दूसरी तरफ स्पष्ट दर्शन कराने के बदले सिर्फ संशयवृत्ति पैदा कराना ही अच्छा समझते हैं? अभी श्री सुभास बाबू के दल ने ९ जुलाअी का कॉंग्रेस विरोधदिन मनाने की जो घोषणा निकाली थी, उसके विरोध में पं० जवाहरलाल ने अेक वक्तव्य निकाला था। मैंने अेक उस्ताद अैसा देखा था जो यह मानता था कि स्कूल में आते ही पहला काम यह करना चाहिअे कि हरेक लडके को दो चार बेंत लगा दिअे जायें। फिर दिन भर वे उस्ताद को बिलकुल तंग न करेंगे। पंडितजी के विषय में भी यही शंका होती है कि उन्होंने भी अैसा ही कोई शिक्षासिद्धान्त स्वीकार तो नहीं कर लिया? त्रिपुरी के कुछ दिन पहले से उनके वक्तव्यों ने अैसा ही स्वरूप पकड लिया है। अपने इस वक्तव्य में पं० जवाहरलाल ने अेक बाजू से सुभास-बाबू के काम का तीव्र निषेध किया है। लेकिन दूसरी तरफ जिन प्रस्तावों के बारे में सुभास बाबू को असंतोष है, उनके बारे में पंडितजी कहते हैं:—

"ये दो प्रस्ताव पढने में तो सयुक्तिक हैं, और कोओी भी संगठितरूप से काम करनेवाली संस्था का अैसे प्रस्ताव करना स्वाभाविक है। फिर भी यह भी सच है कि दलबंदी करने के हेतु इनका उपयोग होना मुमकिन है। और यही इनमें खतरा है। इसी कारण अगर मुझे मौका मिलता तो भारतीय महासमिति में मेरा सत्याग्रह के प्रस्ताव का विरोध करने का इरादा था।"

इससे सूक्ष्मरूप में मौजूदा प्रांतिक और वर्किंग कमिटी के प्रति अविश्वास और सन्देह प्रकट होता है। प्रान्तिक कमिटियां इतनी विश्वासपात्र नहीं कि वे योग्य प्रसंग में भी सत्याग्रह करने की इजाजत देंगी। और वर्किंग कमिटी भी अैसी नहीं कि जो अपील होने पर न्याय करेगी।

अगर मौजूदा वर्किंग कमिटी अैसी विश्वास-योग्य न हो, तो मेरी दृष्टि में पं. जवाहरलाल का कर्तव्य हो जाता है कि वे या तो उसे सुधारें अथवा जो उसे तोडना चाहते हैं, उन्हें साथ दें। कॉंग्रेस कितनी भी बडी संस्था हो, नेताओं की सचाओी और बुद्धि में जनता का विश्वास ही उसका आधारस्तंभ है। जो लोग नेताओं में अविश्वास सूचित करते हुअे, जनता से कॉंग्रेस का आश्रय लेने को कहते हैं, वे जानबूझ कर दीमक ने अंदर से पोले किये हुये पेड के नीचे विश्रांति लेने की सलाह लोगों को दे रहे हैं।

कॉंग्रेस की दयनीय स्थिति

पं० जवाहरलाल से ले कर मानवेन्द्र-नाथ राय तक अेक शृंखला बनी है। उनमें आपस में मतभेद अिस विषय में नहीं कि वर्किंग कमिटी में कितनी मात्रा में विश्वास प्रकट किया जाय; बल्कि अिस विषय में कि अविश्वास और कुशंका की कितनी मात्रा प्रगट की जाय। इस में केवल मानवेंद्रनाथ राय की भूमिका ही स्पष्ट और खालिस है। दूसरे सब न अपने प्रति न्याय करते हैं, और न वर्किंग कमिटी के प्रति सौजन्य का व्यवहार करते हैं। और जिनके सर पर आज जिम्मेवारी है, उनकी स्थिति दयनीय करने का मजा लूटते हैं। आखिर इसमें स्थिति तो कॉंग्रेस की ही दयनीय होनेवाली है। फेडरेशन, या १९३५ का कानून, तो जब टूटेगा तब टूटेगा; कॉंग्रेस आज ही टूट रही है।

दर्द क्या है?

बाज दफा स्वयं अपने में अविश्वास ही दूसरों में अविश्वास का कारण हो जाता है। न पं. जवाहरलाल न श्री सुभास बाबू और न श्री नरेंद्रदेव या श्री जयप्रकाश नारायण कॉंग्रेस के सूत्र अपने हाथों में ले लेने का आत्मविश्वास अनुभव करते हैं। फिर भी 'कुछ दूसरा कहूं' 'कुछ और करूं', 'इतने से संतोष नहीं है,' यह प्रेरणा उनकी बुद्धि में हुआ करती है। और वह अपने प्रति असंतोष के रूप में प्रकट होने के बजाय सूत्रधारों के प्रति असंतोष प्रकट कराती है। अैसा करने में उनको यह बहाना मिल जाता है कि ये सूत्रधार स्वतंत्र विचारक या नेता होने का दावा नहीं करते। उन्होंने अपनी भक्ति अेक नेता को सौंप दी है, और उनकी बुद्धि अुसीकी योजनाओं को सफल बनाने में संतोष मानती है। वे दूसरी योजनाओं के प्रति रुचि नहीं बता सकते। 'कुछ और करूं', 'इतने से संतोष

नहीं है ' यह तो वे भी महसूस करते हैं। लेकिन, 'कुछ दूसरा करूं' यह प्रेरणा उन्हें नहीं होती। वे अपने नेता की योजनाओं की पूर्ति में ही 'कुछ और करने' की जरूरत तथा 'संतोष नहीं' की वृत्ति अनुभव करते हैं। इस अेकनिष्ठा और स्थिरबुद्धि के दोष के लिये उनके प्रति साशंक और कृतघ्न होने का उपदेश देश के तरुणों को दिया जा रहा है। जड कुदरत में प्रगति का यही कानून शायद हो! किन्तु चैतन्य का कानून अैसा नहीं हो सकता।

कि. घ. म.

गांधीजयन्ति

अंग्रेजी हिसाब से ता० २ अक्टूबर को गांधीजी का जन्मदिन आवेगा। ता० १० अक्टूबर को चरखाद्वादशी आवेगी। इस वर्ष गांधीजी ७० वर्ष पूरे कर के ७१ वें में पग रक्खेंगे। हर साल इन दिनों में खादीप्रचार, 'चरखा-योग' और सत्याग्रह-सिद्धान्तों का कुछ मनन आदि कर के अकसर यह जयन्ति मनाई जाती है।

आत्मनिरीक्षण और परस्पर प्रेमभाव बढ़ाने के लिये हमारे वास्ते यह अेक अच्छा अवसर हो जाता है। साल भर में विशेषरूप में कुछ सत्संग और सत्कर्म करने के लिये अैसे प्रसंग हममें से बहुतसे लोगों के लिये आवश्यक हैं। अैसे अवसरों के न होने से जीवन शुष्क, कर्मजड, संकीर्ण और आखिर में भावनाशून्य, हो जाता है। फिर ईश्वराभिमुखता, संयम और सदाचार का जोश और आग्रह घट जाता है। इसलिये, जिस तरह शरीर के लिये साल भर में कुछ दिन छुट्टी और विश्रांति की जरूरत होती है, उसी तरह कुछ दिन सत्संग के विशेष कार्यक्रम की भी जरूरत है।

मेरी राय है कि गांधीजी को चाहनेवाले सब लोग इस 'नवदिन' में नियम से कातने और गांधीजी के आध्यात्मिक विचारों का स्वाध्याय करने में अपना समय बिताने का अेक अच्छा कार्यक्रम बना कर अपने अपने स्थानों में उसे श्रद्धा से पूरा करें। अगर इन दिनों में सार्वजनिक सभायें हों, तो उनमें गांधीवाद-समाजवाद आदि की खंडन-मंडनात्मक आलोचनायें करने का प्रयत्न न किया जाय। किन्तु गांधीजी के जीवन में से उनकी ईश्वरनिष्ठा, सत्याग्रह, अहिंसा, व्रत, उपवास, आदि के प्रसंगों का बयान करें, और अेक उच्चभावप्रेरक वायुमंडल पैदा करने का प्रयत्न करें। वर्तमान राजकारण की चर्चाओं को छोड कर, उनकी साधना, और वे हमसे जो आशा रखते हैं, उसीका विचार करें।

इसके लिये नीचे लिखी पुस्तकों में से काफी मसाला मिल सकता है:—

१. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा
२. दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास
३. हिंदस्वराज्य
४. मंगल प्रभात
५. आश्रमवासियों को पत्र
६. गांधीजीनी साधना (लेखक-रावजीभाई मणिभाई पटेल, नवजीवन कार्यालय, अमदावाद)
७. जेल के अनुभव
८. दी अेपिक फास्ट (अंग्रेजी)

गांधीजी पर जिनका बहुत असर हुआ है, या जिनका गांधीजी ने अनुवाद भी किया है, अैसी नीचे लिखीं पुस्तकें भी उपयोगी होंगी:–

१. अनासक्तियोग
२. सर्वोदय (रस्किन का 'अन्टू दिस लास्ट')
३. सोक्रेटिस का 'अपना बचाव' (अॅपॉलॉजी ऑफ सॉक्रेटीस)
४. क्या करें? (टॉल्स्टॉय का व्हॉट शॅल वी डू देन?)
५. टॉल्स्टॉय की कहानियां– उदा० 'मूरखराज' 'देवदूत' 'सत्य के बिना और कुछ नहीं', आदि।

उत्साही संचालक इस साहित्य में से कुछ नाट्यप्रयोग, संवाद, आदि भी तैयार कर सकते हैं। जिस तरह श्री जुगतराम भाई ने बालकों के लिअे 'गांधीजी' नामक पुस्तक लिखी है वैसी पुस्तक भी लिख सकते हैं। 'युगावतार गांधी' नाम की भी अेक गुजराती पुस्तक किशोरों के लिअे है।

चर्खा और ग्रामोद्योग में निष्णात तरुण इन दिनों में छोटी छोटी प्रदर्शनियां और नये प्रयोग बता सकते हैं। इन चीजों की बिक्री तो होगी ही।

कई प्रान्तों में अकाल के कारण आज लोग कष्ट में हैं। पाई-पैसा इकट्ठा कर के इन लोगों को सहायता पहुंचाने का काम भी इन दिनों में उठाया जा सकता है।

मैं आशा करता हूं कि यह 'नवदिन' हमारे लिअे स्फूर्ति और प्रेरणादायी होगा।

कि. घ. म.

औसत-भूल

श्री कुमारप्पा की अध्यक्षता में बनी हुअी मध्यप्रान्त की 'उद्योग कमिटी' की रिपोर्ट का अेक हिस्सा प्रकाशित हुआ है। वह सब कार्यकर्ताओं के पढने योग्य है, और शायद 'सर्वोदय' के द्वारा उसका कुछ परिचय पाठकों को दिया जायेगा। उसमें श्री कुमारप्पा ने अेक बात यह लिखी है कि उनकी जांच में उन्हें कई देहात अैसे मिले जहां अेक अेक व्यक्ति की सालाना आमदनी रु. १२ से अधिक नहीं थी। कमिटी के अेक दूसरे सदस्य, जिन्होंने रिपोर्ट पर असहमति की टिप्पणी लिखी है, इस कथन पर आक्षेप लेते हुअे लिखते हैं कि यह कैसे संभवनीय है, जब कि बडे बडे अर्थशास्त्रियों ने साफ साफ बताया है कि हिंदुस्तान की सालाना औसत आमदनी फी आदमी रु० ५० से कम नहीं है।

इसी तरह अेक कार्यकर्ता ने कपडे के बारे में हिसाब लगाते हुअे लिखा कि आज के हिसाब से हिंदुस्तान में फी व्यक्ति औसत १३ गज कपडे का इस्तेमाल होता है। हम चाहते हैं कि कोई आदमी २५ गज से कम कपडा इस्तेमाल न करे। फिर भी हमें २५ × ४० करोड = १००० करोड गज से अधिक कपडा हर साल पैदा करना न होगा। इस हिसाब से फिर कितनी कत्तिनों द्वारा यह काम हो सकता है आदि हिसाब लगाये हैं। उसमें उनका यह बताने का उद्देश था कि चर्खे की उत्पादनशक्ति में हमें अमुक अेक हद से ज्यादा सुधार करने की जरूरत नहीं है।

औसत गिनती के आंकडे याद करने से विचार में जो भूलें होती हैं, उनके ये उदाहरण हैं। हिंदुस्तानी की औसत आमदनी फी व्यक्ति रु. ५०, ७५ या १२० भी मान ली जाये; तो भी यह याद रखना

चाहिये कि यह 'औसत' आमदनी है, 'कम से कम' आमदनी नहीं है। यानी, जिन की सालाना आमदनी ०, या जैसे श्री कुमारप्पा की खोज से पता चलता है, १२ है, जैसे करोड़ों लोगों को, तथा उन चंद लोगों को जिनकी सालाना आमदनी १० हजार से ले कर ५० लाख तक की भी है, मिला कर यह औसत निकाला गया है। वास्तव में हिंदुस्तान जैसे बड़े देश में औसत आमदनी के आंकड़े से जनता की दरिद्रता या खुशहाली का ठीक अंदाज नहीं निकाला जा सकता। अेक काल्पनिक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा। मान लीजिये कि किसी देहात में १००० की आबादी है और सन १९३५ और १९४० में उसकी आमदनी की जांच करते समय नीचे लिखे अनुसार स्थिति पायी जाती है :–

१९३५		१९४०	
व्यक्ति	वार्षिक आय रु.	व्यक्ति	वार्षिक आय रु.
१०	७२००	५	८४००
४०	७०००	४५	९८००
२००	२००००	२००	२४०००
३३५	२२०००	४००	२००००
२००	१००००	१४०	६७००
२००	३०००	१६५	१५५०
१५	५०	४५	५०
कुल १०००	६९२५०	१०००	७०५००
फी आदमी आय	६९।		७०॥

यहां पर औसत के हिसाब से देहात की कुल आमदनी में रु. १२५०, याने प्रति मनुष्य रु. १। की बढ़ती दिखाई देती है। लेकिन, दरिद्रता की दृष्टि से जाँच की जाये तो मालूम होगा कि इस बढ़ती में रु. १२०० सिर्फ ५ व्यक्तियों को मिला है, और पहले २५० व्यक्तियों की आमदनी में रु. ८००० की बढ़ती है। बाकी के ७५० व्यक्तियों की आमदनी ३५०५० से गिर कर २८३०० हुई है। अथवा जो आमदनी फी आदमी ४६।।। के लगभग थी वह अब ३७।।। हो गई है। और जितने नीचे उतरते हैं, उतना दरिद्रता का परिमाण बढ़ा हुआ मालूम होता है। १९३५ में १५ गरीब से गरीब शख्स थे। और उन्हें भी ५० रु. मिल जाते थे। उनकी संख्या १९४० में ४५ हुई है, और आमदनी ५० ही है। याने उन्हें फी आदमी ३ रु. से अधिक मिलते थे, उसकी जगह अब लगभग १ रु. हो गया है।

अलबत्ता, यह अेक काल्पनिक उदाहरण है। लेकिन उसका उद्देश यह बताना है कि सिर्फ देश की औसत आमदनी बढ़ी हुई मालूम होने से यह नहीं समझना चाहिये कि देश की स्थिति सुधर रही है। इन जांचों के आंकड़े तभी उपयोगी हो सकते हैं, जब यह बताया जाय कि १९३५ में कम से कम आमदनी क्या थी, और कितने लोगों की थी, १९४० में क्या स्थिति है; और इस तरह क्रमशः बढ़ती आमदनी के आंकड़े प्राप्त करने चाहियें।

मतलब यह कि हिंदुस्तान की औसत आमदनी रु. ६० से बढ़ कर रु. १२० भी हो जाये तो भी यह हो सकता है कि देहातों में औसत आमदनी रु. ५० से घट कर रु. १२ ही हो जाय।

कपड़े के बारे में भी यही भूल है। औसत १३ गज कपड़ा हिंदुस्तान में पहना जाता है, इसके मानी ये नहीं कि सब को

१३ गज कपड़ा मिलता है। करोड़ों को १ गज भी नहीं मिलता, और चंद असे भी व्यक्ति होंगे जो सालाना २००० गज से अधिक कपडा इस्तेमाल करते होंगे। जब हम कम से कम २५ गज कपडा हरेक शख्स को दिलाने की इच्छा करते हैं, तो हमारा मकसद यह नहीं कि जो २०० या ३०० गज कपडा पहनते होंगे उनका छीन ही लें। जरूरत हो तो २००० पहननेवाले का कम भी किया जा सकता है। पर २५ की मर्यादा सब के लिअे नहीं होगी। तब अगर कम से कम २५ मर्यादा हो तो औसत ५० या ७५ गैंज तक का होना संभव है। यानी उस हिसाब से ४० करोड़ × ५० या ७५ गज कपड़े की पैदायश के लिअे जगह है। उस हिसाब से साधनों का विचार करना चाहिअे।

कि. घ. म.

सरकार, शराब और जनता

[लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक]

अिस आबकारी विभाग ने अिग्लैंड की तरह यहां भी शराब की भट्टियाँ स्थापित कीं, अिस आबकारी विभाग ने अिग्लैंड की मिसाल पर यहां शराब की दूकानें खोलीं; और अिसी आबकारी मुहकमे ने लोगों की दृष्टि के सामने शराब की बोतलें नचा कर पापी आंखों के ज़रिये शराब का यह नरक लोगों के गले के नीचे अुतारा। जो लोग पहले शराबी नहीं थे वे आज अिस विभाग की बदौलत शराबी बन गये हैं। जो जातियाँ पहले शराब का स्पर्श भी अपवित्र मानती थीं वे अिस विभाग की बदौलत शराबखानों में जाने लगीं। महाराष्ट्र में यह मर्ज अिधर पचास पौन सौ वर्षों से ही बढ़ा है; और अभी असाध्य नहीं हुआ है। अंग्रेजी राज्य से पहले समुद्र किनारे पर रहनेवाली कुछ छोटी छोटी जातियों को छोड बाकी सभी जातियां शराब से अलिप्त थीं। कुरान में शराब का सख्त परहेज़ बताया गया है। पार साल अफगानिस्तान के अमीर साहब ने कलकत्ते में शराब को आंखों से देखा तक नहीं। यही नहीं; अुन्होंने शराब के सुन्दर और मोहक प्याले भी नमूने के लिये अफगानिस्तान ले जाने से अिनकार किया। हिन्दूधर्म में दीक्षा या विद्या देने वाले पूज्य गुरु की स्त्री से व्यभिचार करने के समान सुरापान भयंकर महापातक माना गया है। श्री शिवाजी महाराज की सेना में और दरबार में सुरापान करनेवाला नराधम किसी भी श्रेणी के लोगों में या किसी भी जाति में नहीं पाया जाता था। अिस देश में पक्के से पक्के पियक्कड़ भी शराब पीना पाप समझते हैं। सर जॉर्ज क्लार्क से हमारा साग्रह अनुरोध है कि स्वयंसेवकों ने, या मद्यपाननिषेध मंडल ने, अिस काम में जितना पुण्य कमाया है अुसकी अपेक्षा हजार गुना, लाख गुना अधिक

पुण्य शराब की दुकानें सरकारी हुक्म से बंद करा कर आप अुपार्जन कीजिये।

(केसरी ता० २८ अप्रैल १९०८)

× × × ×

अैसी नीति और अैसे राजधर्म को धिक्कार है! अिसीकी बदौलत हिन्दुस्थान में आज तक शराब का प्रचार हुआ। लोगों की ओर से सरकारी कर्मचारियों से हमारी यह प्रार्थना है कि सरकारी तिजोरी के नुकसान की पर्वाह न करते हुअे वे पान-स्वातंत्र्य की अपनी ज़िद और आग्रह छोड दें। प्रजा शराबखोर बनने से किसी भी सरकार का कोअी फायदा आज तक नहीं हुआ।

× × × ×

श्रुति, स्मृति और कुरान ने जो पाप निषिद्ध माना है और दोनों धर्मों ने अपनी अपनी आज्ञाओं द्वारा हजारों वर्षों तक लोगों के हृदय पवित्र रख कर अुनमें जिस महापातक का प्रवेश होने नहीं दिया वही पातक अंग्रेज सरकार के राज्य में पान-स्वातंत्र्य की महिमा बढ जाने के कारण अब हमारे अन्दर पैठ रहा है। और मद्य की तरफ हरेक मनुष्य की 'रागतः प्रवृत्ति' होती है अिस भागवत वचन का यदि विचार करें तो आज जो कुछ हो रहा है अुसके विषय में किसी को आश्चर्य नहीं होगा। अैसा तो अेक शुकाचार्य ही अुत्पन्न हुआ कि जो अुसे वश करने भेजी हुअी अप्सरा से भी नहीं हारा। अिन्द्र ने जिस प्रकार शुकाचार्य के पास रंभा को भेजा अुसी प्रकार पानस्वातंत्र्यवादी अंग्रेज अधिकारी हमारी हिन्दुस्थानी जनता के सामने शराब की दुकानें रख रहे हैं। नतीजा यह हुआ है कि जिस पूना शहर में पेशवाअी के अन्त में शराब की अेक बून्द भी नहीं बिकती थी; या बहुत तो शराब की सारी आमदनी पंद्रह या बीस रुपये थी; और शराब पी कर रास्ते में गुलगपाडा या बखेडा करने के लिअे बहुत तो साल में पांचछः मुकद्दमे होते थे; अुसी पुण्यनगरी में बीसवीं सदी के प्रारंभ में हर साल सात लाख रुपयों की शराब बिकती है और शराब पी कर दंगा-फसाद करने के अपराध में हर साल मैजिस्ट्रेट की अदालत में बारह सौ से पंद्रह सौ लोगों को सजा या जुर्माना होता है। जिस पान स्वातंत्र्य की बदौलत आज पूना में हर अेक मुहल्ले में शराब की दूकान की रम्भा लोगों को रिझा कर और फुसला कर पाप में फंसाती है अुस पानस्वातंत्र्य को धिक्कार है।

(केसरी, ता० १४ अप्रैल १९०८)

अल्पमतवालों के अधिकार

यदि अेक प्रकार की नीति से कार्यसिद्धि न होती हो तो दूसरी नीति अख्तियार करने का कॉंग्रेस को अधिकार है। वह नीति कौनसी हो यह तो अुपस्थित प्रतिनिधियों के बहुमत से ही निश्चित हो सकता है। अिस बहुमत को अपने अनुकूल करने के लिअे हर अेक चाहे जो प्रयत्न करे। परंतु सभा में वादविवाद के बाद जब किसी अेक प्रकार का बहुमत निश्चित हो जाये तो सभी दल के लोगों को चाहिअे कि वह निर्णय बादशाही हुक्म के समान शिरोधार्य मान कर सच्चे दिल से राष्ट्रीय कार्य में हाथ बटावें। यही हर अेक दल का कर्तव्य है। आप जो कुछ कोशिश या अुद्योग करना चाहें वह बेशक करें; लेकिन अिस अन्तिम कर्तव्य को कदापि न भूलें यही हमारी सब से विनय है। यह प्रार्थना या सूचना लोकनियुक्त संस्थाओं का अितिहास देख कर ही की गयी है।

'केसरी', २७ अगस्त १९०७

लोकमान्य तिलक

संघवृत्त

आगामी सम्मेलन

आगामी वार्षिक सम्मेलन कहां किया जाय अिसका निर्णय वृन्दावन में नहीं हो सका था। अब कार्यवाहक समिति ने तय किया है कि आगामी सम्मेलन सन् १९४० के फरवरी या मार्च महीने में बंगाल में किया जाय।

नये सदस्य

चालू वर्ष के आरम्भ से जुलाअी के अन्त तक नीचे लिखे नये सदस्य संघ में दाखिल किये गये—

सेवक

श्री माधवलाल छगनलाल पटेल,
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।

श्री सुभाषचन्द्र विद्यालंकार,
अ. भा. चरखासंघ, मिर्जापुर, अहमदाबाद।

श्री अेन्. आर्. मलकानी,
हीराबाद, हैदराबाद (सिन्ध)।

श्री सन्मुखलाल गोवर्धनदास शाह,
स्वराज्य आश्रम, बारडोली, जि. सुरत।

श्री पी. कोदण्ड रामय्या, राजमहेन्द्री।

श्री त. नरसिंह शर्मा, आनन्द निकेतन,
चागल्लु, जि. पश्चिम गोदावरी। (आंन्ध्र)

श्री कुमार चन्द्र जैन, गान्धी आश्रम,
वासुदेवपुर, डा. शिवरामनगर,
जि. मेदिनीपुर (बंगाल)

श्री निवारणचन्द्र दे सरकार, मार्फत-डॉ.
नृपेन्द्रनाथ बसु, कुमिल्ला। (बंगाल)

श्री दामोदरदास मूंधड़ा, वर्धा।

श्री कृष्णन् नायर, गान्धी सेवाश्रम, नरेला,
दिल्ली।

श्री अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी,
मार्फत—काका कालेलकर, वर्धा।

श्रीमती दयावती, गांधी सेवाश्रम,
चुडियाला, डा. रुड़की, यु. प्रा.।

श्री ज्योति प्रकाशजी, रामताल आश्रम,
महरोली, दिल्ली।

श्री मेधाव्रत रविशंकर व्यास,
वल्लभविद्यालय, बोचासन, गुजरात।

श्री पृथ्वीचन्द्र नैयड़, मन्त्री, पंजाब चरखा संघ,
आदमपुरद्वाबा, जि. जालन्धर।

अिनके अलावा नीचे लिखे सदस्यों को, सहयोगी वर्ग से सेवक वर्ग में बदली की गयी है।

श्री पी. व्यंकय्या, पो. मॉरिस पेट, तेनाली।

श्री अे. सुब्रह्मण्यम्, श्री मानेपल्ली मल्लिकार्जुन, — गांधी आश्रम, अंगलुर, जि. कृष्णा

श्री सोहनलालजी अुप्पल, पंजाब चरखासंघ,
आदमपुरद्वाबा, जि. जालन्धर।

श्री दीनानाथ विष्णु वडपे, श्री वसन्त कृष्ण कर्णिक — श्री खानदेश गो-सेवाश्रम, धूलिया

सहयोगी

श्री मोतीलाल केजरीवाल,
जसिडी, जि० सन्थाल परगना, बिहार।

श्री सुब्रह्मण्य नाडर, विरुधुनगर, द. भारत।

श्री रघुनाथ प्रसाद वर्मा, श्रीमती नन्दकिशोरी — खादी भंडार रांची, बिहार।

श्री सी. के. कर्ता, केरल चरखासंघ, पायानूर।

श्री शादीराम जोशी, मार्फत—डी. अे. व्ही.
कॉलेज, जालंदर।

श्री अेस्. चेल्लास्वामी, श्रीरामकृष्ण विद्यालय,
जि. कोअीम्बतुर।

श्री हरिभाअू हणमंतराव चव्हाण, कॉंग्रेसवाडी,
चालीसगांव, पू. खानदेश।

श्री कालिका प्रसाद शर्मा, श्री गान्धी आश्रम मेरठ ।

श्री रामनाथ सिंह, अुद्योगाश्रम, बेरा गढ़ीवा, डा. हुसेनगंज, जि. फतेपुर (यु. प्रा.) ।

श्री गयाराम सिंह गोभिंदी, प्रेमनगर, सियालकोट शहर (पंजाब)

श्री कृष्णदास, मार्फत–किशनदास अँड कं., रामतलाअी, सियालकोट शहर (पंजाब)

श्री पी. रामस्वामी रेड्डी, ओमाण्डुर, तिण्डिवनम्, तामिलनाड ।

श्री अेन्. एम्. आर, सुब्बारामन्, मदुरा (तामिलनाड)

श्री अे. वेदरत्नम्, वेदारण्यम्, जि. तंजावर ।

श्री अे. लक्ष्मीनरसिंहम्, आन्ध्र चरखा संघ, मच्छलीपट्टम् (आंध्र) ।

श्री गौरीशंकर डालमिया, जसीडि, जि.सन्थाल परगना, बिहार ।

श्री विष्णु नारायण अभ्यंकर, कडी (काठियावाड)

सहायक

श्री राममूर्ति, श्री अनन्त हाअीस्कूल, खपराडीह, जि. फैजाबाद, यु. प्रा. ।

श्री ग, व्यंकटरत्नम्, कावूर, जि. गुंटुर ।

श्री श्यामजी सुंदरदास, कलिकट, मलबार ।

श्री चंदुलाल साराभाई मोदी, अेन्ड्रूज्रोड, सान्ताक्रुझ, बम्बअी अुपनगर ।

त्यागपत्र

युक्तप्रान्त के अेक सेवकसदस्य श्री रामाधारजी ने अपनी सदस्यता का त्यागपत्र दिया और अध्यक्ष ने ता० ९ : ६ : ३९ को वह मंजूर किया है ।

कर्मचारी

दक्षिण महाराष्ट्र के देशी राज्यों के पुराने कार्यकर्ता श्री बालकृष्ण विठ्ठल शिखरे जून १९३९ से मासिक रु. ७५ के वेतन पर संघ के कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं । वे मिरज (महाराष्ट्र) में रह कर कार्य करेंगे ।

त्रैमासिक विवरण

चालू वर्ष की दूसरी तिमाही जून के अन्त में पूरी हो गअी है । जिन सदस्यों ने अपने विवरण अभी तक नहीं भेजे उनसे प्रार्थना है कि वे अपने विवरण शीघ्र भेजें । जो सदस्य अपना स्वतन्त्र आश्रम और केन्द्र चलाते हैं, और अुसके लिअे सार्वजनिक चन्दा अिकट्ठा करते हैं, उन्हें सूचना है कि त्रैमासिक विवरण के साथ वे अपने केन्द्र के आयव्यय के हिसाब भी अवश्य भेजने का खयाल रक्खें ।

र. श्री. धोत्रे,
मंत्री, गांधी सेवा संघ.

गांधीजयन्ति

गांधीजयन्ति के विषय में श्री नारायणदास भाई गांधी (राष्ट्रीय शाला, राजकोट, काठियावाड) का परिपत्र इस अंक में अन्यत्र, छपा है । मैं आशा करता हूं कि संघ के सदस्य उनकी सूचना का सहर्ष स्वागत करेंगे और २ अगस्त से १० अक्टूबर तक के ७० दिनों में कुछ विशेषरूप में सूत्रयज्ञ करेंगे । जो कुछ वे निश्चय करें उसकी सूचना कृपया श्री नारायणदास भाई को दें ।

कि. घ. मशरूवाला
अध्यक्ष गां. से. सं

हिन्दी साहित्य-प्रेमियों और पुस्तकालयों के लिअे सुवर्ण सुयोग

हिन्दी साहित्य-प्रेमियों और पुस्तकालयों को यह जानकर हर्ष होगा कि हमारी संस्था को (३००) तीन सौ रुपये दान में प्राप्त हुअे हैं। अतः हमने अपना लोकप्रिय राजनीतिक साहित्य प्रचार की दृष्टि से सस्ते मूल्य में देना निश्चय किया है। अिस निश्चय के अनुसार सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक रामनारायण 'यादवेन्दु' बी. ए. एल-एल. बी. की दो पुस्तकें-'भारतीय शासन विधान' और 'समाजवाद : गांधीवाद' जिनका मूल्य क्रमशः रु. २, और ।।= है—आधे मूल्य पर देना निश्चय किया गया है। अिस प्रकार २।।= मूल्य का ४०० से अधिक पृष्ठों का ठोस राजनीतिक साहित्य केवल १।- में मिल सकेगा। ।= डाक-व्यय अलग देना पड़ेगा।

अतः जो सज्जन अिस सुअवसर से लाभ अुठाना चाहें, अुन्हें १।।। मनीआर्डर द्वारा भेज देना चाहिअे। केवल २०० ग्राहकों के लिअे ही यह रिआयत है। अतः पुस्तकें शीघ्र मंगावें।

मैनेजर
नवयुग साहित्य निकेतन
राजामंडी-आगरा यू. पी.

ग्राहकों से—

हमारे निवेदन के अनुसार कुछ ग्राहकों ने अपना अिस साल का चन्दा भेजने की कृपा की है। कुछ ने 'सर्वोदय' भेजना बंद करने की सूचना दे दी है। अुनका भी हम अुपकार मानते हैं। जिन्होंने अब तक चन्दा नहीं भेजा है वे तुरन्त भेजने की कृपा करें। अगस्त के अन्त तक जिन ग्राहकों का चन्दा नहीं आयेगा अुनकी सेवा में सितंबर का अंक व्ही. पी. द्वारा भेजा जायगा। हमें विश्वास है कि 'सर्वोदय' के ग्राहक व्ही. पी. स्वीकारने की कृपा अवश्य करेंगे।

व्यवस्थापक,
सर्वोदय कार्यालय.

Reg. No. N. 741

लोकशक्ति का अधिष्ठान

आज सरकार लोकमत को बिसतंतु (कमल के कोमल तंतु), या तिनका समझ कर अुसकी अुपेक्षा कर रही है। लेकिन याद रहे कि ये तिनके अेक हो कर अुनकी रस्सी बनने पर, जैसा कि किसी कवि ने कहा है, "तृणैरावेष्टयते रज्जुर्यया नागोऽपि बध्यते," अिन्हीं तिनकों से हाथी भी बांधा जा सकता है। समुद्रकिनारे की रेत के कणों की तरह सिर्फ हजारों या लाखों आदमी अेकत्र करने से काम नहीं होता। पंढरपुर की यात्रा करने लाखों तीर्थयात्री आते हैं; परन्तु तुकाराम के समान मोक्ष प्राप्त करनेवाले व्यक्ति अुनमें कितने होते हैं? हजारों लाखों लोगों का समुदाय अेक निश्चय से बंधा हुआ होना चाहिअे। लोकमत की शक्ति निश्चय में है, न कि समुच्चय में। अूपर जो रज्जु का दृष्टान्त दिया गया है अुसका भी यही मतलब है। घास के तिनके अेक दूसरे पर रख कर अुनका ढेर लगा देने से कोअी काम नहीं बनता। अुसकी रस्सी बटनी पड़ती है; और अुसे अितना पक्का बल देना चाहिअे कि रस्सी भले ही जल जाये लेकिन बल कायम ही रहे! अैसी रस्सी बनने पर अुसमें मस्त हाथी का आकलन करने की ताकत आती है। हमारे देश का लोकमत तो हवा का बबूला है, तिनकों का रस्सा नहीं।

'केसरी', १५:८:१९०५ —लोकमान्य तिलक

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—बल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।



अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ।

सम्पादक
काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा | २ | सितम्बर १९३९

सर्वोदय कार्यालय
बजाजवाड़ी, वर्धा (मध्यप्रान्त)

अेक अंक... ...	रु० ०—६—०
वार्षिक	रु० ३—०—०
बर्मा में	रु० ३—८—०
विदेश में... ...	६ शिलिंग
	१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)	

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद ।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता ।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली ।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर ।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअूस, भागातळाव, सूरत

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

सितम्बर १९३९
वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

२

मंत्र—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः ।
अेवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥

अर्थ—यहां कर्म करते हुअे ही सौ वर्ष जीने की अिच्छा करना चाहिये । तेरे लिअे—देहवान् के लिअे—यही अेक मार्ग है । दूसरा मार्ग नहीं । आदमी से कर्म नहीं चिपकता, (कर्म का फल चिपकता है) ।

टिप्पणियां—(१) अितः= देह में रहते हुअे (२) यहां जीने की अिच्छा का विधान (आज्ञा) नहीं है । कर्म करने का विधान है । (३) गीता के कर्मयोग की याद दिलाने वाला गीता से पुराना, अितना स्पष्ट वाक्य और दूसरा अुपलब्ध नहीं है ।

मंत्र—असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ता ँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः ॥ ३ ॥

अर्थ—(आत्मा के विषय में जिन्हें अज्ञान है वे) आत्मघातकी लोग शरीर छूटने के बाद घने अंधेरे से घिरी हुअी आसुरी कहीजाने-वाली योनियों में जाया करते हैं ।

टिप्पणी—(१) अूपर के दो मंत्रों की सिखावन जो नहीं मानते वे लोग मनुष्य-जन्म का अधिकार गंवा कर आत्मज्ञान का रास्ता ही कुंठित कर देते हैं । मंत्र (२) के 'नरे' पद में यह अर्थ सूचित है ही ।

(मराठी से अनूदित)

संस्कृत की पुत्रियों के लिअे अेक लिपि

भारतवर्ष की जो भाषायें संस्कृत की औरस या दत्तक कन्यायें हैं अुनके लिअे अेक ही लिपि होनी चाहिअे यह प्रश्न लोगों के सामने आज कअी वर्षों से है। तो भी आक्रमणशील प्रान्तीयता के अिस जमाने में अेक लिपि की हिमायत करना शायद हिमाकत समझी जाये। लेकिन सारे देश में साक्षरताप्रचार के आन्दोलनों की जो धूम मच रही है अुसके कारण अेक लिपि के हिमायतियों की बात मजबूरन सुननी पडेगी। मैं बरसों से अेक लिपि का पुरस्कर्ता रहा हूं। मुझे याद है कि जब मैं दक्षिण आफिरका में था तब भारत में रहनेवाले कुछ खास गुजरातियों के साथ पत्रव्यवहार करने में मैंने नागरी लिपि का व्यवहार शुरू कर दिया था। अिसमें शक नहीं कि अेक लिपि के स्वीकार से आन्तर्प्रान्तीय व्यवहार बहुत सुगम हो जायगा और विविध प्रान्तीय भाषाओं के सीखने में आज की अपेक्षा कहीं ज्यादा आसानी होगी। देश के शिक्षित लोग अगर मिल कर विचार करें और अेक लिपि के व्यवहार का निश्चय करें तो अुसका सार्वत्रिक स्वीकार आसानी से हो जायगा। जो करोडों लोग निरक्षर हैं वे अिसके विषय में बिलकुल अुदासीन हैं कि अुन्हें कौनसी लिपि सिखायी जाती है। अगर हमारे प्रयत्नों की परिपूर्ति अिस सुपरिणाम में हो जाये तो हिन्दुस्थान में दो ही लिपियां रहेंगी—देवनागरी और अुर्दू। और हर अेक राष्ट्रवादी दोनों सीखना अपना फर्ज समझेगा। मुझे सभी भारतीय भाषाओं से अनुराग है। यथासम्भव अधिक से अधिक लिपियां सीखने की मैंने कोशिश भी की है। यदि मेरे पास समय होता तो सत्तर वर्ष की अुम्र में भी मुझमें और भी भारतीय भाषायें सीखने की शक्ति है। वह मेरे लिअे दिल बहलाने का साधन होगा। लेकिन अिन भाषाओं के प्रति अितना प्रेम होते हुअे भी मुझे यह कबूल करना ही होगा कि मैं सब लिपियां नहीं सीख पाया हूं। लेकिन यदि सारी सहोदर भाषायें अेक लिपि में लिखी जायें तो सारी मुख्य मुख्य प्रान्तीय भाषाओं का कामचलाअू ज्ञान मैं बहुत थोडे समय में प्राप्त कर लूंगा। और खूबसूरती तथा प्रमाणबद्ध सुडौलता में देवनागरी को लज्जित होने जैसी अुसमें कोअी बात नहीं। मैं आशा करता हूं कि जो लोग साक्षरता के आन्दोलन में व्यस्त हैं वे क्षणभर के लिअे मेरे सुझाव का विचार करेंगे। यदि वे देवनागरी लिपि ग्रहण कर लेंगे तो वे भावी पीढियों के अपार परिश्रम और समय की बचत करेंगे और अुनके आशीर्वाद के अधिकारी होंगे।

हरिजन
ता० ५:८:१९३९ } मो. क. गांधी.

राष्ट्रभाषा यों बनेगी

[काका कालेलकर]

राष्ट्रभाषा के आन्दोलन से कअी हिन्दू घबडा गये हैं। काफी मुसलमान भी घबरा गये हैं। और जिनके बीच राष्ट्रभाषा का प्रचार हो रहा है अुन प्रान्तीय भाषा-भाषी लोगों में से भी चंद लोग अपनी अपनी प्यारी मातृभाषा को खतरा देख कर घबडा गये हैं। अिसलिअे फिरसे अेक बार अुनकी शंकानिवृत्ति करनी चाहिअे।

हम जो राष्ट्रभाषा का प्रचार करनेवाले हैं अुनके भी अपनी अपनी जन्मभाषा, यानी स्वभाषा, है। अुसे शुद्ध रखने का, अुसकी परंपरा संभालने का और अुसका साहित्य समृद्ध कराने का हम भी प्रयत्न करते रहते हैं। मराठी का ही अुदाहरण लीजिये। ब्रिटिश राज के प्रारंभ के दिनों में जब मिशनरियों ने मराठी द्वारा अपना धर्मप्रचार करने के लिअे अुस भाषा में बोलना और लिखना शुरू किया तब अुन्होंने मराठी का स्वरूप बहुतकुछ बिगाडा। अुस समय हम लोगों ने मिशनरियों का अैसा घोर विरोध किया कि अुन्होंने फिरसे मराठी का वैसा अपराध करने की हिम्मत नहीं की।

गुजराती में भी जबकभी किसीने गुजराती की शैली बिगाडी है, तब गुजरात के लोगों ने अपनी भाषाशुद्धि के लिअे कुछ न कुछ आवाज अुठायी ही है।

अतः हम लोग हिन्दी की स्वाभाविक शैली को बिगाडने का प्रस्ताव हरगिज नहीं करेंगे। हिन्दी साहित्य की जो परंपरा तुलसीदास, सूरदास, कबीर, भूषण, रसखान, रहिमन आदि लेखकों के द्वारा प्रवृत्त हुअी है, अुसे तोडने का प्रयत्न हमसे कभी भी नहीं होगा। भाषा हरेक जाति का आत्मिक धन है। भाषाशुद्धि का आग्रह चारित्र्यशुद्धि के आग्रह के समान ही है। हिन्दी साहित्य की परंपरा अक्षुण्ण रखने के लिअे जो लोग प्रयत्न करते हैं अुनके प्रति हमारे मन में हमेशा आदर ही रहा है। फुटकर बातों में अुनका हमारा मतभेद हो सकता है। हम अपनी दृष्टि अुन्हें समझाने की पराकाष्ठा करेंगे। किन्तु अुन्हें हम अपने शत्रु तो नहीं समझेंगे। जबतक अुनका और हमारा अुपास्य-दैवत अेक है तबतक अुनके और हमारे बीच मनोमालिन्य कभी भी पैदा नहीं हो सकता। किसी रामभक्त से अगर मेरी न बने तो अुसको फिरसे जीत लेने का मेरे पास अेक ही अच्छा अुपाय है। वह यह कि मैं अपनी रामभक्ति और रामसेवा बढाअूं और यह विश्वास रक्खूं कि रामकृपा से सब रामभक्त मुझे अनुकूल ही हो जायेंगे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला अधिवेशन में साहित्यिक हिन्दी के स्वरूप की जो व्याख्या की गयी अुसका स्वीकार मैंने सच्चे हृदय से किया था। मैंने अुसका स्वीकार समझौते के तौर पर नाराजी से नहीं किया था। मैं यही समझाने की कोशिश करता था कि जो वस्तु स्वयंसिद्ध है अुसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं। राष्ट्रभाषा की शैली और साहित्यिक हिन्दी की शैली में जो भेद रहना स्वाभाविक है अुसे हम

समझ जरूर लें; किन्तु अुसपर जोर दे कर दोनों के बीच नाहक विरोध का वायुमंडल न पैदा करें। अुससे तो अंतर बढेगा। खैर। शिमला में दो व्याख्यायें स्पष्ट तो हुअीं; किन्तु हम अेक दूसरे से दूर न गये, कुछ निकट ही आये।

मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषायें जैसी संस्कृत कटुब की हैं, अुसी प्रकार हिन्दी भी संस्कृत कुटुब की ही है। संस्कृत भाषा संस्कार, समृद्धि और विकासक्षमता की दृष्टि से दुनिया की प्राचीन या अर्वाचीन किसी भी भाषा से कम नहीं है। अैसी हिरासत हमें मिली है अिसपर हमें अभिमान है। संस्कृत का द्रोह हमसे कभी भी नहीं होगा। अगर हमने मध्यकाल में अंधे बन कर देववाणी का प्रचार रोका न होता तो हमारे देश की आज जैसी दुर्गति हुअी है वैसी न हुअी होती। प्राचीन ब्राह्मणों ने जब सामान्य जनता को संस्कृत से वंचित रक्खा, और अुस भाषा को कृत्रिम रूप दिया तभी लोकसेवकों को लोकभाषाओं का सहारा लेना पडा। संस्कृतवाणी जब से देववाणी हो गयी तभी से वह दिवंगत भी हो गयी।

मनुष्य जिस तरह अपने पुत्रों के द्वारा नया जन्म और नया यौवन प्राप्त कर लेता है अुसी तरह हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलगू, मल्याळम् आदि भाषाओं में हम संस्कृत को ही पुनरुज्जीवित देख सकते हैं। किन्तु अिन भाषाओं ने संस्कृत से संस्कार तो प्राप्त किये परन्तु अपनी लोकसुलभता नहीं छोडी। यों देखा जाय तो हाथ, पाँव, कान, नाक, आग, पानी, आदि नित्य व्यवहार के शब्द संस्कृत से ही आये हुअे हैं। हिन्दी तो क्या, सच्ची अुर्दू भी संस्कृतजन्य शब्दों से भरी हुअी है। जिन मुसलमानों ने और हिन्दुओं ने अुर्दू से रूढ देशी शब्द हटा कर अुनके स्थान पर अरबी फारसी के शब्द बढा दिये अुन्होंने अुर्दू भाषा की और समाज की सेवा नहीं की है। अुर्दू शुद्ध स्वदेशी भाषा होते हुअे भी अुसे स्वदेश के लोगों के लिअे ही दुर्बोध बना कर अुन लोगों ने अुर्दू की अुपयोगिता और राष्ट्रीयता घटा दी। भाषा का सामर्थ्य दो तरह से व्यक्त होता है—अुसकी संस्कारसमृद्धि से और अुसके प्रचलन के विस्तार से। हिन्दीवाले और अुर्दूवाले अगर अपनी अपनी भाषा दिन पर दिन कठिन बनाते जायेंगे तो शायद अिन भाषाओं की संस्कारसमृद्धि बढे। (भाषा कठिन करने से अुसकी संस्कारसमृद्धि बढती ही है अैसा तो अभी सिद्ध नहीं हुआ है। अत्यंत संस्कारी भाषा भी बहुत बडी हद तक लोकसुलभ बनायी जा सकती है)। किन्तु भाषा जैसे जैसे कठिन होती जाती है वैसे वैसे अुसका प्रचलन अवश्य ही कम होने लगता है।

भाषा का प्रचलन बढाने के लिअे दो सिरों से प्रयत्न होना आवश्यक है। अेक तरफ से भाषा अत्यंत सुलभ हो और दूसरी तरफ से लोग अुसे भक्तिपूर्वक सीखने का प्रयत्न करें। तभी भाषा का प्रचलन बढ सकेगा। आज मुसलमान लोगों की यह वृत्ति देख पडती है कि, "राष्ट्रभाषा सार्वभौम बनाने के लिअे हम तो अेक भी नया शब्द नहीं सीखेंगे। जो भाषा हमें आती है अुसीके अंदर तुम राष्ट्रभाषा को बिठा दो"। वे कहने लगे हैं कि साफ अुर्दू ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा है। जो मुसलमान हिन्दी, मराठी, गुजराती, या बंगला सीखे हैं वे जानते

हैं कि साफ अुर्दू से राष्ट्रभाषा का पूरा काम नहीं हो सकता। किन्तु अैसे मुसलमान बहुत ही कम हैं। मुसलमानों ने फारसी, अरबी और अंग्रेजी के सिवाय दूसरी कोअी भाषा सीखना ही मानों छोड दिया है। अिसमें शायद अुन्हींका सारा दोष नहीं है। ब्राम्हणों ने जहां अपने वैश्य शूद्रों को भी संस्कृत से वंचित रक्खा वहां मुसलमानों के बारे में हम यह शिकायत कैसे कर सकते हैं कि वे संस्कृत क्यों नहीं सीखते हैं? जिस तरह अंग्रेज लॅटिन और ग्रीक सीखते हैं, पारसी झेंद भाषा सीखते हैं, बहुतसे हिन्दू अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, पोर्तुगीज अथवा जर्मन सीखते हैं, अुसी तरह मुसलमानों को भी चाहिअे कि वे संस्कृत सीखें। अलीगड में अथवा दक्षिण हैदराबाद में चंद मुसलमान संस्कृत सीखते तो हैं। किन्तु अुनकी संख्या बहुत ही कम है।

संस्कृत की बात छोड दीजिये। कम से कम हिन्दुस्थान की प्रान्तीय भाषायें तो मुसलमानों को अच्छी तरह सीखनी चाहिअें। तिजारत करने वाले, मिहनत, मजदूरी, खेती और हुन्नर पर गुजर करने वाले मुसलमान प्रान्तीय भाषा सीखते हैं। क्यों कि अुनकी जडें समाज के अन्दर पैठी हुअी हैं। किन्तु जो लोग अंग्रेजी के सहारे और तनख्वाह, पेन्शन, फीस के सहारे समाज से अलग रह सकते हैं वे तो अंग्रेजी से ही अपना सारा व्यवहार चलाना सीखे हैं। स्वाभिमान को संतोष देने के लिअे अरबीफारसी से लदी हुअी अुर्दू को वे आश्रय देते ह और अपने जैसे लोगों के अन्दर ही वैसी अुर्दू का व्यवहार करते हैं। पंडिताबू हिन्दीवालों का भी करीब करीब यही हाल है।

अैसे लोगों को जबतक समाज की पर्वाह नहीं है, लोकसेवा की और लोकजागृति की चाह नहीं है, तबतक अंग्रेजी अुनके लिअे काफी है। साहित्यविकास के लिअे भले ही वे हिन्दी के या अुर्दू के भक्त हों, अुनसे राष्ट्र का या राष्ट्रभाषा का निर्माण होना नामुमकिन है। राष्ट्रभाषा की चर्चा अगर अितनी कठिन और कटु हो गयी है तो अुसका अेक कारण ये लोग भी हैं।

हिन्दुस्थान की राष्ट्रभाषा के बारे में आजतक हम चर्चा ही चर्चा करते रहे हैं। अब वह समय आ गया है जब कि अमली रूप से राष्ट्रभाषा का निर्णय करना पडेगा। अिस लिअे राष्ट्रभाषा के स्वरूपनिर्णय के चन्द सिद्धान्त यहां पर अिकट्ठे किये जाते हैं।

सबसे पहली बात यह है कि राष्ट्रभाषा के संगठन पर देश के सब प्रभावशाली तत्त्व अपना अपना असर कर सकते हैं, तो भी अिसमें किसी की जबरदस्ती नहीं चलेगी। कोअी खास भाषा चलाने न चलाने की जबरदस्ती दुनिया भर के लोगों ने करके देखी है लेकिन अुसमें कोअी कामयाब नहीं हुअे। रोम के बादशाह और अुनके कुटुम्बी लोग अपने गुलामों के सामने अपनी पवित्र लॅटिन भाषा बोलते ही नहीं थे। अपनी श्रेष्ठ भाषा का अुच्चारण अपवित्र लोगों के कानों पर जाने से भाषा अपमानित होती है। यहूदियों में और हमारे देश के ब्राह्मणों में भाषा के बारे मे यही वृत्ति थी कि हमारी भाषा दूसरा कोअी न सुने, न सीखे, न पढे, न लिखे।

अिसके बाद वह जमाना आया जब अपनी अपनी जबान का साम्राज्य स्थापित करने की अिच्छा आदमियों को होने लगी। तुम अपनी भाषा छोडो और हमारी ही भाषा बोलो

अैसा आग्रह जिन लोगों से होने लगा। बहिष्कार और अंगीकार दोनों नीतियां मनुष्यों ने चला कर देखीं। दोनों नीतियों में गुण भी हैं और दोष भी हैं। किन्तु दोनों व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हैं।

भाषा का प्रवाह प्रधानतया नदी के जैसा है। अुसके प्रवाह पर हम असर जरूर डाल सकते हैं; किन्तु नदी की केवल नहर नहीं बना सकते। आअिन्दा बना भी सकें तो भी वे दिन अभी नहीं आये हैं।

राष्ट्रभाषा का संगठन करने के पहले भाषा की दृष्टि से अिस देश के अितिहास को देखना चाहिये। अुस अितिहास का कोअी अिनकार नहीं कर सकता। भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों का खयाल करनेवाले जो त्रिकालज्ञ समाजशास्त्री हों वे ही राष्ट्रभाषा का निर्णय और निर्माण कर सकेंगे।

हमारे देश में प्रान्त प्रान्त में भिन्न भिन्न बोलियां अलग अलग चलती आयी हैं। सारे देश में अेक ही भाषा कभी थी अिसका सबूत हमारे पास नहीं। अिन सब प्रान्तीय भाषाओं को 'कुदरती,' 'स्वाभाविक' अथवा 'प्राकृत' कहते थे। अिन प्राकृत भाषाओं के जो निजी शब्द थे अुनके लिअे हमारे पुरखाओं की संज्ञा थी 'देश्य'। (आज हिन्दुस्थान सरकार ने 'व्हर्नाक्युलर' के लिअे अेक स्वदेशी शब्द मांगा है। 'व्हर्नाक्युलर' के लिअे–प्रान्तीय भाषाओं के लिअे—हमारा शब्द है 'देश्य' अथवा 'देशी'। जो भाषा पर-देशी नहीं है अथवा संस्कृत, अरबी, फारसी जैसी 'क्लासिकल' नहीं है वह भाषा हिन्दुस्थान की देशी अथवा देश्य भाषा है।)

अिन सब प्रान्तीय भाषाओं में अेकता लाने की चेष्टा देश के संस्कारी नेताओं ने की। अिस अेकता लानेवाली संस्कारसंपन्न सुसंस्कारित भाषा का नाम था 'संस्कृत'।

संस्कृत भाषा नियमबद्ध थी, स्थिर थी, सर्वत्र चलती थी और अुन दिनों वह आसान भी थी। वही हमारी राष्ट्रभाषा थी।

अेक महत्त्व की बात हमें नहीं भूलनी चाहिये। **संस्कृत जबतक आसान थी तबतक उसका असर हमारी सब प्रान्तीय भाषाओं पर हुआ।** पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैदक और भक्तिसाहित्य, अितनी बातों में संस्कृत ने हमारी सभी देशी भाषाओं पर असर डाला है। संस्कृत ही हमारी स्वयंभू, सनातन और असली राष्ट्रभाषा थी। अगर हम संस्कृत के अथवा संस्कृत से बने हुअे तमाम शब्दों को हिन्दुस्थान की भाषाओं से निकाल डालें तो हमारी सब की सब भाषायें अितनी दरिद्री बन जायेंगी कि सारा राष्ट्र गूंगा और असंस्कारी हो जायगा। संस्कृत हमारे ही देश की भाषा है। हमारे ही पुरखाओं ने अुसे बनाया और बढाया। आज भी हिन्दुस्थान में संस्कृत का असर आबोहवा के जैसा ह। संस्कृत के शब्द अगर किसी भी भाषा से, वे केवल संस्कृत से आये हैं अिसलिअे, निकाल डालने की कोशिश कोअी भाषा करेगी तो वह भाषा स्वदेशी नहीं रहेगी। देश के करोडों मुसलमान जिन शब्दों को जानते हैं और दिनरात बोलते हैं अुनको हटा हटा कर अुनकी जगह अरबी फारसी के शब्द ला ला कर धर देने से मुसलमानों ने अुर्दू का और अपने समाज का कितना नुकसान किया है यह वे आज समझ नहीं सकेंगे। लोगों को जिनका परिचय नहीं है अैसे संस्कृत के

शब्द भाषा में लाने का प्रयत्न जितना सदोष है अुतना ही सदोष वह प्रयत्न है कि जिससे मुसलमान लोग अरबी फारसी के शब्द ला कर अथवा बना कर देशी शब्दों को हटा रहे हैं। हिन्दुओं को हम कहते हैं कि आपको भूलना नहीं चाहिये कि हमारे देश में हमारे ही भाओी करोडों मुसलमान हैं जिनके साथ जिसे वे समझ सकें अैसी भाषा में आपको बोलना होगा। भाषा कोओी अैसा पीताम्बर नहीं है जिसका कि व्यवहार हम केवल धर्मविधि में और पूजा के समय ही अपने लोगों के बीच कर सकें। भाषा तो जीवनविनिमय का साधन है। अिसमें आदान-प्रदान तो चलता ही रहेगा। मुसलमानों से भी हम नम्रता के साथ कहना चाहते हैं कि आप केवल देशी प्रत्यय, सर्वनाम और अैसे थोडे शब्द रख कर बाकी सब की सब अरबी फारसी अपनी अुर्दू में भर देंगे तो फिर वह देशी बोली नहीं रहेगी। अंग्रेज लोगों ने अपनी अलग ही भाषा चलायी है क्यों कि अुन्हें अिस देश में बसना नहीं है। वे हमेशा जाने की तैयारी में ही यहां रहते हैं। आपकी बात वैसी नहीं है। आपमें से बहुत से लोग कभी परदेश से यहां आये ही नहीं। यहीं के हैं। अिसाओी लोगों के लिअे जैसा यहूदी शास्त्र, 'ओल्ड टेस्टामेंट' है वैसा आपके लिअे हिन्दू संस्कृति 'ओल्ड टेस्टामेंट' है। हिन्दू संस्कृति के पेड पर आप अिस्लाम का कलम लगा सकते हैं। अगर आप देशी संस्कृति को बिलकुल छोड देने की बात करेंगे तो वैसा भी करने का आपको अधिकार तो है; किन्तु आप कर नहीं सकेंगे। वह मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध है। मनुष्यसंस्कृति का प्रवाह अुस ढंग से कभी बहा नहीं है। स्वदेशी संस्कृति का पोषण ले कर ही आप अिस्लाम को परिपुष्ट कर सकेंगे और हिन्दुस्थान में अपना जीवन समृद्ध और दृढ-मूल कर सकेंगे। अुर्दू आपमें से बहुत से लोगों की जन्मभाषा है। बाकी के मुसलमानों के लिअे अुन अुन प्रान्तों में की प्रान्तीय भाषा ही अुनकी जन्मभाषा है। अुनको हटाकर वह स्थान आप अुर्दू को देने की कोशिश कर सकते हैं। वैसा करने के लिअे बहुत बडी मिहनत करनी होगी और अुतना करने के बाद भी आप यह महसूस करेंगे कि अुससे आपने कुछ नहीं कमाया।

संस्कृत और फारसी दोनों भाषाओं की संस्कारशक्ति अजीब है। पढेलिखे लोगों को चाहिअे कि वे दोनों के साहित्य से लाभ अुठावें। ये दो भाषायें अेक दूसरे की दुश्मन नहीं हैं, बल्कि बहनें बहनें हैं। जब यहां मुसलमानों का राज था तब बडे बडे लोग दोनों भाषाओं का अध्ययन करते थे। आज अुर्दू और फारसी का अध्ययन करनेवाले हिन्दू अुत्तर हिन्दुस्थान में बहुतसे पाये जाते हैं। किन्तु हिन्दी और संस्कृत का अभ्यास करनेवाले मुसलमान कितने हैं? और जो हैं वे अिन भाषाओं से कितना लाभ अुठा रहे हैं?

अेक बात स्पष्ट है। हम किसी पर किसी किस्म की जबरदस्ती नहीं करना चाहते। जिनको भाषा का प्रवाह जिस तरफ खींचना हो, खींच सकते हैं। भाषा तो राष्ट्रहृदय का प्रतिबिम्ब है। अगर हम अलग अलग ही रहना चाहते हैं और केवल अपनी गुलामी के बन्धन से ही अेकत्र बंधे रहना पसन्द करते हैं, तो हमारी भाषायें आप ही आप अलग अलग हो जायेंगी और सारे देश का व्यवहार

अंग्रेजी की गुलामी कबूल कर के ही चलेगा।

मैंने अक्सर देखा है कि जो लोग राष्ट्रभाषा-निर्माण में समझौता करना नहीं चाहते और अपनी ही तरफ खींचना चाहते हैं अुनको अंग्रेजी भाषा की गुलामी कम अखरती है। अथवा यों कहिये कि कुछ प्रिय ही लगती है। अैसे लोग अक्सर प्रान्तीय भाषाओं को खतरा बता कर अपनी अंग्रेजीपरायणता ढांकना चाहते हैं।

हम अितना देख चुके हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी प्रान्तीय भाषायें असल में संस्कृत कुटुम्ब की हैं। अिसलिअे दोनों में आसान और लोकरूढ संस्कृत शब्दों की बहुतायत होगी ही। जिनको यह बहुतायत कबूल न हो अुन्हें मानों हिन्दुस्थान में रहना ही कबूल नहीं है। अगर वे रहे भी तो जैसे अंग्रेज लोग जहाज पर सवार होने की तैयारी में ही हिन्दुस्थान में रहते हैं वैसा ही वे भी रहना चाहते हैं। हिन्दुस्थान में रहनेवाले लोगों का अेक या अधिक प्रान्तीय भाषायें सीखे बिना चलेगा ही नहीं। हिन्दुस्थान के अँग्लोअिंडियन लोगों ने आजतक यह बात स्वीकार नहीं की थी। अब वे भी वस्तुस्थिति समझने लगे हैं और अपना रुख बदलने लगे हैं।

हमे यह भी स्वीकार करना होगा कि अिस देश में हिन्दू संस्कृति को जैसा स्थान है वैसा ही अिस्लामी संस्कृति को भी है। फारसी, यहूदी, अीसाअी आदि छोटीमोटी सब संस्कृतियों को भी अिस देश में हिन्दू और मुसलमान संस्कृति के जितना ही स्थान है। अिसके मानी ये होते हैं कि अिन सब संस्कृतियों को विराट भारतीय संस्कृति का अंग बन कर अथवा कुटुम्बीजन बन कर रहना मंजूर है। जो रोज अुठ कर आपस में लड़ना ही पसंद करते हैं वे अिस देश के बाशिन्दे नहीं हैं। किन्तु देश के लिअे शापरूप हैं। हिन्दू और मुसलमान, शिया और सुन्नी, प्रॉटेस्टेंट और कॉथालिक, हिन्दू और अीसाअी अैसे झगडे हिन्दुस्थान में जो लोग चलाते हैं वे देश का द्रोह करते हैं। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से पाप करते हैं। अुनका जीवन अुनके लिअे और देश के लिअे अेक अभिशाप है।

हमारी राष्ट्रभाषा में हिन्दी के लोकरूढ सब के सब शब्दों का स्थान होना ही चाहिअे। जनता जिन शब्दों को जानती है अुनको राष्ट्रभाषा में रहने का पूरापूरा हक है। फलाना शब्द अुर्दू में नहीं पाया जाता अिसलिअे राष्ट्रभाषा में अुसका प्रयोग नहीं करना चाहिअे, चाहे हिन्दुस्थान के करोडों लोग अुसे क्यों न जानते हों, अैसा कहनेवाला आदमी राष्ट्रभाषा को पहचानता ही नहीं। राष्ट्रीय अेकता तो वह चाहता ही नहीं है।

अुसी तरह अुत्तर भारत में अरबी, फारसी के जो शब्द लोगों में रूढ हो चुके हैं वे हिन्दी में आजकल नहीं लिखे जाते अथवा, वे परदेशी हैं अिसलिअे जो अुनका बहिष्कार करना चाहते हैं, वे भी राष्ट्रभाषा का रहस्य नहीं समझ पाये हैं। अरबी फारसी के जो शब्द लोग आसानी से समझ सकते हैं वे सब शब्द राष्ट्रभाषा में आने के हकदार हैं। हिन्दुओं को, और खास कर अहिन्दी प्रान्त के लोगों को, बहुतसे अरबी फारसी शब्द सीखने पडेंगे। मुसलमानों को सब की सब देशी भाषाओं में जो नये नये शब्द रूढ होने लगे हैं, सीखने पडेंगे। यहां कायरपन नहीं चलेगा। हम नहीं जानते हैं अिसवास्ते

फलाना शब्द राष्ट्रभाषा में नहीं आ सकता असा कह कर राष्ट्रभाषा को क्षीण और दुर्बल बनाने का किसी को अधिकार नहीं है। भाषा के शब्द किसीको अेक ही दिन में नहीं सीखने पडते। जीवनव्यवहार जैसे जैसे समृद्ध होता जाता है वैसे वैसे शब्दसंग्रह भी बढता जाता है।

अब अेक बात दक्षिण की ओर से हमें कहनी है। अगर राष्ट्रभाषा सारे देश की भाषा है, और सब के व्यवहार के लिअे है, तो अुत्तर भारत के लोगों को हमारी सहूलियत भी देखनी होगी। असमिया, बंगला और अुडिया भाषा का अेक संघ है। सिंधी गुजराती और मराठी का दूसरा संघ है। कन्नड, तेलगू, मल्याळम् का तीसरा संघ है। तमिल को भी अुसीमें शुमार कर सकते हैं। अिन भाषाओं में अैसे बहुतसे शब्द हैं जो अुर्दू में पाये जाते हैं, और बहुतसे अैसे भी शब्द हैं कि जो हिन्दी में पाये जाते हैं। हम लोगों के लिअे अैसे समान शब्द अेक बडा सहारा है, क्योंकि वे हमें सीखने नहीं पडते। अुर्दू का अच्छा शब्दकोष और हिन्दी का अच्छा शब्दकोष ले कर अिन दोनों में से जो शब्द हमारी भाषा के लिअे नजदीक के हैं अुन्हें हम अधिक संख्या में राष्ट्रभाषा में देखना चाहते हैं। क्योंकि हमारी दृष्टि से और देश की दृष्टि से भी अिन शब्दों का राष्ट्रीयत्व (सार्वदेशीय व्यवहार) स्वतःसिद्ध है। राष्ट्रभाषा आपकी अुत्तर भारतीय ही सही; हिन्दी-अुर्दू का शब्द-संग्रह ले कर हमें चलाना है यह भी सही; लेकिन अिनमें से जो शब्द हमारे लिअे नजदीक के हैं, परिचित हैं, और राष्ट्रीय हैं, अुन्हें ज्यादा पसन्द करने का अधिकार भी तो हमारा है न ? अगर आप अिसके विपरीत चलेंगे, और राष्ट्र-भाषा को केवल अुत्तरी स्वरूप देंगे तो हमारी और आपकी बनेगी नहीं। जिसे आप राष्ट्र-भाषा के तौर पर हमारे सामने पेश करेंगे अुसे हम प्रान्तीय या प्रादेशिक भाषा कहेंगे। हिन्दी को और अुर्दू को जैसे आपस में समझौता करना पड रहा है वैसे ही आपकी अुत्तरप्रान्तीय अथवा प्रादेशिक हिन्दुस्थानी को हमारी बनायी हुअी राष्ट्रभाषा के साथ भी करना पडेगा। अुत्तर भारत के हिन्दूमुसलमानों को यह ध्यान में रखना होगा कि अुनके अुत्तरी झगडे हम दक्षिण में नहीं लाना चाहते। अुनसे आज यह भी कह देना चाहते हैं कि सौ दो सौ वर्षों के अन्दर, अथवा अुससे भी पहले, राष्ट्र-भाषा में वे अैसे भी शब्द घुसे हुअे पायेंगे जो दक्षिण की चार भाषाओं में सर्वसाधारण हैं। 'पानी' और 'जल' के साथ साथ राष्ट्रभाषा में 'नीर' शब्द भी चलेगा। 'सुपारी' और 'कसेली' के साथ 'अडकी' भी आपको सुनना पडेगा। हिन्दी में मुसलमानी राज्य के कारण जिस तरह आरबीफारसी के शब्द घुस गये, ब्रिटिश राज्य के कारण जैसे अंग्रेजी के शब्द हमारी सभी भाषाओं में घुस रहे हैं, वैसे ही हमारे बन्धुतापूर्ण सहयोग के कारण थोडेबहुत द्राविडी शब्द भी राष्ट्रभाषा के अन्दर प्रवेश पा लेंगे। और लाचारी से नहीं किन्तु केवल प्रेम से आप अुनका स्वागत करेंगे।

अेक तरफ राष्ट्रभाषा को सब प्रान्तीय भाषाओं के करभार से हमें समृद्ध करना होगा और दूसरी तरफ से राष्ट्रव्यवहार सुलभ करने के लिअे अैसा अेक शब्दसंग्रह देश के सामने पेश करना होगा जो बुनियादी अंग्रेजी की तरह सब जगह चल सके और

सब प्रकार के व्यवहारों में किसी भी प्रकार की कठिनायी न हो अितना समृद्ध हो। भाषा की यह पींड या धड चाहे जितना पतला क्यों न हो, परन्तु मजबूत हो। अिसी में से सब शाखाओं और प्रशाखाओं का विस्तार बढनेवाला है। यह बुनियादी हिन्दुस्थानी अथवा राष्ट्रभाषा का धड अुर्दू-प्रधान बनाने से काम नहीं चलेगा। देश में कोअी अुसका स्वीकार नहीं करेगा। अुसे हिन्दीप्रधान करने से भी हम शान्ति से अपना काम नहीं कर सकेंगे। बुद्धिमानी तो अिसमें होगी कि बुनियादी हिन्दी और बुनियादी अुर्दू के हजार हजार शब्द हम चुन लें और राष्ट्र से कहें कि समझने के लिअे हर अेक भारतवासी को ये दोनों शब्दसंग्रह जानने होंगे। अिस्तेमाल के लिअे हरअेक को अपनी अपनी सहूलियत के मुताबिक शब्द बरतने की आजादी होनी चाहिअे। हर अेक हिन्दुस्थानी का यह अनुभव है कि वह अंग्रेजी के जितने शब्द समझ सकता है अुतने सब शब्दो का व्यवहार नहीं कर सकता। अिसी तरह राष्ट्रभाषा के बुनियादी चार हजार शब्द अच्छी तरह जानते हुअे भी मैं अपनी लिखापढी में हजारेक शब्द बिलकुल अिस्तेमाल ही नहीं कर सकूंगा। अिसमें किसी का नुकसान नहीं। बुनियादी राष्ट्रभाषा की भी दो शैलियां होंगी। किन्तु सहूलियत यह रहेगी कि हर अेक का दोनों शैलियों से समझने लायक परिचय अवश्य रहेगा। अिसलिअे अेक का लिखना-पढना दूसरे के लिअे समझना मुश्किल नहीं होगा। हमारी रीडरें और अन्य पाठ्यपुस्तकें हम अैसी बनायेंगे कि दोनों शब्दसमुदायों से तालिबअिल्मों का अच्छा परिचय हो जाय और अुनके लिअे दोनों का व्यवहार भी आसान हो जाय।

राष्ट्रभाषा का सवाल हल करना हमारे लिअे आसान होना ही चाहिअे। जहां जबरदस्ती छोड दी और वस्तुस्थिति का स्वीकार कर लिया वहां रास्ता निकल ही आना चाहिअे।

अेक भूल-सुधार

श्री नारायणदास गांधी तथा श्री सीतारामशास्त्री ने अेक भूल की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित किया है, जो मुझसे काठियावाड के कताअी के कार्यक्रम पर नोट लिखने में हो गयी है। सत्तर लाख गज़ सूत सत्तर दिन में कातने के लिअे रोज अेक हजार गज़ कातनेवाले ७०० नहीं, किन्तु १०० चाहिअे, और रोज़ सौ गज कातनेवाले ७००० नहीं, किन्तु १००० चाहिअे। अिस भूल को मैं खुशी से सुधार देता हूं, पर मैं यह कहूंगा कि यदि ७०० या ७००० कातनेवाले भी कताअी-यज्ञ में भाग लें तो अिससे कोअी हानि नहीं होगी। जितने ही अधिक कातेंगे अुतना अच्छा।

('हरिजन सेवक' से) मो. क. गांधी

पाठक सर्वोदय के अगस्त् १९३९ के अंक में पृष्ठ ८, स्तंभ २, में अुपर्युक्त सुधार कर लें।

—सं.

कौअे की नजर से

९. आंख का अुपयोग

संपादक भाअी

बहुत दिनों से मैं सोच रहा था कि आप लोगों में कअी आदमी बडे होशयार, कअी साधारण, और कअी बिलकुल मूर्ख क्यों होते हैं ? दूसरे प्राणियों में मैं अितना फरक नहीं देखता। हम अुल्लुओं में तो सब में अेकसा सयानपन होता है और कौआ कहता है कि सभी कौअे अेकसे चतुर होते हैं। फिर आप लोगों में ही अितना भेद क्यों है ? आज जब कौआ आश्रम में वापस आया तब कोअी नयी चीज़ नहीं लाया था। अिसलिअे मैंने अुससे यह सवाल पूछा। तब वह बोला—

भुशुंडी—मैं भी अिस बात को पहले समझता नहीं था। लेकिन अेक दिन मैं गुजरात विद्यापीठ के चित्तरकला मन्दिर की बारी (खिडकी) में बैठा था। कअी लडके अेक नमूना देख देख कर चित्तर बना रहे थे। मैंने देखा कि वे जब जब नमूने की ओर देखते थे तो अपनी अेक आंख बन्द कर लेते थे। बात तो ठीक ही है। अेक साथ दोनों आखों से देखने से कभी ठीक नहीं दीखता, यह काक-विज्ञान-शास्त्र में मशहूर ही है। चित्तरकारों ने किसी न किसी तरह अिस बात को अनुभव से जान लिया है। अिसलिअे वे चित्र बनाते समय अेक ही आंख का अुपयोग करते हैं। लेकिन, मनुष्य का बुद्धि-विकास बहुत कम होने के कारण अितने अनुभव के बाद भी अुसे यह नहीं सूझता कि सही नज़र पाने के लिअे हमेशा अेक ही आंख से देखना चाहिअे। दोनों आखों से देखनेवालों को कभी किसी बात का ज्ञान नहीं होता। हम कौअे तो कभी दोनों आखों से अेकदम नहीं देखते। तुम में और मुझमें बुद्धि का जो भेद है, अुसका कारण यही है कि तुम्हारी दोनों आखें अेकसाथ देख सकती हैं। मनष्यों की भी यही बात है। अिसलिअे अुन्हें अपनी नज़र दुरुस्त करने के लिअे अेक आंख बन्द कर के ही देखना चाहिअे। मनुष्यों में कहा भी जाता है कि काना मनुष्य हमेशा होशयार होता है। और वे जो अपने कृपालानी हैं न ? अुनका भी अेक अैसा वचन है कि जगत के सभी बडे बडे पेगंबर हमेशा अेक ही आंख से देखते हैं। मामूली आदमी दोनों आखों से देखते हैं, अिसीलिअे अुनकी बुद्धि भी मामूली होती है।

मैं—तो क्या तुम्हारी यह राय है कि सब अुल्लुओं की और आदमियों की अेक अेक आंख फोड़ दी जाय ? अिससे क्या हम सब ज्यादा बुद्धिमान होंगे ?

भुशुंडी—आज की अपेक्षा तो जरूर होंगे। लेकिन वह तरीका तो ठीक नहीं। क्योंकि, फिर, तुम्हें या तो केवल दाहिने दीखेगा अथवा केवल बांयें। वह भी अधूरी नज़र ही रह जायगी। लेकिन दोनों आखें साबित रख कर मनुष्य पहले अेक आंख से देख ले, और फिर दूसरी आंख से देख ले; तो अुसे ज्यादा साफ नज़र आयेगा। मालूम होता है कि कृपालानी यही मानते हैं। वे कहते हैं बापू अेक ही आंख से देख सकते हैं, दोनों आंखों से किसी बात को नहीं देखते। और स्वयं कृपालानी के बारे में भी कअी लोगों को

यह जबरदस्त शंका है कि वे भी हमेशा अेक ही आंख से देखते हैं।

मैं–तब तो कृपालानी भी बापू के बराबर सयाने होंगे ?

भुशुंडी–कहां से हों ? जबतक अेक आंख से देखने की कला नहीं सीखते तब तक कैसे हों ? काकविज्ञान तो बापू में भी नहीं है, तो कृपालानी में कैसे हो सकता है ? हां, वे अेक ही आंख से देखते तो हैं। लेकिन अिस तरह कि कुछ महीनों–या सालों तक भी–सिर्फ दाहिनी आंख का अुपयोग करते हैं और बाद में फिर लगातार बाँयी ही बाँयी आंख का अुपयोग करने लग जाते हैं, और लम्बे अरसे तक फिर अुसीसे काम चलाते हैं। अैसे भद्दे अनुकरण से थोडे ही कभी कोअी कौआ बन सकता है ?

मैं–तो बापू में और तुममें क्या भेद है ?

भुशुंडी–हम प्रति क्षण अपनी दोनों आखों का बारी बारी से अुपयोग करते हैं। अितनी शीघ्रता से बापू अपनी दृष्टि बदल नहीं सकते। अुन्हें भी दाहिनी दृष्टि से बाँयी दृष्टि पर आने में कुछ समय लग जाता है। अिसलिअे अुन्हें मैं अेक 'बालकौआ' कह सकूंगा। और है भी अैसा ही।

मैं–क्या आंखों से देखने का दूसरा कोअी अैसा तरीका है जिससे बुद्धि बढ़ जाय ?

भुशुंडी–हां, कौअे और कानों में सब अेक आंखवालों का समावेश होता है। अिसमें काने को बुद्धिमान समझनेवाले लोग स्वयं बुद्धिमान नहीं होते। दो आंखोंवालों की अपेक्षा वे बुद्धिमान जरूर हैं। पर वास्तव में अुनमें ज्यादा बुद्धि नहीं होती। सिर्फ हिसाबी चतुराअी होती है। अब दो आंखवाले और कानों के बीचवाले कुछ डेढ़ आंखवाले भी होते हैं। वे बहुत बुद्धिमान न हों तो भी चतुर तो जरूर होते हैं।

मैं–कोअी डेढ आंखवाला कैसे हो सकता है ?

भुशुंडी–सारे चित्रकार अगर कोशिश करें तो डेढ आंखवाले हो सकते हैं। लेकिन चन्द लोग स्वभाव से ही वैसे होते हैं। अुनकी अेक आंख बडी या पूरी खुली हुअी और दूसरी आंख छोटी या कुछ मुंदी हुअी रहती है। कभी कभी वे दूसरी आंख भी पूरी खोल कर देख लेते हैं। जिस क्षण वे वैसा करते हैं, अुसी वक्त अुसमें से अेक चातुर्य की किरण निकलती है और वह सामने की चीज़ को समझ लेती है। अिस कारण वे चतुर होते हैं। अगर दोनों आखों से वे वैसा करते तो शायद कौअे की बराबरी भी कर सकते। लेकिन अुतनी शक्ति अुनमें नहीं होती। कअी लोग वैसा करने जाते हैं तो वे अैंचाताने बन जाते हैं। वे भी चतुर तो होते हैं, लेकिन काकचतुराअी और अुनकी चतुराअी में अुतना ही फरक है, जितना कि काकबुद्धि और काने की बुद्धि में।

मैं–अब मैं तुम्हारी अिस बार बार की आत्मप्रशंसा से अूब गया हूं। मैं ठीक समझ गया हूं कि तुम बडे बुद्धिमान और चतुर हो। बार बार दुहराने से तुम्हारी बातें सर्वोदय जैसे गांधीवादी पत्र में लिखने में मुझे संकोच होता है।

भुशुंडी–तो न लिखो ! मैंने कब कहा कि मेरी तुम्हारी सब बातचीत सर्वोदय में देनी ही चाहिअे। यह लो, आज से अब सर्वोदय के लिअे कुछ भी लिखना मना कर देता हूं।

मैं–नहीं, भाअी, अितना गुस्सा मत करो। मैंने तो थोडा कुछ तुम्हारे भले के ही लिअे कह दिया।

भुशुंडी—में गुस्से से नहीं कह रहा हूं। लेकिन में कौओ की बुद्धि—चतुराअी—का जिक्र आत्मश्लाघा के लिअे नहीं किया करता। वह अेक बडी सचाअी होने से स्वभाव से ही मुंह से निकल जाती है। अिसीपर तुम बिगड़ गये। तुम्हें मालूम नहीं कि कौअे का भी अपना अेक स्वभाव होता है। वह कितना भी ज्ञानी हो अुसके लिअे बिना 'का—का' करने और सडन खाने के दूसरा चारा ही नहीं है। वैसी ही यह आत्मप्रशंसावाली बात भी समझ लो।

मैं—अच्छा, भाअी, अच्छा। अब मैं भूल न करूंगा।

अैसी बात है, संपादक भाअी! अगर आप अयोग्य न समझें तो हमारे कौअे की आत्म-प्रशंसा का कुछ भाग काट दीजियेगा। मैं अुल्लू नहीं समझ सकता कि कितना काटना ठीक होगा और कितना नहीं।

आपका
आश्रम का अुल्लू

लिपियां दो या तीन ?

[काका कालेलकर]

थोडे दिन हुअे में मैंसूरराज्य में भ्रमण करने गया था। मैंसूरराज्य, वहां की आबोहवा, वहां की राज्यव्यवस्था, भाषा, साहित्य, स्थापत्य, संगीत, अुद्योगहुन्नर, आदि के बारे में मुझे अेक या अधिक लेख लिखने ही हैं। किन्तु मैंने अिस भ्रमण में दिये हुअे अेक व्याख्यान के कारण जो थोडीसी गलतफहमी पैदा हुअी है अुसे तुरन्त दूर करना मैं जरूरी समझता हूं।

मैंसूर विश्वविद्यालय के विद्यार्थीमंडल के सामने संस्कृति पर मुझे अेक व्याख्यान देना पडा। अपने रिवाज के अनुसार व्याख्यान के अन्त में मैंने प्रश्नोत्तरी को अवकाश दिया। वहां के अध्यापक और विद्यार्थी जानते थे कि भारतीय लिपियों के बारे में मैं अध्ययन कर रहा हूं और मेरे कुछ स्पष्ट मत भी हैं। कर्नाटक की भाषा और साहित्य के अध्ययन के अिस मूल केन्द्र में लिपि का प्रश्न छेड कर में हिन्दी को खतरे में डालना नहीं चाहता था। किन्तु जब वहां के लोगोंने मुझे अिस बात पर सीधा सवाल किया तब मैंने मीठी मीठी बातें करके जान बचाना पसन्द नहीं किया। मैंने कह दिया कि "मैं किसी भी भारतीय भाषा के लिये रोमन लिपि का अुपयोग करने के खिलाफ हूं। गोवा के रोमन कॅथालिक लोग कोंकणी भाषा रोमन लिपि में लिखते हैं। असम के पर्वतीय खसी लोगों को सौ बरस से वहां के मिशनरी लोगों ने अुनकी खसी भाषा रोमन लिपि द्वारा ही पढायी है। डेहराडून से निकलनेवाला सरकारी फौजी अखबार अुर्दू भाषा और रोमन लिपि में निकलता है। ये बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। में मिशनरियों से मिलने पर अुन्हें कह

देता हूं कि आपका मिशन अीसा के अुपदेश का प्रचार है न कि हमारी लिपियों का द्रोह करके हमारे देश में भाषा के अैसे छोटे छोटे टापू बनाना । अिससे वे लोग भारतीय लिपि के अज्ञान के कारण भारतीय साहित्य से ही वंचित रह जाते हैं ।

"मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्थान में दो ही लिपियां रह जायें। सब की सब प्रान्तीय भाषाओं के लिअे नागरी लिपि का ही प्रचार हो। क्योंकि वे सब संस्कृत कुटुम्ब की हैं। अुर्दू के लिअे फारसी लिपि है। क्योंकि मुसलमान समझते हैं कि अुसके द्वारा अुनकी संस्कृति की सुरक्षितता अबाधित रह सकती है।"

मैसूर के अुन संस्कारी श्रोताओं को मैंने प्रारंभ में ही कह दिया कि "अेक बात का आप यकीन रक्खें कि कराची कॉंग्रेस के जिस प्रस्ताव में भारतीय लोगों के मूलभूत—बुनियादी—अधिकारों का स्वीकार किया गया है अुस-में स्पष्ट कहा गया है कि भारत में किसी का धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य या लिपि जबरदस्ती नष्ट नहीं की जायगी; सब को अभयदान है। अिसके मानी ये हुअे कि पूर्ण स्वराज्य पाने पर भी सरकारी कानून से आपकी कन्नड लिपि का व्यवहार बन्द नहीं किया जायगा। कन्नड लिपि चलाना या न चलाना, अुसमें कोअी परि-वर्तन करना या न करना, अिसका निर्णय कर्नाटक के लोगों के हाथ में ही रहेगा। जिसलिअे मैं जो कुछ कहूंगा अुससे आपको यह डर न हो कि आप के साथ किसी किसम की जबरदस्ती, आज या आअिन्दा भी, होनेवाली है। अगर कर्नाटक की लिपि का व्यवहार कोअी जबरदस्ती से बन्द करने की कोशिश करेगा तो मैं अपनी पूरी शक्ति लगा कर अुसका विरोध करूंगा। मैं आपको अपना हित, जनता का हित, राष्ट्रहित और कन्नड साहित्य के विकास का खयाल करके कन्नड की जगह देवनागरी का स्वीकार करने की सिफारिश करना चाहता हूं। अभी हमारे देश में फीसदी सात से अधिक लोग लिखना-पढ़ना नहीं जानते। आज के फीसदी सत्यानवे लोग और भविष्य के अनन्त कोटी लोग, जो अिस वक्त कोअी भी लिपि नहीं जानते, अुनके लिअे कन्नड लिपि छोडने का सवाल ही नहीं है। वे तो कन्नड भाषा नागरी लिपि द्वारा भी आसानी से सीख सकते हैं। और कन्नड साहित्य नागरी लिपि में छाप देना केवल पांच दस वर्ष का सवाल है। कन्नड में अितने संस्कृत शब्द हैं कि कोअी भी भारतवासी चार छः महीनों की कोशिश से आपकी भाषा और अुसका साहित्य सीख सकता है। केवल लिपि के कारण आप कर्नाटक के और बाकी के भारत के बीच अेक बडी चीनी दीवाल खडी कर देते हैं।

"मैंने अिसके पहले अनेक बार कहा है कि केवल सुन्दरता का खयाल किया जाय तो दुनिया की लिपियों में कन्नड लिपि प्रथम श्रेणी में आ जायगी। किन्तु केवल लिपि के कारण आप अपनी भाषा, अपना साहित्य और अपने राष्ट्रीय जीवन का संकोच करें, अुसके विकास में बाधा डालें, अिसमें बुद्धिमानी नहीं। आपके पूर्वजों ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया, अुसकी फिलसूफी की बहुत कुछ वृद्धि की। संस्कृत के द्वारा कन्नड भाषा की संस्कारिता, अुसकी शब्दसमृद्धि, अुसका अर्थवाहित्व

और अुसका लालित्य बढाया। संस्कृत ही हमारी प्राचीन राष्ट्रभाषा थी। अुसीके सहारे हमने अपना मस्तक और अपना हृदय अेक, अखण्ड, समृद्ध और तेजस्वी बनाया था। संस्कृत की लिपि—नागरी—ले कर आज भी आप भारतीय भाषादरबार में अपना गौरवान्वित स्थान ले कर भाषाभगिनियों के साथ अपना आदानप्रदान बढा सकेंगे।"

यहां पर मेरा अुत्तर पूर्ण हुआ। किन्तु कर्नाटक से मेरे पास अेक पत्र आया था जिसमें आन्ध्र और कर्नाटक की लिपियां अेक करने का प्रश्न छेडा गया था और अिस काम में मेरी सहायता भी मांगी गयी थी। अुसका भी जिक्र करना मेरे लिअे अपरिहार्य था। मैंने कहा—

"अगर हम भारत के अुत्तर और दक्षिण हिन्दुस्थान अैसे दो विभाग कर डालेंगे तो स्वराज्य नहीं पा सकेंगे और हिंदुस्थान का जो सांस्कृतिक मिशन है अुसे भी कृतार्थ नहीं कर सकेंगे। अुत्तर भारत में हम लोग कुछ न कुछ हिन्दी जानते ही हैं और हमारा आपसी व्यवहार रुक नहीं जाता। दक्षिण में आपलोगों ने जब से संस्कृत का व्यवहार छोड दिया है, आन्तरप्रान्तीय व्यवहार के लिअे अेक भी भाषा मुकर्रर नहीं की। आप अंग्रेजी के ही आश्रित बन गये हैं। सार्वजनिक जीवन, तत्त्वविवेचन, न्यायचर्चा,—सब कुछ अंग्रेजी में ही चलता है। आप कन्नड भाषा में अच्छी अच्छी कवितायें लिखें, निबन्ध और अुपन्यास या लघुकथायें अंग्रेजी और फ्रेंच के साहित्य की बराबरी की लिखें; तो भी जबतक आपका राजकाज और सार्वजनिक व्यवहार कन्नड में नहीं चलता तबतक कन्नड भाषा का दारिद्रय दूर नहीं होगा। पहला सवाल कन्नड भाषा को परिपुष्ट करने का नहीं। किन्तु अुसे अपने ही घर में दासी के रूप में रहना पडता है, अुस अपमानित स्थिति से अुठा कर कर्नाटक के सार्वजनिक व्यवहार में अुसे राज्ञीपद दीजिये। फिर तो, आपका पुरुषार्थ जितना विपुल होगा अुतना ही आपका साहित्य पुष्ट और तेजस्वी होगा।

"आपमें से जो लोग नागरी का स्वीकार नहीं करते अुनके पास सारे दक्षिण के लिअे सर्वसाधारण अैसी कोअी लिपि है? अगर आप आन्ध्र और कन्नड की लिपियों में जो नाममात्र भेद हैं अुन्हें मिटा कर दो प्रान्तों की अेक लिपि करेंगे तो भी मैं कहूंगा कि आप कुछ तो आगे बढे। तेलगु लिपि की अपेक्षा कन्नड लिपि मुझे तो अधिक सुन्दर लगती है।

"और अगर केरल के लोग, जिनकी भाषा में भी फीसदी पचहत्तर से अधिक शब्द संस्कृत के पाये जाते हैं, अपनी लिपि छोड दें और—अगर नागरी लेने की हिम्मत न हो—तो कन्नड ही ले लें, तो भी मैं कहूंगा कि दक्षिण में संगठन करने की, अेकता का महत्त्व पहचानने की, बुद्धि का अुदय हुआ है।

"तमिल लोगों ने तो बहुत ही थोडे अक्षरों से अपना सारा व्यवहार चलाने की आदत डाल ली है। संस्कृत लिखने के लिअे अुन्हें नागरी का ही व्यवहार करना चाहिअे था। अुसकी जगह अुन्होंने 'ग्रन्थाक्षर' लिपि का आविष्कार किया। अुसकी जगह अगर वे, नागरी नहीं तो, कन्नड लिपि ही ले लेते तो कम से कम सारे दक्षिण के लिअे तो अेक लिपि हो जाती। लेकिन हम लोग अपने देश के टुकडे

कर कर के अुसे छिन्नभिन्न करने के खेल को ही आज तक पसन्द करते आये हैं। हम मुँह से अेकता चाहते हैं किन्तु अुस अेकता का नाश करने की कोशिश करने से बाज नहीं आते।

"मैं जानता हूं कि छोटे सुधार बडे और आवश्यक सुधार के शत्रु होते हैं। अगर सारे दक्षिण में अेक ही कन्नड लिपि का व्यवहार करने का निश्चय किया जाये तो भारत-व्यापी नागरी संगठन में विघ्न पैदा होगा। किन्तु यह आपत्ति सहन कर के भी मैं आपके बीच चार प्रान्तों की अेक लिपि करने की कोशिश देख कर संतोष मानूंगा। और आप भी दक्षिण के लिअे अेक लिपि की कोशिश करते करते अेक भारतीय लिपि विस्तार की आवश्यकता को अधिक स्पष्टरूप से अनुभव करेंगे। अगर चार प्रान्तों की लिपि अेक हो जाये तो कम से कम अंग्रेजी की पकड तो कम हो जायगी। आपमें आदानप्रदान बढेगा और दक्षिण की सामर्थ्य बढेगी।

"किन्तु साथ साथ आपको यह भी कह दूं कि आन्ध्र, तमिलनाड और केरल के लोग जिस दिन अपनी अपनी लिपियां छोडने को तैयार हो जायेंगे अुस दिन वे अपनी कन्नड लिपि ले कर दक्षिण का संगठन करने की अपेक्षा नागरी लिपि ले कर अखिल भारतीय संगठन करना ही अधिक पसन्द करेंगे।

"जो कुछ भी हो; मैं तो नागरी संगठन के पक्ष में ही हूं। किन्तु आप अगर दक्षिण के लिअे कन्नड लिपि चलाने की कोशिश करेंगे तो मैं अुसका विरोध नहीं करूंगा। मैं अुसे प्रगति का ही अेक कदम समझ लूंगा।"

भाषा और लिपि का सवाल बहुत पचीदा है। हम पुरुषार्थ में बडे शिथिल हैं। आप ही आप बिना प्रयास के जो कुछ परिवर्तन होता जाता है अुसीको हम जडता के कारण मान्य करते हैं। विचारपूर्वक कोअी महत्त्व का और परिश्रम का कार्य करने की आदत ही टूट गयी है। अैसी हालत में लिपि के ये सूक्ष्म भेद और अुनके कारण पैदा होनेवाला मतभेद हम कहां तक चलावेंगे? अगर हिम्मत करनी है तो सारे भारत के लिअे—भारत की सब प्रान्तीय भाषाओं के लिअे—हम अेक ही नागरी लिपि चलाने का निश्चय करें। जनता की ओर से कठिनाअी नहीं आयेगी। पढे हुअे लोगों की अपरिवर्तनशीलता ही सबसे बडी रुकावट है।

अेक सार्वत्रिक नियत लिपि

लॉर्ड कर्जन के सार्वत्रिक नियत (स्टैंडर्ड) समय के समान हम अेक सार्वत्रिक नियत (स्टैंडर्ड) लिपि भी चाहते हैं। यदि लॉर्ड कर्जन ने हमें अेक सार्वत्रिक लिपि देने का राष्ट्रीय पद्धति से प्रयत्न किया होता, तो सार्वत्रिक समय दे कर वे हमारे आदर के जितने पात्र हुअे अुसकी बनिस्बत कहीं अधिक आदर के भाजन हुअे होते। लेकिन यह नहीं किया गया; और अब हमें सारे प्रान्तीय दुराग्रहों को छोड कर स्वयं यह करना चाहिअे।

दिसंबर १९०५ में नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) में दिये हुअे भाषण से } बाल गंगाधर तिलक

सेवा का आचारधर्म

[विनोबा का अेक प्रवचन]

ॐ सहनाववतु । सहनौ भुनक्तु । सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

मेरे भाअियो और बहनो,

शान्तिमंत्र और भोजन का संबंध ।

आज मैंने अपने भाषण का आरम्भ जिस मंत्र से किया है वह मंत्र हमारे देश के लोग शाला में अध्ययन शुरू करते समय पढ़ा करते थे । यह मंत्र गुरु और शिष्य को मिल कर कहने के लिअे है । "परमात्मा हम दोनों का अेकत्र रक्षण करे । अेकत्र पालन करे । हम दोनों जो कुछ सीखें वह, हम दोनों की शिक्षा, तेजस्वी हो । हम दोनों में द्वेष न रहे; और सर्वत्र शान्ति रहे ।" अैसा अिस मंत्र का संक्षेप में अर्थ है । आश्रम में भोजन के प्रारंभ में यही मंत्र पढ़ा जाता है । अन्यत्र भी भोजन शुरू करते समय अिसे पढ़ने का रिवाज़ है । "अिस मंत्र का भोजन से क्या संबंध है ? अिसके बदले दूसरा कोअी भोजन के समय पढ़ने योग्य मंत्र क्या खोजा ही नहीं जा सकता ?" अैसा सवाल अेक बार बापू से पूछा गया था । अुन्होंने वह मेरे पास भेज दिया था । मैंने अेक पत्र में अुसका विस्तार से अुत्तर दिया है । वही मैं थोडे में यहां भी कहनेवाला हूं ।

समाज के दो भागों का सहजीवन

अिस मंत्र में समाज को दो भागों में बांटा गया है; और अैसी प्रार्थना की गयी है कि परमात्मा दोनों का अेकत्र रक्षण करे । भोजन के समय अिस मंत्र का अुच्चार जरूर करना चाहिअे, क्योंकि हमारा भोजन केवल पेट भरने के लिअे ही नहीं है । वह ज्ञान और सामर्थ्य की प्राप्ति के लिअे है । अितना ही नहीं, अिसमें यह भी मांग की गयी है कि हमारा वह ज्ञान, वह सामर्थ्य और वह भोजन भगवान् अेकत्र कराये । अिसमें केवल पालन की प्रार्थना नहीं है । अेकत्र पालन की प्रार्थना है । शाला में जिस प्रकार गुरु और शिष्य होते हैं अुसी प्रकार सर्वत्र द्वैत है । परिवार में पुरानी और नयी पीढ़ी, समाज में स्त्रीपुरुष, वृद्धतरुण, शिक्षितअशिक्षित आदि भेद हैं । अुसमें फिर गरीब अमीर का भेद भी है । अिस कार सर्वत्र भेद नज़र आता है । हमारे अिस हिन्दुस्थान में तो असंख्य भेद हैं । यहां प्रान्तभेद है । यहां का स्त्रीवर्ग बिलकुल अलग रहता है । अिसलिअे यहां स्त्री और पुरुष में भी बहुत बड़ा भेद है । हिन्दू और मुसलमानों का भेद तो प्रसिद्ध ही है । परन्तु हिन्दू–हिन्दुओं में भी हरिजन और दूसरों में भेद है । अिस प्रकार हिन्दुस्थान में अपार भेद भरे हुअे हैं । हिन्दुस्थान की तरह वे संसार में भी हैं । अिसलिअे अिस मंत्र में यह प्रार्थना की गयी है कि हमें "अेकत्र तार, अेकत्र मार" । मारने की प्रार्थना प्रायः कोअी करता नहीं । अिसलिअे यहां अेकत्र तारने की ही प्रार्थना है । लेकिन 'यदि तुझे मारना ही हो, तो कम से कम अेकत्र मार' अैसी प्रार्थना है । सारांश

"हमें दूध देना है तो अेकत्र दे, सूखी रोटी देना है तो भी अेकत्र दे, हमारे साथ जो कुछ करना है वह सब अेकत्र कर;" अैसी प्रार्थना अिस मंत्र में है।

यह भेद दूर कैसे हो?

आज हिन्दुस्थान में अेक बात सबकी जीभ पर है। सभी कहते हैं कि यह भेद जितना कम करोगे अुतना ही देश आगे बढ़ेगा। देहात के लोग, याने किसान, और शहराती, गरीब और श्रीमान्, अिनका अन्तर जितना कम होगा अुतना ही देश का कदम आगे बढ़ेगा। अिसके विषय में शायद ही किसी का मतभेद हो। लेकिन तोभी यह भेद, यह अन्तर, कम नहीं होता। अन्तर दो तरह से काटा जा सकता है। अूपरवालों के नीचे अुतरने से और नीचेवालों के अूपर अुठने से। परन्तु दोनों ओर से यह नहीं होता। हम सेवक कहाते हैं। लेकिन किसान-मजदूरों की तुलना में तो चोटी पर ही हैं। दादा ने कल अपने व्याख्यान में कहा—में अुनके शब्द नहीं दुहरा रहा हूं, अुनका भावार्थ कह रहा हूं—कि वे भोग और अैश्वर्य भी चाहते हैं। भोगों की ज़रूरत है या नहीं अिस विवाद में पड़ने की यहां जरूरत नहीं।

भोग और अैश्वर्य किसे कहें?

लेकिन सवाल यह है कि भोग और अैश्वर्य कहें किसे? मैं अच्छा सुग्रास भोजन करूं और पड़ोस में ही दूसरा भूखों मरता रहे, अैसे? अुसकी नज़र बराबर मेरे भोजन पर रहे और मैं अुसकी परवाह न करूं? अुसके आक्रमण से अपनी थाली की रक्षा करने के लिअे अेक डंडा लकर बैठूं? मेरा सुग्रास भोजन और डंडा तथा अुसकी भूख—क्या अिन्हें अैश्वर्य मानें? अेक सज्जन आ कर मुझसे कहने लगे कि "हम दो आदमी अेकत्र भोजन करते हैं। परन्तु हमारी निभ नहीं सकती। मैंने अब अलग भोजन करने का निश्चय किया है।" मैंने पूछा, "सो क्यों?" अुन्होंने जवाब दिया- "मैं नारंगियां खाता हूं। वे नहीं खाते। वे मजदूर हैं, अिसलिअे वे नारंगियां खरीद नहीं सकते। अिसलिअे अुनके साथ खाना मुझे अप्रशस्त लगता है।" मैंने पूछा, "लेकिन क्या अलग घर में रहने से अुनके पेट में नारंगियां चली जायेंगी? आप दोनों में जो व्यवहार आज हो रहा है, वही ठीक है। जबतक दोनों साथ खाते हो तबतक दोनों के निकट आने की संभावना है। अेकाध बार तुम अुसे नारंगियां लेने का आग्रह भी करोगे। लेकिन यदि तुम दोनों के बीच सुरक्षितता की दीवाल खड़ी कर दी गयी, तो भेद चिरस्थायी हो जायेगा। दीवाल को सुरक्षितता का साधन मानना कैसा भयंकर है! हिन्दुस्थान में हम सब कहते हैं, हमारे संतों ने तो पुकार पुकार कर कहा है, कि ओश्वर सर्वसाक्षी है, सर्वत्र है। फिर दीवाल की ओट में छिपने से क्या फ़ायदा? अिससे दोनों का अन्तर थोड़े ही घटेगा?"

सेवकों का भी यही हाल

यही हाल हम खादीधारियों का भी है। जनता के अन्दर अभी खादी का प्रवेश ही नहीं हुआ है। अिसलिअे जितने खादीधारी हैं, वे सब सेवक ही हैं। खादीधारियों का सम्मेलन 'सेवक वर्ग का मेला' ही है। यह कहा जाता है कि हमें और आपको गांवों में जाना

चाहिअे। लेकिन देहात में जाने पर भी वहां के लोगों को जहां सूखी रोटी भी नहीं मिलती, तहां में पूडी खाता हूं। मेरा घी खाना अुस भूखे को नहीं खटकता। आज भी किसान कहता है कि अगर मुझे पेटभर मिल जाय तो तेरे घो की मुझे अीर्ष्या नहीं। मुझे तेल ही मिलता रहे तो भी तसल्ली है। यह भेद अुसे भले ही न अखरता हो, लेकिन हम सेवकों को बहुत अखरता है। लेकिन यह अिस तरह कबतक चलता रहेगा। पारसाल में अेक अच्छा दुबलापतला जीव था। अिस साल मुटिया गया हूं। मुझे यह मुटापा बहुत खटकता है। मैं भी अुन्हीं लोगों जैसा दुबलापतला हूं यह संतोष अब जाता रहा। पहले मेरे गाल अुनके जैसे चिपके थे। अब तो मेरे शरीर पर सुर्खी छा गयी है।

देहाती रहनसहन में सुधार

यहां टंगी हुअी अेक तख्ती पर लिखा है कि आवश्यकतायें बढाते रहना सभ्यता का लक्षण नहीं है। बल्कि आवश्यकताओं का संस्करण सभ्यता का लक्षण है। तो भी में कहता हूं कि देहातियों की आवश्यकतायें बढनी चाहिअें। वे सुधरनी भी चाहिअें। लेकिन अुनकी आवश्यकतायें आज तो पूरी ही नहीं होतीं। अुनका रहनसहन बिलकुल गिरा हुआ है। अुनके जीवन का मान बढना चाहिअे। मोटे हिसाब से तो यही कहना पडेगा कि आज हमारे गरीब देहातियों की आवश्यकतायें बढनी चाहिअें।

मछुओं का दृष्टान्त

योगशास्त्र में मैंने पढा है कि जो अहिंसक है अुसके आसपास हिंसा नहीं होती। मेरा अिस वचन पर पूरा पूरा विश्वास है। लेकिन में अपनी आंखों के सामने नित्य क्या देखता हूं? पवनार में मेरे घर के सामने धाम नदी है। भागवतजी को मैंने वहां बुलाया है। वे ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण को अल्प आहार और भरपूर स्नान से संतोष है। वह मैं अुन्हें वहां दे सकता हूं। हां, तो मैं कह रहा था कि अुस नदी पर मैं अेक दूसरा दृश्य भी देखता, हूं। मछुअे वहां रोज असंख्य मछलियां मारते हैं। मछुअे परम अुद्योगी हैं। अुनके समान अुद्योगी दूसरा कोअी नहीं। सबेरे से शाम तक मछली मारने का अुनका अुद्योग बराबर चलता रहता है। और जब मछली नहीं मारते तो रास्ता चलते हुअे भी अपना जाल गूंथते रहते हैं। मेरी आंखों के सामने रोज यह हिंसा चलती रहती है। मैं सोचता हूं कि मैं भी कैसा योगी हूं!

मछुओं की व्यवसाय निष्ठा

अेक दिन दगडू (मेरा साथी) नंगे सिर और नंगे बदन नहाने गया। मछुओं ने गिडगिडाकर अुससे कहा, "महाराज, हमारे पेट पर न मारो!" वह आश्चर्य से पूछने लगा, "मैंने क्या किया, जिससे तुम्हारा पेट मारा गया?" वे बोले, "तुम नंगे सिर आये। असगुन होगया। अब मछलियां पकडी नहीं जा सकेंगी। अैसी करनी न करो महाराज!" अुनकी अैसी भावना है। वे हमारी अपेक्षा किसी कद्र कम नहीं। अुनकी दृष्टि से तो वे अीश्वर-स्मरणपूर्वक ही मछलियां मारते हैं। मैं अुन्हें किस मुंह से कहूं कि, 'तुम मछलियां मत मारो?' क्या अुनसे गणपतराव की दूकान से तेल खरीदने को कहूं? वे कहेंगे

अुसके लिअे पैसे देने पड़ते हैं। मक्खियों से वह यों ही मिल जाता है।

वृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता

मेरा मतलब यह है कि यदि हम गांवों में जा कर बैठे हैं तो हमें अिसके लिअे जोरों की कोशिश करनी चाहिअे कि देहातों का रहनसहन कैसे अूपर अुठेगा और हमारा कैसे अुतरेगा। लेकिन हम ज़रा ज़रासी बातें भी तो नहीं करते। महीना डेढ़ महीना हुआ, मेरे पैर में चोट लग गयी है। किसीने कहा अुसे मरहम लगाओ। मरहम मेरे मुकाम पर आ भी पहुँचा। किसीने कहा मोम लगाओ, अुससे ज्यादा फायदा होगा। मैंने निश्चय किया कि मरहम और मोम दोनों आखिर मिट्टी के ही वर्ग के तो हैं। अिसलिअे मिट्टी लगा ली। अभी पैर बिलकुल अच्छा नहीं हुआ है। लेकिन अब मजे मे चल सकता हूं। कल पवनार से यहां तक चल कर आया और वापस भी पैदल ही गया। हमे मरहम जल्दी याद आयेगा, लेकिन मिट्टी लगाना नहीं सूझेगा। अुसमें हमारी श्रद्धा नही, विश्वास नहीं।

यहां अभी यज्ञोपवीत की विधि हुअी। यज्ञोपवीत सूर्य को दिखा कर धारण करना चाहिअे। 'सूर्याय दर्शयित्वा'। यहां यह हुआ या नहीं मुझे पता नही। (पुरोहितजी से) कहिये यहां 'सूर्याय दर्शयित्वा' हुआ कि नहीं? (पुरोहितजी बोले) जी हां। हमारे सामने अितना बड़ा सूर्य खड़ा है। अुसे अपना नंगा शरीर दिखाने की हमें बुद्धि नहीं होती। सूर्य के सामने अपना शरीर खुला करो। तुम्हारे सारे रोग भाग जायेंगे। लेकिन हम अपनी आदत और शिक्षा से लाचार हैं। डॉक्टर जब कहेगा कि तुझे तपेदिक हो गया तब वही करेंगे।

हम अपनी जरूरतें किस तरह कम कर सकेंगे, अिसकी खोज करनी चाहिअे। मैं यहां संन्यासी का धर्म नहीं बतला रहा हूं। खासा सद्‌गृहस्थ का धर्म बतला रहा हूं। ठंडी आबोहवावाले देशों के डॉक्टर कहते हैं कि बच्चों की हड्डियां बढ़ाने के लिअे अुन्हें 'कॉड लिवर ऑअिल' दो। जहां सूर्य नहीं है अैसे देशों में ('अनसनी क्लाअिमेट' में) दूसरा चारा ही नहीं है। कॉड लिवर के बिना बच्चे गुद्‌गुदे नहीं होंगे। यहां सूर्यदर्शन की कमी नहीं। यहां यह महा 'कॉड लिवर ऑअिल' भरपूर है। लेकिन हम अुसका अुपयोग नहीं करते। अैसी हमारी दशा है। हमें लंगोटी पर शर्म आती है। छोटे बच्चों पर भी हम कपडे की बाअिंडिंग (जिल्द) चढ़ाते हैं। नंगे बदन रहना असभ्यता का लक्षण माना जाता है। वेदों में प्रार्थना की गयी है कि,

"मा नः सूर्यस्य सदृशो युयोथाः।"

"हे अीश्वर, मुझे सूर्यदर्शन से दूर न रख!" वेद और विज्ञान दोनों कहते हैं कि खुले शरीर से रहो। कपडे की जिल्द में कल्याण नहीं। हम अपने आचार से यह विनाशक चीज़ गांवों में दाखिल न करें। हम देहात मे जाने पर भी अपने बच्चों को आधी या पूरी लंबाअी की पतलून पहनाते हैं। अिसमे अुन बच्चों का कल्याण तो है ही नहीं। बल्कि अेक दूसरा अशुभ परिणाम यह निकलता है कि दूसरे बच्चों मे और अुनमें भेद पैदा हो जाता है। या फिर दूसरे लोगों को भी

अपने बच्चों को सजाने का शौक होता है। अेक फजूल की जरूरत पैदा हो जाती है। हमें देहातों में जा कर अपनी जरूरतें कम करनी चाहिअें। यह अेक पहलू से विचार हुआ।

भारत का महारोग

देहातों की आमदनी बढ़ाना अिस विचार का दूसरा पहलू है। लेकिन वह कैसे बढ़ायी जाय? हममें आलस बहुत है। वह महान् शत्रु है। अेक का विशेषण दूसरे को जड़ देना साहित्य में अेक अलंकार माना गया है। "कहे लड़की से, लगे बहू को" अिस अर्थ की जो कहावत है, अुसका भी अर्थ यही है। बहूको यदि कुछ जलीकटी सुनानी हो तो सास अपनी लड़की को सुनाती है। अुसी तरह हम कहते हैं, 'देहाती लोग आलसी हो गये।' दर असल आलसी तो हम हैं। यह विशेषण पहले हमें लागू होता है। हम अिसका अुनपर आरोप करते हैं। बेकारी के कारण अुनके शरीर में आलस भले ही भिद गया हो, परन्तु अुनके मन में आलस नहीं है। अुन्हें बेकारी का शौक नहीं है। लेकिन यदि सच कहा जाय, तो हम कार्यकर्ताओं के तो मन में भी आलस है और शरीर में भी। आलस्य हिन्दुस्थान का महारोग है। यह बीज है। बाहरी महारोग अिसका फल है। हमें अिस आलस को दूर करना चाहिअे। सेवक को सारा दिन कुछ न कुछ करते रहना चाहिअे। और कुछ नहीं तो गांव की परिक्रमा ही लगावे। और कुछ न मिले तो हड्डियां ही अिकट्ठी करे। यह भगवान् शंकर का कार्यक्रम है। हड्डियां अिकट्ठी करके चर्मालय में भेज दे। अिससे आशुतोष भगवान् शंकर प्रसन्न होंगे। या अेक बाल्टी में मिट्टी लेकर अुसे रास्ते पर जहां जहां खुला हुआ मैला पड़ा हो अुसपर डालता फिरे। अच्छी खाद बनेगी। अिसके लिअे खास कौशल की जरूरत नहीं है।

कुशल औजार

हमारे सेनापति बापट ने अेक कविता में कहा है कि, 'बुहारी, खपरा और खुरपा ये औजार धन्य हैं'। ये कुशल औजार हैं। जिस औजार का अुपयोग अकुशल मनुष्य भी कर सकता है, अुसे बनानेवाला अधिक से अधिक कुशल होता है। जिस औजार के अुपयोग के लिये कमसे कम कुशलता की जरूरत हो वह ज्यादा से ज्यादा कुशल औजार है। खपरा और झाड़ू अैसे औजार हैं। झाड़ू सिर्फ फिराने की देर है। भूमाता स्वच्छ हो जाती है। खपरिया में जरा भी आनाकानी किये बिना मैला आ जाता है। यंत्र शास्त्र के प्रयोग अिस दृष्टि से होने चाहिअें। खपरा, खुरपा और झाड़ू के लिअे पैसे नहीं देने पड़ते। अिसलिअे ये सीधेसादे औजार धन्य हैं।

केवल हवाखोरी मना है

रामदास ने अपने 'दासबोध' में सुबह से शामतक की दिनचर्या बतलाते हुअे कहा है कि सबेरे दिशा के लिअे बहुत दूर जाओ और वहांसे लौटते हुअे कुछ न कुछ लेते आओ। वे कहते हैं कि रीता आना खोटा काम है। सिर्फ हाथ हिलाते नहीं आना चाहिअे। कोअी कहते हैं कि हम तो हवा खाने गये थे। लेकिन हवा खाने का काम से विरोध क्यों हो? कुदाली से खोदते हुअे क्या नाक बंद कर ली जाती है। हवा खाना तो नित्य चालू ही रहता है। परन्तु श्रीमान् लोग हमेशा बिना हवा वाली जगह में

बैठे रहते हैं। अिसलिअे अुनके लिअे हवा खाना भी अेक काम हो जाता है। लेकिन कार्यकर्ताओं को हमेशा खुली हवा में काम करने की आदत होनी चाहिअे। वापस आते हुअे वह अपने साथ कुछ न कुछ जरूर लाया करें। देहात में दतौन ला सकता है। लीपने के लिअे गोबर ला सकता है और अगर कुछ न मिले तो कमसे कम किसी अेक खेत के कपास के पेड़ ही गिन कर आ सकता है; यानी फसल का ज्ञान अपने साथ ला सकता है। मतलब, अैसे फिजूल चक्कर नहीं काटने चाहिअें। देहात में काम करनेवाले ग्रामसेवक को सुबह से शाम तक कुछ न कुछ करते ही रहना चाहिअे।

अेक मुंह पीछे दो हाथ

अब लोगों की शक्ति कैसे बढ़ेगी अिसके विषय में कुछ कहूंगा। देहातों में बेकारी और आलस बहुत है। देहात के लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, 'महाराज, हम लोगों का बुरा हाल है। घर में चार खानेवाले मुह हैं।' वे मुझे महाराज क्यों कहते हैं, कौन जाने। मेरे पास कौनसा राज धरा है? मैं अुनसे पूछता हूं, 'अरे भाअी, घर में अगर खानेवाले मुंह न हों तो क्या और खानेवाले हों? बगैर खानेवाले मुह तो मुर्दों को होते हैं। अुन्हें तो तुरन्त बाहर निकालना होता है। तुम्हारे घर चार खानेवाले मुंह हैं, यह तो तुम्हारा वैभव है। अुनका तुम्हें भार क्यों हो रहा है? भगवान ने आदमी को अगर अेक मुह दिया है तो अुसके साथ साथ दो हाथ भी दिये हैं। अगर वह अेक समूचा मुंह और आधा ही हाथ देता तो अलबत्ता मुश्किल थी। तुम्हारे यहां अगर चार मुंह हैं तो आठ हाथ भी तो हैं। तिसपर भी शिकायत क्यों?' लेकिन हम अुन हाथों का अुपयोग करें तब न? हमें तो हाथ पर हाथ धर कर बैठने की आदत जो हो गयी है, हाथ जोडने की आदत जो हो गयी है! जब हाथ चलना बन्द हो जाता है तो मुंह चलना शुरू हो जाता है। फिर खानेवाले मुंह आदमी को ही खाने लगते हैं।

सव्यसाची बनो

हमें अपने दोनों हाथों से अेकसा काम करना चाहिअे। पवनार में कुछ लडके कातने आते हैं। अुनसे कहा 'बांये हाथ से कातना शुरू करो।' अुन्होंने यहीं से कहना शुरू किया कि 'हमारी मजदूरी कम हो जायगी। बायाँ हाथ दाहिने की बराबरी नहीं कर सकेगा।' मैंने कहा 'यह क्यों? दाहिने हाथ के अगर पांच अंगुलियां हैं तो बायें हाथ के भी हैं। फिर क्यों नहीं बराबरी कर सकेगा?' निदान मैंने अुनमें से अेक लडका चुन लिया और अुससे कहा कि 'बायें हाथ से कात।' अुसे जितनी मजदूरी कम मिलेगी अुतनी पूरी कर देने का जिम्मा मैंने लिया। चौदह रोज में वह साढे चार रुपया कमाता था। बायें हाथ से पहले पाख में ही अुसे करीब तीन रुपये मिले। दूसरे पाख में बायाँ हाथ दाहिने की बराबरी पर आ गया। अेक रुपया मैंने अपनी गिरह से पूरा किया। लेकिन अुससे सब की आंखें खुल गयीं। यह कितना बड़ा लाभ हुआ? मैंने लडकों से पूछा कि 'क्यों लडको, अिसमें फायदा है कि नहीं।' वे कहने लगे, 'हां, क्यों नहीं?' दाहिना हाथ भी तो आठ घण्टे लगातार काम करने में धीरे धीरे थकने लगता है। अगर दोनों

हाथ तैयार हों तो अदल बदल कर सकते हैं और थकावट बिलकुल नहीं आती। अट्ठाअीस के अट्ठाअीस लडके बांये हाथ का प्रयोग करने के लिअे तैयार हो गये!

पवनार के परिश्रमालय में जो लडके हैं वे अब दोनों हाथों से कात सकते हैं। शुरू शुरू में हाथ में थोडा दर्द होने लगता है। लेकिन यह सात्विक दर्द है। सात्विक सुख अैसा ही होता है। अमृत भी शुरू शुरू में जरा कडुआ ही लगता है। पुराणों का वह अेकदम मीठा ही मीठा अमृत वास्तविक नहीं। अमृत अगर जैसा कि गीता में कहा है सात्विक हो तो वह मीठा ही मीठा कैसे हो सकता है? गीता में बताया हुआ सात्विक सुख तो प्रारम्भ में कडुआ होता है। मेरी बात मान कर लडकों ने तीन महीनों तक सिर्फ बायें हाथ से कातने का प्रयोग करने का निश्चय किया। नुकसान भी खुद ही सहने का निश्चय किया। तीन महीने मानो दाहिना हाथ बिलकुल भूल ही गये। यह कोअी छोटी तपस्या नहीं हुअी।

मुँहजोरी की जगह हाथजोरी

मैं अिस बात का ढिंढोरा पीटना नहीं चाहता। आजकल अिश्तिहारबाजी बहुत चल पडी है। कभी कभी हम अखबारों में पढते हैं कि लाहौर में अेक बडा भारी अखाडा खोला गया है। जा कर देखिअे तो दो तीन व्यक्ति कुछ व्यायाम करते हैं। अुन्हें तो सिर्फ प्रसिद्धि की चाह है। काम करके जो हासिल करनी है वह प्रसिद्धि संतमेत ही मिल जाती है। यह कितनी कर्मकुशलता है। अस्तु। पवनार में बायें हाथ ने दाहिने हाथ की बराबरी की। बल्कि कअीअेकों का तो बायाँ हाथ बाजी मार ले गया। जो लडके पहले चार आने से अधिक नहीं कमा सकते थे वे अब दोनों हाथों से अुतने ही समय तककात कर डेढ गुणा कमाने लगे हैं। अिसे कहना चाहिअे देहात की आमदनी की बढती। यह मुझे बहुत अच्छी तरह आता है। क्यों कि पहले में खुद अपने हाथ से करके देखता हूं। मेरा तो यही नियम है कि देहात की आमदनी बढाना हो तो अपने आपसे शुरू करो। जबतक कोअी भी काम में अपने हाथ से नहीं करूंगा तबतक अुसकी कठिनाअियां भी ध्यान में नहीं आयेंगी। कठिनाअियों का अनुभव होने पर ही सुधार हो सकता है। केवल गाल बजाने से यह नहीं होगा। मुंहजोर को हाथजोर बनना चाहिअे। अिसी तरीके से मैं कातनेवालों की कमाअी डेढ गुनी बढा सका। तीस मजदूरों से मेरा नित्य सम्बन्ध था। अिसी तरह सम्पत्ति बढेगी। मैं अपना जीवन अिसी प्रकार नीचे अुतार कर अुनका जीवन अूपर को ला सका। अैसे दोहरे प्रयास से हम आलस जीत सकेंगे।

अनिन्दा का व्रत

देहात में निन्दा का दोष काफी दिखलायी देता है। शहर के लोग अुससे बरी हैं अैसी बात नहीं। लेकिन यहां मैं देहात के ही विषय में कह रहा हूं। निन्दा सिर्फ पीठ पीछे जिन्दा रहती है। अुससे किसी का भी फायदा नहीं होता। जो करता है अुसका मुह खराब होता है और जिसकी निन्दा की जाती है अुसकी कोअी अुन्नति नहीं होती। मैं यह जानता तो था कि देहातियों में निन्दा करने की आदत होती है। लेकिन यह रोग अितने अुग्र रूप में

फैल गया होगा जिसका मुझे पता नहीं था। जिधर कुछ दिनों से में सत्य और अहिंसा के बदले सत्य और अनिन्दा कहने लगा हूं। हमारे सन्तों की बुद्धि बडी सूक्ष्म थी। अनके वाङमय का रहस्य अब मेरी समझ में आया। वे देहातों से भलीभांति परिचित थे। असलिओ अन्होंने जगह जगह कहा है कि निन्दा न करो, चुगली न करो। सन्तों के लिओ मेरे मन में छुटपन से ही भक्ति है। अनके किये हुये भक्ति और ज्ञान के वर्णन मुझे बडे मीठे लगते थे। लेकिन मैं सोचता था कि 'निन्दा मत कर' कहने में क्या बडी विशेषता है? अनकी नीति विषयक कवितायें मैं पढता तो था, लेकिन वे मुझे भाती नहीं थीं। परस्त्री को माता के समान समझो, पराया माल न छुओ और निन्दा न करो--अितने में अनकी नैतिक शिक्षा की पूंजी खतम हो जाती थी। भक्ति और ज्ञान के साथ साथ असी श्रेणी में वे अिन चीजों को भी क्यों रखते थे यह मेरी समझ में नहीं आता था। लेकिन अब खूब अच्छी तरह समझ गया हूं। निन्दा का दुर्गुण अन्होंने हमारी नस-नस में पैठा हुआ देखा, असलिओ अन्होंने अनिन्दा पर बार बार अितना जोर दिया और असे अेक बडा भारी सद्गुण बतलाया। कार्यकर्ताओं को यह शपथ ले लेनी चाहिओ कि वे न तो निन्दा करेंगे और न सुनेंगे। निन्दा में अकसर गलती और अत्युक्ति होती है। साहित्य में अत्युक्ति भी अेक अलंकार माना गया है। संसार चौपट कर दिया है अिन साहित्यवालों ने। वस्तुस्थिति को दुगुना तिगुना, दसगुना, बीसगुना बढा कर बताना अनके मत से अलंकार है। तो क्या जो चीज जैसी है असे वैसी ही बताना अपनी नाक काटने के समान है? कथाकार और प्रवचनकार की अत्युक्ति का कोओ ठिकाना ही नहीं। अेक को सौगुना बढाने का नाम अतिशयोक्ति है अैसा असका कोओ नाप होता तो अतिशयोक्ति पर से वस्तुस्थिति की कल्पना कर सकते। लेकिन यहां तो कोओ हिसाब ही नहीं है। वे अेक में सौ का गुना नहीं करते बल्कि शून्य को सौगुना बढाते हैं। सौ में अनन्त का गुना करने से कोओ अेक अंक आता है अैसा सुनता हूं, लेकिन वह तो गणितज्ञ ही जानें।

सचाओ का सूक्ष्म अभ्यास

तीसरी बात जो मैं आप लोगों से कहना चाहता हूं वह है सचाओ। हमारे कार्यकर्ताओं में स्थूल अर्थ से सचाओ है। लेकिन सूक्ष्म अर्थ से नहीं। अगर मैं किसीसे कहूं कि तुम्हारे यहां सात बजे आअूंगा, तो वह पांच ही बजे से मुझे लेने के लिओ मेरे यहां आ कर बैठ जाता है, क्योंकि वह जानता है कि अिस हिन्दुस्थान में जो कोओ किसी खास वक्त आने का वादा करता है, वह अस वक्त आयेगा ही अिसका कोओ नियम नहीं। अिसलिओ वह पहले से ही आ कर बैठ जाता है। सोचता है कि दूसरे के भरोसे काम नहीं बनता। अिसलिओ हमें हमेशा बिलकुल ठीक बोलना चाहिओ। किसी गांव वाले से आप कोओ काम करने के लिओ कहिओ तो वह कहेगा, 'जी, हां'। लेकिन असके दिल में वह काम करना नहीं होता। हमें टालने के लिओ वह 'जी, हां' कह देता है। असका मतलब अितना ही होता है कि अब ज्यादह तंग न कीजिओ। 'जी, हां' से असका

मतलब है कि यहां से तशरीफ ले जाअिये। अुसके 'हां, जी,' में थोडा अहिंसा का भाव होता है। वह 'आगे बढिये' कहकर आपके दिल को चोट पहुंचाना नहीं चाहता। आपको वह ज्यादा तकलीफ नहीं देना चाहता। अिसलिअे 'जी हां,' कहकर जान बचा लेता है।

राजकोट का दृष्टान्त

अिसलिअे कोअी भी चीज़ जो हम देहातियों से कराना चाहें वह अुन्हें समझा भर देनी चाहिअे। अुनसे शपथ या व्रत न लिवाना चाहिअे। जबसे मैं देहात में गया तबसे किसीसे किसी बात के विषय में वचन लेने की मुझे चिढ-सी होगयी है। अगर मुझसे कोअी कहे भी कि मैं यह चीज़ करूंगा तो भी मैं अुससे यही कहूंगा कि 'यह तुझे जंचती है न? बस तो अितना काफी है। वचन देने की जरूरत नहीं। तुझसे हो सके तो कर!' लोगों को अुसकी अुपयोगिता समझा कर संतोष मान लेना चाहिअे। क्योंकि किसीसे कोअी काम करने का वचन लेने के बाद वह काम कराने की जिम्मेवारी हमारी हो जाती है। अगर वह अपना वचन पूरा न करे तो हम अप्रत्यक्ष रूप से अुसे झूठ बोलने में सहायता करते हैं। राजकोट प्रकरण और दूसरी क्या चीज़ है? अगर कोअी हमारे सामने किसी विषय में वचन दे दे और फिर अुसे पूरा न करे तो अुसमें हमारा भी अधःपात होता है। अिसीलिअे बापू को राजकोट में अितना सारा प्रयास करना पडा। अिसीलिअे वचन, नियम या व्रत में किसी को बांधना नहीं चाहिअे। और अगर किसी से वचन लेना ही पडे तो वह वचन अपना समझ कर अुसे पूरा कराने की सावधानी पहले रखनी चाहिअे। अुसे पूरा करने में हर तरह से मदद करनी चाहिअे। सचाअी का यह गुण हमारे अन्दर होना चाहिअे।

सूक्ष्म असत्य

बाअिबल में कहा है, अीश्वर की कसम न खाओ। जब तुम्हारे दिल में 'हां' हो तो हां कहो और 'ना' हो तो ना कहो; लेकिन हमारे यहां तो रामदुहाअी भी काफी नहीं समझी जाती। कोअी भी बात त्रिवार वचन के बिना पक्की नहीं मानी जाती। सिर्फ हां कहने का अर्थ अितना ही है कि 'तुम्हारी बात समझ में आ गयी। अब देखेंगे, विचार करेंगे'। किसी मजबूत पत्थर पर अेक दो घाव लगाअिये तो अुसे पता भी नहीं चलता। दस पांच मारिये तब कहीं वह सोचने लगता है कि शायद कोअी व्यायाम कर रहा है। पचास घाव लगाअिये तब कहीं अुसे पता चलता है कि 'अरे, यह व्यायाम नहीं कर रहा है। यह तो मुझे फोडने जा रहा है।' अेक बार हां कहने का कोअी अर्थ ही नहीं। दो बार कहने पर वह सोचने लगता है कि मैंने हां भर दी है। और जब तीसरी बार हां कहता है तब अुसके ध्यान में आता है कि मैंने जानबूझ कर हां कहा है। हिन्दुस्थान का अिस तरह व्यवहार चलता है। अिस सबका अर्थ अितना ही है कि सूक्ष्म दृष्टि से झूठ हमारी नसनस में भिद गया है। अिसलिअे कार्यकर्ताओं को अपने लिअे यह नियम बना लेना चाहिअे कि, जो चीज़ करना कबूल करें, अुसे करके ही दम लें। अिस में तनिक भी गलती न करें। दूसरे से कोअी वचन न लें। अुस झंझट में न पडें।

सारांश

तो मैंने अबतक तीन बातें आपके सामने रक्खीं। पहली यह कि हम अपनी आवश्यकतायें कम करें, और देहातियों की आवश्यकतायें तथा अुनकी कमाअी बढावें, और अिस तरह दोनों के जीवन में जो अन्तर है अुसे कम करें। दूसरी यह कि हम खुद किसी की निन्दा न करें और दूसरों की की हुअी निन्दा न सहें। और तीसरी यह कि सचाअी का ठीकठीक मतलब समझ कर अुसे अपने आचरण में दाखिल करें।

पुरानी और नयी पीढ़ी

अब कार्यकर्ताओं से कार्यकुशलता के बारे में दो अेक बातें कहना चाहता हूं। जब हम कार्य करने जाते हैं तो चालू पीढी के बहुत पीछे पडते हैं। चालू पीढी का तो विशेषण ही चालू है। वह चलती चीज है। अुसकी सेवा कीजिअे। लेकिन अुसके पीछे न पडिअे। अुसके शरीर के समान अुसका मन और अुसके विचार भी अेक ढांचे में ढले हुअे होते हैं। जो नयी बात कहनी हो वह नवजवानों से कहनी चाहिअे। युवकों में मेरी श्रद्धा बढ रही है। तरुणों के विचार और विकार दोनों बलवान होते हैं। अिसी-लिअे कुछ लोग अुन्हें अुच्छृंखल भी कहते हैं। अिसमें सचाअी अितनी ही है कि वे बलवान और वेगवान होते हैं। अगर अुनके विकार जबरदस्त हो सकते हैं तो वैराग्य भी जबरदस्त हो सकता है। जैसे जैसे अुम्र बढती है वैसे वैसे विकारों का भी शमन होता है। मोटे हिसाब से यह सच है। लेकिन अिसका कोअी विश्वास नहीं। यह कोअी शास्त्र नहीं है। हमारी बात चालू पीढी को अगर जँचे तो अच्छा ही है; और अगर न जँचे तो भी कोअी हानि नहीं। भावी पीढी हाथ में लेनी चाहिअे। युवक ही नये नये कामों में हाथ डालते हैं, बूढे नहीं। विकार किस तरह बढ़ते या घटते हैं यह मैं नहीं जानता। लेकिन अितना तो मानना ही पडेगा कि वृद्धों की बनिस्बत तरुणों में अुम्मीद और हिम्मत ज्यादा होती है।

फलप्राप्ति की अधीरता

दूसरी बात यह है कि कार्य शुरू करते ही अुसके फल की आशा नहीं करनी चाहिअे। पांच दस साल काम करने पर भी कोअी फल न आता हुआ देख कर निराश नहीं होना चाहिअे। हिन्दुस्थान के लोग बीस हजार साल के बूढे हैं। जब किसी गांव में कोअी नया कार्यकर्ता जाता है तो वे सोचते हैं कि अैसे तो कअी देखे। साधुसन्त भी आये और गये। नया कार्यकर्ता कितने दिन टिकेगा अिसके विषय में अुन्हें सन्देह होता रहता है। अगर अेक दो साल टिक गया तो वे सोचते हैं कि शायद टिक भी जाय। अनुभवी समाज है। वह प्रतीक्षा करता रहता है। अगर वे अपनी या हमारी मृत्यु तक भी राह देखते रहें तो कोअी बडी बात नहीं है।

वैतनिक कार्यकर्ता

अेक कार्यकर्ता के सामने यह सवाल खडा है कि वह गांधीसेवासंघ से तनख्वाह ले या न ले। वह देहात में मैला साफ करने का काम करता है। वह मुझसे कहने लगा कि अितने दिन हुअे मैं सफाअी का काम करता

हूं लेकिन लोगों पर अुसका कुछ भी असर नहीं। बिलकुल पक्के हो गये हैं। अेक स्त्री तो कहने लगी कि यह मैला साफ करता है अिसमें कौनसा अहसान है। गांधीसेवासंघ से तनख्वाह जो पाता है। अिसलिअे अुनके सामने यह सवाल पेश है कि अैसी हालत में वे गांधीसेवासंघ से तनख्वाह लें या न लें। मैंने अुनसे कहा कि तनख्वाह भी लो और काम भी जारी रक्खो। अगर वह स्त्री फिर टोके तो अुससे कहो 'हां, गांधी सेवा संघ से तनख्वाह लेता हूं और काम भी करता हूं। काम करता हूं अिसलिअे तनख्वाह लेता हूं। नहीं तो क्या मुफ्त में काम करूं? या मुफ्त की तनख्वाह लूं। तुम तनख्वाह दो तो तुमसे भी लूं। कहो, देती हो?' लेकिन मेरी बात कार्यकर्ता के गले कैसे अुतरे? वह अपने दिल में समझता है कि मैं भंगी से बड़ा हूं। अुसे समझना चाहिअे कि भंगी जिस तरह काम करता है और वेतन लेता है अुसी तरह मैं भी काम करके वेतन लेता हूं। लेकिन अुसके तो दिल के किसी कोने में यह भावना दबी हुअी रहती है कि मैं तो परोपकारी भंगी हूं। अगर मैं तनख्वाह लेने लगूं तो निरा भंगी ही बन जाअूंगा। तो फिर क्या सारा जन्म भंगी ही रहूंगा? अैसा अुसे डर लगता है। अुसे यह आशा होती है, कि ज्यों ही मैं भंगी काम शुरू करूंगा, लोग तुरन्त साथ देने लगेंगे। लेकिन लोग फौरन साथ नहीं देते। अैसी आशा भी नहीं रखनी चाहिअे। गीता भी यही कहती है कि फल की आशा न रक्खो। अिसलिअे कार्यकर्ता को मौजूदा पीढ़ी की सेवा ही करते रहना चाहिअे। फल के लिअे कम से कम अगली पीढ़ी तक धीरज रखना चाहिअे। यह अेक बात हुअी।

समरसता का अर्थ

दूसरी बात यह है कि देहातियों से समरस होने का ठीकठीक मतलब समझना चाहिअे। अुनका रंग हम पर भी चढ़ जाये, अिस का नाम अुनसे मिलना नहीं है। अिस तरह मिलने से तद्रूपता आने लगती है। मेरे मत से समाज के प्रति आदर का जितना महत्त्व है अुतना परिचय का नहीं है। समाज के साथ समरस होने से अुस का लाभ ही होगा अैसी बात नहीं। अगर हम अैसा मानें तो अुसमें अहंकार है। हम क्या कोअी पारस-पत्थर हैं कि हमारे केवल स्पर्श से समाज की अुन्नति होगी? केवल समाज से समरस होने से काम होगा अैसा मानने में जड़ता है। रामदास कहते हैं, 'मनुष्य को ज्ञानी और अुदासीन होना चाहिअे। समुदाय का हौसला रखना चाहिअे। लेकिन अखंड और स्थिर होकर अेकान्त सेवन करना चाहिअे।' वे कहते हैं कि, 'कोअी जल्दी नहीं है। शान्ति से और अखण्ड अेकान्त सेवन करो!' अेकान्त सेवन से आत्म-परीक्षण का मौका मिलता है। लोगों से किस हद तक सम्पर्क बढ़ाया जाय यह ध्यान में आता है। अन्यथा अपना निजी रंग न रह कर अुसपर दूसरे रंग चढ़ने लगते हैं। कार्यकर्ता फिर देहातियों के रंग का ही हो जाता है। अुसके चित्त में व्याकुलता पैदा होती है और वह ठीक भी होती है। फिर अुसका जी चाहता है कि किसी वाचनालय या पुस्तकालय की पनाह लूं। अेकाध बड़े आदमी के पास जा कर कहने लगता है कि मैं दो चार महीने आपका सत्संग करना चाहता

हूं। फिर वे महादेवजी और ये नन्दी, दोनों अेक रहने लगते हैं। वह कहता है, 'मैं बडा होकर खराब हुआ। अब तू मेरे पास आ कर रहा है। फायदा कुछ भी नहीं।' असलिअे समाज में सेवा के लिअे ही जाना चाहिअे। बाकी का समय स्वाध्याय और आत्मपरीक्षण में बिताना चाहिअे। आत्म-परीक्षण के बिना अुन्नति नहीं हो सकती। अपने स्वतं समय में हम अपना अेकाध प्रयोग भी करें। बगीचे का शौक हो तो बगीचा लगावें। कअी कार्यकर्ता कहते हैं कि, 'क्या करें, चिन्तन के लिअे समय ही नहीं मिलता। जरा बैठे नहीं, कि कोअी न कोअी आया नहीं।' जो आवे अुससे बोलने में समय बिताना सेवा नहीं है। कार्यकर्ता को स्वाध्याय और चिन्तन के लिअे अलग समय रखना ही चाहिअे। अेकान्तसेवन करना चाहिअे। यह भी देहात की सेवा ही है।

स्त्रियां गैरहाजिर क्यों ?

अब अिन खादी यात्राओं के सम्बन्ध में अेक बात कहनी है। यहां पुरुषों की ही संख्या अधिक है। जो स्त्रियां आयी हैं वे शहर से आयीं हैं। गांवों से स्त्रियां नहीं आयीं। खादीधारी स्त्रिया बहुत-सी है ही नहीं। देहातों से यहां सिर्फ दो चार आयी हैं। अगर महिलाश्रम की बहनों को छोड़ दिया जाय तो पुरुष और स्त्रियों का अनुपात ४०:१ होगा। अितना फरक तो सरकार ने मतदान का अधिकार देने में भी नहीं किया। खादीधारी स्त्रियों की संख्या कम हैं। अिसका अेक कारण तो यह है कि हमने जानबूझ कर खादी महंगी कर दी है। औरतें महीन साडी चाहती है। वह और भी महंगी पडती है। और दूसरा कारण यह है कि पुरुषों का खादी पहनना काफी माना जाता है। वह बाहर जाता है। अूंचे डंडे पर अगर झंडा फहराया जाये तो सबको दिखायी देता है। अुसी तरह अगर पुरुष के शरीर पर खादी हो तो देशभक्ति का श्रेय मिलता है। अब केवल खास सभाओं और अुत्सवों में खादी पहनने से काम नहीं चलता। वह हमेशा पहननी पडती है। यह मुश्किल है। अिसलिअे बाहर घूमनेवाला पुरुष सिर्फ खादी पहनता है। घर के अन्दर खादी का प्रवेश नहीं होने पाता है। दूसरी यात्राओं की अनेक बातें हम नहीं लेते। लेकिन अुनके गुणों को ग्रहण तो करना चाहिअे। पंढरपुर के तीर्थयात्रियों की मंडली में सौ में चालीस स्त्रियां होती हैं। कम से कम अुतनी तो यहां हों। मैं तो कहता हूं कि पुरुष खुद महीन सूत कात कर स्त्रियों को साडियां बुनवा दें, तो वे आसानी से खादी पहन सकेंगी।

स्त्रियों की सेवा करो

मेरी बात कहां तक जँचेगी यह मैं नहीं जानता। स्त्रियों के लिअे कोअी काम करने में हम अपनी हतक समझते हैं। पवनार का ही अुदाहरण लीजिअे। व्याकरण के अनुसार जिसकी गणना पुल्लिंग में हो सकती है अैसा अेक भी आदमी अपनी धोती आप नहीं धोता। बाप के कपडे लडकी धोती है, लडके के कपडे माँ धोती है और भाअी के कपडे बहन को धोने पडते हैं। माँ की साडी धोने में भी हमें शर्म आती है, तो पत्नी की साडी धोने की बात ही कौन कह सकता है? अगर बिकट प्रसंग ही आ जाये

तो अेकाध रिश्तेदारिन धो देती हैं। और वह भी न मिले तो पडौसिन वह काम करेगी। अगर वह भी न मिले और पत्नी की साडी धोने का मौका आ ही जाये तो फिर वह काम शाम को कोअी देख न पावे अैसे अिन्तजाम से, चुपचाप, चोरी से, कर लिया जाता है, अैसी हालत है। और मेरा प्रस्ताव तो अिसके बिलकुल अुल्टा है। लेकिन अगर आप मेरी बात पर अमल करें तो आगे चल कर वे स्त्रियां ही तुम्हारे कपडे बना देंगी, अिसमें तनिक भी शंका नहीं है। अेक बार में खादी का अेक स्वावलंबन केन्द्र देखने गया। दफ्तर में कोअी सत्तर पचहत्तर स्वावलंबी खादी-धारियों की तालिका टंगी हुअी थी। लेकिन अुसमें अेक भी स्त्री नहीं थी। वहां जो सभा हुअी अुसमें मेरे कहने से खास कर स्त्रियां भी बुलायी गयीं। मैंने पूछा, 'यहां अितने स्वावलंबी खादीधारी पुरुष हैं, लेकिन क्या स्त्रियां नहीं कातेंगी?' स्त्रियों ने जवाब दिया, 'हम ही तो कातती हैं।' तब मैंने खुद कातनेवाले पुरुषों से हाथ अुठाने को कहा। कोअी तीन चार हाथ अुठे। शेष सब स्त्रियों द्वारा काते गये सूत के जोर पर स्वावलम्बी थे। अिसलिअे कहता हूं कि फिलहाल तुम अुनके लिअे महीन सूत कातो। आगे चल कर वे ही तुम्हारे सारे कपडे तैयार कर देंगी। कमसे कम खादी यात्रा में पहनने के लिअे अेक साडी अगर तुम अुन्हें बना दो तो भी मैं संतोष मान लूंगा। अगर वे यहां आयेंगी तो कमसे कम हमारी बातें तो अुनके कानों तक पहुंचेंगी। अिसलिअे आपसे कहता हूं कि अगले साल जितनी संख्या में आप आयेंगे, अुतनी ही संख्या में स्त्रियों को लाअिये।

खादी यात्रा, नालवाडी
ता. १:४:३९

हिन्दुस्थान की गुलामी

व्यापारियों की अेक कम्पनी ने बीस करोड व्यक्तियों के अेक समूचे राष्ट्र को अपना गुलाम बना लिया। जो चाहे जैसी दंतकथाओं पर विश्वास नहीं करता अैसे किसी साबित दिमाग के आदमी से जरा यह बात जा कर कहो तो वह अिन शब्दों का अर्थ ही नहीं समझ पायेगा। अिसका मतलब ही क्या है कि तीन लाख आदमी—कोअी बडे तगडे पहलवान नहीं बल्कि मामूली कुछ नाताकात ही—बीस करोड जोशीले, होशयार, लायक और स्वातंत्र्य-प्रेमी लोगों को परास्त कर सकें? क्या अिन आंकडों से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि हिन्दुस्थानियों को अंग्रेजों ने गुलाम नहीं बनाया बरन् हिन्दुस्थानियों ने ही अपने आपको गुलाम बनाया?

१४-१२-१९०८ लिओ टॉलस्टाय

कार्यसमिति और सुभाष बाबू

[डॉ० राजेन्द्र प्रसाद]

कॉंग्रेस की कार्यसमिति ने जो अनुशासन की कारंवाअी श्री सुभाषचन्द्र बोस पर की है अुसके सम्बन्ध में बहुत टीकाटिप्पणी हो रही है। अुसके कारण समझ लेना आवश्यक है। अगर आज वह कार्यसमिति नहीं होनी और यह कारंवाअी सुभाषबाबू पर न की गअी होनी तो शायद अितनी टिप्पणी नहीं होनी। मगर असली तत्त्व पर पहुंचने के लिअे व्यक्तिओं को हटा कर अुस कारंवाअी के कारण पर ही विचार करना योग्य है। पिछले अितिहास को हम भूल जॉंय कि त्रिपुरी कॉंग्रेस के अध्यक्ष के चुनाव और त्रिपुरी कॉंग्रेस में तथा कलकत्ते के अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमिटी के अधिवेशन के समय में क्या हुआ और किसने क्या किया और अिस काम में जिन लोगों ने हिस्सा लिया है अुनके नाम भी भूल जायें और तब केवल अेक सिद्धान्त के प्रश्न के रूप में अिस सारे मामले को देखें तो साफ मालूम हो जायगा कि अिसमें क्या ठीक और क्या ग़लत हुआ है। अस्तु।

अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमिटी की बैठक होती है। अुसी समय वर्किंग कमिटी की भी बैठक होती है। वर्किंग कमिटी दो विषयों पर दो प्रस्ताव तैयार करती है, जिनमें से अेक को वह स्वयं अखिल भारतीय कमिटी के सामने रखने का विचार करती है और समय नहीं मिलने के कारण संभावना होती है कि वह पेश न भी किया जाय। अैसे मौके पर कुछ सदस्य चाहते हैं कि अुन दोनों पर विचार अवश्य होना चाहिअे क्योंकि दोनों ही महत्त्व के प्रश्न से सम्बन्ध रखते हैं। दोनों पेश किये जाते हैं। कुछ लोग दोनों का जोरों से विरोध करते हैं। पर बहुत बडे बहुमत से, दोनों, बहुत लम्बी-चौडी बहस के बाद, पास हो जाते हैं। जो लोग अुन प्रस्तावों का विरोध करते हैं अुनके नेता कमिटी के खतम हो जाने के कुछ दिनों के बाद विज्ञापन निकालते हैं कि सभी स्थानों पर सभायें की जायें और अुन प्रस्तावों का विरोध किया जाय और अुनके विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया जाय। ये सभायें केवल कांग्रेसी लोगों की नहीं हैं, बल्कि अिनमें सभी लोग शरीक होनेवाले हैं और संभव है कि इनमें अैसे भाषण दिये जायें जिनसे कॉंग्रेस अखिल समिति के निश्चय की और अुपसमिति की निन्दा की जाय। प्रस्ताव भी दोनों अैसे हैं, जिन पर प्रान्तीय तथा दूसरी कॉंग्रेस कमिटियों को काम करना है और जिनको कार्य में परिणत करने का भार कांग्रेस कमिटियों तथा अुनके कर्मचारियों पर है। अुनको कार्य में परिणत करने के बदले अेक प्रान्तीय कमिटी का अध्यक्ष अपने कमिटी के सदस्यों को ही नहीं, बल्कि सब लोगों को अुनके विरोध में लगने का प्रोत्साहन देता है और अिन विरोधी सभाओं को करने और कराने का आदेश देता है। जब कांग्रेस के अध्यक्ष को अिसकी सूचना मिलती है, तब वह अुसको मना करता है और बताता है कि अिससे कांग्रेस का सारा कारोबार बिगड़नेवाला है और अुससे अनुरोध करता

है कि वह अैसा काम न करे। पर वह अिस पर कुछ भी ध्यान न दे कर सभायें करता और कराता है। अगर वह कांग्रेस का अुत्तरदायी कर्मचारी न होता और अेक प्रान्तीय कमिटी का अध्यक्ष न होता तो बात कुछ दूसरी हो सकती थी। पर वह अध्यक्ष भी बना रहता है और अखिल भारतीय कमिटी के निश्चय तथा कांग्रेस के अध्यक्ष के आदेश की अवहेलना केवल स्वयं ही नहीं करता, पर औरों को भी प्रोत्साहन देता है। अगर कोअी कांग्रेस कमिटी यह समझती कि यह प्रस्ताव ठीक नहीं हुआ है और अखिल भारतीय कमिटी को लिखती कि अिस पर पुनर्विचार किया जाय तो यह दूसरी बात हो सकती थी। पर बात अैसी नहीं थी। यहां तो जनता को अुभाड़ कर अखिल भारतीय कमिटी के प्रस्ताव के विरुद्ध बगावत कराने की बात थी। अैसी अवस्था में अखिल भारत कार्य समिति का क्या धर्म होता है? अुसका पहला काम है कि कांग्रेस के निश्चयों को कार्यों में परिणत करे और तमाम अधीनस्थ कमिटियों से करावे। जब वह देखती है कि अिसके बजाय विरोध और बगावत का झंडा अुठाया जा रहा है, तो अुसका धर्म हो जाता है कि, अिस चीज़ को वह बर्दाश्त न करे और अिसको रोकने में जो मुनासिब हो करे—कम से कम अुन लोगों को जो कांग्रेस के कर्मचारी होते हुअे बगावत करते और कराते हैं और अिस प्रकार से लोगों में भ्रम फैलाते हैं अुनको तो अपने अुन पदों से हटा दे। कार्यसमिति ने अिससे अधिक कुछ नहीं किया है। अगर वह अितना न करती तो वह अुस पद के अयोग्य प्रमाणित होती जिस पर अुसको बिठाया गया है।

कहा जाता है कि अिस प्रकार की कार्रवाअी गया कॉंग्रेस के बाद देशबन्धु दास और स्वर्गीय पंडित मोतीलालजी ने की थी। यह भी कहा जाता है कि अुस समय भी कुछ कमिटियों ने बगावत की थी। पर अुनपर कोअी कार्रवाअी नहीं की गयी। बात अैसी नहीं है, जहां तक मुझे स्मरण होता है बात अिसके ठीक विरुद्ध थी। गया कॉंग्रेस ने प्रस्ताव पास किया। अुसके बाद ही देशबन्धु दास ने अध्यक्ष पद से अिस्तीफा दे दिया। बंगाल प्रान्तीय कमिटी के भी वह अध्यक्ष नहीं रहे और अिस प्रकार आज की परिस्थिति से वह परिस्थति बिलकुल अलग थी। पंडितजी भी जहांतक मुझे स्मरण है, प्रान्त के अध्यक्ष नहीं थे। थोड़े दिनों के बाद अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हुअी। अुसने निश्चय किया कि गया कॉंग्रेस के आदेशानुसार काम करना स्थगित रखा जाय। अिसका विरोध कुछ प्रान्तीय कमिटियों ने किया। अुनका कहना था कि जहां कॉंग्रेस ने स्वयं आदेश दिया है वहां अखिल भारतीय कमिटी को अकारण अुस निश्चय के अनुसार कार्रवाअी रोकने का अधिकार नहीं है। तथापि अुन कमिटियों के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाअी करने की जरूरत अुस समय की कार्यसमिति ने महसूस की और अेक अनुशासन का प्रस्ताव अखिल भारतीय कमिटी के सामने अुसने पेश भी किया। बहुत बहस के और सब बातों को विचार करने के बाद अखिल भारतीय कमिटी में अेक या दो मत से वह प्रस्ताव पास न हुआ। अुसमें और आज की परिस्थिति में जमीनआसमान का अन्तर है। अखिल भारतीय कमिटी ने कांग्रेस के आदेश की अवहेलना करके हुकुम दिया था। अुस

हुकुम के विरुद्ध कुछ कमिटियों ने कांग्रेस के आदेश को अधिक महत्त्व दे कर मानने की बात कही थी और अखिल भारतीय कमिटी के अनधिकार निश्चय का विरोध किया था। तो भी अुनकी कर्रवाओी अनुशासन योग्य समझी गयी और परिस्थिति का खयाल करके अखिल भारतीय कमिटी ने कारंवाओी करना अुचित नहीं समझा।

हमको मान लेना होगा कि कांग्रेस अेक अैसी जमायत है जिसका काम जनता और अुसके सदस्य तथा कर्मचारियों के हृदय में अुसके प्रति श्रद्धा रहने से ही चल सकता है। अगर वह श्रद्धा किसी प्रकार से कम करा देने का प्रयत्न किया जाय अथवा अुसके निश्चयों के विरोध करने का रूप अैसा हो जाय जिससे अुसके अस्तित्व पर ही धक्का लगने लगे तो वह कायम नहीं रह सकती है। जब अिस प्रकार के हमले अुस पर होने लगें तो अुनका निवारण कर्तव्य हो जाता है और हमला करनेवाला कोअी भी हो अुसकी परवाह न करके संस्था की शान और अिज्जत बचानी ही पड़ती है।

वर्धा
२०-८-३९

गुलाम और पियक्कड

जब हिन्दुस्थान के लोग यह शिकायत करते है कि अंग्रेजों ने अुन्हें गुलाम बनाया तो अैसा लगता है, मानो पियक्कड लोग यह शिकायत करने लगें कि शराब के सौदागरों ने हमारे अन्दर आ कर हमें अपना गुलाम बनाया। आप अुनसे कहिअे कि वे शराबखोरी छोड दें; तो वे जवाब देंगे कि वे अुसके अितने आदी हो गये हैं कि अब अुनसे बिना पीये रहा भी नहीं जाता और अुनकी काम करने की ताकत बिना शराब के टिक नहीं सकती। जो करोडों लोग कुछ हजार, बल्कि कुछ सौ स्वदेशी या विदेशी व्यक्तियों के दास बन कर रहते हैं अुनका भी क्या यही हाल नहीं है?

१४-१२-१९०८ लिओ टॉलस्टाय

सर्वोदय की दृष्टि

युद्धोन्मुख यूरोप

श्री चर्चिल ने अभी अभी लंडन में बैठे बैठे अमेरिका के सामने अेक बडी घोषणा की। अुनकी शिकायत यह है कि दुनिया में शान्ति का रहना या विश्वयुद्ध के दावानल का भडकना अेक आदमी की सनक पर निर्भर है। यह पागलपन बन्द करना ही चाहिअे। क्या सचमुच दुनिया का हित अनहित अेक आदमी की सनक पर निर्भर है? जब कोअी आदमी फांसी पर लटकता है तब यह कहना कि वह कठोरता, वह घातकता, फांसी की रस्सी की है, जितना युक्तिसंगत है, अुतनी ही श्री चर्चिल की यह बात है। जैसे कोअी महात्मा अपनी सद्वासना से और साधना से अकेला सारे राष्ट्र का अुद्धार नहीं कर सकता वैसे ही कोअी दुर्दान्त आत्मा अपनी अकेले की व्यक्तिगत सनक से दुनिया का भलाबुरा नहीं कर सकता। अेक छोटीसी चिनगारी सूखे जंगल को जला देती है। क्योंकि वह जंगल सूखा और अग्नि का भूखा है। अग्नि का खाद्य बनने की अुसकी तमन्ना है। अग्नि अगर हरी घास पर पडे तो थोडी-सी घास को वह जरूर नष्ट कर सकती है, किन्तु सारे चरागाह को जला नहीं सकती। दावानल भी अगर दलदल में जा कर पडे तो क्या कर सकता है? यूरोप में जो तैयारियां हो रही हैं अुन्हें क्या अकेला हिटलर कर रहा है? हिटलर कोअी स्वतंत्र व्यक्ति नहीं है। हिटलर तो व्हर्सेल्स के सुलहनामे की प्रतिक्रिया का मूर्तस्वरूप है। व्हर्सेल्स का सुलहनामा दरअसल सुलहनामा ही नहीं था, वरन् दूसरे महायुद्ध का बीज ही था। हिटलर में जो नृशंसता आज देखी जाती है वह सब व्हर्सेल्स के सुलहनामे के हरअेक अक्षर में पायी जाती है। बीज बोना और अुसके फल अुगने पर आश्चर्य करना या तो निरी अज्ञानता है, अथवा निर्लज्ज दंभ है।

१२:८:३९ का० का०

आगामी महायुद्ध और हिन्दुस्थान

यूरोप में जिन्दगी दिन पर दिन महंगी होती जाती है। वासनातृप्ति को ही जीवनसमृद्धि समझ कर सुखचैन के साधन वे लोग बढाते जाते हैं। अिसमें प्रतिद्वंदिता, अीर्ष्या, द्रोह पैदा होना अपरिहार्य है; और अुसीका अन्तिम स्वरूप महायुद्ध है। जो जीवन-व्यवस्था अप्राकृतिक और द्रोहमूलक होती है अुसका कभी न कभी अन्त होना ही है। यह अन्त या तो हृदय परिवर्तन से होगा अथवा जीवनक्रान्ति से होगा। यूरोप में महायुद्ध किसी न किसी बहाने शुरू होगा ही; और अुसमें से फिर न तो अमेरिका बच सकता है, न जापान। युद्ध, क्रान्ति और विप्लव अीश्वर के नैतिक साम्राज्य के कानून से ही पैदा होते हैं।

"अिस महायुद्ध में हिन्दुस्थान का क्या होगा?" यह सवाल हरअेक के मन में आये बिना नहीं रहता। जिनके हाथों भगवान को कुछ काम कराने की अिच्छा होती है अुनके जीवन में भगवान असाधारण क्रान्ति कर डालता है। जिनका जीवन स्थिर हो गया, निश्चिन्त हो गया, सुरक्षित हो गया, अुनके जीवन की कीमत भी शून्य हो गयी। अैसे जीवन में न तो

रहेगी मिठास, न नमक। भारत के लोगों ने अशान्ति से डर कर गुलामी कबूल कर ली; अशान्ति से डर कर गरीबी भी मंजूर की। बडे बडे झगडों में अपनी हार मान कर छोटे छोटे झगडों में ही अपने रजोगुण की तृप्ति की। किन्तु भगवान को हमें अुस दशा में, अैसी पामर हालत में रखना नहीं है; अिसलिअे वह हमारी सलामती हमसे छीन लेना चाहता है। कभी बाढ आती है, कभी भूचाल, कभी अकाल पडता है, कभी कभी बारिश की जगह धूप बरसती है और जहां धूप चाहिअे वहां की घास सडने लगती है। प्लेग, अिन्फ्लूअेन्झा, हैजा तो हमारे पीछे पडे ही हैं। और अब तो हमारे देशी राजा भी हमें यह सबक सिखा रहे हैं कि हमारा जीवन तो अुनकी गोलियों का और शिकार के लिअे सुरक्षित जानवरों का खाद्य है। अिसके मानी यही हैं कि भगवान हमें जीवन लंपटता से बचाना चाहता है। हमसे कुछ न कुछ पुरुषार्थ कराना चाहता है। अगर हम अुसके लिअे मानसिक तैयारी करें तो भगवान का संकल्प चरितार्थ करने का सौभाग्य हमें प्राप्त होगा; नहीं तो भगवान का दिया हुआ आखिरी मौका खो बैठनेवाली जाति की जो दुरावस्था होनी है अुसके लिअे हमें तैयार रहना होगा।

अुसकी तैयारी तो क्या करनी है? हम अदूर-दृष्टि बनें, पुरुषार्थ को भूल जायँ, अुदारता से नफरत रक्खें, आगे बढनेवालों के पैर खींचें, अेक दूसरे का अविश्वास करते रहें, निजी और गुप्त स्वार्थ साधने के लिअे सार्वजनिक मतभेद अुत्पन्न करें और अिसी में आनन्द मानते हुअे विलासिता में डूब जायँ, अैसी तैयारी के लिअे कुछ विशेष सोचने की जरूरत नहीं है, किसी साधनाक्रम की आवश्यकता नहीं है। जो चलता आया है अुसीको जोरों से चलाना होगा। अूपर से नीचे फिसलने में, खिसकने में, बडा आनन्द आता है, चाहे वह आनन्द अल्पजीवी भले ही हो!

किन्तु हिन्दुस्थान का आजतक का अितिहास कहता है कि अितनी बडी संस्कृति, अितने बडे आदर्श, अितनी भीषण तपस्या अैसे विनाश के लिअे शुरू नहीं हुअी है। भगवान तो हमें अपने तरीके से जाग्रत करना चाहता है, वह हमें जीवनक्रान्ति की शिक्षा दे रहा है। अिससे हमारी नींद टूट जायगी, आदतें सुधर जायेंगी, अपनी निजी शक्ति का हमें अनुभव होगा और हम आजाद होकर दुनिया की कुछ सेवा कर सकेंगे। यह सब समय पर हो अितनी ही हमारी प्रार्थना हो सकती है। जिससे हमारी नींद टूटे, हमारी सब शक्तियों का हमें परिचय हो और हम अपने व्यक्तित्व को प्रगट कर सके, अुस साधनाक्रम को हम विपत्ति कैसे कह सकते हैं? वह तो हमारी सबसे श्रेष्ठ साधनसंपत्ति है।

१२:८:३९ का० का०

अहिंसक आत्मरक्षा की योजना?

दिन पर दिन यूरोप की परिस्थिति गहरी होती जा रही है। अिंग्लेंड, जर्मनी, जापान अिटली, अमेरिका, फ्रान्स, रूस आदि देश लोभ से और डर से और अिसी कारण अविश्वास से अितने भरे हुअे हैं कि अेक बडा महायुद्ध हुअे बिना दूसरा चारा ही नहीं है।

दूसरी तरफ से यह भी अेक विचार है कि जिस प्रकार ताश खेलने में अगर

किसी के हाथ में सबके सब अच्छे और कीमती पत्ते आ गये तो वह खेलने के बदले अपने सब पत्ते मेज पर रख कर प्रतिस्पर्धियों को कह देता है कि पूरी हार मान लो और आगे बढो। अुसी तरह युद्ध किये बिना केवल युद्ध की तैयारी नाप के ही हार या जीत तय की जायगी और मनुष्य-संहार टाला जायगा। हिटलर आज यही कर रहा है। हमारे यहां भी जब किसी चक्रवर्ती का अश्वमेध का घोडा अकुतोभय सचार करता था तब छोटे-मोटे सब राजा अुस अश्व की सेवा करके चक्रवर्ती का शिरच्छत्र कबूल करते थे और युद्ध टालते थे।

किन्तु भाग्य के खेल में अच्छे पत्ते हमेशा अेक ही आदमी के हाथ में नहीं आते। युद्ध तो हुआ ही करते हैं।

कभी कभी यह भी आशा की जाती है कि पिछले अनेक युद्धों के नतीजे का ख्याल कर और आजकल के युद्धों में विजयी पक्ष का भी असाधारण नाश होता हुआ देख कर बडे बडे राष्ट्र भी युद्ध के किनारे तक जा कर महासंहार का चित्र नजर के सामने आते ही घबडा कर पीछे हटेंगे और कहेंगे कि चाहे कुछ भी हो हम युद्ध तो करेंगे ही नहीं।

यह आशा भी दुराशा-सी मालूम होती है। मनुष्यजाति का युद्धज्वर अभी भी दूर नहीं हुआ है। अैसी हालत में हर देश को यही चिन्ता रहती है कि पडोस के लोग अगर हमपर हमला करें तो हमारी क्या हालत होगी? पिछले अेक अंक में अिस बात पर हम लिख चुके हैं कि आत्मरक्षा का सवाल अब केवल तात्विक (अॅकेडेमिकल) रहा नहीं है। लोग अुसे कल्पना की नजर के सामने प्रत्यक्ष देख रहे हैं। भविष्य के संकट को पहले से देख कर अुसका जो अिलाज करता है अुसको हमारे साहित्य में "अनागत-विधाता" कहा है। संकट आ पडने पर तुरंत अपनी बुद्धि चला कर जो अिलाज करता है अुसे 'प्रत्युत्पन्नमति' कहा है। संकट आने पर भी जो अिलाज नहीं करता, अितना ही नहीं, किन्तु अिलाज के बारे में सोचता तक नहीं अुसका तो नाश ही है। अगर हिन्दुस्थान का अितिहास हम ध्यान से पढें तो हमारी जाति में 'अनागतविधाता' बहुत कम पैदा हुअे हैं। 'प्रत्युत्पन्नमति' महापुरुष भी कभी कभी पैदा हुअे हैं। किन्तु सारे राष्ट्र का अगर विचार किया जाय तो हम 'दीर्घसूत्री' ही रहे हैं। जब कभी कोअी अेमडन जहाज मद्रासपर गोली चलाता है तब हम घबडा कर दो दिन सोचने लगते हैं। जब कभी बम्बअी या कलकत्ते में वैमानिक दृष्टि से "अँधेरी रात" बनाने का प्रयोग किया जाता है तब भी हम कुछ घबडा कर और कुछ कुतूहल से दो दिन के लिअे जाग्रत हो जाते हैं और फिर से अपनी पुरातन नींद में डूब जाते हैं। यही हमारा सनातन धर्म है।

जबतक स्वराज्य का सवाल नहीं था तबतक यह बात योग्य भी थी। रक्षण की बात अबला क्यों सोचे? जिन्होंने हमारा हाथ पकड लिया है वे ही हमारी रक्षा की चिन्ता करें, यह विचार तब ठीक था।

किन्तु अब तो हम कुछ न कुछ अधिकार पा बैठे हैं। आत्मरक्षा के बारे में कुछ न कुछ सोचना ही पडता है। अगर आन्तरिक शान्ति की स्थापना के लिअे पुलिस की मदद लेने से हम बच न पाये तो बाह्य

आक्रमण के समय हम फौजी मदद जरूर चाहेंगे। फिर तो हमारा अहिंसा में विश्वास केवल अेक 'पॉलिसी' ही साबित होगी। बम्बअी, मद्रास, युक्तप्रान्त और बिहार की सरकारें जिस ढंग से काम कर रही हैं, अुसे देखते यह स्पष्ट है कि अहिंसक आत्म-रक्षा पर हमारा विश्वास नाममात्र ही है। कम से कम अहिंसक आत्मरक्षा के तंत्र का, (टेक्निक का) विचार करने में हम असमर्थ हैं।

जो हमारे भाग्य में बदा होगा सो ही होगा। किन्तु अगर हम सचमुच अहिंसावादी हैं तो हमें अनागतविधाता बन कर अहिंसक आत्मरक्षा के मार्ग के अंग-अुपांग, शाखा-प्रशाखा, सब कुछ सोच रखना चाहिये। और अहिंसक आत्मरक्षा के लिअे जिस किस्म की तालीम आवश्यक है, जिस प्रकार के जीवन का संगठन करना आवश्यक है, अुसे कम से कम हम सोच तो रक्खें।

गांवों के लोगों को अिस बात में केवल शिक्षा ही नहीं देनी होगी, किन्तु महीनों तक अुसकी ड्रिल (आवृत्ति) करानी होगी। अगर हिंसावादी लोग 'बमप्रूफ' मकानों में किस प्रकार रहना, जहरीली वायु से बचने के लिअे जाली का "चेहरा" (मास्क) किस तरह लगाना— यह सब जनता को सिखाना आवश्यक मानते हैं तो अहिंसा-वादियों को अिससे भी अधिक और भिन्न तरह का अभ्यास करना होगा। शहरों की रक्षा के लिअे तो शायद हिंसक या अहिंसक किसी तरह का अिलाज ही नहीं है। बकरे जैसे कत्ल होने के लिअे ही पैदा होते हैं, वैसे ही तमाम शहर शायद हवाअी बम का खाद्य होने के लिअे ही पैदा हुअे हैं। लेकिन अिन सब बातों का हमें विचार तो करना चाहिअे। हमारे अहिंसावादी पाठक अपना अपना दिमाग चला कर अपनी अपनी योजनायें अगर 'सर्वोदय' के पास भेज दें तो कृपा होगी।

आत्मरक्षा के लिअे देहातों की शरण

अब तो महायुद्ध का पदरव सुनाअी दे रहा है। अब किसी भी अेक राष्ट्र के रोके वह रुक नहीं सकता, हां, अगर कोअी अेक राष्ट्र नचिकेता की श्रद्धा से अपना बलिदान दे दे तो शायद यह महायुद्ध टल जाय। अिसके मानी ये होते हैं कि या तो किसी राष्ट्र में महान जीवनक्रान्ति हो; और या विश्वयुद्ध छिड़ जाय। दो ही रास्ते हैं।

अिस आगामी महायुद्ध में भारतवर्ष अिंग्लैंड की मदद करे या नहीं यह प्रश्न तात्कालिक महत्व भले ही रखता हो, किन्तु फिर भी गौण ही है। हिन्दुस्थान मदद करे या न करे, अिस युद्ध का असर हिन्दुस्थान पर हुअे बिना नहीं रहेगा। अुस असर से हम अपने को किस तरह बचा सकते हैं? अिस युद्ध के प्रति हमारी प्रतियोगिता कैसी हो यही सबसे बडा सवाल है। जब युद्ध शुरू होगा तब अुसका सबसे बडा नतीजा यह होगा कि जिन विदेशी वस्तुओं के हम आदी हो गये हैं अुन चीजों का यहां आना बन्द हो जायगा और फिर हमें अपने लिअे कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही होगा। न यहां विदेश की पूंजी हमारी मदद के लिअे आ सकेगी, न अुनके कल-कारखाने।

जबतक दरियाअी सामर्थ्य का ही सवाल था तबतक हमारे देश का किनारा किस हद तक खतरे में है अिसी बात को हम सोचते थे। अब तो हवाअी जहाजों का युद्ध

ही युद्ध का प्रधान अंग होगा। अुसके लिअे हम क्या क्या कर सकते हैं ? हम पहले कह चुके हैं कि हवाअी आक्रमण से खास डरना पडता है बडे बडे शहरों को। बम वर्षा से पांचदस गांवों को बेशक वे बेचिराग़ कर सकते हैं। लेकिन गांवों पर बम बरसाना अितना महंगा काम है कि कोअी भी सेना अपनी शक्ति गांवों के खिलाफ आजमाने में हिचकिचायेगी। शहरों को ही विलायतवालों से सीखना होगा कि जब बम वर्षा होती है तब क्या किया जाय ? अेमडन ने जब मद्रास पर बम फेंके तब लोग अपनी स्वाभाविक सूझ-बूझ चला कर किनारे को छोड कर अन्दर के प्रदेश में चले गये। जब हवाअी जहाजों से बम की वर्षा शुरू होगी तब लोगों को घनी बस्ती छोड़ कर बिरले बसे हुअे गांवों में जा कर बसना होगा और वहां पर ग्रामअुद्योग से ही अपनी जीवनयात्रा चलानी होगी। ग्रामअुद्योगों में जो लोग प्रवीण हैं वे ही समाजनायक बन जायेंगे और जो लोग गांव में जा कर बसेंगे वे ही बच सकेंगे।

किन्तु केवल बच जाना ही हमारा अुद्देश नहीं होना चाहिअे। हम दुनिया को युद्ध की आपत्ति से किस तरह छुड़ा सकते हैं, यही हमें सोचना चाहिअे।

१२:८:३९ का० का०

कच्चे गांधीवादी वि० कट्टर गांधीवादी !

' संघ वृत्त ' में राम वि० भरत का मामला मैंने पेश किया है। उसकी जाँच में मैंने अेक बात यह पाई कि कई कई जगह कॉंग्रेस में अैसी भी दलबन्दियाँ बनने लगी हैं, जैसी इस शीर्षक में बताई हैं। भरत मानते थे कि वे और उनके मित्र कट्टर गांधीवादी हैं, लेकिन राम इतने कट्टर नहीं हैं। वे तो समाजवादी और उग्रवादियों का भी सहयोग लेते देते हैं। इसीलिअे उनका विरोध करने की उन्हें बुद्धि हुई।

कुछ ही दिन पर अेक भाई ने मुझे कहा था कि अमुक अेक सदस्य समाजवादियों से बहुत मिलते जुलते हैं। उनके वहां ठहरते भी हैं। मैंने कहा कि वैसा तो मैं भी करता हूं। हाल ही में जब मैं वृन्दावन से लौटा तब पटना में श्री जयप्रकाश नारायण के वहां ठहरा था ! यह सुन कर उन्हें अचरज हुआ।

संकीर्ण मनोवृत्ति कभी अहिंसक नहीं रह सकती। देश के दुश्मन से भी अहिंसा रखने का हमारा दावा है, तो समाजवादी तो हमारा ही अंग है। उन्हें हमारी कुछ बातें आज नहीं जँचतीं। हमें उनकी कुछ बातें नहीं जँचतीं। लेकिन, अेक दूसरे से ज्यादा संपर्क में आने से जो सत्य होगा, वह दोनों को अेक दिन जँच जायगा, बशर्ते कि दोनों सत्यप्रिय और देशहितचिंतक हों। इसलिअे हम साफ दिल से और निःस्वार्थ भाव से अेक दूसरे की मित्रता रखने से न डरें।

कौन कितना गांधीवादी है, इसे तराज़ू से तोला नहीं जा सकता। नेक मार्ग से कौन कितना काम करता है, उसीका ज्यादा ख्याल करना चाहिअे। कितने ही लोग आज फॉर्वर्ड ब्लॉक में गये हैं; क्योंकि वे आज की वर्किंग कमिटी से असंतुष्ट हैं। न कि इसलिअे कि उन्हें सुभाषबाबू के नेतृत्व में श्रद्धा है। इसी तरह कितने ही लोग आज गांधीवादी हैं। क्योंकि उसमें वे आज सुरक्षा मानते हैं। न कि, इसलिअे कि उन्हें गांधीजी के सिद्धान्तों में श्रद्धा है।

अगर वे राजीखुशी से वर्कींग कमिटी को सहयोग दे रहे हैं, तो उसको कैसे रोकें? और क्यों रोकें? लेकिन, अगर इसमें से कट्टर गांधीवादी और कच्चे गांधीवादी आदि दल-बन्दियां पैदा हों, तो समझ लेना चाहिअे कि आखिर में इसमें से बुराई ही पैदा होगी।

शक्ति, प्रतिशक्ति और फलशक्ति

साम्यवाद का अेक तात्त्विक सिद्धान्त है कि दुनिया में प्रगति का जो क्रम चल रहा है वह इस प्रकार का है। पहले अेक शक्ति (थिसिस) पैदा होती है। लेकिन उसके पैदा होते ही अेक दूसरी भी शक्ति का बीज डाला जाता है। यह दूसरी शक्ति पहली शक्ति से उलटी या विरोधी होती है। उसे प्रतिशक्ति (अॅण्टि थिसिस) कहें। फिर, अेक तरफ से वह शक्ति बढती जाती है। और दूसरी तरफ वह प्रतिशक्ति भी बढती जाती है। आगे जाते दोनों का स्वरूप सबकी नजर में आने लगता है, और दोनों के बीच में स्पष्ट विरोध होने लगता है। इस संघर्ष में से अेक तीसरी शक्ति पैदा होती है, जो दोनों में कुछ मेल करानेवाली होती है। है, इसे फलशक्ति (सिन्थेसिस) कहे। आखिर में यह फलशक्ति विजयी होती अैसा दिखने लगता है। वास्तव में इस फल-शक्ति के साथ ही अेक उसकी भी प्रति-शक्ति पैदा होती है। इस दूसरी जोडी में से फिरसे अेक नयी फलशक्ति पैदा होती है। इस तरह शक्ति, प्रतिशक्ति और फलशक्ति का क्रम चलता रहता है।

श्री सुभाष बाबू मानते हैं कि गांधीजी ने हिन्दुस्थान में अेक शक्ति प्रकट की। तब कुदरत के इस नियम से अेक प्रतिशक्ति भी उसी समय प्रकट हो गई। उसका अस्तित्व अब तक ध्यान में आया नहीं था। लेकिन, अब वह शक्ति बढी है, और अपना जोर दिखाने योग्य हुई है। कुदरत ने उन्हें इस शक्ति का वाहन बनाया है। इसलिअे कॉंग्रेस के वर्तमान संघर्ष का कोई व्यक्तिगत रूप नहीं है। गांधीजी, सरदार आदि अेक शक्ति के वाहन हैं। सुभाष बाबू आदि उस की प्रतिशक्ति के वाहन हैं। इसमें से आगे अेक फलशक्ति पैदा होगी, जो हिंदुस्थान का समाधान करेगी।

विचार की यह भूमिका ऊंची हो सकती है, बशर्ते कि दोनों ओर रागद्वेषरहित और निरहंकार भाव से काम करने की आदत हो। लेकिन, जहां आसक्तिपूर्वक काम किया जाता हो, वहां यह तत्त्वज्ञान दोनों पक्ष के लिअे शुष्क वेदान्त हो जाता है। और जब अहंकार तथा रागद्वेष अेक तात्त्विक दृष्टि का सहारा लेता है, तब वह सर्वोदय की दृष्टि से ज्यादा खतरनाक हो जाता है। रागद्वेष प्रेरित दाक्षिणमार्गी और वैसा ही वाममार्गी किसी भी तात्त्विक सिद्धान्त का आश्रय न ले तो ज्यादा अच्छा होगा।

तत्त्वदृष्टि से ही विचार किया जाय तो शक्ति, प्रतिशक्ति और फलशक्ति की त्रयी अेक ऊपर के अवलोकन से ही बनाया हुआ सिद्धान्त है। शक्ति के साथ प्रतिशक्ति क्यों पैदा होती है? और उनसे हुई फलशक्ति दूसरी अेक त्रयी का प्रारंभस्थान क्यों हो जाती है? गहरा उतर कर देखा जाय तो मालूम होगा कि दोनों की जीवनप्रदाता अेक ही सत्यशक्ति है। शक्ति की जो कूवत है और प्रतिशक्ति की भी जो कूवत है, वह दोनों सत्य के कारण है। लेकिन, सत्य

के साथ हम अपने अपने रागद्वेष तथा अहंकार भी जोड देते हैं। यह दोनों में रहा हुआ असत्य है, और इसीकी वजह से भैंसों की तरह दोनों झगडते हैं। वास्तव में शक्ति और प्रतिशक्ति का संघर्ष नहीं होता, बल्कि दोनों के रागद्वेषों का ही होता है। वही उनसे पैदा हुई फलशक्ति में शरीक होता है।

लेकिन, अहंकार और रागद्वेष से भी कैसे छुटकारा हो? समझ जाने भर से वह थोडे ही निकल जाते हैं? जब अेक मनुष्य देखे कि वह आसक्तिपूर्वक ही काम कर सकता है, और फिर भी सर्वोदय चाहता है, तब वह क्या करे? यह वैसा ही सवाल है जैसा जब अेक मनुष्य देखे कि उसमें तीव्र कामवासना है, फिर भी वह सदाचारी जीवन चाहता है, तब क्या करे? सत्पुरुष उसे कहेंगे कि यदि वह कम से कम कुछ स्थूल नियमों का पालन कर लेगा, तो शारीरिक पापों से स्वयं बचेगा और दूसरों को भी बचा लेगा। इस दृष्टि से परस्त्री के साथ अेकान्त सेवन न करना आदि नियम बताये गये हैं। इसी तरह भले ही अेक पक्ष अेक शक्ति का वाहन बना हो, और दूसरा उस की प्रतिशक्ति का, अगर दोनों अहिंसा और निष्कपटता का स्थूल पालन भी कर लें, तो दोनों बच जा सकते हैं, और देश को भी खतरे से बचा सकते हैं। शक्ति और प्रतिशक्ति में तीव्र संघर्ष हुअे बिना फलशक्ति निर्माण नहीं हो सकती, यह मान्यता उसी तरह की है कि कष्टरहित प्रसूति हो ही नहीं सकती। प्रसववेदना की तरह संघर्ष को कुदरत का अनिवार्य नियम ही न समझना चाहिअे, बल्कि उसके कुछ नियम के भंग का परिणाम। इस संघर्ष की तीव्रता कम करने का उपाय केवल अहिंसा ही है।

भय और अहिंसा

लेकिन, जब भय पैदा हो तब अहिंसा का टिकना मुश्किल होता है। श्री सुभाष-बाबू कॉंग्रेस तंत्र में डर पैदा करा देने में सफल हुअे हैं, इसमें शंका नहीं। जिस संस्था ने गांधीजी के नेतृत्व में जनता में आत्मविश्वास और निर्भयता की भावना पैदा कराई, वही संस्था आज भीतरी फूट के कारण डर महसूस कर रही है।

हमारी तपश्चर्या कम हो रही है यही इसका कारण है, और उसे बढ़ाना ही उपाय है।

कि० घ० म०

आर्यसमाज की सफलता

आर्यसमाज की मांगें न्याययुक्त थीं अिस के विषय में तो किसीका मतभेद नहीं था। जबतक सार्वजनिक शान्ति और सार्वजनिक हित का भंग न हो, हरअेक को अपने अपने अभिप्राय के अनुसार अपना धार्मिक जीवन बिताने का अधिकार होना ही चाहिअे। यह सिद्धान्त प्रस्थापित करने के लिअे मनुष्य-जाति ने कअी युगों तक पुरुषार्थ किया, और न जाने कितना बलिदान दिया। अब अिस विषय में कहीं भी मतभेद होने का कारण नहीं है। अैसा होते हुअे भी अगर कोअी पिछडी हुअी या मूढग्राही सरकार मनुष्यत्व के अैसे सामान्य अधिकारों के लिअे भी नया बलिदान मांगे तो हरअेक धर्मप्रेमी को अुतनी कीमत अदा करने के लिअे तैयार रहना ही चाहिअे। किन्तु "कोअी सरकार अैसा बलिदान कैसे मांग सकती है," अैसा सवाल मन में अुठे

बिना नहीं रहता; जो बातें अनेक बार सिद्ध हो चुकी हैं अनको फिरसे सिद्ध कराने के लिअे क्या बार बार कीमत देनी ही चाहिअे ?

जवाब यह मिलता है कि स्वतंत्रता प्राप्त करना मनुष्य का जितना कर्तव्य है अुससे भी अधिक स्वतंत्रता को अधिक जागरूकता से सम्हालने का अुसका अधिकार है। अगर किसी भी कारण हम अपनी स्वतंत्रता खो बैठे हों तो अुसकी पुनःस्थापना करने के लिअे अितनी फीस देनी ही पडती है। अुसके बिना अगर स्वतंत्रता मिली भी तो वह हजम नहीं हो सकती।

आर्यसमाज हिन्दूसमाज का सेनामुख है।

जो लोग अपनी स्वतंत्रता खो बैठते हैं, अुनको अुसे फिरसे प्राप्त करने के लिअे जिस प्रकार कीमत देनी पडती है, अुसी प्रकार जो लोग दूसरों की स्वतंत्रता छीन कर अुसे लौटाने के लिअे बलिदान मांगते हैं, अुनको भी अपने अैसे दुर्व्यवहार के लिअे कीमत देनी पडती है। अिस कीमत का स्वरूप क्या है यह भी अितिहास जानता है।

१२--८--३९ का० का०

प्रौढ-शिक्षा या साक्षरता-प्रचार ?

प्रौढ शिक्षा का सवाल दुनिया के सब देशों में हल हो रहा है। हिन्दुस्तान में भी स्वराज्य–आन्दोलन के साथ अिस विषय का महत्त्व बढ रहा है। जो लोग लिख पढ सकते हैं, अुन्हींको राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो सकते हैं। लोक-तंत्र से चलनेवाले देशों में अगर कोअी राजराजेश्वर है तो वह 'वोट' ही है। अिन वोटों की कृपादृष्टि से महत्वाकांक्षी लोग राजसत्ता अपने हाथ में रख सकते हैं। नागरिक के अधिकार पाने के लिअे मनुष्य में कअी अच्छी अच्छी योग्यतायें आवश्यक होती हैं। किन्तु अुन योग्यताओं की पहचान आसान नहीं है। अिन योग्यताओं के सबूत तो अिससे भी कठिन हैं। अिसलिअे नागरिकत्व के अधिकार प्राप्त करने के लिअे अैसी ही शर्तें लगायी गयी हैं, जो काम की हैं और आसानी से पहचानी जा सकती हैं।

अिस तरह से लोकतंत्रीय देशों में राजनैतिक हक के कारण साक्षरता–प्रचार का महत्व असाधारण बढ गया है। साक्षरता–प्रचार में भी लिख सकने की कोअी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य अपना हस्ताक्षर कर सके तो काफी है। किन्तु छपी हुअी चीजें आदमी बोधपूर्वक पढ सके तो वह साक्षर हो गया।

जिन लोगों को बचपन में पाठशाला में जाने का मौका नहीं मिला और जो घर-पर भी सीख न सके, अुनको साक्षर बनाने का सवाल हरअेक राष्ट्र को अपने हाथ में लेना पडता है। अैसा नहीं करने से लोकतंत्र की स्थापना ही अशक्य हो जाती है। जिनकी अुम्र पाठशाला में जाने लायक नहीं है, जो लोग बाकायदा तालीब–अिल्म बन कर, अुस्तादों के सामने जा कर बैठ नहीं सकते अैसे लोगों को पढने लिखने की तालीम देना यही राज्यकर्ताओं के सामने और अधिकाराकांक्षी लोकनायकों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न है।

किन्तु जिनको सम्राट वोट की अुपासना नहीं करनी है, जो अधिकार प्राप्त करने के पीछे नहीं पडे हैं, अैसे लोग केवल साक्षरता-प्रचार को प्रौढ-शिक्षा नहीं कह सकते। प्रौढ-शिक्षा का प्रौढों की केवल अक्षर-शिक्षा अितना संकुचित अर्थ हम क्यों करें ? प्रौढ-शिक्षा प्रौढों के ही लिअे तो है अिसलिअे अुस

शिक्षा में जीवन की, ज्ञान की, कौशल्य की और योग्यता की प्रौढि होनी चाहिये।

हर अेक देशवासी चारित्र्य की कीमत समझ सके, यह ज्ञान जो शिक्षा देगी वही प्रौढ शिक्षा कहलाने के लायक है। अक्षर-ज्ञान तो केवल साधन है। अक्षर-ज्ञान में जीवन के ज्ञान का अंतर्भाव नहीं होता। वह तो केवल ज्ञान का अेक अल्प साधन मात्र है, महज औजार है। केवल अक्षरज्ञान होने से मनुष्य में 'सदसद् बुद्धि' का अुदय नहीं होता।

प्रौढशिक्षा में प्रधानता होनी चाहिये जीवनसाफल्य के लिये जो कौशल्य जरूरी होता है अुसकी। परिस्थिति समझनेवाली बुद्धिशक्ति का और समाज के हित के लिये व्यक्ति को अपना जीवन संयत करने की तैयारी का भी समावेश अुसमें होना चाहिये। राज्यतंत्र और समाजतंत्र कैसा चलता है अिसका ज्ञान तो कमसे कम प्रौढशिक्षा में मनुष्य को मिलना ही चाहिये। आजकल के दिनों में अर्थतंत्र का सामर्थ्य अितना बढ़ गया है कि अर्थशास्त्र के थोड़े-से परिचय के बिना प्रौढशिक्षा पूरी ही नहीं हो सकती। शहर की और गांव की सडकों पर किस तरह चलना चाहिये, कूंअे और नल पर किन किन नियमों का पालन करना चाहिये, डाकघर, तारघर, चुंगीघर और बैंकों का अुपयोग किस तरह करना चाहिये, स्टेशन, यात्रा, मेले, थिअेटर आदि स्थानों में जब भीड़ होती है तब किन किन नियमों का पालन करना चाहिये, आग लगे अथवा बाढ़ आवे, भूकंप हो जाय, आंधी चलने लगे, तो अैसे समय पर दूसरों के हित की रक्षा किस तरह करनी चाहिये—अिन सब बातों में जनता को तैयार करने की प्रवृत्ति को ही हम प्रौढशिक्षा कह सकते हैं। वोट के अधिकार के साथ कौन कौनसी जिम्मेवारियां आती हैं यह भी प्रौढशिक्षा में सिखाना चाहिये। जिस देश में अनेक धर्म और पंथ हैं वहां पर सब से हिलमिल कर रहने का ज्ञान और तदनुसार जीवन-कला जिससे मिले अुसीको हम प्रौढ-शिक्षा कह सकते हैं।

ये सब बातें अक्षर-ज्ञान के बिना भी हम जनता को दे सकते हैं। अेक आदमी पढे और वही समझ ले अिसमें पूरा पूरा मितव्यय नहीं है। अेक आदमी पढे और कम से कम दस-बीस आदमी सुनें अैसा सामाजिक पठन-पाठन का कार्यक्रम रखना चाहिये। पठन-पाठन की व्यवस्था अगर बढायी जाय, निरक्षर लोगों को अच्छे अच्छे ग्रंथ सुना कर अुनकी जानकारी और मनन-शक्ति अगर बढायी जाय, तो प्रौढशिक्षा का सबसे कठिन रास्ता हम तय कर लेंगे। अिसके लिये जो लोग हाथ में किताब ले कर पढ़ सकते हैं अैसे लोग "श्रावण वर्ग" द्वारा प्रौढशिक्षा का प्रचार सबसे अधिक कर सकेंगे। (श्रवण=सुनना; श्रावण—सुनाना)

अच्छा साहित्य सुनाना, अखबार में जो खबरें आती हैं अुनसे संबंध रखनेवाली घटनायें सुनाना, छोटे-मोटे प्रयोग कर दिखाना, प्रश्नोत्तरी के द्वारा शंका—निवारण करना, ये सब प्रौढशिक्षा के प्रधान अंग हैं। अिसके लिये जब प्रौढ शिक्षा के "परिव्राजक" दीक्षा ले कर निकलेंगे तब कुछ कार्य हो सकेगा। जैसे 'हरिदास' और 'पुराणिक' (कथा और कीर्तनकार) वैष्णवादि ग्रन्थों का प्रचार करने के लिये अपना जीवन समर्पण करते थे अुसी तरह प्रौढ शिक्षा के दीक्षित

प्रौढ़ "परिव्राजकों" की अेक नयी संस्था, अेक नया वर्ग और अेक नयी परंपरा कायम करनी चाहिये।

का० का०

रेडियो-प्रचार

रेडियो-प्रचार का आजकल बड़ा बोलबाला है। "जो लोग लिख-पढ़ नहीं सकते अुनको आवश्यक जानकारी सुनाने के लिये 'परिव्राजकों' का वर्ग निर्माण करने की अपेक्षा अगर 'रेडियो' के यंत्र स्थान स्थान पर खड़े कर दिये जायें तो काम कितना आसान हो जायगा? अेक जगह पर अेक आदमी बोलेगा और लाखों और करोड़ों लोग अपने अपने स्थान पर सुन सकेंगे। अिससे बढ़ कर सहूलियत और क्या हो सकती है? हिटलर ने अपनी राष्ट्रीय नीति पर व्याख्यान दिया और सारे जर्मन राष्ट्र ने अपने अपने घर पर अुसकी राष्ट्रवाणी अुसी के शब्दों में और अुसीकी आवाज़ में सुनी। हमारे देश में भी अैसा 'रेडियो' प्रचार क्यों न किया जाय?"

बात सही है। किन्तु देश के लोगों को अिस वक्त जहां पेटभर खाने को नहीं मिलता वहां कानभर खबरें सुनने से क्या पेट की आग बुझ सकती है? प्रधान ने बादशाह को कहा कि "खाविन्द, अिस साल फसल बिगड़ गयी, अनाज पका ही नहीं, देश में अकाल पड़ा रहा है, लोग भूखों मर रहे हैं, क्या किया जाय?" बादशाह ने प्रजा वात्सल्य से भरी हुअी आवाज़ में जवाब दिया, 'अैसा है तो लोगों को मिठाअी खिलाओ, अनाज़ नहीं तो न सही।' जहां लोगों के घर में दीया तक नहीं जलता वहां पर 'रेडियो' का प्रचार करके हम क्या करेंगे? (मैं जब पारसाल संथाल लोगों का प्रदेश देखने गया था। अेक रात को हम दो-तीन अैसे गांवों से हो कर गुज़रे जहां सारे गांव में किसी के घर में अेक भी दीया नहीं था। "यहां तो निरपवाद अंधकार का साम्राज्य है"—ये शब्द मैंने करीब करीब कह ही डाले थे कि अितने में अेक गांव में अेक बनिया के घर में अेक दीया टिमटिमाता दिखाअी दिया। संथाल लोग अुस घर की ओर अुसी अिज्जत की निगाह से देख रहे थे जैसे हम देहली में बड़े लाट के प्रासाद की ओर देखते हैं।)

का० का०

मधुमक्खियों का पालन

वेदों में गाय को 'अघ्न्या' कहा है। सब पशुओं में से गाय को अलग करके अुसे नहीं मारना चाहिये अैसा वैदिक काल में ही निर्णय हुआ। गाय का दूध अत्यंत पौष्टिक, सुपाच्य और निर्दोष आहार है। दूध प्राप्त करके ही मनुष्य ने मांसाहार कम कर दिया। अगर दूध की मदद न होती तो मनुष्य के लिअे मांसाहार छोड़ना कठिन हो जाता। मनुष्य ने गाय–बैल को जंगल से पकड़ कर अपने कौटुम्बिक जीवन में स्थापित कर दिया। गाय ने दूध दे कर और बैल ने हल चला कर मनुष्य के आहार में क्रान्ति कर दी। हल की मदद से मनुष्य ने खेती शुरू की और अनाज की पैदावार बढ़ायी। गाय को घर में रख कर और निर्भय बना कर विशिष्ट आहार से अुसका दूध बढ़ाया।

अिस तरह से गाय और बैल ने अपनी सेवा से मनुष्य के लिअे अहिंसाधर्म की शक्यता

स्थापित की। जंगली गाय को ग्राम्य पशु बनाने में मनुष्य को हजारों वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ा होगा। गाय, बैल, घोड़ा, गधा, अूंट, हाथी, अिन पशुओं को मनुष्य जब पालतू बना सका तब मानवी संस्कृति अेकदम अूंची अूठी।

अब और अेक कदम आगे बढ़ना है। घास का दूध बनाने का काम गाय ने किया। अब घास के फूलों में जो बिन्दुमात्र अमृत-रस रहता है और जो अिकट्ठा करके काम में लाना मनुष्य के लिअे अशक्य है अुस रस को ला ला कर अुसका शहद बनाने का काम मधुमक्खियों का है। मधुमक्खियों को मार कर या जला कर छत्ता लूटने का काम तो मनुष्यप्राणी ने अपने जीवन के प्रारंभ से ही किया है। शहद के जैसी स्वादिष्ट और सुरभि चीज़ आदमी भला कब छोड सकता था? किन्तु अितनी मिहनत करके शहद ला देनेवाली मक्खियों को मार डालना, अुनके अण्डे-बच्चों का नाश करना और शहद के साथ अण्डे भी निचोड़ना नृशंसता का गंदा काम था। अब भी हमारे देश में यही प्रथा चालू है। किन्तु अब अुस में अहिंसक परिवर्तन होने लगा है। मधु-मक्खियों के किसी वंश के सारेपूरे वृन्द को पकड कर कृत्रिम घरों में रख देना, अुनके लिअे जरूरत पड़ने पर खाने-पीने का अिन्तजाम करना और अुनके और अुनके बच्चों के लिअे काफी शहद छोड कर बाकी का शहद अपने काम में लाना यह संस्कृति का अेक कदम आगे है। शहद मनुष्य के लिअे अत्यंत रुचिकर, पथ्यकर और मुफीद चीज़ है। अगर मधुमक्खियों का पालन हम कर सकें तो गोरक्षा के बाद हमने मनुष्य-संस्कृति को और अेक कदम आगे बढ़ाया अैसा अनुभव होगा। अिन मक्खियों के पालन में खर्च बहुत कम आता है, अुनका स्वभाव समझ लेने में बड़ा आनन्द आता है और अिस व्यवसाय से आमदनी तो घी के व्यवसाय से भी अधिक होती है। अहिंसावादियों के लिअे गाय और मधुमक्खियों के पालन का व्यवसाय केवल लाभदायी ही नहीं किन्तु जीवन को नयी दिशा देनेवाला सिद्ध होगा।

का० का०

दमन कैसे नष्ट हो?

जिस बातको हम खुद नहीं चाहते वह दूसरों के प्रति न करें अिस महान नैतिक नियम के पालन से लोकजीवन में अेक धर्मनिष्ठा और पुण्यप्रभाव प्रकट होगा। अगर आदमी अपने प्रतिपक्षी पर हिंसा का प्रयोग करना या अुसमें भाग लेना अेकदम बन्द कर देगा तो अन्यायी समाजरचना का मुख्य साधन—दमन—अेकदम नष्ट हो जायगा।

२७ : १० : १९१०

—लिओ टॉलस्टॉय

संघवृत्त

राम विरुद्ध भरत

संघ के सदस्यों में परस्पर लडाई का होना राम और रावण का युद्ध नहीं कहा जा सकता, और न पांडव और कौरव का ही। उसे तो राम और भरत की ही लडाई कहना होगा। वृन्दावन संमेलन के बाद में वर्धा अभी लौट ही रहा था, कि इतने में अेक अैसी खेदकारक घटना की खबर मेरे कान पर आयी। आज जब कि मैं मान सकता हूं कि उसका संतोषकारक अन्त आ गया है, बिना सदस्यों के असल नाम पेश किये उसकी कुछ बातें बता सकता हूं। राम और भरत दोनों वृन्दावन में हाजिर थे, और चुनावों में सदस्य भीतरी होड नहीं कर सकते इस प्रस्ताव के दोनों साक्षी थे। संमेलन के बाद राम अेक दूर के प्रान्त में दौरे पर गये थे। उनकी गैरहाजिरी में उनके जिले की कांग्रेस कमिटी के सदस्य और पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। ये दोनों भाई अलग अलग मंडलों से सदस्य चुने गये थे। भूतकाल में राम कई वर्ष-तक जि. कां. क. के अध्यक्ष रह चुके थे, और भरत ने राम के प्रधानमंत्री की हैसियत में काम किया था। राम ही की सिफारिश से भरत संघ के सदस्य बनाये गये थे। लेकिन, मालूम होता है कि कुछ मास से भरत के दिल में राम के प्रति बडा असंतोष उत्पन्न हो गया था। परन्तु, उन्होंने कभी वह दिल खोल कर राम पर प्रकट नहीं किया। भरत की अपेक्षा राम विशेष तेजस्वी और तपस्वी होने से भरत की यह हिंमत नहीं थी कि वे अपना असंतोष साफ साफ कह दें। राम को इस असंतोष का ठीक पता नहीं था।

जब पदाधिकारियों का चुनाव हुआ, राम गैरहाजिर थे। उनके मित्रों ने उनका नाम अध्यक्षपद के लिअे सुझाया। भरत हाजिर थे। उनके मित्रों ने उनका भी नाम पेश किया। और भी अेक दो उम्मीद-वार खडे किये गये। आखिर बहुमत से राम चुने गये।

उसी जिले के अेक तीसरे सदस्य लक्ष्मण ने मुझे इस होड की खबर दी। मैंने दोनों से जवाब मांगा। राम ने बताया कि वे चुनाव के समय उपस्थित नहीं थे, उन्हें पता भी नहीं था कि भरत अध्यक्ष बनना चाहते थे और खडे होने वाले थे। फिर भी अगर मैं फरमाऊं तो वे अध्यक्षपद का इस्तीफा दे देंगे। भरत ने अेक लंबी कैफियत दी। उसमें राम के विरुद्ध बहुत गंभीर आक्षेप किये। लेकिन, संघ के प्रस्ताव का भंग करने का वे कोई कारण नहीं बता सके। अथवा, तात्पर्य से यही कारण निकाला जा सकता था कि हालां कि राम इत्तिफाक से संघ के सदस्य हो गये हैं, ताहम उनकी दृष्टि में वे सदस्यता योग्य न होने के कारण, उनके विरुद्ध खडे होने में उन्हें संकोच न हुआ।

इसमें आगे जो पत्रव्यवहार हुआ उसकी तफसील में जाने की जरूरत नहीं। उसके परिणामस्वरूप भरत ने अपनी इतनी भूल स्वीकार की कि अैसी होड करने के पहले उनका राम से दिल खोल कर बात कर लेना, अपने प्रान्त के संघ के दूसरे सदस्य और नेता से मशविरा करना अथवा मुझसे पूछना

जरूरी था, अथवा उन्हें राम को संघ से हटवाने की चेष्टा करनी चाहिअे थी। फिर भी, वे अपने आक्षेपों पर डंटे रहे, और इसलिअे दोनों ने चाहा कि मैं इसकी जाँच करूं।

मैंने यह सोचा कि अगर राम और भरत दोनों संघ में रहना चाहते हों, तो दोनों को अेकदिली से ही रहना चाहिअे। भरत राम से दुश्मनी का भाव रखते हुअे संघ में रहें, अथवा राम बिना भरत का संतोष संपादन किये संघ में रहें, इसे अहिंसा का पराजय ही समझना चाहिअे। फिर इस दुश्मनी के मूल में जि. कॉं. क. के अध्यक्ष-पद का मोह ही है। इसलिअे मुझे पहले यह समझ लेना था कि वे संघ और जि. कॉं. क. में से किस संस्था का महत्त्व ज्यादा समझते हैं। इसलिअे मैंने उनके सामने यह सूचना रक्खी कि मैं आक्षेपों की जांच करूं उसके पहले या तो वे संघ की सदस्यता पसंद करें अथवा जि. कॉं. क. की। दोनों ने संघ की सदस्यता पसंद की और भरत ने जि. कॉं. क. की इस साल को सदस्यता का और राम ने अध्यक्षता का त्यागपत्र दे दिया।

अब आक्षेपों की सचाई की जाँच करना आवश्यक हुआ। दोनों वर्धा आ गये। मैंने पहले सारी बातें सुन लीं। गांधीजी के सामने भी सारा मामला पेश किया गया। अंत में यह पाया गया कि भरत ने कुछ यहां की और कुछ वहां की बातें सुन कर, और अेक दो प्रसंगों में कुछ मामलों में विचारभेद हो जाने के कारण राम के बारे में अपना मन कलुषित कर लिया था। जरासी शंका पैदा होते ही, अगर राम से ही उसकी सफाई पूछ लेते तो इतनी हद तक यह वैमनस्य हो ही नहीं पाता। सद्भाग्य से भरत ने अपनी भूल समझ ली, और नीचे का पत्र मुझे लिख दिया।

"आप की आज्ञानुसार मैं वर्धा आया। ...के संबंध में जो मेरा अभिप्राय था उसे ब्यौरे-वार आपसे कहा। पू. बापूजी के पास भी ...के साथ गया। वहां पूज्य बापूजी ने मुझे जो बातें बतायीं उससे मुझे हृदय से अनुभव हुआ कि अैसी बातें मुझे नहीं करनी चाहिअे। अतअेव जो आक्षेप मैंने...पर आरोपित किया था, उसे हृदय से वापिस लेता हूं। पू. बापूजी के परामर्शानुसार मैंने...से भी बातें कीं। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक तमाम बातों को दरगुजर किया। मैंने संघ का नियम अेक दूसरे सदस्य से स्पर्धा कर के भंग किया, इसका मुझे हार्दिक खेद है। कृपया क्षमा करें।"

राम का अध्यक्षपद से त्यागपत्र अबतक मंजूर नहीं हुआ था। अब वह वापस लिया जायगा। भरत का त्यागपत्र मंजूर हो चुका है। वे अगर हृदयपूर्वक राम से सहयोग कर सकते हैं तो जि. कॉं. क. में फिर जायेंगे, नहीं तो रचनात्मक कामों में ही अपनी शक्ति लगावेंगे। राम का कर्तव्य होगा कि वे भरत का आदर और सह-योग फिर प्राप्त करें।

कि. घ. मशरूवाला
अध्यक्ष, गान्धी सेवा संघ।

गांधी-जयंति सूत्रयज्ञ

श्री नारायणदास गांधी की सूचना का दूसरी जगह भी स्वीकार हुआ है। खेडा जिले के कार्यकर्ताओं ने सिर्फ खेडा जिले में कम से कम सत्तर लाख गज कातने का संकल्प किया है। श्री सीताराम शास्त्री

(बिनयाश्रम) और अुनके साथियों ने पच्चीस लाख गज कातने का संकल्प किया है।

श्री हरिभाअूजी अुपाध्याय तथा गांधी आश्रम, हटूंडी, के अन्य भाअीबहनों ने दो लाख गज के करीब कातने का संकल्प किया है ।

असफपुर (युक्तप्रांत) से श्री प्रभुदास गांधी ने लिखा है—" सात सात लाख गज सूत अपनी धोतियों के लिअे कातनेवाले जूथों की रचना कर रहा हूं। कम से कम अैसे १० जूथ हो जायेंगे अैसी आशा है। मैंने स्वयं अपने घर ३॥ लाख गज सूत गांधी-जयन्ती तक कातने का संकल्प किया है"।

महत्वपूर्ण निर्णय

कार्यवाहक समिति की बेठक ता. १३ अगस्त को वर्धा में हुअी। सरकारी नोकरी लेने के संबंध में समिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव द्वारा संघ की नीति स्पष्ट की है—

" संघ के किसी सदस्य को किसी सरकार की कोअी नोकरी लेने का अधिकार नहीं है। अगर कोअी अैसा करना चाहे तो अुसको कार्यवाहक समिति की अनुमति पहले ले लेनी चाहिअे। संघ का कोअी सदस्य अब से अगर कोअी नोकरी लेना चाहे तो संघ का सेवक या सहयोगी सदस्य नहीं रह सकेगा सहायक सदस्य रह सकता है "।

त्यागपत्र

महाराष्ट्र के अेक सेवक-सदस्य श्री सदाशिव जगन्नाथ अुर्फ भाअू धर्माधिकारी ने अपनी सदस्यता का त्यागपत्र दिया और ता. १-८-३९ से वह मंजूर किया गया है।

नये सदस्य

सेवक— **श्री. सोनू सावळू**, वांजोले,
डा. भुसावल, जि. पूर्व खानदेश।

सहयोगी—**श्री. शंकर मोरेश्वर खांबेटे**,
चिरनेर सेवाश्रम, पनवेल,
जि.—कुलाबा।

र. श्री. धोत्रे
मंत्री, गांधी सेवा संघ।

वाङ्मय परिचय

१. आधुनिक छपाअी (हिन्दी)
(ले० कृष्णप्रसाद दर,
प्र० अलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, अलाहाबाद,
मूल्य रु० ६–०–०)

२ कॉपी अैण्ड प्रूफ (अंग्रेजी)
(ले० कृष्णप्रसाद दर,
प्र० अलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, अलाहाबाद,
मूल्य रु० २–४–०)

३. मुद्रणप्रवेश (मराठी)
(ले० और प्रकाशक: शंकर रामचन्द्र दाते
लोकसंग्रह छापखाना, ६२४, सदाशिव,
पूना २. मूल्य रु० २–०–०)

४. मुद्रणप्रवेश अर्थात् कंपोज कला (हिन्दी)
(ले० शंकर रामचन्द्र दाते; अनुवादक. गोपीवल्लभ अुपाध्याय : प्रकाशक, शंकर रामचन्द्र दाते : मूल्य रु० २–०–०)

प्राचीन काल में जब हमारे देश में हस्तलिखित पोथियों का रिवाज था तब कागज की खूबी, अक्षरों का सौन्दर्य, खास कलम और स्याही तथा पोथी में दिये हुये चित्र अित्यादि बातों का अेक स्वतन्त्र शास्त्र बन गया था और अिनकी कला भी स्थान स्थान पर भिन्न भिन्न रीति से विकसित हुअी थी। तंजावर, बडोदा, रामतीर्थ, जमखिंडी, भारत अितिहास संशोधक मंडल, समर्थ वाग्देवता मंडल, खुदाबक्ष लायब्ररी, पटना, रंगून, कटक, गोहाटी अित्यादि स्थानों में हाथ की लिखी किताबों के अप्रतिम नमूने देखने में आये। अब छपी हुअी पुस्तकों का जमाना आ गया है। अिस कला में भी आजकल की दुनिया ने अभिमान करनेलायक प्रगति की है। यूरोप-अमेरिका की छपाअी, बंधाअी और जिल्दसाजी देख कर बडे बडे विरक्त लोक भी रसिक बन जाते हैं।

अब हमारे देश में भी छपाअीकाम ने, यानी मुद्रणकला ने, प्रवेश किया है। प्रथम प्रथम सेरहामपुर (श्रीरामपुर) आदि स्थानों में मिशनरी लोगों ने अिसका प्रारंभ किया। किन्तु अब हमारे लोग अिसमें अग्रसर हो रहे हैं। कोअी भी कला काफी बढने पर अुसका शास्त्र तैयार हो जाता है और आजकल शास्त्रग्रंथ भी तुरन्त लिखे जाते हैं। अैसे चार ग्रंथ हमारे सामने हैं। दो हैं अलाहाबाद 'लॉ जर्नल प्रेस' की ओर से आये हुअे और दो हैं लोकसंग्रह छापखाना, पूना, से आये हुअे।

पूना का '**मुद्रणप्रवेश**' ग्रंथ मूल मराठी में छपा हुआ है। अुसीका अनुवाद हिन्दी में अुसी प्रेस ने छाप कर हिन्दी जगत का अुपकार किया है। मराठी में या हिन्दी में अिस ग्रंथ को दो रुपया दे कर अपनाना हर अेक प्रेस का और प्रेस के साथ संबंध रखनेवाले व्यक्ति का कर्तव्य है। लेखक श्री शंकरराव दाते बडे ही संस्कारी और शिक्षित नवयुवक हैं। आपने अिंग्लैंड और जर्मनी जा कर देवनागरी मोनोटाअीप का संगठन किया। '**मुद्रणप्रवेश**' ग्रंथ में श्री शंकरराव दाते की मिहनत का और बुद्धिमानी का फल संग्रहीत है। अिस ग्रंथ की विशेषता यह है कि अिसमें दाते महाशय ने स्वदेशी परिभाषा बना दी है। दाम कम, विवेचन सुलभ, सुबोध और व्यावहारिक तथा परिभाषा स्वदेशी—अिन तीन गुणों के कारण "मुद्रण प्रवेश" की हम भारत के सभी मुद्रणालयों से सिफारिश करते हैं।

अलाहाबाद के 'लॉ जर्नल प्रेस' की ओर से श्री कृष्णप्रसाद दर की लिखी हुअी '**कॉपी अैण्ड प्रूफ**' यह छोटीसी पुस्तिका हमें बहुत अच्छी लगी। पुस्तक अंग्रेजी में होने से अिसकी कीमत सवा दो रुपया कुछ अधिक नहीं। हिन्दुस्थान के प्रेस को मद्दे नजर रख कर ही यह किताब लिखी गयी है। अंग्रेजी जाननेवाले हर अेक मुद्रक को अिससे लाभ अुठाना चाहिअे। प्रेस का गणित कोअी सामान्य चीज नहीं है। अिसका भी थोडा कुछ परिचय अिसमें है। अन्त में जो पारिभाषिक शब्दों की सूची दी है वह देशी लोगों के लिअे बडे ही काम की चीज है। जिनका प्रेस के साथ हमेशा कुछ न कुछ संबंध आता रहता है अैसे लेखकों के लिअे भी यह किताब बहुत अुपयोगी है।

लेकिन अगर किसी ग्रंथ ने हमारा मन हर लिया है तो वह अलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस के मैनेजर श्री कृष्णप्रसाद दर

की लिखी हुअी **'आधुनिक छपाअी'** ने। देशी भाषा में अैसी बढ़िया और अद्यतन (अप-टू-डेट) किताब शायद दूसरी न होगी। मुद्रणकला के साथ संबंध रखनेवाली करीब करीब सभी बातें अिसमें आ गयी हैं। हमारी दृष्टि से अिस किताब में अेक दोष है। अिसमें जहांतहां अंग्रेजी की ही परिभाषा का व्यवहार किया गया है। ग्रंथकार यह भी मानते हैं कि देशी परिभाषा चलाने मे नुकसान होगा। हम अिस राय से सहमत नहीं हैं। कहीं कहीं विदेशी परिभाषा लेना अपरिहार्य होता है। कहीं कहीं अुसमें सहूलियत भी होती है। देशी लोगों के लिअे अंग्रेजी परिभाषा जानना आवश्यक भी है। अितना होते हुअे भी स्वदेशी परिभाषा के द्वारा लोकशिक्षण में हम कितनी प्रगति कर सकते हैं अिसका खयाल जिन्हें है वे ही अिस बात को समझ सकेंगे। "आधुनिक छपाअी" की भाषा आसान अुर्दू, यानी हिन्दुस्तानी, है। केवल हिन्दी जाननेवालों के लिअे श्री शंकरराव दाते का मुद्रणप्रवेश अधिक सुबोध होगा। हमारी तो यह राय है कि मुद्रणकला के हर अेक अभ्यासू को अिन चार में से तीन किताबें अपने पास रखनी ही होंगी। 'आधुनिक छपाअी' का प्रचार करने की दृष्टि से अुसकी छह रुपया कीमत कुछ घटानी होगी। हम अिनके लेखक को हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि अुन्होंने देश को देशी भाषा में अैसी अद्यतन किताबें दी हैं।

का० का०

गांव सुधार कैसे हो? —लेखक, श्री रामचंद्र त्रिवेदी, प्रकाशक, पटना पब्लिशर्स, बाँकीपुर, पटना। (द्वितीय संशोधित संस्करण, १९३९, पृ. ११६ मूल्य सादी ।।।, जिल्द १)

यह पुस्तक बिहार में छठें और सातवें दर्जे के विद्यार्थियों के लिअे ज्यादा-पाठ्य-पुस्तक (सप्लिमेंटरी टेक्स्ट बुक) मुकर्रर की गयी है। यही वजह है कि तीन महीने के अरसे में अिसकी दो आवृत्तियां निकल गई हैं। पुस्तक पर बिहार के कई अग्रगण्य महाशयों ने बड़ी प्रशंसात्मक सम्मतियाँ दी हैं। तो भी मुझे खेदपूर्वक कहना चाहिअे कि यह पुस्तक इतनी प्रशंसा के योग्य नहीं। जिस श्रेणी के विद्यार्थियों के लिअे वह नियत की गई है, उनके लिअे वह काम की नहीं। सामान्य पाठकों के लिअे अुसमें कुछ अच्छी बातें दी गई हैं, लेकिन छोटी उम्र के लड़कों की पाठ्यपुस्तक के लिअे जो सामग्री, तथा लेखक को जो अनुभव और अध्ययन चाहिअे, वह इसमें नहीं-सा है। उदाहरणार्थ अेक ओर वर्धायोजना की लेखक ने बहुत प्रशंसा की है, और दूसरी ओर बच्चों की शिक्षा के बारे में उन्हों ने अपने कुछ अलग विचार पृ. २८ से ३३ तक दिये हैं। ये विचार पढ़ने पर यह शक होने लगता है कि या तो लेखक ने कभी वर्धायोजना पढ़ी ही नहीं, अथवा उसे समझने में वे सफल नहीं हुअे। विचारों का कच्चापन दूसरे परिच्छेदों से भी प्रकट होता है। मेरी राय में इसे पाठ्यपुस्तकों में से हटा ही देना चाहिअे। इसके अलावा इतनी छोटी पुस्तक के लिअे ।।.) तथा रु. १) कीमत बहुत ही ज्यादा है। क्या यह मुमकिन है कि इतनी सी पुस्तक की जिल्द बंधाई के लिअे आठ आने खर्च होते हों? इतनी नफाखोरी से "गाँवसुधार" कैसे हो?

कि० घ० म०

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg. No. N. 741

जीवन का अेकमेव नियम

ज्यों ज्यों मेरी आयु बढ़ती है—और खास कर अब जब कि मैं मृत्यु का आगमन स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा हूं—त्यों त्यों जो बात मेरे दिल में दूसरी सारी बातों की अपेक्षा अधिक अुत्कट हो रही है और जिसे मैं अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझता हूं अुसे प्रकट करने की अिच्छा तीव्रतर होती जाती है। वह वही चीज है जिसे हम बल-प्रयोग द्वारा विरोध का परित्याग कहते हैं। दरअसल वह हेत्वा-भासात्मक तर्क से अविकृत, शुद्ध प्रेम का धर्म और नियम है। प्रेम या दूसरे शब्दों में मनुष्य की आत्माओं की परस्पर मिलन की आकांक्षा और अुससे पैदा होनेवाली नम्रता की वृत्ति जीवन का सर्वश्रेष्ठ ही नहीं बल्कि अेकमेव नियम है। प्रत्येक को अपने अंतःस्थल में अुसका अनुभव होता है और जैसाकि हम बच्चों में भली-भांती देख सकते हैं, मनुष्य जब तक दुनियवी विचारों के जाल में नहीं फंसता तबतक वह अिस नियम को जानता भी है।

७:९:१९१०

—लिओ टॉलस्टॉय

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाड़ी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ।

सम्पादक
काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा 3 अक्तूबर १९३९

आदमियों में आदमी गांधी

सज्जनो, यह मैं अपनी जिन्दगी की खास नियामतों में से अेक समझता हूं कि श्री गांधी से मेरी घनिष्ठता है। मै आप से कह सकता हूं कि अिससे अधिक पवित्र, अधिक आर्य, अधिक शूर और अधिक अुदात्त आत्मा अिस पृथ्वी पर कभी नहीं आयी। श्री गांधी अुन व्यक्तियो में से हैं जिनका जीवन तपस्वी के समान सादा है, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम के अुच्चतम सिद्धान्त में और सत्य तथा न्याय मे जिनकी परम श्रद्धा है, और जो अपने दुर्बल भाअियों की आंखों को मानों जादू की छडी से छू कर अुन्हें नयी दृष्टि दे देते हैं। वे अेक अैसे आदमी है जिनके लिअे हम कह सकते हैं कि यह मनुष्यो मे मनुष्य है, वीरों मे वीर है और देशभक्तों में देशभक्त है। हम अुनके विषय में यह कह सकते हैं कि वर्तमान भारत की मनुष्यता अिस आदमी मे अपने अुत्कर्ष की अत्युच्च सीमा को पहुंच गयी है।

लाहोर कांग्रेस, १९०९ —गोपाल कृष्ण गोखले

अेक अंक... ... रु० ०–६–०
वार्षिक ... ... रु० ३–०–०
बर्मा में ... ... रु० ३–८–०
विदेश में... ... ६ शिलिंग
१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअुस, नाणावट, सूरत

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर | अक्तूबर, १९३९
दादा धर्माधिकारी | वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

मंत्र—अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

अर्थ—वह आत्मतत्त्व अेक ही, बिलकुल हलचल न करनेवाला और (अैसा होते हुअे भी) मन से भी अधिक वेगवान् है। देव अुसे नहीं पकड़ पाते; किन्तु अुसने देवों को कबका पकड़ लिया है। वह स्थिर रह कर दूसरे सब दौड़नेवालों से आगे निकल जाता है। प्रकृतिमाता की गोद में खेलनेवाला प्राण अुसीकी सत्ता से हलचल करता है।

टिप्पणियां—(१) यहां 'देव' शब्द से 'शरीर के प्रकाश द्वार'—'ज्ञानेन्द्रिय'—समझना चाहिये। (२) अिस मंत्र के चार चरणों में मन और ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण अिनसे तुलना कर आत्मा की शक्ति बतलायी गयी है।

मंत्र—तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

अर्थ—वह हलचल करता है और नहीं भी करता। वह दूर भी है और पास भी। वह अिस सबके भीतर और बाहर भी है।

टिप्पणी—अिसमें आत्मा की व्याप्ति बतलायी गयी है। पहला चरण "वह हलचल करता भी है, और नहीं भी करता," शक्तिदर्शक प्रतीत होता है। तथापि अुसका अर्थ, "स्थिर और चर दोनों वही है," अैसा व्याप्तिसूचक है। गीता के निम्नलिखित समानार्थक श्लोक से यह स्पष्ट हो जायेगा।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ गीता १३:१५

(मराठी से अनूदित)

आधुनिक भारत को गांधीजी की देन

[आचार्य शंकर दत्तात्रेय जावडेकर]

सुधारवादी आन्दोलन

" आधुनिक भारत आधुनिक यूरोप होगा, फिरसे प्राचीन भारत होगा, या मध्ययुगीन ही बना रहेगा ? " यह सवाल अगर आज से पचास साल पहले पूछा जाता तो अुसका निश्चित जवाब कोअी दे सकता या नहीं अिसमें शक है। अंग्रेजी पढेलिखे मुट्ठीभर भारतीय आधुनिक भारत को आधुनिक यूरोप की दीक्षा देने की कोशिश कर रहे थे, दूसरे कुछ शिक्षित लोग अुसे प्राचीन भारत का वेदकालीन भेस पहनाना चाहते थे, और कुछ अैसे भी शिक्षित लोग थे जो अुसका मध्ययुगीन रूप कायम रखना चाहते थे। सर्वसाधारण जनता जानबूझ कर किसी के भी पीछे जाने को तैयार नहीं थी। वह जनता तमोगुण के अंधेरे में रास्ता टटोलने की कोशिश कर रही थी। " अपने अन्दर कोअी कर्तृत्वशक्ति है, हम भी राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं, हमारा भविष्य हमारी ही सामर्थ्य पर निर्भर है " अिसका अुसे कोअी खयाल नहीं था। अंग्रेजी पढेलिखे कुछ लोगों ने यूरोप का अितिहास पढ़ा था। व्यक्तिवाद, लोकसत्ता, राष्ट्रवाद आदि कल्पनायें वे अंग्रेजी साहित्य से सीखे थे और अुन अंग्रेजी कल्पनाओं को मातृभाषा में व्यक्त करना सीख रहे थे। अिन्हीं कल्पनाओं के आधार पर पचास वर्ष पहले कॉंग्रेस ने आधुनिक राष्ट्रनिर्माण का पहला प्रयत्न शुरू किया। अुन्हें थोड़ा थोड़ा विश्वास होने लगा था कि हम अनेक प्रांत, अनेक भाषा, अनेक धर्म और अनेक जातियों से युक्त अिस महाद्वीपतुल्य राष्ट्र को अिंग्लैंड, अमेरिका, फरान्स या जर्मनी के समान अेक संगठित, संपन्न और सुसंस्कृत राष्ट्र बना सकेंगे। परन्तु अुनका यह आत्मप्रत्यय बहुत ही मंद और अस्फुट था। अुनका यह भी विश्वास था कि अिस महान् कार्य में हमें अीश्वर की सहायता की आवश्यकता है और वह अीश्वरी सहायता अंग्रेज सहायकों के द्वारा ही मिल रही है। अुन्हें अपने अन्दर बसनेवाले परमात्मा का ज्ञान नहीं था। अुन्हें तो अीश्वर अंग्रेजों के ही रूप में प्रतीत होता था। फलतः अुनका सारा भरोसा आत्मप्रत्यय के बदले परप्रत्यय पर ही था। आधुनिक काल का भारत प्राचीन या मध्ययुगीन भारत न हो कर आधुनिक ही होगा अैसी तो अुनकी दृढ़ धारणा थी। लेकिन अुनका यह खयाल था कि अुसे आधुनिकता की दीक्षा देने के महत् कार्य का बहुत बड़ा हिस्सा अंग्रेजों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। आधुनिक भारत आधुनिक यूरोप बने यह अुनकी महत्वाकांक्षा थी। परन्तु अिस महत्वाकांक्षा की सफलता के लिअे अंग्रेजों की सहायता आवश्यक है, यह अुनका मूलभूत गृहीत सिद्धांत था। व्यक्तिस्वातंत्र्य और लोकसत्ता की कल्पनाओं के आधार पर अुन्होंने धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों का कार्यक्रम बनाया और भारत को आधुनिक राष्ट्र बनाने के कार्य का आरंभ किया।

राष्ट्रवाद की प्रधानता

अिसके थोड़े दिन बाद आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद को प्रथम स्थान मिला। "फिलहाल हमें व्यक्तिस्वातंत्र्य के सर्वांगीण सुधार की ज़रूरत नहीं, सब से पहले हमें स्वतंत्र होना है और अंग्रजों की हुकूमत यहाँ से नष्ट करनी है," यह विचार जोर पकड़ने लगा। "लेकिन हम स्वतंत्र कैसे हों? ब्रिटिश सत्ता नष्ट कैसे करें"? यही विचार सारे सुविद्य लोगों को बेचैन करने लगा। लोकमान्य ने गणपति अुत्सव और शिवाजी अुत्सव शुरू करके आधुनिक भारत की राष्ट्रीयता को अितिहास का तथा धर्म का आधार दिखला दिया। राष्ट्रीयता ही आज हमारा धर्म है, भारतमाता की अुपासना ही हमारा सर्वश्रेष्ठ धर्मसंप्रदाय है अैसी दृढ़ श्रद्धा अुन्होंने युवको में पैदा की। अिस भारतमाता की मुक्ति के लिअे चाहे जो त्याग करने में ही मोक्ष है, यह श्रद्धा अुन्होंने जाग्रत की। अब 'स्वराज्य' ही नवयुवकों का अेकमात्र धर्म हो गया। लेकिन "अिस धर्म का अधिष्ठान कॉंग्रेस ही है और कॉंग्रेस में जनता का समावेश होगा तथा अुसीके प्रयत्नों से आधुनिक भारत का जन्म हो सकेगा," लोकमान्य की अिस नीति पर अुस ज़माने के युवकों का विश्वास नहीं था। लोकमान्य का विधानवादी राजनैतिक आन्दोलन चाहे कितना ही अुग्र क्यों न रहा हो, अिन नवयुवकों की राय में नरम ही था। लोकमान्य के स्वदेशी और बहिष्कार के आन्दोलन में अुन्हें कोअी बहादुरी नहीं दीखती थी। छत्रपति शिवाजी का आदर्श सम्मुख रख कर विदेशी वस्त्रों की होलियां जलाने में अुन्हें कोअी बड़ी मर्दानगी नज़र नहीं आती थी। अैसे युवकों ने शिवाजी का बेतरतीब लड़ाअी का (गोरिला वारफेयर) तरीका और मेज़िनी का षड्यन्त्रों का तरीका अिन दोनों को अुलटपलट कर अुनकी खिचड़ी से अेक सशस्त्र क्रान्तिकारक पक्ष बनाया। बंगाल में अिस क्रान्तिकारक दल ने कालीमाता की अुपासना के सम्प्रदाय का रूप लिया और महाराष्ट्र में शिवाजी-रामदास की भवानीमाता के अुत्सव का रूप लिया।

जनता का रुख

सशस्त्र क्रान्तिकारक भी अपने आपको आधुनिक राष्ट्रनिर्माता कहलाते और मानते थे। लेकिन अुनके आन्दोलन का रूप ही अैसा था कि अुसमें आम जनता खुल्लम-खुल्ला भाग नहीं ले सकती थी। आम जनता बहुत हुआ तो अुनके किसी साहसपूर्ण कृत्य की तारीफ़ करती थी, अथवा गुप्त रूप से अुनकी प्रशंसा कर अुनकी देशभक्ति के लिअे बधाअियाँ देती थी, लेकिन अुसे यह आशा कभी नहीं थी कि अिन प्रयत्नों के गर्भ से आधुनिक भारत का जन्म होगा। वह तो यही मानती थी कि राष्ट्रनिर्माण तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता का सही रास्ता यह नहीं है। अुसे पुराना अितिहास मालूम नहीं था, शिवाजी महाराज ने जो कुछ किया अुसकी तफ़सील वह नहीं जानती थी; यूरोप या रूस के क्रांतिकारियों के आन्दोलन से भी वह वाकिफ़ नहीं थी; लेकिन अुसे अितना विश्वास था कि अिन सशस्त्र क्रान्तिकारी तरुणों की कहीं न कहीं गलती ज़रूर है और अिनके पीछे जाने से हमारा अुद्धार नहीं हो सकता।

लोकमान्य की सिखावन

लोकमान्य का राष्ट्रवाद ही ठीक है और अिन तरुणों का क्रान्तिवाद हमें मुक्त नहीं कर सकता यह बात लोकमान्य के अविरत प्रयत्न से आम जनता के ध्यान में आ गयी। मंडले से लौटने पर लोकमान्य ने कांग्रेस अपने हाथ में ली, अुसे आन्दोलन करनेवाली जनता की प्रतिनिधिक संस्था का रूप दिया और भारतवासियों में यह दृढ़ भावना पैदा कर दी कि हिन्द की राष्ट्रीयता लोकसत्ताक ही होनी चाहिअे। भारतीय राष्ट्रवाद और लोकशाही का अटूट गठबंधन करने के लिअे अुन्होंने अपने 'कांग्रेस लोकशाही दल' की स्थापना की। हिन्दुस्थान की आम जनता का अुद्धार लोकशाही के द्वारा ही होगा, और लोकशाही कांग्रेस में अडिग श्रद्धा से ही प्राप्त होगी, यह लोकमान्य की सारी सिखावन का सार है। आम जनता की संगठना के लिअे अुन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार तथा निःशस्त्र प्रतिकार का रास्ता दिखा दिया था। लेकिन यह रास्ता प्रत्यक्ष प्रतिकार का रास्ता है और अिसके लिअे जनता को अहिंसाधर्म की दीक्षा लेनी जरूरी है। अिस सिद्धान्त का महत्त्व भारतीय जनता पर गांधीजी ने प्रकट किया।

अहिंसात्मक व्यक्तिवाद और बुद्धिस्वातंत्र्य

भारतीय जनता पर अहिंसा का महत्त्व प्रकट कर गांधीजी ने यह विश्वास पैदा कर दिया है कि आधुनिक भारत आधुनिक यूरोप नहीं बनेगा। यूरोप ने आधुनिक काल में अनेक सामाजिक आदर्शों का आविष्कार किया। व्यक्तिवाद, लोकसत्ता, राष्ट्रवाद, और अिधर कुछ ही दिनों के पहले समाजवाद, अैसे चार मुख्य सामाजिक आदर्श यूरोप में अुत्पन्न हुअे हैं। लेकिन अिनमें से हरेक आदर्श का स्वरूप आज कुछ बिगड़ा हुआ नजर आता है। पहले पहल व्यक्तिवाद के आदर्श में खराबी पैदा हुअी और व्यक्तिस्वातंत्र्य का अर्थ अमर्याद स्वार्थ, अनियंत्रित स्पर्धा अथवा असूया और अनिर्बन्ध लोभ किया जाने लगा। व्यक्तिस्वातंत्र्य की वास्तविक महत्ता संयम के बिना व्यक्त ही नहीं हो सकती। व्यक्तिस्वातंत्र्य का अर्थ स्वैर वासनाओं का अनियंत्रित साम्राज्य नहीं है। जो व्यक्ति स्वैर वासनाओं के दास हैं वे, या अुनकी बुद्धि, स्वतंत्र हो ही नहीं सकती, यह तत्त्व भारत को समझाने का श्रेय गांधीजी को है। गांधीजी व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी हैं, वे बुद्धिस्वातंत्र्य के तत्त्व को भी मानते हैं। अपनी सदसद्विवेक बुद्धि की अपेक्षा दूसरे किसी की भी आज्ञा श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिअे, यह तत्त्व भी अुन्हें मंजूर है। परन्तु अुनका व्यक्तिस्वातंत्र्य स्वार्थ के लिअे नहीं, वरन सेवा के लिअे है। अुनका बुद्धिस्वातंत्र्य वासनाधीन, विकारवश बुद्धि का स्वैर वर्तन नहीं है, बल्कि निर्विकार स्वतंत्र प्रज्ञा की स्वाधीनता है। वे अपने सत्याग्रही तत्त्वज्ञान द्वारा ग्रंथप्रामाण्य, रूढ़राजाज्ञा और रूढ़धर्माज्ञा से परे जाने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं। तोभी श्रेष्ठ ग्रंथों की महत्ता, कानून पालने का महत्त्व और धर्मनिष्ठा की जरूरत के प्रति वे अवहेलना की वृत्ति नहीं पैदा करते। हरेक मनुष्य की बुद्धि में नये नये सत्य खोजने की या सत्य का अधिक शुद्ध रूप ग्रहण करने की शक्ति तो है परन्तु वह शक्ति विनीतभाव से, दीर्घ प्रयासयुक्त तपस्या और विरक्त वृत्ति से की हुअी सत्य की खोज से ही प्राप्त होती

है जिस बात पर वे जोर देते हैं। सत्य की खोज के क्षेत्र में की हुआी यह तपस्या अेक प्रकार की अहिंसा है। जिसमें बुद्धि तथा मन को संयत, अनासक्त और शुद्ध करने पर खास जोर दिया जाता है। अैसी संयत बुद्धि में अहंकार जड़ नहीं पकड़ पाता और सत्य की अुपलब्धि के बाद अुसकी प्रस्थापना के अुद्योग में आततायीपन के कारण हिंसा नहीं होती। लेकिन आततायीपन या हिंसा के अभाव से अुनका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि रूढ़ असत्य के प्रति हमारी नीति अप्रतिकार की ही हो। सत्याग्रह और असत्य का अप्रतिकार, ये दोनों चीजें अेक दूसरे की विरोधी हैं। अुसका अर्थ अितना ही है कि असत्य का प्रतिकार अथवा असत्य का निराकरण असत्य से नहीं हो सकता, वह सत्य से ही हो सकता है।

सत्य बनाम हिंसा

संपूर्ण सत्य का ज्ञान पहले भी कभी किसी को नहीं हुआ और न आज हो सकता है। हरेक व्यक्ति सत्य का जिज्ञासु है। अुसे जो सत्य प्रतीत होता है, अुसीको पूर्ण सत्य मान कर अुसे अुन्मत्त नहीं होना चाहिअे, और अुन्मादवश अत्याचार नहीं करना चाहिअे। अत्याचार से जो धुआं पैदा होता है अुससे अन्त में सत्य की ज्योति बुझ जाती है। यह समझ कर कि अुन्हें नये सत्य का दर्शन हुआ है जिन्होंने अुसकी प्रस्थापना के लिअे अत्याचार या हिंसा का आश्रय लिया अुनके अुस प्रयास की बदौलत आखिर सत्य का दीप बुझ ही गया। जो सत्य की अग्नि प्रज्वलित करना चाहते हैं, अुनका अुद्देश तमोगुण, अज्ञान और अंधेरे को मिटाना होना चाहिअे। जहां धुआं हो वहां अग्नि होती है, यह मानते हुअे भी यह नहीं भूलना चाहिअे कि धुआं ही अग्नि नहीं है। सत्याग्रही व्यक्ति सत्य की प्रस्थापना के लिअे असत्य या हिंसा का अवलंब नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि अुस रास्ते जानेसे सत्य और भी दूर हो जाता है। गांधीजी ने अिस प्रकार पश्चिम के व्यक्तिवाद और बुद्धिवाद को सत्याग्रह का आध्यात्मिक अथवा अहिंसामय रूप दिया है। अिसलिअे हम अुन्हें अेक सर्वांगीणसुधारक कह सकते हैं। लेकिन पुराने समाजसुधारकों की अपेक्षा अुनकी वृत्ति हमारी प्राचीन संस्कृति के अधिक अनुरूप है और सुधार का कार्य भी अुनके द्वारा बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है।

अहिंसात्मक राष्ट्रवाद

लेकिन गांधीजी ने हमारे राष्ट्रवाद को जो नया रूप दिया है वह अिससे भी महत्त्व की चीज़ है। अुनके पूर्व जो राष्ट्रवाद अिस देश में था, वह यद्यपि खुल्लमखुल्ला यूरोप का अनुकरण नहीं करता था, बल्कि यूरोपीय संस्कृति का द्वेष करने का भी दम भरता था; तथापि अुसकी राजनीति बहुत बड़े अंश में किसी न किसी यूरोपीय राष्ट्रवाद का प्रच्छन्न अनुकरण ही थी। कभी कभी तो यूरोपीय संस्कृति से सख्त नफरत करनेवाला राष्ट्रवादी अुस संस्कृति की विरोधी भक्ति के कारण, अुसका खुल्लमखुल्ला अनुकरण करनेवाले सुधारकों से भी अधिक तद्रूप होता हुआ दिखाअी देता था। अिसका कारण यह था कि यद्यपि हमारा राष्ट्रवाद यूरोपीय आक्रमण के प्रतिकार के लिअे पैदा हुआ था, तोभी "जैसे से तैसा' बने बिना प्रतिकार

असंभव है अिस भावना की बदौलत वह तदाकार और तद्रूप बनने लगा था। अुसे अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हुअी होती तो वह तदाकार और तद्रूप भी बन जाता। जो लोग यह कहते हैं कि लोकमान्य तिलक के राष्ट्रवाद से फॅसिज़म पैदा होता अुनके कथन में अगर कुछ सचाअी हो तो अितनी ही हो सकती है। "लेकिन भारत की परिस्थिति अैसे राष्ट्रवाद के विकास के लिअे अनुकूल नहीं है, यहां की जनता चाहे भी तोभी वह ब्रिटिशों के जैसी बन कर अुनको हरा नहीं सकती, भारतीय जनता का अुद्धार निःशस्त्र क्रान्ति के स्वावलंबी मार्ग से ही होगा, अुच्च वर्गों द्वारा नहीं हो सकता" यह लोकमान्य जानते थे। अिसलिअे हम कहते हैं कि अुनके राष्ट्रवाद की परिणति फॅसिज़म में नहीं होती। परन्तु भारतीय राष्ट्रवाद को लोकशाही पर अधिष्ठित कर स्वावलंबी निःशस्त्र क्रान्ति का तंत्र परिणत करने का सारा श्रेय गांधीजी को ही देना होगा। करीब बीस साल से गांधीजी ने यह कार्य बड़ी सफलता से किया है। अुन्हींके नेतृत्व में कॉंग्रेस को भारतीय जनता की अेकमेव प्रतिनिधि-संस्था का रूप प्राप्त हुआ है।

भारतीय राष्ट्रीयता और भारतीय लोकशाही

हमारी राष्ट्रीयता का आधार लोकशाही ही हो सकती है, यह पाठ भारतवर्ष को लोकमान्य ने पढ़ाया; और अिस लोकशाही का आधार अहिंसा ही हो सकती है, यह सबक आज गांधीजी अुसे सिखा रहे हैं। अिस प्रकार राष्ट्रीयता और लोकशाही को गांधीजी अहिंसा की दीक्षा दे रहे हैं। अिसलिअे हमारी राष्ट्रीयता यूरोपीय राष्ट्रीयता से भिन्न प्रकार का रूप ले रही है और हमारी लोकशाही भी यूरोपीय लोकशाही की अपेक्षा अधिक तत्वशुद्ध और सुस्थिर होती जा रही है। लोकशाही की राजनीति अहिंसात्मक ही होनी चाहिअे, हिंसक वायुमंडल में लोकशाही टिक ही नहीं सकती; यह शिक्षा आज का यूरोप सारे संसार को अूंचे स्वर से चिल्ला चिल्ला कर दे रहा है। अगर आधुनिक भारत की राजनैतिक बागडोर गांधीजी अपने हाथों में न लेते और यदि भारत अुनके सत्याग्रह की दीक्षा न लेता, तो आज अुसकी जो प्रगति हुअी है वह हुअी होती अैसा कोअी नहीं कह सकता। यूरोप में हिटलर और मुसोलिनी के अुदय के कुछ ही साल पहले भारत की राजनीति के सूत्र गांधीजी के हाथ में आये। आज यहां राष्ट्रीयता और लोकशाही का जो विकास दिखलाअी दे रहा है अुसका श्रेय अंग्रेजों की देन को नहीं है; बल्कि अंग्रेजों की सत्ता के प्रतिकार के लिअे अुत्पन्न सत्याग्रहशक्ति में अुस विकास के बीज हैं, यह बात अब किसीको समझाने की जरूरत नहीं रही।

यूरोप की हालत

गत महासमर के बाद कुछ समय के लिअे राष्ट्रीय स्वयंनिर्णय और लोकशाही के युग के प्रारंभ का दृश्य दिखायी दिया। परन्तु आज हम वहां क्या देख रहे हैं? जर्मन साम्राज्य, आस्ट्रियन साम्राज्य और तुर्की साम्राज्य के मिटने पर यूरोप में जो छोटे छोटे लोकशाही राष्ट्र बने, क्या वे सब आज सुरक्षित हैं? हिटलर और मुसोलिनी

के बूटों की अेडीतले यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य और लोकशाहियां आज अेक के बाद अेक गायब हो रही हैं और अुन देशों की जनता असहाय बन कर यह विनाश देख रही है। भारतीय जनता आज अैसी हताश नहीं हुआी है। अिस देश में लोकशाही की स्थापना करने की ताकत अुसके अन्दर बढ़ रही है, यह अनुभव अुसे हो रहा है। भारतीय जनता का यह आशावाद, अुसका यह आत्मप्रत्यय, अुसके अन्दर पैठे हुअे सत्याग्रही तत्वज्ञान में से पैदा हुआ है।

सत्याग्रही तत्वज्ञान की श्रेष्ठता

लेकिन कोअी अिससे यह मतलब नहीं निकाले कि भारत की जनता आज स्वाधीन लोकशाही राज्य का अुपभोग कर रही है। हिन्दुस्थान में अभी लोकशाही स्वराज्य की स्थापना होनी बाकी है और अिस स्वतंत्र लोकशाही स्वराज्य की स्थापना के अनन्तर अुसके सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का पुनःसंगठन भी होना है। यह सामाजिक और आर्थिक पुनःसंगठन किस सिद्धान्त की नींव पर हो अिस विषय में आज कॉंग्रेस में सत्याग्रही और समाजवादी अैसी दो भिन्न विचार परंपरायें हैं। वस्तुतः अिन दो विचार परंपराओं में मूलतः भेद नहीं है। परन्तु जो लोग यूरोपीय अितिहास के अैनक से ही भारतीय अितिहास की तरफ देखते हैं अुन्हें सत्याग्रही तत्वज्ञान राष्ट्रवादी प्रतीत होता है। और यूरोपीय राष्ट्रवाद की तरह अिसमें से भी धनिकशाही पैदा होगी अैसी अुन्हें आशंका या आशा है। परंतु सत्याग्रही तत्वज्ञान यूरोप के अर्थ में राष्ट्रवादी नहीं है, और न समाजवादी ही है। हिन्दुस्थान परतंत्रता के कारण गत बीस वर्षों में सत्याग्रही तत्वज्ञान को राष्ट्रवादी स्वरूप प्राप्त हुआ और वही अबतक कायम है। हिन्दुस्थान जबतक परतंत्र है तबतक यह राष्ट्रवादी स्वरूप कायम रहेगा। लेकिन तोभी सत्याग्रही तत्वज्ञान राष्ट्रवादी तत्वज्ञान से भिन्न है। राष्ट्र सत्याग्रहियों का अन्तिम दैवत नहीं है। दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण कर अपने राष्ट्र का स्वार्थ सिद्ध करनेवाला राष्ट्रधर्म सत्याग्रह में अन्तरभूत नहीं हो सकता। सत्याग्रही राष्ट्र का आक्रमणशील बनना असंभव है। सत्याग्रह स्वत्त्व और सत्य की रक्षा का अस्त्र है। दूसरों के स्वत्त्व का अपहरण करने में वह सब तरह से असमर्थ है। यह अुसका दोष नहीं बल्कि यही अुसकी श्रेष्ठता है। राष्ट्र की फौजी ताकत और दंडशक्ति को संगठित कर अुसके आर्थिक पुनःसंगठन की समस्या हल करने का सिद्धान्त भी सत्याग्रह को मंजूर नहीं है। राष्ट्रीय जीवन का पुनः संगठन न्याय और समता की नींव पर करना हो तो वह शान्ततामय साधनों द्वारा ही हो सकेगा अैसी अुसकी श्रद्धा है। यूरोपीय राष्ट्रवाद अेक आक्रमणशील फौजी ताकत है। अिस फौजी ताकत के जोर पर अन्तर्गत समता तथा न्याय के आन्दोलन कुचलने में भी यूरोपियन राष्ट्रवाद नहीं हिचकता। फौजी ताकत से समता और न्याय की स्थापना नहीं हो सकती और प्रस्थापित राज्यसत्ता की लश्करशाही नष्ट करने के लिअे लोकशाही राज्ययंत्र भी अुपयोगी नहीं होता, यह अनुभव यूरोप के फरान्स और ब्रिटन आदि राष्ट्रों को आज हो रहा है। अतः अपने देश की लोकशाही की रक्षा के लिअे सत्याग्रह जैसा कोअी प्रत्यक्ष प्रतिकारात्मक शस्त्र खोजने की

जरूरत यूरोप के विचारी तत्त्वज्ञ महसूस कर रहे हैं।

समाजवाद और अहिंसा

पूंजीवाद के अुदय के बाद यूरोपीय लोकशाही ने पूंजीशाही का रूप लिया। अिसलिअे लोकशाही के तत्त्वों की रक्षा और विकास के अुद्देश से समाजवादी तत्त्वज्ञान का प्रादुर्भाव हुवा। अिस समाजवादी तत्त्वज्ञान में लोकशाही का, समता का, स्वतंत्रता का और बन्धुता का तत्त्वज्ञान है। लेकिन अिस के साथ साथ हिंसा का भी अन्तर्भाव है। कॅम्यूनिज़म का अन्तिम ध्येय अहिंसात्मक ही है, लेकिन अुस ध्येय तक पहुंचने के लिअे हिंसा के रास्ते से जाना पडेगा अैसा वे कहते हैं। कम से कम रूस के क्रान्तिकारियों ने तो समाजवाद और हिंसात्मक क्रान्तिवाद का अभेद्य सम्बन्ध जोडने का यत्न किया है। परन्तु यह हिंसा का तत्त्व समता, स्वतंत्रता तथा बन्धुता के तत्त्वों से मेल नहीं खाता। अुसमें से लोकसत्ता तथा समाजसत्ता की प्राप्ति नहीं होगी, अैसा माननेवाले कुछ समाजवादी तत्त्वज्ञ आज यूरोप में भी पैदा हो रहे हैं। अिस सम्बन्ध की अधिक जानकारी बार्ट डि लिक्ट नामक लेखक की "कान्क्वेस्ट ऑव् व्हायोलेन्स" ("हिंसा पर विजय") नाम की पुस्तक में है। मॅडम होल्स्ट नामक अेक कम्यूनिस्ट महिला शान्तिमय क्रान्ति के पक्ष में हो गयी है। और अब वह यह प्रतिपादन करने लगी है कि समाजवाद के ध्येय हिंसा के मार्ग से प्राप्त हो ही नहीं सकते, अैसा अिस लेखक ने अपनी पुस्तक के १३०–३१ पृष्ठों पर लिखा है।

लेखक का मतलब यह है कि समाजवाद का समता, स्वतंत्रता तथा बन्धुता के आदर्श में और हिंसा के मार्ग में परस्पर विरोध है। अिन आदर्शों को कार्यान्वित करने के लिअे हिंसक क्रान्ति करनेवाली साधारण जनता पूंजीशाही की हिंसा से लोहा ले कर जीत नहीं सकती। यदि बाज दफ़ा जीत जाये तोभी आगे चल कर अिस हिंसा में से अनियंत्रित और अत्याचारी राज्ययंत्र अुत्पन्न होता है। अिसलिअे समाजवादी क्रान्तिकारियों को गांधीजी की निःशस्त्र क्रान्ति का ही अनुसरण करना चाहिअे अैसा यूरोप के अनेक लोग आज कहने लगे हैं।

'अेल्० 'अेन्–डेहार्स,' नामक अखबार के "स्पेन की हाल की घटनाओं से क्या सीखें?" शीर्षक लेख में कहा गया है कि पाश्चात्य लोग गांधीजी की अहिंसा का कितना ही मज़ाक क्यों न करें, अन्त में क्रान्ति सफल करने की वही अेक आशा है।

यूरोपीय जनता

यूरोपीय तत्त्वज्ञ,लेखक और कुछ क्रान्तिकारी भी अिस प्रकार अहिंसक क्रान्ति को ग्राह्य और आवश्यक मानने लगे हैं। लेकिन अिससे यह अनुमान नहीं निकाला जा सकता कि यूरोपीय जनता अिस मार्ग को अेकदम अपना लेगी। आत्मबल में आज यूरोपीय जनता की श्रद्धा ही नहीं रही है। वह अेक तो बुद्धिबल पर आश्रित प्रतिनिधिक संस्थाओं की चर्चात्मक राजनीति जानती है; या दूसरी शस्त्रबल पर अधिष्ठित राजनीति। आत्मबल पर स्थित सत्याग्रही राजनीति का अपनी बुद्धि से आकलन करनेवाले कुछ तत्त्वज्ञों का आविर्भाव यूरोप में भले ही हुआ हो। लेकिन

अितने ही से यदि यूरोप में निःशस्त्र क्रान्ति सफल करने का संगठित आत्मबल अेकाअेक पैदा हो जाये, तो वह अेक अद्भुत घटना ही होगी। लेकिन अिसका यह भी अर्थ नहीं कि यूरोप में हिंसक अुपायों से समता, स्वतंत्रता और शान्तता का साम्राज्य कायम होगा। अिसका अितना ही मतलब है कि आज यूरोपीय जनता को आत्मोद्धार का वास्तविक मार्ग ही नहीं मिला है।

यूरोपीय अितिहास से सबक

प्रस्थापित राजसत्ता शस्त्रबल के प्रयोग से देश में अेक प्रकार की शान्ति कायम कर सकती है और प्रचलित समाजरचना की सहायता कर अुसे टिका सकती है। लेकिन यह शस्त्रबल, अिस समाजघटना को आमूलाग्र बदल कर सर्वांगीण क्रान्ति करने में अुपयोगी नहीं होता और प्रस्थापित राज्यसत्ता को अुलट कर जनता की अनियंत्रित सत्ता कायम करने में भी मददगार नहीं होता, यह यूरोप के अिन बीस वर्षों के अितिहास से स्पष्ट है। सशस्त्र क्रान्ति के सारे प्रयत्नों को कुचल कर आज यूरोप की धनिकशाही लोकशाही को हटा कर अनियंत्रित हो गयी है। हम भी अिससे अुचित शिक्षा ले सकते हैं और सत्याग्रही तत्त्वज्ञान के आधार पर भारतीय समाजवादी क्रान्ति सफल कर सकते हैं। सत्याग्रही तत्त्वज्ञान आज राष्ट्रवादी प्रतीत होता हो तो भी वह समता, स्वतंत्रता और बंधुता पर अधिष्ठित है और लोकशाही की प्रस्थापना अुसका आज का अंगीकृत कार्य है। अिसी कार्य में जनता का आत्मबल संगठित हो रहा है। जनता के अिस आत्मबल से राष्ट्रीय लोकशाही की स्थापना होने पर अुसका स्वरूप यूरोपीय राष्ट्रवाद तथा लोकशाही से भिन्न किस प्रकार हो सकता है, यह बतलाया जा चुका है। पाश्चात्य देशों में समाजसत्ता का जो आदर्श निर्मित हुआ है वह भी अगर आत्मबल के साधन का अुपयोग करे तो अुसका कायापलट हो सकता है। सत्याग्रह में व्यक्तिवाद, राष्ट्रवाद और लोकसत्ता के पाश्चात्य आदर्श शामिल किये गये हैं और सत्याग्रह के तत्त्वज्ञान के सूत्र में ग्रथित होने के कारण अुनका परस्पर विरोध नष्ट हो कर वे परस्पर विघातक न होते हुअे अेक दूसरे की शोभा बढ़ा रहे हैं। अुसी प्रकार समाजसत्ता के सिद्धान्त का भी सत्याग्रही तत्त्वज्ञान में समावेश करके यथार्थ लोकसत्ता और यथार्थ समाजसत्ता का आधार अहिंसा को ही बनाना आवश्यक है यह बात संसार को माननी पड़ेगी।

आधुनिक भारत के तीन अलौकिक नेता

भारतीय संस्कृति अध्यात्मप्रवण संस्कृति है। गत पचास वर्षों में अुसकी यह आध्यात्मिक प्रवृत्ति अनेक भारतीय नेताओं ने फिर से जाग्रत की है। लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द घोष और महात्मा गांधी—आधुनिक भारत के ये तीन अलौकिक नता अिसी अवधि में अुत्पन्न हुअे। अुन्होंने भारतीय मन पर जो संस्कार किये और अुन संस्कारों की बदौलत अुसका जो प्राचीन आत्मबल जाग्रत हुआ अुसीमें से आधुनिक भारत का जन्म हुआ है। आधुनिक भारत की यह आध्यात्मिक शक्ति सत्याग्रह के रूप में आज सारे भरतखंड को व्याप्त कर रही है और अब तो ब्रिटिश भारत की हद को पार कर वह रियासती हिन्दुस्थान में भी पदार्पण कर

रही है। ब्रिटिश हिन्दुस्थान के भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें स्वराज्य निर्माण कर ब्रिटिश हिन्दुस्थान की राष्ट्रभावना खंडित करने की, और अिन नामधारी लोकशाही राज्ययंत्रों के सिर पर संस्थासन का सामंतशाही राज्ययंत्र लादने की ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की चाल काटने के लिअे कांग्रेस ने आज सात-आठ प्रान्तों के राज्य-यंत्र अपने हाथ में ले कर अुनके पीछे कांग्रेस पक्ष के रूप में ब्रिटिश हिन्दुस्थान की आम जनता का संगठित आत्मबल खड़ा कर दिया है। यह देख कर रियासती भारत की जनता भी सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग करना चाहती है। जिस आत्मबल के प्रभाव से ब्रिटिश भारत की जनता ने अनियंत्रित साम्राज्यशाही को झुकाया अुसी आत्मबल के प्रयोग से रियासती जनता अनियंत्रित सामंतशाही को झुकाना चाहती है।

रियासती भारत पर असर

जो सत्याग्रही साधन ब्रिटिश साम्राज्यशाही को झुका सका वही सत्याग्रही साधन आज रियासती सामंतशाही को झुकाने में अुपयोगी साबित हो रहा है। जो लोग आज तक रियासती जनता के हितकर्ता होने का दावा करते थे और गांधीजी तथा कांग्रेस को अुसके हितशत्रु ठहराना चाहते थे अुनका प्रभाव अब कम हो रहा है और ब्रिटिश भारत की जनता के समान रियासती भारत की जनता भी सत्याग्रही बन कर गांधीजी की अनुयायी बन रही है। बीस साल पहले जिस भारत में करीब करीब अेक ही सत्याग्रही व्यक्ति था अुसी भारत में आज सर्वत्र सत्याग्रह की रणभेरियां सुनायी देती हैं और सत्याग्रही सामर्थ्य के द्वारा हम भारत में शीघ्र ही स्वतंत्र संयुक्त राज्य स्थापित कर सकेंगे, यह आत्मविश्वास फैल रहा है। अिस सबका क्या अर्थ है? अिस दृश्य के पीछे जो शक्ति है वह क्या केवल आभासमय है? क्या वह शक्ति संसार की प्रतिगामी शक्तियों में से अेक साबित हो सकती है? क्या संसार आधुनिक भारतवर्ष में दुनिया की अेक अत्यंत तेजस्वी, अत्यंत प्रभावी, और अत्यंत मंगलमय क्रान्तिशक्ति का आविर्भाव और अुसके सामने साम्राज्यशाही तथा सामंतशाही को झुकती हुअी नहीं देख रहा है?

सत्याग्रह और पूंजीवाद

यह मंगलमय, पुरोगामी, प्रभावी, तेजस्वी, क्रान्तिकारक शक्ति हिन्दुस्थान की पूंजी-शाही की सहायक होगी, अैसी शंका जब कुछ लोग प्रकट करते हैं तो अुनके अज्ञान पर दया आती है। अिस शक्ति ने जिस प्रकार साम्राज्यशाही की नाक में दम कर दिया और आज जिस तरह वह यहां की सामंतशाही की नाक में दम कर रही है अुसी तरह वह भारत की पूंजीशाही के लिअे भी अजेय साबित होगी अिसमें सन्देह नहीं। सत्याग्रही तत्त्वज्ञान में अनियंत्रित पूंजीवाद को स्थान नहीं है, और पूंजीपति जनता की रोटी का सवाल हल नहीं कर सकते यह गांधीजी खूब जानते हैं। अिसीलिअे गांधीजी ने ग्रामोद्योग का संगठन शुरू किया है। भौतिक विद्या और यंत्रकला का विरोध करना, लोगों का दारिद्र्य कायम रखना, और भारतीय संस्कृति को मध्ययुगीन अवस्था तक पीछे हटाना ग्रामोद्योग संगठन का अुद्देश कदापि नहीं है। अगर किसीके दिमाग में अैसी कोअी बात हो भी तो भारत की जाग्रत, संगठित और आत्मज्ञानी जनता वह सिद्ध नहीं होने देगी।

खादी और ग्रामोद्योग का अर्थशास्त्र

खादी और ग्रामोद्योग के अर्थशास्त्र का मुख्य तत्त्व यह है कि देश के हर अेक बेकार को काम देने की और अुसकी सांपत्तिक स्थिति में सुधार करने की जिम्मेवारी हिन्दी राष्ट्र ने स्वीकार कर ली है। भारत के नागरिकों के सामने केवल सस्ते से सस्ता माल अधिक से अधिक तादाद में रखने की ही समस्या नहीं है; वरन् वह माल बरतने की हैसियत गरीब से गरीब व्यक्ति में भी किस तरह आवे यह बहुत विकट सवाल आज अुसके सामने है। आज भारत की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ हो रही है, और अुसे खेती के अलावा दूसरा कोअी भी रोजगार नहीं है। चालीस करोड़ की गुजर अकेली खेती पर नहीं हो सकती, यह प्रत्यक्ष प्रमाण से साबित हो गया है। खेती पर ही जिनका भरोसा है अैसे लाखों, बल्कि करोड़ों, लोगों को तुरन्त दूसरा कोअी रोजगार न दिया गया तो अुनका हाल बुरा होगा। जब हम खादी या ग्रामोद्योगी चीजें खरीदते हैं तो अपने अिन करोड़ों देशभाअियों को रोजगार में लगाने की और अुन रोजगारों की हिफाजत के लिअे अपनी तरफ से भरसक कोशिश करने की और तकलीफ सहने की जिम्मेवारी लेते हैं। देश में तुरन्त यांत्रिक कारखाने खड़े कर अिन करोड़ों लोगों को काम देना कम से कम आज तो हमारे लिअे असंभव है। अैसी दशा में अिन करोड़ों देशबंधुओं के अुद्योगधंधे का सवाल थोड़ा-बहुत तो हल हो और अुनके लिअे हम अत्यल्प ही क्यों न हो, त्याग करें, यह भावना अिसकी तह में है। देश के करोड़ों लोगों को काम देने की जिम्मेवारी आजतक किसी ने महसूस ही नहीं की थी। जिन्होंने अिस देश में पूंजीवादी अर्थशास्त्र की नींव डाली अुन्होंने अिस प्रश्न के महत्त्व को समझा ही नहीं। अिसीलिअे गत पचास-पौनसौ वर्षों में यद्यपि पूंजीवाद ने काफी तरक्की की, तो भी देश में बेकार, अर्धबेकार और दरिद्र लोगों की संख्या घटने के बदले बढ़ी है। जबसे गांधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन को खादी और ग्रामोद्योग का रूप दिया तभीसे बेकारी के प्रश्न की ओर लोगों का विशेष ध्यान गया और अब यह बात करीब करीब सर्वमान्य हो गयी है कि पूंजीवादी अर्थशास्त्र हमारी जनता की बेकारी का सवाल हल नहीं कर सकता। हमारे आर्थिक विचारों में गांधीजी ने अगर कोअी क्रान्ति की है, तो वह यह है। अुन्होंने भारत को यह बोध करा दिया है कि राष्ट्रीय अर्थशास्त्र केवल राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने का अर्थ-शास्त्र नहीं है; प्रत्युत देश की बेकारी दूर करने का अर्थशास्त्र है। अिस-लिअे अब यह कोअी नहीं मानता कि पूंजीवाद की पद्धति से हिन्दी जनता का सवाल हल होगा। यह सब होते हुअे अैसा मानने के लिअे क्या सबूत है कि कांग्रेस का स्वराज्य पूंजीशाही का राज्य होगा?

निर्वाह-वेतन

लेकिन गांधीजी केवल अितना ही कह कर नहीं रहते कि बेकारों को काम दो। अब अुन्होंने ग्रामोद्योगों की अपनी योजना में दूसरा भी अेक तत्त्व दाखिल किया है। वे कहते हैं कि हर अेक श्रमजीवी को हर रोज आठ घंटे काम करने पर कम से कम आठ आने निर्वाहवेतन मिलना चाहिअे। मतलब

यह कि राष्ट्रीय लोकशाही सरकार को हर अेक व्यक्ति को काम देने की जिम्मेवारी लेनी चाहिअे और देश का हर अेक प्रौढ़ व्यक्ति स्वावलंबी रह कर अुद्योग द्वारा अुदरनिर्वाह कर सके अैसा प्रबन्ध भी करना चाहिअे। अिसके अतिरिक्त अेक और अर्थशास्त्रीय तत्त्व गांधीजी ने जनता के सामने पेश किया है। वे कहते हैं कि देश के कारखानेदार और जमीनदार कारखानों के या जमीन के मालिक नहीं हैं; बल्कि संरक्षक (ट्रस्टी) हैं। अुन्हें देश की सम्पत्ति बढ़ाने के लिअे हमेशा यत्नशील रहना चाहिअे और अपनी मिहनत के लिअे अुचित कमीशन ले कर सन्तोष मानना चाहिअे। अिसका यह साफ़ मतलब है कि आअिन्दा भारतवर्ष में कोअी भी अपनी मिलकियत के द्वारा किसान और मज़दूर वर्ग को चूसने के अमर्यादित अधिकार का अुपयोग नहीं कर सकेगा। अिस तरह अनेक दृष्टियों से विचार करने पर भी गांधीजी का अर्थकारण पूंजीवादी अर्थकारण नहीं कहा जा सकता; बल्कि यह मानना होगा कि अुसमें से भारतीय समाजवाद का ही अुदय होगा।

प्राचीन भारत की आध्यात्मिक शक्ति की मूर्ति

लेकिन यदि यह भविष्यचर्चा छोड़ दें और गांधीजी के तत्त्वज्ञान से आगे क्या क्या परिणाम होंगे अिसका विचार भी थोडी देर के लिअे छोड़ दें, तो भी यह तो मानना ही होगा कि गांधीजी का गये बीस वर्षों का कार्य अैसा है कि जिसपर किसी भी राष्ट्रनिर्मात्री विभूति को अभिमान हो। भारतीय जनता ने गये बीस साल में आशातीत प्रगति की है। विशाल परिमाण में अुसका संगठन हुआ है और राष्ट्रीय लोकशाही के निर्माण की अुसकी सामर्थ्य कल्पनातीत बढ़ गयी है। भारत में आज अेक अपूर्व आशावाद अुत्पन्न हो गया है और हम किसी भी शक्ति से हारेंगे नहीं, बल्कि हर अेक जनता-विरोधी शक्ति को अपने सामने झुकने के लिअे बाध्य कर सकते हैं अैसा आत्मविश्वास सर्वत्र दिखायी देता है। गांधीजी ने अिस महाद्वीपप्राय राष्ट्र में यह जो नवचैतन्य पैदा किया है वह साधारण नहीं है। अौर अितना प्रचंड कार्य, अितना प्रभावशाली संगठन, अितनी दुर्धर्ष शक्ति किन साधनों से निर्माण की? गांधीजी दक्षिण आफ्रिका से जब लौटे तो अपने साथ कौनसे शस्त्रास्त्र ले कर आये थे? अेकनिष्ठा और अहिंसावृत्ति के सिवा अुनके पास न तो दूसरा कोअी साधन था, न दूसरी कोअी सम्पत्ति। तपोबल ही अुनका बल था और तपोधन ही अुनका धन। अुन्होंने अपने अिस बल और धन का प्रचार तथा प्रसार अखिल भारत की जनता में किया। अेक पिछड़े हुअे राष्ट्र में अग्रगामी राष्ट्रों का गुरुत्व कर सकने का आत्मविश्वास अुत्पन्न किया। प्राचीन भारतीयों की आध्यात्मिक शक्ति मूर्तिमती हो कर आज भरतखंड का नेतृत्व कर रही है।

श्रीकृष्ण और बुद्ध का समन्वय

गांधीजी के सत्याग्रही तत्त्वज्ञान में श्रीकृष्ण के कर्मयोग तथा गौतम बुद्ध की अहिंसा का समन्वय है। भगवद्गीता के रूप में श्रीकृष्ण ने राजधर्म की अहिंसा का अुपदेश दिया। परन्तु राजधर्म की अहिंसा हमेशा मर्यादित ही रहेगी। क्योंकि राजधर्म जब पूर्णरूप से अहिंसात्मक हो जाता है तो

अुसका राजधर्मत्व ही नहीं रहता। जबतक राजा और राज्य है तबतक संसार में पूर्ण अहिंसा की सत्ता स्थापित नहीं हो सकती। परन्तु प्रजाधर्म की अहिंसा के लिअे अैसी कोअी मर्यादा नियत करने की जरूरत नहीं है। जब प्रजा की अहिंसा का विकास होता है और अहिंसा से हिंसा का प्रतिकार करने की शक्ति अुसमें आ जाती है, तो राजधर्म की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। अिसलिअे अहिंसा की प्रस्थापना का प्रारंभ प्रजाधर्म से करना पड़ता है।

गांधीजी की भारत को देन

गांधीजी ने सत्याग्रह का प्रजाधर्म भारतीयों को सिखा कर अुन्हें आत्मोद्धार का वास्तविक मार्ग दिखा दिया है। अिस मार्ग पर चलने से अुन्हें यह विश्वास होने लगा है कि वास्तविक व्यक्तिस्वातंत्र्य, वास्तविक राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, वास्तविक लोकसत्ता और वास्तविक समाजसत्ता की प्राप्ति अहिंसा से ही हो सकती है। आधुनिक भारत को यह जो दिव्य दृष्टि प्राप्त हुअी है—जिसकी बदौलत अुसमें यह आत्मविश्वास पैदा हो गया है कि वह संसार का नेतृत्व करने का अधिकारी है—वही गांधीजी की आधुनिक भारत को अनमोल देन है; और अिसीलिअे कृतज्ञ हो कर वह आज गांधीजी को दीर्घ आयुरारोग्य देने की प्रार्थना कर रहा है।

(मराठी 'चित्रमय जगत्' से अनूदित)

गांधीजी का आत्मबल

लेकिन अिस सिद्धान्त पर अमल करने के लिअे मनुष्य की सत्यनिष्ठा और न्यायनिष्ठा अितनी अुत्कट होनी चाहिअे कि वह अपने या अपने परिवार के सुखदुःख का, या बलाबल का विचार किये बिना अपना कर्तव्य करने के लिअे अुद्यत हो जाये। यह गुण केवल विद्वत्ता से नहीं प्राप्त होता, केवल अच्छे कुल में जन्म लेने से नहीं आता, और न केवल बुद्धिमत्ता से ही आता है। यही वास्तविक आत्मबल है। 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन,' यह अुपनिषद्वाक्य नहीं भूलना चाहिअे। लेकिन अिस प्रकार का आत्मबल केवल विद्वत्ता या बुद्धिमत्ता से प्राप्त नहीं हो सकता, वह नैसर्गिक ही होना चाहिअे, अैसा सिद्धान्त होते हुअे भी गीता के अुपदेश के अनुसार निश्चयी मनुष्य अुसे अभ्यास और वैराग्य द्वारा प्राप्त कर सकता है। अिसीलिअे श्रेष्ठ और अुदार व्यक्तियों की जीवनियां चरित्रविकास में अुपयोगी होती हैं। अतः महात्मा गांधी की जीवनी अिस व्यापक दृष्टि से सभी पढ़ें अैसी हमारी सिफ़ारिश है।

१६ : ३ : १९१८

—बाल गंगाधर तिलक

वर्धा योजना का हार्द-अनुबन्ध

[काका कालेलकर]

-१-

क्या वर्धा योजना का हार्द अिस बात मे है कि अुद्योग की पढाअी स्वावलंबी बनायी जाये ?—नहीं। अगर हम अुद्योग की सच्ची शिक्षा काफी अवधि तक दे दें, तो बुद्धिशाली विद्यार्थियों के बनाये हुअे माल की बाज़ार में अच्छी कीमत आनी चाहिअे।

वर्धा योजना में यह खयाल है ही नहीं कि शाला चलाने का सारा बोझ विद्यार्थियों के सिर पर ही पड़े। शाला की अिमारत, अुद्योगालय, पुस्तकालय, प्रयोगालय आदि का खर्च विद्यार्थियों की मिहनत से नहीं निकलेगा। वह खर्च या तो सरकार करे, समाज करे, अथवा कोअी दानी व्यक्ति। वर्धा योजना की संस्थाओं के निरीक्षण-परीक्षण का बोझ भी विद्यार्थियों पर नहीं पड़ना चाहिअे। विद्यार्थियों से अितनी ही आशा की जाती है कि वे अपने अध्ययनकाल में रोज़ की तीनचार घण्टों की पढ़ाअी के साथ कुछ न कुछ अुद्योग कर के महीने भर में आठ-बारह आने अथवा अेक रुपया कमा कर गुरुदक्षिणा के रूप में दे दें और यह सिद्ध करें कि अुनका अुद्योग केवल खेल नहीं है, किन्तु बाज़ार में अुसकी कुछ न कुछ कीमत है। अुनको यह संतोष भी होगा कि वे अपनी पढ़ाअी केवल मुफ्त में नहीं पाते किन्तु अुसके बदले रोज़ कम से कम अपनी तीन चार घण्टों की मिहनत देते हैं। अुनके श्रम से जो कुछ आमदनी होगी वह पाठशाला के खाते में जमा होगी। किन्तु अिस आमदनी पर शिक्षक की तनख्वाह निर्भर नहीं रहेगी। प्रारंभ में कुछ भी आमदनी नहीं होगी। आगे चल कर कम या बेशी आमदनी हो जायेगी। आमदनी के द्वारा विद्यार्थी की औद्योगिक प्रगति की कसौटी अवश्य होगी। फिर भी, वर्धा योजना में स्वावलंबन चाहे जितने महत्त्व का हो, वह अुस योजना का हार्द नहीं है। "तो क्या अुद्योग की प्रधानता ही वर्धा योजना का हार्द है?" बहुत से लोग कहेंगे, "हां, यही वर्धा योजना का हार्द है।" किन्तु यह भी सही नहीं है। औद्योगिक शिक्षा की जो संस्थायें होती हैं अुनमें अुद्योग को प्राधान्य अवश्य है, किन्तु अुन संस्थाओं का वर्धा योजना से कोअी संबंध नहीं है।

जो लोग यह मानते हैं कि औद्योगिक शिक्षा अलग है और बौद्धिक शिक्षा अलग; वे वर्धा योजना को कभी समझ नहीं सकेंगे। किताबों के द्वारा बौद्धिक विकास होता है और अुद्योग के द्वारा नहीं होता अैसा जो मानते हैं वे भी वर्धा योजना को नहीं समझ सकेंगे। अुलटे वर्धा योजना की बुनियाद में यह भावना है कि अुद्योगों के द्वारा हम जितना बौद्धिक विकास कर सकते हैं अुतना शायद किताबी पढ़ाअी से होना नामुमकिन है।

वर्धा योजना का मुख्य अुद्देश बौद्धिक विकास को अधिक सफल बनाना है। अगर अिससे बौद्धिक विकास आज की अपेक्षा अधिक नहीं होगा तो वर्धा योजना निष्फल

है, अथवा अुसको चलानेवाले अपना काम नहीं जानते थे, अैसा ही कहना पड़ेगा।

वर्धा योजना का हार्द अिस बात में नहीं है कि हम राष्ट्रोपयोगी अुद्योगहुनर सफलता पूर्वक सिखावें। अुसका हार्द अिसमें है कि हम राष्ट्रोपयोगी अुद्योगों की तालीम अिस तरीके से चलावें कि अुद्योग की जानकारी के साथ साथ सफल, समृद्ध और सर्वांग-परिपूर्ण जीवन के लिअे आवश्यक सब विषयों का ज्ञान विद्यार्थी अुसी समय, अुसीके द्वारा हासिल करे। सिर्फ हासिल करे अितना ही नहीं किन्तु हजम करे और अपनी आकलनशक्ति और अपना कौशल्य अुसके द्वारा बढ़ा सके।

अिस अुद्देश की सफलता के लिअे यह अत्यावश्यक है कि शिक्षक अुद्योग की कुशलता विद्यार्थियों में पैदा करते हुअे अुद्योग के सब अंगप्रत्यंगों का जीवनोपयोगी सब विषयों के साथ जो निश्चितरूप से अनुबन्ध है, अुसकी ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करे और अिस अनुबन्ध के सहारे विद्यार्थियों को आवश्यक मात्रा में भिन्न भिन्न विषयों का ज्ञान देता रहे। अनुबन्ध बता बता कर आवश्यक मात्रा में जब ज्ञान दिया जाता है, तब यह ज्ञान आसानी से लिया जाता है और बिना किसी परिश्रम के हजम भी होता है। स्कूल-कॉलिज के बाहर बाजाप्ता पढ़ाअी के बिना जीवन भर अनुभव के द्वारा जो ज्ञान लिया जाता है अुसका बोझ कभी किसीको मालूम नहीं पड़ा। प्राकृतिक मनुष्य जिस नैसर्गिक ढंग से जीवन भर ज्ञान प्राप्त कर लेता है अुसी ढंग से ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति वर्धा योजना में पसन्द की गयी है। मनुष्य के जीवन का नवदशांश हिस्सा आजीविका प्राप्त करने में खर्च होता है। किसी न किसी अुद्योग और परिश्रम के द्वारा अुसे अपनी आजीविका प्राप्त करनी पड़ती है और अुसीकी सफलता के लिअे अुसे अिधर-अुधर की अनेक बातें जाननी पड़ती हैं। अुसकी जानकारी जितनी अधिक अुतनी ही अुसकी जीवनसफलता भी अधिक। अिसलिअे आजीविका प्राप्त करने के लिअे जो अुद्योग करता है अुस वक्त जागरूक रह कर जीवनोपयोगी जानकारी जहाँ से मिल सके, वहाँ से वह हासिल करता रहता है। अगर जागरूकता तनिक भी कम हुअी तो अुसकी सफलता में अुतनी ही न्यूनता आ जाती है।

जीवनव्यापार के साथ जिन जिन बातों का अनुबन्ध है अुनके प्रति जागरूक रहना यही वर्धा योजना का हार्द है। यह अनुबन्ध क्या चीज है यह हमें पहले देखना होगा।

—२—

अनुबन्ध के लिअे अंग्रेजी शब्द है, 'कोरिलेशन'। अिसका सच्चा स्वरूप पहले ठीक ठीक समझना चाहिये।

यह सृष्टि अेकरूप है। अिसमें पायी जानेवाली सब चीजें किसी न किसी रूप में अेक दूसरे के साथ संबद्ध हैं। मकड़ी के जाल में अथवा दूसरे किसी जाल में सब तन्तुओं का परस्पर संबंध होता ही है। अेक तन्तु या धागा अगर खींच लिया जाये तो अुसका असर सारे जाल पर पड़े बिना नहीं रहता। अिसी तरह अिस विश्व में सब बातें परस्पर सम्बद्ध हैं। किसी अेक चीज की अगर हम पूर्णतया छान-बीन करते जायें तो वह खोज हमें विश्व

की सभी चीजों के निकट अवश्य ले जायगी। अिसलिअे हरेक चीज़ का दूसरी चीजों के साथ कुछ न कुछ संबंध होता ही है। अिस संबंध को ही अनुबन्ध कहते हैं। यह शंका मन में कभी नहीं लानी चाहिअे कि अगर अैसा अनुबन्ध न पाया गया तो? अनुबन्ध तो विश्व में है ही। अुसे ढूंढ़ने की हमारी शक्ति चाहिअे।

'कोरिलेशन' के लिअे 'अनुबन्ध' शब्द नया नहीं है। तर्कशास्त्र में भी यह शब्द पाया जाता है और ग्रामीण लोगों की बोली में भी पाया जाता है। गीता जैसे सार्वभौम धर्मग्रंथ में भी यह शब्द पाया जाता है और लोकोक्ति में भी अुसका स्थान है। जब कभी हमें किसी के घर पर भोजन करने का मौका आता है तब वह कहता है 'अन्नजल का अनुबन्ध था अिसलिअे आपके यहां भोजन करना पड़ा।' 'दाने दाने पर खानेवाला का नाम' पहले ही से लिखा हुआ होता है। अिसलिअे जहाँ वह दाना पहुंचा वहाँ अुसे खानेवाला अवश्य ही पहुँचेगा। क्यों-कि दोनों के बीच अनुबंध है। महाराष्ट्र में अैसे अवश्यंभावी संबंध को 'ऋणानुबन्ध' भी कहते हैं।

हमारी संस्कृत परिपाटी के अनुसार किसी भी शास्त्र का अध्ययन शुरू करने से पहले अुसका 'अनुबन्ध चतुष्टय' देखना पड़ता है। विषय, प्रयोजन, अधिकारी और सम्बन्ध ये चार अनुबन्ध खास कर के देखने चाहिअें, अैसी शास्त्रीय अध्ययन की पद्धति है। जीवन में और अध्ययन में 'अनुबन्धादिकं दृष्ट्वा सर्वं कार्यं यथाक्रमम्'। गीता में भी कहा है कि जो अपने कार्य में अनुबन्ध आदि नहीं देखता अुसके काम में अुसे सफलता नहीं मिलती और अुसके ज्ञान में अपूर्णता आ जाती है। अपूर्णता क्या आ जाती है; सारा ज्ञान ही नष्ट हो जाता है।

अिस अनुबन्ध, यानी को-रिलेशन, का स्वरूप समझना चाहिअे। बहुतसे लोग 'को-रिलेशन' और 'असोसिअेशन ऑव्ह् आअिडियाज़' (सहचारी भाव) के बीच जो भेद है अुसे नहीं जानते। 'असोसिअेशन ऑव्ह् आअिडियाज़' काल्पनिक भी हो सकता है। लेकिन अनुबन्ध 'वस्तुगत' (ऑबजेक्टिव) है। असोसिअेशन 'मनोगत' (सबजेक्टिव) है। कोअी भी चीज़ देख कर नाममात्र का साधर्म्य कल्पना में आने से दूसरी किसी चीज़ का स्मरण हो जाना यह 'असोसिअेशन ऑव्ह् आअिडियाज' है। यह हुआ लैंगिक प्रयोग। अनुबन्ध की बात अलग है। अनुबन्ध चाहे कल्पना में आवे या न आवे; वह वस्तुगत है ही। अिसीलिअे अनुबन्ध को ढूंढ़ना और अुसके सहारे आगे बढ़ना शास्त्रशुद्ध व्यापार है।

(क्रमशः)

असम की अेक झांकी

[काका कालेलकर]

काश्मीर, केरल और कामरूप हिन्दुस्तान के तान्त्रिक त्रिकोण के तीन सिरे हैं। प्रकृति-माता ने अिन तीनों को अप्रतिम सौंदर्य अर्पण किया है। आज अगर मुझे कोअी पूछे कि अिन तीनों में से अधिक सौंदर्य किस भूमि-भाग का है, तो मेरे लिअे अुसका जवाब देना कठिन होगा। कामरूप का अति प्राचीन नाम था 'प्राग्ज्योतिष्'। आज अिस प्रान्त को 'असम' कहते हैं।

गंगा और ब्रह्मपुत्र के अनेकमुखी पंखे से (डेल्टा से) जिस सुन्दरबन की शोभा बढी है अुस प्रदेश का प्राचीन नाम है 'समतत'। 'समतत' माने समतल भूमिका विस्तार। अिसके विरुद्ध 'असम' प्रान्त में हिमालय से ले कर अुफला के पहाड़ियों तक और दक्षिण में चेरापूंजी से ले कर गारो पहाडियों तक, जहाँ देखिअे वहां पहाड़ ही पहाड है; अिसीलिअे शायद अिस प्रदेश को 'असम' कहते होंगे।

जहाँ ब्रह्मपुत्र बहता है अुसकी दोनों ओर खेती करनेलायक जो समतल जमीन है अुसीमें असम प्रान्त की आबादी है। ब्रह्मपुत्र नद ही असमिया लोगों का मातापिता है। अुत्तरपूर्व में सदिया से ले कर पश्चिम में धूब्री तक १५ डिग्री के विस्तार से 'असम' प्रान्त फैला हुआ है।

अेक दृष्टि से देखा जाय तो अिस प्रान्त पर कुदरत की असाधारण कृपा है। सब से बडी और सब से चौडी नदी अिसी प्रान्त में से बहती है। नदी का गाद (सिल्ट) और पहाडी वृक्षों के पत्रों के खाद का अगर हिसाब किया जाय तो यहाँ की भूमि के जैसी अुपजाअू भूमि और कहीं भी नहीं है। मिट्टी का तेल और कोयला अगर कहीं पास पास खोदा जाता हो तो वह भी यहीं है। जंगल की समृद्धि और खनिज पदार्थों की सम्पत्ति में तो यह प्रदेश असाधारण सम्पन्न है। धान, रुअी, आलू, तरकारी, चाय, नील, जो चीज हम मांगें यहाँ की भूमि देने को तैयार है। और यहाँ के नारियल और सुपारी के पेड़ देख कर तो हिन्दुस्थान के पश्चिम किनारे की याद आती है। मत्स्याहारी लोगों के लिअे तो यह नन्दन-वन ही है और फलाहारी लोग अगर चाहें तो कटहल और केले पर अपनी सारी जिन्दगी बसर कर सकते हैं।

जैसे कच्चे माल में यह प्रान्त समृद्ध है अुसी तरह से '**कच्ची**' लोक-बस्ती में भी वह कम समृद्ध नहीं है। नागा, खसी, मिकीरी, गारो, मिट्ठी, आभोर, मिसमिस आदि अनेक पर्वतीय और वन्य लोगों की आबादी ही अिस प्रान्त का महत्त्व का भाग है। कच्चे माल की कीमत वे ही कर सकते हैं जो अुससे पक्का माल बना सकते हैं। अिन पहाडी वनौकसों की कीमत तो वे ही कर सकते हैं जो संस्कृति-धुरीण हैं। अितिहास-पूर्वकालीन मनुष्यजाति का अध्ययन करनेवाले नृ-वंश-शास्त्रियों के लिअे 'असम' प्रान्त अध्ययन का सब से श्रेष्ठ क्षेत्र है। समाजशास्त्रियों के लिअे वह अप्रतिम प्रयोग-भूमि है। अगर गोवा के, कोंकण के, और केरल के थोडे हिम्मतवान लोग यहां आ कर बसें और यहां के लोगों के साथ अेक-रूप हो जावें तो अिस प्रान्त में अेक नये युग का प्रारंभ होगा। क्योंकि धान, सुपारी, नारियल

मछली, कटहल और केलों का यह मुल्क है। पश्चिम भारत में जो कुछ करीगरी है, जीवनकला है, अुसका लाभ यहाँ के लोगों को मिलने से अुनको अपनी शक्ति का साक्षात्कार होगा। यहाँ के पर्वतीय लोगों को अपनाने से असम प्रान्त के लोगों की शक्ति कम से कम दसगुनी तो अवश्य बढेगी। अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में कुदरत के साथ किस प्रकार लडना है और अपनेको जीवित रखना है असकी कला अिन आरण्यकों के पास जैसी है वैसी शायद थोडे ही शहरी और ग्रामीण लोगों के पास होगी। पादरियोंने इन लोगों को अपना धर्म और अपनी संस्कृति देने की काफी कोशिश की है। अिस प्रयत्न के पीछे कौन कौनसे हेतु और आदर्श हैं यह कहना कठिन है। धर्म के नाम से ये लोग प्रचार करेंगे और समय आने पर अपने प्रचार से लश्करी दृष्टि से लाभ भी उठावेंगे। अिनके मुख में और हृदय में धर्मशास्त्र होगा। किन्तु अिनके दिमाग में और आचरण में साम्राज्यवादी समाजशास्त्र होगा। हिन्दुस्थान का सामाजिक, आर्थिक और भाषिक संगठन तोड डालने में अिन पादरियोंने कुछ कम सफलता नहीं पायी है। 'असम' की अंग्रेज सरकार ने आजतक अिन वनचरों की शिक्षा अिन पादरियों के ही हाथ में रक्खी है। कहीं कहीं अिन पर्वतीयों के प्रदेश में मिशनरियों को छोड कर और किसीको जाने न देने की नीति ही खुले तौर पर अख्त्यार की थी। आज भी अुस नीति का अंत नहीं हो पाया है।

अिन पर्वतीयों के बीच रह कर अुनकी सेवा करनेवाले और अपनी गुजर करनेवाले मारवाडियों की हम जितनी कद्र करते हैं अुससे अधिक कद्र के वे अधिकारी हैं। अंग्रेज लोग आ कर यहाँ जितना मुनाफा करते हैं अुतने मुनाफे का शायद ये मारवाडी स्वप्न भी नहीं देखते होंगे। तो भी मारवाडियों को धनलोभी और लुटेरे कहने का रिवाजसा पड गया है। अगर सब किस्म के कष्ट अत्यंत समाधान से सहन करनेवाले ये मारवाडी अिन पर्वतीयों के बीच नहीं बसते तो अुनका जीवन अशक्यप्राय हो जाता यह बात हमें भूलनी नहीं चाहिये।

जब से यहाँ पर मिट्टी के तेल की और कोयले की खानें निकली हैं और चाय के 'बागान' (बगीचे) बनाये गये हैं तब से अन्यान्य प्रान्तों के मजदूरों को अंग्रेज यहाँ ले आये। वे यहाँ आ कर कडी मिहनत से अपना गुजारा तो अच्छी तरह कर लेते हैं; किन्तु यहाँ के लोगों के साथ अभीतक घुल-मिल नहीं गये हैं; हालांकि यहाँ के लोगों के साथ मिल जाना तनिक भी कठिन नहीं है। असमिया लोग परम्परा से खेती करनेवाले हैं। किन्तु पूर्व बंगाल के मैमनसिंह जिले से जो लाखों मुसलमान असम प्रान्त में आ कर बसने लगे हैं अुनकी जीवनशक्ति के सामने यहाँ के स्थायी लोग फीके पड जाते हैं। ये नये लोग गाय रखते हैं, आलु बोते हैं, साग-तरकारी बेचते हैं और यहाँ की अुपजाअू जमीन के अनुरूप मिहनत-मजदूरी करके लाखों रुपया कमाते हैं।

नौगांव जिले में अिन प्रवासियों को चाहे जहाँ बसने की अिजाजत नहीं है। कहीं असमिया लोगों से अिनका झगडा न हो जाये अिसलिअे अिस जिले में सरकार ने अेक लकीर खींच दी है जिसके अिस पार केवल असमिया लोग ही खेती कर सकते हैं। मैमनसिंह के मुसलमानों को यहाँ पर खेती

नहीं करने दी जाती। दोनों समाजों की शक्ति का पता अिस बात से चलता है कि लकीर की अिस ओर जमीन की कीमत फी अेकड अगर पांच रुपया है, तो अुस ओर अुसी किस्म की अुतनी ही जमीन की कीमत पचास रुपये से अधिक आ सकती है।

जहाँ हिन्दुस्थान की अुत्तर-पूर्व सीमा है वहाँ पर आज हम अेक छोटासा हिन्दुस्थान बसा हुआ पाते हैं। डिब्रोगढ और तिनसुकिया के आसपास तेल और कोयलों की खानें दिनरात अपना काम करती हैं और सब प्रान्तों के मिला कर ३०।४० हजार लोग अपनी मिहनत से अंग्रेजी कम्पनी की जेब में प्रतिदिन हजारों रुपयों का मुनाफा पहुँचाते हैं।

प्राचीन काल में मनुष्यजाति ने गाय, भैंस, घोडा, गधा, अूंट और हाथी से काम लेने की और अुनकी मिहनत से लाभ अुठाने की विद्या हासिल की। अिस युग में पाश्चात्य पूंजीपतियों ने अेशिया और आफ्रिका के लोगों की मिहनत-मजदूरी से वही लाभ अुठाने की तरकीब ढूंढ निकाली है। पशु से श्रम कराने की आदत पडते ही मनुष्य-स्वभाव में और मनुष्यजीवन में बडी ही क्रान्ति हो गयी। गुलामी प्रथा, गिरमिटिया प्रथा, 'दुबला' किसानों की प्रथा (जो कल तक गुजरात के सूरत जिले में थी) और कल-कारखानों में मजदूरों से काम लेने की प्रथा से भी मनुष्य-जीवन में और मानव-सामाजिक आदर्शों में बहुत बडी क्रान्ति हो गयी है। अिसीके कारण वर्गविग्रह और समाज-सत्तावाद की फिलसुफी का अवतार हुआ है।

जब मनुष्यजाति ने पशुओं से काम लेने का प्रारंभ किया होगा तब शेर, भेडिया, हिरन, जंगली सूअर, आदि जानवरों से भी काम लेने की कोशिश की गयी होगी। किन्तु अिन जानवरों ने काम करने से अिस सफलता के साथ अिन्कार किया कि मनुष्यजाति ने अुनका नाम ही छोड दिया। "हम मरेंगे लेकिन तुम्हारे लिये मिहनत नहीं करेंगे" यही, अुनकी चुनौती थी। अुसीपर वे डटे रहे। अिन पशुओं का और मनुष्यों का झगडा अनेक मोर्चों पर आज भी चल रहा है।

असम प्रान्त में गायें हैं, भैंसें हैं, हाथी हिरणादि वन्य पशु भी हैं और विशेष बात यह है कि यहाँ पर खड्ग-विषाण गेंडे भी हैं। गेंडे से काम लेने की कला किसी न किसी समय मनुष्य हस्तगत करेगा ही अैसा मेरा विश्वास है। हिंदुस्तान का प्रतीक जिसप्रकार हाथी है, बर्मा का मोर, दक्षिण आफ्रिका का शाहमृग अुसी तरह असम का प्रतीक यह गंभीरवेदी गेंडा है।

अगर हम नयी दृष्टि से देखें तो गायों के साथ साथ दूसरे भी अेक प्राणी का विचार करना चाहिअे। अगर गाय पवित्र है तो यह प्राणी भी पवित्र है। अगर गाय मनुष्यों को कीमती आहार देती है तो यह प्राणी भी अुतना ही कीमती आहार तैयार कर देता है। अगर गाय मनुष्य के सहवास से पालतू और सौम्य बन गयी है तो यह प्राणी भी पालतू और सौम्य बन सकता है। वह प्राणी है शहद की मक्खी। गाय को प्रेम से रखने से, कुदरत के कोप से बचाने से और अुपयुक्त खुराक खिलाने से जैसे वह ज्यादा दूध देती है अुसी तरह शहद की मक्खियाँ भी मनुष्य की मदद पा कर शहद बनाने की अपनी शक्ति अनेक गुनी बढा देती हैं। असम प्रान्त में जहाँ देखिये पानी के पुष्कर, तालाब और झील असंख्य हैं। अुनमें

अन्दर जो भले बुरे फूल अुगते हैं अुनका अमृत चूस चूस कर मधु बनानेवाली मक्खियाँ असम प्रान्त में बहुत हैं। असम प्रान्त का मधु दूर दूर तक जाता है।

असम प्रान्त का अितिहास महाभारतकाल से शुरू होता है। महाभारत में असम प्रान्त के राजा भगदत्त का और अुसके हाथियों का जिक्र आता है। अनेक राजाओं की कन्याओं का हरण कर अपना अन्तःपुर भर देनेवाला नरकासुर भी यहीं का राजा था। श्रीकृष्ण ने जब असम प्रान्त पर चढाअी की तब सेनानायकत्व सत्यभामा ने लिया था। अिसका रहस्य क्या है? क्या श्रीकृष्ण के काल से ही अिस प्रदेश में स्त्रीराज्य था? मध्य पाण्डव अर्जुन की चित्रांगदा भी अिसी प्रान्त की (मणिपुर की) थी। श्रीकृष्ण के लडके ने भी चाहा कि असम की कोअी कन्या मिल जाय तो अच्छा है, किन्तु बेचारा यहीं फँस गया और अनिरुद्ध होते हुअे भी अुषा के प्रेम में रुद्ध हो गया।

अितिहास कहता है कि गुजरात-काठियावाड के किसी राजपुत्र ने लंका जा कर वहाँ की राजकन्या के साथ शादी की। अिस पर से दूर दूर के संबंध को व्यक्त करने के लिअे गुजराती में कहावत है कि "लंकानी लाडी अने घोघानो वर" ("लंका की लडकी और घोघा बन्दर (काठियावाड) का दुलहा"।) किन्तु अिसके पहले काठियावाड के अनिरुद्ध ने कामरूप की अुषा के साथ शादी करके हिन्दुस्थान के दो सिरों को बांध दिया था।

हमारे पौराणिक काल के सबसे बडे घुमक्कड मुसाफिर तीन हैं—अमर संवाददाता नारद, शीघ्रकोपी बलराम और क्षत्रियब्राह्मण परशुराम। दुर्वास, दत्तात्रेय, हनूमान आदि लोग भी काफी घुमक्कड थे। किन्तु अिनके तीर्थाटन का अितिहास पाया नहीं जाता। परशुराम ने हिन्दुस्थान के पश्चिम किनारे पर बडा यज्ञ किया और सारी भूमि ब्राह्मणों को दान में दे दी। बाद में अुन्होंने जब देखा कि अपने रहने के लिअे भी जगह नहीं रही तो अुन्होने समुद्र को हटा कर अपने वास्ते छोटासा प्रदेश तैयार किया। अुसी परशुराम का अेक कुण्ड यहाँ असम प्रान्त में सदिया स्टेशन से पूरब की ओर ५० मील पर है। यह सुनकर अुसे देख आने की प्रबल वृत्ति किस आर्यहृदय में नहीं अुठेगी? किन्तु यहाँ आने के लिअे आबोहवा से अनुकूल मुहूर्त पूछ लेना पडता है।

स्वयं परशुरामकुण्ड अथवा ब्रह्मकुण्ड बडी स्वास्थ्यकर जगह है और वहां का प्राकृतिक दृश्य भी कुदरतप्रेमी आदमी को अुन्मत्त करने वाला और विलासी आदमी को प्रशम की शान्ति देनेवाला है। परशुराम के दिनों में हम लोगों में निसर्ग प्रेम, धर्मप्रचार की वृत्ति और अपने सीमान्त प्रदेशों में जंगी शिबिर स्थापित करने की लश्करी दृष्टि थी। आज हम निराशावादी, संकोचप्रिय और जडता के अुपासक बन गये हैं। हमें अिस ब्रह्मकुण्ड का पता भी कहां से लग सकता है? अैसा होता तो पूर्व और पश्चिम के सीमान्त प्रदेशों में हम लोगों ने देश के पराक्रमी, पुरुषार्थी और दीर्घदर्शी नवयुवकों के बडे बडे आश्रम हमेशा के लिअे जारी रक्खे होते। अेक चाणक्य ही शायद अैसा था जिसने अुत्तर-पूर्व सीमान्त प्रदेशों को संभालने का महत्त्व समझा था। अुसीके वंशजों ने अटक की अटक पैदा कर के भारतीय विकास को ही अटका दिया।

असम प्रान्त की सौन्दर्यसमृद्धि की और भाग्यलक्ष्मी की बात मैंने कही। अुसके साथ साथ वहीं पर, मानों अपना पक्षपात धो डालने के लिअे, कुदरत ने जो कोप अिस भूमि पर किया है अुसका भी जिक्र करना न्यायप्राप्त है।

असम प्रान्त भूचालों के लिअे अितिहास प्रसिद्ध है। मानों यह भूमि न मरे हुअे गयासुर के कलेवर पर ही बसी हुअी है। जब भूमि मृत या सुप्त नहीं होती तब समय समय पर अुसे चलनवलन करने की अिच्छा हो जाती है। असम प्रान्त में आजतक अितने भूचाल हो गये हैं कि अुनका हाल पढ़ कर मन में अेक प्रश्न अुठता है। जहां जमीन बार बार हिलती है और स्थान स्थान पर अुत्पात करती है वहां या तो भूचाल का वैज्ञानिक कारण खोजने की कोशिश की जाती है और भूचाल विज्ञान का निर्माण होता है, अथवा मनुष्य अपनी कविकल्पना चला कर पौराणिक कथायें रच डालता है। महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थों में भूचाल के अुल्लेख और कथायें हैं और जापान जैसे देशों में सिस्माग्राफी (भूचालविज्ञान) का विस्तार किया जाता है। असम में ये दोनों चीजें नहीं हैं। जहां बार बार भूचाल होते है वहां लोग या तो अुस प्रदेश को छोड देते हैं अथवा जीवन को क्षणभंगुर देखकर मृत्यु का डर छोड कर बहादुर बन जाते हैं। ये दोनों रास्ते स्वाभाविक और मनुष्योचित हैं। किन्तु दैववाद अेक अैसी जहरीली चीज़ है कि वह मनुष्य को जड ही बना कर रहती है। नसीबवादी समाज न तो स्थानान्तर करेगा, न प्राकृतिक शक्तियों से लडेगा, और न मुद्दतों से चलती आयी हुअी अपनी जीवनप्रणाली में कुछ परिवर्तन करेगा। असम में भूचालविज्ञान का कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता। नदी में बाढ़ आती है, मनुष्य, अुनके घर और पशु बह जाते हैं, लोग दुःखी होते हैं, अिस प्रकार की आपबीती पुरानी आपत्तियों का रसपूर्ण बयान करते हैं। और सब भूल कर जैसे थे वैसे ही फिर रहने लगते हैं।

असम प्रान्त में अूंची अूंची पहाडियां छोड कर आबोहवा जितनी स्वास्थ्यकर होनी चाहिअे अुतनी नहीं है; अिसलिअे लोगों में जीवनशक्ति कम पायी जाती है। अगर असम प्रान्त के सब डॉक्टर और स्वास्थ्य-विभाग के मंत्री मिल कर व्यक्तिगत स्वास्थ्य का नहीं किन्तु सामाजिक स्वाध्य का अध्ययन करें और लोगों के रहन-सहन में, अुनके आहार-विहार में और गृहनिर्माण में क्या क्या परिवर्तन आवश्यक हैं अिसका विचार करें, तो सारे प्रान्त की शकल बदल जायगी। पानी का प्रश्न कुछ मामूली प्रश्न नहीं है। पहाडी लोगों को और किसानों को अगर कम से कम खर्च में शुद्ध जल पीने को मिले तो केवल असम के स्वास्थ्य पर ही नहीं किन्तु अुसके पुरुषार्थ पर भी गहरा असर पडेगा।

हम कुछ नहीं कर सकते अैसी जो फिलसुफी लोगों के मन में घर कर बैठी है अुसके बदले अुनकी यह धारणा हो जानी चाहिअे कि "हम मनुष्य हैं और सब कुछ कर सकते हैं"। प्रकृतिपर विजय पाना यह मनुष्य का सबसे बड़ा मिशन है। मनुष्य ने विज्ञान और रसायनशास्त्र में खोजबीन कर छोटे बडे यंत्र बनाये, मुसाफरी के साधन तैयार किये, आहार बढाने की कोशिश की,

किन्तु अभी तक नदियों को काबू में रखना, बड़े बड़े जंगलों में परिवर्तन करना, आबो-हवा में और बरसात में नवीनता लाना, समुद्रों के प्रवाहों से लाभ अुठाना, सूर्य की शक्ति से प्राणशक्ति को बढ़ाना, आदि व्यापक कामों में हाथ नहीं डाला है। ये काम मनुष्य की शक्ति से बाहर नहीं हैं। असम प्रान्त की समृद्धि अितनी है कि वहां पर सब विपत्तियों का अिलाज करने का मसाला मिलना ही चाहिअे।

असम प्रान्त की सरकार को मानवविज्ञान (अॅन्थ्रॉपॉलॉजी) का अेक बड़ा महकमा खोल कर और अुसमें देशी लोगों की नियुक्ति करके नये नये खोज कराने चाहिअें। दक्षिण में आर्य और द्रविड लोगों के सानिध्य, संघर्ष और संमिश्रण की बात आती है। सिंध, पंजाब और सीमान्त प्रदेश में आर्य, सिथियन, पल्लव, आदि जातियों के मूल अितहास की खोज हम कर सकते हैं। प्राचीन अितिहास की दृष्टि से अिस खोज का महत्त्व बहुत बड़ा है। किन्तु भविष्य की दृष्टि से असम प्रान्त में ब्रह्मदेश, चीन, तिब्बत आदि देशों में जो अनेकविध जातियां हैं अुनके जीवनसत्त्व का खूब गहरा अध्ययन होना जरूरी है। हिन्दुस्थान में जिनको हम अब 'अॅबॉरिजिनी' (मूल-निवासी) कहने लगे हैं अुन सब जातियों का विचार श्रीकृष्ण के जमाने में वैष्णवधर्म के प्रचारकाल में काफी हुआ था। बौद्ध-काल में अुनके बीच सेवाकार्य अवश्य हुआ होगा। किन्तु अब हम लोगों ने अध्ययन और सेवा दोनों का ठेका परदेशियों को दिया है।

अब अिस साल चीनी लोगों का विश्व-विद्यालय समुद्र किनारा छोड कर असम की सरहद् से सौ दोसौ मील के फासले पर आ पहुंचा है। पहाडी रास्ते, मोटरें और हवाअी जहाज की मदद से चीन के साथ हमारा सम्पर्क बहुत कुछ बढनेवाला है। अब कहीं अैसा न हो कि हमारे अीशान्य सीमान्त की पहाडी जातियों का वर्णन और अुनके बारे में सूक्ष्म जानकारी हमें चीनी प्रोफेसरों से लेनी और सीखनी पड़े।

गांधी के कलाविषयक विचार

गांधी के जीवन की हरेक बात की तरह कला और अुसके महत्व के विषय में अुनके विचार भी जनता की दुःस्थिति के अुनके ज्ञान का व्यक्त स्वरूप ही है। किसी जमाने में बुद्ध के सन्मुख जिस तरह मानवप्राणी की वेदना अपना घूंघट खोल कर खड़ी हो गयी थी, अुसी तरह अब वह गांधी के सामने खड़ी हो गयी है। अिस लिअे वे अपनी भावनायें और शक्तियां अैसे किसी अुद्योग में खर्च नहीं कर सकते जो भूखों को खिलाने में, नंगों की काया ढांकने में और दुखियों को ढाढ़स बंधाने में प्रत्यक्ष-रूप से सहायक न हों।

—फुलॉप मिलर

गांधीवाद में जीवनकला

[सुरेश कुमार]

मानवीय जीवनकला का प्रकरण मानव-जीवन के साथ ही शुरू हुआ है। आवागमन का चक्कर बहुत जबर्दस्त और विकट है, अिसी कारण जीवनकला के रूप-रहस्य में भी बहुत क्लिष्टता आ गयी है। संसार की गति सम-विषम रूप से 'दुःखानि च सुखानि च' की आवाज ले कर बढ़ती चली जा रही है। महापुरुषों ने अिसकी गति को आदर्श-पथ पर लाने के अनेकानेक प्रयत्न किये। जीवन-कला के अर्थ-भेद से जीवन के आदर्शों में भी अनेक अन्तर आते रहे हैं। अध्यात्मवाद का आश्रय ले कर जिन कलाकारों ने जीवन-कला का रहस्योद्‌घाटन किया है, अुन्हींका असर जीवन पर अधिक पड़ा है।

आज संसार का आध्यात्मिक जीवन किस गति से गुजर रहा है, यह स्पष्ट है। वैज्ञानिक सभ्यता आज बहुत जोर पकड़ गयी है और पाश्चात्य सिद्धान्तों मे देहात्मवाद का सिक्का बहुत जम गया है। भौतिकवाद के आधार पर आज दिन जीवन-कला का जो क्रम निर्धारित किया जा रहा है, वह अिसी पाश्चात्य-सभ्यता का परिणाम-स्वरूप है। हाँ, परिवर्तनमय संसार में जहाँ अेक ओर स्थूल ज्योति का चकाचौंध है, वहाँ सूक्ष्म ज्योति की भी अेकाध किरण जरूर है। अिसीके बल पर संसार का अस्तित्व है। घोर दुःख में भी सुख का यत्किञ्चित् आभास मिल ही जाता है। कराल कलिकाल में भी सत्ययुग की अेकाध झलक आ ही जाती है। भौतिकवाद के अिस युग में अेक आदर्श अध्यात्मवाद की कल्पना भी कुछ अैसी ही प्रतीत होती है। विश्व के जीवन में आज अेक अैसे ही आदर्शवाद ने जीवन-कला का निरूपण किया है—'गांधीवाद'।

गांधीवाद के अधिनायक हैं गांधीजी। यह कहने की अब आवश्यकता नहीं रही कि गांधीजी आध्यात्मिकता की किस गहराअी तक पहुँच चुके हैं। आज गांधीवाद की जीवन-कला ने अखिल विश्व को आश्चर्य-चकित कर दिया है। पुण्य पुण्य है, पाप पाप है। कोअी भी युग हो, चाहे पाप का ही बोलबाला हो; पर यह तो मानना ही पडेगा कि पापियों के हृदय में भी पुण्य के औचित्य और पाप के अनौचित्य की पूर्व-निश्चित मीमांसा अवश्य होती है; यह दूसरी बात है कि तृष्णाओं के जाल में अुलझे अैसे जीवों में तदनुसार आचरण की शक्ति शेष न हो। भौतिकवाद का आन्दोलन आज विश्वव्यापी हो गया है जरूर; पर जहाँ अिस नवीन कर्म-पथ के आदर्श गांधीवाद की कल्पना भी आ जाती है, वहाँ अिसकी यथार्थता और श्रेष्ठता को तहेदिल स्वीकार कर वह अेकबार विस्मित हो अुठता है। हां, यह दूसरी बात है कि वह आडम्बर से मुंह मोड कर, नीरस-प्रतीत आदर्श की ओर झुके नहीं।

जहाँ अबतक भौतिकवाद और अुपयोगिता-वाद के आधार पर जीवन-कला का निरूपण हो रहा था, वहां नवीन कलाकार गांधी ने आत्मवाद का स्वरूप ले कर अिस कला की जो सूक्ष्म व्यवस्था की है, वह अेक आदर्श कलाविद् के अनुकूल ही है। जीवननिर्वाह

के स्थान पर आज गांधीवाद ने जीवनकला को साधना का रूप दिया है। गांधीजी ने साध्य की महत्ता अपनी आन्तरिक आंखों से दूर डाल दी है और कर्म-पथ पर साधना के महत्त्व का मूल्य आँका है। साधना का यह सन्देश भौतिक सिद्धान्तों के बीच कुछ अुसी तरह लगता है, जिस तरह पार्थ की मोहावस्था में गीता का अुपदेश। हमारे कलाकार का जीवन गीता के अनासक्तियोग में ढला है। और यह नूतन-सन्देश मानस की ओर से गीता की वही प्रतिध्वनि है :—

" कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्म फलहेतु र्भू:...............

गांधीजी कहते हैं—" पुण्य पुण्य ही है, पाप पाप ही है। यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक अुत्तम कार्य करने के लिअे ही यह निकृष्ट साधन अपनाया गया है, अिसलिअे यह पवित्र है। पहली बात तो यह कि अुत्तम साध्य के लिअे अधम साधना की जरूरत हो ही नहीं सकती। दूसरी बात यह कि अुत्तम साध्य के लिअे भी अधम साधना अधम ही रहेगी, अुत्तम न होगी।"—अिसी सिद्धान्त के आधार पर गांधीवाद ने पशु-बलि के विरुद्ध आवाज अुठाअी है और कलाकार ने अिसी आदर्शपथ से सन्देश दिया है—कि मैं अेक सांप को भी मारकर खुद जीना नहीं चाहता,।

हां, तो, गांधीवाद में ' कर्मयोग और ज्ञानयोग के आदर्श-समन्वय के सहारे आत्म-दर्शन की भावना के साथ साथ परिचालित जीवन की गति-विधि ' में ही जीवनकला का निरूपण हुआ है। अथवा यों कहिअे कि आदर्श-साधना को ही जीवनकला का रूप दिया गया है।

अब आदर्श-साधना का रूप क्या हो ? गांधीवाद में सर्वप्रथम स्थान सत्य और अहिंसा का है। ' सत्यं शिवं सुन्दरं ' का आह्वान कर " आत्मवत् सर्व भूतेषु " का मूल-मन्त्र ही गांधीवाद का जीवन है। विश्व बंधुत्व के मार्ग की छोटी-से-छोटी अड़चन भी आदर्श-साधना की श्रेणी में नहीं आ सकती; भले ही अुससे अधिकाधिक कल्याण की बाहरी सम्भावना हो।

अब हम यह देखेंगे कि हमारे कलाकार ने अपनी कला का निर्वाह अपने जीवन में किस रूप में किया है; यद्यपि यह प्रश्न बहुत गंभीर, सीमातीत और रहस्य-भेद का है, क्योंकि हममें अितनी शक्ति नहीं कि कलाविद् गांधी की अपरिमित विभूतियों की ओर संकेत भी कर सकें। गांधीजी महा-पुरुष हैं– अुनमें अवतार की खूबियां हैं, अिस कारण अुनके जीवन का रहस्य हमारे लिअे और भी ' रहस्य ' बन जाता है। पर, यहाँ अुसकी यत्किञ्चित् छाया छू कर ही हम अपनी शान्ति की चाहना करेंगे।

हमारे कलाकार के स्थूल और सूक्ष्म दोनों जीवन आदर्श अध्यात्मवाद में केन्द्री-भूत हैं। " जो तू सींचे मूल को, फूलै फलै अघाय "— अिसी परिपाटी पर कलाकार ने जीवन को अेक ' वृत्त ' बनाया है, जिसकी परिधि विशाल है। पर, अध्यात्मवाद के केन्द्र पर ही अिस परिधि का अस्तित्व निर्भर है। यदि वृत्त का केन्द्र ठीक रहा, तब तो व्यास, त्रिज्या, चाप और समूची वृत्त–परिधि ठीक है। पर यदि केन्द्र–बिन्दु विचलित हुआ, तब तो सब कुछ चौपट ! फिर, वृत्त की गोलाअी टिक ही कैसे सकती है ? अध्यात्मवाद पर जीवन की निर्भरता

का यह गणित-प्रमाण सचमुच गांधीवाद की विलक्षण यथार्थता का ही परिचायक है।

गांधीजी का जीवन अिसी आदर्शपथ पर सतत अग्रसर है। चाहे जो भी कार्य हो,—धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक सार्वजनिक या वैयक्तिक—सब का मूल-कारण अुनका आध्यात्मिक अभ्यन्तर ही है। अिसीसे वे जबतब यह कहा करते हैं कि मेरे सभी कार्य अेक दूसरे से सम्बद्ध हैं, जिनका अेक ही धार्मिक श्रेय है। अुनके हृदय में अेक अीश्वरीय प्रेरणा है, जो अन्तरात्मा को अुकसाती रहती है। और, जीवन को अपनी नवीन आदर्श-कला में ढालनेवाले हमारे सहृदय कलाकार को अन्तरात्मा की अुपेक्षा करना असम्भव हो जाता है। अन्तरात्मा की पुकार के आगे सर्वस्व होम कर डालने की अुत्कट प्रवृत्ति अुनकी सदा से चली आअी है।

हम साधारण व्यक्ति, कोअी भी सार्वजनिक या वैयक्तिक कार्य आरम्भ करते हैं, तो अुसके फल को ही साध्यरूप में रख कर, अुस स्थूल-कार्य को मुख्य कर्तव्य मान कर, आरम्भ करते हैं। पर गांधीजी की कर्तव्य-दृष्टि का आधार यह नहीं है। वे जो कुछ भी करते हैं, आध्यात्मिक प्रेरणा से करते हैं। अुनके सारे कार्यों का साध्य कर्मफल नहीं, वरन् आत्म-दर्शन है, आध्यात्मिक विकास है। यही कारण है कि अुनका जीवन पावन—तपोमय—हो गया है। कर्मफल को साध्य माननेवाले अुलझे प्राणी ही द्वन्द्व-भावों में आबद्ध होते हैं; पर जिसका सारा कार्य यों ही भक्ति की प्रेरणा से होता हो, अुसमें शीतोष्ण का भेदभाव ही कैसा? यही अेक रहस्य है, जिससे महात्माजी को कठोर-से-कठोर अुपवासों और अनुष्ठानों में भी न थकावट आती है और न कुछ अुदासीनता ही आ पाती है। बल्कि, अिसके विपरीत अुस अुपवास और अनुष्ठान में ही वे अधिक प्रसन्न दिखते हैं! दुःख अुनके लिअे दुःख नहीं है, गरीबी ग़रीबी नहीं है। हो भी, तो वे कहते हैं—ग़रीब होना ही धन्य है! और संसार में सबसे धनी और सुखी आदमी मैं हूं, क्योंकि मेरे पास पैसा नहीं है! अिसी तरह, दुःख की परिभाषा में वे भक्त सुधन्वा की याद दिलाते हुअे कहते हैं—"सुख-दुःख तो मन का विकार है। दुःख देनेवाले के लिअे ही दुःख दुःख है; सहनेवाले के लिअे वह कोअी जरूरी नहीं कि वह दुःख ही हो। सुधन्वा को खौलते तेल की कढ़ाअी में डाल देनेवालों के लिअे ही वह पीड़ा थी। अुस पीड़ा की कल्पना कर वे स्वयं पीड़ित हो रहे थे; वे समझते थे, हमने अधिक से अधिक कठोर दण्ड दिया है। पर, क्या सुधन्वा के लिअे भी वह पीड़ा थी, दुःख था? नहीं अुसे तो अपनी भक्त की यथार्थ दृढ़ता दिखलाने का यह स्वर्ण-सुयोग मिल गया था!" आह! अत्याचार, अत्याचारी और अत्याचार-पीड़ित का यह कैसा मार्मिक विवेचन है!

हमारे राजनैतिक अनुष्ठान में गांधीजी ने भाग लिया; पर अिस भाव से नहीं कि भारतीय स्वतन्त्रता साध्य-रूप हो, वरन अिसलिअे कि आध्यात्मिक प्रेरणा की अुपेक्षा न हो। यही आध्यात्मिक भाव अुनके लिअे साध्य था और राजनैतिक अनुष्ठान अेक साधन-मात्र। स्वतन्त्रता प्रिय वस्तु अवश्य है; पर, तभी, जब वह आध्यात्मिक आधार पर हो।

नहीं तो, प्रमाणतः वे स्पष्ट घोषणा कर देते हैं—

"अध्यात्म की अपेक्षा से—केवल हिंसा से—ही यदि स्वराज्य मिलना निश्चित हो, तो मैं अपनी सारी शक्ति से, भरसक प्रयत्न करूंगा कि भारत परतन्त्र ही रहे !"

कैसा कठोर संकल्प है ! 'भारत परतन्त्र रहे !'— साधारण व्यक्तियों के लिये किसी भी शर्त पर यह दुःखप्रद बात है, क्योंकि स्वतन्त्रता ही अुनका साध्य है और साध्य के आगे साधन पर अुनका ध्यान नहीं है। पर, हमारे कलाकार को तो कर्म की श्रेष्ठता का ध्यान है, कर्मफल की श्रेष्ठता का नहीं। साधन अुत्तम हो, फिर तो साध्य अुत्तम होगा ही—' अच्छे काम का परिणाम बुरा कभी नहीं हो सकता !'—आत्मविश्वास है। केवल अहिंसा से ही प्राप्त स्वतन्त्रता हमारे लिये अभीष्ट है।

सत्य, अहिंसा, प्रेम और त्याग—गांधीवाद के ये ही प्रमुख सिद्धान्त-अंग हैं। कलाकार गांधी ने अिन सिद्धान्तों की जो व्याख्या की है, वह आदर्शरूप है।

सत्य के लिये गांधीवाद की साधना यों है:— "सत्य के सिवा दूसरा कुछ कार्य नहीं। हां, सत्य के शोधक को अेक रजःकण से भी नीचे रहना पडता है। सारी दुनिया रजःकण को पैरोंतले रौंदती है, पर सत्य का पुजारी तो जबतक अितना छोटा नहीं बन जाता कि अेक रजःकण भी अुसे कुचल सके, तबतक स्वतंत्र सत्य की झलक भी होना दुर्लभ है ! "—कैसी बारीक व्याख्या है !

अहिंसा के लिये—" अहिंसा परम धर्म है। अितनाही नहीं, वह अनिवार्य है। आदर्श-जीवन के अस्तित्व की शर्त ही अहिंसा है !"

प्रेम—गांधीवाद का आधार विश्वप्रेम है, विश्व-बंधुत्व है। अिस प्रेम में "आत्मवत् सर्व भूतेषु" का निरूपण है। अिस प्रेम-प्राप्ति का सब को समान अधिकार है; अूंचनीच का अिसमें भेद नहीं।— "जाति पाँति पूछे ना कोअी, हरि को भजै सो हरि का होअी"—यही नियम है।

" ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् "

अिसी आधार पर केवल साधना की अुत्कृष्टता पर ही अधिक जोर है। बाह्य भेद का गांधीवाद में स्थान नहीं।

गांधीवाद अनासक्तियोग का प्रयोग है। भगवान् कृष्ण का यह सन्देश अुसके प्रेम-योग में अमर है—

" मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य
येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा—
—स्तेऽपि यांति परांगतिम् ॥ "

अिसी आधार पर गांधीवाद ने बाह्य भेद का सर्वथा परित्याग कर दिया है। लोकवाद में वह अुतरता तो जरूर है, पर अुसी तरह, जिस तरह स्वप्न में मनुष्य हाथ-पैर चलाता है। मन आत्मा में लीन है, वचन आदर्श सिद्धान्तों में लीन है और कर्म लोक-कल्याण में लीन है। फिर, बाहरी भेदभाव कैसा ?

प्रेम किसी की अुपेक्षा नहीं कर सकता। यही नहीं, पापियों को भी गांधीवाद के प्रेम का समान ही अधिकार है। तभी तो प्रेम ' पतित-पावन ' है !

' पाप से घृणा करो परंतु पापी से प्रेम करो '—समानता यहाँ तक आ पहुँचती है ! गांधीजी कहते हैं:—

"मेरा विरोध पापियों से नहीं, अुनके पाप से है; अत्याचारियों से नहीं, अुनके अत्याचार से है! "

गांधीजी अहिंसा की अुपेक्षा सह ही नहीं सकते। वे तो 'हृदय-परिवर्तन' के ही आधार पर अत्याचार का नाश करेंगे—हिंसा से नहीं! रावण को मार कर बिभीषण को राज देने के बदले वे रावण को ही बिभीषण बना कर फिर अुसे ही राज सौंप देंगे! कैसा आदर्श सिद्धान्त है!

त्याग को, बिराग-समन्वित हो जाने पर ही गांधीवाद अुत्कृष्टता का पद देता है। 'त्याग न टिकेरे वैराग बिना!'—का स्वरूप ही सच्चे त्याग का मन्त्र है। अिस त्याग में आत्म-समर्पण की अुच्चतम भावना है। "बाह्याडम्बर का बिलकुल परित्याग कर दो। नश्वर शरीर का शृंगार न करो, अमर आत्मा को सजाओ। महापुरुष किसीकी पोशाक को नहीं देखते, वे तो अुसके हृदय को देखते हैं। जहाँ तक हो, सांसारिक आवश्यकताओं को कम करो। जो जितना ही त्याग करेगा, आत्म-दर्शन भी अुसे अुतना ही शीघ्र होगा।" गांधीवाद में त्याग भी अिसी रूप में है।

जिस तरह गांधीवाद कर्म को प्रधानता देता है, कर्मफल को नहीं; कर्म की श्रेष्ठता चाहता है, कर्मफल की नहीं; अुसी तरह वह डरता भी है पाप से, पाप के परिणाम से नहीं। कलाकार कहता है—"मैं पाप के परिणाम से मुक्ति नहीं चाहता। मैं तो पाप-प्रवृत्ति से, पाप-कर्म से मुक्ति चाहता हूँ। जबतक वह न मिलेगी, मेरी अशान्ति मुझे प्रिय लगेगी।"

अिस प्रकार गांधीवाद में जीवन-कला का जहाँ आदर्श-निरूपण है, वहाँ अुसका प्रयोग भी अुसी ढंग से है। अपने सिद्धान्त-अंगों में अुसने अिस कला को चरम-सीमा तक पहुँचा दिया है, और—

"प्रेम के लिअे प्रेम और कर्तव्य के लिअे कर्तव्य" का श्रेष्ठ अनुष्ठान किया है। यही कारण है कि गांधीवाद पर आज सारा संसार मन्त्र-मुग्ध है, और भविष्य में यह मुग्धता और बढ़ती ही जायगी।

गांधीजी अजय्य हैं

अैसे आदमी के साथ सावधानी से पेश आओ, जिसे न तो सांसारिक वासनाओं की रत्ती भर भी परवाह है, न आराम या प्रशंसा या बड़प्पन की; बल्कि जो अुस काम को करने का निश्चय कर लेता है जिसे वह ठीक समझता है। अैसा आदमी भयंकर और बिकट शत्रु है। क्योंकि अुसके शरीर पर तो तुम आसानी से विजय प्राप्त कर सकते हो, परन्तु अिससे अुसकी आत्मा पर तुम्हारा ज़रा भी कब्जा नहीं हो सकता।

—गिलबर्ट मरे

राष्ट्रभाषाआन्दोलन की भूमिका

[दादा धर्माधिकारी]

राष्ट्र-भाषा का स्वरूप आज विद्वानों के विवाद का विषय हो रहा है। अैसी स्थिति में प्रस्तुत लेखक का अुसके विषय में कुछ कहना अनधिकार चेष्टा के समान है। फिर भी वह अिस आशा से अपने ख्याल पेश करने की हिम्मत करता है कि विद्वान अुनपर गौर फर्मायेंगे।

संस्कृत के अनेक नाम प्रचलित हैं, यथा—गीर्वाण भाषा, देववाणी, अमरभारती आदि। अुसी तरह हमारी राष्ट्रभाषा को हम लोकवाणी, भारतभारती, सबकी बोली, हिन्दी या कौमी जबान, आदि कह सकते हैं। संस्कृत तो देवों की भाषा है। आज वह समाज में बोली या लिखी नहीं जाती। अैतरेयोपनिषद में देवों का वर्णन 'परोक्ष-प्रिया अिव हि देवाः'—देव परोक्ष-प्रिय हैं—वे सूचक भाषा पसन्द करते हैं—अिन शब्दों में किया गया है। देवों की भाषा कुछ क्लिष्ट या अप्रत्यक्ष भले ही हो, परन्तु जनता की भाषा तो प्रांजल, सुबोध और स्पष्ट होते हुअे भी परिष्कृत, शिष्ट और सुन्दर भी होनी चाहिअे। वह अैसी न हो कि जिसे केवल किसी अेक ही प्रान्त के, धर्मविशेष के, सम्प्रदाय के या श्रेणी के ही लोग समझ सकें। दूसरे अुसके मादमाधुर्य, पदलालित्य, या रचनासौष्ठव का मजा न चख सकें और अुसे केवल अवाक् होकर सुनते रहे। राष्ट्रभाषा जाति-धर्म-वर्ग-निरपेक्ष सभी भारतवासियों की आन्तर-प्रान्तीय व्यवहार की भाषा होगी।

सवाल यह अुठता है कि "आज कम से कम अंग्रेजी पढेलिखों की तो आन्तर-प्रान्तीय व्यवहार की भाषा अंग्रेजी है ही। फिर अुसी को राष्ट्रभाषा बनाने में क्या हर्ज है? सिर्फ राष्ट्रवाद की सकरी भावना के कारण? अिस तरह का राष्ट्रवाद तो आज दुनिया से भाअीचारा और मनुष्यता की जडें खोद ही रहा है। भारत में अुसे लाने से क्या फायदा"?

यह सवाल अुतना बालिश और छिछला नहीं है जितना कि कुछ राष्ट्रवादी और देशाभिमानी समझते हैं। भाषा मनुष्य को पशु से भिन्न करनेवाला अुसका असाधारण धर्म समझा गया है। मनुष्य मनुष्य को अेक दूसरे के निकट लाने का यह साधन अगर अुनमें भेदभाव और झगडे पैदा करने लगे तो मानवता की कुशल नहीं। अिसलिअे अंग्रेजी अगर दूसरी सब दृष्टियों से अुपयुक्त और सुगम हो तो सिर्फ राष्ट्रीयता की दलील पेश कर अुसे नामंजूर करना ठीक नहीं होगा। अतः अिस प्रश्न का कुछ गहराअी से विचार करना चाहिअे।

यह मानी हुअी बात है कि भाषा का संबंध प्रदेश से है। लेकिन अिसमें केवल भौगोलिक सीमाओं से ही मतलब नहीं है; बल्कि अुस भौगोलिक मर्यादा में रहनेवाले लोगों से और अुनकी विशिष्ट प्रकृति से। भाषा का संबंध भाव और संस्कृति से भी है। हमें मानवमात्र में बन्धुत्व और अविरोध सिद्ध करना है। मानवमात्र की समानता या अेकता का अर्थ समानरूपता या अेकरूपता नहीं है। अंग्रेजी में जिसे 'यूनिटी' (अेकता) कहते हैं वह हमारा अभीष्ट है, लेकिन जिसे

'यूनिफॉर्मिटी' (अेकरूपता) कहते हैं वह तो सामाजिक जीवन को नष्ट कर देगी। विविधता जीवन का लक्षण है, अेकरूपता मृत्यु का। अेकता विविधता के प्रतिकूल नहीं है। विविधता में अभेद स्थापित करने के कौशल को ही समन्वय कहते हैं। हर अेक राष्ट्र की विशेषता की रक्षा करना मानवी सभ्यता की समृद्धि के लिअे आवश्यक है। अिसी विशेषता को हम अुसकी आत्मा या संस्कृति कह सकते हैं। गुलाम राष्ट्र अपनी आत्मा को भूल जाता है। फिर वह अुसे सारे विश्व में खोजता फिरता है। 'गोद में लड़का होते' हुअे भी वह नहीं देख पाता। अिस संस्कृति, या, राष्ट्रीय आत्मा से अुसकी भाषा का संबंध अभेद्य है। अंग्रेजी के लिअे जो अेतराज़ है अुसकी जड़ में भी यही विचार है।

संस्कृत में जो अनेक लौकिक न्याय हैं, अुनमें से 'दशमन्याय' भी बड़ा मार्मिक है। नदी पार करने निकले हुअे दस बुद्धिमान अुस पार पहुँचते ही अपनी संख्या गिनने लगे और हर अेक अपने आपको छोड़ कर दूसरों की गिनती करने लगा। अति बुद्धिमान् मनुष्य का यह लक्षण है कि वह अपने आप को हमेशा भूल जाता है! दसों ने दस बार गिनती की मगर नौ ही जन निकले। तब तो वे अेक को डूबा हुआ समझ कर फूट फूट कर विलाप करने लगे। अेक बटोही ने अुनकी हालत पर तरस खा कर अुन्हें अुनके 'दशम' का पता लगा दिया। अपने आपको पा कर हर अेक बासों अुछलने लगा। आत्मप्राप्ति के अुस अमित आनन्द का वर्णन कौन कर सकता है? भारतवर्ष अभी अुस आनन्द का अनुभव नहीं कर सका है। अभी तो अुसकी अपनी आत्म-गवेषणा का श्रीगणेश ही हुआ है। आत्म-विस्मरण गुलामी का अेक प्रमुख लक्षण है। अिस दृष्टि से स्वतंत्रता का आन्दोलन अपनी गुमी हुअी आत्मा की खोज ही है और राष्ट्र-निर्माण का प्रयास है अेक तरह का आत्मान्वेषण।

भारतीय राष्ट्रधर्म अेक सर्वव्यापी दर्शन है। अुसके सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, कलात्मक और साहित्यिक अैसे अनेक पहलू हैं। ये पहलू विशिष्ट भले ही हों लेकिन अेक दूसरे से असम्बद्ध या व्यवच्छेदक नहीं है। कबूतरखाने या हवाबन्द कमरे नहीं हैं। भारत की आत्मगवेषणा के प्रयास का अितिहास स्फूर्तिदायक और मनोरंजक है। लेकिन अुसका वर्णन यहां अप्रस्तुत होगा। राष्ट्र जिस सर्वतोमुखी क्रान्ति की ओर अग्रसर हो रहा है अुसमें राष्ट्रभाषा का क्या हिस्सा होगा, अितना ही विचार यहां किया जा सकता है।

राष्ट्र की संस्कृति और भावनाओं को यदि अुसका सूक्ष्म या अव्यक्त शरीर कहा जाय तो अुसके साहित्य, भाषा और कला को व्यक्त स्वरूप कहना चाहिअे। भारतीय राष्ट्रधर्म का विकास सांस्कृतिक संघर्ष से सांस्कृतिक समन्वय की ओर हो रहा है। अनेक प्रान्त, अनेक वर्ण, अनेक पंथ, अनेक भाषा और अनेक धर्मों के अिस विशाल देश में समन्वय का नियम ही विकास का पोषक हो सकता है। प्रान्तवाद, भाषावाद, जातिवाद, और धर्मवाद, राष्ट्र के शरीर को शतधा विदीर्ण कर रहे हैं। अेकराष्ट्रीयता की भावना का विकास करने की अुन्हें क्या पर्वाह? वे तो अुसके मांसशोणित के लालायित गीध हैं। सवाल यह है कि क्या हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियां भी अिसी गृध्रवृत्ति का अनुसरण करेंगी?

क्या राष्ट्रभाषा का आन्दोलन भी अिसी वृत्ति को बढाने में अपने आपको कृतार्थ मानेगा ?

राष्ट्रीय जीवन के विकास में प्रान्तवाद से प्रान्तसमन्वय, जातिवाद से जातिसमन्वय, धर्मवाद से धर्मसमन्वय और भाषावाद से भाषा-समन्वय की ओर कदम बढाना है। अिस अभागे राष्ट्र में—सहस्त्रधा विभक्त राष्ट्र में—सांस्कृतिक और भावसमन्वय के द्वारा अेकराष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण साधन बनने का गौरवान्वित स्थान राष्ट्रभाषा का है। वह राष्ट्रीय आत्मा के श्रवण और कीर्तन के द्वारा अुसका दर्शन करायेगी। यह तो मानना ही होगा कि हमें अिस देश की विशिष्ट संस्कृति और यहां की दूसरी संस्कृतियों की विशेषताओं की रक्षा करनी चाहिये। हमारा अुद्देश संस्कृतिसंकर (फ्यूझन ऑव्ह कल्चर्स) नहीं है, बल्कि संस्कृतियों का सामंजस्य (सिन्थेसिस ऑव्ह कल्चर्स) है। हम सारी संस्कृतियों को कुचल कर अुनका कचूमर नहीं बनाना चाहते। बल्कि अुनका अेक सुन्दर सुमनगुच्छ बनाना चाहते हैं। अिस गुलदस्ते का हर अेक फूल अपने विशेष रूप, रंग और परिमल से राष्ट्र का बाग सुशोभित और सुरभित करेगा। परंतु सब के सब फूल होंगे अेक ही सूत्र में बन्धे हुअे। भिन्न होते हुअे भी अविरोधी! भेद में अभेद प्रस्थापित करने की अिस अनुपम कला का नाम ही समन्वय है। भारतीय राष्ट्रधर्म का यह असाधारण लक्षण है। अुसकी संस्कृति की यही विशेषता है।

अिसमें सन्देह नहीं कि हमारी भाषा, हमारी संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का अुपकरण होना चाहिअे। अिस दृष्टि से संस्कृतिनिष्ठा और भाषानिष्ठा सराहनीय है। लेकिन निष्ठा और अभिमान अेक ही गुण नहीं है। निष्ठा समन्वयसाधक है; अभिमान भेदवर्धक है। हमारी राष्ट्रभाषा, हमारी आत्ममर्यादा का, स्वधर्म और संस्कृति-निष्ठा का, अुत्कर्ष करेगी और साथ ही साथ हमें सांस्कृतिक समन्वय के ध्येय को प्राप्त कराने में सहायक होगी। तभी तो वह राष्ट्रभाषा होगी। अुसका क्षेत्र राष्ट्रव्यापी होगा; अुसका महत्त्व भी राष्ट्रव्यापी होगा। वह प्रान्तीय और साम्प्रदायिक भेदों से परे होगी। राष्ट्र की विकसित आत्मा का अविष्करण करने का अधिकार अुसीका होगा। परन्तु वह प्रान्तीय भाषाओं के क्षेत्र पर आक्रमण नहीं करेगी। वह मातृभाषा को स्थानभ्रष्ट करने का पाप कदापि नहीं करेगी। प्रान्तीय भाषाओं को अेक ही राष्ट्रीय गुलदस्ते में ग्रथित करने के लिअे वह सूत्र का काम देगी। भाषासमन्वय सिद्ध करने का महान् राष्ट्रकार्य राष्ट्रभाषा ही तो करेगी।

लोकवाणी अथवा राष्ट्रभाषा के स्वरूप के विषय में श्री काकासाहब और अन्य विद्वानों ने काफी लिखा है। कोअी कट्टरपंथी अुसे साम्प्रदायिक दृष्टि से शुद्ध रखने की चिन्ता में मग्न हैं। कोअी अधीर सुधारवादी अेक बेडौल और बदसूरत खिचडी भाषा बनाने में मग्न हैं। और कोअी कोअी तो यह समझते हैं कि राष्ट्रभाषा 'सबकी बोली' होने से वह किसीकी भी बोली नहीं है; अतः अुसे बिगाड़ने का सभी को हक है। ये सब प्रयास अशास्त्रीय और दोषपूर्ण हैं। श्री काकासाहब जैसे व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि वाले संस्कृतिनिष्ठ भाषाभक्त ही अुचित दिशा में पथप्रदर्शन करेंगे। हम राष्ट्रभाषा प्रचार के आन्दोलन को राजनीति से अलिप्त भले ही रखें, लेकिन राष्ट्रनीति से अस्पृष्ट

हरगिज नहीं रख सकते। यदि हम वैसा करेंगे तो वह राष्ट्रभाषा नहीं होगी बरन् प्रादेशिक या साम्प्रदायिक भाषा होगी। राष्ट्रभाषा का स्वरूप कृत्रिम नहीं हो सकता। जैसे जैसे राष्ट्रीय आत्मा का संस्कृतिक सामंजस्य की दिशा में विकास होगा वैसे वैसे राष्ट्रभाषा के स्वरूप में भी विकास और परिवर्तन होता जायेगा।

यहां राष्ट्र भाषा या लोकवाणी के स्वरूप के विचार से मतलब नहीं है। वह तो राष्ट्रहितैषी विद्वानों का क्षेत्र है। लेकिन अुसके पीछे जो भूमिका और वृत्ति होनी चाहिये अुसीका कुछ दिग्दर्शन करने का अभिप्राय था। हमारे राष्ट्रधर्म की अद्यतन प्रवृत्ति से जो समरस होगी, राष्ट्रमन्दिर के निर्माण में सहायक होगी, अुसी लोकवाणी को बृहत्तर, सुन्दरतर और दिव्यतर भारत के शुभागमन का स्वागत करने का अधिकार होगा। अुसीके पुण्य-प्रताप से स्वतंत्र और संयुक्त भारत की आगामी पीढियां शतगुणित प्रेम, परिवर्धित आत्मप्रत्यय और क्षम्य अभिमान से गावेंगी 'दुर्लभं भारते जन्म'।

चर्खाप्रशस्ति

(दिलखुश व. दिवाणजी)

भारतवर्ष की विशाल प्रजा की बढती हुअी ग़रीबी अिस युग का सबसे अधिक महत्त्व का सवाल है। फ़ाकेकशी में फँसी हुअी जनता की संख्या करोडों तक जा पहुँची है। अिस ग़रीबी के हृदयद्रावक वर्णन स्व० दादाभाअी, दत्त और डिग्बी की किताबों में भरे पडे हैं। लेकिन अिस ग़रीबी के सच्चे दर्शन तो हमें हिन्दुस्तान के देहातों में ही हो सकते हैं। सन् १९२२ में गांधीजी ने अदालत के सामने बयान देते हुअे कहा था कि 'अिस ग़रीबी का प्रत्यक्ष प्रमाण तो आज भारत के गाँव अपने चलते-फिरते हाडपिंजरों द्वारा आप दे रहे हैं।'

ज़रासी भी हमदर्दी जिसमें अिन भूखों मरनेवालों के लिअे है, वह अिस करुण दर्शन से अवश्य तिलमिला अुठता है। अुस में ग़रीबों के लिअे दयाभाव का संचार हो जाता है। हमदर्दी, सहानुभूति, की यही कोमल, करुणामय और कल्याणप्रद भावना खादी में है। यह सक्रिय सहानुभूति बडे बडे शहरों के विलासी पुस्तकालयों या वाचनालयों के अलमारों में बंद रिपोर्टों के—विवरणों के—आँकडों से अुत्पन्न, अकर्मण्य और केवल बुद्धिगम्य सहानुभूति नहीं है। यह तो वह सहानुभूति है जो बेचारे भूखों मरते हुअे ग़रीब किसान की टूटी-फूटी झोंपडी में पडी हुअी खाली हंडी के दर्शन से अुत्पन्न होती है। हृदय को पिघला देनेवाली करुणा में से ही खादी की भावना का जन्म हुआ है। अिस करुणा से ही ग़रीबों के प्रति समता की वृत्ति पैदा होती है। खादी की भावना अिसीका परिणाम है। अिस क्रियाशील करुणा ने ही चर्खे का आविष्कार किया है।

गान्धीजी को किसानों की सच्ची अुन्नति के दर्शन सूत के धागे में हुअे। अिससे पहले अुनकी तरक्की के लिअे कअी तजवीजें,—योजनायें—सोची गयीं और काग़ज पर अुतारी

गयीं। लंबे अर्से तक अुनपर विचार हुआ और अब भी हो रहा है। कृषि-सुधार और अुद्योग-धंधों के विकास के कअी कार्यक्रम बडे बडे अर्थशास्त्री पेश कर रहे हैं। खादी में समायी हुअी अिस भावना और विचारधारा ने अिन तमाम योजनाओं—तदबीरों—का निकम्मापन साबित कर दिया है और अुनकी निरर्थकता को ठीक ठीक समझ लिया है। किसानों को भूखों मारनेवाली गरीबी के पीछे बेकारी, आलस्य और निकम्मापन, अिन तीनों की त्रिविध अुपाधि लगी हुअी है। अिस त्रिविध ताप से यदि किसानों को न अुबारा गया तो अुनकी गरीबी का सच्चे अर्थ में मिटना असंभव हो जायगा। अिस सत्य का दर्शन खादी की भावना में होता है। चर्खे की प्रवृत्ति में प्रचलित दान-धर्म की निकम्मी और आलसी क्षुद्रता नहीं है। जिस देश में गरीबी और फ़ाकेकशी अत्यल्प और आकस्मिक नहीं बल्कि रोजमर्रा की और कभी पीछा न छोड़नेवाली व्याधि हो गयी हो, वहाँ भूखों मरनेवालों को अन्नदान करने की दानवृत्ति की बडी से बडी विराट योजना भी हार जाती है। अिस प्रवृत्ति से किसानों की क्षुधा कभी शांत न होगी। दान-धर्म की अिस प्रवृत्ति से तो बेकारी, और काहिली को ही बल मिलेगा। हमारे देश के सरकारी शिक्षाप्राप्त विद्वान अर्थशास्त्री पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के थोथे पोथों के पन्ने अुलट-पलट कर यांत्रिक अुद्योग-धंधों की विराट प्रवृत्तियों की योजनाअें जनता के आगे रखते हैं। वे अैसा समझ बैठे हैं मानों अिसी में से गरीबी का अिलाज निकल आयगा। किन्तु देहाती प्रजा की स्थिति का जिनको प्रत्यक्ष अनुभव है, आज की गरीबी के सच्चे कारणों का जिन्होंने ग्रामीण दृष्टि से ही निरंतर चिंतन किया है और जो हमारी संस्कृति के सच्चे और चिरस्थायी तत्त्वों को ठीक ठीक जानते हैं, वे मशीनों के बल पर चलनेवाले कलकारखानों के अुद्योग-धंधों की प्रवृत्ति की निरर्थकता समझ गये हैं। आनंद के. कुमारस्वामी और राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी सुन्दर पुस्तकों में अिस वस्तुस्थिति को साफ़ साफ़ ज़ाहिर कर दिया है। अनुभव से भी तो यही दीख पड़ रहा है कि ये कल-कारखाने प्रजा की गरीबी और बेकारी दूर करने के बदले अुलटा अुसे बढ़ा रहे हैं; या वे अुसे दूर करने के सच्चे मार्ग में काँटे बिछाते हैं। चर्खे की प्रवृत्ति ने पश्चिम के अर्थशास्त्र की पोल खोल दी है। हमने यह जान लिया है कि पश्चिम का वह अर्थशास्त्र भारतीय संस्कृति के कितना प्रतिकूल है। गांधीजी ने कहा था, "जब अँगरेजों के पवित्र चरण यहाँ आये अुससे पहले भारत अपने लाखों झोंपडों में कातता, बुनता और खेती से मिलनेवाली अपनी थोडीसी आजीविका के दायरे में रह कर कमी को पूरा कर दिया करता था।" अैसे सुखी समृद्ध किसानों की बढ़ती हुअी गरीबी के हृदयविदारक प्रश्न की गहराअी तक पहुँच कर और भारत की किसान प्रजा के अिर्द-गिर्द लिपटे हुअे परम्परागत तथा वर्तमान संस्कारों को पहचान कर अुनको भूखों मारनेवाली गरीबी के कारणों की खोज अुन्हीं के झोपडों में पहुँच कर की गयी। और अंत में भारत की समूची परिस्थिति का बहुत बारीकी से और गौर के साथ विचार करके खादी की भावना ने अिन किसानों को श्रमफलित, अुद्यमशील, स्वावलंबी और

अुत्पादक शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में चर्खे का मंत्र अर्पण किया है। अिसीसे चर्खे की संस्कृति में स्वाश्रय का अुल्लास है। खेती के सहयोगी अुद्योग का परिश्रमी जीवन अुसमें है। वह जिन्दगी में खुराक के बाद बहुत अुपयोगी वस्त्रकला की अुत्पादक शक्ति है। करोडों भूखों मरते किसानों की सद्यः फलदायी और सच्ची कल्याणसाधक अपार शक्ति का दावा चर्खा ही कर सकता है। क्योंकि आर्यसंस्कृति के हजारों वर्षों के ज्वार-भाटे की ठंडी, सुखद छाया में जन्म ले कर बढे हुअे और पोषित भारतीय अर्थशास्त्र के चिरजीवी तत्त्वों के वह अनुकूल है; अनुभवों की असंख्य परम्पराओं में अुसने प्रतिष्ठा प्राप्त की है। और वह युग-बल के सच्चे प्रगतिशील तत्त्वों का विरोधी नहीं है।

चर्खे की प्रवृत्ति की विशेषता यही है कि अिसमें अर्थशास्त्र की व्यापारी वृत्ति नहीं के बराबर है। पग-पग पर अिसमें सेवाधर्म के शांत और परम तेजस्वी तत्त्व मिलते ही जाते हैं। पुस्तकों के अभ्यास से, योजनाओं के बडे बडे आँकडों से और बुद्धि को अुलझन में डालनेवाली जटिल दलीलों के दाव-पेचों से खादी की प्रवृत्ति दब नहीं सकती। अथवा अैसे निश्चेष्ट साधनों की सहायता से सरकार के द्वार पर भीख माँगने की क्षुद्र परोपजीवी वृत्ति में अुसका पर्यवसान नहीं होता। खादी की कल्याणकारी भावना तो करोडों किसानों के गरीब जीवन में प्रत्यक्ष रूप से समरस होने की गरज से शहर के विलासीवैभव और आज तक पोसे हुअे तमाम सुखभोगों को भगा देती है। चर्खे की प्रवृत्ति में सेवाधर्म का पुरुषार्थ है। अतः वह गरीबी का वस्त्र लेकर कंगाल किसानों की कुटियों में जा पहुँचती है और वहीं अपना काम शुरू कर देती है। चर्खे की भावना में विद्यमान सेवा-वृत्ति अितनी सात्विक है कि विज्ञापनबाजी और बाह्य आडंबरों से अुसे शर्म आती है। किसानों को न मिलनेवाली मामूली से भी मामूली सुविधाओं से वह घबडाती है। लगातार, अखंड, अुद्यमपरायण जीवन के मूक किन्तु सक्रिय बोधपाठों से ही किसानों का सच्चा कल्याण प्रत्यक्ष रीति से साधने के लिये वह हमेशा यत्न किया करती है। अैसी नित्यजाग्रत और जीवनस्पर्शी सेवा-शक्ति से मूर्तिमंत बनी हुअी खादी की भावना में सत्य की झांकी है। प्रेम धर्म का प्रकाश है। और शांत होते हुअे भी अुसमें उज्ज्वल तथा उत्कट देश-भक्ति का सच्चा पुरुषार्थ समाया हुआ है।

खादी की भावना के पीछे किसानों की केवल आर्थिक अुन्नति के प्रश्न का ही हल नहीं है। यह सिर्फ वस्त्रव्यवसाय की फिर से नये सिरे से रचना नहीं है। खोये हुअे खेती के सहयोगी अुद्योग की यह केवल पुनःप्राप्ति ही नहीं है। खादी की संस्कृति में ये सब चीजें तो है ही; किन्तु अिसकी कल्पना और साधना तो बहुत विशाल और सर्वव्यापी है। चर्खा तो बेकारी और आलस्य में पडे हुअे किसान के लिअे संजीवन कार्यक्रम माना है। जीवन के सूखे हुअे अनेक मार्गों को यह नवजीवन देता है। प्रतिवर्ष कर्ज के बढ़ते हुअे गहरे गड्ढे में गिरता हुआ, रातदिन मेहनत करके जोते हुअे अपने प्यारे खेत में पैदा होनेवाली साधारण फसल में से मुट्ठीभर अन्न के लिये तरसने वाला, विनाश

के किनारे पर निस्तेज और निरीह हो कर खड़ा हुआ किसान अपनी ज़मीन के रस को लुटता हुआ देख रहा है। अपार आपत्तियों और अुलझनों से घिरा हुआ यह गरीब किसान अकुलाता, खिन्नवदन, निश्चेष्ट, और निराश्रित हो बैठा है। 'क्या करूँ, कुछ सूझता नहीं' की असह्य मूक वेदना से अुसका हृदय भरा हुआ है। और "ओश्वर जो करे वही ठीक!" यही अुद्गार अुसका अेकमात्र आश्वासन हो गया है। अिस आशा के धागे के आधार के बिना तो वह बेचारा किसी लिअे जीता है कि अुसे मरने का भी आलस है। आलस्य से ही अुसकी अैसी हालत हुअी, अुसीमें वह जी रहा है, ज्यों त्यों करके अपने दिन बिता रहा है। अैसी नाअुम्मीदी की बहुत बुरी हालत में गांधीजी ने अिस दंडित, ताड़ित, तिरस्कृत, दुत्कारे और भूले-भटके किसान को याद किया। वे अुसकी मूक वेदना और मुसीबत को समझ सके। और बुद्ध भगवान को शोभनेवाली करुणा से अिनकी टूटीफूटी झोंपडी के पास दौडे हुअे गये। अिस जीर्ण-शीर्ण झोंपडी और अुसके टूटे हुअे ठाठ को देख कर गांधीजी का हृदय दुखित हो अुठा और किसान के जीवन को चूसनेवाले भयंकर और सर्व-नाशकारी मूल को अुन्होंने ढूंढ निकाला। किसान के हताश जीवन को फिर से दृढ़ और पुष्ट करनेवाले प्रचंड शक्तिशाली चर्खे को किसान की गोद में रख दिया और अुसके कष्टों का निवारण किया। गरीबी, बेकारी बेकसी, कर्ज, काहिली, अज्ञान और जड़ता के विनाशचक्रों में से अुद्धार पाने का मार्ग चर्खे ने किसान को बताया। अुसकी थोडीसी आय में चर्खे ने वृद्धि की। आलस्य में यों ही बैठे बैठे खराब जानेवाले समय का सदुपयोग करना सिखा दिया। शून्य में से रुपये और धूल में से धान्य पैदा करने का सच्चा अर्थशास्त्र अुसे समझा दिया। खोया हुआ प्रिय बालक वर्षों के वियोग के पश्चात प्राप्त होने पर माँ को जो अलौकिक आनन्द होता है, अैसा ही आनन्द आज किसान चर्खे द्वारा पा रहा है। जिन झोपडों में चर्खे का मधुर गुंजन फिर से सुनाअी पड़ा है, वहाँ के किसानों की आँखों में फिर से तेज की किरणें झलकने लगी हैं, अुनकी देह पर स्वास्थ्य की लाली फिर चढ़ने लगी है। आलस्य और बेकारी में गले पडे हुअे व्यसन अब नष्ट होने लगे हैं। अनीति की राह में चलनेवालों के जीवन की मलिनता धुलने लगी है। निष्पाप और मिनहती जीवन का आनन्द अिनकी झोंपड़ियों में फिर से दिखाअी देने लगा है। किसानों के अज्ञान का पर्दा दूर होने लगा है। वहमों—भ्रमों—की जड़ता घटने लगी है। चर्खे के तकुअे पर कते हुअे सूत के धागे में हताश किसान को नवजीवन प्रदान करने की अमोघ शक्ति छिपी हुअी है। अिसीमें चर्खे की संस्कृति की अुज्ज्वलता खिल अुठती है।

कौओे की नज़र से

१० मनुष्यों के झगड़े

संपादक भाअी,

हम पंखियों को आप लोगों के झगडों से क्या सरोकार है? फिर भी न जाने क्यों मुझे अिस समय आप लोगों में जो झगडे चल रहे हैं, अुनसे रंज होता है। सवाअी कहता है कि मैं जहां जरूरत न हो वहां भी रंज करता बैठता हूं, और जिन्हें सहानुभूति की पर्वाह न हो अुनके भी दुःखों से दुःखित होता हूं। सवाअी अितना सयाना है कि अुसके कहने पर मेरा विश्वास बैठ जाता है। फिर भी, मैं अुससे बारबार कॉंग्रेसी झगडों का कोअी अिलाज बताने के लिअे कहता रहता हूं। वह मुझे टालता रहता है। लेकिन, कल मैंने हठ किया कि जबतक मेरा समाधान नहीं करोगे, मैं न खाना खोजने जाअूंगा और न तुम्हें नींद लेने दूंगा, तब अुसने अपने विचार बतलाये। वह बोला—

भुशुंडि—जबतक आदमी अपने झगडों को पैदा करनेवाली परिस्थिति को नहीं समझ लेते, तबतक झगडे होते ही रहेंगे। अुन्हें न हिंसावाद टाल सकता है और न अहिंसावाद। पर अगर परिस्थिति का ज्ञान हो जाय, तो सब झगडे मिट सकते हैं।

वास्तव में झगडना मनुष्य का जातिस्वभाव ही है। किसी में वह कम परिमाण में होता है, किसी में ज्यादा। लेकिन अेक परिस्थिति अैसी होती है जिसमें बहुत झगड़ालू आदमी भी शान्तिवादी माना जाता है, या बन जाता है और जो कम झगड़ालू हो अुसकी गिनती लड़ाकों में होती है। अिसका सबसे बड़ा अुदाहरण स्वयं बापू का-ही है। बापू के जैसा झगडेखोर स्वभाव का आदमी लाखों या करोडों में अेकाध ही होना है। फिर भी, अुनकी गिनती शान्ति के पैगंबरों में और अहिंसा के निष्णातों में होती है। मैं अिसे दुनिया के बडे से बडे अजायबों में से अेक मानता हूं। सूरज, चांद और तारों से भी बढ़ कर अगर कोअी आश्चर्य है तो बापूजी की यह शान्तिवाद के लिअे ख्याति है! लेकिन, यह सब परिस्थिति का खेल है!

मैं—क्या बापू को तुम सच्चे शान्तिवादी नहीं समझते? अुन्हें झगड़ालू कह कर तुम अितने बडे महात्मा का कितना द्रोह करते हो?

सवाअी—हमारा अिस आश्रम से सम्बन्ध है। हमें अिसमें खाना मिल जाता है और यह बापू का बनाया हुआ है। सवर्णों की दृष्टि में कौआ और हरिजन अेक-से ही होते हैं। अिसलिअे मुझे भी हरिजनों से हमदर्दी है। और बापू की हरिजनों पर बडी कृपा है। मुझसे कभी अुनका झगड़ा ही नहीं हुआ। तब क्या अुनके लिअे मुझे कम आदर हो सकता है? फिर भी, सच तो सच ही है। अगर अेक परिस्थिति न होती तो बापू अहिंसावादी होते हुअे भी जगत् के अव्वल नंबर के टंटेबाजों में गिने जाते।

मैं—वह कौनसी परिस्थिति है?

सवाअी—बापू विवाहित हैं।

मैं—विवाहित? विवाहित और अविवाहितों का टंटे-बखेडों से क्या संबंध है?

सवाओ—बहुत बड़ा। मैं मनुष्यों की बात कह रहा हूं। दूसरे प्राणियों की नहीं। मैंने सारी दुनिया के छोटे-बड़े सार्वजनिक आदमियों की ओर अुनके झगड़ों की छान-बीन करके यह पता लगाया है कि जो आदमी बहुत टंटेबाज होते हुअे भी विवाहित होते हैं, वे झगड़ालुओं के साथ रहते हुअे भी शान्तिप्रिय बन जाते हैं, और कम झगड़ेखोर होते हुअे भी जो अविवाहित या विधुर या अुनके समान परिस्थिति में होते हैं, वे बखेड़िये बन जाते हैं, या कम से कम झगड़े में फँसे हुअे तो रहते ही हैं।

मैं—यह अेक बिलकुल नयी बात बता रहे हो। मुझे ठीक ठीक समझा देना होगा।

सवाओ—अगर तुम्हारा हठ ही है, तब तो मुझे समझाना ही होगा। लेकिन मैं तुम्हें आगाह कर देता हूं कि अगर तुमने अिसे 'सर्वोदय' में दिया और कहीं अुसके पाठक बुरा मान गये, तो तुम्हारी लेखमाला ही बन्द कर दी जायगी।

मैं—अिसकी चिन्ता सम्पादक करेंगे। कोओ ठीक बात नहीं होगी तो अुसे काट डालेंगे। मैं तो सचमुच अुल्लू हूं। अगर सम्पादक मेरा लिखा दुरुस्त करके न छापें तो लोग अुन्हींको अुल्लू मानेंगे।

सवाओ—ठीक, जो तुम्हारी मर्जी। काँग्रेस में आजकल जो झगड़े चल रहे हैं अुनपर नजर डालो। वल्लभभाओ, भूलाभाओ, राजेन्द्रबाबू वगैरा वर्किंग कमेटी के सदस्य सब अेक ही पक्ष में हैं। फिर भी राजेन्द्रबाबू, जयरामदास, जमनालाल, सरोजनी नायडू आदि से सुभाषबाबू अपनी लड़ाओ नहीं मानते। वर्किंग कमेटी के तो बड़े सलाहकार स्वयं बापू हैं, लेकिन, तो भी वे बापू को झगड़े का मूल नहीं मानते। मगर वल्लभभाओ, भूलाभाओ और प्रफुल्लबाबू पर ही झगड़ेबाजी का आरोप किया जाता है। और इन तीनों के ही पत्नियां नहीं हैं। बाओं ओर देखो तो रॉय और रंगा भी बांयेवाले हैं। जयप्रकाश नारायण भी हैं। लेकिन, सुभाष और नरीमन ही 'बांयेबाजी' के मुखिया बने हैं। काँग्रेस के अनुशासन में वे ही दोनों आ गये। अुन दोनों ने ब्याह नहीं किया है।

फिर, जवाहरलाल को देखो। दोनों पक्षों में समझौता कराने के लिअे वे कितनी मिहनत करते हैं। लेकिन फिर भी, अुनकी गिनती हमेशा लड़ाओप्रिय आदमियों में ही होगी। न गांधीवाले अुन्हें अपने पक्ष का समझते हैं, न सुभाषवाले। वे सच्चे दिल से लड़ाओ नहीं चाहते। लेकिन, कोओ भी सवाल हो, अुसपर जवाहरलाल क्या कहेंगे, नाराज होंगे या संतुष्ट, अिसकी सबको चिन्ता रहती है। अिसका कारण यह है कि वे विधुर हैं। पत्नीहीन पुरुष का यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि वह बगैर झगड़ा किये बहुत दिन चुप रह सकता है।

दूसरी ओर से देखें तो जिनके पत्नी है, वे झगड़ा करें तो भी बहुत दिन अुसे चला नहीं सकते। आखिर पीछे हट जाते हैं। अुदा० डॉ० खरे और गोळे। राजस्थान में हरिभाअू अुपाध्याय, रामनारायण चौधरी। ये सब पत्नीवाले हैं, तो झगड़े से आखिर हट जाते हैं। लेकिन, बाबा नरसिंहदास विधुर हैं, तो बराबर कमर कसे रहते हैं। अिन तुम्हारे सम्पादक दादा को ही देखो। झगड़ों से कोसों दूर भागते हैं। लेकिन, काका? यहां अपने सत्याग्रहा-

श्रम में रहते थे, तब दुनिया ने कभी नहीं सुना था कि अुनमें टंटेबाजी है। परंतु, जबसे विधुर हुअे तबसे बगैर झगडे का न कोअी स्थान रक्खा है, न कोअी दोस्त। और किशोरलाल तथा नरहरी का स्वभाव कुछ कम झगडे मोल लेने का नहीं है। लेकिन, दोनों के पत्नियां है अिसलिअे पीछे हट जाते है और सज्जन होने की ख्याति प्राप्त करते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि स्वयं बापू के आसपास रहनेवालों का बापू से किस तरह का संबंध है? महादेव वगैरह विवाहित लोग कभी बापू से लडाअी नहीं छेड़ते। थोडीसी चर्चा कर लेते हैं और बापू की बात मान लेते है। लेकिन, देखो, वह मीराबहन, प्यारेलाल, सुरेन्द्र, बलवन्तसिंह आदि जितने बिना पति या बिना पत्नीवाले हैं वे हमेशा बापू से टंटा मोल लेते रहते हैं।

और भी देखो। जिस कारण नरीमन का कॉंग्रेस में झगड़ा हुआ, अुसमें निमित्त तो थे खेर। लेकिन खेर विवाहित हैं। अिसलिअे नरीमन ने भी खेर को बुरा नहीं कहा। सरदार को ही कहा। दूसरी ओर मद्रास में राजाजी खेर के समान ही मीठा बोलते हैं और हंसते हैं। लेकिन वे विधुर हैं अिसलिअे अुनकी ख्याति झगडेबाजों में ही होती है। वे बोलने खडे होते हैं तो अुनके सारे प्रतिपक्षी अुनकी दलीलों से डरते है।

कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग में क्यों अितना झगड़ा है? यहां जब राजेन्द्रबाबू अध्यक्ष थे, तब अुन्होंने झगड़ा मिटाना चाहा। जिन्ना विधुर थे तब मिट तो कैसे सकता था? लेकिन वह बढ़ा नहीं। किन्तु बाद में जवाहरलाल अध्यक्ष हुअे, तब दोनों विधुर आ गये। दोनों का झगड़ा बढ़ गया। देहली की मजलिस में भूलाभाअी से भी अिसी कारण जिन्ना की नहीं बनती। सच में न मुस्लिम लीग को झगड़ा पसन्द है, न जिन्ना को। लेकिन, जबसे जिन्ना विधुर हो गये हैं, तबसे वे बिना झगडे रह नहीं सकते।

और भी अेक सबूत देता हूं। हाल ही में कॉंग्रेस समाजवादी पार्टी में फूट हो गयी है। फूट कर बाहर निकलनेवाले तीनों सदस्यों में से—मसानी, अच्युत पटवर्धन और अशोक महेता, किसीके भी पत्नी नहीं है। झगड़ा हुआ जयप्रकाश नारायण की नीति के कारण। फिर भी, वे तो त्रिपुरी के शान्ति-संस्थापकों में से अेक समझे जाते हैं और अुनके साथी संन्यासी सहजानन्द और भिक्षु राहुल झगडियों में गिने जाते हैं। भला, संन्यासी और भिक्षुओं का तो शान्ति का व्रत ही होता है, लेकिन साबित होता है कि पत्नी का अभाव ही झगड़ा करता है।

अिसका अेक जबरदस्त सबूत कर्नाटक में पाया जाता है। वहां गंगाधरराव, दिवाकर, कोजलगी, हर्डीकर, पुंडलिक, आदि सब पत्नीहीन हैं। तो देखो अिन सबकी ख्याति झगडेबाजों में है।

यहां गुजरात में ही देखो तो डॉ० चन्दुलाल, दिनकर महेता और मृदुला की ख्याति झगडेबाजों में होती है। और जीवनलाल दिवान, मोरारजी देसाअी आदि माने जाते हैं समझदार। वास्तव में सबके स्वभाव अेकसे हैं, पर पहले दो को स्त्रियां नहीं हैं और मृदुला तो अविवाहित है।

वर्धा का भी तो यही हाल है। चोत्रे, काले वगैरा सब शान्तिवादी हैं। पर,

विनोबा को, सिवा अुनके अंध शिष्यों, के कौन शान्तिवादी कहेगा ? कुमारप्पा को कौन झगडेबाज् न कहेगा ? मगर अुनके भाअी भारतन् और शिष्य झवेरभाअी कितने भले हैं ? विवाहित होने के कारण ही अुनकी यह भलाअी है । जाजूजी को भी देखिअे । अुनकी जबान तो बडी कठोर होती है, पर विवाहित होने से वे झगडे से हट जाते है । जमनालाल भी अिसी कारण सज्जन माने जाते हैं ।

फिर, महाराष्ट्र का हाल सुनो । शंकरराव देव, सेनापति बापट और दास्ताने ये तीनों पुराने दोस्त हैं । देव और दास्ताने अेक पक्ष में हैं । पर लोग देव ही को झगडे का सरदार कहेंगे, दास्ताने को कोअी न कहेगा । सेनापति बापट अेकता कितनी चाहते हैं । पर विधुर होने से झगडे से बच कर नहीं रह सकते । वह प्रेमाबहन भी झगडे से बाज नहीं आती । महाराष्ट्र में स्वराज्य पक्ष के कितने ही लोग हैं, पर झगडे का सारा भार अुठाना पडता है जमनादास महेता ही को, क्योंकि वे बीबीवाले नहीं है । फिर गोकुलभाअी के दुश्मन भी अुन्हें झगडाखोर नहीं कहेंगे । लेकिन स्वामी आनन्द के मित्र भी अुन्हें शान्तिप्रिय नहीं बता सकेंगे । अिसमें सिवा विवाह के और कोअी कारण नहीं है । क्योंकि अगर अहिंसा से मतलब प्रेम का हो, तो स्वामी आनन्द क्या गोकुलभाअी से कम प्रेम करते हैं ?

बंगाल में भी यही स्थिति है । जिस तरह सुभाष अेक बाजू से झगडे के मुखिया है, अुसी तरह दूसरी बाजू से प्रफुल्ल घोष मुखिया हैं । क्योंकि दोनों अविवाहित हैं । रवीन्द्रनाथ जैसे तत्त्वज्ञानी और कवि भी विधुरता के कारण हाल हाल में झगडेबाजी में फँस जाते हैं । और, देखो, महाराष्ट्र और बंगाल में ही सबसे ज्यादा झगडेबाजी क्यों चलती है ? क्योंकि अिन्हीं दो प्रान्तों में अधिकतर कार्यकर्ता अविवाहित होते हैं । बिहार के कार्यकर्ता अक्सर बचपन में ही विवाह कर लेते हैं । अिसलिअे वह प्रान्त कितना शान्तिप्रिय माना जाता है ? जबसे अुनमें अविवाहित कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ रही है, तभी से झगडों की संख्या भी बढ़ रही है ।

मैं—क्या यह नियम हिन्दुस्थान के लिअे ही है ?

सवाअी—नहीं जी ! सारी मानवजाति के लिअे है । अभी जो यह यूरोप में लडाअी छिडी है अुसी को देखो । लडाअी में शरीक हुअे सब राज्यों में अकेला हिटलर ही अविवाहित है । अिसीलिअे अुसीके द्वारा लडाअी छिडी है । अब अिस में दोनों ओर से हजारों और लाखों आदमियों का संहार किया जायगा । फिर भी, हिटलर तो माना जाता है युद्ध का शैतान तथा मनुष्यों का दुश्मन, और चेंबरलेन तथा हैलिफेक्स शान्ति के फरिश्ते और मनुष्यजाति के संरक्षक । जितनों को हिटलर मारेगा, वे सब युद्ध के निर्दोष बलि कहे जावेंगे, और जर्मनी के जितने मारे जायेंगे, वह सब संस्कृति की रक्षा के लिअे पापियों का संहार समझना होगा । भला, यह कैसा हो सकता है ? लेकिन, अविवाह और विवाह के कारण अितना फर्क हो जाता है ।

मैं—लेकिन तुम्हारे सिद्धान्त में मुझे अेक शंका हो रही है ।

सवाअी—वह क्या ?

मैं—कृपालानी भी तो विवाहित हैं। लेकिन वे तो झगडेबाज आदमी ही माने जाते हैं? मैंने सुना है कि आर्यनायकम् और सतीश बाबू का भी हाल अैसा ही कुछ है।

सवाअी—कृपालानी के बारे में तो दो कारण हैं। अुन्होंने अभी अभी विवाह कर लिया है, अिससे अुनकी पुरानी आदतें अभी बदल नहीं पायी हैं। लेकिन, दूसरा जबरदस्त कारण यह है कि अिन तीनों की स्त्रियां बंगाली हैं। मैंने यह शोध की है कि जिनकी स्त्रियां बंगाली होती हैं, वे अक्सर अिस नियमों में अपवाद रूप होते हैं।

मैं—क्या बंगाली स्त्रियां झगडों को प्रोत्साहन देनेवाली होती हैं?

सवाअी—बिलकुल नहीं। बात ठीक अुलटी है। वे अक्सर अितने नरम स्वभाव की होती हैं कि अपने पतियों की झगडाखोरी पर लगाम नहीं डाल सकतीं। अुनके अनुकूल रहती हैं। अिसीलिअे अुनके पतियों की झगडाखोरी कम नहीं होती।

मैं—लेकिन, बापू तो बचपन ही से विवाहित हैं, और बा तो बंगालिन नहीं है। फिर भी, बापू ने कैसे अितनी लड़ाअियां छेडीं और छेड़ते रहते हैं? अंग्रेज सरकार को अुन्होंने कम परेशान नहीं किया। और हिन्दू समाज को भी। मुझे मालूम होता है कि तुम्हारा सारा सिद्धांत बापू के अुदाहरण से गलत साबित होता है।

सवाअी—कभी नहीं हो सकता। मैंने बहुत सोच विचार करके यह नियम खोजा है। बापू की बात मैं पूरी तरह समझा दे सकता हूं।

मैं—मैं सुनना चाहता हूं।

सवाअी—बापू बडे चतुर हैं। अुन्होंने देखा कि जिनका घर में बहुत झगड़ा होता है, वे बाहर बहुत कम झगड़ा कर सकते हैं। अिसलिअे जब अुन्हें बाहर झगड़ा करना जरूरी मालूम होता है, तब वे घर के झगडे मिटाने में अपनी पूरी शक्ति लगाते हैं। और जबतक घर में झगड़ा चलता है, तबतक बाहर का अुठाते ही नहीं। अिसलिअे अुनकी गिनती झगड़ा मिटानेवालों में ही होती है। पर जब बाहर झगड़ा करने का प्रयोजन न हो, तब अुनका आश्रम में बराबर झगड़ा चलता रहता है। फिर बाहरी झगड़ा बराबर चलाने के लिअे, वे तुरन्त जेल में चले जाते हैं, जिससे घर के झगडे का मौका ही न पैदा हो। अुसे बाहर के लोग जानते नहीं। अिसीलिअे तो मैंने यह सिद्धान्त बनाया है कि जो विवाहित है अनकी ख्याति झगडेबाजों में नहीं हो सकती। और जिन्हें पत्नी नहीं है, अुन्हें शान्तिवाद के लिअे ख्याति नहीं मिल सकती। अिसमें जिनकी स्त्रियां बंगालिनें हैं, अुनका अपवाद हो सकता है।

मैं—तो अब क्या किया जाय? अिसका कुछ अुपाय भी है?

सवाअी—बहुत आसान है। मनुष्यों के झगडे कम करने हों, तो अुनमें अैसे विवाह होने चाहिअे कि जिससे पतिपत्नी में थोडी थोडी खचखच हमेशा चलती रहे। अगर बहुत जोरों का झगड़ा हो जाये तो शायद वे अेक दूसरे को छोड़ ही देंगे। अिसलिअे वह बहुत जोर का झगड़ा भी न होना चाहिअे। और किसी बगैर पत्नी या पति के व्यक्ति को किसी भी संस्था में सदस्य न होने देना चाहिअे।

मैं—यह कैसे हो सकता है?

सवाओ—यदि सब गृहमंत्रियों को यह बात जँच जाय तो वे अैसा कानून बना सकते हैं। और कम से कम कॉंग्रेसी लोगों को तो जमनालाल बजाज विवाह करने में सहायता दे सकते हैं। जिस तरह गांधी सेवा संघ के अधिवेशन में अेकाध विवाह अकसर हो जाता है, वैसे कॉंग्रेस के अधिवेशन में अेकाध हजार विवाह कराना आठ प्रान्तों पर हुकूमत चलानेवाली संस्था के लिअे मुश्किल न होना चाहिअे। जो विवाह करना न चाहे अुसे कॉंग्रेस का चार आना सदस्य तक न रखना चाहिअे।

मैं—लेकिन, नागरिकों की मूलभूत स्वतंत्रता पर अिससे प्रहार नहीं होता ?

सवाओ—नागरिकता को विवाहितों के लिअे ही रख छोड़ना काफी है। जिनका कोअी रोनेवाला नहीं है, अुनकी नागरिकता है ही किस काम की ?

सम्पादक भाअी, सवाअी ने अितने अुदाहरणों से अपना सिद्धान्त पेश किया है कि मुझे अिस बार तो शंका ही नहीं रही। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अुसके कहने पर ध्यान दें और जग की भलाअी के लिअे अुसका बताया हुआ कानून बनवा लें। किसी भी तरह आपके झगड़े मिट जायें तो मुझे बहुत खुशी होगी।

आपके
आश्रम का अुल्लू

संसार में सब से महत्त्वपूर्ण कार्य

समाजवाद, साम्यवाद, अराजकवाद, मुक्तिसेना, अपराधों की संख्या में वृद्धि, बेकारी, धनाढ्यों की बढ़ती हुअी मतवाली विलासिता और गरीबों की दीनता, आत्मघातों की संख्या में भयंकर वृद्धि—ये सब अुस आन्तरिक विरोध के लक्षण हैं जिसका परिहार हमें करना है; और जिसका परिहार अवश्य होने ही वाला है। हिंसा का त्याग और अहिंसाधर्म का स्वीकार करने से ही अिस विरोध का परिहार होगा। अिसलिअे संसार के अिस कोने से हमें ट्रान्सवॉल में आप जो कुछ कर रहे हैं वह आज दुनियां का सब से महत्त्वपूर्ण कार्य प्रतीत होता है जिसमें सिर्फ अीसाअी दुनियां ही नहीं तो अखिल संसार के सभी राष्ट्र अवश्य शामिल होंगे।

२६ : ११ : १९१० —लिओ टॉलस्टॉय

श्रमजीविका

("ब्रेड-लेबर")

[विनोबा का अेक प्रवचन]

(वर्धा-शिक्षा-योजना समझने के लिअे वर्धा आये हुअे विभिन्न प्रान्तों के जिला अिन्स्पेक्टरों के वर्ग में श्री विनोबाजी ने ता० २१:१:३९ को नालवाडी (वर्धा) में दिया हुआ प्रवचन।)

अेक प्रारंभिक सूचना

आपमें से सब लोगों से तो मेरा परिचय नहीं है। लेकिन अेक बात आपके विषय में मैं जानता हूं, जो मेरे लिये पर्याप्त है। वह यह कि आप लोगों ने शिक्षण-शास्त्र का अध्ययन किया है और अुसी दृष्टि से यहां आये है।

मेरे आज के व्याख्यान को प्रस्तावना की आवश्यकता है, अैसा मैं नहीं मानता। लेकिन, प्रस्तावना के रूप में अेक सूचना अवश्य करना चाहूंगा। बहुत लोगों की यह आदत होती है कि जब वे व्याख्यान अित्यादि सुनने जाते हैं, तो सुनते सुनते बीच बीच में कुछ लिख लेते हैं। लेकिन, आपसे मैं कहूंगा कि अगर हो सके तो आप लिखना बंद रक्खें। जो कुछ यहां सुनें अुसे ध्यानपूर्वक सुनें। लिखने के लिये बाद में काफी समय पड़ा है। अगर कुछ बातें—जो भूलने योग्य होंगी—भूल भी जायेंगे, तो वह ठीक ही होगा। अगर ध्यान में रखने लायक बातें भी आप भूल गये तो समझ लीजिये कि अिस काम के लिये आप लायक ही नहीं थे।

प्रवचन का विषय

आज के लिअे मैंने जो विषय चुन लिया है, वह दूसरे वक्ताओं ने जो विषय चुने हैं, या आगे चुनने का संभव है, अुनका खयाल न करके ही चुना है। मेरे विषय का नाम है, "ब्रेड लेबर" यानी "रोटी के लिअे मजदूरी"। मैं जानता हूं, यह शब्द आपमें से कअी लोग नया ही सुनते होंगे। लेकिन यह नया नहीं है। टॉलस्टॉय ने अिस शब्द का अुपयोग किया है। अुसने भी यह शब्द बॉन्डॅरेसा नामक अेक लेखक के निबंधों से लिया और अपनी अुत्तम लेखनशैली द्वारा अुसको दुनिया के सामने रख दिया। मैंने यह विषय जानबूझकर चुना है। शिक्षणशास्त्र का अभ्यास करते हुअे भी संभव है कि अिस विषय का आपने कभी विचार न किया हो। अिसलिअे अिसी विषय पर बोलने का मैंने निश्चय किया। अिस विषय पर विचार ही नहीं लेकिन आचार करने की कोशिश मैं बीस साल से करता आया हूं। क्योंकि जीवन में और साथ साथ शिक्षण में भी शरीरपरिश्रम को मैं प्रथम स्थान देता हूं।

हम दीन क्यों हुअे ?

हम जानते हैं कि हिंदुस्थान की आबादी पैंतीस करोड़ है और चीन की चालीस-पैंतालीस करोड़ है। ये दोनों राष्ट्र प्राचीन हैं। अिन दोनों को मिला दिया जाय तो कुल आबादी अस्सी करोड़ तक हो जाती है। अितनी जनसंख्या दुनिया का अेक सबसे बड़ा

और महत्त्व का हिस्सा हो जाता है। और ये ही दो मुल्क दुनिया में सबसे ज्यादह दुखी, पीड़ित और दीन हैं, यह भी हम जानते हैं। अिसका कारण यही है कि अिन दो मुल्कों ने जो वृत्ति अपने सामने रक्खी थी, अुसका पूरा अनुकरण अिन्होंने नहीं किया। और बाहर के राष्ट्रों ने अुस वृत्ति का कभी स्वीकार ही नहीं किया। मेरा मतलब यह है कि हिंदुस्थान ने शरीरपरिश्रम को जीवन में प्रथम स्थान दिया था और अुसके साथ यह भी निश्चय किया था कि वह परिश्रम चाहे जिस प्रकार का हो—कातने का हो, बढ़अीकाम का हो, रसोअी का हो-सबका मूल्य अेक ही है। भगवद्गीता में यह बात साफ शब्दों में लिखी है। ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो, किसीको चाहे जितना छोटा या बड़ा काम मिला हो, अगर अुसने अुस काम को अच्छी तरह से किया है तो अुस व्यक्ति को संपूर्ण मोक्ष मिल जाता है। अिससे अब अधिक कुछ कहना बाकी नहीं रह जाता। मतलब, हर अेक अुपयुक्त परिश्रम का नैतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्य अेक ही है। अिस प्राचीन धर्म का आचरण तो हमने किया ही नहीं। लेकिन अेक बड़ा भारी शूद्रवर्ग निर्माण कर दिया। शूद्रवर्ग, यानी मजदूरी करनेवाला वर्ग। यहां जितना बड़ा शूद्रवर्ग है, अुतना शायद ही कहीं दूसरी जगह होगा। हमने अुससे अधिक से अधिक मजदूरी करवायी। अुसको कम से कम खाने को दिया। अुसका सामाजिक दर्जा हीन समझा। अुसे कुछ भी शिक्षा नहीं दी। अितना ही नहीं; अुसे अछूत भी बना दिया। नतीजा यह हुआ कि कारीगर वर्ग में ज्ञान का पूरा पूरा अभाव हो गया। वे पशु के समान केवल मजदूरी ही करते रहे।

हमारा कलाकौशल

प्राचीन काल में हमारे यहां कला कम नहीं थी। लेकिन पूर्वजों से मिलनेवाली कला अेक चीज है और अुसमें दिन-प्रति-दिन प्रगति करना दूसरी चीज है। आज भी काफी प्राचीन कारीगरी मौजूद है। अुसको देख कर हमें आश्चर्य होता है। हमारी प्राचीन कला को देख कर हमें आश्चर्य होता है, यही सबसे बड़ा आश्चर्य है। आश्चर्य करने का प्रसंग हमारे अपर क्यों आना चाहिये? अुन्हीं पूर्वजों की तो हम सन्तान हैं न? तब तो अुनसे बढ़ कर हमारी कला होनी चाहिये। लेकिन आज आश्चर्य करने के सिवा हमारे हाथ में और कुछ भी नहीं रहा। यह कैसे हुआ? कारीगरों में ज्ञान का अभाव और हममें परिश्रमप्रतिष्ठा का अभाव ही अिसका कारण है।

ब्राह्मण और शूद्र की समान प्रतिष्ठा

प्राचीन काल में ब्राह्मण की और शूद्र की समान प्रतिष्ठा थी। जो ब्राह्मण था वह विचार-प्रवर्तक तत्त्वज्ञानी और तपश्चर्या करनेवाला था। जो किसान था वह प्रामाणिकता से अपनी मजदूरी करता था। प्रातःकाल अुठ कर भगवान का स्मरण करके सूर्यनारायण के अुदय के साथ खेत में काम करने लग जाता था। और सायंकाल सूर्य भगवान जब अपनी किरणों को समेट लेता है तब अुसको नमस्कार करके घर वापिस आता था। अुस ब्राह्मण में और अिस किसान में कुछ भी सामाजिक, आर्थिक या नैतिक भेद नहीं माना जाता था।

"अुदरपात्र"

हम जानते हैं कि पुराने ब्राह्मण "अुदरपात्र" रहते थे। यानी अुतना ही संचय करते थे,

जितना पेट में रहता था। यहां तक अुनका अपरिग्रह का आचरण था। आज की भाषा में कहना हो, तो वे ज्यादह से ज्यादह काम देते थे और परिवर्तन में कम से कम वेतन लेते थे। यह बात प्राचीन अितिहास से हम जान सकते हैं। लेकिन बाद में अूंच-नीच का भेद पैदा हो गया। कम से कम मजदूरी करनेवाला अूंची श्रेणी का और हर तरह की मजदूरी करनेवाला नीची श्रेणी का माना गया। अुसकी योग्यता कम, अुसे खाने के लिअे कम और अुसकी प्रगति की, ज्ञानप्राप्त करने की व्यवस्था भी कम।

प्राचीन भारत की अुद्योगशालायें

प्राचीन काल में न्यायशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र, वेदांतशास्त्र अित्यादि शास्त्रों के अध्ययन का जिक्र हम सुनते हैं। गणितशास्त्र, वैद्यशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, अित्यादि शास्त्रों के लिअे पाठशालाओं का जिक्र भी आता है। लेकिन अुद्योगशाला का अुल्लेख कहीं नहीं आया है। अुसका कारण यह है कि हम वर्णाश्रम-धर्म में माननेवाले थे; अिसलिअे हर अेक जाति का धंधा अुस जाति के लोगों के घर घर में चलता था और अिस तरह से हर अेक घर अेक अुद्योगशाला थी। कुम्हार हो या बढअी, अुसके घर में बच्चों को बचपन ही से अुस धंधे की शिक्षा अपने पिता से मिल जाती थी। अुसके लिअे अलग प्रबंध करने की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन आगे अैसा हुआ कि अेक बाजू से हमने यह मान लिया कि पिता का ही धंधा पुत्र को करना चाहिअे और दूसरी बाजू से बाहर से आया हुआ माल सस्ता मिलने लगा, अिसलिअे वही खरीदने लगे। मुझे कभी कभी सनातनी भाअियों से बातचीत करने का मौका मिल जाता है। मैं अुनसे कहता हूं कि वर्णाश्रम धर्म लुप्त हो रहा है अिसका अगर आपको दुःख है तो कम से कम स्वदेशीधर्म का तो पालन कीजिये। बुनकर से तो मैं कहूंगा कि अपने बाप का धंधा करना तुम्हारा धर्म है, लेकिन अुसका बनाया हुआ कपड़ा मैं नहीं लूंगा, तो वर्णाश्रम धर्म कैसे जिंदा रह सकता है? हमारी अिस वृत्ति से अुद्योग गया और अुद्योग के साथ अुद्योगशाला भी गयी। अिसका कारण यह है कि हमने शरीरपरिश्रम को नीच मान लिया। जो आदमी कम से कम परिश्रम करता है, वही आज सबसे अधिक बुद्धिमान् और नीतिमान् माना जाता है।

सफेदपोशों की अकड़

आज ही सुबह बातें हो रही थीं। किसीने कहा, 'अब विनोबाजी किसान-जैसे दीखते हैं'। तो दूसरे ने कहा 'लेकिन जबतक अुनकी धोती सफेद है, तबतक वे पूरे किसान नहीं हैं।' अिस कथन में अेक दंश रहा है। खेती और स्वच्छ धोती की अदावत ही है अिस मान्यता में दंश है। जो अपने को अूपर की श्रेणीवाले समझते हैं अुनको यह अभिमान होता है कि वे बड़े साफ रहते हैं, अुनके कपड़े बिलकुल सफेद, बगले के जैसे, होते हैं। लेकिन अुनका यह सफाअी का अभिमान मिथ्या और कृत्रिम है। अुनके शरीर की डॉक्टरी जांच—में मानसिक जांच की तो बात ही छोड़ देता हूं—की जाये और हमारे परिश्रम करनेवाले मजदूरों के शरीर की जांच की जाय और दोनों

परीक्षाओं की रिपोर्ट डॉक्टर पेश करें और कह दें कि कौन ज्यादह साफ है? हम लोटा भी मलते हैं तो बाहर से। अुसमें अपना मुंह देख लीजिये। लेकिन अंदर से मलने की हमें ज़रूरत ही नहीं जान पड़ती। हमको अंदर की कीमत ही नहीं होती। हमारी स्वच्छता केवल बाहरी और दिखावटी होती है। खेत की मिट्टी में काम करनेवाला किसान भला कैसे स्वच्छ रह सकता है, अैसी हमें शंका होती है। लेकिन मिट्टी में, या खेत में काम करनेवाले किसान के कपड़े पर जो मिट्टी का रंग लगता है वह मैल नहीं है। सफेद शर्ट के बदले किसीने लाल शर्ट पहन लिया तो हम अुसे रंगीन कपड़ा समझते हैं। वैसे ही मिट्टी का भी अेक प्रकार का रंग होता है। रंग और मैल में काफी फर्क है। मैल में जंतु होते हैं, पसीना होता है, अुसकी बदबू आती है। मिट्टी का तो 'पुण्यगंध' होता है। गीता में लिखा है, "पुण्यो गंधः पृथिव्यां च"। मिट्टी का शरीर है, मिट्टी में ही मिलनेवाला है, अुसी मिट्टी का रंग किसान के कपड़े पर है। तब वह मैला कैसे? लेकिन हमको तो बिलकुल सफेद, कपास जितना सफेद होता है, अुससे भी बढ़कर सफेद, कपड़े पहनने की आदत हो गयी है। मानों 'व्हाअीट वॉश' ही किया है। अुसे हम साफ कहते हैं। हमारी भाषा ही विकृत हो गयी है।

शुद्ध भाषा पर घमंड

अपनी अुच्चारण पद्धति पर भी हमें अैसा ही मिथ्याभिमान है। देहाती लोग जो अुच्चारण करते हैं, अुसको हम अशुद्ध कहते हैं। लेकिन पाणिनी तो कहता है कि आम जनता जो बोली बोलती है वही व्याकरण है। तुलसीदासजी ने रामायण आम लोगों के लिअे लिखी। वे जानते थे कि देहाती लोग 'ष', 'श' और 'स' के अुच्चारण में फरक नहीं करते। लोगों की जबान में लिखने के लिये अुन्होंने रामायण में सब जगह 'स' ही लिखा। वे नम्र हो गये। अुनको तो लोगों को रामायण सिखानी थी। तो फिर अुच्चारण भी लोगों का ही सही। लेकिन आज के पढ़े-लिखे लोगों ने तो मजदूरों को मानों बदनाम ही करने का निश्चय किया है।

असली धर्म

हममें से कोअी गीतापाठ, भजन और जप करता है, या कोअी अुपनिषद् कंठ कर लेता है तो वह बड़ा महात्मा बन जाता है। जप, संध्या, पूजापाठ ही धर्म माना जाता है। लेकिन दया, सत्य, परिश्रम में हमारी श्रद्धा नहीं होती। जो धर्म बेकार, निकम्मा, अनुत्पादक हो, अुसीको हम सच्चा धर्म मानते हैं। जिससे पैदावार होती है, वह भला धर्म कैसे हो सकता है? भक्ति और अुत्पत्ति का भी कहीं मेल हो सकता है? लेकिन वेदभगवान में हम पढ़ते हैं, 'विश्व की अुत्पत्ति करनेवाले को कुछ कृति अर्पण करो। अुसने विश्व की सृष्टि कर रास्ता दिखा दिया, अुसका अनुकरण करो। कुछ पैदा करके अुसको समर्पण करो।' लेकिन हमारी साधु की कल्पना अिससे अुलटी है। अेक ब्राम्हण खेत में खोदने का काम कर रहा है, या हल चला रहा है, अैसी अगर किसी ने तसवीर खींच दी तो वह

तसबीर खींचनेवाला पागल समझा जायेगा। क्या ब्राह्मण भी मजदूर के जैसा काम कर सकता है, यह सवाल हमारे यहां अुठ सकता है। "क्या तत्त्वज्ञानी खा भी सकता है," यह सवाल नहीं अुठता। वह तो मजे में खा सकता है। ब्राह्मण को खिलाना ही तो हम अपना धर्म समझते हैं; अुसी को पुण्य कार्य मानते हैं।

हमारी गुलामी का कारण

हिंदुस्थान की संस्कृति अिस हद तक गिर गयी। अिसी कारण से बाहर के लोगों ने अिन अूपरी लोगों को हटा कर हिन्दुस्थान को जीत लिया। बाहर के लोगों ने आक्रमण क्यों किया? परिश्रम से छुटकारा पाने के लिये। अुसी लिये अुन्होंने बडे बडे यंत्रों की खोज की। शरीरपरिश्रम कम से कम करके बचे हुअे समय में मौज और आनंद करने की अुनकी दृष्टि है। अुसका नतीजा आज यह हो गया है कि हर अेक राष्ट्र अब यंत्रों का अुपयोग करने लग गया है। पहली मशीन जिसने निकाली अुसकी सत्ता तभी तक चली जबतक कि दूसरों के पास मशीन नहीं थी। मशीन से संपत्ति और सुख तभी तक मिला जबतक दूसरों ने मशीन का अुपयोग नहीं किया था। हर अेक के पास मशीन आ जाने पर स्पर्धा शुरू हो गयी।

यूरोप अेक "चिड़ियाखाना" है

आज यूरोप अेक बड़ा भारी चिड़ियखाना ही बन गया है। जानवरों के मुआफिक हर अेक अपने अलग अलग पिंजडे में पड़ा है और पडे पडे सोच रहा है कि दूसरे को कैसे खा जाअूं? क्योंकि वह अपने हाथों से कोअी काम करना नहीं चाहता। हमारे सुधारक लोग कहते हैं, 'हाथों से काम करना बड़ा भारी कष्ट है, अुसमें से किसी न किसी तरकीब से छूट सकें तो बडा अच्छा हो'। अगर दो घंटे काम करके पेट भर सकें तो तीन घंटे क्यों करें? अगर आठ घंटे काम करेंगे तो कब साहित्य पढ़ेंगे और कब संगीत होगा? कला के लिअे तो वक्त ही नहीं रहता।

पुच्छविषाणयुक्त पशु

भर्तृहरि ने लिखा है—'साहित्य संगीत कला विहीन: साक्षात्पशु: पुच्छविषाणहीन:।' "जो साहित्य-संगीत-कला-विहीन है, वह बिना पुच्छविषाण (पूंछ और सींग) का पशु है।" मैं कहता हूं "ठीक है। साहित्य-संगीत-विहीन अगर पुच्छविषाणहीन पशु है, तो साहित्य-संगीत-कलावान पुच्छविषाणवाला पशु है।" भर्तृहरि के लिखने का मतलब क्या था यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन मुझे अुसपर से यह अर्थ सूझ गया। दूसरे अेक पंडित ने लिखा है 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'। 'धीमान् लोगों का समय काव्यशास्त्र विनोद में कटना है'। मानो अुनका समय कटता ही नहीं। मानों वह अुन्हें खाने के लिअे अुनके दरवाजे पर खड़ा है। काल तो जाने ही वाला है। अुसके जाने की चिंता क्यों करते हो? वह सार्थक कैसे होगा यह देखो। शरीरश्रम को दुःख क्यों मान लिया है, यही मेरी समझ में नहीं आता। आनंद और सुख का जो साधन है अुसीको कष्ट माना जाता है।

वास्तविक व्यायाम

अेक अमेरिकन श्रीमान् से किसी ने पूछा दुनिया में सबसे अधिक श्रीमान् कौन है?

अुसने जवाब दिया, 'जिसकी पचनेन्द्रिय अच्छी है वह'। अुसका कहना ठीक है। संपत्ति खूब पडी है। लेकिन दूध भी हजम करने की ताकत जिसमें नहीं है अुसको अुस संपत्ति से क्या लाभ है? और पचनेंद्रिय कैसे मजबूत होती है? काव्यशास्त्र से तो 'कालो गच्छति'; अुससे पचनेन्द्रिय थोडे ही मजबूत होनेवाली है? पचनेन्द्रिय तो व्यायाम से, परिश्रम से मजबूत होती है। लेकिन आजकल व्यायाम भी पन्द्रह मिनट का निकला है। मैंने अेक किताब देखी, अुसका नाम ही "फिफ्टीन मिनिट्स अेक्सरसाअिज्" था। अैसे व्यायाम से दीर्घायुषी बनेंगे या अल्पायुषी बनेंगे असकी फ़िक्र ही नहीं होती। से ो भी जल्दी ही मर गया। अिन लोगों ने व्यायाम के शास्त्र को भी हिंसक बना रक्खा है। तीन मिनिट में अेक दम व्यायाम मिल जाना चाहिये। जल्दी से जल्दी अुससे निपट कर काव्यशास्त्र में कैसे लग जायें, यही फ़िक्र है। थोडे ही समय में अेक दम व्यायाम करने की जो पद्धति है, अुससे ('स्नायु'), 'मसल्स' बनते हैं, 'नर्व्हज' (नसें) नहीं बनतीं। और अमरवेल जिस प्रकार पेड़ को खा जाती है वैसे 'मसल्स' आरोग्य को खा जाते हैं। नर्व्हज आरोग्य को बढ़ाती है। धीरे धीरे और सतत जो व्यायाम मिलता है अुससे नर्व्हज बनती हैं और पचनेंद्रिय मजबूत होती है। २४ घंटे लगातार हम हवा लेते हैं। लेकिन अगर हम यह सोचने लगें कि दिन भर हवा लेने की यह तकलीफ कौन अुठावे? दो घंटों में ही दिनभर की पूरी हवा मिल जाये तो अच्छा हो। तो कहना पड़ेगा कि हमारी संस्कृति आखिरी दर्जे तक पहुंच गयी है। हमारा दिमाग ही अिस तरह से चलता है। पढ़ते पढ़ते आंख बिगड़ जाती है तो हम अैनक लगा लेते हैं। लेकिन आंख न बिगड़े अिसके लिअे क्या किया जाय, अिसका तरीका नहीं निकालते।

हमारा आरोग्य बिगड़ गया है, भेदभाव बढ़ा है और हम पर बाहर के लोगों का आक्रमण हुआ है—अिस सबका कारण यही है कि हमने परिश्रम छोड़ दिया है। यह तो हुआ जीवन की दृष्टि से।

अब शिक्षण की दृष्टि से परिश्रम का विचार करना है।

शरीर और मन का संबंध

हमने शिक्षण की जो नयी प्रणाली बनाअी है अुसका आधार अुद्योग है। क्योंकि शरीर के साथ मन का निकट संबंध है, अैसा हम मानते हैं। आजकल मनोविज्ञान (मानसशास्त्र) का अध्ययन करनेवाले हम बहुत देखते हैं। बेचारों को खुद के काम-क्रोध जीतने का तरीका भी मालूम नहीं होता। मन का परिष्करण करके और किताबें पढ़ कर दो चार बातें कर लेते हैं। चौदह साल के बाद मनुष्य के मन में अेकाअेक परिवर्तन होता है, अिसलिअे सोलह साल तक लड़कों की पढ़ाअी होनी चाहिअे, यह अेक सिद्धांत अेक मानसशास्त्री ने मुझे सुनाया। सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा "क्या मन का परिवर्तन होने का भी कोअी त्यौहार होता है? हम देखते हैं कि शरीर धीरे धीरे बढ़ता है। किसी अेक दिन अेक दम दो फुट अूंचा हो गया हो अैसा तो नहीं होता। तो फिर मन में ही अेकदम परिवर्तन कैसे हो सकता है"? बाद में मैंने अुसको समझाया कि हड्डियां चौदह साल के बाद जरा

तेजी से बढ़ती हैं और मन का शरीर के साथ संबंध होने से दिमाग भी अुसी प्रमाण में तेजी से विकसित होता है। शरीर और मन दोनों अेक ही प्रकृति में अेक ही कोटि में पड़े हैं।

कार्लाअिल का अुदाहरण

कार्लाअिल बड़ा तत्ववेत्ता और विचारक था। अुसके ग्रंथ पढ़ते पढ़ते कअी जगह कुछ अैसे विचार आ जाते थे जो मेरे विचारों से मेल नहीं खाते थे। शंकराचार्य का जैसा सीधा, सरल विचारप्रवाह मालूम होता है, वैसा अुसके लेखों में नहीं दीखता। अुसका चरित्र बाद में मुझे पढ़ने को मिला। अुसपर से मुझे मालूम हुआ कि कार्लाअिल को सिर के दर्द की बीमारी थी। तब मुझे अुसके लेखनदोष का कारण मिल गया। मैंने सोचा कि जिस समय अुसका सिर दर्द करता होगा अुस समय का अुसका लेखन कुछ टेढ़ामेढ़ा होता होगा। योगशास्त्र में तो मनःशुद्धि के लिअे प्रथम शरीरशुद्धि बतलाअी है। हमारे शिक्षणशास्त्र का भी आधार वही है। शरीर-वृद्धि के साथ मनोवृद्धि होती है। लड़कों की मनोवृद्धि करनी है, अुनको शिक्षण देना है, तो अुनको परिश्रम दे कर अुनकी भूख जाग्रत करनी चाहिअे।

भूख, भगवान् का संदेश है

परिश्रम से अुनकी भूख बढ़ेगी। जिसको दिनभर में तीन दफ़ा अच्छी भूख लगती है, अुसे अधिक धार्मिक समझना चाहिये। भूख लगना जिंदे मनुष्य का धर्म है। जिसे दिनभर में अेक ही दफ़ा भूख लगती है, अुसका जीवन जरूर अनीतिमय होने का सम्भव है। भूख तो भगवान का संदेश है। भूख न होती तो दुनिया बिलकुल अनीतिमान और अधार्मिक बन जाती। फिर नैतिक प्रेरणा ही हमारे अन्दर न होती। किसी को भी भूख-प्यास अगर न होती, तो हमें अतिथिसत्कार का मौका कैसे मिल सकता? सामने यह खंभा खड़ा है। अिसका हम क्या सत्कार करेंगे? अुसको न भूख है न प्यास। हमें भूख है अिसलिये हमारे पास धर्म है।

शिक्षक भी परिश्रम करे

लड़कों को परिश्रम देना है तो शिक्षक को भी अुनके साथ परिश्रम करना चाहिअे। अिस विषय के अपने अेक निबंध में मैंने अिसके बारे में लिखा ही है। क्लास में झाड़ू लगाने का काम होता है। लेकिन अुस के लिये या तो नौकर रक्खे जाते हैं, या लड़के झाड़ू लगाते हैं। शिक्षक को हम कभी झाड़ू लगाते नहीं देखते। विद्यार्थी क्लास में पहले आ गये तो वे झाड़ू लगालें, कभी शिक्षक पहले आ गया तो वह लगाले, अैसा होना चाहिये। लेकिन झाड़ू लगाने का काम हमने नीच मान लिया। फिर शिक्षक भला वह कैसे करेगा? हम लड़कों को झाड़ू लगाने का भी काम देंगे तो वह शिक्षण की दृष्टि से देंगे। और शिक्षण की दृष्टि से जो परिश्रम लड़कों से कराना है वह शिक्षक को पहले सीख लेना चाहिये, और लड़कों के साथ करना चाहिये। मैंने अेक झाड़ू तैयार की है। अेक रोज दो तीन लड़कियां वहां आयी थीं। तब अुनको मैंने वह बतायी और अुसमें कितनी बातें भरी हैं यह समझाया। समझाने के बाद जितनी चीजें मैंने कहीं वे सब अेक दो तीन

करके अुनसे दोहरवा लीं। लेकिन यह मैं तभी कर सका जब कि झाडू लगाने का काम मैंने खुद किया था। अिस तरह से हर अेक चीज शिक्षण की दृष्टि से लड़कों को सिखानी चाहिअे। अेक ने मुझे कहा, "गांधीजी ने पीसना, कातना, जूते बनाना वगैरह काम खुद कर के परिश्रम की प्रतिष्ठा बढ़ा दी", मैंने कहा मैं अैसा नहीं मानता। परिश्रम की प्रतिष्ठा किसी महात्मा ने नहीं बढ़ायी। परिश्रम की खुद की ही अितनी प्रतिष्ठा है कि अुसने महात्मा को प्रतिष्ठा दी। आज हिंदुस्थान में गोपालकृष्ण की जो अितनी प्रतिष्ठा है, वह अुसके गोपालन ने अुसको दी है। अुद्योग हमारा गुरु है।

सृष्टि ही पाठशाला है

दुनिया की हर अेक चीज हम को शिक्षण देती है। अेक दिन मैं धूप में घूमता था। चारों तरफ बडे बडे हरे वृक्ष दिखाअी देते थे। मैं सोचने लगा कि अूपर से अितनी कडी धूप पड़ रही है, फिर भी ये वृक्ष हरे कैसे? वे वृक्ष मेरे गुरु बन गये। मेरी समझ मे आ गया कि जो वृक्ष अूपर से अितने हरेभरे दीखते हैं, अुनके मूल जमीन मे गहरे पहुंचे हैं और वहां से अुनको पानी मिल रहा है। अिस तरह अंदर से पानी और अूपर से धूप दोनों की कृपा से यह सुंदर हरा रंग अुन्हें मिला है। अुसी तरह हमें अंदर से भक्ति का पानी और बाहर से तपश्चर्या की धूप मिले तो हम भी पेडों के जैसे हरभरे हो जायेंगे। हम ज्ञान की दृष्टि से परिश्रम को नहीं देखते; अिसलिअे अुसमें तकलीफ मालूम होती है। अैसे लोगों के लिअे भगवान का यह शाप है कि अुनको आरोग्य और ज्ञान कभी मिलने ही वाला नहीं।

किताबें बुद्धि का कैदखाना है

किताबें पढ़ने से ज्ञान मिलता है यह खयाल गलत है। पढ़ते पढ़ते बुद्धि अैसी हो जाती है कि जिस समय जो पढ़ते हैं वही सही लगता है। अेक भाअी मुझे कहता था, 'मैंने समाजवाद की किताब पढी तो वे विचार ठीक लगे। बाद में 'गांधीतत्त्व' की किताब पढी तो वे भी ठीक लगे।' मैंने विनोद में अुससे कहा 'पहली किताब दो बजे पढी होगी, और दूसरी चार बजे पढी होगी। दो बजे के लिअे पहली ठीक थी और चार बजे के लिअे दूसरी ठीक थी।' मेरे कहने का मतलब यह है कि बहुत पढ़ने से हमारा दिमाग स्वतंत्र विचार ही नहीं कर सकता। खुद विचार करने की शक्ति गायब हो जाती है। जब से किताबें निकलीं, तब से स्वतंत्रविचारपद्धति नष्ट हो गयी है, अैसी मेरी राय है। कुरानशरीफ में अेक संवाद आया है। मुहंमद पैगंबर को कुछ विद्वान लोगों ने पूछा, 'तेरे पहले के जितने पैगंबर आये अुन सबने चमत्कार करके दिखाये। तू तो कोअी चमत्कार ही नहीं दिखाता। तो फिर पैगंबर कैसे बन गया?' अुसने जवाब दिया, 'तू कौनसा चमत्कार चाहता है? अेक बीज बोया जाता है। अुसमें से बड़ा वृक्ष पैदा होता है, अुसमे फूल लगते हैं और अुनमे से फल पैदा होते हैं। यह क्या चमत्कार नहीं है?' यह तो अेक जवाब हो गया। दूसरा जवाब यह दिया कि 'मेरे जैसा अनपढ़ आदमी भी आप लोगों को ज्ञान दे सकता है, यह क्या कम चमत्कार

है? आप और कौनसा चमत्कार चाहते हैं? हमारे सामने की सृष्टि ज्ञान से भरी है। हम अुसकी तह तक नहीं पहुंचते। अिसलिये अुसमें जो आनंद भरा है वह हमें नहीं मिलता।

अुद्योग—ज्ञान और प्रेम का साधन

रोटी बनाने का काम माता करती है। माता का हम गौरव करते हैं। लेकिन माता का असली मातापन अुस रसोअी में है। अच्छी से अच्छी रसोअी बनाना, बच्चों को प्रेम से खिलाना—अिसमें कितना ज्ञान और प्रेमभावना भरी है। वह रसोअी अगर माता के हाथों से निकाल ली जाये तो अुसका प्रेमसाधन ही चला जायगा। प्रेमभाव प्रकट करने का यह मौका कोअी माता छोड़ने के लिये तैयार नहीं होगी। अुसीपर तो वह जिंदा रहती है। मेरे कहने का मतलब कोअी यह न समझे कि किसी न किसी बहाने में स्त्रियों पर रोटी पकाने का बोझ लादना चाहता हूं। मैं तो अुनका बोझ हलका करना चाहता हूं। अिसीलिये हमने आश्रम में रसोअी का काम मुख्यतः पुरुषों से ही कराया है। मेरा मतलब अितना ही था कि जैसे रसोअी का काम माता छोड़ देगी तो अुसका ज्ञानसाधन और प्रेमसाधन चला जायगा वैसे ही हम परिश्रम से अगर घृणा करेंगे तो ज्ञानसाधन ही खो बैठेंगे।

बालकों से मजदूरी

लोग मुझे कहते हैं, "आप लड़कों से मजदूरी कराना चाहते हैं। अुनके दिन तो गुलाब के फूल जैसे खिलने के और खेलकूद के हैं।" मैं कहता हूं "बिलकुल ठीक। लेकिन वह गुलाब का फूल किस तरह से खिलता है यह भी तो जरा देखो। वह पूर्णरूप से स्वावलंबी है। जमीन से सब सत्त्व चूस लेता है। खुली हवा में अकेला खड़ा होकर धूप, बारिश, बादल, सब सहन करता है। बच्चों को भी वैसा ही रक्खो। मैं यह पसंद करता हूं।" वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविता में कहा है "Three years she grew in sun and shower!" मैं मानता हूं कि अिससे लड़कों को असली आनंद मिलेगा। अुनसे पूछ कर ही देखो कि फूल को पानी देने में, चंद्रकला को घटती-बढ़ती देखने में आनंद आता है या किताबों में और व्याकरण के नियम रटते रहने में आनंद आता है? सुरगांव (वर्धा) का अेक अुदाहरण मुझे मालूम है। वहां अेक प्राथमिक शाला है। करीब ७ से ११ साल के लड़के अुसमें पढ़ते हैं। वहां का शिक्षक अच्छा पढ़ाता है अैसी गांव वालों की राय है। परीक्षा को अेक या दो महीने थे तब अुसने सुबह ७ से १०॥, दोपहर मे २ से ५॥ तक; अैसे सात घंटे; और रात को फिर ७ से ९ बजे तक कोचिंग क्लास—याने कुल ९ घंटे—पढ़ाना शुरू किया। न मालूम अितने घंटे वह क्या पढ़ाता होगा और विद्यार्थी भी क्या पढ़ते होंगे। अगर लड़के पास हो गये तो हम समझते हैं कि शिक्षक ने ठीक ठीक पढ़ाया है। अिस तरह से ९–९ घंटे लड़कों से पढ़ाअी करवानेवाला शिक्षक लोकप्रिय हो सकता है। लेकिन मैं ३ घंटे कातने की बात कहूं तो कहते हैं "यह लड़कों को खपाना चाहता है"। ठीक ही है। बड़े जहां काम से बचने की फिक्र में हैं वहां लड़कों को काम देने की कल्पना भला कौन करे?

अुत्पादन का आग्रह क्यों ?

अच्छा। फिर यह पूछते हैं कि "अुद्योग तो चाहिये यह मान लिया। लेकिन अुसमें से अितना ही पैदा होना चाहिये यह आग्रह क्यों ?" मेरा जवाब यह है कि "लडकों को तो जब कोअी चीज बनती है तभी आनंद आता है। बेचारे अुद्योग भी करें और अुसमें से कुछ पैदा भी न हो, तो क्या अिसमें अुन्हें आनंद आ सकता है ? किसीसे अगर कहा जाय कि चक्की तो पीसो लेकिन अुसमें गेहूं न डालो और आटा भी तैयार न होने दो; तो वह पूछेगा फिर यह नाहक चक्की घुमाना किस लिये ?" तो क्या हम यह कहेंगे कि "भुजायें और छाती मजबूत बनने के लिअे" ? अैसे अुद्योग में क्या कुछ आनंद आने वाला है ? वह तो नाहक मिहनत हो जायेगी। अुत्पादन में ही आनंद है।

अिसलिअे मुख्य दृष्टि यह है कि शरीर-परिश्रम की महिमा को हम समझें। प्रायमरी स्कूलों में हम अुद्योग के आधार पर शिक्षण नहीं देंगे तो हम शिक्षा अनिवार्य नहीं कर सकेंगे।

देहाती खुश होंगे

आज गांववाले कहते हैं कि "लडका स्कूल में पढने जाता है तो अुसमें काम के प्रति घृणा पैदा हो जाती है और हमारे लिअे वह निकम्मा हो जाता है। तो फिर अुसे स्कूल में क्यों भेजें ?" लेकिन हमारी शालाओं में अगर अुद्योग शुरू हो गया तो माँबाप खुशी से अपने लडके को स्कूल में भेजेंगे। लडका क्या पढता है यह भी देखने आयेंगे। आज तो लडके की क्या पढाअी हो रही है यह देखने के लिअे भी माँबाप नहीं आते। अुनको अुसमें रस ही नहीं होता। अुद्योग दाखिल हो जाने के बाद अिसमें फर्क पडेगा। गांववालों के पास काफी ज्ञान है। हमारा शिक्षक सर्वज्ञ तो नहीं हो सकता। वह गांववालों के पास जायेगा और अपनी कठिनाअियां अुनको बतायेगा। स्कूल के बगीचे में अच्छे पपीते नहीं लगते तो वह अुसका कारण गांववालों से पूछेगा। फिर वे बतायेंगे कि अिस अिस किसम का खाद डालो। खाद खराब होने से पपीते में कीडे पड जाते हैं। हम समझते हैं कि हम कृषि-कॉलेज में पढे हैं अिसलिअे हमारे ही पास ज्ञान है। लेकिन हमारा ज्ञान किताबी होता है। हम अुसे व्यवहार में नहीं लाते। जबतक हम प्रत्यक्ष अुद्योग शुरू नहीं करते तबतक अुसमें प्रगति और वृद्धि नहीं होती। अगर हमें गांववालों का सहकार चाहिये, अुनके ज्ञान से अगर हमें लाभ अुठाना है, तो स्कूलों में अुद्योग शुरू करना चाहिये। हमारे और अुनके सहकार से अुस ज्ञान में सुधार भी होगा।

यह सब तब होगा जब हमारे शिक्षकों में प्रेम, आनंद और परिश्रम के प्रति आदर निर्माण होगा। हमारी नअी शिक्षाप्रणाली अिसी आधार पर बनाअी गयी है।

सर्वोदय की दृष्टि

अहिंसा—सिद्धान्त या नीति ?

अिस प्रश्न को उलटा कर देखिये। "क्या हिंसा कभी जीवन का सिद्धान्त हो सकती है?" बदमाश, डाकू या महत्त्वाकांक्षी सम्राट भी कभी हिंसा को जीवनसिद्धान्त नहीं बतायेगा। लेकिन, अपनी योजनाओं की सफलता के लिअे हिंसानीति का आश्रय लेने में अपनी मजबूरी का सबब पेश करेगा। मतलब, हिंसा सिद्धान्तरूप नहीं हो सकती। अधिक से अधिक वह नीति ही हो सकती है।

साम्यवादी भी अपना आखरी ध्येय हिंसा का नाश और अहिंसा की प्रतिष्ठा ही बताता है। याने, सिद्धान्तरूप में वह अहिंसा को ही मानता है। लेकिन, अपनी योजनाओं की शीघ्र सफलता के लिअे, जरूरत मालूम होने पर, हिंसानीति को त्याज्य नहीं समझता।

अगर यह ठीक है तो हम लोगों में "अहिंसा सिद्धान्त है; या नीति?" यह जो वाद चल रहा है, वह व्यर्थ ही है। अगर कोअी चर्चा करना जरूरी हो तो वह इस के बारे में हो सकती है कि क्या हिंसानीति सर्वथा त्याज्य ही हो सकती है?

मानवसमाज जैसा है हम जानते हैं। भले ही हम यह आशा रक्खें कि वह अेक दिन आदर्श संस्कारी हो जायगा। पर, आज तो हमें आज की मर्यादाओं में से ही मार्ग निकालना होगा। उसमें हिंसा का कुछ व्यवहार होना ही है। तब कोरी पंडिताई के बदले व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो सवाल इतना ही रह जाता है कि—

(१) हम अमुक अेक परिस्थिति में हिंसानीति का स्वीकार करें या नहीं?

(२) जहाँ अुसे अनुचित समझा जाय, वहाँ अहिंसक मार्ग कौनसा हो? और

(३) जहाँ हिंसा अपरिहार्य समझी जाय, वहाँ अुसकी मर्यादा क्या हो?

राजकीय कार्यकर्ता तात्त्विक चर्चा की अपेक्षा अितना स्वीकार करें कि—(१) सिद्धान्त तो अहिंसा ही हो सकती है। (२) इसलिअे नेता का प्रथम कर्तव्य अहिंसा का तरीका खोजना ही हो सकता है। और (३) हिंसा अपरिहार्य मालूम होने पर भी अुसे अधिक से अधिक नियंत्रण में रखना होगा।

यह स्वीकारने के बाद यदि समय समय पर पैदा होनेवाले अेक अेक सवाल को सुलझाने के व्यवहार्य उपाय खोजें, तो संभव है कि अधिकतर मामलों में वे अेकसे ही निर्णय पर आवेंगे।

कि. ध. म.

सभ्यता की रक्षा या नाश ?

आज जब कि हम अेक घोर युद्ध से घिरे हुअे हैं, तब अहिंसा की बातें करना व्यर्थ प्रलापसा मालूम होगा। हिटलर का मुकाबला अहिंसा से कैसे किया जा सकता है? यह आशंका कट्टर गांधीभक्त के हृदय में भी हो सकती है। और इस बात का भी स्वीकार करना होगा कि आज अिसका कोअी तैयार और अक्सीर नुसखा नहीं बताया जा सकता।

यद्यपि नुसखा बताना मुश्किल है, फिरभी परिणामों का विचार किया जा सकता है। यह प्रचण्ड हिंसाश्रित सभ्यता किस ओर जा रही है? जो आग दूसरों को भस्म

करने उठी है, क्या वह स्वयं अपने को भी भस्म करने को तैयार नहीं हुई है? क्या अिस युद्ध में जिसकी हार होगी, उसीकी हार होगी? और जीतनेवाले की नहीं?

पेटभर अन्न, शरीरभर कपडा, और अेक छोटासा निवासस्थान सबको मिले, इतने से जिन्हें संतोष नहीं होता वे सभ्यता निर्माण करनेवाले होते हैं। उसका निर्माण करने के लिये, वे पहले तो हजारों के अन्न, कपडा और निवासप्राप्ति के साधनों को भी कम कर डालते हैं और अुनके बल पर अपनी सभ्यता और उसका आदर बढाते हैं। तब वह सभ्यता दूसरों के लिये ईर्ष्या का विषय हो जाती है, और उसे आक्रमण का भय पैदा होता है। फिर, उसकी रक्षा के साधन पैदा करने पडते हैं। इसके लिये लाखों के अन्न, कपडे और घरों को और भी कम करना पडता है। हरेक देश में अैसी सभ्यतायें अलग अलग निर्माण होती हैं। फिर हरेक देश को अपनी सभ्यता को बढाने और अुसकी रक्षा करने में कुछ मुश्किलें मालूम होती हैं। तब वह क्या करे? अपनी सभ्यता को घटाना और 'असभ्य' जनता बन जाना तो दिल में आ ही नहीं सकता। तब तो दूसरों की हिंसा करने की ही बुद्धि हो सकती है।

आखिर में यह सभ्यता टिकनेवाली तो है नहीं। प्रलयाग्नि की तरह वह सबको जला कर स्वयं भी खाक होगी। तब इस सभ्यता के मोह को—सुख-सुविधा के साधनों की बहुतायत को—ही कम करना होगा। हरेक परिवार के अपने परिश्रम से पेटभर अन्न, शरीरभर कपडा और छोटासा निवासस्थान प्राप्त करने के बाद ही जितना ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला, शृंगार आदि पोसा जा सके उतनी ही सभ्यता अहिंसा से निभ सकेगी। उसके पहले सभ्यता का निर्माण और वृद्धि बगैर हिंसा किये नामुमकिन है। हम चाहे आधुनिक सभ्यता के नाश के बाद इस शर्त का स्वीकार करें या आज।

वर्धा, ७:९:३९ कि. घ. म.

राजबन्दियों की रिहाअी

राजबन्दियों की रिहाअी के लिअे देश में काफी आन्दोलन की धूम मची। अब सब राजबन्दी छूटेंगे ही। आज तक राजबन्दी छूट न सके यही आश्चर्य है। राजबन्दियों को न छोडने में सरकार की जितनी हठधर्मी, अपनी शान-प्रतिष्ठा का आग्रह और कानूनपरस्ती की आदत है; अुतना ही अुसके दिल का यह डर भी है कि अिन लोगों के छूट जाने से कोअी आफत न आ पडे? व्हाअिसरॉय गव्हर्नर से पूछेगा, गव्हर्नर अपने मंत्रीमंडल से पूछेगा, या सीधे अपने पुलीसकर्मचारियों से पूछेगा। वे नीचे से रिपोर्ट आदि कागजात मंगवायेंगे और अन्त में कहेंगे कि अैसे भयानक लोगों को आज़ाद रखने की हमारी हिंमत नहीं होती। क्योंकि अुसमें समाज को खतरा है।

हम केवल राजबन्दियों का ही विचार करते हैं। अुनमें से जो सचमुच निरपराधी हैं, या केवल शक के कारण, या केवल अेक खास तरह की राय रखने के कारण, जिनको सजा हुअी है अुनका सवाल ही अलग है। अुन्हें तो तुरन्त मुक्त कर के सरकार को अुनकी माफी मांगनी चाहिअे। किन्तु जिन्होंने सचमुच अपराध किया है अुनका कृत्य चाहे जितना भयानक रहा हो; हम अुन्हें गये-

गुजरे, पतित और समाज के शत्रु नहीं मानते। अुन्होंने जो किया वह अपनी दृष्टि से समाज के हित और देश के कल्याण के लिअे ही किया। यों वे अच्छे सज्जन और सभ्य नागरिक होते हैं। और अगर वैसा ही देखा जाय तो सामान्य नागरिकों की अपेक्षा कभी कभी अुनका चारित्र्य कअी दर्जे अूंचा होता है। अैसे लोगों के प्रति देश की सहानुभूति रहना स्वाभाविक है। राजनैतिक परिस्थिति बदलने के बाद अैसे लोगों को जेल में रखना केवल बदला लेने के वैरभाव की, या बेवकूफी की ही निशानी मानी जा सकती है।

अिनमें भी जिन लोगों को हिंसामार्ग की विफलता अथवा अयोग्यता प्रतीत हो चुकी है और जो अहिंसामार्ग को पसन्द करने लगे हैं अुनको तो अेक दिन भी कैदखाने में रखना सरकार के लिअे हानिकारक है। क्योंकि अुसमें सरकार की ही सत्त्वहानि होती है। जो असर दण्ड और सजा द्वारा कभी भी नहीं होता वह अगर मनन-चिंतन से हुआ है तो सरकार को अिस बात की खुशी होनी चाहिअे कि अेक नागरिक सज्जनता का पूरा अनुयायी बन गया है।

का० का०

मनुष्योचित अपराधचिकित्सा

यह हुआ राजनैतिक कैदियों और राजबंदियों के बारे में। किन्तु मामूली अपराधों के लिअे देश में जो लाखों कैदी जेल में भेजे जाते हैं अुनके बारे में भी क्या यही सोचने की जरूरत नहीं है? अिनमें भी कअी लोग निरपराधी होंगे, कअी लोगों ने सरकार की ओर से न्याय प्राप्त करने के बारे में निराश हो कर कानून अपने हाथ में ले कर किसी को सजा दी होगी, कअी लोगों ने क्षणिक मनोवेग के कारण कुछ अत्याचार किया होगा और बाद में पश्चात्ताप कर के वे पुनीत हो गये होंगे। कअी लोगों के स्वभाव में पूरा पूरा परिवर्तन भी हो गया होगा।

अैसे लोगों का खयाल ही कौन करता है? हमारे कायदे-कानून चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों अुनके प्रत्यक्ष अमल को देखते हुअे यह कबूल करना पड़ता है कि शिक्षित और मध्यम वर्ग के सफेदपोश लोग कानून के जाल में नहीं फँसते। गरीब जनता की अपेक्षा अिस मध्यम वर्ग में शराफत और सज्जनता अधिक है अैसा तो शायद कोअी नहीं कहेगा। किन्तु राजकर्मचारी अक्सर मध्यम वर्ग से आते हैं। वे अपने वर्ग के प्रति पक्षपाती होते हैं। मध्यम वर्ग के लोग असल में होते ही हैं चतुर। चाहे जो अपराध कर के भी कानून की पकड़ में नहीं आते। और फिर राजकर्मचारी भी अुन्हीं का पक्ष लेते हैं। अपने को बचाने के लिअे मध्यम वर्ग के लोग कोशिश और खर्च भी बेहद करते हैं, और किसी न किसी तरह बच जाते हैं।

जेलखाने हैं गरीबों के लिअे, श्रमजीवी और अप्रतिष्ठित लोगों के लिअे। वे ही बेचारे जेल में भेजे जाते हैं और अुन्हीं के साथ जेल में सब किस्म की ज्यादतियाँ की जाती हैं। अुनकी रिहाअी और कल्याण की किसे परवाह है?

जेल या कारावास की संस्था मनुष्यजाति ने किस लिअे बनायी है? यूरोपीय लोग कहते हैं कि कारागृह की संस्था धर्मव्यवस्था के द्वारा ही राज्यतंत्र में दाखिल की गयी

है। जिसने पाप किया अुसको चाहिअे कि वह प्रायश्चित्त भी करे। वह सिर मुंडा कर अेकान्त में जा कर बैठ जाये, समाज से अलग हो कर खानपान में सख्त परहेज रक्खे, प्रायश्चित्त के तौर पर अपने शरीर को कष्ट दे और अिस तरह से शुद्ध होने के बाद समाज में फिर से शरीक हो। धर्मव्यवस्था में मनुष्य ये सब बातें स्वेच्छा से करता है और अुससे अुसे लाभ भी होता होगा। किन्तु राज्यतंत्र में अपराधियों से यह प्रायश्चित्त जबरदस्ती कराया जाता है। अिसलिअे अुसका असर कुछ भी नहीं होता। जो होता है वह अुलटा ही होता है। हमारे यहां कारावास की कल्पना और नरकवास की कल्पना अेक ही है। आदमी को अेक दिन की सजा दे कर समाज संतुष्ट कैसे हो सकता है? "अपराधी को बारबार सताना चाहिअे, लगातार पीड़ा देनी चाहिअे, वह भाग न जावे अिसलिअे अुसे सींकचों में बन्द रखना चाहिअे, जब तक समाज की बदला लेने की वृत्ति तृप्त न हो जाय और कैदी की तेजस्विता बिलकुल नष्ट न हो जाय तबतक अुसे सताते रहना चाहिअे"—अैसा ही कुछ खयाल मनुष्यजाति के मन में था। गरुड-पुराण में नरकयातना का जो वर्णन आता है, जैन शास्त्र में भी नरकयातना के जो चित्र खींचे गये हैं, वे सब मनुष्य की प्रतिशोध या प्रतिहिंसा की वृत्ति के ही द्योतक हैं। मनुष्य ने अगर अेकगुना गुनाह किया हो तो अुसके प्रति दसगुना गुनाह करने का समाज को मानों हक ही मिल गया, अैसा ही समाज का खयाल हो जाता है।

सच देखा जाय तो हर अेक गुनहगार को मरीज़ के जैसा समझना चाहिअे और जेलखाने को शफ़ाखाना मानना चाहिअे। किन्तु जिस समाज में आज तक कभी शफाखानों की व्यवस्था भी जेलखाने के ही जैसी होती है; वहां जेलखाने को शफाखाना समझने की बात कहने से हम आगे थोड़े ही बढ सकेंगे?

आदमी गुनहगार है या नहीं यह तय करने के लिअे बड़े बड़े विद्वान और चारित्र्यवान न्यायाधीश रक्खे जाते हैं। हजारों रुपयों की तनख़ाहें अुन्हें दी जाती हैं। मनुष्यबुद्धि का पूरा अुपयोग कर के सूक्ष्म कानून बनाये जाते हैं। और अितना सब करने पर भी न्यायाधीश की मदद के लिअे अेक अेक दिन की हजार हजार रुपये फीस लेनेवाले वकील-बेरिस्टर अभियुक्तों की ओर से लगाये जाते हैं। किन्तु जहां अेक बार कोअी शख्स अपराधी साबित हुआ तो फिर समाज अपनी सहानुभूति तथा न्यायबुद्धि भी अुसकी ओर से बिलकुल हटा लेता है!

अपराधनिर्णय के लिअे जैसे कानून बनाये गये हैं, वैसे ही अपराधियों को किस तरह से सजा दी जाय, अथवा, दोषमुक्त किया जाय, अिसका भी शास्त्र तैयार करना चाहिअे। जैसे रोगमुक्त करने के लिअे चिकित्साशास्त्र पैदा हुआ है अुसी तरह लोगों को दोषमुक्त करने का शास्त्र भी हमें तैयार करना होगा।

मान लीजिये कि किसी राज में मरीजों के लिअे अैसी व्यवस्था की गयी है कि न्यायमन्दिर के समान आरोग्यमन्दिर की अदालत बनायी गयी है। वहां बीमारों

पर बीमार होने का अभियोग लगाया जाता है, वे अपनी ओर से हम खुद हो कर बीमार नहीं हुअे यह साबित करने की कोशिश करते हैं और डाक्टरी अदालत में बैठे हुअे डाक्टरन्यायाधीश अुनपर रोगी होने का अभियोग साबित मान लेते हैं; अुनको किसी छोटे या बड़े शफाखाने में अमुक दिनों तक कैद रहने की सजा फर्माते हैं और अपने आज्ञापत्र में लिखते हैं कि अिस आदमी को अमुक दिनों तक जुलाब या रेच दिया जावे, अमुक दिनों तक कुनैन दी जावे, अमुक दिन तक भूखा रक्खा जावे और ये सब सजायें अगर वह चुपचाप सहन कर ले तो अुसे कुछ दिनों की रियायत दी जावे और अुसके दिन पूरे होते ही अुसे रोगमुक्त मान कर छोड़ दिया जावे—तो अुस व्यवस्था के बारे में हम क्या कहेंगे? अूपर का वर्णन पढ़ कर पाठक कृपया हंसें नहीं! हमारे पागलखानों की चिकित्सा करीब करीब अिसी ढंग की होती है। सरकारी शफाखानों में भी कभी कभी अिसी प्रकार का वायुमण्डल देखने में आता है।

हमारी राय यह है कि किसी आदमी को समाज के स्वाभाविक वायुमण्डल से अुठा कर जेलखाने में रखने से न अुस आदमी का हित होता है न समाज का। जो लोग अुन्मत्त हो कर समाज में अत्याचार ही करते रहते हैं, खूनखच्चर, मारपीट, व्यभिचार और दगाबाजी की जिन्हें अैसी आदत पड़ गयी है कि समाज में अुनका रहना ही खतरनाक है, अैसे आदमियों को पकड़ कर समाज से पृथक् ही रखना होगा। किन्तु आम तौर पर किसी को अुसके परिवार या संबंधियों से अलग कर के जेलखाने में रखना ही नहीं चाहिअे। कोअी आदमी सचमुच गुनहगार है या नहीं, और है तो कितना, यही समाज पर प्रकट हो जाय और आदमी का गुनाह समाज के सामने जाहिर हो जाय, अितना समाज-हित के लिअे पर्याप्त है। फिर अैसे गुनहगार के साथ किस तरह पेश आना चाहिअे यह समाज की हर अेक व्यक्ति अपने लिअे आप निश्चित करेगी। अिसके अुपरान्त अगर सजा करनी ही हो तो मानसशास्त्र, समाजशास्त्र और आरोग्यशास्त्र से पूछ पूछ कर नयी सजायें मनुष्य भले ही ढूंढ ले। किन्तु हर अेक बात पर जुर्माना और कैद—ये ही दो प्रकार आज के समाज ने रक्खे हैं। यह मनुष्य-समाज की बुद्धिमानी को शोभा नहीं देता। जैसे अनेक प्रकार के रोगों के लिअे अनेक प्रकार की चिकित्सायें हैं अुसी तरह सब किस्म के अपराधों का अध्ययन, विश्लेषण और वर्गीकरण करना चाहिअे और भिन्न भिन्न वर्ग के अपराधों के लिअे मानसशास्त्र और समाजशास्त्र बतावे वे ही सजायें रखनी चाहिअे। जिस तरह डॉक्टर या वैद्य रोज मरीज की नब्ज देख कर चिकित्सा में परिवर्तन करता है अुसी तरह गुनहगारों को भी समय समय पर देख कर अुनकी जांच कर अुनकी सजा में परिवर्तन करना चाहिअे। अगर कोअी कहे कि अैसी जाँच करना कठिन है, मनुष्य के दिल के अन्दर जा कर अुसकी थाह लेना मनुष्यशक्ति से बाहर है, तो अुसका जवाब यही है कि अैसी हालत में किसी को अेक दिन से अधिक की सजा देने का अधिकार भी मनुष्य को नहीं होना चाहिअे। आज जब

कि श्रमजीवी जनता को राजनैतिक अधिकार अधिकाधिक देने की बात चल रही है तब अुसके जीवन की प्रतिष्ठा हमें बढ़ानी चाहिये और अपना दण्डविधान भी मनुष्योचित बनाना चाहिये।

का० का०

'भारत हमारा देश है' (?)

हिन्दुस्तान में जिन लोगों ने जन्म लिया और हिन्दुस्तान ही मे जिन्हें रहना है वे हिन्दुस्तान के हैं अिसमें तो कोअी शक नहीं। हिन्दुस्तान ने अुन को जन्म दिया, आबोहवा दी, आहार-विहार का सामान दिया, और यहां के समाज में कुछ स्थान भी दिया। अुनके लिअे जो करना था वह हिन्दुस्तान ने कर दिया। अिसलिअे वे हिन्दुस्तान के हो गये। किन्तु अितने से हिन्दुस्तान अुनका नहीं हो जाता। अगर वे कहें कि 'हिन्दुस्तान हमारा है' तो तुरन्त अुनसे पूछा जायगा कि 'आपने हिन्दुस्तान के लिअे क्या किया है? आपकी अैसी कौनसी तपस्या है कि जिससे आप यह दावा करते हैं कि हिन्दुस्तान आपका देश है'?

जब हम हिन्दुस्तान के सब लोगों को भाअीबहन समझ कर अुन्हें प्रेम से अपनायेंगे तब हिन्दुस्तान हमारा होगा। हिन्दुस्तान के लोगों को सुखी करने के लिअे जब हम तनतोड़ मिहनत करेंगे तब हिन्दुस्तान हमारा होगा। मौका मिलते ही कन्याकुमारी से काश्मीर तक और करांची से ले कर कलकत्ते तक घूम कर देश के पहाड़ और नदियां, झीलें और अरण्य, शहर और गांव, जंगल और खेत, तीर्थस्थान और अुद्योगस्थान, धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र, सब का भक्तिभाव से दर्शन करेंगे; जब हिन्दुस्तान की छोटीबड़ी सब बोलियां कितनी हैं, कौनसी हैं, अिस की खोज करेंगे, हर अेक बोली का कोष और व्याकरण तैयार करेंगे, अुन बोलियों में अपना जीवन और हार्द व्यक्त करनेवाले लोगों से अेकरूप हो जायेंगे और अुनकी बुद्धिशक्ति बढ़ाने की कोशिश करेंगे--तब हिंदुस्तान हमारा होगा। हिंदुस्तान के बीमारों की, अनाथों की और पतितों की सेवा करने के दायित्व को जब हम पहचानेंगे और अुन्हें अपने ही भाअीबहन समझ कर, दया से नहीं किन्तु प्रेम से, बन्धुत्व से, अुनकी सेवा करने का समुचित प्रयत्न करेंगे तब हिन्दुस्तान हमारा होगा। लिपिकार गणेशजी के अुपासक हम जब फी सदी ९३ निरक्षर लोगों को अक्षरज्ञान देने का, अुन्हें साक्षर बनाने का, प्रचण्ड प्रयत्न करेंगे तब जा कर कहीं हिन्दुस्तान हमारा होगा। हिन्दी, अुर्दू, बंगला, तेलगू, मराठी, गुजराती, कन्नड, तामिल, आदि हमारी संस्कार-संपन्न भाषाओं में आधुनिक सब शास्त्रों को ग्रहण करने की क्षमता जब हम पैदा करेंगे तब शायद अभिमान से कह सकेंगे कि हिन्दुस्तान हमारा है। जब हम अपने पुरुषार्थ से अैसा कहने की योग्यता हासिल करेंगे कि हमारे देश में कोअी भी आदमी अुद्योगरहित नहीं है, बेहुनर नहीं है, भूखा और मुहताज नहीं है—तब यह आप ही आप सिद्ध हो जायगा कि हिन्दुस्तन हमारा देश है। और हिन्दुस्तान में रहते हुअे जब हममें से हर अेक भारत की स्वतंत्रता के खातिर मर मिटने को हमेशा तैयार रहेगा तब सारी दुनिया भी अेक आवाज से कहेगी कि 'बेशक हिन्दुस्तान अिन्हीं का है'।

जब हम यह कहना चाहते हैं, अथवा गाना चाहते हैं, कि "भारत हमारा देश है", तब हमें अपने हृदय से पूछना चाहिये कि "क्या हमारा दिल भारत के जितना विशाल और व्यापक है? क्या हिन्दुस्तान के सज्जन और दुर्जन, पुण्यवान और पापी, महात्मा और दुरात्मा, देशप्रेमी और देशद्रोही, बूढे और बच्चे, ओसाओी और यहूदी, आर्यसमाजी और ब्राह्मसमाजी, हिन्दू और मुसलमान, पोर्च्यूगीज और पारसी, स्त्री और पुरुष, धनी और गरीब, आस्तिक और नास्तिक, विद्वान और बुद्धू—सब के सब हमारे कुटुम्बीय ही हैं? क्या हम अुनके हैं और वे हमारे हैं? क्या, अुनका दुख हमारा दुख है, अुनका दुराचार हमारा दुराचार है, हमारा प्रायश्चित्त अुनका प्रायश्चित्त है?" अगर दिल के अन्दर से स्पष्ट आवाज आये कि "हां, हम बिलकुल अैसा ही मानते हैं"—तब तो स्वयं भगवान ही कहेगा कि "सचमुच भारत तुम्हारा ही है।"

हम अपने जन्म से अथवा वास्तव्य से हिन्दुस्तान के बन जाते हैं। किन्तु जीवन-भर की तपस्या से ही हिंदुस्तान हमारा हो सकता है।

हिन्दुस्तान की अपनी जानकारी की हमें जांच करनी चाहिये। क्या हम पहले के समान चार धामों की यात्रा करते हैं? क्या हम कुंभ आदि मेलों में लाखों की तादाद में अिकट्ठा होने वाले भारतवासियों के साथ अेक-हृदय हो सकते हैं? क्या हमने अपने देश के पवित्र से पवित्र स्थानों का सच्चा महात्म्य सुना है, सोचा है? पुरानी बात जाने दीजिये। सूत और नारद, रोमहर्षण और बलराम, अगस्ति और परशुराम आदि प्राचीन भारत-यात्रियों के यात्रावर्णनों को छोड दीजिये। आजकल के नये गॅझेटियर भी अगर हम ले लें तो अुनमें से हमारे लोगों के बनाये हुये कितने हैं; और अंग्रेज हाकिमों के बनाये हुये कितने हैं? हिन्दुस्तान की पिछडी हुयी जातियों का वर्णन, अुनका स्वभाव, अुनकी आदतें, अुनकी धार्मिक मान्यतायें और अुनका जीवनक्रम आदि बातों की आवश्यक जानकारी हम लोगों ने अिकट्ठी की है; या मिशनरी लोगों ने? आसाम, बिहार, मध्यप्रान्त आदि में जो पर्वतीय जातियां हैं अुनकी भाषा का अध्ययन हमने किया है? अुनकी सेवा कर के अुनकी जीवन-यात्रा सुखद करने का और अुनको मनुष्यत्व के सब अधिकार प्राप्त कराने का प्रयत्न हमने किया है? देश के सैंकडों और हजारों छोटेमोटे अुद्योगहुनर हमने अपनी अुपेक्षा से और परदेशी चीजों के मोह से मरने दिये अुसका दुख हमें कभी हुआ है? गांव के लोगों में जो अज्ञानता और अबुद्धि भरी हुयी है क्या अुसको हटाने की कोओी कोशिश की है? बीमारी और रोग जिस तरह से राष्ट्र की प्राण-शक्ति को क्षीण करते हैं अुसी तरह वहम और भ्रान्त कल्पनायें देश की बुद्धि का और चारित्र्य का न्हास करती हैं, अुनके खिलाफ क्या हमने कभी बडा जंग छेडा है? हमारा ही अैसा अेक देश है कि जिसमें शंकराचार्य जैसे अद्वैतवादी भी रहते हैं और अुन्हींके पडोस में रहनेवाले अपने बच्चों का, या घर के पशुपक्षियों का, बलिदान देने के लिये भी तैयार हो जाते हैं। जैसी गिरी हुयी हालत मौजूद है अुसीमें संतुष्ट रहना, किसीने कुछ भी परिवर्तन या सुधार

की बात कही तो अुसका विरोध करना और बुरे से बुरे रिवाज के बचाव के लिअे दुनियाभर के शास्त्र और विज्ञान और कानून समाजसेवकों के सामने खड़े कर देना—अिसी का नाम अगर धर्मनिष्ठा है, धर्माभिमान है तो वह हमारे देश में काफी मात्रा में है। आज जब हम त्रिवार शान्ति की घोषणा करते हैं तो हमारा यह मतलब होता है कि "हमें शान्ति से अन्याय करने दो, शान्ति से गुलामी का आनन्द लेने दो और शान्ति से निष्क्रियता का सुख लेते लेते मरने दो।" अैसे शान्तिपाठ से हिन्दुस्तान हमारा नहीं हो सकेगा। हिन्दुस्तान की विशाल भूमि में अपना जीवन बो देने से और अपने खून और पसीने से अुसको सींचने से ही हिंदुस्तान हमारा होगा।

का० का०

सर्वोदय और साम्यवाद का अविरोध

जब यहां अंग्रेजों का राज्य हुआ तो हमें अुनकी फौज अपने खर्च से रखनी पडी, अुनके कानून कबूल करने पडे, अुनकी भाषा सीखनी पडी और अपनी मिहनत की कमाअी का बहुत बड़ा हिस्सा टैक्स के रूप में अुन्हें देना पड़ा। अितना ही नहीं, मौके बेमौके अुनके हाकिमों के मुंह से और अुनके पादरियों के मुंह से अुपदेश भी सुनने पड़ते थे। गुलामी का यह फल निगल जाना सब से कठिन था। जो विजयी हुआ अुसकी संस्कृति सब से श्रेष्ठ है अैसा माना ही जाता है। "तुमलोग गिरे हुअे हो, हम सुधरे हैं, हम श्रेष्ठ हैं, हम से सबक सीखो और अपना अुद्धार करो", अैसी बातें सुनते सुनते हम तो अूब गये थे। तो भी सुनना तो पड़ता ही था। हम लोगों ने सुन लिया। अपने समाज को सुधारने की कोशिशें कीं और अपनी संस्कृति के समर्थन में हमने साहित्य भी निर्माण किया। हमलोग जागे और जाग कर अपने को सुधारने भी लगे।

क्या अिंग्लैंड ने स्वयं भी वैसी ही जागृति बतायी? अिंग्लैंड है तो जाग्रत राष्ट्र; किन्तु विजय के कारण अुसकी नज़र शुद्ध नहीं रही। अिंग्लैंड हमें अुपदेश देता गया और खुद गिरता गया। जो अुपदेशक होता है अुसको अुपदेश देने की आदत के कारण आत्मनिरीक्षण करने को अवकाश ही नहीं रहता। अिंग्लैंड ने सदियों तक फरान्स से दुश्मनी की। फरान्स ने क्रांति कर के नया जीवन धारण किया। अिंग्लैंड ने ज़ार के रूस की घोर निन्दा की। रूस सुधर गया। अिंग्लैंड ने सुलतानी तुर्कस्तान की बदनामी की। तुर्कस्तान ने कायापलट किया। अिंग्लैंड ने कैसर के जर्मनी के खिलाफ सारी दुनिया का संगठन किया। जर्मनी ने कैसर को भी छोड़ दिया और साथ साथ अिंग्लैंड के डर को भी। और आज वह सारी दुनिया के सामने खड़ा हो कर अपने साम्राज्य की फिर से स्थापना करने का प्रचंड प्रयत्न कर रहा है। अिंग्लैंड ने आफिरका, चीन और हिन्दुस्थान को दयापात्र जाहिर किया। अब आफिरका में जागृति शुरू हुअी है। चीन या तो मर जायगा या अेशिया का प्रधान राष्ट्र बन जायगा। और हिन्दुस्थान अब दयापात्र नहीं रहा है। अगर अीश्वर की वैसी मर्जी हुअी तो ब्रिटिश साम्राज्य की जगह जो राष्ट्रसंघ निर्माण होगा अुसका नेतृत्व हिन्दुस्थान को ही अपने हाथ में

लेना होगा। ज़माना बदल गया है। यूरोप की संस्कृति ने सौ सवासौ बरसों से दुनिया का नेतृत्व किया है। अब राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद छोड़ कर समाजवाद और साम्यवाद के नाम से यूरोप और अेक दफ़ा दुनिया का नेतृत्व अपने हाथ में रखना चाहता है। साम्यवाद और समाजवाद दुनिया के लिअे हितकर हो सकते हैं। किन्तु अुनका प्रचार और अुनकी स्थापना करने की पात्रता यूरोप में है या नहीं यह देखना होगा। स्टॅलिन के रूस ने यह बता दिया है कि वह रूसी मनोवृत्ति से बचा हुआ नहीं है। अिंग्लैंड ने बता दिया है कि लोकतंत्र का रक्षक बनने के लिअे जो चारित्र्यशुद्धि और चारित्र्यतेज चाहिअे वह अुसमें नहीं है। हिटलर के जर्मनी ने दुनिया को बता दिया है कि दुनिया का नेतृत्व यूरोप कर ही नहीं सकता। अब तो दुनिया का नेतृत्व यूरोप के बाहर ही जायगा। यूरोप का शिष्य बनने से कितनी योग्यता प्राप्त हो सकती है अिसका अुदाहरण हम जापान में पाते हैं।

अब दुनिया के सामने दो ही रास्ते हैं। दोनों प्रगतिशील हैं। दोनों वर्धमान हैं। अेक है समाजवाद–साम्यवाद का और दूसरा गांधीजी के सर्वोदय का।

अिस युद्ध के अन्त में साम्राज्यवाद मिट ही जायगा। राष्ट्रवाद विजयी हुआ भी तो वह भविष्य का नेतृत्व नहीं कर सकेगा। राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद, दोनों के दिन अब लद गये हैं। अब तो होड़ केवल दो ही जीवनव्यवस्थाओं के बीच है—सर्वोदय और साम्यवाद। दोनों में से अेक का स्वीकार हमें करना ही पड़ेगा। स्वार्थी राष्ट्रवाद और मनुष्यद्रोही साम्राज्यवाद दोनों को मिटाने के लिअे सर्वोदय और साम्यवाद के बीच सहयोग स्थापित होना आवश्यक है। कम से कम दोनों के बीच विरोध तो होना ही नहीं चाहिअे। अिस अवसर पर अधिक अुत्तरदायित्व है सर्वोदय के रास्ते चलनेवालों का। सत्य और अहिंसा जिनका साधन है अुनको तो **नम्रत्वे नोपमन्तः** की नीति ही हमेशा स्वीकार करनी पड़ती है। नम्र होकर, शून्यवत् हो कर, निराग्रही सेवा कर के ही वे अपनी शक्ति का परिचय दे सकते हैं और अपने सिद्धान्तों को सिद्ध कर सकते हैं।

अगर हिन्दुस्तान ने साम्यवाद का रास्ता ले भी लिया तो भी जिस हिम्मत से रशियन लोग साम्यवाद का अपनी परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन कर लेते हैं और अन्तिम परिस्थिति का खयाल करते हैं अुसी तरह हिन्दुस्तान को भी अपने ढंग का मर्यादित साम्यवाद या समाजवाद स्थापित करना पड़ेगा और सर्वोदय के साथ समझौता करना पड़ेगा। साम्यवाद और सर्वोदय अेक दूसरे के साथ सहयोग करते करते आगे बढ़ेंगे और साम्राज्यवाद और प्रजापीड़न का आमूलाग्र अुच्छाटन करेंगे।

अिस कार्य को सिद्ध करते करते सर्वोदय का भी आत्मपरिचय बढ़ेगा और साम्यवाद को भी अपना रास्ता अधिक स्पष्ट दीख पड़ेगा। मुकाम तक पहुंचते पहुंचते दोनों का अेक दूसरे पर अैसा प्रभाव पड़ेगा कि हर अेक की खूबी दूसरे में दाखिल होगी और हिन्दुस्तान की भूमि पर अेक अैसा नया सुन्दर रसायन तैयार होगा कि जिस के प्रयोग से मनुष्यजाति अपनी नवनिर्मिति सिद्ध कर सकेगी।

नम्रत्वे नोन्नमन्तः

अिस किस्म की जिसकी श्रद्धा है वह कांग्रेस की कार्यसमिति के पत्रक का स्वागत किस प्रकार से करेगा? कार्य-समिती की घोषणा में साम्यवाद की परि-भाषा का बडी चतुराअी से शब्दान्तर किया गया है। किन्तु यह स्पष्ट है कि अुसमें गांधी–नीति का प्राधान्य नहीं रहा है। पचास बरस तक जिस कांग्रेस ने स्वराज्य की अनन्य साधना की है और पिछले महायुद्ध के समय गांधीजी के आदेश के अनुसार जिस कांग्रेस ने अंग्रेज सरकार को बेशर्त सहानुभूति दिखाने का प्रयत्न किया है, अुस कांग्रेस का अभिप्राय कार्यसमिति के अिस वक्तव्य में अच्छी तरह प्रतिबिम्बित हुआ है अिसमें तो शक नहीं। किन्तु क्या वह भूमिका जो कांग्रेस ने अपने लिअे तय की है, स्वराज्य के लिअे हिततम है? यह अेक प्रश्न है। और, क्या वह अहिंसा के मार्ग के अनुकूल है? यह दूसरा प्रश्न है। पहले प्रश्न पर हर अेक को सोचना चाहिअे। और दूसरा अुन लोगों के विचार के लिअे है जो आज तक न केवल अहिंसा की दुहाअी ही देते थे किन्तु सचमुच अहिंसा में मानते भी थे।

हम प्रथम पहला ही प्रश्न लेंगे। कांग्रेस की कार्यसमिति का पत्रक और मुस्लिम-लीग की कार्यसमिति का प्रस्ताव साथ साथ पढ़ना जरूरी है।

"पूर्ण स्वराज्य का वचन जब तक नहीं मिलेगा तब तक हमारी सहानुभूति और हमारा सहयोग नहीं मिलेगा," यह है कांग्रेस की घोषणा। और "कांग्रेस जैसा स्वराज्य चाहती है वैसा स्वराज्य अुसे नहीं दिया जायगा अैसा वचन जबतक सरकार नहीं देगी तबतक लीग की सहानुभूति और सहयोग नहीं मिल सकेगा" यह है लीग की घोषणा। अंग्रेज तो कहते हैं कि आपस में समझौता कर के हमसे जो मांगोगे वह मिल जायगा।

हम आपस में समझौता कैसे करें? बडा भाअी छोटे भाअी को सब कुछ दे कर अुसे मनावेगा? या अंग्रेज हमें आपस में जितना कुछ लड़ने देंगे अुतना लड़ कर फिर अंग्रेजों की शरण ले कर अुन्हीं से तसफिया करावेंगे?

दूसरा रास्ता राष्ट्र संगठन तोड़नेवाला और आत्मनाश करनेवाला है। अगर पहला रास्ता हम पूरा पूरा अमल में नहीं ला सके तो वह महंगा प्रतीत होगा और व्यर्थ भी जायगा।

अहिंसावादी लोगों का यह विश्वास है कि अहिंसा के रास्ते न किसी का आत्यं-तिक नुकसान हुआ है; न किसी की प्रगति में बाधा पडी है। अहिंसा का संगठन स्वयंभू होता है। अहिंसापक्ष का विरोधी जब स्वयं अहिंसक बनेगा तभी सफलता की आशा कर सकता है; अन्यथा नहीं। और अहिंसा जब जब बाह्य कारणों से परास्त होती है तब तब अुसका जोर बढाता ही है।

अितना तो स्पष्ट ही है कि सर्वोदय और समाजवाद दोनों के सहयोग में दोनों की मुठभेड शुरू हुअी है और अहिंसा ने नम्रत्वे नोन्नमन्तः की नीति का प्रारंभ किया है।

का० का०

हमारा खास मर्ज़

कुछ बीमारियां अैसी होती हैं कि जरासी और हलकी से हलकी चीज़ खाने पर भी तुरन्त कै हो जाती है। पेट में कोअी चीज़ टिक ही नहीं सकती। तब यह सोचना पड़ता है कि अैसी कौनसी चीजें हैं जिनके खाने से कै न हो और मरीज़ की ताकत भी बढ़े। हिन्दुस्तान की बदकिस्मती से हमें जब जब कुछ नाम मात्र के स्वराज्य के अधिकार मिलते हैं तब तब हमारे अन्दर अित्तेफ़ाक न होने की वजह से हमें फौरन कै हो जाती है; और हमारी ताकत बढ़ने के बजाय चारों तरफ़ की हवा में बदबू और गन्दगी फैल जाती है। अधिकार हज़म करने की ताकत ही हमारे देश में पैदा नही हो पायी है।

आज भी यही अनुभव हो रहा है। कॉंग्रेस की कार्यसमिति ने यूरोपीय महायुद्ध के विषय में अेक पत्रक निकाला। अुसे देखते ही मुस्लिमलीग की कार्यकारिणी ने ठीक अुससे अुलटा प्रस्ताव मंजूर किया। यह हाल देखते ही आदमी असमंजस में पड़ जाता है कि अिस मर्ज़ की भी कोअी दवा हो सकती है? लोग कहते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें ढीली हो गयी हैं। लेकिन फिर भी अंग्रेजों को हिन्दुस्तान का बड़ा भारी सहारा है। हमारे यहां तो अुस साम्राज्य की जड़ें मज़बूत करने की कोशिशें हो रही हैं। पराराज्य की गुलामी में विश्वास करनेवाले जितने लोग हमारे देश में हैं अुतने दुनिया के दूसरे किसी देश में नहीं हैं। यदि कोअी विदेशी सल्तनत की जड़ें यहां से अुखाड़ने की कोशिश करेगा तो ये अुस सल्तनत के खैरख्वाह बन कर अुसके बैरियों के दांत खट्टे करेंगे।

हर कौम या जमात को अपनी अपनी सलामती का ख्याल तो करना ही पड़ता है। यह कोअी अनुचित बात नहीं है। लेकिन हर अेक चीज़ को शकोशुबहा की नज़र से देखना और हर मौके से जायज-नाजायज फायदा अुठाने की ताक में रहना न तो मुनासिब है, न हितकारी।

परन्तु हो सकता है कि अैसी मुसीबतों में से अपना रास्ता निकालने की शक्ति भगवान् हमारे अन्दर पैदा करना चाहता है और दुनिया के सामने अेक अनोखी मिसाल पेश करना चाहता है। भगवान् का यह तरीका है कि वह जिससे दुनिया में कुछ कराना चाहता है अुसके सामने मुश्किल से मुश्किल सवाल रख कर अुसकी कड़ी परीक्षा करता है। अिस परीक्षा में से भी कॉंग्रेस सफल हो कर निकले यही प्रार्थना हम कर सकते हैं।

२५:९:३९ का० का०

कॉंग्रेस और गांधीजी

यह टिप्पणी लिखने में मैंने यह मान लिया है कि पाठकों ने गांधीजी का निवेदन और वर्किंगकमिटी का पत्रक पढ़ लिया है।

आज हमारे सामने तीन बातें हैं:—

(१) अहिंसाधर्म और अयुद्धधर्म का संबंध;

(२) अिन दोनों की तरफ कॉंग्रेस का रुख;

(३) अहिंसा-धर्मीय तथा अयुद्धधर्मीय हिंदुस्तानी का कर्तव्य।

जब से गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में, अेक कामचलाअू नीति के रूप में ही नहीं बल्कि अेक स्थायी और अचल सिद्धान्त के रूप में, अहिंसा दाखिल की तब से संसार के अयुद्धवादी (पॅसिफिस्ट) लोगों

के दिल में यह आशा पैदा हुआी कि अुनके मत को मजबूत और बलवान् करनेवाला अेक महान नेता और अुसका सारा देश मिल गया। अयुद्धवादी मानते हैं कि न्यायान्याय का फैसला युद्ध के द्वारा करने का तरीका सरासर हैवानियत है। अिसलिअे युद्ध चाहे कोअी क्यों न छेड़े हमें अुससे असहयोग ही करना चाहिअे।

गांधीजी तत्त्व में अिस बात को मानते हैं। फिर भी अुन्होंने अपने जीवन में अिस तत्त्व को पूर्णरूप से अमल में लाने से अपने आपको बार-बार रोक लिया है। केवल बाहरी दृष्टि से अुस सिद्धान्त में वे कुछ छूटछाट करते हुअे भी जान पड़ते हैं। खुद मनुष्य-हिंसा करने से अिनकार करते हुअे भी अुन्होंने युद्ध में अेक पक्ष को किसी न किसी तरह का सहयोग देने से अिनकार नहीं किया है। गांधीजी का यह व्यवहार अयुद्धवादियों को बराबर खटकता रहा है।

अिस विषय में गांधीजी की भूमिका यह रही है :—

संसार से युद्ध मिटाने की महत्वाकांक्षा रखने के पहले जिन कारणों से युद्ध पैदा होता है अुन्हें दूर करने के अहिंसात्मक तरीके पेश करने चाहिअे और अुनका सफल प्रयोग कर दिखाना चाहिअे। अितना ही नहीं, बल्कि मानवीय सभ्यता की नींव में ही अिसके अनुरूप परिवर्तन कराना चाहिअे। अिसलिअे दुनियाभर के युद्धों का निषेध और लड़ाअी में शामिल होनेवाले सभी पक्षों का विरोध, या अुनसे असहयोग करने से पहले, हमें चाहिअे कि हम अपने देश में ही अहिंसा का प्रयोग करें। अितर देशों की अपेक्षा हिन्दुस्तान में अिसके लिअे ज्यादा अनुकूल हवा है। हिन्दुस्तान में अहिंसा को सफल साबित करने के पहले सारे संसार के लिअे अयुद्धवाद की घोषणा करना जल्दबाजी या छोटेमुंह बड़ी बात कहने के बराबर है। अिसलिअे अपने देश के लिअे, यानी हिंदुस्तान के लिअे, रक्तपात सर्वथा त्याज्य मानते हुअे भी दुनिया के दूसरे देशों के लिअे, अयुद्धवाद नहीं, बरन् न्याय्य युद्ध और अन्याय्य युद्ध का ही भेद करने से हमें संतोष मान लेना चाहिअे। जिस पक्ष में न्याय हो अुसे अहिंसक तरीके से जितना सहयोग देना संभव हो अुतना देना कर्तव्य-रूप समझना चाहिअे।

अिस दृष्टि से अिटाली बनाम हब्शीनिया, जापान बनाम चीन, फॅसिस्टस्पेन बनाम प्रजाकीय स्पेन की लड़ाअियों में, क्रमशः हब्शीनिया, चीन तथा प्रजाकीय स्पेन के साथ सहानुभूति प्रकट करने में तथा जो सहायता देना संभव हो अुसे देने में अुन्हें आपत्ति नहीं थी। अहिंसक होते हुअे भी अुनकी दृष्टि में यह केवल मानवधर्म ही था। अिन जनताओं से यह कहना कि तुम अहिंसा से ही दुश्मन का मुकाबला क्यों नहीं करते, अनुचित होता।

जब किसी लड़ाअी में अेक तरफ ब्रिटिश राज्य हो और अुपर्युक्त न्यायबुद्धि के अनुसार अुसके पक्ष में न्याय है अैसा प्रतीत होता हो, तब भी वही धर्म हमारे लिअे प्राप्त हो जाता है। अुन्हें भी अपनी सहानुभूति और सहयोग देना कर्तव्य हो जाता है। ब्रिटिशराज्य साम्राज्यवादी है, अथवा अुसका और हमारा हिसाब होना अभी बाकी है, यह बात अहिंसक मनुष्य को अपने कर्तव्यपालन में रोक नहीं सकती।

बल्कि, अुनका और हमारा खट्टा या मीठा डेढ़ सौ साल का सम्बन्ध है, अिस बात का खयाल जरूर आ सकता है।

जहां तक मैं समझ सका हूं और सोच सकता हूं, गांधीजी की भूमिका अैसी है।

वर्किंगकमिटी के पत्रक में गांधीजी की भूमिका का अस्वीकार दो तरह से कर दिया गया है। गांधीजी की राय यह है कि हमें बेशर्त अहिंसक सहयोग देना चाहिये। वर्किंग कमिटी की राय बेशर्त सहयोग की नहीं, बल्कि शर्ती सहयोग की है। और यदि अुसकी शर्तें पूरी कर दी जायें तो अहिंसक सहयोग ही नहीं, वरन् हिंसक सहयोग भी देने की तैयारी अुसके पत्रक में सूचित है। गांधीजी की दृष्टि में तो शर्त पेश करना भी अेक तरह की हिंसा हो सकती है। अिसलिअे वर्किंग कमिटी का यह वक्तव्य गांधीजी की अहिंसक दृष्टि को कुछ अंश में छोड़ कर कॉंग्रेस को नयी पटरी पर ले आने के निर्णय जैसा प्रतीत होता है।

अैसी हालत में आगामी अखिल भारतीय कमिटी के सामने अेक बड़ा भारी सवाल पेश होनेवाला है। सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा करने पर अखिल भारतीय कमिटी की आगामी बैठक कॉंग्रेस का गांधीयुग में से नेहरूयुग में पदार्पण करनेवाली भी साबित हो सकती है।

अिस परिस्थिति में हिंदुस्तान में अगर कोअी प्रभावशाली शुद्ध अयुद्धवादी हो तो अुसे गांधीजी की भूमिका से संतोष होना संभव नहीं है। और कॉंग्रेस में तो अुसका स्थान हो ही नहीं सकता। अैसे प्रभावशाली अयुद्धवादी हिन्दुस्तान में कितने हैं यह अेक सवाल ही है। जिनके अयुद्धवाद का व्यवहार में कोअी प्रभाव पड़ना मुमकिन नहीं अुनकी अुपेक्षा युद्धवादी सरकार और जनता अिस बड़े देश में आसानी से कर सकती है। युद्ध का विरोध कर वे केवल आत्मसंतोष प्राप्त कर सकते हैं। अुनके लिअे वैसा करना अच्छा भी है। क्योंकि अुनकी श्रद्धा आज निर्बल-सी भले ही प्रतीत होती हो लेकिन वह कभी न कभी प्रभावशाली अवश्य होगी। फिलहाल तो अिन चन्द लोगों की अुपेक्षा की जा सकती है।

तब, चूंकि वर्किंग कमिटी ने बेशर्ती सहयोग की भूमिका छोड़ दी है अिसलिअे, अखिल भारतीय कमिटी के सदस्यों के सामने अेक ही सवाल अुपस्थित है:—

अगर सरकार कोअी समझौता कर ले तो कॉंग्रेस युद्ध में सरकार को केवल अहिंसक सहयोग देने को तैयार रहेगी; या सभी प्रकार का सहयोग ? ' कॉंग्रेस का तत्त्वतः परिवर्तन होने जा रहा है या नहीं ? ' अिसका अुत्तर अिसी बात पर आधार रखता है।

संभव है कि यह परिवर्तन आज टल भी जाय। तो भी अितना तो निश्चित ही है कि वर्किंगकमिटी के अिस पत्रक ने गांधीवाद की पकड़ ढीली कर दी है और पं० जवाहरलाल को नवयुग का नेता मान्य किया है।

पं० जवाहरलाल और अुद्योगवाद

अर्थात् अब पं० जवाहरलाल पर अेक बड़ी भारी जिम्मेवारी आ जाती है। आजतक जो लोग गांधीजी के नेतृत्व में काम करते आये हैं अुन्हें अिस परिवर्तन के कारण कुछ

क्षोभ, भय और आशंका हो तो कोअी ताज्जुब नहीं है। अुनके दिल से अिन भावों को हटाना, अुनका विश्वास संपादन करना और अुनकी शक्ति बढाना अथवा अुन्हें अलग कर देना, पंडितजी की नीति और विचारों पर निर्भर है। यह कहने में मैं कोअी रहस्य प्रकट नहीं करता कि अुद्योगवाद के विषय में पंडितजी के जो विचार हैं अुनके कारण, जिन्हें गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में दिलचस्पी है, अैसे कार्यकर्ताओं के दिल में अेक डर पैदा हो गया है। अुन्हें यह आशंका है कि जवाहरलालजी आहिस्ता आहिस्ता खादी, ग्राम-अुद्योग, बर्धा-शिक्षा, आदि का काम तमाम कर देंगे। देश की औद्योगिक नवरचना के सम्बन्ध में नेहरूजी की जो विचारधारा है वह गांधी-कार्यकर्ताओं को नहीं जंचती। अिन रचनात्मक कामों को तोडना, या अुनकी तरक्की में रुकावट डालना बहुत आसान है। क्योंकि वह तो निर्धनों की कुटियां बनाने का काम है। अैसी कुटियों के बनाने में दस-पन्द्रह रुपये ही लगते हैं। लेकिन ये दस-पन्द्रह रुपये अुन लोगों के हैं जिनके लिअे अुनकी कीमत हजारों रुपयों से अधिक है। अब देखना यह है कि विशेष अनुभव के बाद अिस विषय में पंडितजी के विचार कौनसा रूप लेते हैं ?

गांधी सेवा संघ की स्थिति

अिस परिवर्तन में गांधी सेवा संघ, के सदस्यों की भूमिका क्या होगी ? या, संघ में किस प्रकार के हेरफेर होंगे ? गांधी सेवा संघ गांधीजी का बनाया हुआ नहीं है। अिसलिअे गांधीजी अुसे अपनी नीति स्वीकारने का आदेश तो नहीं दे सकते। लेकिन संघ ने तो खुद ही कर गांधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार चलना अपना अुद्देश बनाया है। युद्ध के विषय में गांधीजी के जो विचार हैं वे अूपर बतलाये जा चुके हैं। संघ के जो सदस्य वर्किंगकमिटी में है अुन्होंने बेशर्त सहयोग की सलाह अस्वीकार कर ली है। अब देखना है कि, यदि सहयोग देनेयोग्य परिस्थिति पैदा हो जाये, तो संघ के कॉंग्रेस-जन अहिंसक सहयोग की मर्यादा में ही रहना पसन्द करेंगे, या हिंसक सहयोग देने के लिअे भी तैयार रहेंगे।

और यह भी अेक सवाल है कि जो अपने आपको आयुद्धवादी मानते हैं वे भी गांधी सेवा संघ के सदस्य रह सकते हैं या नहीं ?

कि० घ० म०

आत्मबल की श्रेष्ठता

अेकमात्र कसौटी ! अिसी कसौटी में अधिक से अधिक वीरता और सभ्यता है और बडी से बडी तथा निश्चित विजय का आश्वासन भी है। क्योंकि अेक हथियारबन्द मनुष्य जनसमूह का सामना नहीं कर सकता; और न अेक सेना असंख्य सैनिकदल का मुकाबला कर सकती है। परन्तु विश्व के समस्त साम्राज्यों की सारी सेनाये भी अेक सच्चे मनुष्य की आत्मा को कदापि नहीं कुचल सकती।

—हुतात्मा टेरेन्स मैक्स्विनी

मुसलमान और राष्ट्रीय आन्दोलन

१९२१–१९३०–१९३९

[*जयरामदास दौलतराम*]

मुसलमानों के रुख की दृष्टि से हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन के तीन स्पष्ट अवस्थान्तर हुअे हैं। १९३० में जब कि सविनय-भंग का आन्दोलन शुरू हुआ था अुस वक्त की बनिस्बत अुनका आज का रुख कुछ और ही है। १९३० का अुनका रुख भी १९२१ के आन्दोलन के वक्त के रुख से भिन्न था। जो सार्वजनिक कार्यकर्ता सफल राष्ट्रीय संघर्ष के विविध पहलुओं और अंशों को भलीभांति समझना चाहता है अुसे मुस्लिम रुख के अिन तीन स्थित्यन्तरों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। अैसे अध्ययन से हम वर्तमान परिस्थिति का मुकाबला सही तरीके से कर सकते हैं और अपने कार्यक्रम की ठीक रूपरेखा भी बना सकते हैं।

पहले १९२१ को ले लीजिये। जिन पाठकों को अुस समय के असहयोग आन्दोलन का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है वे अुसका अितिहास अुपलब्ध पुस्तकों में पढ़ें। अुस वर्ष के 'यंग अिण्डिया' की जिल्द बहुत ही अुद्बोधक प्रतीत होगी। १९२० से, यानी असहयोग आन्दोलन के अेक साल पहले, मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली जैसे मुसलमान जनता के बड़े से बड़े प्रभावशाली नेताओं ने सारे देश में गांधीजी के साथ दौरा किया और हिन्दू–मुसलमानों की विराट सम्मिलित सभाओं में व्याख्यान दिये। राष्ट्र के प्रमुख नेता गांधीजी और दूसरे सभी नेता हिन्दू और मुसलमानों के समान-रूप से नेता माने जाने लगे। अुस आन्दोलन का समर्थन करने में मुसलमानों ने हिन्दुओं से किसी कदर कम जोश नहीं बतलाया। हजारों मुसलमान कैद में गये। मुस्लिम नेता ने अपनी हिन्दूविरोधी भावनाओं को रुखसत दे दी और कॉंग्रेस के अनुकूल मनोवृत्ति का विकास किया। अिन दोनों जमातों ने परस्पर धार्मिक सहिष्णुता का विकास जिस मात्रा में अिस जमाने में किया अुतना शायद हमारे राष्ट्र के अितिहास में कभी नहीं हुआ होगा। सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता स्वामी श्रद्धानंद को देहली की जुम्मा मसजिद के अिमाम पर से राष्ट्रीयता का अुपदेश देने के लिअे निमंत्रित किया गया था। मन्दिरों के अहातों में हिन्दुओं की सभाओं में मुसलमान नेताओं के भाषण होते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता के लिअे पूजा-प्रार्थना करने में हजारों शहरों में हिन्दू और मुसलमानों ने अेक दूसरे का साथ दिया। अिस हार्दिक अेकता ने हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिला दिया और तब से वह फिर पहले के समान पुख्ता कभी नहीं हुअी। १९२१, यानी असहयोग के महान आन्दोलन के वर्ष की, यह स्थिति थी।

१९२३–२५ तक हिन्दूमुसलमानों का तनाजा, टंटेबखेडे और दंगों का दौरदौरा था। धीरे धीरे यह कटुता कम होती गयी। और बाद में १९३० में सविनय भंग का आन्दोलन शुरू हुआ। १९२१ के जमाने की हिन्दू–मुस्लिम अेकता के अुज्ज्वल दृश्य फिर दिखायी देना नामुमकिन था! हिन्दू–मुस्लिम तनाजे और दंगों की मुसलमानों को याद तो थी। लेकिन अुसके कारण कॉंग्रेस के कार्य में बाधा नहीं पहुंची। लेकिन फिर भी मुसलमान जनता के प्रभावशाली नेता और अुच्च श्रेणी के मुसलमान १९३० के आन्दोलन से दूर ही रहे। कुछ अुसके खिलाफ रहे और कुछ अुदासीन।

मुस्लिम जनता ने जब हजारों पुरुष और स्त्रियों को, बूढों और बच्चों को खुशी से मातृभूमि की वेदी पर बलिदान करते देखा तो अुसके दिल में अेक तरह की अप्रत्यक्ष सहानुभूति पैदा हो गयी। तिसपर भी यह कहा जा सकता है कि सविनयभंग के आन्दोलन ने हिन्दुस्थान के हर अेक छोटे और बडे शहर में कुछ मुसलमान शामिल हुअे। तो भी सारी मुस्लिम जमात ने अुस आन्दोलन का समर्थन नहीं किया। अिसमें अेक अपवाद है। वायव्य सीमा प्रान्त में खान अबदुलगफ्फार खाँ के अुत्कृष्ट नेतृत्व में खुदाओ खिदमतगारों ने जिस वीरता से मुसीबतें झेलीं और कुरबानियां कीं अुससे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत बल मिला। लेकिन साथ ही साथ मुसलमानों ने आन्दोलन में खलल नहीं किया। और कॉंग्रेस ने भी मुसलमानों की भावना का आदर करने के लिअे देश के कओ हिस्सों में अपने स्वयंसेवकों को यह हिदायत दी कि वे विदेशी वस्त्र की मुसलमानों की दूकानों पर धरना न दें। मतलब यह कि १९३० के आन्दोलन की तरफ मुसलमानों का रुख तटस्थता और कुछ मात्रा में अप्रत्यक्ष सहानुभूति का रहा। मुसलमान अुस आन्दोलन की बुराओ नहीं चाहते थे, बल्कि थोडी बहुत भलाओ ही चाहते थे।

अब हम १९३९ की हालत पर नजर डालते हैं। आअिये, हिन्दुस्थान के अधिकतर प्रान्तों में मुसलमानों का कॉंग्रेस के प्रति जो रुख है अुसका थोडासा सिंहावलोकन करें। अूपर १९२१ की स्थिति का जो संक्षिप्त वर्णन किया गया है अुससे क्या अिसकी कोओ समानता है? कतओ नहीं। अगर कॉंग्रेस आज अेक सम्मिलित आन्दोलन शुरू कर दे तो क्या १९२१ के परस्पर सहयोग के दृश्य हम दुबारा देखेंगे? हरगिज नहीं। १९२१ में दोस्ती और भाओचारे का जो वायुमण्डल हमने देखा, क्या वह फिर देख सकेंगे? बिलकुल नहीं। तो कम से कम क्या हम १९३० के समान तटस्थता और अप्रत्यक्ष सहानुभूति के रुख की आशा भी कर सकते हैं? अिसके भी जवाब में कोओ 'हां' नहीं कह सकता। १९२१ या १९३० की हालत कुछ और ही थी। कॉंग्रेस को अपनी पचास साल की जिन्दगी में मुसलमानों के अितने विरोध और विद्वेष का मुकाबला कभी नहीं करना पडा जितना कि आज करना पड रहा है। मुस्लिम जमात का बडा भारी हिस्सा सिर्फ हिन्दुओं के ही खिलाफ नहीं है जैसा कि १९२३–२५ तक था; वरन् कॉंग्रेसविरोधी है। वे कॉंग्रेस को मुसलमानों पर जुल्म करनेवाली संस्था मानने लगे हैं। वे अुसे मुसलमानों के हित की दुश्मन मानते हैं। वे समझते हैं कि पहले अंग्रेज अुनपर हुकूमत करते थे और अुनके साथ ज्यादती और अन्याय करते थे; अब कॉंग्रेस कर रही है। देश के कओ हिस्सों में वे कॉंग्रेस के खिलाफ हैं। युक्तप्रान्त में तो मुस्लिम और कॉंग्रेस का संबंध बहुत बुरा है। बिहार में भी ठीक नहीं है। दूसरे कॉंग्रेस शासित प्रान्तों में भी दबे हुअे कॉंग्रेसविरोधी भाव हैं। यह सब मुस्लिमलीग के प्रचार का परिणाम है। अिन दो वर्षों में पढे-लिखे मुसलमानों में और मुस्लिम जनता के अेक हिस्से में मुस्लिमलीग के अनुयायी अितने बढ गये हैं जितने कि पहले कभी नहीं थे। मुस्लिमलीग ने साफ तौर से कॉंग्रेस के खिलाफ प्रचार कर अपना असर कायम किया है और बढाया है। कओ शहरों में मुसलमानों ने राष्ट्रीय झंडे का और राष्ट्रगीत वन्दे मातरम् का अेक हद तक सफल विरोध और प्रतिकार भी किया है। यह कॉंग्रेस-विरोधी भावना पढेलिखे मुस्लिम नवजवानों में भी पैठ रही है। मुस्लिम जनता के प्रभावशाली नेताओं में से बहुत-से कॉंग्रेस के खिलाफ हैं।

वर्तमान परिस्थिति के गर्भ में क्या क्या है अिस के ये सब चिन्ह हैं। कुछ प्रान्तों में मुसलमान नवयुवकों को कअी तरह के नामों से स्वयं-सेवक दलों के रूप में संगठित किया जा रहा है। अुन सब बातों का जिन्हें वे मुसलमानों के हित के खिलाफ मानते हैं आक्रमणशील शारीरिक प्रतिकार ही अिस संगठन का आधार है। वे चाहते हैं कि कॉंग्रेस की ताकत अिस देश में अिससे अधिक न बढे। प्रत्यक्ष कॉंग्रेस-विरोध के बीज जमीन की सतह पर चुपचाप पडे हुअे हैं। लेकिन आठ प्रान्तों की कॉंग्रेससरकारें अुन प्रान्तों में भयंकर अुपद्रव नहीं होने देतीं। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति मुसलमानों का आज का रुख अिस तरह का है।

अगर आज हम राष्ट्रीय संघर्ष फिर से छेड दें तो अुसके क्या क्या संभवनीय परिणाम होंगे? कॉंग्रेससरकारों को अिस्तिफा देना होगा और अुनकी जगह देश के प्रतिगामी दल के लोग लेंगे। राजनैतिक प्रतिगामी और जातिवादी लोग मजे में अधिकारग्रहण करेंगे। परिस्थिति आज से ठीक अुलटी हो जायगी। राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करने के लिअे प्रतिगामी शक्तियां अधिक बेलगाम हो जायंगी। राष्ट्रीय आन्दोलन से संबंध रखनेवाली सभाओं को, जुलूसों को और प्रदर्शनों को शायद प्रत्यक्ष शारीरिक प्रतिकार का भी सामना करना पडे। कॉंग्रेस विरोधी सरकारों की हुकूमत में यह कोअी अनहोनी बात नहीं होगी। अिन सब का रूपांतर हिन्दू मुसलमानों के दंगों में आसानी से हो सकता है। मुझे अिसकी लम्बी-चौडी व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। देश के जो कार्यकर्ता हमारी प्रान्तीय समस्याओं से परिचित हैं वे मेरी बात अच्छी तरह से समझ सकते हैं। ये सब बातें सरकार से जानबूझ कर लडाअी छेडने के खिलाफ अेक दलील के रूप में नहीं मानी जानी चाहिअें। राष्ट्रीय आन्दोलन छेडने के विरुद्ध यह अेक दलील हो सकती है या नहीं, अिसका निर्णय प्रत्यक्ष लडाअी के क्षण की परिस्थिति पर निर्भर रहेगा। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन की १९२१ या १९३० की स्थिति में, और आज की स्थिति में, जो अन्तर है अुसकी तरफ आंख मूंदना मूर्खता होगी। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं को अिन सब बातों को निगाह में रखते हुअे अपने आन्दोलन की गतिविधि निर्धारित करनी चाहिअे। परिस्थिति के अिस पहलू की तरफ ध्यान न देना घातक होगा।

संघवृत्त

आजकल संघ के दफ्तर में गांधी सेवा संघ के सदस्य होने की अिच्छा प्रकट करने-वाली कअी चिट्ठियां आती हैं। अिसलिअे सबकी जानकारी के लिअे नीचे लिखी सूचनायें दी जाती हैं:—

सदस्यता की शर्तें और विधि संघ के विधान में दी गयी हैं। मंगाने पर विधान की प्रति भेजी जाती है। मांग के साथ अगर अेक आने का डाक का टिकट भी भेजा जाये तो अच्छा होगा।

परंतु जो बातें विधान के नियमों के शब्दों में नहीं हैं, लेकिन अुसकी मंशा में हैं, अुनपर भी ध्यान देना आवश्यक है। अिनमें से कअी बातें संघ के नीचे लिखे प्रस्तावों में है।

प्रस्तावः—(१) सदस्यों से विनति है कि संघ के तीनों वर्ग के सदस्य बढाने की वे

कोशिश करें। फिर भी सूचना करते यह सावधानी रखनी चाहिअे कि:–

(१) अेक राजनैतिक दल बनाने की अभिलाषा से सदस्यों की संख्या बढाना हमारा ध्येय नहीं है।

(२) सदस्यत्व का अिच्छुक अपने या अपनी संस्था के लिअे निर्वाह या सहायता प्राप्त करने की आशा से सदस्य बनने की अिच्छा न करता हो।

(३) अुम्मीदवार की गांधीजी के सिद्धान्त और कार्यक्रमों में श्रद्धा हो। वह अपने स्थान में अपनी शक्ति के अनुसार अुन सिद्धान्तों और कार्यक्रमों को व्यवहार में लाने के लिअे प्रयत्नशील हो। और अुस वर्ग के सदस्यों के नियमों मे ठीक आ सकता हो। अैसे व्यक्तियों का संघ में दाखिल होना अिष्ट है और अुन्हे दाखिल करना कर्तव्यरूप है। (प्रस्ताव नं. १०, डेलांग सम्मेलन, मार्च १९३८)

(२) संघ के किसी सदस्य को किसी सरकार की कोअी नौकरी लने का अधिकार नहीं है। अगर कोअी अगर अैसा करना चाहे तो अुसे कार्यवाहक समिति की अनुमति पहले से लेनी चाहिअे। संघ का कोअी सदस्य अगर अबसे कोअी नौकरी लेना चाहे तो संघ का सेवक या सहयोगी सदस्य नहीं रह सकेगा। सहायक सदस्य रह सकता है।
(ता. १३ अगस्त १९३९ की कार्यवाहक समिति की वर्धा की बैठक में मंजूर)

अिसके अलावा निम्न बातों पर ध्यान देना भी जरूरी है:—

(१) राजनीति में जो गांधीमत मानते है अथवा अुसके अनुसार केवल कॉंग्रेस का ही काम करते हैं वे अुतने ही कारण से संघ के सेवक या सहयोगी सदस्य नहीं बन सकते। हर अेक सेवक और सहयोगी सदस्य का संघमान्य किसी न किसी रचनात्मक कार्यक्रम से ताल्लुक होना जरूरी है। कॉंग्रेस, धारासभा, म्युनिसिपालिटी आदि के काम करने में भी अुनका कुछ न कुछ सहयोग होना चाहिअे।

(२) खादी और अस्पृश्यता निवारण के बारे में सिर्फ अितना ही बस नहीं है कि सेवक खुद खादी पहने और अस्पृश्यता न माने। और अुसके परिवार के लोग दूसरी तरह का व्यवहार करें। सदस्य के अूपर अवलम्बित और अुससे छोटी अुम्र के व्यक्तियों का व्यवहार भी भिन्न प्रकार का नहीं होना चाहिअे। अिस विषय में परिवार में जब तक कोअी कठिनाअी हो तबतक संघ का सदस्य बनने या बनाने का मोह न रखना चाहिअे। फिर भी अैसे व्यक्ति संघ के मित्र हो सकते हैं। और संघमान्य कामों मे सेवा या दान के रूप में सहयोग दे सकते हैं। अगर अुनकी वैसी अिच्छा हो तो संघ के अिस प्रकार के मित्रों का अेक रजिस्टर बनाया जा सकता है। यदि वे सर्वोदय, हरिजन सेवक आदि पत्रों के ग्राहक बनेंगे तो गांधीविचार और गांधी सेवा संघ से अच्छी तरह वाकिफ रहेंगे। कार्यालय से विचार, परामर्ष आदि भी कर सकते हैं।

(३) संघ के सदस्यों में किसी भी कारण से मनमुटाव पैदा न होना चाहिअे। अगर कोअी व्यक्ति सदस्य बनना चाहे तो बनने और बनानेवाले दोनों को यह जॉंच लेना चाहिअे कि अुस व्यक्ति के मन में किसी दूसरे सदस्य के प्रति अनादर, वैमनस्य या स्पर्धा का तो भाव नहीं है? अगर अैसा हो तो जबतक दिल साफ न हो जाये तबतक वह सदस्य बनने की जल्दी न करे।

(४) सदस्यता का कोअी नियम महज कागजी न माना जाय। अुदाहरण के लिअे सूत कातने के नियम का भंग नहीं हो सकता। अगर कोअी करते हैं और अुसकी खबर भी नहीं देते हैं या दूसरी ही तिमाही में अपनी गलती सुधार नहीं लेते हैं तो वे अेक महत्त्व का नियम तोडते हैं। अगर अध्यक्ष से मुक्ति नहीं मिली हो तो छोटामोटा तिमाही विवरण भी भेजना ही चाहिअे।

(५) किसी को भी किसी वर्ग का सदस्य बनाने के पहले प्राय: संघ के प्रमुख प्रान्तीय सदस्यों की राय ली जाती है। अिसलिअे सदस्य बनने या बनाने की अिच्छा रखनेवाले व्यक्तियों को हमारी यह सलाह है कि वे अुनके द्वारा ही अपना प्रस्ताव भेजें।

किशोरलाल घ० मशरूवाला
अध्यक्ष, गांधी सेवा संघ, वर्धा.

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg No. N. 741

गांधीजी की महत्ता

गांधीजी जिस तरह विलायत से बेरिस्टर बन कर आये अुसी तरह बेरिस्टर बन हुअे कभी लोग है। अुनके रहन सहन के ढंग पर से । वैसे दूसरे कभी लोगों के भी रहे होंगे। अुनका स्वभाव जैसा शान्त और सरल है वैसा दूसरों का भी होगा। अिसमें कोअी बड़ी बात नहीं। परन्तु शील या चारित्र्य—जिसकी बदौलत अिस संसार में मनुष्य अपनी वस्तुस्थिति पर मनुष्य की सत्ता चलती है, और जिसकी बदौलत अनेक प्रकार के प्रयत्न सफल होने की सम्भावना अवश्य होती है अुस शील या चारित्र्य का—जिसमें प्रत्यक्ष दर्शन होता है अैसे जीवनचरित्र हमारे यहां बहुत कम पाये जाते है। गांधीजी के जीवन की यही विशेषता है। अुनके कभी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक या दूसरे मन्तव्य कभी लोगों को पसन्द नहीं आवेंगे। विद्वत्ता में अुनसे बढ़ कर दूसरे अनेक लोग होंगे। लेकिन शील या चारित्र्य की जो महत्ता अूपर बतलायी गयी है अुस दृष्टि से महात्मा गांधी की जीवनी साधारण मनुष्य के लिअे आदर्श का काम देगी अिसके विषय में हमारी समझ में न कोअी मतभेद है, और न हो सकता है।

१६-३-१९१८ —बाल गंगाधर तिलक

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा | नवम्बर
अंक ४ था | १९३९

अेक अंक ...	... रु०	०–६–०
वार्षिक ...	... रु०	३–०–०
बर्मा में ...	... रु०	३–८–०
विदेश में ...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.

(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

मुद्रक

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

नवम्बर, १९३९
वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

मंत्र—यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

अर्थ—जो आत्मा में समस्त भूतमात्र और समस्त भूतमात्र में आत्मा को देखता है वह फिर (किसी भी वस्तु से) अूबता नहीं।

टिप्पणीयां—(१) "ततो न विजुगुप्सते" की जगह "ततो न विचिकित्सति" अैसा पाठभेद है। अुसका अर्थ होगा "अुसे फिर किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता"।

(२) अिससे समानार्थक—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
अीक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (गीता ६-२९)

मंत्र—यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक अेकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

अर्थ—जिसके लिअे सभी भूतमात्र आत्मरूप हो गये है, अुस अेकत्व अनुभव करनेवाले ज्ञानी को मोह कहां, और शोक कहां?

टिप्पणी—अीशावास्य से गीता का निकट संबंध है। यहां के 'शोक' और 'मोह' शब्द तो गीता की कथा का भी स्मरण दिलाते हे।

(मराठी से अनूदित)

वर्धा योजना का हार्द-अनुबन्ध

[काका कालेलकर]

जो लोग कभी 'शिक्षा' नहीं पाते किन्तु जीवन-व्यवहार में जागरूक रह कर अपने ज्ञान की और अपनी कार्यकुशलता की वृद्धि करते रहते हैं अैसे लोगों में अेक किस्म की स्फूर्ति, प्रत्युत्पन्नमति और आत्मविश्वास पाया जाता है। अिसका कारण यह है कि वे निरे ज्ञान के पीछे लगे नहीं रहते। अुन्हें तो केवल जीना है। खाना, पीना, निरोगी रहना, हर चीज को समझकर अुससे लाभ अुठाना, अपनी कर्तृत्वशक्ति को बढ़ाना, हृदय से प्रेम करना और अपने व्यक्तित्व का विकास करके जीवन को समृद्ध करना यही अुनके जीवन का अुद्देश्य होता है।

अिनके मुकाबले में, जो लोग केवल धन-संग्रह बढ़ाना चाहते हैं, केवल साधन-संपत्ति का ढेर लगाना चाहते हैं, जानकारी का बोझ बढ़ाकर अुसके नीचे अपने आपको दबा लेना चाहते हैं—अुनका जीवन सचमुच असमर्थ और दयनीय बन जाता है।

जितनी भूख हो अुससे जो आदमी अधिक खाता है अुसका शरीर बिगड़ जाता है, दुर्बल हो जाता है। अुसका अुत्साह गायब हो जाता है और जिस प्राथमिक प्रेरणा से वह खाता है अुसकी तीव्रता और अभिरुचि भी क्षीण और विकृत हो जाती है। जितनी भूख हो अुससे अधिक खानेवाले को, और बिना भूख खानेवाले को भी खाद्य वस्तु का पूरा आनन्द नहीं मिलता। अुसकी जीभ की सामर्थ्य कम हो जाती है। सूक्ष्म भेद तो वह परख ही नहीं सकता। श्वास से दुर्गन्ध निकलती है। दांत कमजोर हो जाते हैं। मुख की कान्ति मलिन हो जाती है और अन्त में अपचन, बद्धकोष्ठ, अतिसार आदि अनेक रोगों का वह भक्ष्य बन जाता है।

वही आदमी अगर खाने के पीछे न पड़ कर सफलतापूर्वक जीने के पीछे पड़ेगा, जमीन खोदना, लकड़ी काटना, पानी में तैरना, दौड़-धूप करना, बोझ ढोना, घोड़े पर बैठ कर सैर करना, अित्यादि आनन्ददायी जीवन-व्यवसायों में मस्त रहेगा और क्षुधा निवारण के लिअे ही खाने का खयाल रक्खेगा तो वह पहले की अपेक्षा ज्यादा खा सकेगा। अुसको खाने में अधिक आनन्द आयेगा और वह चाहे जितना खा जावे, बेमौके भी खा जावे तो भी अुसे भोजन का बोझ ही नहीं मालूम होगा। पशुपक्षी प्रकृति की प्रेरणा से वफ़ादार रहते हैं अिसलिअे अुन्हें कभी बदहजमी हुअी ही नहीं। जंगल के पशुपक्षी और बन्दर सारा दिन घूमते रहते हैं, कूदते-अुछलते रहते हैं और खाते रहते हैं। अुनको कभी भी बदहजमी नहीं हुअी है। बदहजमी केवल मनुष्य के लिअे और मनुष्य के साथ संबंध रख कर बिगड़े हुअे पशुपक्षिओं के लिअे है।

भोजन के बारे में अूपर जो बात हमने देखी वही ज्ञान और धन पर भी लागू होती है। हम भोजन के पीछे न पड़ें। केवल जीवन के पीछे पड़ें। जीते जीते जितना भोजन लेना पड़ा अुतना ही ले लिया यही नियम अगर हम ज्ञान को लागू करें और बेकाम ज्ञानसंग्रह न करें तो ज्ञान के अपचन से जो बौद्धिक

क्षीणता आती है, नैतिक निर्णय में जो अनिश्चय आ जाता है, वे दोष जीवन में नहीं आयेंगे। मिहनत-मजदूरी से जैसे भूख प्रखर होती है अुसी तरह जीवन-व्यापार को जब हम बुद्धियुक्त, हेतु-युक्त और विशाल-योजनायुक्त कर देते हैं तब जिज्ञासा और चिकीर्षा* रूपी भूख तो अितनी बढ़ती है कि तमाम दुनिया की जानकारी बुद्धिगत करने पर भी और हर किस्म की कारीगरी हस्तगत करने पर भी अुनका बोझ नहीं मालूम होगा।

आहार सेवन में हम भोजन-परायण न बने, जीवन-परायण बने। शिक्षा-ग्रहण में भी हम ज्ञान-परायण न बनें, किन्तु जीवन परायण ही बने। और साधन-संग्रह में भी हम अगर सम्पत्ति-परायण न बनें किन्तु जीवन-परायण ही बनें तो हमारा जीवन निरोगी, समर्थ और संपन्न होगा और शारीरिक, बौद्धिक और सामाजिक रोगों से हम सर्वथा मुक्त हो जायेंगे। हम अुत्कटता से जीने का प्रयत्न करें। जीवन के सबके सब पहलुओं का विकास करते जायें तो जीवन का हर अेक अंग-प्रत्यंग अपने साथ अनुबद्ध सब जानकारी और कारीगरी अपने आप मांग लेगा। और जिस चीज़ की मांग कुदरती तौर पर नहीं हुअी है अुस चीज़ का व्यर्थ संग्रह करने का लोभ हम बिलकुल नहीं रक्खेंगे। (मामूली शिक्षा से ही अेक अुदाहरण ले लीजिये। गुणाकार के बिना गणित-व्यवहार नहीं चल सकता। गुणाकार को शीघ्रता से करने के लिअे हम पहाड़े सीखते हैं। जो लोग ज्ञान-परायण हैं वे लोग अेक से लेकर हजार, लाख या करोड़ तक के पहाड़े बनाकर अुन्हें कंठ करने के लिअे बैठ जायेंगे और अुसी व्यापार में अुलझ कर मर जायेंगे। अिसके विपरीत जो लोग जीवन-व्यवहार को ही प्रधान मानते है वे जानते हैं कि बीस या तीस से आगे पहाड़े कुछ काम के नहीं। अुनमें लाभ कम है, निरा बोझ ही बोझ ज्यादा है। अिसमें भी जो लोग केवल ज्ञान-परायण हैं अथवा अंधे हैं वे अेकसे ले कर बीस तक के पहाड़े कंठ करते रहेंगे और आगे जा कर जिन पहाड़ों का व्यवहार में कुछ काम है अुनको भूल जायेंगे। जिनको गणित की पर्वाह नहीं किन्तु व्यवहार की है वे लोग ग्यारह, तेरह, चौदह, सत्तरह, अठारह और अुन्नीस के पहाड़े नहीं पढ़ेंगे। हफ्ते के दिनों की गणना करनी है अिसलिअे सात का पहाड़ा अुपयोगी है। दर्जन का और रुपयेआनों का व्यवहार में बारबार अुपयोग होता है अिसलिअे बारह और सोलह का पहाड़ा आवश्यक है। डबल रोटी के भटियारखाने में तेरह रोटियों का दर्जन होता है वहां तो बारह के साथ तेरह का पहाड़ा भी याद करना पड़ेगा। संक्षेप में, जिस ज्ञान की व्यवहार में आवश्यकता अधिक हो अुसी ज्ञान को हम ढूंढते रहेंगे। वही आप ही आप स्थायी बनता जायगा और बाकी का ज्ञान विस्मृति-प्रवाह में बह-कर मस्तिष्क का बोझ कम करेगा। आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करना और निकम्मी वस्तुओं का त्याग करना यह सिद्धान्त जैसे हर अेक कोठे में, पुस्तकालय

*__चिकीर्षा__—हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की सतत व्यायामशीलता; अपने अपने विषय को स्पर्श कर अुन विषयों का और अपनी शक्ति का परिचय करने का अुनका व्यापार। यह जिजीविषा का अेक आवश्यक अंग है।

में, म्युनिसिपैलिटी में जितना आवश्यक है अुतना ही ज्ञानसंग्रह में भी आवश्यक है। और धन के बारे में तो अिस सिद्धान्त-पालन की आवश्यकता अत्यधिक है।)

अनुबन्ध का सार्वभौम सिद्धान्त यही कहता है कि जीते चले जाओ। जीवन को शुद्ध समर्थ और समृद्ध बनाते जाओ। अब, जीने के लिअे परिश्रम आवश्यक है, आहार आवश्यक है, आजीविका का साधन और कौशल्य आवश्यक है, सामाजिक संगठन आवश्यक है। अिन सब सच्ची आवश्यकताओं की पूर्ति के लिअे जो कुछ जानकारी और दस्तकारी जिस क्रम से आवश्यक होती जायेगी अुसी क्रम से अुनकी अुपासना करो और वृथा संग्रह का लोभ न करो। व्याख्यान में असंबद्ध बातें लाने से जिस तरह व्याख्यान नीरस और भाररूप हो जाता है अुसी तरह शिक्षण-व्यापार में वास्तविक जीवन के साथ जो जो बाते अननुबद्ध हैं, असम्बद्ध हैं, अुनका भी समझना चाहिअे।

अनुबद्ध शिक्षा-पद्धति में जो अभ्यास-क्रम (सिलेबस) दिया जाता है वह केवल सूचना मात्र के लिअे होता है। वह अनुभवी लोगों की सिफारिश होती है। वर्धा योजना में जो अभ्यासक्रम दिया है अुस में यही बड़ा दोष रह गया है। क्योंकि वर्धा योजना को बनानेवाले हम लोग ज्ञान-परायण थे, जीवन-परायण नहीं थे। ज्ञान के प्रेमी और ज्ञान के लोभी हम लोगों ने अनुमान कर लिया कि जीवन में अिन अिन बातों की आवश्यकता रहेगी ही और अिनका अनुबंध जीवन के साथ सिद्ध होगा ही। आज भी मैं यह नहीं कहता कि सिद्ध नहीं होगा, किन्तु केवल अभ्यासक्रम देना हमारा काम नहीं था। क्रान्ति करने निकले हुअे हम पुरानी लकीर के फकीर बन गये। हमें बताना चाहिअे था कि जीवन-शुद्धि, जीवन-सामर्थ्य और जीवन-समृद्धि के पीछे पीछे जाते हुअे हमें कुदरत के साथ कौन कौनसा परिचय बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। जीने के लिअे जो आजीविका हस्तगत करनी पड़ती है अुसे सिद्ध करते करते हमें यह बताना चाहिअे था कि हमें कौन कौन सा कौशल्य हासिल करना चाहिअे। हर अेक कौशल्य के साथ कौन कौन सी जानकारी आवश्यक है यह हम आसानी से बता सकते। हर अेक शिक्षक को यह स्वातंत्र्य होना ही चाहिअे कि आजीविका के किसी हुनर को सिखाते हुअे अुसके साथ कितनी जानकारी और दस्तकारी विद्यार्थियों के सामने रक्खी जाये और हर अेक विद्यार्थी को भी यह अधिकार होना ही चाहिअे कि अुसके सामने जो कुछ परोसा जाता है, अुसमें से वह कितना खाये। विद्यार्थी अगर बेदरकार है, आलसी है तो अिसका अिलाज यह नहीं है कि हम अुसे अपनी जबरदस्ती का गुलाम बनावें। शिक्षक अगर कर्तव्य-परायण नहीं है तो अुसका अिलाज यह नहीं है कि हम अुसके पीछे अिन्सपेक्शन के कुत्ते लगा देवें। जो शिक्षक कर्तव्य-परायण नहीं है अुसको हम सुधारने की कोशिश करें अगर सुधरने का माद्दा अुसमें नहीं है तो अुसे छोड़ दें। किन्तु अुसपर हम अविश्वास करें, अुसके अूपर चौकी रक्खें, धाक बता कर अुससे काम लें और अुसको अपमानित करें यह हमारा अधिकार नहीं है और शिक्षा का अिसमें लाभ भी नहीं है।

हम जानते हैं कि हमारे शिक्षकों की अध्यापनकला मामूली होती है, अुनकी जान-

कारी अत्यल्प होती हैं. अुनकी कर्तव्यबुद्धि भी बहुत ही शिथिल होती है। अिन सब कमियों को दूर करने का अिलाज यह नहीं कि हम अिनस्पेक्टर्स रक्खें। हमें तो अिसके लिअे परिव्राजक, "गुरूणां गुरुः" को नियुक्त करना चाहिअे। धर्मप्रचारक जिस तरह से लोगों में धर्मसाधना का अुत्साह बढ़ाते ही चारित्र्यशुद्धि की अुमंग पैदा करते हैं अुसी तरह शिक्षा प्रचारकों को देश में घूम घूम कर शिक्षा संस्थाओं में जाना चाहिअे और शिक्षामित्र बन कर शिक्षकों की जानकारी बढ़ानी चाहिअे। अुनके आदर्शों को चढ़ाना चाहिअे।

किन्तु अभ्यासक्रम का अन्तिम निश्चय तो शिक्षकों के ही हाथ में रखना चाहिअे। हमारे छपे हुअे शिक्षाक्रम तो सूचनामात्र हैं। हर अेक स्थान पर विद्यार्थी और अध्यापक के सामाजिक सहयोग के द्वारा जो कुछ भूख पैदा होगी अुसीकी तृप्ति करना सार्वभौम नियम रहना चाहिअे।

अगर अिसी बात को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करना हो तो हमें शिक्षा-क्षेत्र में जिज्ञासा को और *विजिगीषा को केन्द्र में न रख कर *जिजीविषा को शिक्षा का केन्द्र बनाना चाहिअे। जिजीविषा के साथ चिकीर्षा और †सिसृक्षा आ ही जाती है और अुनकी तृप्ति के लिअे जिज्ञासा आप ही आप बढ़ती जाती है। केवल जिज्ञासा और विजिगीषा को नजर के सामने रखने से अुपार्जन-बुद्धि, संग्रह-बुद्धि, द्रोह और हिंसा बढ़ने लगती है और मानवता का नाश होता है। स्वाद्यलोभ, धनलोभ और ज्ञानलोभ तीनों असामाजिक हैं और 'लोभमूलानि पापानि' के सूत्र के अनुसार पापमूलक हैं। जहां लोभ है वहीं विजिगीषा है, द्रोह है, हिंसा है। जहां केवल जिजीविषा है, चिकीर्षा है और सिसृक्षा है वहां सहयोग, सेवा, शुद्धि और अहिंसा है। जब शिक्षा-प्रवृत्ति की आद्य प्रेरणा में ही अिस तरह परिवर्तन हो जायेगा तब जीवन व्यापार में से ही शिक्षा-व्यापार फलित होगा; और अिन दोनों की सिद्धि के लिअे अनुबन्ध की खोज स्वाभाविकतया सिद्ध होगी।

*__विजिगीषा__—किसीको परास्त करके अुस पर विजय पाना, अुसे अपने काबू में रखना और अुसका स्वामी बन जाना। विजय की अिच्छा—विजिगीषा।

*__जिजीविषा__ माने जीने की अिच्छा। हम अपने जीवन को सिद्ध कर, अुसे समझ लें, अुसे कृतार्थ करें। अिस धारणा को जिजीविषा कहते हैं।

†__सिसृक्षा__—हालांकि मनुष्य स्वयं अेक सृष्ट पदार्थ है तो भी अपनी बुद्धि के कारण वह विधाता का सहयोगी भी है। अुसके सामने जो विश्व फैला हुआ है अुसको पहचानना और अुसके अन्दर अपने जीवन को सिद्ध करने के लिअे कुछ न कुछ कार्य करते रहना अितने से अुसको सन्तोष नहीं होता। वह अपने मन में कुछ न कुछ योजना तैयार कर लेता है और अुसमें अपने घटना-कौशल्य को आज़माना चाहता है। वह जिस प्रकार सृष्ट है अुसी प्रकार सर्जक भी बनना चाहता है। अिसी प्रेरणा से वह मातृपद और पितृपद का अधिकारी बनता है। अिसी प्रेरणा से वह समाज-व्यवस्थापक बनता है। यही प्रेरणा अुसे कलाधर और कवि बनाती है। और जब वह सुधारक या क्रान्तिकारी बन जाता है तब भी वही सिसृक्षा—निर्माण करने की वृत्ति अुसकी प्रेरक होती है।

जब कोअी व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करके सामाजिक या आध्यात्मिक क्षेत्र में अग्रसर होता है तब भी अुसमें सिसृक्षा का अभाव नहीं होता। किन्तु नीचे की भूमिका पर अुसका विस्तार रोककर अुसी प्रेरणा को अूपर आत्मिक क्षेत्र में वह व्यक्ति ले जाता है।

बंगाल के ग्रामों में कत्तिनों के बीच।

[हेमप्रभादेवी दासगुप्त]

अिस बार मैं नवाखाली ज़िले में करैया बाज़ार की कत्तिनों के केन्द्र में दो दिन थी। कत्तिनो से भेंटगाठ और बातचीत प्रतिदिन ही होती थी। वहां की स्त्रियों में पर्दा बहुत है। दिन में बाहर नही निकलतीं। अिसलिअे मैं ही अुन लोगों से मिलने गयी।

रात को खाने–पीने के बाद जब मैं सोने जा रही थी, अुस समय कुछ भद्र परिवार की स्त्रियां दो मील दूर के गांवों से आयीं। अुन लोगों ने आते ही कहा कि वर्षा की कीचड़ में पैदल ही चल कर हम लोग आपसे मिलने आयी हैं। पूछा, " अितना कष्ट अुठा कर आप लोग अितनी रात को क्यों आयीं " ? अुन लोगों ने जवाब दिया, " आप जैसे अितने बडे त्यागी, देवतुल्य व्यक्ति को देखने के लिअे आयी है। आपको देखने में भी पुण्य है।" अित्यादि। ːब मुझे अुनसे कुछ कहने का मौका मिला। देश की अवस्था, गांव की हालत व कत्तिनो के विषय में अुन लोगों से कहा। अुन लोगों के पहनने की मील की सुन्दर पाड़-वाली साडी की बात कही। खादी पहनने की आवश्यकता बताअी। अंत में कहा, " आप लोग हमको देखकर पुण्य कमाना चाहती हैं, सो तो पहले ही सुन चुकी हूं। किन्तु हमें देखने में कोअी पुण्य नही है। पुण्य खादी पहनने मे है। आप लोग यदि अिन कपडों को छोड़ कर अिन गांव की कत्तिनों के काते हुये सूत के कपडे पहन सके तो अिससे बढ़कर पुण्य और किसी चीज़ में नहीं है। "दरिद्रनारायण" की बात हिन्दू धर्म में चिरकाल से प्रचलित है। दरिद्र की सेवा करने से नारायण की सेवा होती है। वह सेवा किस तरह होगी ? दरिद्रों के श्रम से बनी हुअी खादी पहन कर प्रतिदिन अुन्हे भोग चढ़ाने का अिन्तजाम कीजिये। मन्दिर में जो देवता हैं अुनकी अपेक्षा अिन जाग्रत देवताओं की सेवा में कहीं अधिक सार्थकता है।"

करीब करीब घंटे भर खादी के सम्बन्ध मे बातचीत होने के बाद अुनके दिल पर हमारी बात का असर हुआ। अुन लोगों ने कहा, "हम लोग खादी पहनेंगी। अिसके पहले किसीने भी खादी और चरखे के सम्बन्ध में हमे अिस तरह की बातें नहीं कही थीं। आज हम लोग आपकी बातों से लज्जित हुअीं। फिर जब आप आयेंगी तब देखेंगी कि हम लोग खादी पहने हैं। यदि हो सके तो आप अेक दिन और रहें। बहुत सी स्त्रियां आपसे मिलने आयेंगी।

यदि और स्त्रियों को भी समझा कर राजी कर सके तो खादी के चलने में कुछ भी दिक्कत नहीं होगी। घर के पुरुषों के समझने से खादी चलने की नहीं। स्त्रियों के ही समझने से खादी चल सकती है। अिसलिअे आपका यहां रहना जरूरी है।"

मैंने कहा, "अभी तो यहां नहीं रह सकती हूँ। कअी जगह जाना है। आप लोग जो हमसे मिलने आअीं हैं वे ही अभी खादी पहनना शुरू करें। गांव की स्त्रियों को मेरी ओर से समझाअियेगा। यदि खबर पाअूंगी कि आप लोगों ने मिल के कपड़े को बिल्कुल त्याग कर खादी ही शुरू कर दी है तो निश्चय ही जितने दिनों की आवश्यकता होगी आ कर आप लोगों के साथ रहूंगी। आप लोगों की खादी ही हमें खींच कर यहां ले आयेगी"।

ये सब बातें हो ही रही थीं कि अितने में मल्लाहों की स्त्रियों का अेक झुंड आया। अिन लोगों के साथ पैसे के लेनदेन का कोअी सम्पर्क नहीं था। ये लोग भी दर्शन करने के लिये ही आयी थीं। अिन लोगों के पुरुष मछली पकड़ते हैं; स्त्रियां घर घर जा कर अुन मछलियों को बेचती हैं और मछली पकड़ने का जाल बुनती हैं। अिन लोगों के साथ भी अुसी तरह चरखे और खादी की बातें हुअीं। अिन लोगों को समझाने में कोअी दिक्कत नहीं हुअी। अेक मल्लाह की स्त्री ने सूत कातने वाली कत्तिनों की बात कही। "और, बेचारी सब अितने कष्ट से सूत कात कर पैसा ही क्या पाती हैं?" अिस पर मैंने कहा, "यदि अुन लोगों के लिये तुम्हारे दिल में दर्द है तो अुनके लिये थोड़ी तकलीफ क्यों नहीं अुठातीं? कुछ आगे बढ़ कर अुन लोगों के सूत की अितने कष्ट से तैयार की हुअी चीजों को क्यों नहीं पहनतीं।"

गत बार अीद के समय यहां हिन्दू मुसलमान के बीच अेक दंगा हो गया था। अिस-लिअे जानबूझ कर अपने किसी भी कर्मी को बिना साथ लिअे हुअे मैं मुसलमानों के टोले में गअी। शाम हो गयी थी। स्थानीय मुसलमान लड़कों को साथ ले कर कीचड़ के बीच से जंगल-झाड़ की राह से चल कर अुनके मुहल्ले में अुन्हें समझाया और प्रश्न भी पूछे। कहीं भी अुत्तेजना की बू नहीं मिली। अेक आदमी से पूछा, "यहाँ तो फी सैकड़ा नब्बे मुसलमानों की आबादी है। तो भी तुमलोग हिन्दुओं से डरते हो?" अुन्होंने जवाब दिया,—"भय तो नहीं करते, किन्तु लड़का में भी 'भिखारी और मक्के में भी चोर' होते हैं। यह बदमाशों की करतूत थी।" हिन्दुओं के साथ भी बातें हुअीं। यह बात सत्य है कि मुसल-मानों के लिअे अुनके दिल में दर्द है किन्तु बाहर से जा कर जो अुनके अन्दर द्वेष सुलगाया जाता है अुसका भी असर कुछकुछ देखने में आया। आज अुसका पूरा असर न भी हुआ हो, किन्तु भविष्य में होगा अगर अुनके बीच हम अपना काम जारी न रक्खें।

दंगे का कारण यही था कि जब अीद के दिन मसजिद में लोग नमाज पढ़ रहे थे किसीने आ कर कहा कि दूर दूर के गांवों में हिन्दू लोग मुसलमानों का खून कर रहे हैं। यह खबर चारों ओर फैल गयी। नमाज पढ़ना तो बन्द ही हो गया। लोग पागल की तरह लाठीगंडासा हाथ में ले कर मारामारी करने के लिये दौड़े। न अिसके

पहले कोअी गोलमाल था और न अब है। वास्तव मे वे लोग पड़ौसी है और अेक ही जगह बसते हैं। अैसी हालत मे दुश्मनी करके वे कभी बच नहीं सकते। मैं तो बहुतसे मुसलमानों से मिली। अिनके बीच भी कोअी हिन्दू-विरोध का भाव देखने में नहीं आया। बल्कि अिस अंचल में कताअी व बुनाअी का काम चल रहा है अिसलिये खुद-ब-खुद अुनके बीच आपस में अेक तरह का प्रेमभाव पैदा हो गया है।

हिन्दू जुलाहे व मुसलमान कत्तिनें अेक ही दरिद्रता के शिकार है। अेक ही पानी और मिट्टीपर पले हुअे हैं। अिन लोगों के बीच स्वभाव से ही आपस मे मेल है। फिर भी यह ठीक है कि खादी मे जो परस्पर मेल बढ़ाने की ताकत है वह अिस अंचल में अभीतक पूरी तरह से विकसित नहीं हो पायी है। अिसमें कर्मियो की ही त्रुटि है। बहुत से शिक्षित हिन्दू व मुसलमान गांव मे बसते हैं तो भी अुन्हें यह मालूम नहीं कि खादी अेकता पैदा करने में व कायम रखने में कितनी बडी सहायक है। हमारी आलोचना के द्वारा अुनके सामने ज्यों ही यह बात साफ हो गयी कि वे सबके सब अिस बात पर राजी हो गये कि स्थानीय खादी पहनना अुनके लिअे अनिवार्य व निहायत जरूरी है। मैं जानती हूं कि अुनका यह भाव केवल क्षणिक था। यदि यह भाव अुनके दिल मे स्थायी रूप से बैठ जाय तो अुनका स्थायी कल्याण होना निश्चित है।

अुनके बीच आपसमें फूट पैदा करने का काम तो बराबर जारी ही है। अुन्हें अिससे बचाअे रखने के लिअे निरन्तर जाग्रत चेष्टा की जरूरत है। अिस अभागे देश के वास्तविक दुख का अन्त ही नहीं है। अिसपर भी परस्पर फूट पैदा करने की जो चेष्टा चल रही है, न मालूम अुसका नतीजा क्या होगा।

बंगला 'राष्ट्रवाणी से अनूदित'

अैसे मै यह कहता हूं कि असत्य या हिंसा से स्वराज्य मिले तो मुझे नहीं चाहिअे, अुसी तरह मैं आज यह भी कहना चाहता हूं कि अगर हिन्दू–मुसलिम अेकता के बिना स्वराज्य मिले तो मुझे अैसा स्वराज्य भी नहीं चाहिअे। क्यों कि मैं तो यह चाहता हूं कि आजाद भारत में न हिन्दू मुसलमानों के मातहत हों और न मुसलमान हिन्दुओं के। मैं तो सबको समान, रूप से देखना चाहता हूं। शायद आपको अिस सवाल का यह पहलू कुछ नयासा मालूम पडे। अगर आपके लिअे यह चीज नअी है तो मेरे लिअे भी बिलकुल नअी है। कोअी सीधा रास्ता नजर नहीं आता। सामने तमाम अंधेरा है। लेकिन अितना विश्वास जरूर है कि श्रद्धा से कदम बढाअूं तो मुकाम पर पहुंच ही जाअूंगा।

गांधी सेवा संघ, डेलांग सम्मेलन
ता० २८ : ३ : ३८

—गांधीजी

राजनैतिक कार्य की व्याख्या

(विनोबा का अेक प्रवचन)

मित्रो,

प्रास्ताविक

यहां जितने प्रश्न अुठाये गये है कि यदि हर अेक पर मैं अपनी राय दूं तो वक्त पर काम खतम नहीं हो सकेगा। अिसलिअे मैं कुछ थोड़े प्रश्नों पर ही अपने विचार अुपस्थित करूंगा।

पहले गोरक्षा का प्रश्न लेता हूं। जिस तरह हम खादी के बारे में घंटों बहस कर सकते हैं और लोगों को जानकारी दे सकते है, वही हाल गोरक्षा का भी है। यह विषय खादी से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अिसमें अभी प्रयोग के लिअे काफ़ी गुंजाअिश है। यहा रामदास भाअी अेक मामूली-सा प्रयोग कर भी रहे हैं। मैंने भी अिस प्रश्न का काफ़ी विचार किया है और अपने विचारों का दूसरों के विचारों से मिलान करके भी देखा है। लेकिन अिस विषय में मैं आज यहा कुछ नहीं कहना चाहता। विषय को कम महत्त्व का मान कर अुसकी अुपेक्षा नही कर रहा हूं। वह अितने महत्त्व का है कि थोड़े वक्त में अुस पर कहना मुश्किल है, अिसलिअे छोड़ देता हूं।

खादीयात्रा का स्वरूप

अब खादीयात्रा के स्वरूप का प्रश्न लेता हूं। सोनेगांव (वर्धा) की खादीयात्रा के वक्त मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। अिसलिअे मैंने यह तय किया था कि खादीयात्रा में कम से कम भाग ले कर लौटा करूंगा। खादीयात्रा की मुख्य विधि, यानी तकली अुपासना, में शरीक होने के लिअे जा कर वापस आने का मैंने निश्चय किया था। लेकिन वहां भी बोलना तो मेरी किस्मत में बदा ही था। वहां के अपने व्याख्यान में मैंने खादीयात्रा की मुख्य विधि कौनसी है, अिसका विवेचन किया था।

खादी-जीवन का मध्यबिंदु

मनोहरजी के शब्दों में कहू तो खादीयात्रा का मुख्य अुद्देश है, 'खादीजीवन'। खादीजीवन में जिनकी श्रद्धा है वे यहां अिकट्ठे होते हैं। अुसी जीवन का मध्यबिन्दु है कातना। अुतना काम पूरा किया और चलते हुअे। खादीयात्रा की मुख्य विधि के विषय में मैंने अिसी आशय का व्याख्यान दिया था। लेकिन वह बात अभीतक किसीके गले अुतरी नहीं दीखती। अुसी बात को आज फिर समझाने की कोशिश करता हूं।

अिस साल की खादीयात्रा में कताअी के कार्यक्रम के लिअे रोज चार घंटे रक्खे गये है। यानी कातने को बहुत महत्त्व दिया गया है। लेकिन तिसपर भी मुझे अुतना भी सन्तोष नही है जितना कि पार साल था। नियत समय पर, नियत स्थान पर, सबको अेकत्र हो कर तकली पर कातना चाहिअे। चरखा नहीं चाहिअे। तकली ही चाहिअे। तकली सोचसमझ कर सुझायी गअी है। चरखा समुदायिक अुपासना के लिअे अनुकूल नही है। तकली अुपयुक्त है। चरखे का कभी कुछ कभी कुछ बिगड़ता है। कभी माला ही टूट जाती है। चरखा आवाज़ भी करता है। वह सबके पास नहीं होता।

अिसलिअे किसीके पास चरखा और किसीके पास तकली अैसा भेद हो जाता है। अिसीलिअे तकली के लिअे आग्रह है। आप चाहे व्याख्यान न सुनिये। आप भोजन से भी रुखसत ले लें, तो भी हर्ज नहीं। लेकिन अपने भाअी-बंदों के साथ सम्पूर्ण मौन रख कर, आध घंटा सुव्यवस्थित कातने की आपको भूख लगनी चाहिअे। अितना भाग सभीको ले कर अपनी भावना अवश्य प्रकट करनी चाहिअे। लेकिन यहां सब लोग नियोजित समय पर अिकट्ठे नहीं हुअे थे। अिसलिअे हम खास कर जिस काम के लिअे आये हैं वही करने में चूक गये।

जो यहां की सारी व्यवस्था के लिअे जिम्मेवार हैं, अुनमें से अेक मुझसे कहने लगे, "आपका व्याख्यान सुनने आये अिसलिअे अुधर रसोअी वक्त पर नहीं बन सकी और भोजन मे देर हुअी। अिसीलिअे कअी लोग समय पर तकली-अुपासना में नहीं आ पाये।" मैं कहता हूं कि मेरा व्याख्यान सुनने में अुन लोगों ने प्रमाद किया। अुन्हें तो अपना काम ही करना चाहिअे था।

हमें अैसी व्यवस्था करनी चाहिअे कि कातने के वक्त सब लोग हाजिर रह सकें। शायद अेक या दो मुख्य व्यवस्थापकों के लिअे अपवाद किया जा सकता है। लेकिन अुनके सिवा दूसरे सबको कातने में शामिल होना चाहिअे। अिस यात्रा मे कातने को अधिक वक्त दिया गया है। वक्त भले ही अधिक दिया गया हो; लेकिन सवाल यह है कि क्या सोनेगांव की अपेक्षा यहां कातने को अधिक महत्त्व दिया गया है? अिस साल मेरी प्यास नहीं बुझी। अगले साल सब लोग कातने में हिस्सा लें अैसी व्यवस्था होनी चाहिअे।

मुझे फोटो बिलकुल पसन्द नहीं है। लेकिन सब अेक जगह बैठे हुअे कात रहे हैं—स्त्री,पुरुष, बूढ़े-बच्चे, सभी शामिल हैं—अैसे दृश्य की फोटो लेना भी मैं पसन्द करूंगा। कातते वक्त कौन कैसे बैठा है, किसके हाथ का कोण कितना गलत है, आदि बातों का पता अुस फोटो से चलेगा। ये कोअी मामूली बातें नहीं हैं।

झंडे की मिसाल

झंडे की ही मिसाल ले लीजिये। वह तो अेक जरासा चिथड़ा ही होता है। लेकिन अुसकी लंबाअी और चौड़ाअी अेक निश्चित नाप की होनी चाहिअे। अुसके लिअे राजा को कितना प्रयास और कष्ट करना पड़ता है। फैजपुर की कॉंग्रेस मे झंडा ठीक फहराया नहीं गया। वह डंडे में लिपट गया। वह अुसमें से निकल ही नहीं रहा था। फहराता नहीं था। था भी बहुत अूंचे पर। तब अेक बहादुर युवक हिम्मत करके अूपर चढ़ गया। लोग बडी अुत्कंठा से अुसकी तरफ देख रहे थे कि कहीं अिसका पैर न फिसल जाये। अुसने अूपर जा कर अुस झंडे को सुलझाया। अगर अुस प्रयास मे वह मर जाता तो हम अुसका यश गाते। अुसे 'धन्य, धन्य,' कहते। यह सारा भावना का खेल है। दूसरी तरह से सोचने लगें तो अुस चिथडे में क्या धरा है? अुसके लिअे अपनी जान खो देनेवाले अुस युवक को मूर्ख भी कह सकते थे। अिसका जवाब यही है कि हमने अुस कपडे के टुकडे को अपना ध्वज मान लिया है। अुसी तरह कातने के लिअे भी नियत ढंग से

बैठ कर, छाती सीधी रख कर, सब अेक जगह बैठ कर कातें तो मुझे सन्तोष होगा।

कर्म ही अुपासना है

गोवर्धन का दृष्टान्त देखिये कैसे मजे का है। गोवर्धन में जब गोकुल के सभी निवासियों के हाथ लगे तब भगवान् ने कहा यह लो मेरी मदद। काम तो भगवान् ही करते हैं। लेकिन जब सब मिल कर अेक भावना से काम करते हैं तब अीश्वरीय शक्ति प्रकट होती है। सब अेक जगह बैठ कर मिल कर कातें अैसा मैं क्यों कहता हूं, यह आप अब समझ गये होंगे। हिंदुस्थान में कर्म के लिअे पूज्य भावना ग्रन्थों में है। परन्तु व्यवहार में नहीं पायी जाती। पढ़ेलिखे और अपढ़—दोनों में नहीं दीखती। जो किसान कहलाते हैं, अुनमें से बहुत ही थोड़े, करीब २५ फीसदी, खेतों में प्रत्यक्ष काम करते हैं। दूसरे सब वरायनाम किसान होते हैं। देहात और शहर के लोगों के आलस का कोअी वारपार नहीं। आलस को जीतना हो तो यह भावना रूढ़ करनी चाहिअे कि कर्म ही पूजा है। हम केवल कातने की कला का विकास नहीं करना चाहते। हम यह भावना निर्माण करना चाहते हैं कि कर्म ही पूजा है। सभी व्यवसायों के लोग जब अेक जगह बैठ कर काम करेंगे तभी यह भावना पैदा होगी और तभी हिन्दुस्थान का अुद्धार होगा।

देहातियों के भाषण सुनो

मेरी अेक सूचना यह भी है कि खादी-यात्रा में भाषणों के लिअे जो वक्त रक्खा जाता है वह देहाती वक्ताओं को दिया जावे। दूसरे भी कअी वक्ता हैं, अुनका अुपयोग हम दूसरे मौकों पर करें। लेकिन यहां तो देहातियों की मनोभावनायें प्रकट होनी चाहिअें। अिससे अुनसे हमारा परिचय बढ़ेगा। रामायण में कहा है कि रामचंद्रजी को ऋषियों की ज्ञानचर्चा की अपेक्षा साधारण दुनियादारों का वार्तालाप अधिक सुहाता था। हमें भी खादीयात्रा में देहातियों के भाषण अधिक पसन्द आने चाहिअें। अुनमें से अेकाध आदमी बाज़ दफा बिगड़ कर बोलेगा। लेकिन वह भी देहात का अेक चित्र समझ लेना चाहिअे।

अखिलभारतीय याने शून्य

थोड़ी देर पहले मनोहरजी कहने लगे यहां सब कुछ जीवन की दृष्टि से होना चाहिअे। जीवन की दृष्टि से सब बातें दिखायी जानी चाहिअें। वर्धा-योजना की जानकारी यहां मिलनी चाहिअे। अुनका कहना दुरुस्त है। लेकिन सच बात अैसी है कि हम सब सिर्फ बोलनेवाले हैं, प्रत्यक्ष काम करनेवाले नहीं हैं। बड़ी बड़ी अखिलभारतीय संस्थायें खोलते हैं। अखिल भारतीय माने शून्य। जब कोअी अखिल भारतीय संस्था खोली जाती है, तो मैं तो अैसा ही मानता हूं कि कोअी संस्था खुली ही नहीं। मेरी छाती तो कुल तीस या बत्तीस अिंच चौड़ी है। अुसमें अखिल भारत कैसे समा सकता है? लेकिन मैं भी अेक अखिल भारतीय संस्था का—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का—सदस्य बन गया हूं। क्या करूं? शिक्षा में कुछ दखल रखता हूं। शिक्षा के कुछ प्रयोग मैंने किये हैं। मैं अुसके विषय में कुछ सूचनायें कर सकता था। लेकिन सदस्य होने की तैयारी नहीं थी।

फिर आप पूछेंगे, "अैसा था, तो सदस्य क्यों हुअे ?" मैं बेकार था अिसलिअे सदस्य बन गया अैसा तो आप हरगिज़ नहीं मानेंगे। मैंने अुन लोगों से हाथ जोड़ कर कहा कि मुझे छोड़ दीजिये। लेकिन कभी आग्रह के वश न होनेवाला मैं भी आग्रह के वश हो गया। मेरी भी यही राय है कि हमारी सभी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन खादीयात्रा में होना चाहिअे।

राजनैतिक जागृति क्या चीज़ है ?

यहां अेक बात यह भी पेश की गयी कि हमें राजनैतिक जागृति पर विशेष ध्यान देना चाहिअे। मुझे भी यह बात बिलकुल ठीक मालूम होती है। राजकीय जागृति मुख्य चीज़ है। अुसे छोड़ कर कोअी काम करने का विचार मेरे दिल में कभी नहीं आया। लेकिन राजनैतिक प्रचार का काम यदि हम करने लगें तो कॉंग्रेस है किस लिअे ? अगर अुसे ज़िन्दा रखना हो तो वह काम अुसीके ज़रिये होना चाहिअे। राजनीति का खादीयात्रा में भी महत्त्व-पूर्ण स्थान है। लेकिन सवाल यह है कि राजनीति क्या चीज़ है ? हमने अिसका कभी विचार ही नहीं किया। त्रिपुरी कॉंग्रेस का सन्देश लोगों तक पहुँचाना कॉंग्रेस कमेटियों का काम है। वे हर गांव में सभा करें और लोगों को वह सन्देश सुनावें। चार दिनों में वह तहसील के अेक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचाया भी जाता है। लेकिन यह प्रचार राजनीति नहीं है।

वास्तविक राजनीति

त्रिपुरी कॉंग्रेस का पूरा पूरा हाल मैं भी नहीं जानता। मानवेन्द्र राय और सुभाष बाबू की क्या राय थी यह मैं नहीं जानता। अिसका मुझे खेद भी नहीं है। अितने से मैं राजनीति से वंचित नहीं हो जाता। लेकिन यह सब न जानते हुअे भी अेक बात मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूं। वह यह कि लाखों–करोडों आदमियों को अेकाध छोटी–सी बात के लिअे अेकत्र लाना ही दरअसल राज-नीति है। जिस कार्य को मैं अुत्तम समझता हूं, अुसे अगर ३५ करोड़ में से १० या २० करोड़ लोग गलत समझें तो मैं अपनी योजना अपनी जेब में रक्खूंगा। अुस हालत में अुसका आग्रह रखना अनुचित होगा। राजनीति का अर्थ है, समुदाय का अेकीकरण। जो बात लोगों को पसन्द आवे अैसी किसी लोकहित की बात पर लाखों करोडों लोगों के अेकीकरण का नाम राज-नीति है। गांधीजी या सुभाषबाबू की अेकाध बात बहुत अच्छी हो सकती है, लेकिन अगर वह लोगों को न जंचती हो, तो अुन्हें अुसे अपने तक ही सीमित रखना चाहिअे। कुछ गिनेचुने लोगों में वे अुसका प्रचार करें। परन्तु लोगों के सामने वही चीज़ पेश करनी चाहिअे जो अुनके गले अुतर सके।

राजनीति क्या नहीं है ?

दो टुकडों के चार और चार के आठ टुकडे करना राजनीति नहीं है। जिसकी कृति या अुक्ति से टुकडे होते हैं वह राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं। जिसके व्यवहार से खंडित वस्तु फिर अखंड हो जाती है, वही दरअसल राजनीतिपटु है। कांग्रेस का सन्देश देहातों तक पहुँचाना भी आवश्यक है।

परन्तु वह काम कॉंग्रेसकमेटी का है। अगर वह यह भी नहीं करेगी तो क्या हजामतें करेगी? अिस तहसील में तीनसौ देहात हैं। दस दिन में हम तीनसौ देहातों में कॉंग्रेस का सन्देश पहुँचा सकते हैं। हर अेक गांव में सभा करें और नियत जानकारी पढ़ कर सुनावें। थोड़ासा समझा दें। अेक देहात के बाद दूसरा देहात ले लिया। लेकिन अिस तरह से जानकारी देना राजनीति नहीं है। अेक बात पर जनसमुदाय को अिकट्ठा करना ही वास्तविक राजनीति है; फिर वह बात कितनी ही तुच्छ क्यों न हो। अुदाहरण के लिअे अगर कल अिस देश के पैंतीस करोड़ लोगों ने स्वराज्य के चिह्न के तौर पर खादी का अेक अेक फूल ही अपनी छाती पर लगाने का निश्चय अेक दिल से कर लिया तो भी मैं समझूंगा कि स्वराज्य मिल गया। लेकिन सब के फूल अेक ही रंग के, अेक ही आकार के और अेक-से होने चाहिअें। आज तो बारह-भाअी की अमलदारी (हरबोंगो का राज) है। बारहभाअी ने राज गंवाया। कहते हैं कि नाना फड़नवीस ने कमालियत के साथ राज की रक्षा की। लेकिन केवल चालीस साल राज्य की रक्षा करने के लिअे अितना कमाल करना पड़ा, यह देख कर नाना फड़नवीस ने राज्य का भविष्य पहले ही कह दिया था। अुन्होंने लिख कर रख दिया कि यह राज्य अंग्रेजों के हाथों में जाने ही वाला है। अुन्होंने अुसे बचाने के लिअे घोर प्रयास किया लेकिन अुसे केवल अपनी जिन्दगी तक ही बचा सके। मेरे कहने का मतलब यह है कि अेक दूसरे के खिलाफ कारवाअी करने को राजनीति नहीं कहते। महाराष्ट्र में बारहभाअी ने यही किया। नाना फड़नवीस की सारी करामात अितने ही काम आयी कि अुसने अपने जीते-जी राज्य नहीं जाने दिया। बहुत-से बुड्ढे आदमी यह कहते पाये जाते हैं, "हमारे जीते-जी तो वर्णसंकर न करो, हमारे चल बसने के बाद तुम्हे जो कुछ करना है कर लेना"। यही हाल नाना फड़नवीस की नीति का हुआ।

आजकल राजनीति की चर्चा खूब चलती है। फुरसत के वक्त अेकाध अड्डे पर बैठ कर 'हिटलर की गलती है या मुसोलिनी की?', अिस सवाल की चर्चा न करता हो अैसा अेक भी पंडित, कम से कम मेरे प्रान्त में तो, नहीं है। लेकिन क्या हम अुसे राजनैतिक कार्यकर्ता कह सकते है? हरगिज़ नहीं। राजनीति का अर्थ यह है कि अेक छोटीसी बात ही क्यों न हो, लेकिन अुसे ले कर करोडों आदमियों को अेकत्र करने की शक्ति हम निर्माण करें। यह राजनीति है। अिसे अच्छी तरह रट लीजिये। खूब ध्यान में रखिये। यही वास्तविक राज-नैतिक दृष्टि है।

मजदूरों की संख्या कम करनी पड़ी

अेक सवाल यह भी पूछा गया है कि हम कताअी मजदूरी तो बढ़ाते हैं लेकिन मजदूरों की संख्या कम क्यों करते है? जब मजदूरी बढ़ाने का निश्चय किया गया था अुस वक्त भी यह तो खयाल था कि मजदूर कम करने पड़ेंगे। लेकिन हमारी कल्पना से कहीं अधिक संख्या में मजदूर कम करने पड़े। जाजूजी कहते है, जहां १६,००० मजदूर थे वहां आज ६,०००

हैं। मैं तो यह संख्या सुनने के लिअे तैयार ही नहीं था। अुनकी भी यह कल्पना नहीं थी। द-स-ह-ज़ा-र मजदूर बन्द हो गये! पुराने मज़दूरों को निकालकर अुनकी जगह नये भरती करने का अुद्देश तो अिसमें है ही नहीं। हमारी नीति यह तो नहीं है कि पुराने मज़दूरों को मार कर नये नये खड़े करें। अगर जगह जगह वस्त्रस्वावलम्बन बढ़ने के कारण मज़दूरों की संख्या घटती चली जाय तो हमारा काम सफल हो जायगा। अुसमें तो सभीका कल्याण है। लेकिन आज जो मज़दूर काम पर से बन्द किये गये वे तो मानों हमारे खिलाफ़ खासे प्रचारक ही बन गये। लेकिन अिसका अेक ही अिलाज़ है। हर ज़िले में वस्त्रस्वावलंबन शुरू करना चाहिअे। किसान जिस प्रकार अपने खेत में अन्न पैदा करता है अुस तरह वह अपना कपड़ा भी आप बनाने लगे। अिसके लिअे कुछ कुशल मज़दूरों की ज़रूरत होगी। अुतने हमें सिखा कर तैयार करने चाहिअें। अुनके जरिये हम वस्त्रस्वावलंबन बढ़ा सकेंगे।

पवनार का अनुभव

पवनार में मेरी यह कोशिश है कि कातनेवाले लड़कों को ज्यादा से ज्यादा मजदूरी मिले। साथ ही साथ यह भी प्रयत्न हो रहा है कि अुनके परिवार के लोग भी खादी पहनें। मैं अुन्हें मज़दूर मानता ही नहीं। मैं तो यही समझता हूं कि ये मेरे आश्रम के लड़के हैं। अुन्होंने त्याग भी किया है। खादीयात्रा में स्वयंसेवकों का काम करने के लिअे अपनी मज़दूरी छोड़कर बारह लड़के यहां आये हैं। अुन्होंने यहां भी अपना काम अच्छी तरह कर दिखाया। मेरी दृष्टि से ये बारह सिपाही तैयार हो गये। अैसे सिपाही बनाने के लिअे ही हमने परिश्रमालय खोल रक्खे हैं। मज़दूर जब आधी मज़दूरी खादी के रूप में लेने लगेंगे तो यह कार्य शीघ्र सफल हो जायेगा। आज भी कअी मज़दूर आधी मज़दूरी खादी के रूप में लेने लगे हैं। अिस तरह अुनके घरों में खादी का प्रचार हो रहा है। ये घर प्रज्वलित होंगे। ये परिवार खादीधारी बनेंगे। अिन घरों की स्त्रियां खादी की साड़ी पहन कर गांव में घूमेंगी। गांव में अिस बात की चर्चा फैलेगी। दूसरों को भी वही करने की अिच्छा होगी। फिर दूसरों को सिखाने के लिअे मैं अिन्हीं विद्यार्थियों का अुपयोग करूंगा। अिनसे कहूंगा, 'लड़को, तुम्हारा काम पूरा होने पर लोगों को सिखाने जाया करो।' पवनार में अेक खासा शिक्षकवर्ग तैयार हो जायेगा। अुसके द्वारा वहां स्वावलंबन बढ़ेगा।

नृसिंहावतारी खादी

अब अेक अैसी बात कहनी है जो यहां किसीने नहीं छेड़ी। वर्धा के खादी-भंडार में जो खादी मिलती है वही सच्ची खादी है यह कभी न भूलिये। दूसरे अप्रमाणित भंडारों की खादी खादी ही नहीं है। अगर आप खुद नहीं कात सकते, या वह खरी खादी मोल नहीं ले सकते, तो मिल का कपड़ा लीजिये लेकिन यह खोटी खादी तो हरगिज़ न लीजिये। हम मत्स्य, कच्छप, वराह आदि पशु-अवतार सह सकते हैं। राम और कृष्ण तो, खैर, मनुष्यावतार ही थे। लेकिन यह नृसिंहावतार नहीं चाहते। वह न पूरा पशु है, न पूरा मनुष्य। खादी

के नाम पर खोले हुअे ये आदमी चूसने के कोल्हू हम नहीं चाहते। यह अधूरी खादी महा भयंकर है। आदमियों को खादी के नाम पर आप क्यों चूसें? मिलें तो यह काम कर ही रही है। फिर उन्हीं का कपड़ा क्यों नही लेते? यह अधूरी खादी ले कर खादी में भी शोषण का पाप दाखिल न कीजिये। अिसलिअे मेरा आपसे निवेदन है कि यदि आपको खादी लेना है तो खादीभंडार से पूरी मजदूरी दे कर बनवाअी हुअी असली खादी ही लीजिये; नही तो खुशी से मिल का कपड़ा खरीदिये, लेकिन खोटी खादी—अप्रमाणित खादी—कभी न लीजिये। खेतों में चिड़ियों को डराने के लिअे जो 'मनअी' बनाते हैं वह देखने में तो आदमी के समान ही दीखता है, लेकिन आदमी नहीं होता। वही हाल अिस बनावटी खादी का है। अैसी बनावटी खादी से शायद कॉंग्रेस-कमेटी वालों को सन्तोष करना पडे। कोअी सदस्य कहे कि मेरी खादी प्रमाणित खादी है तो अुसकी परीक्षा का कोअी साधन हमारे पास नहीं है। अुसीको प्रमाणित खादी मानना पड़ेगा। मैं भी कॉंग्रेसकमेटी का अधिकारी रहूं तो मुझे भी यही करना पडेगा। खेतों में जो 'मनअी' होता है वह जैसे सियार, सूअर वगैरा जानवरों को डराने के लिअे काम आता है, अुसी तरह कॉंग्रेस कमेटियों के लिअे यह खोटी खादी काम आ सकती है। लेकिन वह हमारे राष्ट्र को तबाह कर देगी। कहा जाता है कि देहातों में प्रचार होना जरूरी है। लेकिन आश्रम अिस पर अमल नही कर सकता। काफी आदमी कहां हैं? कोअी अपनी अेक ही आंख दोनों तरफ घुमाता है। हम अेक आदमी को हरकहीं कैसे नचावे? आश्रम की भी प्रचार करने की अिच्छा भरपूर है। लेकिन अुसके पास आदमी मुट्ठी भर हैं। आप आदमी दीजिये। हम अुन्हें प्रचारकार्य की शिक्षा दे कर तैयार कर देंगे।

खादीयात्रा, नालवाडी ता: २।४।१९३९ } मराठी से अनुवादित

सत्य, अहिंसा और जनतंत्र

अगर सत्य और अहिंसा नही चल सकती तो लोकशासन (डेमोक्रसी) भी नही चल सकता। क्यों कि अुस हालत में यह भी सत्य और अहिंसा के खिलाफ होगा। अगर हम डेमाक्रसी को मानते हैं, तो करोडों का सच्चा हित हमें करना होगा। हित का विचार करने के लिअे सब अेक जगह तो बैठ नहीं सकते हैं। चन्द प्रतिनिधि बनाने ही होंगे। वे अगर जनता के सच्चे खिदमतगार हैं, सच्चे डेमोक्रट हैं तो शुद्ध हृदय से वे जनता की आवाज को समझने की कोशिश करेंगे और अुसे ही प्रकट करेंगे।

गांधी सेवा संघ, सम्मेलन
सावली ता० १७:४:३७ }

—गांधीजी

कौअे की नज़रसे

११. आख़िरी राम राम !

सम्पादक भाअी,

कल रात को अेक अनसोची घटना हो गयी। तीन दिन पहले सवाअी भुशुंडि ने मुझसे कहा, "काका, मैं कुछ दिन आश्रम में नहीं आअूंगा। अेक कौवी का साथीदार मर गया है, और अुसके अंडों को सम्हालने के लिअे अुसे मेरी मदद की ज़रूरत है। अिसलिअे मैं वहीं ठहरूंगा"।

हर रोज की तरह कल भी रात को मैं अपनी खुराक की खोज में निकल पड़ा। अेक पेड़ के अूपर के भाग में मुझे अेक कौआ दीख पड़ा। मैंने वेग से जा कर अुसकी गरदन पकड़ ली और अपनी चोंच की नोंक से अुसे घायल कर दिया। जब वह 'का–' करके चिल्लाया, तब मैं चौंक उठा। मैंने देखा कि मैंने अपने सवाअी को ही पकड़ लिया था। मुझे भारी दुःख हुआ। मैं बोल अुठा, "अरे सवाअी, यह क्या हो गया? तुम अितने सयाने होते हुअे भी, पेड़ के अन्दर छिप कर क्यों न बैठे? चांदनी रात में दिखाअी पड़े अिस तरह झाड़ की बाहरी शाखा पर क्यों बैठे रहे? या, मुझे पहले से खबर क्यों न दी कि तुम अिस पेड़ पर रहोगे? तो मैं अिस ओर फटकता ही नहीं। अब मैं क्या करूं? मैं ने तुम्हारी गरदन पर अितना गहरा घाव कर दिया है कि अब तुम्हारा जिन्दा रहना असम्भव है। मुझे बड़ा शोक हो रहा है कि आखिर मैं ही अपने मित्र का मारनहार हो गया।"

यह सुन कर सवाअी मुसकराया और क्षीण स्वर में बोला, "शोक न करो, काका। शोक करने जैसी कोअी बात हुअी ही नहीं। 'गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचन्ति पंडिताः॥' अपने स्वभाव के अनुसार तुम परमात्मा द्वारा नियत की हुअी अपनी खुराक खोजते खोजते इधर आये, और मैं ही तुम्हारे पंजे में आ गया, यह तो केवल संयोग है। और अिसे मैं शुभ संयोग समझता हूं। मैं भगवान को धन्यवाद देता हूं कि मैं न सिर्फ अपने अेक भाअी की जान बचाने के काम आया, बल्कि अपने प्यारे दोस्त की भूख बुझाने के भी। हम आदमी तो हैं नहीं, जो बूढे हो कर बिछौने में सड़ते सड़ते आनेवाली मौत को कुदरती मानें और अच्छी स्थिति में रहते हुअे दूसरे की खुराक हो कर मरने को अकाल मृत्यु समझें। स्वभावसिद्ध परमात्मा का ज्ञान रखनेवाले हम पंखीगण अच्छी तरह जानते हैं कि यह सारी दुनिया अुस परमात्मा की खुराक ही है, और मौत अुसकी केवल अेक विधि है। अिस लिअे, काका, तुम शोक छोड़ दो। जिस तरह आज तक तुमने मुझे अपने हृदय में स्थान दिया है, अुसी तरह अपने पेट में भी जगह दे दो।

मैं—नहीं, नहीं, भुशुंडी, यह तुम क्या कह रहे हो? मैं अपने मित्र को कैसे खा सकता हूं? तुम्हारे अिस विनोद के कारण मुझे और भी दुःख हो रहा है। मैं क्या करूं? कहो, क्या तुम्हारी जान बचाने का कोअी अुपाय नहीं है?

सवाओी—नहीं। तुम्हारी सच्ची मित्रता तो मेरा अन्त जल्दी से जल्दी करने में ही है। अगर तुम मुझे अैसा ही छोड दोगे, तो मैं नहीं जानता कि मुझे और कितने घण्टे दारुण कष्ट भुगतना होगा। और फिर, अिस शरीर को जमीन पर सडने के लिअे फेंक देने से भी क्या फायदा होगा? तुम्हारी भूख शान्त करना ही अब अिसका अच्छे से अच्छा अुपयोग है। अिसलिअे मिहरबानी कर मुझे जल्दी खत्म कर दो।

सम्पादक भाअी, मुझे सवाओी की बात सही जान पडी। लेकिन मेरा जी नहीं हुआ कि मैं अपने मित्र को जल्दी पूरा कर दूं। **मैंने** कहा, "नहीं, नहीं, सवाओी, मैं जानता हूं कि तुम्हें बहुत कष्ट हो रहा है, फिर भी, जब तक तुममें बोलने की ताकत है, मैं तुम्हारे सयानपन की बातें सुनने का लोभ नहीं छोड सकता। तुम अपना आखिरी सन्देश मुझे देते जाओ"।

सवाओी ने कराहते हुअे मुश्किल से कहा, "अब मुझमें ज्यादा बोलने की ताकत नहीं रही, फिर भी मैं तुम्हारी, मुझसे जितनी हो सके, आखिरी सेवा करने को तैयार हूं। कहो, मैं किस विषय पर कहूं"?

मैं—आश्रमवाले और अुसी तरह के सब लोगों के लिअे ही कुछ कहो।

सवाओी—अच्छा तो तुमसे ही शुरू करता हूं। तुम अब अिस आश्रम को छोड कर चले जाओ। अुल्लू होना अच्छा है, पर आश्रम का अुल्लू होना अच्छा नहीं है।

मैं—लेकिन अब अितने साल की माया कैसे छूट सकती है?

सवाओी—देखो, शायद मुझे खाने के बाद छूट जाय!

मैं—आज तक मैंने कोओी कम कौओे नहीं खाये हैं। क्या अब तुम्हें हजम करके मैं अुल्लू से कौआ बन सकता हूं?

सवाओी—देखो, मैं तुम्हें सयानपन की बात कहता हूं। आश्रमवासी बने रहोगे तो पक्के घुग्गू बन जाओगे। फिर, स्वयं बापू के लाख कहने पर भी तुम्हारा अुल्लूपन नहीं मिट सकेगा। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि कॉंग्रेस के भी सारे गांधीवादियों ने अब गांधी को छोड दिया है?

मैं—अच्छा। मैं तुम्हारी सिखावन पर चलने की कोशिश करूंगा। अब दूसरों के लिअे क्या कहना है?

सवाओी—बापू और विनोबा से कहो कि जब जब आप अपने ही मुंह से यह जाहिर करते थे कि सत्य, अहिंसा, या चरखे का जितना विचार आपने किया है, अुतना और किसीने नहीं किया, तब तब सवाओी भुशुंडि के दिल में हमेशा चोट लगती थी।

मैं—तो क्या अिनकी ये बातें सही नहीं हैं।

सवाओी—होंगी भी; और न भी होंगी। अुनके पास अैसा कौन-सा थर्मामीटर है? और हो तो भी अुन्होंने कब अुसे हर अेक के हृदय में लगा कर अुसका माप लिया था? यही मुझे अखरता है?

मैं—खैर, जो तुम चाहो, कह सकते हो।

सवाओी—तो क्या यह तुम्हें बुरा लगता है? तो मुझे किसीके लिअे कुछ भी नहीं कहना है।

मैं—नहीं। मैं तो यही सोच रहा हूं कि तुम्हें भी आखिरी दम तक अपने सयानपन का घमंड नहीं छोड सकता।

सवाओी—संभव है कि अिस प्रकार बोल देना मेरा प्रकृतिधर्म ही है। पर मैं

यह घमंड से नहीं कह रहा हूं। अपने स्वभाव और तुम्हारे कहने पर कह रहा हूं।

मैं–अच्छा, नरहरि, परीक्षितलाल, आदि जिनके पास हम रातदिन रहते आये, अुनके लिअे कुछ नहीं कहोगे?

सवाअी–हां, हां। नरहरि से कहो कि जब तुम जोर से सच बोलते हो तब तुमको लोग कांटों से भरा हुआ गुलाब समझते हैं और जब गंभीरता से मौन रहते हो, तब लोग तुमको बिखरी हुअी पंखुड़ियों का गुलाब समझते हैं। तुम बगैर कांटोंवाला ताजा गुलाब क्यों नहीं बनते? और परीक्षितलाल से कहो कि ठक्करबाप्पा से वे सिफारिश करें कि हरिजनों के लिअे अेक नया झंडा बनवाया जाय, और अुस पर कौअे का चिन्ह बनवाया जाय, और कौओं का मान बढ़ाया जाय।

मैं–मैं तुम्हारी बातें कुछ भी नहीं समझ पाता। लेकिन जैसा तुम चाहते हो, मैं सब से कहूंगा। अब गांधी सेवा संघ के लिअे भी कुछ कहो।

सवाअी–अुससे कहो कि या तो गांधी को रक्खो, या सेवा को रक्खो, या संघ ही को रक्खो। तीनों को रखने की चेष्टा में अुस मदारी का किस्सा चरितार्थ हो जायगा जो बन्दर, बकरा और सॉंप को ले कर बरसात में नदी के पार जा रहा था। और यह भी कहो कि आत्मा का अस्तित्व जरूरी है, तो भी, देह की हलचल प्राण ही कर सकता है। और कहो कि यद्यपि तराजू की डंडी का मध्यबिन्दु ही न्याय–अन्याय को परख सकता है, तो भी बोझ अुठाने के लिअे तराजू की रस्सियां और डंडी मजबूत होनी ही चाहिअे। अिसलिअे संघ को किसी प्राणवान और पक्की रीढ़वाले आदमी को सौंपो। तुलाधर बनिया अुसके हिसाब भले ही लिखता रहे।

मैं–यह ताना तुम किशोरलाल को मारते हो, या घोत्रे को?

सवाअी–में किसी पर भी ताना नहीं कसता। वे दोनों सज्जन हैं। मेरे दिल में दोनों के लिअे आदर है। मरते समय मैं अैसे सज्जनों की कैसे मस्करी करूं? मैंने तो सिर्फ संघ के हित के लिअे जो कुछ ठीक लगा वह कह दिया। पर अब मुझसे अधिक नहीं बोला जाता। बहुत पीड़ा हो रही है। अब मुझे समाप्त कर दो।

मैं–नहीं। आखिर 'सर्वोदय' के सम्पादकों ने मुझपर आज तक अहसान किया है। अुनके लिअे तो कुछ कहो।

सवाअी–अुनके लिअे क्या कहूं? काका तो अुन धीवरों की जमात के हैं जिनकी नामावलि कबीर ने अेक साकी में दी है। छः आस्तिक और कितने ही नास्तिक दर्शनकार हिंदुस्थान की सब मछलियों को पकड़ने में अब तक सफल नहीं हुअे, अिसलिअे अब काका शिक्षादर्शन का अेक नया जाल फैलाना चाहते हैं। अुसका प्रथम सिद्धान्त है, 'जो शुद्धलेखन और व्याकरण की गलतियां करता है–यानी काका के नियमों से नहीं चलता—वह चारित्र्यभ्रष्ट आदमी के बराबर है'। भविष्य के हिन्दुस्थान में चरित्ररक्षा व्याकरण और शुद्धलेखन के ज्ञान से होनेवाली है। अुनसे कहो कि आश्रम के अुल्लू का दोस्त सवाअी भुशुंडि कह गया है कि आप हिंदुस्थान के लिअे अब कोअी नया दर्शन न खोजें और भूतकाल की दूरबीन से भविष्यजीवन का अवलोकन न करें। बल्कि सब पुराने दर्शनों को भूलने का कोअी शास्त्र तैयार करें। और कहो कि कोयल से कौआ ज्यादा

सभ्य प्राणी है। दादा से कहो कि अपनी आंखों का अिलाज करो। वे बिगड़ती अिसलिअे हैं कि वे आपकी होते हुअे भी आप अुन्हें दूसरों की दृष्टि में मिलाने की ही कोशिश किया करते है। यह कसरत अच्छी नही हैं।

अब बस करो। अब मेरे हृदय मे अेक बार चोंच मार कर मेरा काम तमाम कर दो।

मैं–मेरा दिमाग तुम्हारी बात मंजूर करता है। पेट में भूख की आग भी धधक रही है। पर चोंच अुठाने को जी नही चहाता। क्या करूं?

सवाओी–यही सीखो। आज मुझसे आखिरी सबक यही सीखो। जब दिमाग सही कहता हो, जरूरत साथ देती हो, फिर भी जो दिल डरता है, अुसको कमजोर समझो। यह तो अुस बच्चे के जैसी बात है कि जिसके पंख अुगे हैं, हवा भी अच्छी है, पर फिर भी वह अुडने से डरता है। अैसे बच्चे को हम घोंसले से बाहर फेंक देते हैं और वह तुरन्त ही अुडने लगता है और हमे धन्यवाद देता है। अुसी तरह हिम्मत करके मुझे अेकदम मार डालो।

संपादक भाओी, आखिर में मैंने वही किया। चांद की तरफ़ देख कर मैंने अपनी आंखें अेकदम खोल दीं, जिससे मैं अंधा-सा हो गया। फिर दिल में महात्मा गांधी की जय बोल कर जोर से सवाओी के कलेजे में चोंच भोंक दी!! अुसका मुह खुल गया; और वह सदा के लिअे शांत हो गया!!

अिस तरह मैं अपने प्यारे मित्र के देहान्त का निमित्त बना। फिर, अुसके गुणों की याद करते करते मैं अुसे वहीं बैठ कर खाने लगा। वह मेरे मन की अेक बडी विचित्र-सी दशा थी। मेरी आंखों से आंसू का दरिया बहने लगा! पर, साथ ही मेरे मन में यह विचार चलता रहा कि मैं आज धन्य हूं। आज मैं अेक बडी पवित्र खुराक खा रहा हूं। मेरा परम मित्र आज मेरी रगरग में प्रवेश पायेगा। अुसका खून मेरा खून बनेगा। अुसके मांस से मेरा मांस बल पायेगा। दिल से तो हम हमेशा अेक रहे; अब शरीर से भी अेक हो रहे हैं, यह बडे सौभाग्य की बात है। वेदांत में भी जो अद्वैत संभवनीय नहीं है, अुसे मैं आज अनुभव कर रहा हूं। संपादक भाओी, भूख शान्त होने पर जो आनंद होता है अुसे मैंने कओी बार अनुभव किया है। मुझे आज न केवल भूख की तृप्ति का आनन्द था, पर अपने मित्र से अद्वैत पाने की कृतार्थता भी मैं अनुभव कर रहा था। और साथ ही अब सवाओी का स्थूल सहवास नहीं मिलेगा अिसके शोक की लहर भी मन में अुठती थी। आप किशोरलाल से अिस स्थिति का 'मनोविश्लेषण' मांगे। पर, हां, अब मेरा और आपका व्यवहार कैसे रहेगा? मैं तो अब अपने मित्र के आदेशानुसार आश्रम छोड कर जा रहा हूं। और, फिर भी आप अपने ही संतोष के लिअे पूछें।

आज तक आपने मेरे लेखों को 'सर्वोदय' में स्थान दिया और मैंने अपने लेखों से आपके पृष्ठ भर दिये, अिससे मेरे ख्याल में हमारा हिसाब तो बराबर हुआ है। अिसलिअे धन्यवाद देने के लिअे भी पत्र-व्यवहार की गुंजाअिश नही है। तो अब आखिरी रामराम!!

आपके

आश्रम का कौआ

किस ओर ?

[किशोरलाल घ. मशरूवाला]

गांधीजी के और कॉंग्रेस कार्यसमिति के निवेदनें तथा प्रस्तावों में जो अन्तर है, उससे गांधी सेवा संघ के कुछ सदस्यों को क्षोभ हुआ है। वैसा होना ताज्जुब की बात नहीं। बल्कि मेरी दृष्टि में आश्चर्य तो यह है कि जितनी मात्रा में क्षोभ होना चाहिअे था, उतना नजर नहीं आ रहा है। अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमिटी की बैठक के दिनों में (ता. ९-१० अक्टूबर) में वर्धा में ही था और उसके लिअे आये हुअे संघ के कुछ सदस्यों से मेरी बातें भी हुअी थीं। मुझे खेद है कि मेरे इशारा करने पर भी उनमें से बहुत कम लोग यह समझ सके कि कॉंग्रेस के जिस निवेदन को वे अनुमोदन देनेवाले थे, वह गांधीजी की बीस साल की मेहनत को तमाम कर देनेवाला साबित हो सकता है, और गांधीजी की ७१ वीं जयंती के दिन यह प्रस्ताव का उन्हें कॉंग्रेस की ओर से अेक करुण भेंट ही बन जायगा। अन्त में वैसा ही हुआ।

त्रिपुरी कॉंग्रेस में कॉंग्रेस ने बड़े जोरशोर से प्रस्ताव किया कि गांधीजी के नेतृत्व में हमारा विश्वास अटल है, और चाहा कि उनकी पसंद की हुई वर्किंग कमिटी के द्वारा ही कॉंग्रेस-तंत्र का संचालन हो। इस के परिणामस्वरूप आखिर श्री सुभासबाबू ने त्यागपत्र दिया, और संपूर्ण गांधीवादी वर्किंग कमिटी कायम हुई। यह कितनी आश्चर्यकारक घटना है कि उसी वर्किंग कमिटी और उसी तीनचतुर्थांश गांधीवादी अ. भा. कॉं. क. ने चरखाद्वादशी के ही दिन गांधीजी से कह दिया कि सिर्फ अहिंसा के सिद्धान्त पर दृढ रहने की अब हमारी हिम्मत नहीं है। हिंसात्मक साधनों को भी हमें स्थान देना होगा।

मैंने सुना कि इस विषय की बहस में अ० भा० कॉं० क० की बैठक में यह कहा गया था कि जिस तरह अहिंसा में मानते हुअे भी जब जरूरत हुई तब कॉंग्रेसी सरकारों को गोलियां भी चलानी पड़ीं और अनिवार्य समझ कर कॉंग्रेस ने यह बरदाश्त कर लिया; उसी तरह देश की रक्षा के लिअे, या अनिवार्यरूप से, युद्ध आ पड़े तो अुसमें भाग लेने के लिअे युद्ध का सरंजाम तैयार करना जरूरी समझना चाहिअे, और उसे बरदाश्त भी कर लेना चाहिअे। जहां तक मुझे मालूम है अेक भी गांधीवादी ने इस दलील को काटने का प्रयत्न नहीं किया। यानी, सब लोग इस बात को गृहीत करके ही चले कि गांधीजी के विचार जो कुछ हों सो हों, गांधी सेवा संघ की प्रतिज्ञा भी जो कुछ हो सो हो, कॉंग्रेस मे कानूनी हिंसा, हिंसा नहीं मानी जायेगी। केवल कॉंग्रेस का सदस्य ही नहीं बल्कि गांधी सेवा संघ का सदस्य भी, अगर कानून से किसी पर गोली चला सकता है, किसी को फांसी दे सकता है, तो वैसा करेगा, और फिर भी अपने को अहिंसक मानेगा।

अैसा नहीं कि यह नहीं हो सकता। अेक व्यक्ति या संस्था अपने लिअे अैसी मर्यादा बना सकती है और बनाती भी है। हम जानते हैं कि कितने ही जैन मैजिस्ट्रेट फांसी की सजा देते हैं, गोली चलाने की भी आज्ञा देंगे, और फिर भी अहिंसा में अपना व्यक्ति-

गत विश्वास प्रकट करेंगे। गांधी सेवा संघ भी वैसी ही अेक संस्था हो सकती है।

पर क्या गांधीजी की अैसी ही कल्पना थी ? क्या सत्य और अहिंसात्मक साधनों से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की घोषणा का इतना ही अर्थ निकालने के लिअे वे देश के सामने बीस साल से उसे रखते आये ? क्या अहिंसात्मक रामराज्य की उनकी यही कल्पना है ? जो विचार उन्होंने हब्सीनिया और चेकोस्लोवाकिया के बारे में प्रकट किये, क्या वे हिंदुस्थान के लिअे नहीं थे ? ता. १५:१०:१९३८ के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा था—

"अगर मैं चेक होता तो मैं इंग्लैंड और फरान्स को कह देता कि मेरे देश की रक्षा की जिम्मेदारी से मै आप दोनों को मुक्त करता हूं। फिर भी, मुझे जिन्दा तो रहना है। और फिर भी वह किसी का गुलाम बन कर नहीं। मैं या तो पूरी आज़ादी से रहूंगा या मरूंगा। समशेर के जंग से इसमें सफल होने की आशा रखना बेवकूफी ही मानी जायेगी। मगर, जो मेरी आज़ादी छीन लेना चाहता है, उसका निःशस्त्र विरोध करते हुअे उसके हाथ से मर जाऊं, तो वह बेवकूफी नहीं है। वैसा करने में यद्यपि मेरा शरीर जायगा, परन्तु मेरी आत्मा, मेरा आत्मसम्मान, बच जायगा।

"मैं डॉ० बेनिस को इस निर्बलों के नहीं, बल्कि बहादुरों के शस्त्र की भेंट करता हूं.........."

अैसी ही सलाह उन्होंने यहूदियों, हबसियों, चीनियों, तथा दूसरी पीड़ित प्रजाओं को बार बार दी है। वे जानते थे कि यह सलाह उनके लिअे कुछ हद तक बेकार थी। क्यों कि वह विचार उनके लिअे नया था। उन्होंने न कभी सोचा, न सुना हुआ था। पर हमारे देश में उसकी परंपरा प्राचीन काल से चली आई है और दक्षिण आफिरका तथा इस देश में मिला कर इन ३०–३५ वर्षों में गांधीजी ने उसकी शिक्षा भी हमें दी है। उन्होंने हमेशा यह उम्मीद की कि सारी दुनिया चाहे जितनी शंकाशील रहे, हिंदुस्थान को उसका इतना परिचय हो चुका है कि वह इस शस्त्र को न छोड़ेगा, और उसके द्वारा भविष्य में दुनिया को भी हिंसक शस्त्रों की व्यर्थता और सत्याग्रह की सफलता का सबक सिखायेगा। सत्याग्रही सभ्यता के द्वारा जगत में अेक नवयुग निर्माण करने का यश हिंदुस्थान प्राप्त करेगा।

पर, यह नहीं हुआ। मेरा यह खयाल है कि अहिंसा पर से श्रद्धा उठ जाने की अपेक्षा अविचार मे अेक मोह में फँस कर कॉंग्रेस ने अपने सिद्धान्त को छोड़ दिया है। जिस तरह लड़ाई की खबरें सुन कर सटोडिये बाज़ारों में तेजी-मंदी ला कर लाभ उठाने की ताक में रहते हैं, उसी तरह कॉंग्रेस को भी अेक दांव आजमाने का मोह हुआ। अुसने सोचा कि लड़ाई से हिंदुस्थान के लिअे कुछ लाभ उठा लें। आज़ादी के जितना निकट जा सकें उतना चले जायँ। सरकार को भी कुछ घूंस दे दें। वैसे भी तो सरकार जबरदस्ती से हिंदुस्थान पर लड़ाई का कुछ न कुछ भार डालती ही। उसमे सरकार को काफी कठिनाइयों का अनुभव भी होता। तब, अगर सरकार कॉंग्रेस को संतोष दे, तो कॉं. भी सरकार को संतोष दे दे। जो जबरदस्ती लिया जायगा, उतना, और शायद उससे भी कुछ अधिक, बिना तकलीफ मिल जाने का लालच सरकार को

होगा, और कॉंग्रेस भी अपने ध्येय की ओर ज्यादा विश्वास और स्थिरता से कदम रखेगी। उसका बल बढ़ जायगा। इस मोह में आ कर कॉंग्रेस ने अेक बड़ा पत्रक प्रसिद्ध कर दिया। सारी दुनिया की लोकशाहियों और पीड़ित जनताओं की वह वकील बन गई। अपनी स्वतंत्रता पाते ही, जगत की सब सर्वाधिकारी–राज्यप्रणालियों का नाश करने की महा समस्या हल करने में अपनी सारी शक्ति लगाने का संकल्प अुसने जाहिर कर दिया। जगत का और नवीन बलवान हिंदुस्थान का अेक भव्य चित्र अपनी आखों के सामने खींच लिया और अुस भव्य चित्र की सुन्दरता में स्वयं अैसी लुब्ध हो गई कि बीस साल से जिस चित्र को गांधीजी आहिस्ता आहिस्ता पूर्ण कर रहे थे उसे कूची की अेक ही फटकार से बिगाड़ दिया। अब हिंदुस्थान—कॉंग्रेसी हिंदुस्थान भी—अपने लोगों की रक्षा युद्ध के सरंजाम से करेगा! अपने मित्र–राज्यों को युद्ध में हिंसक सहयोग देगा! अपनी आजादी के लिअे भी मानवहिंसा न करने की प्रतिज्ञा करनेवाली कॉंग्रेस, अब युद्ध मे सब कुछ करेगी!

कहा जाता है कि "कॉंग्रेसी सरकार को जातीय और औद्योगिक झगडों में हिंसा से काम लेना पड़ा था; उसीका यह अेक आगे कदम है। इसमें इतना आघात मान लेने की कोई जरूरत नहीं"। आघात तो उसका भी हुआ था। और अबतक काफी है। पर, उसे अेक हद तक समझ सकते थे। वह अेक तात्कालिक इलाज के रूप में, अपनी कमजोरी समझ कर, बरदाश्त कर लेने की बात थी। अब समझबूझ कर, स्थायी इलाज के रूप में, अेक नयी नीति स्वीकारने की बात आई है।

पर, फिर भी, मैं यह कबूल करता हूं कि इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। जातीय दंगों में कॉंग्रेसी सरकार को जब पहले पहल गोली चलाने का मौका आया, उस वक्त गांधी सेवा संघ का सम्मेलन डेलांग में हो रहा था। उससे गांधीजी को जो वेदना हुई और उन्होंने शांतिसेवकों की सेना की स्थापना के लिअे दिल हिलाने वाली जो बातें सुनाईं, वे अभी बहुत पुरानी नहीं हुई हैं। पर उसी समय हम सब सदस्यों ने गांधीजी के सामने अपने को कमजोर जाहिर किया। गांधीजी की सूचनाओं का कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं हुआ। उस कमजोरी का पक्व फल वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय समिति के प्रस्ताव के रूप में आज दिखाई देता है।

गांधी सेवा संघ, या जो कोई अपने को गांधीजी के सत्याग्रह के सिद्धान्तों का सेवक समझे, उसे उसी बात से प्रारंभ करना होगा, जो डेलांग में गांधीजी ने चाही थी। वह बात है गुंडाशाही, जातीय दंगे, वर्गीय दंगे आदि को बिना पुलीस और सेना की सहायता के मिटाने का अहिंसात्मक मार्ग आजमाने की नीति। जहां कहीं फिसाद हो, उसमें निर्भयता से चले जानेवाले निःशस्त्र सेवक बनने की तालीम हमें लेनी और देनी होगी। हिंसा के मुख में दौड कर चले जाने की शक्ति प्राप्त करनी होगी। जो मनुष्य वह शक्ति दिखावेगा, वह गांधी सेवा संघ का सदस्य हो या न हो, वही सत्याग्रह की ध्वजा ऊंची रख सकेगा। उस शक्ति और श्रद्धा के बिना गांधी सेवा संघ, गांधीवादी, या कॉंग्रेस, कोई भी गांधीजी के वारिस नहीं हो सकते। हमें शर्म के साथ कबूल करना होगा कि इस समय गांधी-सेवा-संघ

के सदस्य गांधीजी के आगे ऊंचा सर करने की ताकत नहीं रखते। अगर गांधी सेवा संघ को ही यह शक्ति हासिल करनी हो तो उसे निःसंकोच हो कर अध्यक्ष से ले कर नीचे तक सफाई करनी होगी।

काशी का हिन्दी साहित्य सम्मेलन

[काका कालेलकर]

काशी के हिन्दी साहित्य सम्मेलन से हम बहुत कुछ संतुष्ट हो कर ही लौटे हैं। अमरपुरी वाराणसी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को नया बल प्रदान किया है।

काशी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को अनेक पाठ सिखाये। कहा जाता है कि जो लोग काशी की यात्रा करके लौटते हैं वे दीर्घायुषी होते हैं। यदि यह बात सच है तो हिन्दी साहित्य सम्मेलन अवश्य दीर्घायुषी होगा।

लोकशाही के अिन दिनों में मतभेदों का बाज़ार गर्म रहे तो अुसमें कोअी आश्चर्य नहीं। पुराणवादी नगरी में अगर सुधारकों का विरोध होता तो वह स्वाभाविक ही समझा जाता। परन्तु हम हर्ष के साथ कह सकते हैं कि काशी में अुपस्थित प्रतिनिधियों ने सुधार-विरोधी वृत्ति का परिचय नहीं दिया। सम्मेलन में चर्चा के आवेश में जो सख्त बातें कहीं गयीं वे भी प्रेममूलक और भाषाभक्ति की ही परिचायक थीं। जब पितामह महामना मालवीयजी को अुनके कारण खेद हुआ तो अुन्हें बिलकुल भूल जाना ही हमारे लिअे अुचित है। जो लोग हमें अपने समझते हैं वे ही तो हम पर बिगड़ कर कड़ी बातें सुनाने का अधिकार भी रखते हैं। अुस ‑वाद की कटुता को भुला कर हमें प्रेमवृत्ति का ही स्मरण रखना चाहिअे। किन्तु अितना अुल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता कि माननीय श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन का लिहाज अगर आज के नवयुवक कुछ अधिक करते तो सोने में सुगंध आ जाती।

हमें यह नहीं भूलना चाहिअे कि 'हिन्दी का प्रेम' और 'अुर्दू का डर' अेक ही वस्तु नहीं है। विदेशी राज्य की गुलामी में रह कर हम यह भूल ही गये हैं कि हमारा अुद्धार हमारे ही हाथ में है। दूसरा कोअी न तो हमारा अुद्धार कर सकता है, न अधःपात ही। चाहे बिहार में हो या चाहे युक्तप्रान्त में, चाहे सीमान्त प्रदेश में हो या चाहे पंजाब में; अगर हम अपनी भाषा की रक्षा और अुन्नति चाहते हैं तो जब तक हम प्राणपन से अुसकी सेवा नहीं करेंगे तबतक केवल धिःकार से और सरकार को कोसने से न तो हमारी शक्ति बढ़ेगी, न प्रतिष्ठा।

चार पांच बरस से लगातार हम यह शिकायत सुनते आये हैं कि "हिन्दी साहित्य सम्मेलन अेक राजनैतिक संस्था हो गयी है। अुसमें राष्ट्रभाषा के प्रचार को ही प्रधान स्थान दिया जाता है। साहित्य-विकास की ओर

कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में न तो हिन्दी का स्थान है, न साहित्य का। कौंग्रेसी नेता अुसके प्रधान सूत्रधार बन बैठे हैं। सम्मेलन का पैसा अहिन्दी प्रान्तों में खर्च किया जाता है और हिन्दी के अच्छे अच्छे साहित्यिक, अुपन्यासकार, कथालेखक, कवि और समालोचकों की कोअी कद्र ही नहीं होती।"

शिमला में हिन्दी के सिद्धहस्त वृत्तविवेचक श्री बाबूरावजी पराडकर सभापति थे। अुन्होंने किसी भी प्रकार का राजनैतिक कार्य सम्मेलन के सन्मुख अुपस्थित नहीं किया। अुलटे जिससे साहित्यिकों को संतोष हो और अुनका आत्मविश्वास जागृत हो अैसी साहित्य की व्याख्या भी अुन्होंने बना दी।

काशी के सम्मेलन को अेक शुद्ध साहित्यिक और असुधारक अध्यक्ष प्राप्त हुअे थे। समाजशास्त्र परिषद के अध्यक्ष श्री नरेन्द्रदेवजी को छोड कर किसी भी परिषद के अध्यक्ष राजनैतिक पुरुष नहीं थे। (राष्ट्रभाषाप्रचार परिषद की तो बात ही अलग है। कुछ साहित्यिक राष्ट्रसंगठन के अुस कार्य को राजनैतिक कह कर कुछ अस्पृश्य-सा ही मानते है।) श्री नरेन्द्रदेवजी ने अपनी किसी भी राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक योजना का सम्मेलन में पुरस्कार नहीं किया। स्वागत-समिति तो जागरूक साहित्यिकों की ही बनी थी।

सम्मेलन के कुछ महीने पहले मुझे सूचना मिली थी कि अब की बार सम्मेलन में तुम्हारे विरुद्ध जबरदस्त दलबन्दी होने वाली है और राष्ट्रभाषा की व्याख्या से ले कर ही प्रचार का जडमूल सम्मेलन से अुखाड दिया जायगा। कअी हितचिंतकों ने मुझे यह भी सलाह दी थी कि तुम भी अपनी ओर से पूरी तैयारी करके जाओ क्यों कि वहां बहुमति का मामला है। परन्तु मैंने तो अिससे ठीक अुलटा ही निश्चय कर लिया कि हम अपने पक्ष को बडी संख्या में ले जाने की कोशिश नहीं करेंगे। क्यों कि मुझे विश्वास था कि मैं मित्रों की मंडली में जा रहा हूं। भाषा और संस्कृति के अभिमानी राष्ट्रभक्त मेरी सेवाओं का निषेध क्यों कर करेंगे? काशी के सम्मेलन में मैंने सांस्कृतिक जागरूकता और भाषाभिमान भरपूर पाया। मैं जागरूकता की कदर कर सकता हूं। भाषाप्रेमी तो स्वयं भी हूं। अिस लिअे हम काशी को यह निश्चय करके गये थे कि सम्मेलन ने यदि अपनी छात्रछाया में और अपने नाम से हमें काम न करने दिया तो भी हम अुसकी सेवा तो करते ही रहेंगे। हमें सत्ता और प्रतिष्ठा से वंचित किया जा सकता है परन्तु अेकनिष्ठ और निरपेक्ष सेवा से हमें कौन वंचित कर सकता है?

अिसके साथ अेक दूसरा यह भी निश्चय करके हम गये थे कि श्रद्धेय टण्डनजी जैसे राष्ट्रपुरुष को जो बात अप्रिय होगी वह हम नहीं करेंगे; चाहे अिस नीति के अनुसार चलने के लिअे हमें कितनी ही कीमत क्यों न देनी पडे। क्यों कि हमारी निगाह में टण्डनजी केवल हिन्दी के अनन्य सेवक ही नहीं; बल्कि अेक चारित्र्यवान राष्ट्रपुरुष भी है। अिसी लिअे अपनी ओर से सम्मेलन के सामने रखने के लिअे हम अेक भी प्रस्ताव नहीं ले गये थे। काशी में सर्वत्र शुद्ध साहित्यिकों का साम्राज्य था। अुनके सामने हमें केवल अभियुक्तों के कटहरे में खडे होना था।

अिस बार सम्मेलन में साहित्यिक विकास की अनेक बातें आतीं तो मुझे अधिक संतोष होता।

मैंने यह भी अुम्मीद रक्खी थी कि अिस केवल साहित्यिक विकास में भी अपना नम्र सहयोग दे कर मैं यह सिद्ध करूंगा कि केवल साहित्य के प्रति भी मुझे कुछ रुचि और भक्ति है। किन्तु चार दिन के सुदीर्घ अधिवेशन के बाद और साढे छह दिन की नरम-गरम चर्चा के बाद भी सम्मेलन के सामने अेक भी अैसा प्रस्ताव या योजना नहीं आयी जिसे हम साहित्यिक कह सकते हैं। बेचारे पंडित हजारीप्रसादजी शान्तिनिकेतन से दशवर्षीय योजना ले कर आये थे। सम्मेलन से कुछ होनेजानेवाला नहीं अैसा हमेशा कहने-वाले बनारसीदासजी ने अुनकी योजना को काफी प्रसिद्धि दी थी। किन्तु अुसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। देने को अवकाश ही नहीं रहा। सम्मेलन के सभापति की योजना तो अुतनी भी महत्वाकांक्षी नहीं थी। अुसकी ओर भी सम्मेलन ध्यान नहीं दे सका।

तब सम्मेलन ने क्या किया? क्या जिसे मौका मिला अुसने कॉंग्रेसी सरकार की यथेष्ट निन्दा ही कर ली? कॉंग्रेसी सरकार की निन्दा में जिन्हें कुछ मजा आता है अैसे कुछ अिने-गिने लोग भले ही रहे हों। परन्तु अधिकांश लोग भाषा की परंपरा और शुद्धि के पक्षपाती थे। क्रोधवश हो कर यदि वे कोअी बेतुकी बातें कह देते थे तो हमें भी अुन्हें सह लेना चाहिअे। अुदाहरणार्थ, जब मैंने कहा कि "जहां तक मेरा वश चलेगा मैं नागरी के स्थान पर रोमन लिपि को कदापि नहीं आने दूंगा; मैं तो नागरी ही चाहता हूं" तो अेक वक्ता ने तुरन्त मंच पर खडे हो कर अपनी यह ख्वाहिश जाहिर कर दी कि काका का यह कथन डॉ० अब्दुलहक और डॉ० जाकिरहुसेन के कानों तक पहुंच जावे!!

कुछ अविवेकी साहित्यिकों को राजनीति से घृणा है। अुन्हें 'केवल साहित्य' से मतलब है। और भी अनेक बातों से मतलब है। राज-नीति कॉंग्रेसी ढंग की न हो जितना ही अुनका आग्रह है। अगर वह राजनीति हिन्दू-सभा की हो, अथवा अुससे भी आगे बढ़ कर अंतःकलह बढ़ाने वाली 'माधवी' छाप की हो, तो अुन्हें अुज्र नहीं। बल्कि वह तो अुनकी दृष्टि में स्वागतार्ह है। हिन्दी के हित-अनहित का श्रीगणेश भी अिन मित्रों ने सोचा नहीं है। बिहार में हिन्दुओं की संख्या अधिक है, और मुसलमानों की बहुत ही कम है, अिस बात के आधार पर अगर वहां की हिन्दुस्तानी का विरोध करना अुचित हो तो, यदि केवल जनसंख्या के लिहाज से पंजाब या काश्मीर में केवल अुर्दू ही राष्ट्रभाषा के तौर पर चलायी जाय तो अिन्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिअे।

महात्माजी ने तो स्पष्ट कहा है कि हिन्दी और अुर्दू दोनों का अलग अलग और स्वतंत्र साहित्य है। अुनकी धारायें कोअी रोक नहीं सकता। अिन दोनों के होते हुअे भी राष्ट्रभाषा की हमें अेक अैसी स्वतंत्र शैली बनानी होगी जो सारे भारतवर्ष के लिअे समान-रूप से ग्राह्य हो। अुस शैली के निर्माण में न तो केवल बिहार के साम्प्रदायिक अनुपात का हिसाब ध्यान में लिया जाय और न केवल पंजाब का। अुत्तर भारत की हिन्दी और अुर्दू से बनी हुअी, किन्तु पूर्व और पश्चिम, मध्य और दक्षिण भारत को मान्य हो, अैसी ही शैली राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। हम साहित्याभिमानी अैसा नहीं कह सकते कि "हमारी शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। हम साहित्याभिमानियों ने ही राष्ट्रभाषा की शैली

का ठेका ले लिया है। हम कहेंगे अुतनी ही दुनिया आर्य दुनिया मानी जायेगी और शेष सब बर्बर है"। क्या आज भी हम मनुष्यजाति के प्रथम पूर्वज, मनु भगवान, के अधिकार से यही कहेंगे कि— 'अेतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वम् स्वम् चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा:' ? क्या हमें यह कहना शोभा देगा कि सरस्वती और दृशद्वती, या गंगा और यमुना के दोआबे में रह कर वेदों का रक्षण करनेवाले 'अंतर्वेदी' पंडितों से ही सब लोगों को ध्वनिशास्त्र और व्याकरणशास्त्र और हिन्दी की शैली सीखनी होगी ? हिन्दी के अेक प्रोफेसर ने तो मुझसे यहां तक कहा था—परन्तु हिन्दी में नहीं; अंग्रेजी में कहा था—कि The North has always ruled the South. The southern people should, therfore, study the language of the North. ('अुत्तर ने दक्षिण पर सदा राज्य किया है। दक्षिण के लोगों को अिसी लिअे अुत्तर की भाषा सीखनी चाहिअे।")

मेरा नम्र निवेदन है कि हम राष्ट्रभाषा को अन्तःकलह का, परस्पर अीर्षा और स्पर्धा का, औजार न बनावें। मुझे विश्वास है कि जो लोग हिन्दी भाषा की परंपरा के अभिमानी हैं वे भी राष्ट्रीय अेकता के हिमायती हैं। लेकिन भावावेश में आ कर वे कभी अैसी कोअी बात न कहें, या करें, जिसे लोग "लिंग्विस्टिक अिंपीरियालिज़म" (भाषानिष्ठ साम्राज्यवाद) कह सकें। हमारी आज की पराधीनता की स्थिति में तो वह "अिंपोटेंट लिंग्विस्टिक अिंपीरियालिज़म" (पुरुषार्थहीन भाषिक साम्राज्यवाद) ही होगा। अिस प्रकार हम अपना रास्ता प्रशस्त और सुगम बनाने के बदले अुसमें कांटे बिखेर देंगे। हमारा लक्ष्य भाषिक साम्राज्य नहीं है, राष्ट्रभाषाप्रचार द्वारा राष्ट्रीय अुत्थान है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिअे कि राष्ट्रभाषा न तो केवल हिन्दुओं की भाषा होगी, और न केवल मुसलमानों की, सिक्खों की, अीसाअी या पारसियों की; वह हिन्दी और अुर्दू के मिश्रण से और समस्त भारत की सम्मिलित सम्मति और चेष्टा से बनेगी। भारत की प्राचीन संस्कृति की दृष्टि से और वर्तमान परिस्थिति में अिसके लिअे यदि अधिक से अधिक अनुकूल और सुगम कोअी भाषा है तो वह हिन्दी है। वह प्रान्तीय भाषाओं की सहोदरा है और अधिक से अधिक प्रचलित है। अिसलिअे राष्ट्रभाषा की शैली का निर्माण और प्रचार करने का गौरवान्वित अधिकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन को प्राप्त है। जहां अधिकार और बड़प्पन है वहां त्याग और सेवा का दायित्व तो क्रमप्राप्त ही है।

दूसरी सारी भाषाओं के सम्मेलन प्रान्तीय सम्मेलन हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ही अेक मात्र अखिल भारतीय साहित्य-संस्था है। यदि अुसे अखिल भारतीयत्व का भार वहन करना अपनी शक्ति से परे प्रतीत होता हो तो अुसे नम्रतापूर्वक अुस जिम्मेवारी को छोड़ देना चाहिअे। जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भारतीय राष्ट्रसभा अखिल भारतीय संस्था की जिम्मेवारीयों को सम्हालने की चेष्टा करती हुअी धैर्य से राष्ट्रीय अेकता के प्रयोग करती है; अुसी मार्ग पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन को भी अग्रसर होना पड़ेगा। यही अुसका नियत रास्ता है। अब अुसके सामने यह प्रश्न अुपस्थित है कि "क्या वह साहित्य और

संस्कृति के क्षेत्र में अुसी भूमिका का अभिनय करेगा जिसका कि राजनैतिक क्षेत्र में कॉंग्रेस कर रही है; या अन्य प्रादेशिक अथवा साम्प्रदायिक संस्थाओं की भूमिका का ? क्या वह केवल हिन्दीभाषी हिन्दुओं का प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन बना रहने में ही अपने आपको कृतकृत्य समझेगा" ? यह मूलभूत प्रश्न है, जिसके अुत्तर पर हमारी सारी नीति निर्भर है।

चन्द हिन्दी भक्त 'पुनर्मूषिको भव' की नीति के पुरस्कर्ता हैं। अुनसे किसी को कोओी शिकायत नहीं हो सकती। किन्तु अिनमें भी अनेक साहित्यिक अैसे हैं जो कहते हैं कि "हम प्रान्त की अुपभाषाओं (बोलियों) का भी संग्रह नहीं करेंगे। क्यों कि वे तो गांवडों की गंवारू भाषायें हैं। हम तो केवल साहित्यिक हिन्दी के पक्षपाती हैं"। हम अिच्छा तो मूषक बन कर रहने की करें और अूपर से यह भी चाहें कि हमारा सर्वत्र अनिरुद्ध संचार और अधिकार रहे! तो भला यह कैसे हो सकता है?

हम चाहते हैं कि बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात और मद्रास आदि सभी प्रान्तों के लोग हिन्दी भाषा का अध्ययन करें। परंतु हम यह हरगिज नहीं चाहते कि वे अपनी अपनी मातृभाषाओं की अुपेक्षा करें। हमारी प्रान्तीय भाषाओं का साहित्य भी अैसा है जिस पर हम कुछ गर्व कर सकते हैं। अुच्च शिक्षा में अंग्रेजी ने जो स्थान ले लिया है वहां से हम अुसे हटाना चाहते हैं। परंतु वह स्थान हम अपने अपने प्रान्तों में हिन्दी को नहीं, किन्तु अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाओं को देना चाहते हैं। बंगाल, महाराष्ट्र या गुजरात में अुच्च शिक्षा भी प्रान्तीय भाषा में ही दी जायेगी। हम हिन्दी अपने प्रान्तीय व्यवहार के लिअे नहीं चाहते। वह व्यवहार तो नीचे से ले कर अूपर तक प्रान्तीय भाषा में ही चलेगा। तभी तो हम अपनी प्रान्त की जनता के हृदय और बुद्धि तक पहुंच सकेंगे और अुसके अभ्युत्थान में योग दे सकेंगे।

हमारी तो यह भी आकांक्षा है कि हिन्दी से हम जितनी सेवा लेंगे अुतनी ही अुसकी सेवा करेंगे भी। हिन्दी का साहित्य दूसरी किसी भी भाषा के साहित्य से बढाचढा रहे अिसकी हम चेष्टा करेंगे। किन्तु अुस साहित्य को यह गौरव प्रान्तीय भाषाभाषी साहित्य-सेवियों और लोकसेवकों के सहयोग से प्राप्त होगा। यह वैभव अुसे प्रान्तीय भाषाओं की सहायता से ही प्राप्त होगा। किन्तु अगर हिन्दी बंगाली की अीर्षा करेगी, गुजराती को घृणा की दृष्टि से देखेगी, मराठी को अपना 'अुर्दू का डर' सिखायेगी और दक्षिण की भाषाओं को अनाडी (अनार्य) भाषायें कह कर अुनकी अवहेलना करेगी, तो अुसका वैभव और सत्ता तीन दिन भी नहीं टिकेगी। यह रास्ता हिन्दी भाषा की समृद्धि का नहीं। यदि हम अुसपर चलेंगे तो हिन्दी भाषा के द्रोही साबित होंगे।

मुझे संतोष है कि काशी के अधिवेशन ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी के क्षेत्र में अैसे श्रेष्ठ साहित्यिक भी हैं जो राष्ट्रभाषा प्रचार की राष्ट्रीय दृष्टि भलीभांति समझते हैं और अुसे स्वीकार चुके हैं। अुनके विचारों में संकीर्णता बिलकुल नहीं है। वे अपने विद्याजनित विनय और आर्योचित सौजन्य से स्वभावतः गुरुस्थान प्राप्त कर चुके हैं। राष्ट्र में फूट पैदा करनेवाले भाषा विग्रह से वे हैरान हैं। अुनके सामने

हमारा माथा अपने आप झुक जाता है। अुनका सेवाभाव और अुनकी शुभकामना ही हिन्दी का कवच है। अुन्हींके सहयोग से मुझ जैसा नौसिखिया भी हिन्दी की कुछ सेवा कर सकने की आशा रखता है। तुलसी और सूर, कबीर और नानक, से ले कर प्रेमचंद और मैथिलीशरण तक जिन अुदार-मना साहित्यिकों की अविछिन्न परंपरा चली आयी है अुनके प्रति हमारे मन में असीम आदर है। हमें अकर्मण्य और वादानन्दी साहित्याभिमानियों तथा साहित्योपजीवियों की अपेक्षा अिन्हीं की अिज्जत दिन प्रति दिन बढानी चाहिये। तभी तो साहित्य के द्वारा राष्ट्र की प्रगति में हम हाथ बटा सकेंगे।

हम साहित्यप्रेमियों को यह कदापि नहीं भूलना चाहिये कि अितःपर जो साहित्य निर्माण करना है वह न तो राजदरबार के लिये होगा और न केवल विद्वद्भोग के लिये ही। अब तो साहित्य जनता-जनार्दन की आराधना का साधन होगा। अिसलिये कोअी साहित्यिक अिस भ्रम में न रहे कि जनता तो केवल गँवार है और गँवार ही रहेगी; और वह साहित्यसेवियों को केवल भाषाविलास और शब्दक्रीडा के लिये ही 'घृतकुल्या मधुकुल्या' देती रहेगी।

हमें संतोष अिस बात का है कि काशी का सम्मेलन सद्भाव और सहयोग के वातावरण में समाप्त हुआ। प्रान्तीय या साम्प्रदायिक संकीर्णता की अपेक्षा वहां हमने भाषाशुद्धि का पक्षपात और परम्परा की रक्षा की भावना ही अधिक देखी। जब कि हम सब अेक ही कार्य कर रहे हैं और सहयोगियों के नाते अेक दूसरे के प्रेम और सहायता के अधिकारी हैं तो भावावेश में थोडाबहुत प्रेमकलह भी होना स्वाभाविक ही था। अुसके कोअी चिन्ह अब हमारे स्मृतिपटल पर न रहें। परंतु काशी के सम्मेलन ने हमारी राष्ट्रीय वृत्ति और योजनाओं का समर्थन कर हमें यह भी सन्देश दिया है कि जबतक हम अपने सभी कामों में, अपने अन्तर्गत और बाह्य व्यवहार में, सौजन्य और अहिंसा की मर्यादा का सचाओी से पालन नहीं करेंगे तबतक सफलता प्राप्त नहीं होगी। राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा की अुपयुक्तता वादग्रस्त भले ही हो किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में तो अुसकी अुपयोगिता निर्विवाद है।

अनुबन्ध और समवाय

[आचार्य सखाराम जगन्नाथ भागवत]

विविधता से मंडित अिस संसार में सर्वत्र अेकता समा रही है। मकडी का जाल कितना ही अुलझा हुआ क्यों न दीखायी देता हो फिर भी अुसमें अेक ही अखंड तंतु होता है। अुसी प्रकार सृष्टि में विविध घटनाओं की कितनी ही संमिश्रता प्रतीत होती हो, तो भी वह सब अेक ही अखंड जीवनतत्त्व का विलास है। अिसी कारण किसी भी अेक घटना को ले लेने से अुसके अनुषंग से सारे विश्व की प्राप्ति हो सकती है। अिस आध्यात्मिक अनुभव का जीवन में बुद्धिपूर्वक अुपयोग करना जो शास्त्र सिखाता है वही जीवन का शिक्षाशास्त्र है।

जीवन का प्रारंभ भौतिक आवश्यकताओं से होता है। अिसलिअे शिक्षा का प्रारंभ भी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों की अुपासना से होना स्वाभाविक ही है। अिन आवश्यकताओं का स्वरूप सामाजिक है। अुनकी पूर्ति के लिअे निसर्ग का आश्रय लेना पडता है और अैसा करने से नानाविध कृतियां अुत्पन्न होती हैं। मनुष्य और निसर्ग का मिलन कृति में होता है। अिसीलिअे कृति की मीमांसा अिन दोनों की मीमांसा है। अिस मीमांसा में स्वाभाविकता है। अिसलिअे वह जीवन के लिअे भारभूत न हो कर अुसके विकास के लिअे कारणीभूत होती है।

अिसी मीमांसा में से जो आधिभौतिक और आध्यात्मिक के नाम से प्रसिद्ध हैं अैसे असंख्य ज्ञानविषयों का अुदय होता है। अिन विषयों में सर्वत्र अनुबंध समाविष्ट है। मनुष्य को देहधारण के लिअे अन्न-वस्त्र की आवश्यकता होती है। अन्न के लिअे अुसे खेती, बागवानी, सागपात, अथवा शिकार, मछली मारना अित्यादि कृतियां और वस्त्र के लिअे ओटना, धुनना, कातना, बुनना आदि क्रियायें करनी पडती है। रहने के लिअे घर की आवश्यकता होती है और अुसके लिअे लकडी, मिट्टी, पत्थर, चूना, अीटें, खपरे आदि पदार्थ बनाने पडते है। अिन सब के ओजार भी बनाने की आवश्यकता होती है। तन्निमित्त बढ़ओगिरी, लुहारी आदि अुद्योगों का निर्माण होता है। जीवन की अिन सब क्रियाओं में कार्यकारण-संबंध अनुस्यूत है। अिसलिअे वे परस्पर-अनुबद्ध पायी जाती हैं। अेक का साध्य दूसरे के लिअे साधन हो जाता है। ये सब क्रियायें काल और दिक् में व्याप्त होती हैं, अिसलिअे अुन्हें अितिहासादि स्वरूप प्राप्त होते हैं। धातुसृष्टि, वनस्पतिसृष्टि, पशुसृष्टि आदि की संगति और सहकार्य मे मनुष्य अपना संसार सजाता है; अिसलिअे अुसे नानाविध ज्ञान होता रहता है। अुस ज्ञान से अुसकी क्रियायें विकसित होती हैं और अुसके क्रियाविकास से पुनः अुसका ज्ञानविकास होने लगता है। केवल अुपयोगिता की दृष्टि से वह जिस ज्ञान का आविष्कार करता है और जिस सौंदर्य का दर्शन करता है अुससे मनुष्य अपनी संस्कृति की अपरसृष्टि रचने लगता है और भौतिक से परे जो आत्मिक प्रदेश है अुसमें अुसके अुपनिवेश बढ़ने लगते हैं। मनुष्य की जीवनयात्रा जिस सहजक्रम से सफल और संपूर्ण

होती जाती है अुसी क्रम का अनुबन्ध हम शिक्षा में भी दाखिल कर सकते हैं।

बच्चा जिस सामाजिक और नैसर्गिक वातावरण में पैदा होता है अुस वातावरण की नित्य की अुपयोगी क्रियाओं द्वारा अुसकी अिंद्रियशक्ति का, बुद्धिशक्ति का और भावनाशक्ति का विकास शिक्षा द्वारा करना चाहिअे। अुदाहरण के लिअे प्रारंभ में बालक अपने शरीर, घर और गांव का निरीक्षण क्रमशः कर सकते हैं। अुसके बाद अपने आसपास के जीवधारियों, वनस्पतियों और जडसृष्टि का अवलोकन कर सकते हैं। तदनंतर आकाश, अुसकी दिव्य ज्योतियां, और अुषा और निशा तथा नाना ऋतुओं का परिचय कर सकते हैं। सफाअी और आरोग्य की आदतें डालना, अनेक प्रकार की सामाजिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना, बागबानी, मिट्टी का काम, कागज़ का काम, सूत-काम आदि वे मजे में सीख सकते हैं। भाषा व्यवहार के लिअे है। जिस बालक का व्यवहार विस्तृत होता जायगा अुसकी भाषा भी व्यापक बनती जायगी। हम जो देखते हैं अुसका वर्णन कर सकते हैं। प्रत्यक्ष वस्तु के अभाव में हम अपने अन्तःचक्षु के सामने अुसका कल्पनाचित्र खींच सकते हैं। नानाविध साधनों से हम अुसे कलाबद्ध कर सकते हैं। रेखाचित्र, और शिल्पचित्र, बना सकते हैं। भाषा के द्वारा पुनः अिस कला का भी व्यवहार कर सकते हैं। नाट्य, नृत्य, संगीत, काव्य, आदि के द्वारा हम प्रत्यक्ष की अनुकृति और परोक्ष की निर्मिति कर सकते हैं। बालकों की बाल्यावस्था में भी अल्प मात्रा में यह सब होता रहता है। अिन क्रियाओं का अनुबन्ध निगाह में रख कर यदि शिक्षा का कार्यक्रम बनाया जाय तो अुन्हें भी ये सब अनुभव होंगे और अुनका जीवन सरस और समृद्ध होगा।

अिस विश्व के नानाविध विभागों में यह जो अनुबन्ध पाया जाता है अुसका कारण यह है कि ये सारे विभाग जीवन के आत्मरूप के साथ समवाय संबंध से जुडे हुअे हैं। समवायका अर्थ है नित्य संबंध। जिन दो पदार्थों में समवाय संबंध होता है वे सृष्टि में पृथक कभी अुपलब्ध नहीं होते। अुन दोनों में से अेक का नाश हो जाये तो दूसरे का अस्तित्व शेष नहीं रह सकता। आकार, संख्या, तौल, स्पर्श, आदि गुण और विविध प्रकार की क्रियायें आदि धर्म, हर अेक वस्तु में नियमितरूप से पाये जाते हैं। केवल गुण, केवल क्रिया अथवा गुण और क्रिया विरहित केवल वस्तु कभी नहीं मिल सकती। यही समवाय संबंध है। विश्व में बाहर विविधता है, भीतर अेकता है। केवल अद्वैत कहने से विविधता का अपलाप होता है और महत्त्वपूर्ण अनुभव के प्रति अन्याय होता है, अिस विचार से वैशेषिक शास्त्रकारों ने समवाय संबंध माना है। शिक्षा का जीवन के अन्तरबाह्य स्वरूप से समान संबंध है। अिसलिअे ज्ञान और कर्म में यही समवाय संबंध स्वीकार करना चाहिअे। वस्तुतः ज्ञान और कर्म में अभेद ही है। कर्म ज्ञान की मूर्ति है और ज्ञान कर्म की स्फूर्ति है।

समवाय के तात्त्विक आधार पर व्यवहार का अनुबन्ध स्थित है। अिसलिअे जीवन की अिस शिक्षा-पद्धति को चाहे समवाय-पद्धति कह लीजिये या अनुबन्ध-पद्धति।

(मराठी 'वर्धा शिक्षण' मासिक पत्र से)

सर्वोदय की दृष्टि

फिजूल माथापच्ची हुआी

अेक किसान बाजार में चक्कर लगा कर घर लौटा। अपनी घरवाली से कहने लगा, 'बाजार में अेक अुमदा भैंस बिकने आयी है। अुसे खरीदने का दिल हो रहा है। यह भी अिरादा है कि अपनी गाय बेच दूं।' घरवाली ने कहा, 'मुझे भैंस पसन्द नहीं है! मैं अपनी गाय छोड़ने को तैयार नहीं हूं।' किसान ने कहा, 'तुम कुछ भी कहो मुझे कभी न कभी अेक बढ़िया दुधैल भैंस खरीदनी ही है। दो जानवर पालने की हैसियत नहीं है। अिसलिअे गाय का कुछ न कुछ अिन्तजाम तो करना ही होगा।' घरवाली ने कहा, 'तुमसे गाय नहीं पाली जाती तो मेरा भाअी पाल लेगा; अुसे दे दो। लेकिन मैं तुम्हारी भैंस की देखभाल नहीं करूंगी। अिस बात पर से दोनों में कुछ कच्चीपक्की बातें हो गयीं और दोनों ने अुस दिन भोजन नहीं किया। बाद में पता चला कि जिसे अुस किसान ने दुधैल भैंस समझ कर मोल लेना चाहा था वह तो दर-असल भैंसा था।

कुछ अिसी चाल पर हम गांधी सेवा संघ-वालों ने भी युद्ध में हम किन साधनों का अुपयोग कर सकते है अिसके विषय में वाद मचा दिया। सद्भाग्य से दूसरे किसी ने अिस वाद में दिलचस्पी ही नहीं ली। पर संघ के अध्यक्ष से ले कर कअी सदस्यों तक बहुतेरे अिस बात को ले कर क्षुब्ध हो गये। आखिर मालूम हुआ कि व्यवहार में तो अिस तरह का कोअी सवाल खड़ा ही नहीं हुआ। हम किसी बाहरी दुश्मन के हमले से अपना बचाव किस तरह करें, या अुसका सामना किस प्रकार करें, यह कोअी हमारे सामने आज बड़ी भारी समस्या नहीं है। प्रत्यक्ष समस्या तो यही है कि हम अपने भीतरी झगड़ों को मिटा कर सबमें मेलजोल किस तहर करें। अिस विषय में तो कम से कम कॉंग्रेस में कोअी मतभेद नहीं है। सभी मानते हैं कि यह समस्या अहिंसा से ही हल की जा सकती है।

अहिंसा-संघ

डेलांग सम्मेलन के वक्त से ही गांधीजी ने हमारे सामने यह सवाल पेश किया है और अुस दिशा में कुछ कर दिखाने के लिअे हमें प्रेरित भी किया है। लेकिन अभीतक हमें अुसमें कोअी विशेष अुत्साह नहीं आया।

मैंने देखा है कि जब कभी हम अिस विषय का विचार करने बैठते है तो अक्सर हममें से हर अेक अपनी व्यक्तिगत कम-जोरी का खयाल करने लगता है। लेकिन अक जूथ या संगठन से जो गुणित शक्ति पैदा होती है अुसका विचार हम नहीं करते। अिस कारण हमारा अुत्साह बढ़ नहीं पाता। मेरा अनुरोध है कि हम अिस आदत को कम कर दें। अच्छी से अच्छी बन्दूक से सुसज्जित फौजी तालीम पाया हुआ शूर राजपूत भी यदि अकेला हो तो मुमकिन है कि कअी मौकों पर अुसकी छाती धड़कने लगे और वह भाग भी जावे। लेकिन अुससे कम शूर सौ देहाती यदि अिकट्ठे रहें तो संभव है कि वे अच्छी तरह सामना कर सकें। जब मैं स्वयं अपना विचार करता हूं तो

देखता हूं कि मैं तो किसी प्रकार के बाह्य साधनों से सज्ज नहीं हूं। शारीरिक स्वास्थ्य भी नहीं। स्वभावभीरू बनियों में पैदा हुआ हूं और बचपन से ही 'हिंसा न करनी जंत की' रटते आया हूं। मैं कैसे आशा कर सकता हूं कि मैं किसी हिंस्र मनुष्य या प्राणी के सामने बेधड़क खड़ा हो सकूंगा? परंतु फिर भी, अगर मैं यह निश्चय कर लूं कि मेरी छाती भले ही धड़कती रहे मुझे तो यहीं बिना कोआी प्रतिकार किये डटे रहना है, तो वह निश्चय मुझे कुछ न कुछ काम अवश्य देगा। फिर मेरे दूसरे साथी भी अैसा ही निश्चय करके खड़े हों तो हम सब मिल कर कामयाब भी हो सकते हैं।

यह संभव है कि जब मैं अकेला होअूं तो मेरा अहिंसा-हिंसा या धर्माधर्म का विवेक-ज्ञान मिट्टी में मिल जाय, मेरे मन में द्वेष का भाव पैदा हो जाये, मुँह से क्रोध के वचन निकल आवें और मैं हाथ चलाने का व्यर्थ प्रयास भी करूं। परंतु यदि मेरे साथ दूसरा कोआी सहयोगी हो तो अुसकी मौजूदगी ही शायद मुझे जाग्रत कर दे और वह मुझे सचेत कर दे। शर्त अितनी ही है कि हम दोनों ने अहिंसा को केवल अेक नीति के रूप में ही नहीं बल्कि अपने स्वधर्म के रूप में स्वीकार किया हो।

अेक संघ बनाने से यही अेक बड़ा फायदा है। कौमी झगड़े दिन पर दिन तीव्र रूप धारण कर रहे हैं। अुनमें प्रबल हिंसक वृत्ति जाग्रत और संगठित कर दी जाती है। जिनकी अहिंसा में श्रद्धा है और अहिंसा जिनका स्वभाव-सा ही बन गया अगर अपने स्वभावधर्म के प्रचार और संगठन में सुस्त रहेंगे तो यदि हिंसा कच्चे अहिंसकों को खा जाये तो आश्चर्य ही क्या है? गांधी सेवा संघ का अगर कोआी खास काम हो सकता है तो यही कि अुसके सदस्य अपना अपना सेवाकार्य करते हुअे अहिंसा की यह भावना अपने जीवन में मजबूत करें और अपने अिर्द-गिर्द फैलावें।

अगर संघ के सदस्य अिस विषय में केवल जनता के विचारों को प्रकट करनेवाले और जनता की मर्यादाओं को अपनी मर्यादायें बनाने वाले हो जायें तो संघ के अस्तित्व की कोआी विशेष जरूरत नहीं रहती। क्योंकि भिन्न भिन्न रचनात्मक कामों के लिअे अलग अलग संस्थायें हैं ही।

'अुन तीनों की टोली और हम पच्चीस अकेले'!

अिस सिलसिले में मुझे अेक कहानी याद आती है, जिसमें पच्चीस बनियों को तीन डाकुओं ने लूट लिया। अुनसे जब पूछा गया कि वे कैसे लुटे तो वे कहने लगे, 'क्या करते? हम पच्चीस तो अकेले थे और अुन तीनों की जबर-दस्त टोली थी'।

संख्या से बल तब बढ़ता है जब कि हर अेक अपना अपना थोडासा बल अपने साथियों के बल में मिला देने की कोशिश करता है। परंतु जब जब हर अेक अपनी निर्बलता दूसरों की निर्बलता में मिलाने का प्रयत्न करता है तब संख्या बहुत बड़ी होने पर भी वह अकेलेपन का ही भाव पैदा करती है।

हम किसी भी प्रदेश की जनता देखें तो यही पायेंगे कि आम तौर पर लोग हमेशा शान्ति चाहते हैं, टंटेबखेडे नहीं

चाहते, समझौते की नीति से काम लेना पसन्द करते हैं, झगडों के निपटारे के लिअे थोडा-बहुत सहन भी कर लेते हैं। परंतु फिर भी न जाने क्यों हम अहिंसा-वादियों में भी मनुष्यस्वभाव के प्रति यह अेक अविश्वास है कि "अहिंसा पर निर्भर रहना आम लोगों के लिअे सम्भव नहीं है। और अिसलिअे अहिंसावादी को या तो दुनयवी कामों से कुछ दूर ही रहना होगा अथवा हिंसा से कुछ न कुछ समझौता करना होगा। अहिंसा का रास्ता आम रास्ता नहीं है"।

अिस तरह हम अपनी और दूसरों की अहिंसा की न्यूनता का जोड करते हैं और फिर सोचने लगते हैं कि न्यूनता की यह मात्रा कितनी बडी है। हिंसावादी अैसा नहीं करते; अिसलिअे परिणाम वही होता है जो बनिया और लुटेरों के किस्से के शीर्षक में सूचित किया गया है।

२७ : १० : '३९ कि० घ० म०

अरण्य में जाने के क्या मानी हैं ?

हजरत मूसा यहूदियों के राष्ट्र-पिता थे। अुन्होंने यहूदियों को मिस्र देश की गुलामी से छुडाया और अपनी पितृभूमि यरूशलेम (पेलिस्टेन) का दर्शन कराया। राष्ट्रसंगठन, राष्ट्रशुद्धि, राष्ट्रसाधन और राष्ट्रविजय के वे अप्रतिम आचार्य थे। यहूदियों के अिस 'बापूजी' ने जो कुछ सहन किया है, जो दीर्घदर्शिता बतायी है और जो विजय पायी है वह अितिहास में भी लोकोत्तर मानी जाती है।

जब हज़रत मूसा ने देखा कि अुसके अनुयायी कमजोर हो गये हैं, शान्ति के विलास में फंस गये हैं, आजादी का अुनका ज्ञान शिथिल हो गया है, तो अुसने भगवान् से आज्ञा पा कर यह निश्चय किया कि सारी जाति को अमन और चैन की बस्ती से हटा कर जंगल में ले जाया जावे। सब प्रकार की साधन-संपत्ति और अधिकार-संपत्ति छोड़ कर संकल्पपूर्वक सब का त्याग कर जंगल में जा बसने की बात अुन्होंने अपनी जाति के सामने रख दी; और वे सबको जंगल में ले भी गये। साधन और अधिकार दोनों का त्याग कर के आत्मशुद्धि और तपस्या करने के लिअे हज़रत मूसा जंगल में गये। वहां पर अुन्होंने अपने शिष्यों के और अनुयायियों के बच्चों को नयी तालीम दी और जो काम वे अपने शिष्यों से नहीं करा सके वह अुन्होंने शिष्यों के बच्चों से कराया और अन्त में विजय पा कर अपनी पवित्रभूमि का दर्शन किया। हज़रत मूसा कुल १२० वर्ष जीये।

तब से संगठन और आत्मशुद्धि के लिअे अधिकार और साधन-संपत्ति त्याग देने के मार्ग को "अरण्य-सेवन" कहा जाता है। आज गांधीजी भी हिन्दुस्थान को और कॉंग्रेस को अरण्य में जाने की बात सुझा रहे हैं।

२८ : १० : ३९ का० का०

शान्ति-परायणता

यूरोप का महायुद्ध टालने की कोशिश कौन नहीं करता ? हिटलर को भी युद्ध से मतलब नहीं है। आज तक तो अुसने सिर्फ युद्ध की तैयारी बता बता कर ही शान्ति से काम लिया है। पोलेंड हज़म करते ही अुसने फिर शान्ति की बात चलाओी। अिंग्लैंड कहां लड़ रहा है, अिसका तो पता ही नहीं चलता ! तुर्कस्तान, जापान और अमेरिका, तट पर ही

खड़े हैं। रूस मौके की ताक में है; किन्तु युद्ध बढ़ाना नहीं चाहता। ये सब शान्तता-वादी ही हैं। किन्तु, अपना अपना मतलब पूरा करने पर ही ये शान्ति चाहते हैं। अिनमें से कोअी भी शान्तिपरायण नहीं है। 'परायण' मायने अुसीको सर्वश्रेष्ठ मान कर अुसके लिये सर्वस्व का त्याग करने की जिसकी तैयारी है, वह। अैसी शान्ति-परायणता अगर कोअी बता सकेगा तो भारत ही। यह शान्ति-परायणता कायरों का धर्म नहीं हो सकता, लालची लोगों का धर्म नहीं हो सकता, स्वार्थी और महत्वाकांक्षी लोगों का धर्म नहीं हो सकता। जिनमें आत्मविश्वास है, न्यायबुद्धि है, सबका भला करने की अुदारता है, वे ही शान्ति-परायण हो सकते हैं।

गांधीजी ने सत्याग्रह के अनेक प्रकार दुनिया को बतलाये हैं। सविनय कानूनभंग अुसका अेक पहलू है, लगान-बन्दी दूसरा पहलू है, असहयोग तीसरा पहलू है। दास और नेहरू को जीतने के लिये जब गांधीजी ने अपनी हार मान ली तो वह भी सत्याग्रह का अेक पहलू ही था। जिस वक्त प्रत्यक्ष जंग जारी न हो अुस वक्त राष्ट्रसंगठन का जो रचनात्मक कार्यक्रम गांधीजी जारी रखते हैं वह अुनके सत्याग्रह का सर्वश्रेष्ठ पहलू है। हिन्दुस्थान की अल्पसंख्यक जातियें जिस शंका को और स्वार्थ को पकड़ कर बैठी हैं, अुसका अिलाज तो करना ही है। अुसके लिये गांधीजी ने जो निःसीम अुदारता बतायी है, और बहुमति को सिखायी है, वह भी अुनके सत्याग्रह का ही अेक अनोखा पहलू है।

अब यूरोपभर का जो महायुद्ध दुनिया को कँपा रहा है अुसके लिये अुतने ही अद्भुत पहलू का आविष्कार करना होगा।

यह पहलू है शान्तिपरायणता। युद्ध का अिलाज हिंसा से नहीं होगा। युद्ध की बला शान्ति से ही टलेगी। यह शान्ति कायरों की शान्ति नहीं हो सकती, जानमाल की सलामती की चिन्ता करनेवालों की शान्ति नहीं हो सकती, मृत्यु से भागनेवालों की शान्ति नहीं हो सकती, मृत्यु के पहले ही मृतक समान जीनेवाले निर्वीर्यों की यह शान्ति नहीं हो सकती।

हम किसीको मारेंगे नहीं और न जानमाल का नाश करेंगे। वैसा करने में किसीको सहायता भी नहीं देंगे। किन्तु युद्ध रोकने के लिये, हत्या को मिटाने के लिये, जो कुछ बलिदान देना पड़े वह अवश्य देंगे। हम लड़ेंगे नहीं अिसके मानी यह नहीं कि हम अकर्मण्य हो कर बैठ जायेंगे। जो सरकार युद्ध में अुतरी है अुसे हम पहले से कह देंगे कि तुम हमारे नाम से लड़ नहीं सकते। हमारा तुम्हारे साथ असहयोग ही है।

किन्तु यह असहयोग भी सीमित-परिमित ही रहेगा। लोकहित के काम तो करने ही हैं। कांग्रेस का रचनात्मक कार्य चलता ही रहेगा। अगर सरकार भी वह कार्य चालू रखेगी तो अुसके साथ भी हमारा सहयोग चालू रहेगा।

किन्तु युद्ध की जिम्मेवारी केवल अंग्रेज सरकार को ही अपने शिर पर लेनी होगी।

हमें अहिंसा को संगठित करना होगा। राष्ट्र को अहिंसा का स्वरूप और अहिंसा का माहात्म्य समझाना होगा और अहिंसा का वायुमंडल अिस प्रकार फैलाना होगा कि जैसे हरी घास में आग नहीं लग सकती अुसी तरह हमारे वायुमंडल में भी युद्ध की चिनगारी बुझ ही जावे। सत्याग्रह का यह नया तरीका है। अिसमें जो अलौकिक शक्ति

चाहिये वह लोकसुलभ कैसी बनायी जाय अिसीकी तरकीब ढूंढनी होगी।

२४:१०:३९ का० का०

ब्रिटिश साम्राज्य का बुढ़ापा?

महायुद्ध ने हिन्दुस्तान के अितिहास में बडी अुथलपुथल कर दी है। अक्सर यह पाया जाता है कि क्रान्ति के दिनों में वे बच जाते हैं। जिनमें परिवर्तन का माद्दा होता है किन्तु जो वृद्ध की हड्डियों की तरह चूने से ही भरे हुअे होते हैं और तनिक भी बदल नहीं सकते अुनका तो नाश ही हो जाता है।

छोटे बच्चों की हड्डियों में चूने का परिमाण कम होता है और सरेस ज्यादा होता है। अिसलिअे, हालांकि अुनमें शक्ति कम होती है तो भी, बारबार गिरने पर भी अुन्हें नुकसान नहीं पहुँचता और वे दिनरात बढ़ते ही जाते हैं। ज्यों ज्यों अुम्र बढ़ती जाती है त्यों त्यों सरेस का परिमाण कम होता जाता है और चूने का बढ़ने लगता है। अिसी कारण हड्डियां मजबूत होती है और बड़े बड़े काम करने की अुनमें शक्ति आती है। किन्तु जब बुढ़ापा आ जाता है तब सरेस की मात्रा बिलकुल घट जाती है और केवल चूने की हड्डियां न तो काम दे सकती हैं और न कोअी आघात ही सहन कर सकती हैं। वह तो मरण की ही तैयारी है।

ब्रिटिश साम्राज्य की अब अिसी बात पर कसौटी हो रही है। क्या ब्रिटिश राष्ट्र साम्राज्यवाद का घमंड छोड़ देगा, समय को पहचान कर दुनिया भर में लोकतंत्र को स्थापित करने के लिअे अुद्यत होगा और अपने घर में वह जो आजतक अनेक राष्ट्रों को चूसता रहा है अुसे बन्द कर अुन्हें स्वराज्य प्रदान करेगा? या बूढ़ों की तरह अपने पुराने ढर्रे पर कायम रह कर छिन्नभिन्न होना पसन्द करेगा?

गांधीजी ने आशा बांधी थी कि युद्ध से अूबा हुआ ब्रिटिश राज्य अपनी साम्राज्य-तृष्णा से बाज आ कर अपनी नीति में परिवर्तन करेगा, किन्तु बड़े लाट ने यह साबित कर दिया कि ब्रिटिश साम्राज्य की हड्डियों में सरेस बिलकुल ही नहीं रहा है। "पोलैंड को बचावें या हिन्दुस्तान को अपने लिअे बचावें," यह सवाल सामने आते ही अिंग्लैंड ने स्पष्ट कर दिया कि हम जैसे थे वैसे ही अब भी हैं।

अितना कह कर ही अिंग्लैंड चुप नहीं हुआ। हिन्दुस्तान में टिकने के लिअे अुसके जो पास पुराना अचूक साधन है अुसी का प्रयोग अुसने फिरसे शुरू कर दिया है। "हिन्दुस्तान में अनेक पक्ष हैं, अनेक धर्म हैं, अनेक भाषायें हैं" आदि, आदि बातें बढ़ा बढ़ा कर हमारे सामने रख देना अुसने शुरू कर दिया है। हम भी जानते हैं कि हिन्दुस्तान को लूटनेवाले अनेक हैं, हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने की अिच्छा रखनेवाले अनेक हैं। ब्रिटिश साम्राज्य की मौत चाहनेवाले हम तो केवल स्वराज्य के आकांक्षी हैं, शान्ति के अुपासक हैं, और अिच्छुक हैं हिन्दुस्तान के छोटेमोटे पक्षों के अधिकारों की रक्षा करने के सुअवसर के।

२४:१०:३९ का० का०

मेरी काशी-सम्मेलन यात्रा

अितना पैसा और समय खर्च करके दूर दूर से प्रतिनिधि और प्रेक्षक आते हैं

अिस समागम से सम्मेलन को काफी लाभ अुठाना चाहिअे। सालभर लगातार जो लोग काम करते हैं अुनके कार्य के बारे में निर्णय देने की योग्यता अुसी तरह से अपने अपने क्षेत्र में जो काम करते हैं अुन अधिकारी लोगों में ही है। सभा में आने के बाद ही जो लोग विचार करना शुरू करते हैं अैसे लोगों की राय पर हमें अपना राष्ट्रीय कार्य निर्भर नहीं रखना चाहिअे।

* * *

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ कवि-सम्मेलन, कहानी सम्मेलन, नाटक अित्यादि आमोद-प्रमोद के कार्यक्रमों का होना बुरा नहीं है। अिन कार्यक्रमों द्वारा स्थानिक और प्रान्तीय विशेषतायें प्रकट होती है। किन्तु जब जीवन समृद्ध न हो तो अैसे कार्यक्रम छिछोरे और नीरस हो जाते हैं, अुनमें अेक अनिष्ट वायुमंडल पैदा हो जाता है और मुख्य कार्य तो दर किनारे जाता है। अिसलिअे कार्यक्रमों की संख्या न बढ़ा कर योग्य पुरुषों की अध्यक्षता में अवैध वार्तालाप रखना चाहिअे।

* * *

अब की बार काशी में मुझे रायकृष्णदासजी की कोठी पर रहने का सौभाग्य मिला। हमारे मेजबान रायसाहब तो अपने "कलाभवन" की तैयारी में ही व्यस्त थे। तो भी चार-छह दिन वहां जो 'काव्य-शास्त्र विनोद' का वायुमण्डल रहा वह मेरे मन सम्मेलन जितना ही महत्त्व का था। अिस "गोष्ठी" के स्वागताध्यक्ष थे कविवर मैथिलीशरणजी। हम सब अुन्हीं के सुपुर्द थे। वहां पर मैथिलीशरणजी, सियारामशरणजी, नवीनजी, जैनेन्द्रजी, माखनलालजी, 'कुमार' के संपादक सुरेशसिंहजी, बम्बअी अजायबघर के व्यवस्थापक डा० मोतीचन्दजी आदि अनेक सज्जनों से वार्तालाप हो सका। क्रान्तिकारी सन्यालजी ने भी वहीं आ कर दर्शन दिये। मुग़लशैली के अन्तिम प्रतिनिधि-चित्रकार रामप्रसादजी ने भी अपने सौजन्य से सबको आल्हादित किया। श्री केडियाजी का संग्रहालय भी भूलने की चीज़ नहीं है। रायसाहब की कोठी पर श्री 'नवीनजी' ने अपना "सिरजन की ललकारें मेरी" शीर्षक सुंदर, सुदीर्घ और भव्य काव्य गा कर सुनाया और गंगातट पर अपनी प्रसन्न-गंभीर वाणी से कवि–सम्मेलन की अेक छोटी–सी किन्तु संस्मरणीय आवृत्ति कर दिखायी। गुप्त बंधुओं के झंडागीत भी कम आकर्षक नहीं थे। मेरी तो निश्चित राय बन गयी है कि देश के झंडागीत 'देश राग' में ही गाये जाने चाहिअें।

* * *

हम दक्षिण भारतीयों के लिये काशी सनातन तीर्थक्षेत्र तो है ही। किन्तु हमारे लिअे वहां के बाबा–बैरागी अितने आदरणीय नहीं है जितने कि भारतभूषण पूज्यपाद मालवीयजी, आदर्श गृहस्थाश्रमी शिवप्रसादजी गुप्त, विद्वत्शिरोमणि डा० भगवानदास, राष्ट्रीय वृत्तविवेचक बाबूरावजी पराडकर, कला के अनन्य अुपासक रायकृष्णदासजी आदि काशीनिवासी सज्जन है। ये सब सन्त "जंगम तीरथराजू" हैं। काशी का पावनत्व अैसे ही समाज–सेवकों में सन्निहित है और अगर समाजसत्तावादी आचार्य नरेन्द्रदेव को धर्म से परहेज न हो तो अुन्हें भी हम अूपर की नामावली में शरीक करना पसन्द करेंगे।

हमारे लिअे काशी जितनी पुण्यभूमि है अुससे सारनाथ तनिक भी कम नहीं है। बौद्धधर्म हिन्दूधर्म का ही अेक अुज्ज्वल अंग है यह सिद्ध करने के लिअे हमें श्री जुगलकिशोरजी के प्रचार की आवश्यकता नहीं है। अुनकी बनायी हुअी सारनाथ की धर्मशाला देख कर चित्त प्रसन्न हुआ। कुशीनारा में भी अुन्होंने चारों ओर से आनेवाले बौद्धों के लिअे अैसी ही अेक सुन्दर धर्मशाला बनवायी है। सारनाथ में भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी का 'साक्षात्कार' हुआ। सब बौद्ध साधु अगर अिन्हीके जैसे हंसमुख और विनोदी बन जायँ तो मुझे डर है कि कहीं बौद्ध धर्म सारी दुनिया का धर्म न हो जाय! विद्वत्ता, विनोद, कटाक्ष और सहिष्णुता का यह रसायन हर किसीको आनन्ददायी ही होगा।

२६:१०:'३९ का० का०

बाप्पा जयन्ती

यह सुन कर आश्चर्य होता है कि आदर्श हरिजन सेवक ठक्कर बाप्पा सत्तर साल के हो गये हैं! अुत्साह में, कार्यशक्ति में और साथियों को प्रेम से डाँट देने में वे अितने बूढ़े नहीं मालूम होते। चन्द लोग स्वभाव और शारीरिक स्वास्थ्य में बिलकुल सनातनी होते हैं; जब देखिये तब जैसे दीखते हैं वैसे ही सदा से रहे हैं। अैसा प्रतीत होता है कि मानो वे बदले ही नहीं। ठक्कर बाप्पा अिन्हींमें से अेक हैं। मालूम होता है कि अुन्होंने वैदिक ॠषियों से यही बोध लिया है—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतंसमा:'।

ठक्कर बाप्पा की हरिजनसेवा भारत के सब लोग जानते ही हैं। गुजरात में पहले वे हरिजनों के 'गोर' यानी गुरु, कहलाते थे। अब तो भारत भर में वे हरिजनों के 'बाप्पा', याने पिता, बन गये हैं। हरिजनों के लिअे अभी करने को बहुत कुछ बाकी है। किन्तु अस्पृश्यता का आधार तो कब का टूट गया है। हरिजन भी जाग्रत हुअे हैं और भलेबुरे रास्ते से अपने हित के लिअे कोशिशें करने लगे हैं। अिसपर से हम कह सकते हैं कि बाप्पा की हरिजन-सेवा सफल हो गयी है।

किन्तु बाप्पा की अितनी ही महत्त्व की दूसरी अेक सेवा है जिसकी ओर भारत का पूरा ध्यान नहीं गया है।

भारत में असंख्य अैसी जातियां हैं जिनको हम अस्पृश्य तो नहीं कहते किन्तु जिनकी हालत कअी बातों में हरिजनों से भी बदतर है।

जिन लोगों में बुद्धिशक्ति और धूर्तता अधिक थी, जिनका संगठन मजबूत था और जिनके पास धनसंचय भी था अैसे लोगों ने देश की अच्छी से अच्छी जमीन हथिया ली है और शहर और गांव बसा कर वे अपनी जीवन-यात्रा मजे में चला रहे हैं। किन्तु जिन लोगों की मनोवृत्ति और आदतें आरण्यक हैं, जंगल की हवा और जंगल की आजादी जिन्हें प्रिय है, पशुओं के साथ रह कर शिकार पर ही जो लोग अपना गुजारा करते हैं और अुससे पेट न भरने पर जंगल की वनस्पतियों से दोपहर की भूख शान्त करते हैं; अथवा जहां सुधरे हुअे लोग खेती करने में लाभ नहीं देखते वहां पर कष्ट-साध्य खेती करते हैं, अैसे वनेचर लोग हमारे देश में बहुत हैं।

हमारे प्राचीन पुराणों में अैसे पहाड़ी लोगों का वर्णन जगह जगह आता है।

स्मृतियों में भी अुनका अुल्लेख है। किन्तु अुनकी जीवनकथा वहां काल्पनिक और भ्रमोत्पादक ढंग से दी गयी है।

अिन जंगली जातियों का अध्ययन भारत आनेवाले यूरोपियन अमलों और पादरियों ने ठीक ठीक किया है। अिनकी भाषा, अिनके रस्मरिवाज और अिनके धार्मिक आचार-विचार सबका गवेषणापूर्ण वर्णन यूरोपीय मानववैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने किया है। अंग्रेज़ सरकार ने अिन लोगों को कहीं कहीं थोडी सहायता भी पहुंचायी है।

किन्तु अैसे लोगों को अपना कर अपने समाज में आत्मसात् करने का और अुनका समाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक अुद्धार करने का अुत्तरदायित्व हम लोगों ने बहुत कम पहचाना है। अैसे लोगों में कार्य करने का प्रारंभ ठक्कर बाप्पा ने गुजरात में किया और 'भील सेवा मंडल' की स्थापना की। वहां अुनको अच्छे कार्यकर्ता मिले। श्री पंडाजी जैसे अच्छे नवयुवक की मदद मिलते ही अुन्होंने असम प्रान्त के पहाडी लोगों की सेवा शुरू कर दी।

अगर भारत में धर्मबुद्धि है, न्यायबुद्धि है और राष्ट्र संगठन की दूरदर्शिता है तो ठक्कर बाप्पा के अिस कार्य की ओर देश को तुरन्त ही ध्यान देना चाहिअे। गांधीजी ने बाप्पाजयन्ती के अुपलक्ष में ७०,००० रुपये अिकट्ठा करने की सूचना की है। देश के धनी और गरीब सब मिल कर यह रकम अिकट्ठी करेंगे ही। किन्तु अगर हम भारतवर्ष में सचमुच सर्वोदय चाहते हैं तो हमें अिससे कुछ अधिक करना होगा। अगर भारत के नवयुवक २९ नवम्बर तक अुन्हें सात सौ कार्यकर्ता पर्वतीय जातियों की सेवा के लिअे दे दें और अेक साल में अिस संख्या को दसगुनी करने का संकल्प करें तो वह बाप्पाजयन्ती मनाने का सही तरीका होगा।

२६:१९:'३९ का० का०

बापा जयंती

यह मैं जानता था कि गांधीजी और ठक्कर बापा की उम्र में कुछ ही दिनों का अंतर है। पर बापा-जयंती मनाने की कोई योजना भी बनी है यह मुझे 'हरिजन बन्धु' में गांधीजी की टिप्पणी पढ़ने पर ही मालूम हुआ। मैं ठक्कर बापा के जरिये गांधीजी के पास आ पहुंचा और सेवाकार्य को अपना जीवन दे देने के लिअे उन्होंने अपने दृष्टांत और प्रेरणा द्वारा मुझे सदैव प्रोत्साहित किया है। घडी की नियमितता से अपने नित्यकर्मों को पूरा करना, अपनी संस्थाओं और अुनके संचालकों के कामों की बारीक निगाह से देखरेख, अपने कर्मचारियों के प्रति विलक्षण वात्सल्य, उनकी सुख-सुविधाओं की चिंता, नियम से अपनी दिनचर्या (रोज़नामचा) लिखने की आदत, और इन सबसे अधिक अपनी निरभिमानता के कारण वे हमेशा मेरे लिअे अेक आदर्श गुरुजन रहे हैं। उन के इन गुणों को मै कभी हासिल न कर सका, और अब तो यह आशा ही नहीं कि कर सकूंगा। उनकी जयंती मनाई जाने-वाली है, इस कारण मुझे उनके प्रति अपनी कृतज्ञता जाहिर करने का मौका मिला, इस-की मुझे खुशी है। वे पूर्ण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अनुभव करते रहें, और अपनी अपनाई हुई कौमों की सेवा बढ़ाते रहें यही हृदय की इच्छा है।

२६:१०:'३९ कि० घ० म०

माध्यमिक शिक्षा का प्रश्न

वर्धायोजना, यानी बुनियादी तालीम, की तरक्की आहिस्ता आहिस्ता हो रही है। वर्धायोजना का प्रारंभ तो अिस वक्त खास खास प्रदेशों मे सीमित क्षेत्र में ही किया जायगा। और वह भी खास करके देहातों में। अैसा होते हुअे भी माध्यमिक, यानी हाअीस्कूल की, पढ़ाअी का विचार भी अब करना ही होगा। सात साल तक जो बुनियादी तालीम दी जायगी अुसकी योग्यता, सिर्फ अंग्रेजी को छोड़ कर, आज की मैट्रिक से किसी भी बात में कम नहीं होगी। अगर कोअी फरक रहा भी तो वह बुनियादी तालीम के हक में ही होगा। अब, जब बुनियादी तालीम बढ़ने लगेगी तब हाअीस्कूल की शिक्षा का क्या किया जाय यह सवाल बार बार हमारे सामने आयेगा। हाअीस्कूल की शिक्षा तो युनिव्हर्सिटी के साथ बंधी हुअी है। हम राष्ट्रभाषा को बुनियादी स्कूलों में और हाअीस्कूलों में आवश्यक स्थान देना चाहते हैं, युनिव्हर्सिटी को अुसमें अुत्साह नही; हम अपनी माध्यमिक शिक्षा में से अंग्रेजी का प्राधान्य हटाना चाहते हैं, युनिव्हर्सिटियां अुसे बढ़ाना चाहती हैं; हम शहर और देहात में ज्ञान का प्रचार मातृभाषा द्वारा करना चाहते हैं, हमारी युनिव्हर्सिटियां शहर के और गांव के होशियार होशियार लडकों को अंग्रेजी की दीक्षा दे कर नौकरी के, अदालती झगडों के और लोगों की बीमारी के पीछे पागल बनाती आयी है; हम सुशिक्षितों को प्रजासेवक अुत्तरदायी व्यक्ति बनाना चाहते हैं, युनिव्हर्सिटी के ग्रेज्युअेटों का समाज के साथ कम से कम संबंध आता है, वे देहातिओं से मिल नहीं सकते और धन कमाने की शक्ति न बढ़ते हुअे भी धन का व्यय करने की शक्ति बढ़ाने की शिक्षा अुन्हें दी जाती है। युनिव्हर्सिटी के शिक्षक और अध्यापक तनख्वाह और पेन्शनों की बदौलत समाज से अितने अलिप्त रहते हैं कि जिनके मन में स्वराज्य के लिअे प्रेम है अैसे अध्यापक भी स्वराज्य के लिअे कुछ बलिदान करना अपना धर्म है अिस बात को महसूस नहीं करते।

आजकल की युनिव्हर्सिटियां कितनी प्रतिगामी (रीअॅक्शनरी) है यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है। परदेशी सरकार का अंकुश हमारी युनिव्हर्सिटियों पर जहां तक हो सके कम रहे यही हमारी कोशिश रही है। स्वराज्य के दिनों में भी हमारे शिक्षापरायण पंडित जितने 'स्वतंत्र' रहें अुतना ही अच्छा है। किन्तु 'स्वतंत्र' होने के मानी 'अतंत्र' होना तो नही है। स्वतंत्र होने के मानी यह नही हैं कि वे प्रजाहित का भी खयाल न रखें; अपनी बड़ी बड़ी तनख्वायें, लंबी लंबी तातीलें और जिनका प्रजाहित से संबंध नहीं है अैसी चर्चायें और खोजें ले कर वे मनमाना जीवन व्यतीत करें!

विद्यासेवक पंडित अपने संयमी, सादे, जीवन से और प्रजाहित-परायणता से और ज्ञान तथा चारित्र्य की तेजस्विता से ही स्वतंत्र बन सकते हैं। क्या हमारी युनिव्हर्सिटियों के प्रोफेसरों ने अपना यह अधिकार सिद्ध किया है? अधिकार के साथ जब कर्तव्यदक्षता का अुत्तरदायित्व नहीं रहता तब धर्मगुरु और राजा-महाराजाओं के समान देश के विद्वान भी बिगड़ जाते हैं और अपनी बुद्धि का अुपयोग प्रतिगामी तदबीरों के समर्थन के लिअे करते हैं।

२८:१०:'३९ का० क०

'समवाय' और 'अनुबन्ध'

आचार्य भागवत महाराष्ट्र के अेक आचारवान् शिक्षाशास्त्री हैं। आज कल मराठी में "वर्धा शिक्षण" नामक अेक मासिक पत्र का संपादन करते हैं। अुनके साथ पिछले दिनों पूना में जो चर्चा हुअी थी अुसके फलस्वरूप अुन्होंने बहुत ही सुन्दर शब्दों में 'अनुबन्ध' और 'समवाय' का परस्पर संबंध स्पष्ट किया है। अुनके लेख का अनुवाद अन्यत्र दिया गया है। अिस सृष्टि की रचना में सब चीजें परस्पर अनुबद्ध हैं क्यों कि अुनमें प्रयोजन की अेकता है और अनेक रूप धारण करनेवाली अेक किस्म की व्यवस्था है। अिस प्रयोजन और अिस व्यवस्था की बुनियाद में तत्त्वतः अयुतसिद्धि का समवाय संबंध है। अिसलिअे दर्शनशास्त्र में और तत्त्वज्ञान में 'समवाय' शब्द अधिक प्रयुक्त होता है। पर शिक्षणशास्त्र व्यावहारिक और प्रत्यक्ष होने से अुसके लिअे 'अनुबन्ध' शब्द ही अधिक अुपयुक्त मालूम होता है। अनुबन्धों का पर्याप्त ग्रहण होने के बाद ही तत्त्वदृष्टि के अन्दर समवाय का अुदय होता है। समवाय है ही अतीन्द्रिय। तत्त्वज्ञान में ही अुसके लिअे अवकाश है। हमारे मत से शिक्षापद्धति की मीमांसा की परिभाषा में 'अनुबन्ध' शब्द ही अनुरूप है। यदि हम पदार्थगत संबंध को 'अनुबन्ध' कहें और केवल बुद्धि-ग्राह्य तत्त्वसंबंध को 'समवाय' कहें, तो व्यवस्था अच्छी होगी।

२४:१०:'३९ का० का०

अ० भा० कॉंग्रेस समिति का प्रस्ताव

मैं यह स्वीकार करता हूं कि अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी की सभा ने मेरे हृदय में निराशा और असंतोष का ही भाव उत्पन्न किया है। यदि यह मान भी लिया जावे कि यह अैसा अवसर था जब कि भारत के लिअे—अगर वह स्वतंत्र होता तो—ब्रिटेन और उसके मित्रों की सहायता करना उचित होता, तो भी जहांतक अैसा कोअी निर्णय करना कॉंग्रेस के हाथ मे होता वह अिन देशों की सहायता अैसे साधनों से कभी नहीं करती जिनका कि अुपयोग अुसने अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिअे भी न करने का निश्चय किया है। यदि कॉंग्रेस भारत की स्वाधीनता भी अुचित और शान्तिमय अुपायों से ही प्राप्त करेगी; याने अुसके लिअे भी वह जान और माल का नाश नहीं करेगी; तो यह स्पष्ट ही है कि वह ब्रिटेन और अुसके मित्रों की भी हत्या और विध्वंस से अपनी स्वाधीनता की रक्षा में मदद नहीं करेगी। भारत केवल अहिंसक सहायता ही दे सकता है। यदि दूसरे देश अहिंसा को ही अपना अेक मात्र आयुध बना लें तो आवश्यकता होने पर अुन देशों में अहिंसक प्रतिकारी भेजने की सीमा तक भी यह सहायता जा सकती है।

यदि कॉंग्रेस सत्याग्रह की नीति का विचारपूर्वक परित्याग करना नहीं चाहती थी तो अुसे यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिअे थी। अैसे स्पष्टीकरण के अभाव में मुझे तो यही प्रतीत होता है कि गांधीजी की ७१ वीं (हिन्दी पंचाग के अनुसार) जयन्ती के दिन अखिल भारतीय समिति ने अुन्हें अैसा प्रस्ताव

भेंट किया जो कॉंग्रेस का गांधीनीति को अन्तिम नमस्कार हो सकता है; और जिसका परिणाम हिन्दुस्तान को अेक महान् संकट में डालना भी हो सकता है। अब भी हम अिस गलती को सुधार सकते हैं, लेकिन हम सुधारेंगे या नहीं अिसमें सन्देह है।

१४:१०:३९ कि० ध० म०

बड़ेलाट की घोषणा

बड़े लाट ने अपनी घोषणा द्वारा कॉंग्रेस को जो धक्का पहुँचाया है अुसका मैं अेक दृष्टि से स्वागत करता हूं। आवेश में आ कर कॉंग्रेस अपने संगठन के केन्द्र को ही नष्ट करने पर अुतारू हो गयी थी। महायुद्ध अुसे अपनी कक्षा से भ्रष्ट कर रहा था। अब यदि वह चाहे तो अपना गया हुआ समतुलन पुनः प्राप्त कर सकती है। अगर कॉंग्रेस अपने सिद्धान्तों के प्रति अेकनिष्ठ रहना चाहती है तो अुसे अपने मन में यह साफ़ साफ़ ठान लेना चाहिअे, और असंदिग्ध शब्दों में घोषित कर देना चाहिअे कि चाहे भारत को स्वाधीनता मिले या न मिले, कॉंग्रेस, भारत में या भारत के बाहर, अपने लिअे या दूसरों के लिअे, हिंसा में हाथ कदापि नहीं बंटा सकती। अुसके लिअे मनुष्य की जान लेना संभव हो तो भी वह नहीं लेगी। यदि आज वह विशुद्ध अहिंसा से देश की रक्षा करने के लिअे, या स्वाधीनता प्राप्त करने के लिअे, अपने आपको असमर्थ मानती हो, और अिसलिअे कुछ घबराती हो, तो अुसे अहिंसक प्रतिकार की कला का ही विकास करने में जुट जाना चाहिअे, न कि संहार की कला का। वह तो सरकार को अधिक से अधिक अहिंसक सहयोग, या असहयोग ही दे सकती है। परिस्थिति अनुकूल हो तो अहिंसक सहयोग दे सकती है; और यदि परिस्थिति विवश करे तो अहिंसक असहयोग। परन्तु अुसकी शक्ति या अशक्ति—आप अुसे चाहे जिस नाम से पुकारें—अुसकी संगठित अहिंसा में ही होगी।

१९:१०:'३९ कि० ध० म०

फिर 'ड़' और 'ळ'

भदन्त आनन्द कौसल्यायन लिखते हैं:—

"अगस्त के 'सर्वोदय' में श्री 'सर्वोदयमित्र' ने राहुलजी के किसी ग्रन्थ—अनुमानतः 'जापान'—में 'ड़' की जगह 'ळ' का प्रयोग देख कर यह शंका की है कि क्या राहुलजी 'ळ' का अुच्चारण 'ड़' ही समझते हैं? अिस शंका के उत्तर में 'सम्पादकीय' में लिखा है कि 'सर्वोदय-मित्र' की बात ठीक है, अर्थात् राहुलजी की गलती है, और अुसका कारण यह बताया है 'हिन्दीवाले नया अुच्चारण सीखने की तकलीफ कम लेते हैं।'

मैं समझता हूं कि मुझे या किसीको राहुलजी की विकालत करने की जरूरत नहीं, यदि अुनकी नजर से यह टिप्पणी गुज़री होती और अुन्हें कुछ कहना होता, तो वह स्वयं लिख सकते थे। मैं अपनी ओर से दो शब्द निवेदन कर दूं:—

(१) मेरा ख्याल है कि राहुलजी ने 'ळ' अक्षर को 'ड़' की जगह जानबूझ कर अपनाया है। वह मराठी अथवा अन्य किसी प्रान्तीय भाषा के 'टिळक' अित्यादि शब्द को हिन्दी में लिख सकने की सहूलियत के अुद्देश्य से नहीं; बल्कि हिन्दी में ही 'घोड़ा, इत्यादि शब्दों के लिखने में 'ड' के साथ नीचे जो अेक बिन्दी लगानी पड़ती है, अुस बिन्दी को

अनावश्यक बना देने के लिअे। रोमन के अनेक अक्षरों का यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न अुच्चारण है। यदि मराठी में 'ळ' का अुच्चारण 'ल' कार लिखे रहने पर भी हिन्दी में वह 'ड़' के पर्य्यायवाची के ही रूप में स्वीकृत हो, तो क्या कोअी हर्ज है? यही कहा जावेगा न, कि तब अुस अुच्चारण के लिये जिसकी अभिव्यक्ति मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में 'ळ' से होती है हिन्दी में कोअी दूसरा प्रकार सोचना होगा। राहुलजी ने 'ड़' की जगह 'ळ' का प्रयोग करके अुन हिन्दी शास्त्रियों के सामने जो 'ड' के नीचे बिन्दी नहीं लगाना चाहते अेक सुझाव रक्खा है जो स्वीकृत भी हो सकता है, और इससे अच्छे किसी दूसरे सुझाव की अुपस्थिति में अस्वीकृत भी।

(२) भारत की कुछ दाक्षिणात्य भाषाओं में जब 'ळ' का प्रयोग और अुसका विशिष्ट ल-कारात्मक अुच्चारण विद्यमान है तो अुन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते समय हम स्वभावतः अपना अुच्चारण अुन भाषाओं के स्वीकृत अुच्चारण के अनुकूल ही करेंगे; लेकिन क्या 'ळ' का अुच्चारण 'ड़' होता ही नहीं? यदि वेद में होता है, तो वेद में ही सही।

लिपि-संस्कार के अिस युग में यदि हमें किसी का कोअी प्रस्ताव मान्य न हो; तो हम अिसे अुसकी समझ की गलती ही क्यों माने?"

ये दिन सुधार के हैं, योग के हैं। हर अेक व्यक्ति अपना अपना प्रयोग कर सकता है। किन्तु मनमाने प्रयोग चलाने से अनवस्थाप्रसंग आने का डर होने से संकट की सूचना देना भी धर्म-प्राप्त हो जाता है।

अेक निश्चित अुच्चारण के लिअे जो अक्षर भारत की सात प्रधान भाषाओं में है अुसी अक्षर को हिन्दी में अेक दूसरी ही ध्वनि व्यक्त करने के लिअे यदि आप काम में लाना चाहें तो ला सकते हैं। किन्तु राष्ट्रभाषा के सेवकों के नाते सात भाषाओं के प्रतिनिधि हमलोग अुसका विरोध करेंगे और अैसे लोगों से शुरू में ही कह देंगे कि अिसमें आपकी गलती हो रही है।

किन्तु अभी तो 'ड' के लिअे 'ळ' अक्षर समस्त हिन्दीवालों ने लिया ही नहीं है। किसी संस्था या समिति ने अुसे मान्य किया नहीं। केवल अेक व्यक्ति ने अुसका प्रयोग किया है अैसा तीसरे ही अेक व्यक्ति का अनुमान है। अिसलिअे प्रारंभ में ही अुसका दोष दिखाना आवश्यक है। हिन्दीवालों की अितनी सेवा करना हमारा धर्म है।

जो लोग चाहते हैं कि भारत की सब प्रान्तीय भाषाओं के लिअे अेक ही नागरी लिपि का व्यवहार हो वे यह कोशिश अवश्य करेंगे कि सारे भारत में हर अेक अक्षर का अेक ही सर्व-साधारण अुच्चारण हो। अिसमें भी हमें पूर्णतया सिद्धि नहीं मिलेगी। बंगाली लोग 'अ' का अुच्चारण 'ओ' के जैसा करेंगे। कभी कभी 'अॅ' करेंगे। हिन्दीवाले 'अै' (अअि) का अुच्चारण 'अय्' के जैसा करेंगे। पंजाबियों का 'अ' और बंगालियों का 'अ' महाराष्ट्र-गुजरात के 'अ' से अुच्चारण में अलग होगा। और मद्रासी तो 'अ' का अुच्चारण 'आ' के जैसा करेंगे। और 'ज्ञ' के अुच्चारण के बारे में तो हर अेक प्रान्त अपनी अपनी अलग राय रक्खेगा। अैसा होते हुअे भी हमारा प्रयत्न तो यही रहना चाहिअे कि भारत भर में हर अेक अक्षर का अेक ही निश्चित अुच्चारण हो। 'घोड़ा' शब्द में 'ड' के नीचे बिन्दी न लगाने से भी काम

चल सकता है। जहां 'ड़' का अुच्चारण व्यक्त करना आवश्यक है वहां पर बिन्दी से ही काम लेना हमारी राय में अच्छा है। अुस अुच्चारण में 'ळ' का व्यवहार करना लिपि-व्यवस्था में अराजकता पैदा करना है।

अगर हर अेक प्रान्त में हर अेक अक्षर के अुच्चारण भिन्न भिन्न हो जायँ तो सर्वसाधारण की सहूलियत के लिअे अेक नयी ही आन्तर-प्रान्तीय लिपि बनानी होगी जैसे कि यूरोप में अिण्टरनेशनल फोनेटिक बनायी गयी है। किन्तु अैसा करने से नागरी का गौरव हम घटायेंगे। नागरी स्वयंसिद्ध आन्तर-प्रान्तीय वैज्ञानिक लिपि है। मेरे विचार में देवनागरी का अर्थ ही है आन्तर प्रान्तीय लिपि। (देवनगर=बनारस, काशी। सब प्रान्त के विद्वान देवनगर में रहते हैं अिसलिअे देवनगर की लिपि ही आन्तरप्रान्तीय मान्यता के योग्य है)।

का० का०

देवों का काव्य

शाम से ले कर सुबह तक अखंड जागनेवाले व्योमविहारी देव चातुर्मास्य में बादलों की चद्दर ओढ़ कर अकसर सो जाते हैं। यह पुरानी चद्दर सावधानी से ओढ़ने की कबीर की कला अिन देवों को अवगत न होने के कारण वह स्थान स्थान पर फट गयी है। अिसलिअे चातुर्मास्य में भी अिन देवों का बीच बीच में दर्शन होता रहता है। किन्तु संकेत तो अैसा है कि अिस दिनों में देवों को नींद से जगाना नहीं चाहिअे। 'देवशयनी' अेकादशी को सोये हुअे देव अब कार्तिक शुक्ल की 'प्रबोधिनी अेकादशी' के दिन प्रसन्न हो कर अुठेंगे। जो अच्छे सोते हैं वे जागते भी हैं बहुत अच्छी तरह से। अिसलिअे अगले महीने से अिन आकाशस्थ देवों का दर्शन हम फिरसे करते रहेंगे। पाठकों से अनुरोध है कि वे अभी से रोज शाम और सुबह को पांच पांच या दस दस मिनिट देने का निश्चय करें।

अच्छा तो यह है कि अगले महीने से अिन देवों के दर्शन की सुविधा के लिअे कुछ चित्रों का भी प्रबंध करें। प्रधान नक्षत्रों की आकृतियां देने से अुन्हें पहचानना बहुत कुछ आसान हो जायगा। अब की बार गुरु, मंगल और शनि के दर्शन तो आकाश में हो रहे हैं। अुन्हींकी तरफ पाठकों का ध्यान खींच कर हम संतोष मानते हैं। आजकल रात को जब तक व्याध नहीं अुगता तबतक आकाश की ज्योतियों में गुरु का ही प्रभाव सब से अधिक रहता है। मंगल तो यूरोप में युद्ध की देवता मानी जाती है। अुसकी लाल लाल आंखों से ही अुसे हम आसानी से पहचान सकते हैं। और शनि तो रात को पूर्व दिशा में अपनी यात्रा का तारण करता है अिसलिअे अुसको भी पहचानना कठिन नहीं है। अिन तीनों ग्रहों का तेज निष्कंप और स्थिर होता है। केवल तारे ही झिलमिल झिलमिल पलक मारते रहते हैं।

२४:१०:३९ का० का०

आश्रम के अुल्लू और सवाअी का वियोग!!

'सर्वोदय' के सभी रसिक पाठकों को यह जान कर दुःख होगा कि अबसे वे 'सर्वोदय' के पृष्ठों में 'सवाअी भुशुंडि' की मार्मिक और निरुपद्रवी विनोद-भरी बातें नहीं पढ़ सकेंगे। सवाअी ने कअी महीनों तक

पूरक्य मनोरंजन किया और अप्रत्यक्ष-रूप से वस्तु-कथन भी किया। हमें यह मालूम है कि हमारे कभी गंभीर प्रकृति के सहृदय मित्र भी सवाअी की बातें बड़े चाव से पढ़ते थे। अुसका भी अपना अेक 'दर्शन' था। अुसके संवादों को पढ़ कर कभी पाठकों की विनोदवृत्ति जाग्रत होती थी। 'मनुष्यों के झगड़ों' पर अुसका विवेचन पढ़ कर अेक सुपरिचित मित्र ने निम्न सुंदर पत्र लिखा है :–

"सर्वोदय के संचालक पर मानहानि का दावा दायर करने का अिरादा है। विधुर और अविवाहितों के प्रति बड़ा अन्याय किया है। देखिये हमारे सेगांव आश्रम की ही बात ले लीजिये। श्री मु० विवाहित हैं और अुनकी पत्नी भी बंगाली नहीं है। अेक रोज आश्रम के अुल्लू को सेगांव भेजिये, फिर होने दें मु० से दो दो हाथ! देखें कौन जीते! और बिचारे श्री म० और श्री कु० तो अविवाहित हैं जो भेड़ से भी गरीब हैं। सचमुच आश्रम का अुल्लू, अुल्लू ही है! बड़ी मुसीबत तो यह है 'केस' किसकी अदालत में दायर करूं? अैसी अदालत हो जो न तो विवाहित हो; न अविवाहित! आपकी नजर में कोअी है?"

आश्रम के अुल्लू और सवाअी के ये संवाद कितने रुचिकर होते थे अिसका यह रोचक पत्र अेक अुदाहरण है।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि सवाअी अेक ही आंख से देखता था। लेकिन हम दोनों आंखों से देख कर भी प्रत्येक पदार्थ की अेक या डेढ़ ही बाजू तो देख पाते हैं न? किसी भी वस्तु का हमें संपूर्ण दर्शन तो होता ही नहीं। किसी दार्शनिक ने ठीक ही तो कहा है, We are all short-sighted. We very often see but one side of an object. (हम सभी अल्पदर्शी हैं। हम अक्सर पदार्थ की अेक ही बाजू देख पाते हैं।)

जब दोनों आंखों से—और आजकल तो दो नेत्रों और दो अुपनेत्रों से—देखनेवाले दार्शनिकों का भी यह हाल है, तो सवाअी भुशुंडि को दोष कौन दे सकता है? दो आंखों-वालों के दर्शन भी तो अेकदेशीय और अेकांगी होते हैं। सवाअी का यह दावा था कि जब अेक पक्ष और अेक ही अंग देखना है तो वह काम अेक आंख से अधिक अच्छी तरह हो सकता है। अुसके 'अेकाक्षदर्शन' से हम सबक सीख सकते हैं।

लेकिन भुशुंडि की याद आते ही हम अुसकी दृष्टि का विश्लेषण करने बैठ गये। पढ़े-लिखों की यही तो अिल्लत है। अुन्हें 'शोकसभा' में भी भाषण देने को कहिये तो वे मृत्यु के सिद्धान्त का विश्लेषण करने लगेंगे।

सवाअी ने हमें अपना अन्तिम नमस्कार भेज दिया है। अपने मित्र की अन्तिम अिच्छा पूरी करने के लिअे आश्रम के अुल्लू ने जिस प्रकार अुसके शरीर को बड़ी प्रामाणिकता से अदृश्य किया अुसी प्रकार अब वह आश्रम से भी बिदा होनेवाला है। जिस अिमली के पेड़ पर अुसका बसेरा था वह अब अुजड़ हो जायेगा!

भुशुंडि का 'काकदर्शन' अिस अंक से समाप्त होता है। अेक रसिक मित्र के नाते हमें भुशुंडि और आश्रम के अुल्लू का वियोग कअी दिनों तक पीड़ा देता रहेगा!

२७.१०.'३९. दा० ध०

बूढी संजम्मा-अेक हरिजन कत्तिन

[हणमंतराव कौजलगी]

संजम्मा पोदूर की अेक हरिजन कत्तिन है। १९३४ में जब मैं अुससे पहलेपहल मिला तब वह ८३ साल की थी। निज़ाम राज्य की गदवाल रियासत के पोदूर नामक गांव में वह अपनी झोंपडी के सामने बैठी थी। हमलोग वहां महीन सूत की कताअी का संगठन करने गये हुअे थे। रायचूर में हमें मालूम हुआ था कि गदवाल रियासत में कुछ अैसी बूढियां हैं जो ४० से ६० नम्बर तक का सूत कात सकती हैं। वहां यह कला अबतक जीवित थी। क्योंकि वहां के मछुअे अपने जाल बनाने के लिअे यह महीन सूत ज्यादा पसन्द करते हैं।

संजम्मा अुन बूढी स्त्रियों में से थी जो अिन मछुओं के लिअे काता करती थीं। अिधर कुछ दिनों से अुसने कातना छोड दिया था, क्योंकि अुसे काफी मजदूरी नहीं मिलती थी। हमने अुसको निराश ही पाया। जब हमने अुससे पूछा कि क्या तुम हमारे लिअे कातोगी; तो अुसने जवाब दिया कि अब तो मैं मौत के दरवाजे पर हूं। मुझे कातने से या दूसरे किसी धन्धे से अब कोअी मतलब नहीं। और दरअसल अैसा प्रतीत होता था कि मानो वह सूरज की अुस धूप में बैठी बैठी मृत्यु के दूतों की बाट जोह रही हो।

हमने अुसे अितनी आसानी से नहीं छोडा। यद्यपि हमने अुसका चरखा भी नहीं देखा था तो भी हमने अुसे अेक रुपया बयाने के तौर पर दे दिया और अुससे कहा कि अगर हो सके तो कातने की कोशिश करो। संजम्मा तो अुस रुपये को लौटा ही देती लेकिन अुसके पोते ने वह ले लिया।

कोअी आठ महीने बाद मैं फिर पोदूर गया तो क्या देखा कि संजम्मा अपने पुराने चरखे पर कात रही है। मैं अपने साथ अपना यरवडा चक्र ले गया था। संजम्मा के पुराने चरखे पर कितना सूत कत सकता है और मेरे यरवडा चक्र पर कितना कत सकता है अिसकी मैं तुलना करना चाहता था। जब मैंने संजम्मा से कहा कि तुम कातने में मेरा मुकाबला करोगी; तब तो अुसने मुझे चुनौती ही दे दी।

"तुम्हारा सुडौल, रोगनदार चरखा मेरे चरखे की बराबरी कभी नहीं कर सकता। मेरा चरखा देखने में टूटा-फूटा और पुराना भले ही हो", अिन शब्दों के साथ संजम्मा ने कातना शुरू कर दिया। जब घण्टा खतम हुआ तो मेरा बीस नंबर का ३५० गज सूत निकला और संजम्मा का साठ नम्बर का २०० गज। संजम्मा ने काते हुअे सुन्दर अैंठदार महीन सूत का स्पर्श बडा सुखद मालूम होता था। अपनी हार कबूल करने में मुझे बडा संतोष हुआ और मैंने यह अिच्छा प्रदर्शित की कि संजम्मा शतंजीवी हो।

गदवाल रियासत की कत्तिनों का अुत्साह बढाने के लिअे, और कातने को अधिक समय देने के लिअे अुन्हें अुत्साहित करने की मंशा से, हमने यह अैलान किया कि जो कत्तिन १,८०० गज की अेक अेक लच्छी के हिसाब से साल भर में २०० लच्छियां देगी अुसे कताअी के मौसम के अन्त में अेक साडी

अिनाम दी जायगी। जिन कत्तिनों को अिनाम मिला था अुनमें जब मैंने संजम्मा का नाम देखा तब मेरे ध्यान में आया कि संजम्मा पचासी साल की बूढी होते हुअे भी अभी बराबर तरक्की कर रही है। मैं गदवाल केन्द्र में १९३७ में गया। संजम्मा को अेक फटी-पुरानी साडी पहने हुअे देख कर मैंने अुससे कहा, 'तुम चरखा संघ की दी हुअी साडी क्यों नहीं पहनती'? अुसने शान्ति से अुत्तर दिया, 'अुसे अगले साल के लिअे रख छोडा है'। जो संजम्मा १९३४ में यह सोचती थी कि अुसके लिअे अब मृत्यु का अिन्तजार करने के सिवा और कुछ बाकी नहीं रह गया है वही १९३७ में अपनी साडियों को बचा बचा कर बरतती हुअी पायी गयी।

ये और अिसी तरह के दूसरे दृष्टान्त खादी की आर्थिक कार्यक्षमता में हमारी श्रद्धा प्रति दिन बढाते हैं।

मैं यह भी कह दूं कि अिन चार वर्षों में संजम्मा की औसत वार्षिक खालिस कमाअी पच्चीस रुपया रही है। अिसके अलावा तीन वर्षों से लगातार अुसे अिनाम में साडियां मिलती आयी हैं। १९३८ में अुसकी खालिस कमाअी ३६ रुपया से अधिक है। बुढापे के कारण संजम्मा खडी भी नहीं हो सकती। अिसलिअे या तो वह अपने पुराने चरखे पर कातने का अुद्योग कर सकती है या अपने पोते के बच्चे को सम्हालने का।

संघ वृत्त

संघ की कार्यवाहक समिति की बैठक वर्धा में ता० २५ और २६ अक्तूबर को हुअी थी। पू० बापूजी दोनों दिन उपस्थित थे। युद्ध-परिस्थिति के कारण देश के सामने हिंसा-अहिंसा का जो महान् प्रश्न खड़ा हुआ है अुसीके बारे में अिस बैठक में खास विचार हुआ और नीचे लिखा हुआ प्रस्ताव मंजूर किया गया।

प्रस्ताव—

"युद्ध में संघ जैसी अहिंसा में माननेवाली संस्था का रुख क्या हो सकता है, अिस विषय पर सदस्यों की समझ के लिअे कार्यवाहक समिति यह जाहिर करती है कि अिस संघ के सदस्यों के लिअे पू० गांधीजी की ही सत्य और अहिंसा की दृष्टि मान्य और मंजूर करने योग्य हो सकती है। जिस अहिंसात्मक शक्ति का संगठन और विकास करना वे चाहते हैं वह देश के भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के झगडों को मिटाने और मनुष्य-मनुष्य के बीच मेलजोल कराने में कामयाब होनी चाहिअे, और अुसी ध्येय से सदस्यों का खानगी और जाहिर जीवन बनना चाहिअे। अुसी बल को अपने लिअे संपादन करने और जनता को अुसीकी शिक्षा देने का ध्येय संघ के सदस्यों के सब कार्यक्रमों में व्याप जाना चाहिअे।"

नये सदस्य

संघ में नये सदस्यों को प्रवेश देने के विषय पर भी कार्यवाहक समिति ने विचार किया। समिति की यह राय हुआी कि फिलहाल नये सदस्यों को प्रवेश न दिया जाय। परन्तु रचनात्मक कार्य द्वारा अहिंसा को संगठित करने के संघ अुद्देश्य में जिन्हें विश्वास है और तदनुसार जो कार्य भी कर रहे हैं, या करना चाहते हैं, अैसे कार्यकर्ताओं के संपर्क में आने की संघ की अिच्छा है। अिसलिअे यह विचार किया गया है कि अैसे कार्यकर्ताओ की अलहदा नोंध संघ के कार्यालय में रक्खी जाय और अुनको अवैध प्रकार के सदस्य माना जाय।

समिति की आगामी बैठक

कार्यवाहक समिति की आगामी बैठक नवम्बर मास में कॉंग्रेस वर्किंग कमिटी की बैठक के साथ साथ वर्धा में करने का अिरादा है। सन् १९४० का अनुमानपत्र अिस बैठक में मंजूर किया जायगा।

जिन सदस्यों ने अपने अनुमानपत्रक अब तक नहीं भेजे हैं अुनसे प्रार्थना है कि वे अुन्हें शीघ्र भेज देवें। बैठक ता० २० से २२ नवम्बर के करीब होने का संभव है।

विशेष सूचना—

संघ के सभी सदस्य 'हरिजन', 'हरिजनसेवक', या 'हरिजनबन्धु' नियमितरूप से और ध्यानपूर्वक पढ़ते ही होंगे। आज अनेक महत्त्व के सवाल हमारे सामने पेश हैं और हररोज पेश हो रहे हैं। पू. बापूजी अिन प्रश्नों पर आजकल जो विचार प्रकट कर रहे हैं, संघ के सदस्यों के लिअे वे अेक विशेष प्रकार का महत्त्व रखते हैं। अतः संघ के अध्यक्ष की यह खास सूचना है कि संघ का हरेक सदस्य अिन विचारों को नियमपूर्वक और गौर से पढ़े।

र० श्री० घोत्रे
मंत्री, गांधी सेवा संघ.

वाङ्मय परिचय

भारत की चित्रकला—

(ले० रायकृष्णदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी : पृष्ठ १८०, मूल्य—साधारण संस्करण रु. १, विशेष संस्करण रु. १।,)

हिन्दी के क्षेत्र मे रायकृष्णदासजी चित्रकला के विज्ञ माने जाते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के साथ भारतीय कलाभवन की स्थापना करके अुन्होंने भारतीय संस्कृति की अच्छी सेवा की है। यों तो हमारे देश में अब अनेक अच्छे अच्छे संग्रहालय तैयार हुअे हैं। किन्तु जहां राजाओं के, या प्रान्तीय सरकारों के अुत्साह से संग्रहालय बन जाते हैं वहां कुछ आश्चर्य नहीं होता। लेकिन जब कोअी धनी पुरुष अपने अुत्साह से अच्छा संग्रहालय तैयार करते हैं तब अुनकी संस्कारिता और रसिकता पर अवश्य हमें अभिमान होता है। किन्तु भारत अितिहास संशोधन मंडल, पूना, का संग्रहालय और

भारत कला मंडल, बनारस, का संग्रहालय, देख कर अभिमान के साथ साथ आदर भी होता है। क्यों कि अिनके पीछे कलाभक्ति और संस्कारिता है।

रायकृष्णदासजी ने देव-पुरस्कार ग्रंथावली के लिअे दो सुन्दर ग्रंथ रचे हैं:— "भारत की चित्रकला" और "भारतीय मूर्तिकला"। हमारा खयाल है कि हिन्दी में अिस विषय पर अितनी योग्यता से लिखा हुआ दूसरा ग्रंथ नहीं है। भारत की सब प्रान्तीय भाषाओं में अिस ग्रंथ का तुरन्त अनुवाद होना चाहिअे ताकि अिसे पढ़ कर हर अेक प्रान्त के लोग अपनी अपनी प्रान्तीय कला का अितिहास अिसी तरह लिखने को प्रोत्साहित हो जायें।

पुस्तक के अन्त में पच्चीस के करीब जो चित्रफलक दिये हैं वे सुरुचिपूर्ण हैं और अिनका क्रम भी बडे औचित्य से निश्चित किया गया है। हमें अेक ही बात का खेद है कि ये सब चित्र तीन रंगों में हू-ब-हू मूल चित्रों के समान नहीं दिये गये। अिस जमाने में अैसा करना कुछ कठिन नहीं था। फलक ५ में केवल मातापुत्र का ही चित्र दिया है। अुसीके पडोस में जो विशालकाय आदमकद मूर्ति है अुसके साथ ही अिसे देना चाहिअे था।

अब भी अगर रायकृष्णदासजी भारतीय चित्रकला के अुत्कृष्ट नमूनों की अेक बड़ी 'चित्रमंजूषा' (अल्बम) तैयार करेंगे और अुसके साथ हर अेक चित्र का काल, अुसकी विशेषता, आदि का वर्णन देंगे तथा संस्कृति के साथ कला का विकास किस तरह से और किन कारणों से होता है अिसका विवेचन देंगे तो बड़ा ही अुपकार होगा।

अिस पुस्तक में मुग़लशैली के अन्तिम प्रतिनिधि श्री रामप्रसादजी का अुल्लेख है। रायकृष्णदासजी की कोठी पर रामप्रसादजी के दर्शन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। अिस विषय में भी रायकृष्णदासजी को हमारी सानुरोध सूचना है कि वे रामप्रसादजी की छोटीसी जीवन-रेखा, मुग़ल-शैली के बारे में अुनके मुंह सुने हुअे संस्मरण, अुनकी चित्रकृतियों की खूबियां और रामप्रसादजी के चुने हुअे चित्रों की अेक सुंदर चित्र-मंजूषा भी भारतवर्ष को देने की कृपा करें। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सच ही कहा है कि आदरणीय पुरुषों का श्राद्ध अुनकी मृत्यु के बाद करने की अपेक्षा अुनके जीते-जी अुनका श्राद्ध (कद्र) करना कहीं अच्छा है।

२५ : १० : '३९ का० का०

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(२) वोरा अॅण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।

(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।

(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।

(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू।

(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।

(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअूस, नाणावट, सूरत

Reg. No. N. 741

हृदय की अेकता

यह सब सुन कर आप में से भी कुछ लोग शायद कहेंगे, 'कैसी बेवकूफी की बात करता है'। जो अैसा कहते हैं वे मुसलमानों को विजातीय समझते हैं। मैं तो अुन्हें अपनाना चाहता हूं। यह हमारे दिल की तबदीली का सवाल है। हमारे दिल में जो प्रेम और आदर है, अुसको हम किस तरह से प्रदर्शित करेंगे? मैं मानता हूं कि काफी मुसलमान अैसे भरे हैं, जो हिन्दुओं को काफिर मानते हैं, और अुनसे मेल नहीं चाहते हैं। लेकिन सभी मुसलमानों के दिल में छुरी नहीं है। बहुत से यह भी माननेवाले हैं कि हिन्दू हमारे देशभाअी हैं, और अुनके साथ हिलमिल कर रहने में ही दोनों की भलाअी और तरक्की है। पर हम तो अैसे मुसलमानों से भी न डरें, जिनके हाथों और दिलों में छुरी हो। हम अुनके दिलों को भी जीत लें। उनके लिअे भी हम पर छुरी चलाना अशक्य हो जाना चाहिअे। आखिर क्या हम ही मनुष्य हैं और वे नहीं हैं? वे भी अेक दिन मनुष्यता की कद्र करने ही वाले हैं। हमारा अिलाज अुनकी समझ में किसी न किसी दिन जरूर आवेगा। यह सवाल हृदय की अेकता का है। राज्य-प्रकरण की सौदागिरी में थोड़ी देर के लिअे झगड़े भले ही बंद हो जायँ, लेकिन दिल अेक नहीं होनेवाला है।

गांधी सेवा संघ,
डेलांग सम्मेलन २६ : ३ : ३८

—गांधीजी

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाड़ी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक
काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा
अंक ५ वां

दिसम्बर
१९३९

अेक अंक...	... रु०	०–६–०
वार्षिक ...	... रु०	३–०–०
बर्मा मे ...	... रु०	३–८–०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)		

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राअुण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद ।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता ।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली ।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर ।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअुस, नाणावट, सूरत ।

सर्वोदय

अथ नः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

दिसम्बर, १९३९
वर्धा

ओशावास्योपनिषत्

[*विनोबा*]

मंत्र—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

अर्थ—वह अुग्र तेजस्वी, देह-रहित, और अिसलिअे (व्रणादि) देह-दोषों से तथा (स्नाय्वादि) देह-गुणों से सर्वथा अलिप्त, शुद्ध अेवं पाप-मुक्त आत्मतत्त्व को चारों ओर से घेरे हुअे है। वह ज्ञानी, वशी, व्यापक और स्वतंत्र हो गया। अुसने शाश्वत काल तक टिकने वाले सारे अर्थ सुव्यवस्थित साध लिये।

टिप्पणी—यह वर्णन आत्मा का न समझते हुअे यदि आत्मज्ञ का समझा जावे तो मंत्र का अर्थ सुगम हो जाता है। (सः) कर्ता, (शुक्र) कर्म, (पर्यगात्) क्रिया। अिसके अतिरिक्त, पिछले दो मंत्रों में आत्मज्ञ का ही वर्णन है। अिसलिअे अुन मंत्रों से अिसकी अेकवाक्यता हो सकती है।

मंत्र—अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय अिव ते तमो य अु विद्यायाँ रताः ॥९॥

अर्थ—जो अज्ञान को ही साधन-सर्वस्व मानते हैं वे घने अंधेरे में प्रवेश करते हैं। जो ज्ञान में ही मग्न हैं वे मानो और भी घोरतर अंधेरे में प्रवेश करते हैं।

टिप्पणियां—(१) अविद्या और विद्या—अज्ञान और ज्ञान—ये दोनों अेक ही वस्तु के निवृत्त (निगेटिव) और प्रवृत्त (पॉजिटिव) अंग हैं। तदनुरूप ग्यारहवें मंत्र में अुनके फल भी निवृत्त और प्रवृत्त स्वरूप के बतलाये गये हैं। अविद्या का अर्थ है अनधिकृत अनन्त ज्ञानों का असंग्रह। विद्या का अर्थ है अधिकृत विशिष्ट ज्ञानों का संग्रह। अिस अर्थ में ये शब्द ओशावास्य के पारिभाषिक हैं।

(२) केवल अज्ञान के आश्रय से जड़ता और केवल ज्ञान के आश्रय से अहंता पैदा होती है। यह दोनों तरफ़ के अंधेरे का अेक नमूना बतलाया गया है।

झंडा गीत

[सियारामशरण गुप्त]

अेक हमारा अूंचा झंडा, अेक हमारा देश;
जिस झंडे के नीचे निश्चित अेक अमिट अुद्देश ।
हमारा अेक अमिट अुद्देश ।

देखा, जागृति के प्रभात में अुठकर आँखें खोल—
भीतर-बाहर फैल गया है अेक प्रकाश अमोल ।
प्रेम-भरे भाअी-भाअी का अेक हमारा बोल,—
भय किसका, डर किसका हमको, अेक हमारी तोल ।
सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं वैर-विद्वेष,
अेक हमारा अूंचा झंडा, अेक हमारा देश ।
सुनें सब, अेक हमारा देश ।

कितने वीरों ने कर-कर के प्राणों का बलिदान,
मरते—मरते भी गाया है अिस झंडे का गान ।
लाली अिसे दे गया है वह अुनका सुयश महान,
अिसकी छाया में है निर्भय शान्ति, सुयश, सम्मान ।
अेक हमारी सुख—सुविधा है, अेक हमारा क्लेश;
अेक हमारा अूँचा झंडा, अेक हमारा देश ।
सुनें सब, अेक हमारा देश ।

अपनी प्यारी मातृभूमि के गौरव का आधार,
फहर अुठा यह आसमान में सत्य—अहिंसा—प्यार !
अिसके लिअे जियेंगे हम सब दृढ़ बल—पौरुष धार,
अिसके लिअे मरेंगे हम सब निर्भय प्रेम प्रचार ।
अगनित धाराओं का सङ्गम, मिलन—तीर्थ-सन्देश;
अेक हमारा अूँचा झंडा, अेक हमारा देश ।
सुनें सब, अेक हमारा देश ।

भारत के शस्त्रीकरण का खर्च

[जैरामदास दौलतराम]

कॉंग्रेस की कार्यसमिति में, और अुसके बाहर, अिधर जो चर्चायें हुअीं अुनके कारण अेक नये क्षेत्र में अहिंसा के प्रयोग का प्रश्न सब से महत्त्वपूर्ण हो अुठा है। वह क्षेत्र है विदेशी आक्रमण से भारत की आत्मरक्षा का और आन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों का। अिन नये परिवर्धित क्षेत्रों में अहिंसा के अुपयोग के विषय में हर अेक कॉंग्रेसजन को अपना रुख निश्चित कर लेना चाहिअे। प्रत्यक्ष वस्तुस्थिति देखकर संभवतः हममें से कअी-अेक घबडायेंगे और शायद सही रास्ता न लें। जब कसौटी की घडी आयेगी तब हर अेक क्या करेगा अिसके विषय में आज ही कोअी कुछ नहीं कह सकता।

परंतु अिस प्रश्न से सबंध रखनेवाली कुछ अैसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिनका अहिंसा में हमारी श्रद्धा से कोअी सीधा संबंध नही है; पर फिर भी वे हिंसा के तरीके के विरुद्ध निर्णायक यक्तियों के रूप में हठात् हमारी बुद्धि को प्रभावित करती है। अिन महत्त्वपूर्ण बातों को निगाह में रखते हुअे हर अेक हिंदुस्तानी के लिअे यह निर्णय करना अुपयुक्त होगा कि क्या भारतवर्ष को भी आधुनिक तथा-कथित सभ्य राष्ट्रों की गैल जाना चाहिअे? अुनका रास्ता है हिंसक युद्ध के अत्यन्त परिणामकारक शस्त्रास्त्रों से अपने राष्ट्र को नख-शिखान्त सुसज्जित करने का।

छोटी-छोटी स्थायी सेनाओं के दिन अब बीत गये हैं। पुरातन काल में कुछ थोडेसे हजार सिपाही ही लडते थे और मरते थे। राष्ट्र की कोट्यवधि जनता अपनी साधारण जिन्दगी अमन-चैन से बसर करती थी। आज तो हर अेक प्रौढ को-पुरुष को तो निश्चय ही, और कभी कभी स्त्री को भी—फौजी कवायत और रिसाले की शिक्षा लेकर अेक दक्ष और निपुण फौजी घटक बनाना पडता है।

अिस सबकी बदौलत प्रगतिशील मनुष्योचित सभ्य जीवन का कितना भयंकर विध्वंस होता है अिसका में अिस लेख में अुल्लेख नहीं करना चाहता। यहां में संक्षेप में भारत के शस्त्रीकरण के अेक ही पहलू पर विचार करूंगा। यदि भारत को अेक अैसा प्रभावशाली सैनिक राष्ट्र बनाना है जो किसी भी आधुनिक राष्ट्र के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सके, तो अुसे संहार और आत्मरक्षा के आधुनिकतम अुपकरणों से सुसंपन्न होना चाहिअे। यही नही, अुसे अपनी करोडों की जनता में से अधिकांश को भी शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित करने का प्रबंध करना पडेगा; और शान्ति के समय भी अुन्हें अुचित सैनिक शिक्षा देते रहना होगा। अुसे अपनी सेना, फौजी जहाजों का बेडा, वायुयान, आदि सब सामरिक साधन युद्ध के लिअे निरंतर बिलकुल प्रस्तुत रखने होंगे।

क्या यह सब बिना पैसे के हो सकता है? अैसी सैनिक दक्षता प्राप्त करने के लिअे क्या लोगों को अपने आप पर कर लगा कर राष्ट्र का खजाना भरना नहीं पडेगा? कहा जाता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न घटकों का फी-सिपाही सालाना फौजी खर्च नीचे लिखे अनुसार है:-

ब्रितानिया —रु० १८०/-

ऑस्ट्रेलिया —रु० ३०/-

न्यूझीलैंड —रु० १७/१२/–
कानडा —रु० ८/ ८/–
दक्षिण आफ्रिका रु० ६/–
भारतवर्ष —रु० १/४/–

सैनिक क्षमता के विषय में ब्रिटानिया की संतह पर आने के लिअे हर अेक हिन्दुस्तानी को आज की अपेक्षा १४० गुना अधिक कर सरकार को देना चाहिअे। यदि हम ब्रिटानिया की अेक–दशांश सैनिक क्षमता भी प्राप्त करना चाहें तो भी हमें आज की अपेक्षा कम से कम १४ गुना कर अपने आप पर लाद लेना चाहिअे। क्या हम करों का अितना बोझ सह सकते हैं? क्या हम अपनी राष्ट्रीय शक्ति का अितना घोर अपव्यय कर सकते हैं कि आज की अपेक्षा चौदह गुनी कमाअी केवल अिसलिअे करें कि हर साल हम अुसे सरकार के खजाने में भर दें? और सो भी जब कि अितना करने पर आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र के आक्रमण से अपना बचाव करने का केवल अेक दशांश ही संभव रहे? क्या चीन ने अपनी सैनिक क्षमता बढाने के लिअे हर साल प्राणपन से प्रयास नही किया? और अपने लोगों पर करों का बोझ अधिकाधिक नहीं लादा? लेकिन क्या अितना करने पर भी वह बलवत्तर जापान के चंगुल से अपने आप को बचा सका? प्रत्येक वर्ष ज्यों ज्यों चीन अपनी सैनिक क्षमता बढा कर जापान के निकट पहुंचता है त्यों त्यों वह जापान को संहार और संरक्षण के नये नये आविष्कार कर के आगे कूच करता हुआ पाता है।

शस्त्रीकरण की अिस होड में हिन्दुस्तान कैसे पार पा सकता है? क्या हम अपने भूखोंमरनेवाले करोडों भाअियों को असह्य सैनिक बोझ से कुचल डालें? क्या हम हत्या के आयुधों में अुडा देने के लिअे ही धन पैदा करने को सारे राष्ट्र को फौजी कानून से बाध्य करें? और क्या यह सब करने पर भी हम दूसरे राष्ट्रों की सैनिक क्षमता की नित्य वर्धमान अियत्ता तक पहुंच पायेंगे?

हमारे लिअे यही अेक रास्ता है कि हम दूसरी तरह की शक्ति का विकास करें और दूसरे प्रकार की निपुणता प्राप्त करें जिसके लिअे धन की आवश्यकता न हो और जो मनुष्य को पशु के स्तर तक न गिरावे; अपितु अुसे अूंचा अुठावे। यह शक्ति होगी आत्मबल की; अहिंसा की, नैतिक पुरुषार्थ की। अिस प्रकार का अमोघ अस्त्र गढ़ने और बरतने की होड़ में हिन्दुस्तान की फतह होना बहुत संभवनीय है।

अिस आत्मशक्ति का परिचय देने में भारत बिलकुल ही असफल नहीं रहा, यद्यपि अुसकी शक्ति विशुद्ध नही थी। हम कुछ मात्रा में असफल भले ही रहे हों; तो भी हिन्दुस्तान को जो रास्ता पकड़ना चाहिअे वह हमें स्पष्ट दिखा दिया गया है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, आज अहिंसा में सच्ची श्रद्धा बहुत थोडे लोगों की हो, यदि कल भारत पर आक्रमण हो जाये तो अहिंसा की अुपयोगिता में अैसी सजीव श्रद्धा जो हमारे जीवन में नित्य प्रकट होती हो विरला ही कोअी बता सके। किंतु फिर भी, शस्त्रीकरण से राष्ट्रीय संस्कृति की जो क्षति होगी अुसका विचार थोडी देर के लिअे छोड दिया जावे तो भी, भारत की जनता पर अुसकी बदौलत करों का जो प्राण-घातक बोझ लादा जायेगा, केवल अुसके लिहाज से भी, कभी भारतवासियों का शस्त्रीकरण की योजना का दृढता से विरोध करना युक्तिसंगत होगा।

भद्र अवज्ञा

(दादा धर्माधिकारी)

कभी लोगों के मत से जहाँ प्रतिकार या संघर्ष हो वहाँ भद्रता हो ही नहीं सकती। यदि चापलूसी और ठकुरसुहाती नहीं, तो कम से कम विनय-अनुनय और अनुरोध भद्र आन्दोलन के अविभाज्य अंग माने जाते हैं। जहाँ लडाओी हो वहाँ परस्पर परुषवचन, अुपालम्भ ओर अभद्र शब्दों का प्रयोग अुसका अनिवार्य अंग माना जाता है। भद्रता और संघर्ष या विनय और प्रतिकार में सामंजस्य सिद्ध करने के प्रयत्न में से जिस प्रतिकार-नीति का आविष्कार हुआ है वह भद्र अवज्ञा के नाम से प्रसिद्ध है।

जो लोग विधानवादी आन्दोलन निकम्मा मानते हैं और धारासभा की आन्दोलन-प्रणाली अपर्याप्त समझते हैं वे लोग किसी न किसी प्रकार के प्रत्यक्ष प्रतिकार के लिअे अधीर हो अुठे हैं। भारत की वर्तमान परिस्थिति में अुन्हें केवल नि:शस्त्र प्रतिकार ही शक्य प्रतीत होता है। नि:शस्त्र प्रतिकार में कानून-भंग का महत्वपूर्ण स्थान है। अिसलिअे देश के कतिपय अुग्र मतवादी अिधर कुछ दिनों से कानूनभंग की चर्चा कर रहे हैं।

जब कि देश के कुछ नवयुवक और अुग्रप्रकृति नेता कानूनभंग का आन्दोलन जारी करने के पक्ष में हैं अैसे समय हमें गांधीजी की युद्धनीति में कानूनभंग का जो विशिष्ट स्थान है अुसका विचार करना चाहिअे।

गांधीजी कभी मरतबा कह चुके हैं कि नि:शस्त्र प्रतिकार और सत्याग्रह में अुतना ही अंतर है जितना कि अुत्तर और दक्षिण ध्रुवों में। जिस प्रकार केवल नि:शस्त्र प्रतिकार सत्याग्रह नहीं है अुसी तरह केवल कानून-भंग भी सविनय अवज्ञा या भद्र अवज्ञा नहीं है। बल्कि ये दोनों अत्यंत भिन्न हैं। 'भद्र अवज्ञा' (सिव्हिल डिस्ओबिडियन्स) शब्द अब काफी परिचित और प्रचलित हो गया है। लेकिन अुसकी जड में जो सिद्धान्त हैं, वे कुछ बुद्धिमान लोगों की भी समझ में अभी तक भली भाँति आये नहीं दीखते। अिसलिअे अुनका कुछ विवेचन यहाँ करने का प्रयत्न किया जाता है।

पुराने विचार के लोगों का यह खयाल है कि कानून तोडना गुनाह है और नीच लोग ही वह करते हैं। अेक दृष्टि से यह धारणा समाज की सुस्थिति के लिअे आवश्यक है; क्यों कि वह शान्तता की पोषक है। लेकिन 'भद्र अवज्ञा' या 'सविनय अवज्ञा' ये शब्द सुनते ही सवाल होता है कि कानून तोडना भी कहीं भद्र हो सकता है?—सविनय हो सकता है? आपाततः यह वदतोव्याघात् प्रतीत होता है; और यह आशंका होती है कि अिस सिद्धान्त के प्रचार से समाज में कहीं अराजकता न फैल जाय। समाज में शान्ति और सुस्थिति की रक्षा के लिअे राज्यसंस्था जो नियम बनाती है अुनका अुल्लंघन करने की वृत्ति यदि जनता में फैल जावे तो समाज की मूल-भित्ति ही गिर जायेगी। यदि शासन करने-वाली सत्ता और शासन माननेवाली जनता न हो तो आज कोओी भी राष्ट्रसंस्था टिक ही नहीं सकती। कोओी भी संस्था तभी तक टिकती है जब तक कि अुसके घटकों में संस्था के नियमों का पालन करने की वृत्ति हो।

अिसलिअे अिस वृत्ति की बडे जतन से हिफाजत करना समाज के शिष्ट जनों का का कर्तव्य है। परंतु तो भी समाज के अत्यन्त गण्य-मान्य व्यक्ति भी कभी कभी राज्यसंस्था की आज्ञाओं का अुल्लंघन करते पाये जाते हैं, अिसका रहस्य क्या है?—यही समझने की बात है।

"मनुष्य सामाजिक जीवधारी है"—अेक यूनानी तत्त्ववेत्ता का यह कथन यथार्थ है। परंतु यह मनुष्य की संपूर्ण व्याख्या नहीं है। अतः दूसरे अेक लेखक ने अुसमें संशोधन किया है। 'धर्म की बाल्यावस्था' नामक अेक छोटीसी, पर सुन्दर, अंग्रेजी पुस्तक है। अुसके लेखक ने अॅरिस्टॉटल की अुक्त परिभाषा में संशोधन किया है। वह कहता है, "मनुष्य धार्मिक जीव है।" मनुष्य का यह संपूर्ण लक्षण है। लक्षण माने असाधारण धर्म। याने, अैसा गुण जो दूसरी जगह नहीं पाया जाता। "दूसरे जानवरों में और मनुष्य में क्या भेद है"?–अिस प्रश्न का अर्थ यह है कि "मनुष्य में अैसी कौनसी विशेषता है जो दूसरे जानवरों में नहीं पायी जाती"? प्राचीन समाजशास्त्रियों का कथन है, 'धर्मो हि तेषामधिको विशेषो'। और वही सत्य है। यहां 'धर्म' शब्द से व्यापक नीतिधर्म अथवा मानवधर्म अभिप्रेत है। यही मनुष्य की मनुष्यता है। अिस मनुष्यता के विकास की पोषक परिस्थिति निर्माण करने के लिअे आवश्यक नियम बनाना समाज की नियामक संस्था का, अर्थात् राज्यसंस्था का, कर्तव्य है। मानव्य के विकास की अुपकारक समाज--रचना जहां विद्यमान हो वह सुनियंत्रित या सुव्यवस्थित समाज है और अुस समाज की नियामक संस्था भी लोकोपकारक है।

अिसका अर्थ यह है कि सामाजिक बंधन व्यक्ति की आत्मोन्नति के साधक होने चाहिअें; कम से कम बाधक तो कतअी नहीं होने चाहिअें। दूसरे की आत्मोन्नति के प्रयत्न में बाधा न डालते हुअे हर व्यक्ति को अपनी आत्मोन्नति का अनिरुद्ध प्रयत्न करने की छूट होनी चाहिअे। राज्यसंस्था के नियम मनुष्य की मनुष्यता के विकास में रुकावट डालनेवाले न हों। दूसरे शब्दों में, राज्यसंस्था के नियम नीति-विरुद्ध नहीं होने चाहिअें।

परंतु मनुष्य अपूर्ण है। अुसकी अपूर्णता अुसकी कृति में भी प्रविष्ट होती है। राज्य-संस्था पर भी यह नियम लागू है। अिस-लिअे राज्य संस्था के भी कुछ नियम कभी कभी नीति के खिलाफ होते हैं। यह स्पष्ट है कि अैसे नियमों के आधार से मनुष्य की मनुष्यता घटेगी। अुसका अधःपतन होगा।

अैसे अवसर पर शिष्ट व्यक्ति के सामने बडी विकट समस्या अुपस्थित होती है। यदि वह राज्यसंस्था के नियम का पालन करे तो अुसमें नैतिक अपराध होता है। यदि समाज के नियम का भंग करे तो नागरिकत्व के कर्तव्य में बाधा आती है और अुद्दंडता का दोषभाजन होना पडता है। अैसी स्थिति में क्या किया जावे? "राज्यसंस्था का नियम तोड कर भी समाजसंस्था को कम से कम धक्का किस युक्ति से पहुंचाया जा सकता है"?– यह प्रश्न हर अेक शिष्ट नागरिक के सम्मुख प्रस्तुत होता है।

जिस समय राज्य और अीश्वर के कानूनों में विरोध अुत्पन्न होता है अुस समय समाज-संस्था का न्यूनतम विरोध करते हुअे नीति की रक्षा करने की जो युक्ति, सिफत या कला है, अुसीका नाम भद्रअवज्ञा या सविनय-भंग है। अवज्ञा के बिना तो चारा ही नहीं

है। लेकिन अवज्ञा में अविनय नहीं होना चाहिये। 'सभ्यता' अर्थात् सभा या समाज के अुपयुक्त वृत्ति (सिव्हिलटी) को क्षति नहीं पहुँचनी चाहिये। अिसलिअे जो कानून मनुष्यद्रोही और अतअेव देवद्रोही या धर्मविरोधी लगता हो अुसका नम्रतापूर्वक और विनयपूर्वक अुल्लंघन करना तथा कानून के अनादर के लिअे जो दंड हो अुसे सानन्द झेलना --यही सविनय अवज्ञा की नीति है।

अब प्रश्न यह होता है कि "अगर सविनय या भद्र अवज्ञा में केवल अनीतिमूलक और अन्याय्य कानूनों का ही अनादर करना है तो वह तो गुनाह नहीं हो सकता; तब फिर अुस अनादर या अवज्ञा के लिअे जो शासन हो अुसे प्रसन्नतापूर्वक सह लेना कहाँ तक न्यायोचित होगा?"--अिस प्रश्न का विचार करना जरूरी है।

भद्र अवज्ञा करनेवाले के लिअे गांधीजी ने अेक बहुत सुंदर और अर्थपूर्ण शब्द प्रचलित किया है। वह शब्द है 'सत्याग्रही'। साधारणतः लोग 'सत्याग्रह' शब्द से 'सविनयभंग' का ही अर्थ लते हैं। अिसलिअे यहां भी अित अुत्तर अुसी शब्द का प्रयोग हम करेंगे। सत्याग्रही जब कानूनभंग करता है तो लाचार हो कर और अेक अपरिहार्य कर्तव्य पूरा करने के अुद्देश्य से करता है। समाज की बहुसंख्यक जनता में स्वैराचार की वृत्ति प्रबल हो कर सारी समाजसंस्था ही तबाह न हो जावे अिसकी वह सावधानी रखता है; और जहां तक हो सके अैसे दुष्परिणाम को अीमानदारी से टालने की चेष्टा करता है। अिसलिअे वह कम से कम और जितना आवश्यक हो अुतना ही, कानूनभंग करता है। "सामाजिक नियमभंग के लिअे शासन होना चाहिअे"--यह नियम समाज की धारणा के लिअे आवश्यक है। अिसलिअे सत्याग्रही अन्यायी कानून तोडता है। लेकिन 'कानून तोडनेवाले को सजा होनी चाहिअे', --अिस आवश्यक नियम का खुशी से पालन करता है। परिस्थिति-प्राप्त धर्म के तकाजे के कारण अवज्ञा करता है; लेकिन भद्रता या विनय का त्याग नहीं करता। व्यक्ति की नैतिक अुन्नति तथा समाजसंस्था की सुरक्षितता का अधिक से अधिक समन्वय व्यक्ति के आचरण में करने के प्रयास में से भद्रअवज्ञा अुपजी है। प्रल्हाद, भीष्म, मीराबाअी और सुकरात के चरित्र का यही रहस्य है। अुन्होंने अन्याय्य राजाज्ञा का अनादर किया। लेकिन अुसके लिअे दिया जानेवाला देहदण्ड और प्राणदण्ड भी आनन्द के साथ सहन किया। सुकरात और क्रीटो का हृदयस्पर्शी संवाद अिस संबंध में बहुत ही अुद्बोधक होगा। स्थल-संकोच के कारण यहाँ केवल अुसका नामनिर्देश ही किया है। सत्याग्रही और स्वैराचारी (आअुट लॉ) में निम्न खास खास भेद हैं:--

(१) सत्याग्रही नीति और मनुष्यता की रक्षा के लिअे अनैतिक और अन्यायी कानून लाचार हो कर तोडता है।

(२) कानून तोडने से पहले वह संबंधित राज्यसंस्था को अपने अिरादे की पूर्वसूचना दे कर अुसे सावधान कर देता है।

(३) कानून तोडने के लिअे होनेवाली सजा समाजहित के ख्याल से खुशी से सह लेता है। प्रतिहिंसा नहीं करना चाहता।

(४) कानून मानना तथा नागरिकता की जिम्मेवारी सम्हालना सत्याग्रही का स्वभाव ही है। अतः वह दूसरे सारे कानूनों का सचाअी के साथ बडी सावधानी से पालन करता है।

अिसके विपरीत स्वैराचारी मनुष्य या समाजबाह्य (आअुट लॉ) :-

(१) अपने व्यक्ति गत फायदे के लिअे स्वार्थबुद्धि से अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में बाधक होनेवाले चाहे जिन कानूनों को तोडता है।

(२) कानून तोडने से पहले वह राज्य-संस्था को सचेत नहीं करता और अुसे अुस कानून को बदलने या रद्द करने का अवसर नहीं देता। चुपचाप या अकस्मात् कानूनभंग करना वह अनुचित नहीं समझता। प्रत्युत अैसा करना अुसकी नीति का मूलभूत सिद्धान्त है।

(३) कानूनभंग के लिअे होने वाला शासन वह फरारी हो कर छुप कर या प्रतिहिंसा करके टालने की भरसक कोशिश करता है।

(४) समाजहित तथा नागरिकत्व के दायित्व का तिरस्कार कर मनमाने कानून तोडना अुसका स्वभाव है। अिसलिअे वह दूसरे सारे कानूनों का केवल अिसलिअे पालन करता है कि अुन्हें तोडना अुसे अपने स्वार्थ के लिअे जरूरी नहीं जान पडता। यह 'अविनय, असभ्य, या अभद्र' अवज्ञा है।

सत्याग्रही और अराजक (अनार्किस्ट) में यह महत्त्वपूर्ण भेद है। यहाँ 'अराजक' शब्द से वे तात्त्विक अराजकवादी विवक्षित नहीं है जो राज्यसंस्था या शासनसंस्था की पूर्ण अनावश्यकता में ही अुसकी परिणति मानते है। वे तो अुदात्त अराजक हैं। यहाँ अुस अधम अराजक व्यक्ति से मतलब है जो समाजद्रोही होता है। सत्याग्रही को कानून तोडने का शौक नहीं होता। अपनी आत्ममर्यादा और नीति सम्हालकर वह यथा-संभव कानून तोडने का मौका टालता रहता है। वह शान्तिपरायण नागरिक होता है। जब सत्यनिष्ठा तथा समाजनिष्ठा और राज-निष्ठा में विरोध अुपस्थित होता है तो वह सत्यनिष्ठा की रक्षा के लिअे राज्य की, और आवश्यक हो तो समाज की भी, अवज्ञा करता है। अर्थात् सत्याग्रही को स्वधर्म की रक्षा के लिअे प्रसंगवश बरबस कानून तोडना पडता है। परंतु स्वैराचारी या अराजक व्यक्ति खुदगर्जी से अपने निजी फायदे के लिअे समाज को चोट पहुंचाने में जरा भी नहीं हिचकता। अुसमें 'नागरिकवृत्ति' (सिव्हिक सेन्स) होती ही नहीं।

जब राष्ट्र पराधीन होता है तो सत्याग्रही का पक्ष और भी प्रबल हो अुठता है। प्रजा की अनुमति के बिना और अुसके हित का ध्यान न रख कर जो कानून और कर अुसपर जबरदस्ती लादे जाते हैं वे अन्याय-मूलक और अनीतिमय होते है। यह राजनीति शास्त्र का अबाधित सिद्धान्त है। अिसलिअे विदेशी राज्य के बनाये हुअे सभी कानून और लगाये हुअे सभी कर अन्याय्य साबित होते है। बल्कि वह राज्य ही स्वयम् अेक अनैतिक और अीश्वर-विरोधी संस्था है। अिस दृष्टि से अुसके सभी कानूनों को तोडने का और अुसके कर अदा करने से अिनकार करने का अधिकार प्रत्येक परतंत्र प्रजा को है। परंतु यह असहयोग का अंग है। यह सविनयभंग का अगला कदम है। विदेशी शासन की जडें अुखाड देने के लिअे अुसका विधान और अुस विधान के अनुसार बने हुअे सभी कानून अमान्य करना तथा अुसे राज चलाने के लिअे पैसा देने से अिनकार करना सत्या-ग्रह की अन्तिम सीढी है। परतंत्र राष्ट्र के लिअे स्वातंत्र्यप्राप्ति की यही सर्वश्रेठ और सबसे अधिक कार्यक्षम प्रतिकार-विधि है।

और जहाँ राष्ट्र की अधिकांश प्रजा किसी स्वदेशी शासन से असंतुष्ट हो वहाँ प्रजाकीय क्रान्ति की भी यही श्रेष्ठतम प्रणाली और प्रक्रिया है। किसी भी स्वदेशी या विदेशी अनियंत्रित, अनुत्तरदायी और अतअेव अनैतिक शासन का अन्त कर देना मनुष्यता की रक्षा के लिअे नितान्त आवश्यक है। अिसलिअे अैसे शासन का प्रतिकार करने में सत्याग्रही अुन सब कानूनों का सविनयभंग करना अपना कर्तव्य समझता है, जिनके अुल्लंघन में कोअी नैतिक अपराध न होता हो। अिस प्रकार जब अधिकांश प्रजा विनयपूर्वक और भद्रता से सविनयभंग के लिअे तय्यार हो जाती है तो शान्तिमय क्रान्ति सफल हो जाती है और समाज में अन्धाधुन्दी भी नहीं हो पाती।

भद्र अवज्ञा की अिस अन्तिम सीढ़ी तक जाने में कुछ अवकाश, और अवकाश से भी अधिक पूर्वतैयारी की आवश्यकता होती है। अगर जनता में अनुशासन और पारस्परिक सहयोग न हो तो अिस अन्तिम अवस्था में अेक खतरा है। वह यह कि शायद जनता कानून का बन्धन बिलकुल ही तोड़ दे और कर देने की जिम्मेवारी का भी सर्वथा परित्याग कर दे। अगर अिस वृत्ति ने जोर पकड़ा तो जनता स्वयं अपने बनाये हुअे कानूनों का भी पालन नहीं करेगी और अपनी स्वयंनिर्मित शासनसंस्था को भी, मजबूर की जाने पर ही, टैक्स देगी। अिसलिअे यह अन्तिम कदम बढ़ाने में सत्याग्रही बड़ी सावधानी से काम लेता है। प्रजा के स्वत्वों की रक्षा करते हुअे अगर वह अुसे टाल सके तो टालने की कोशिश भी करता है। लेकिन वह केवल व्यवस्था और केवल विधान का कायल तो नहीं है। वह तो विधान और सुव्यवस्था मनुष्य के अुत्कर्ष के लिअे अुपादेय मानता है। अिसलिअे विवश हो जाने पर वह गुलामी की अपेक्षा अराजकता की जोखिम भी झेल लेता है। परंतु जहाँ तक हो सके अुस अवस्था को टालने में यत्नशील रहता है।

अिसीलिअे आज की भारत की शासनपद्धति बिलकुल अनियंत्रित, अनुत्तरदायी और अवाञ्छनीय होते हुअे भी, और अुसका शीघ्रातिशीघ्र अन्त कर देना प्रत्येक भद्र नागरिक का परम पवित्र कर्तव्य होते हुअे भी, हमें सविनय अवज्ञा में निम्न मर्यादाओं का पालन विशेष सावधानी से करना पड़ता है :—

(१) जो कानून नीति के अविरुद्ध और समाजहित के लिअे आवश्यक हैं अुनका आवश्यक पालन। अुदाहरण के लिअे—चोरी के विषय का कानून, अश्लील और अशिष्ट साहित्य संबंधी कानून, आदि।

(२) समाज की सुस्थिति के लिअे स्वराज्य में भी हमें जिन कानूनों की आवश्यकता रहेगी अैसे कानूनों का पालन। यथा—रात के समय सवारी और वाहनों में बत्ती लगाने का नियम। रास्ते में और सवारियों में बेजा भीड़ आदि संबंधी नियम।

अिन मर्यादाओं का पालन करने में अवज्ञा भी भद्र और सविनय हो सकती है। सत्याग्रही का अुद्देश्य अवज्ञा करना नहीं है। वह तो सत्य की अुपासना और आचरण करना चाहता है। अगर अुसमें अवज्ञा न करनी पड़े तो अुसे अिष्ट ही है। लेकिन यदि अवज्ञा करनी पड़े तो वह अुस कर्तव्य से डिगता नहीं और अपने मार्ग में आनेवाली मुसीबतें धैर्य से और आनन्द से झेलता है। अिसी लिअे अुसे

'सविनय अवज्ञा' (सिव्हिल डिस्ओबिडिअन्स) कहने की अपेक्षा 'सविनय, भद्र या सभ्य प्रतिकार', कहना अधिक अन्वर्थक होगा। कारण कि सत्याग्रही का अुद्देश्य अवज्ञा करना नहीं है प्रत्युत अन्याय का प्रतिकार है।

भद्र या सविनय प्रतिकार की जिस नीति का थोरो ने विवेचन किया और गांधीजी ने जिसका संस्करण, संशोधन तथा आचरण और परीक्षण किया वह व्यक्ति की आत्मोन्नति की पोषक होते हुअे भी समाज-नियंत्रण में बाधक नहीं है। अिसी लिअे सविनयता की वृत्ति का विकास नितान्त आवश्यक है। वह बिना अभ्यास और अनुशासन के नहीं हो सकता। अिसीलिअे गांधीजी बार बार आग्रहपूर्वक कहते हैं कि जब तक भद्रता या शान्ति की वृत्ति सारे देश में व्याप्त नहीं होगी तब तक 'सभ्य प्रतिकार' या 'भद्र प्रतिकार' के लिअे अनुकूल वातावरण अुत्पन्न नहीं होगा। अेक-दूसरे का दोषाविष्करण और परस्परदोषारोपण करने के बदले हमें यह पूर्वतैयारी करने में लगन के साथ जुट जाना चाहिअे, क्योंकि वही अेकमात्र रास्ता है।

महावीर का जीवन-संदेश

[काका कालेलकर]

(ता. १४:९:३९ को बंबअी ब्लावाट्स्की लॉज में दिया हुआ भाषण)

आज दुनिया की विचित्र स्थिति है। हिंसा से अगर कोअी अधिक से अधिक डरता है तो आज के यूरोपियन लोग। पच्चीस वर्ष पूर्व के युद्ध में जो नाश हुआ अुसे वे अबतक भूले नहीं हैं। "यदि पुनः युद्ध सुलगेगा तो सारी शान-शौकत, सारा मजा-मौज, सारा भोग-विलास और अैश्वर्य काफूर हो जायगा। जहाँ आज संस्कृति के नाम पर वैभव सिखाया जाता है वहां सब वीरान हो जायगा"—अिस विचार से यूरोप का मनुष्य कांपने लगता है। युद्ध टालने के लिअे वे जो चाहे सो करने को तैयार हैं। वे अपने वचन तोड़ेंगे, अपने अिकरार भूल जायँगे, मानहानि निगल जायँगे, साथियों को धोखा देंगे, चाहे जैसे अप्रिय लोगों से दोस्ती करेंगे, जीवन-सिद्धान्तों को भूसे की तरह हवा में अुड़ा देंगे— लेकिन युद्ध टालेंगे। परन्तु फिर भी वे युद्ध टाल नहीं सकते। अिन्द्रिय-परायण जीवन, भोग, वासना, लोभ, भय, महत्त्वाकांक्षा और परस्पर अविश्वास अुन्हें चैन नहीं लेने देंगे। वे स्वयं हिंसा से डरते हैं और सारी दुनिया को हिंसा की दीक्षा देते जा रहे हैं; तथा जीवन की सारी शक्ति हनन की कला के विकास में बरबाद कर रहे हैं। आज जिस वस्तु को वे टालना चाहते हैं अुसीको बलात् खींचकर ला रहे हैं।

अैसी विचित्र स्थिति में हम फिर अेक बार भगवान् महावीर का सन्देश अुजालना चाहते हैं।

अिस धार्मिक सन्देश का स्वागत करने के लिअे आज की दुनिया तैयार नहीं है। शान्ति

का सच्चा मार्ग यही क्यों न हो, लेकिन अभी तक तो अुस रास्ते जाने में मनुष्य को मजा नहीं आता। वह दूसरे सारे अुपाय आजमायेगा और सब तरह से हारने के बाद ही सही रास्ते पर आयेगा।

जिनमें कोअी सार नहीं अैसी चीजों में विश्वास कर अुन अुपायों को आजमाना मनुष्य का स्वभाव है। यूरोप में आज जो अनेक मार्ग सुझाये जाते हैं अुन्हें देख आश्चर्य होता है। हमारे यहाँ जब कभी पुराने आदमी तर्क और न्याय, दर्शन और मीमांसा ले कर बैठ जाते हैं और घटत्व और पटत्व की तथा अवच्छेदकावच्छिन्न की बहस करने लगते हैं तो हम अुनपर हँसते हैं। "जीवन के साथ जिसका संबंध नहीं, तत्व से जो बिलकुल असंबद्ध है, अैसे भूसे को कूटने में अिन्हें क्यों मजा आता है? अिसमें तो जीवन-स्पर्शी कुछ भी नहीं है"; —अैसा हम कहते हैं। यूरोप में भी जब लोग व्यक्तिवाद और समष्टिवाद, समाजवाद और साम्यवाद की चर्चा करते हैं, तब भी मुझे लगता है कि क्या अिन अनेक 'वादों' से हमारी विपदा निपटने वाली है? जब तक मनुष्य अपने स्वभाव और जीवन में परिवर्तन नहीं करेगा तब तक चाहे जो "अिज़म" या "वाद" चलाअिये, हम जहाँ थे वहीं लौट कर आ पहुँचने वाले हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि दुनिया का दुःख गठिया-वात जैसा है। बाहर से लेप करने से वह थोड़े ही मिटने-वाला है? अुसे आप माथे में से निकाल बाहर कीजिये तो वह पैरों का आश्रय लेगा। वहां से अुसे खदेड़िये तो वह कंधों पर आ कर सवार हो जायगा। वह स्थानान्तर करेगा परन्तु शरीर से टलेगा नहीं। आप व्यक्तिवाद चलायेंगे तो दुनिया को अेक तरह का दुःख सहना पड़ेगा। व्यक्तिवाद को छोड़ कर समष्टिवाद स्वीकारेंगे तो पुराने दुःख दूर हो कर अुनकी जगह नये दुःख पैदा हो जायेंगे। चुंगी टालने के लिअे सारी रात जंगल में भटकने और मारे मारे फिरने के बाद सबेरे जहाँ गाड़ी रास्ते पर आयी तो ठीक चुंगीघर की सीध में, नाके के बिलकुल सामने! अब पैसे तो देने ही पड़ेंगे और अूपर से रात भर जंगल में व्यर्थ मारे मारे फिरे सो सब व्याज में गया! यही हाल आज की दुनिया का है। आचार्य अेल. पी. जेक्स ने ठीक ही कहा है कि आज की दुनिया सम्पत्ति को सामाजिक बनाना चाहती है, लेकिन मनुष्य और अुसके स्वभाव को सामाजिक बनाने की बात अुसे सूझती ही नहीं। जब तक यह नहीं होगा तब तक कोअी भी 'अिज़म' या 'वाद' स्थापित नहीं हो सकता; और यदि मनुष्य का चारित्र्य सुधर जाय तो चाहे जिस 'अिज़म' या 'वाद' से निभ जायगी।

अिसका अेक भव्य दृष्टान्त देता हूँ। शराब की बुराअियों से सारी दुनियां अकुला रही है। अमेरिका ने अेक कानून बना कर अुन बुराअियों को मिटाने का प्रयत्न किया। कानून बनाने को वहाँ के लोगों ने अपनी अनुमति दे दी। लेकिन खुद अुन्हींको शराबबन्दी की परवा न थी। समाज में लब्धप्रतिष्ठ कअी स्त्री-पुरुष भी, हमने सरे-आम कानून किस तरह तोड़ा, अिसकी अेक-दूसरे के सामने शेखी बघारते थे। अुसी शराबबन्दी का हमारे यहाँ का अितिहास बिलकुल भिन्न है। हमारे यहाँ बसनेवाली सभी जातियों के लोगों की हड्डियों में ही शराब के प्रति घृणा भरी हुअी है। सरे-बाज़ार, बाकायदा

शराब पीनेवाले भी यह कबूल करते हैं कि शराब बुरी चीज़ है। अुसे छोड़ने की शक्ति अुनमें भले ही न हो, मगर फिर भी, शराब छोड़ने में कोअी अुनकी सहायता करे तो वह अुन्हें अिष्ट ही है। अिस प्रकार राष्ट्र का चारित्र्य ही शराब-बन्दी के पक्ष में होने के कारण हमारे यहाँ शराबबन्दी का कानून बनाना आसान हुआ। कुछ आधुनिक विकृत वृत्ति के लोग शराब के पक्ष में दलीलें देते हैं। परन्तु ये अिनेगिने ही हैं। और अिनमें से कुछ-अेक तो यह भी स्वीकार करते हैं कि हम अपने पक्ष की नीति के तौर पर ही ये दलीलें देते हैं। अिनकी बात छोड़ दीजिये। मैं कहना यह चाहता था कि यदि राष्ट्र के चारित्र्य का विकास हो सके तो चाहे जैसी समाज-रचना में हम मनुष्य को सुखी कर सकेंगे।

महावीर जैसे सत्पुरुषों ने दुनिया को यह रास्ता बतलाया कि— "चारित्र्य का विकास करो, संयम सिद्ध करो, वासनाओं को जीतो, असामाजिक वृत्तियों का नाश करो, राग-द्वेष की हेयता जान कर अुन्हें हृदय में से बाहर निकालो, तो हिंसा का रास्ता अपने आप बन्द हो जायगा! अगर हिंसा टालना है, अहिंसा स्थापित करना है, तो केवल राज्यतंत्र बदलने से समस्या हल नहीं होगी, मनुष्य के स्वभाव में सुधार करो, संयम-रूपी तप करो। यही सच्ची साधना है। यह काम पामर मनुष्य का नहीं है। बाहरी शत्रु से लड़ना आसान है, परन्तु भीतरी विकारों को मारने का काम कठिन है। अुसके लिअे वीरत्व चाहिअे। जिसने अिस शक्ति का विकास किया और अुसे दुनिया पर प्रकट किया वही महावीर है।"

महावीर स्वभाव से ही प्रयोगवीर थे। अुन्होंने जो अनेक प्रयोग किये अुन्हें हम तप कहते हैं। अिस तप का मार्ग हर अेक के लिअे अेकसा नहीं होगा। हर अेक अपना अपना प्रयोग करे और अपना रास्ता खोज ले। जिसमें प्रयोगवीरता नहीं है वह यदि केवल आखें मूंद कर महावीर के वचनों के अनुसार बाह्यतः जीने का प्रयत्न करेगा तो अुसे महावीर की सिद्धि नहीं मिलेगी। किन्तु जो कोअी महावीर से प्रेरणा ले कर, अुनके प्रयोगों का रहस्य समझ कर अुनके मुख्य मुख्य जीवन-सिद्धान्तों के अनुसार अपना जीवन मोड़ने का स्वतंत्र प्रयत्न करेगा वही महावीर की परंपरा का गिना जायगा; महावीर अुसे अपना आत्मीयजन मानेंगे।

आज, जब कि संसार अनेक प्रकार से अकुलाया हुआ है, व्यापक जीवन की यह मुख्य पहेली बूझना आवश्यक है। अिसके लिअे महावीरों की ज़रूरत है, प्रयोगवीरों की ज़रूरत है। वे अपनी श्रद्धा की दृढ़ता के लिअे महावीर का जीवन समझ लेंगे और अपनेतईं अूंचा अुठने का यत्न करेंगे। हम भी अैसी ही प्रेरणा महावीर के स्मरण-चिंतन से प्राप्त करें और अपने जीवन का अुद्धार करें।

(ताः ३१:१०:'३९ के गुजराती 'प्रबुद्ध जैन' पाक्षिक से अनुवादित)

"क्या खादी किफायती है"?

[श्री मनु सुबेदार]

—१—

यह सवाल अगर कोअी कपडे का ग्राहक पूछे—जिसके खीसे मे पैसा है, जो अुस पैसे से कपड़ा खरीदना चाहता है, और जो सिवा कपडे की कीमत के दूसरी किसी बात की ओर ध्यान ही नहीं देना चाहता—तब तो यह स्पष्ट ही है कि मिल के या विदेश से आये हुअे कपडे की अपेक्षा अुसके लिअे खादी महँगी होगी।

मामूली व्यवहार की भाषा में वह कह सकता है कि अुसके लिअे खादी किफायती नहीं है। अिसी तरह, जो लोग सारे देश का अेक अिकाअी के नाते विचार करते हैं, परंतु जिनका देशप्रेम संकीर्ण है, याने, अुसमें मानववाद के लिअे गुंजाअिश नहीं है, और जो केवल रुपये-आने-पाअी का ही हिसाब करना जानते हैं, वे कह सकते है कि देश को जितने कपडे की जरूरत है अुतना कपड़ा—रुपये-आने-पाअी में अगर अुसका मूल्य कूता जाय—तो मिलो में यंत्रों द्वारा अधिक सस्ते में बन सकता है। अिस संप्रदाय के अुद्योगवादी और अुनके आश्रित—जैसे कि दलाल, साहूकार, बीमा-कंपनियाँ आदि—यह भी दावा करेंगे कि खादी नाकिफायती है।

परन्तु अेक दूसरा और अधिक अुपयुक्त दृष्टिकोण भी है। वह यह कि हम अपनी दृष्टि के सामने अुस विशाल जनसमूह को रक्खें जो देहातों में रहता है और जिसका कुछ हिस्सा शहर की घनी बस्तियों मे भी पाया जाता है। अुनके पास खाली वक्त अितना है कि वे नहीं जानते कि अुसका क्या करे? परंतु अुनके पास न तो काम करने के साधन हैं और न सामग्री। वे बेकार हैं। अर्थात् जिनका पूँजी और सामग्री पर काबू है, वे न तो अुनकी मिहनत चाहते हैं और न अुन्हें कोअी काम ही देते हैं। अिन करोड़ों लोगों की श्रम-शक्ति सदा के लिअे नष्ट होती है। न तो अुससे अुनका अपना कोअी अुपकार होता है और न देश का ही।

अगर अिन करोड़ों लोगों मे से अेक करोड भी अेक आने की रोजी पर लगा लिअे जायँ, तो मोटे हिसाब से, अुन्हें फी-आदमी बीस रुपया सालाना, याने, कुल बीस करोड रुपये, मिलेंगे। जिस साधन-सामग्री का वे अुपयोग करते है अुसमे बीस करोड रुपये का मूल्य और जमा हो जायेगा। मतलब यह कि आज जो लोग काम करने के लिअे तैयार हैं अुनके केवल अेक हिस्से को, याने, करीब अेक करोड को, ही हम काम दे दें तो रुपये-आने-पाअी मे अिस देश की संपत्ति प्राय: चालीस करोड से बढ़ेगी। अिन लोगों को और अिनके बहुत छोटे या बहुत बूढे आश्रितों को मानवीय सुख के रूप में जो लाभ होगा वह तो अपरिमेय होगा।

जिन लोगों के दिमाग पाश्चात्य जगत के संपर्क से सख्त हो गये हैं, और जो लोग केवल रुपये-पैसों का ही विचार कर सकते हैं, वे कहते हैं कि यह पद्धति खर्चीली होगी। लेकिन अुनके विचार में तर्क-दोष है। यदि

अुन्हींकी भाषा में कहा जाये तो अुनकी समझ में यह बात आसानी से आ जायेगी। मान लीजिअे कि कोअी कम्पनी या कारखाना बन्द होने वाला है। अब अुसका सारा माल आधे दामों में बिक सकता है। खरीदार का अिसमें बहुत बड़ा फायदा है। अिससे भी आगे बढ़कर, दूसरा दृष्टान्त अुन्हींकी भाषा में यह लिया जा सकता है, कि चोरी का माल तो चौथाअी दामों में भी बिक सकता है। अिसमें खरीदार का और भी फायदा है। अिसलिअे अगर सब खरीदार यह ठान लें कि वे सिर्फ चोरी का ही माल खरीदेंगे तो कारखाने भी महँगे मालूम होंगे। लेकिन क्या यह पुख्ता तजवीज होगी? क्या वह चल सकेगी? क्या अेक हद तक चलने के बाद वह टूट नहीं जायेगी? क्या अुसकी बदौलत पूँजी का बहुत बड़ा नाश नहीं होगा?—हमारी अर्थव्यवस्था गड़बड़ नहीं होगी; और बेकारी नहीं बढ़ेगी?

गत सौ वर्षों से संसार अेक विशेष अर्थ-नीति का अुत्कटता से अनुसरण करता आया है। अुसका मुख्य अुद्देश्य है धनोपार्जन। अिस नीति के अनुसार देहात में होनेवाला सभी माल विदेशों में कारखानों द्वारा बनने लगा। अपवाद केवल खेती की अुपज के विषय में रहा। बाद में हिन्दुस्तान में भी कारखानों मे माल पैदा होने लगा और वह किसानों के दरवाजों तक पहुँचाया जाने लगा। अुसे पहुँचाने के लिअे यातायात के साधन बहुत ही सस्ते कर दिये गये। अुन साधनों का खर्च चलाने में देश के साधारण करों की आमदनी से मदद ली गयी। अंग्रेज तो हमेशा हिंदुस्तान में विलायत के माल की खपत बढ़ाने की ही फिराक में रहे। अुन्होंने सारी अर्थ-व्यवस्था को ही अिस तरह बदल दिया कि पहले तो विलायत के कारखानों की बरकत हो और बाद में देशी कारखानों की। मगर हर सूरत में फायदा हो कारखानों का ही।

जब हिन्दुस्तानी कारखाने देहातों को तबाह करके पनपने लगे तो वे भी कितनी ही पूंजी यहां से बाहर भेजते थे। हिन्दुस्तान में कअी कारखाने अैसे भी हैं जो विदेशी पूंजी या विदेशी नियंत्रण, या दोनों, पर निर्भर हैं। अिसलिअे, और नहीं तो सिर्फ कीमत की बाबत में भी, ग्राम-अुद्योगों के माल की कारखानों के माल से तुलना करना भ्रान्तिजनक है। हर अेक मानो देहाती जनता को हराने के लिअे शकुनी की कुटिल नीति से पांसे फेंक रहा है। अब तक अिस नीति की बदौलत कारखानों का जो लाभ हुआ वह यदि निकाल दिया जाये तब कहीं हम दो समान वस्तुओं में तुलना कर सकेंगे। अिन सबके अलावा सरकार की चलन-विषयक वह नीति भी रही है जिसकी बदौलत चीजों की कीमतें हमेशा घटती रही हैं और जिसने किसान को अपने श्रम के पूरे पूरे मूल्य से सदा वंचित रक्खा है।

— २ —

हिन्दुस्तान से संपत्ति कअी प्रकारों से गायब हो रही है। जहां यूरोप में कोअी नया आविष्कार हुआ कि हिन्दुस्तान का और करोड़ दो करोडों का नुकसान हुआ। पाश्चात्यों द्वारा यह शोषण घड़ियां, फौण्टनपेन, साअिकलें, मोटरें, कांच का सामान, टाअीप राअिटर, रेडियो, सिनेमा, रेफ्रेजरेटर, लिफ्ट, आदि जिन चीजों का अुपयोग मालदार आदमी करते हैं, अुन सब चीजों के द्वारा निरंतर होता रहता है। हमारे धनिक लोग अपनी संपत्ति पर अपना निजी स्वामित्व मानते

हैं। जो लोग महंगी और सस्ती, या किफ़ायती ना-किफ़ायती की चर्चा करते हैं अुन्हें पहले सारे देश की संपत्ति को राष्ट्रीय संपत्ति के, और भारत की जनता को अेक भारतीय परिवार के रूप में देखना सीखना चाहिये। क्या किसी परिवार के विषय में यह कल्पना की जा सकती है कि जब अुस परिवार के कतिपय व्यक्ति भूखों मरते हों तब दूसरे व्यक्ति कुछ विलास की चीजें खरीदने के लिअे विदेश को पैसा भेजेंगे? मगर हिन्दुस्तान में आज यही हो रहा है। विज्ञान की मदद से यंत्रों द्वारा बडी चतुराओ से बनायी हुअी चमकदार और भडकीली अगड़-बगड़ चीजें हमारे देश में भेज दी जाती है। हम भी अुन्हें यहां बना सकते थे। लेकिन जब तक हमारे यहां अेक अैसा जन-संमर्द मौजूद है जो बेकार है, जिसकी बढ़ती हुअी कंगालियत, गिरता हुआ स्वास्थ्य और दिल का दर्द हमारी प्रगति के रास्ते में नित्य रोडे अटकाता है, तब तक हम क्या कर सकते है? हम अगर कोअी अुचित आर्थिक योजना बनाने बैठें तो हमें अुलटे सिरे से शुरू करना पड़ता है। अर्थात् पहले हमें अिस सवाल का विचार करना पड़ता है कि "क्या अिस देश में अैसा कोअी व्यक्ति है कि जिसे काम करने की अिच्छा और योग्यता होते हुअे भी अपने परिश्रम का किसी अुत्पादक अुद्योग में अुपयोग करने का तथा थोडी बहुत कमाअी करने का मौका नहीं मिलता?"

ज्यों ही हम अिस प्रश्न का अिस दृष्टि-बिन्दु से विचार करने लगते हैं त्यों ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था अैसी होनी चाहिअे कि जिसमें आज जो लोग बेकार हैं अुन्हें बराबर काम मिलता रहे और अुन्हें यह संतोष हो कि संसार के व्यवहार में अुनका भी कुछ अुपयोग है। और अिसके साथ-ही-साथ अुनके श्रम से देश की संपत्ति में भी कुछ वृद्धि हो। अगर अिस प्रयास में विज्ञान से मदद मिले, अगर अुसके पथप्रदर्शक सुयोग्य अेवं संगठन-चतुर व्यक्ति हों और यदि साबित दिमागवाले अर्थशास्त्री अुसका योग्य दिशा में संचालन करें और सरकार, अर्थात् समाज, अपनी सारी शक्ति से अुसका समर्थन करे, तो वह अेक तुच्छ खैराती योजना प्रतीत नहीं होगी; जैसी कि आज कल्पना की जा रही है।

सब लोगों को काम देने का दायित्व हर अेक सभ्य राष्ट्र का है। जो लोग यह कहते हैं कि खादी ना-किफ़ायती है अुनके दिलों पर अिस दायित्व की छाप नहीं पडी है; और अिसलिअे अुस अंश में अुनमें अुस अुदार संस्कृति का अभाव है जो अुन्हें यह प्रश्न अुपस्थित करने के लिअे प्रेरित कर सकती है। जब अिसका अुचित ढंग से संगठन होगा तो खादी और मिल के कपडों की कीमत में जो अंतर है, वह न रहेगा। परंतु शुरू शुरू में यह बात सिद्ध नही होगी। पहले पहले तो, अिन डेढ सौ वर्षों मे ब्रिटिश सरकार जिस हानिकारक अर्थनीति पर चलती आयी है अुसको थोडा बहुत पलट देने के लिअे हर अेक जिले के जीवन का अिस प्रकार पुनःसंगठन करना होगा कि वह अपनी चन्द जरूरतें आप ही पूरी करे।

अुस जिले में पैदा होनेवाले कच्चे माल पर पहला हक अुनका होगा जो अुस कच्चे माल को अुपयोग में लाना चाहते हैं। जिले के खरीदारों पर जिले के कारीगर और अुत्पादक का हक होगा। बाहर से आनेवाली कोअी भी सस्ती चीज़ अुस जिले के बाजारों में नहीं बिकने पायेगी।

क्योंकि अुसके अूपरी सस्तेपन के पीछे महान नाशकारिता छिपी हुअी है। आजतक कारखानों की धनोत्पादक शक्ति का अुपयोग व्यक्तियों ने ही किया है। आअिन्दा यदि अुसका अुपयोग ही होना है, तो वह अुपयोग राष्ट्र करेगा, न कि व्यक्ति।

परंतु आज ही अिस तरह व्यक्तियों का स्वत्व अनिवार्य-रूप से छीन लेने से बेहतर यह होगा कि यंत्रोद्योगों से अुत्पन्न संपत्ति पर बढ़ता हुआ कर लगाया जाय और अिस कर का अुपयोग सरकार देहाती जनता के प्रति अपना प्राथमिक कर्तव्य पूरा करने के लिअे करे। वह कर्तव्य यह है कि जहाँ लोग काम करना चाहते है और काम कर सकते हैं वहाँ अुन्हें काम देना ही चाहिअे।

हिन्दुस्तान की गरीबी का बयान करना अब कोअी नयी बात नहीं है। जो लोग यह सवाल अुठाते है कि क्या खादी किफायती है अुन्हें अपने-तअीं यह सवाल पूछना चाहिअे कि क्या अिस देश की गरीबी बढ़ नहीं रही है? अगर जवाब यह हो कि बढ़ रही है; और यह कि जहाँ अेक तरफ कारखानों मे संपत्ति का अुत्पादन बड़े पैमाने पर हो रहा है—अेक तरफ वैभव है, फिजूलखर्ची है, विलासिता है और दुर्गुण हैं; और दूसरी तरफ प्रचंड भूख है, भयंकर अभाव है, शारीरिक पतन है और अस्वास्थ्य है—तो यह सब असंगत-सा प्रतीत होना चाहिअे।

समाज के शिखरस्थ लोगों के जीवन का मान घटा कर और अुससे जो बचत होगी अुसकी मदद से निचली सतह के लोगों के जीवन की अियत्ता बढ़ाकर हमें यह विषमता नष्ट करनी चाहिअे। प्रत्यक्ष दान द्वारा निम्न श्रेणी के लोगों के जीवन का मान बढ़ाने की योजना का हमें निषेध करना चाहिअे। दूसरा अेकमात्र अुपाय यही है कि हम अुन्हें काम दें, अुसके लिअे सामान और औजार दें, अुनकी बनाअी हुअी चीजें खरीदें और अुन चीजों का वितरण हर अेक जिले में अुपयोगिता की दृष्टि से करें। और अिस सारी योजना का मार्ग-दर्शन सरकार के पूरे पूरे समर्थन से कुछ निःस्वार्थी व्यक्ति करें।

अिस प्रणाली में जो जो आयोजन करने पड़ेंगे अुनमें अग्रस्थान खादी को देना चाहिअे। खादी के दावे की बुनियाद यही है। समस्त मानवीय जीवन और भावनाओं का नियमन अकेला अर्थशास्त्र ही नही करता। बल्कि सच तो यह है कि अिस बात पर बार बार जोर दिया गया है कि आर्थिक प्रेरणा के दमन से, या कम से कम अुसके कठोर संयम से ही, समाज का सच्चा हित सिद्ध होता है। अिसलिअे "खादी मितव्ययी या किफायती है या नही"? यह सवाल पूछना व्यर्थ है। असली प्रश्न तो यह है कि "खादी आवश्यक है या नहीं? और जिस तरह खर्च की कोअी पर्वाह न करते हुअे जनता के बचाव के लिअे सैनिकरक्षा का आयोजन किया जाता है अुसी तरह हिन्दुस्तान मे बड़े से बड़े पैमाने पर खादी का संगठन होना चाहिअे या नही"?

अेक पीढ़ी तक यह प्रयत्न जारी रहने के बाद हर अेक जिले मे बहुत-सा अतिरिक्त माल पैदा होगा, विनिमय सुचारुरूप से होने लगेगा, यांत्रिक अुद्योग और ग्राम अुद्योगों में यथासमय अुचित सामंजस्य स्थापित होगा, अिसमें कोअी सन्देह नहीं। परंतु अिस वक्त तो तराजू का कांटा ग्राम अुद्योगों के पक्ष में, और खास कर खादी के पक्ष में, बहुत ज्यादा झुकता है।

(अंग्रेजी से अनुवादित)

गांधीजी की शिक्षा-योजना

[दादा धर्माधिकारी]

मेरे अेक प्रोफेसर-मित्र गांधीजी पर बुरी तरह बिगड़े हैं। वे मुझसे कहने लगे कि "गांधीजी अपनी आदत से बाज़ नहीं आते। जिस बात में वे ज़रा भी दखल नहीं रखते अुसमें नाहक टाँग अड़ाने का अुन्हें बड़ा शौक है। राजनीति में सत्य और अहिंसा का रसायन मिलाकर अुसका तमाम मज़ा किरकिरा कर दिया। अब आप शिक्षा की मिट्टी पलीद करने पर तुले हुअे हैं।"

देश के बहुत-से शिक्षा-शास्त्री गांधीजी से अिसी लिअे नाराज़ हैं कि अुन्होंने शिक्षा के सुरक्षित क्षेत्र पर भी धावा बोल दिया है।

दुनिया के लगभग सभी शास्त्री पोथी-पण्डित हुआ करते हैं। जो विशेषज्ञ होते हैं वे तो मानो जीवन को महज़ अेक कबूतर-खाना ही समझते हैं। अुनकी राय में किसी कबूतर को अपना दरबा या खण्ड छोड़कर दूसरे के कमरे में झांकना तक नहीं चाहिअे। गांधीजी की यह खुशकिस्मती है कि वे शास्त्री नहीं हैं और न पण्डित ही हैं। हां, अगर शास्त्री हैं भी तो जीवन शास्त्र के, और पण्डित हैं भी तो जीवन की विद्या के; और कलाकार भी हैं तो जीवन की कला के। अिसलिये कबूतरखाने के निवासी विशेषज्ञों से अुनकी बहुत कम पटती है।

अेक बात और है। गांधीजी अेक ज़बरदस्त सुधारक हैं—क्रान्तिकारी सुधारक हैं। हर अेक सुधारक की यह विशेषता रही है कि वह जिस समाज में पैदा होता है अुसके कुछ परम्परागत और प्रचलित विचार तथा संस्थाओं का वह घोर विरोध करता है। अिसीलिये तो वह सुधारक कहलाता है। अुसके ज़माने के पण्डित प्रचलित सिद्धान्तों के और संस्थाओं के अभिभावक होते हैं। अिस-लिअे वे प्रगति-विरोधी होते हैं। दकियानूसी शिक्षा-शास्त्रियों की गांधीजी से जो तनातनी चल रही है अुसका भी रहस्य यही है।

मैं कह चुका हूँ कि गांधीजी जीवन के शास्त्री हैं। तो क्या शिक्षा जीवन से कोअी अलग चीज़ है? क्या आपका शिक्षा-शास्त्र कोअी अैसी विचित्र वस्तु है जिसका मनुष्य के रहन-सहन, खान-पान, काम-धन्धे, कमाअी और मनोविनोद से कोअी सम्बन्ध ही नहीं है? तब तो आपकी शिक्षा आप ही को मुबारक हो! हमें अपने जीवन से ही तसल्ली है! लेकिन दर-असल बात अैसी नहीं है। हर्बर्ट स्पेन्सर है तो पुराना शिक्षा-शास्त्री, लेकिन शिक्षा की जो व्याख्या वह कर गया है वह आज भी सही है। अुसने कहा है कि शिक्षा का अुद्देश्य हमें 'पूरी तरह से जीना' सिखाना है। मतलब यह कि शिक्षा हमारे जीवन को सुन्दर, सम्पन्न, सुखमय और अुपयोगी बनाने के लिअे है। हमारे सारे राष्ट्र के जीवन को सुन्दर, आनन्दमय और कार्यक्षम बनाने का जिन्होंने बीड़ा अुठाया है वे गाँधीजी अगर शिक्षा के विषय में बोलने के अधिकारी नहीं हैं तो और कौन हो सकता है? गांधीजी ने यह कभी नहीं कहा कि मैं अेक शिक्षा-शास्त्री की तरह शिक्षा-शास्त्र की हर अेक तफसील में मार्ग-दर्शन करूँगा। वे तो अितना ही कहते हैं कि राष्ट्र की मौजूदा हालत में अुसका जीवन सुसंस्कृत और सुखी बनाने के

लिअे जिन मूलभूत तत्त्वों की आवश्यकता है अुन्हींको हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली का भी आधार बनाना चाहिअे। अिसलिअे आज की राष्ट्रीय शिक्षा वही हो सकती है जो हमें अपने राष्ट्र का स्वावलम्बी, समर्थ और कार्यदक्ष सेवक बनावे।

जीवन और शिक्षण का सम्बन्ध अभेद्य है। बल्कि यों कहिये, कि ये दोनों अभिन्न हैं। जैसे नदी का होना और बहना दो क्रियायें नहीं हैं; वैसे ही मनुष्य का जीना और सीखना दो भिन्न क्रियायें नहीं होनी चाहिअें। अिसलिअे अगर मनुष्य को जीने में आनन्द आता है, जीवन से प्रेम है, जिंदगी मे रुचि है, तो अुसे शिक्षा में भी मजा आना चाहिअे। "शिक्षा मजेदार कैसे बनायी जाये"? यह आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों की खोज का विषय हो रहा है। "बच्चों को खेलने में जितना आनन्द आता है अुतना ही सीखने मे कैसे आवे?"—यह समस्या अुन्हें परेशान कर रही है। अेक कारण तो अुनकी समझ में आगया। जबतक सीखने का मतलब केवल लिखना-पढ़ना ही है, तबतक—"लिखोगे, पढ़ोगे होगे खराब, खेलोगे, कूदोगे होगे नवाब"—यही बच्चों के जीवन का सूत्र रहेगा। स्कूल को वे कैदखाना समझेंगे, और स्कूल से छुटकारा पाते ही घोडे के बछेडे की तरह चौकडी भरने में आनन्द मानेंगे। अुनके जीवन से जैसे जैसे शिक्षा का सम्बन्ध बढ़ता जायेगा, वैसे वैसे अुन्हें अुसमें मजा आयेगा। और तब अुनके लिअे घर, पाठशाला और क्रीडांगण में कोअी फर्क नहीं रहेगा।

शिक्षा का कार्य यह है कि वह हमें आनन्द से जीना और आनन्द से मरना सिखावे। आनन्द से जीने के लिअे आनन्द से और बिना दूसरों के रास्ते में रुकावट डाले पेट भरना भी जरूरी है। आदमियत की पहचान यही है कि हम अिस तरह जीयें कि हमारे जीने से दूसरों की जिंदगी में मदद पहुँचे; कम से कम, रुकावट तो न हो। 'जीओ और जीने दो' यह मनुष्यता का अधूरा आदर्श है। 'जीओ और जिलाओ' यह अुससे अेक कदम आगे है। 'जिलाने के लिअे जीओ' यह अुसका पूर्ण परिणत रूप है।

जिस प्रकार हमारे जीवन का विकास और पूर्णता दूसरों के जीवन को समृद्ध और प्रसादमय बनाने में है अुसी तरह हमे अपने निर्वाह के लिअे अुद्योग करने में भी समाजहित की अुन्नति करना अपना अुद्देश्य मान लेना चाहिअे। मतलब यह कि, हमारा व्यवसाय भी अैसा हो जिससे हमारा अपना पेट भरे और समाज की भी अुन्नति हो। अिसीलिअे आजीविका के साधन को 'अुपजीवन' कहा गया है। 'अुप' मानी 'पास का,' 'निकटवर्ती'। जीवन की सबसे निकटवर्ती चीज है—अुपजीवन का साधन। पुराने जमाने में हमारे यहां व्यवसाय के लिअे दूसरा अेक अर्थपूर्ण शब्द था 'वृत्ति'। पेट भरने के लिअे मनुष्य जो धन्धा करता है अुसका रङ्ग अुसके दिल और दिमाग पर भी चढ़ जाता है। अिसलिअे पुराने जमाने में लोग मनुष्य के धन्धे को अुसकी वृत्ति कहते थे। अिस मान्यता का आधार अेक बड़ा गहन मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है। आदमी दिनभर जो करेगा अुसीके अनुसार वह सोचेगा और दूसरों के साथ सलूक करेगा।

जब कि जीवन और अुपजीवन का सम्बन्ध अितना नजदीकी है तो शिक्षा में अुपजीवन का स्थान प्रधान होना चाहिअे, यह कहना कोअी मूर्खता नहीं है।

तब सवाल यह अुठता है कि "अुद्योग-धन्धा सिखाने में तो आज के शिक्षा-शास्त्रियों को कहां आपत्ति है? लेकिन गांधीजी अुपजीवन को ही सबकुछ बनाना चाहते हैं। अुपजीवन समूचा जीवन तो नहीं है न? आप तो अेक अंश को ही पूर्ण की जगह देना चाहते हैं। कहीं टुकड़ा भी समूचे के बराबर हो सकता है? क्या पेट ही सब कुछ है? दिल, दिमाग और आत्मा के विकास का शिक्षा में कोअी स्थान ही नहीं? असीलिअे तो हम कहते हैं कि गांधीजी की तजवीज़ निहायत अशास्त्रीय है।"

यहां पर फिर वही टुकडे-फरोशी की बात आजाती है। मनुष्य का हाथ, दिल, दिमाग और आत्मा कोअी अेक-दूसरे से असम्बद्ध घटक तो नहीं हैं। हरअेक के विकास से दूसरे के विकास में मदद पहुँचती है। बल्कि यों कह लीजिये कि अिन सबका विकास अेक ही साथ और परस्पर-अविरुद्ध पद्धति से होना चाहिअे। शिक्षा-शास्त्र की सिफत और कुशलता अिसी में है। गांधीजी की नयी शिक्षा-पद्धति में दस्तकारी और किताबी पढ़ाअी का समुच्चय नहीं है। क्योंकि अुस हालत में तो फिर भी दिमागी विकास का साधन शब्द ही रहेंगे।

शब्द ही जबतक शिक्षा का माध्यम हैं तबतक मनुष्य की स्वयंप्रज्ञा का, हृदय का और बुद्धि का वास्तविक विकास नहीं हो सकता। अिसलिअे शिक्षा का माध्यम कृति होना चाहिअे। वह कृति भी अैसी न हो कि जो केवल खेल हो। अगर जीवन निरी पिसाअी नहीं है तो वह महज़ गुलछर्रे अुड़ाना भी तो नहीं होना चाहिअे। जो लोग शिक्षा को केवल खेल बनायेंगे वे जीवन को भी खिलवाड़ करेंगे।

जीवन महान् गम्भीर और श्रममय है। बिना श्रम के खेल में भी मज़ा नहीं आता। निरोग जीवन और निरोग दिल का यह लक्षण है कि अुसे श्रम में आनन्द आवे। अिसलिअे वर्धा-शिक्षा-योजना में अुत्पादक-श्रम को, राष्ट्रोपयोगी दस्तकारी को, शिक्षा का माध्यम बनाने का आग्रह है। बुनियादी तालीम की यही बुनियाद है। अुसमें व्यवसाय और शाब्दिक शिक्षा का केवल समुच्चय नहीं है। बल्कि व्यवसाय के द्वारा हृदय और बुद्धि के विकास की योजना है। अुपजीवन द्वारा जीवन को सुसंस्कृत और सम्पन्न बनाने का अपूर्व प्रयत्न है।

(हिन्दी 'दीपक' से)

जब स्कूल के काम और समाज के काम में अितना गहरा संबंध होगा तो बच्चे जो स्कूल में सीखेंगे अुसे बाहर आकर भी बरत सकेंगे। अिस तरह यह नअी योजना जो हम पेश कर रहे हैं, मुल्क के होनेवाले नागरिकों को अपनी कद्र और अिज्जत करना, अपने आपको सुधारना, समाज की सेवा करना और मिल-जुल कर काम करना सिखायेगी।

—ज़ाकिर हुसैन शिक्षा–कमिटी की रिपोर्ट.

हिन्दीभवन

(काका कालेलकर)

हिन्दी जिन प्रान्तों में जनता की बोली है अुन प्रान्तों में कुछ अैसे भी हिस्से हैं जहां हिन्दी की बहुत ही कम सेवा होती है। हिन्दी के अैसे भी अभिमानी पाये जाते हैं जो स्वयं नागरी लिपि सीखने का भी कष्ट नहीं अुठाते और न हिन्दी के श्रेष्ट साहित्य से ही परिचय रखते हैं। जबतक हिन्दीवाले हिन्दी की सेवा के लिअे कटि-बद्ध नहीं होंगे तबतक केवल तर्जन-गर्जन या लोगों के प्रति कुवचन कहने और संख्या के बल की दलील पेश करने से हिन्दी की प्रगति नहीं होगी।

सुदूर शान्तिनिकेतन में पंडित हजारी प्रसादजी हिन्दीभवन के द्वारा हिन्दी की अच्छी सेवा कर रहे हैं। वे यह कोशिश नहीं कर रहे हैं कि बंगाली लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा के तौर पर स्वीकार करें। वे बंगालियों से अितना ही कहते हैं कि 'हिन्दी हिन्दुस्तान की अेक व्यापक भाषा है। अिस भाषा का और अिसके साहित्य का विश्वभारती में जो स्वाभाविक स्थान होना चाहिअे अुसके अनुसार अुसका अध्ययन भी होना चाहिअे।' नम्र होकर वे जो सेवा कर रहे हैं अुससे हिन्दी का बहुत कुछ लाभ होगा।

अुत्तर और मध्य भारत में, पंजाब, राजस्थान, युक्तप्रान्त, महाकोशल आदि प्रदेशों में और बिहार में भी अैसे ही हिन्दीभवन स्थापित करने की और अुनके द्वारा शान्तभाव से हिन्दी की सेवा का कार्य करने की जरूरत है।

अैसे भवन न तो अुर्दू से झगडा मोल लें और न बंगाली, मराठी, गुजराती, आदि प्रान्तीय भाषाओं से रगड़-झगड़ करें। अैसे भवन क्या क्या कर सकते हैं अिसका थोड़ासा वर्णन यहां किया जाता है:–

अेक बात बहुत दृढ़ता से स्पष्ट करना आवश्यक है कि जबतक भाषा-सेवक पंडित 'वनिता और लता' के जैसे आश्रय-परायण रहेंगे तबतक अुनकी प्रतिष्ठा निराश्रित विधवाओं से ज्यादा नहीं रहेगी। आजकल के पंडितों के लिअे जब कोअी संस्था खोली जाती है तब वे पूछते हैं, "संस्था की स्थायी निधि कितनी है? प्रॉव्हिडेण्ट फंड का भी कोअी अिन्तजाम है या नहीं?" अगर स्थायी निधि मिल जाय तो अुसे साहित्यसेवा में न लगा कर किसी सुरक्षित बैंक में रख देते हैं और जो थोड़ासा सूद मिल जाता है अुसपर गुजर करना चाहते हैं। बैंकों द्वारा यह पैसा स्वदेशी और परदेशी तिजारत की मदद करता है और अिस तिजारत की जूठन दो या तीन प्रतिशत व्याज के रूप में साहित्य-सेवा को मिलती है।

राजनैतिक सेवक अिससे कहीं बहादुर होते हैं। वे कल की नहीं सोचते। वे अेक पैर जेल में और दूसरा पैर राजसिंहासन पर रख कर देश की सेवा करते रहते हैं। फिर यह भी नहीं कि राजनैतिक सेवक साहित्य की कुछ भी सेवा न कर सकते हों। जवाहरलालजी, नरेन्द्रदेवजी, सम्पूर्णानन्दजी, राहुलजी, मालवीयजी, श्रद्धानंदजी, आदि राष्ट्रसेवकों ने जो साहित्य-सेवा की है वह अलंकार-मीमांसा करने वाले भाषा-सेवकों की सेवा से किसी कदर कम दर्जे की नहीं है।

साहित्य-सेवकों के पेट नहीं होता अैसी बात नहीं है। परन्तु राजनैतिक सेवकों को भी तो खाने को कुछ चाहिये ही। अुनके भी बाल-बच्चे और परिवार तो होता ही है। जो कल के लिअे प्रबन्ध करके निश्चिन्त हो जाते हैं अुनके जीवन में जंग लग जाता है, अुनमें सुस्ती आ जाती है। जिन्हें जीवन-कलह में मैदान लेना पड़ता है, रोज संकटों का सामना करना पड़ता है, वे ही प्राणवान् होते हैं।

थोडीसी विद्या, थोडीसी संस्कारिता, भरपूर मिहनत, जीवन-जागृति, जीवन-यात्रा में संतोष और सेवाकार्य में अखण्ड योग—अितनी पूंजी पर किसी भी हिन्दीभवन का प्रारंभ हो सकता है। फिर जैसे जैसे काम बढ़ता है वैसे वैसे काम ही अपने लिअे साधन-संपत्ति आप खींच लाता है।

१. हिन्दीभवनों का अुद्देश्य हिन्दी का केवल अध्ययन ही नहीं है; अपितु हिन्दी की योग्यता और क्षमता बढाने की कोशिश करना भी है।

२. हिन्दी की भिन्न भिन्न शैलियों का अध्ययन करके जो शैली संस्कारी, सक्षम और लोकसुलभ होगी अुसको प्रोत्साहन देने का काम भी हिन्दीभवनों का है।

३. सबसे महत्त्व का काम हिन्दी की मुख्य और अितर बोलियों के संगठन का है। पंजाबी, राजस्थानी, और बिहारी हिन्दी की प्रधान बोलियाँ है। बुन्देलखण्डी, अवधी, छत्तीसगढी, पहाडी अित्यादि हिन्दी की घटकबोलियाँ अनेक हैं।

आजतक अिनके स्वरूपभेद, प्रत्ययभेद, आदि का अध्ययन हुआ है। किन्तु अिन भाषाओं को नजदीक लाने का और अिनको हिन्दी के साथ मिला लेने का प्रयत्न नहीं हुआ है। अिन सब बोलियों की सहायता से हिन्दी का शब्द-भण्डार समृद्ध करना हमारा प्रथम काम है।

४. पाश्चात्य लोगों ने अिन सब बोलियों के स्वतंत्र अध्ययन की तरफ हमारा ध्यान खींचा तो सही; किन्तु अिन बोलियों को पास पास लाने के बजाय अुन्होंने अुनका फ़ासला कुछ बढा ही दिया है। अब यह हमारा काम होगा कि हम अुनका अेक विशाल परिवार बनावें और अुनमें कौटुम्बिक धर्म की स्थापना करें।

५. भाषा की बहुतसी शक्ति अुसकी कहावतों, और मुहावरों में होती है। अिन दोनों बातों में हिन्दुस्तान की सब बोलियाँ बहुत ही समृद्ध हैं। जिन बोलियों में ग्रंथस्थ साहित्य नहीं है अुन्हें तो अपनी भाषा-समृद्धि कहावतें, गीत और मुहावरों के रूप में ही कंठस्थ करके संभालनी पडती है। अिसलिअे अिन बोलियों की नित्य की बोल-चाल की भाषा बहुत मंजी हुअी होती है।

६. अिस संस्कारिता और समृद्धि का संग्रह करना हमारा कर्तव्य है। हमारे ग्राम-जीवन का सन्तोष और आत्मविश्वास नष्ट हो रहा है और साथ साथ बोलियों की समृद्धि भी क्षीण होने लगी है। क्योंकि जीवनसमृद्धि और भाषासमृद्धि को अलग अलग नहीं किया जा सकता।

७. भाषासमृद्धि का संग्रह करने से लोक-जीवन का भी संग्रह होगा और यह जनता की असाधारण महत्त्व की सेवा गिनी जायेगी।

अिसके बाद तीसरा महत्त्व का काम अिन सब बोलियों के प्रत्ययों और अुपसर्गों के संग्रह का है। भाषा के प्रत्यय और अुपसर्ग अुसकी टकसाल के मुख्य औजार हैं। आजकल भाषा में नये नये शब्द गढ़ने का काम

ज्यादातर अध्यापक (प्रोफेसर) और वृत्त-विवेचक (सम्पादक) ही करते हैं। अनुका अध्ययन कॉलेज में पढ़ी हुई संस्कृत और अंग्रेजी तक ही सीमित होता है। अिसलिअे वे जो नये शब्द गढ़ते हैं अुनमें लोगों की भाषा में घुलमिल जाने का माद्दा ही नहीं होता। हिन्दुस्तान की हर अेक भाषा में संस्कृत के शब्द, प्रत्यय और अुपसर्गों के अतिरिक्त अपने निजी अुपसर्ग और प्रत्यय भी होते हैं। जहां शास्त्रीय परिभाषा बनानी है वहां पर अखिल भारतीय अेकता के लिअे संस्कृत धातु और प्रत्ययों से बनाये हुअे शब्द ही लेने चाहिअें। किन्तु लोक-सुलभ भाषा के लिअे हर अेक भाषा के जो निजी देशी शब्द होते हैं और अपने निजी छोटे-छोटे सुन्दर सुघड़ प्रत्यय होते हैं अुन्हींकी मदद लेनी चाहिअे। आज से आगामी दस वर्षों के लिअे हर अेक भाषा को अपनी अपनी टकसाल खोलनी चाहिअे और जो ग्रामीण जनता तक आसानी से पहुंच सकें अैसे नये शब्द गढ़ कर अुन्हें प्रचलन की गंगा के बहाव में दीयों के समान बहाना चाहिअें।

८. अिसके साथ साथ ग्रामों के पुराने और नये गीतों का भी संग्रह हो यह आवश्यक है। अंधभक्ति से किये हुअे संग्रह के दिन अब जाते रहे हैं। अब तो भाषा की दृष्टि से, कल्पनावैभव की दृष्टि से, और समाज-शास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से जो गीत महत्त्व के हों अुन्हींका संग्रह करना चाहिअे। अितना ही नहीं, किन्तु अुनके संग्रह के साथ साथ अुनका वर्गीकरण, तोलन और विवेचन भी होना चाहिअे।

९. हिन्दीभवन जैसी संस्था को साहित्य, भाषा और गवेषणा की दृष्टि से अेक बड़ी मंडी (अेम्पोरियम) का कार्य करना चाहिअे। सारे देश में भिन्न भिन्न स्थानों पर जो अभ्यासक, लेखक और अन्वेषक काम करते हैं अुनका संगठन करना, अुनकी जानकारी बढ़ाना, अनके कार्य में सहायता पहुंचाना—आदि सब कार्य अुसको करना चाहिअे।

१०. दुनिया की सभी भाषाओं के जिन ग्रंथों ने मनुष्य के विचार, दृष्टि और आकलनशक्ति में क्रान्ति की हो, जिन ग्रंथों ने कल्पना, वाद या जीवन-रहस्य की दृष्टि से मनुष्य के जीवन पर असाधारण प्रभाव डाला हो, अनके प्रामाणिक अनुवाद हिन्दी में अवश्य होने चाहिअें।

११. 'किन्तु अिन अनुवादों को पढ़ेगा कौन ? जिनमें कुछ भी विद्वत्ता या अध्ययन है अथवा संस्कार ग्रहण करने की शक्ति है, वे तो अंग्रेजी जानते ही हैं। वे अंग्रेजी के द्वारा ही सब कुछ लेना अधिक पसन्द करते हैं। और जिन्हें अंग्रेजी नहीं आती वैसे सामान्य लोगों के लिअे अिन अनुवाद-ग्रंथों की शैली और अिनका प्रस्थान अंग्रेजी के जैसा ही दुरूह होता है।

अिसलिअे हर अेक विषय पर अेवं जीवन-व्यापी कल्पनाओं पर प्राथमिक स्वरूप के छोटे-छोटे लोक-सुलभ ग्रंथ लिखवाने चाहिअें और परीक्षाओं के द्वारा अुनका अध्ययन जारी करना चाहिअे।

१२. भारत के सामने आज जो भिन्न भिन्न धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आन्तर्राष्ट्रीय समस्याअें हैं, अथवा अुपस्थित होने की संभावना है, अुनपर साधक-बाधक दृष्टि से अध्ययन करने के लिअे प्रमाणभूत ग्रंथ भी तैयार करवाने चाहिअें।

१३. हमारी संस्कृत विद्या भी हमारे पण्डितों ने लोक-सुलभ बनाने के बदले लोगों के लिअे अधिकाधिक दुर्बोध बना दी है। अुसे आसान बनाने के लिअे भी प्राणपन से कोशिश होनी चाहिअे। मतलब यह कि, 'अिन संस्कृत शास्त्रों में आखिर क्या कहा गया है?' अैसा प्रश्न अगर ग्रामवासी जनता का कोअी प्रतिनिधि करे तो जिसे वह समझ सके अैसी सीधी और सरल भाषा में छोटी-छोटी पुस्तिकायें अुसको मिलनी चाहिअें।

अूपर बताया हुआ काम न तो मौलिक है और न अुसके लिअे कोअी असाधारण प्रतिभा की ही जरूरत है। किन्तु जिनका अध्ययन विशाल है, जो बहुश्रुत हैं, जिन्हें जनसेवा की दृष्टि है और स्वदेशी साहित्य के प्रति जिन्हें भक्ति है अैसे ही लोग अुसे कर सकते हैं।

वर्धायोजना का हार्द—अनुबन्ध

[काका कालेलकर]

बडे बडे शिक्षण-शास्त्री भी अैसा मान बैठे हैं कि "अनुबंध की कला बहुत दुःसाध्य है। अुसमें प्रतिभाशाली व्यक्ति ही दिशा-दर्शन कर सकता है; और जिन्हें असाधारण कल्पना-वैभव है अैसे ही लोग अनुबंध-पद्धति को सफल कर दिखा सकते हैं।" नतीजा यह हुआ है कि लोग जिससे कुछ न कुछ आमदनी हो सके अैसे राष्ट्रोपयोगी अुद्योग सीखने की बात तो समझ सकते हैं। परंतु अुसके साथ साथ जितना समय मिले अुतने में किताबी पढ़ाअी होगी अैसी अुन्हें अपेक्षा होती है। किन्तु जब गांधीजी कहते हैं कि यह वर्धाशिक्षा नहीं है तब वे बडे असमंजस में पड़ जाते हैं। आज तक किसीने अुद्योग की पढ़ाअी के द्वारा दूसरे विषय भी पढ़ाकर दिखाये ही नहीं हैं। अिस लिअे लोगों का अनुबंधपद्धति की पढ़ाअी पर विश्वास ही नहीं बैठता। जहाँ अध्यापकों को तैयार किया जाता है वहाँ पर कहीं कहीं संस्था के चालक अपने शागिर्दों से कह देते हैं कि 'अिस बात में न तो हम खुद कुछ जानते हैं और न आप लोग ही। अिस लिअे आप लोग साथ बैठकर आपस में सोच लीजिये और अनुबंध का तरीका ढूंढ़ लीजिये'। क्या आश्चर्य अगर यह विद्यार्थी-शिक्षक भी गांव में जाकर वहाँ के अपने बालक विद्यार्थियों से कह दे कि तुम भी अपनेआप अनुबंध तलाश कर लो। "जो पीछे से आयी वही आगे चलायी," बस छुट्टी!

अिस लिये यह जरूरी है कि न केवल अनुबंधी पढ़ाअी के कुछ पाठ ही तैयार कर के बताये जायें अपितु वे छाप कर वहाँ पर भेजे जायें जहाँ बुनियादी तालीम का प्रयोग चलता हो अथवा चलने की संभावना हो।

अैसा करने के पहले अनुबंधी तालीम का तरीका यहाँ पर थोडा-सा स्पष्ट कर देना चाहिअे।

मान लीजिये कि बाअीबिल में प्रवीण किसी मिशनरी से हम रस्किन सीखना चाहते हैं। रस्किन के विचार अुमदा होते हैं और अुसकी लेखन-शैली अंग्रेजी में असाधारण सुंदर मानी जाती है। हमें तो रस्किन के विचार और अुसकी भाषाशैली से ही मतलब है। किन्तु रस्किन के बचपन में अुसकी माता ने अुसे बाअीबिल पढ़ायी थी और अितनी अच्छी तरह से कंठ करायी थी कि रस्किन की भाषा में बाअीबिल के शब्द, बाअीबिल के मुहावरे और बाअीबिल के अुल्लेख जहाँ-तहाँ पर बिखरे हुअे पाये जाते हैं। अब अगर रस्किन को अच्छी तरह से समझना है तो जहाँ जहाँ बाअीबिल का जिक्र आता है वहाँ बाअीबिल का अुतना अंश तो समझ ही लेना चाहिअे। सारी बाअीबिल पढ़ने की हमारी नीयत है ही नहीं। सिर्फ जहाँ और जितना बाअीबिल का जिक्र आया अुतना ही अच्छी तरह से समझना है। अिस ढंग से बाअीबिल की बा-कायदा पढ़ाअी नहीं होगी। किन्तु रस्किन लेखक ही अैसा है कि बाअीबिल की शायद ही कोअी महत्त्व की बात होगी जो अुसकी पुस्तकों में से छूट गयी होगी। नतीजा यह होगा कि रस्किन पूरा करते करते हम बाअीबिल के भी कामचलाअू आलिम बन जायेंगे। और अितनी बाअीबिल पढ़ने में हमें कोअी बोझ भी नहीं मालूम पड़ेगा। अगर बाअीबिल का कोअी भाग रह गया तो रह जाय। अगर और किसीकी अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ते हुअे अुसका जिक्र आ जाये तो वहाँ अुसे पढ़ लेंगे। और अगर कहीं भी न आवे तो जिसका कहीं जिक्र ही नहीं आता, अुसके ज्ञान के बिना ही हम रह जायें तो भी हर्ज नहीं। अुसकी कीमत ही क्या? हम यह भी पसंद नहीं करेंगे कि हमारे मिशनरी अुस्ताद अुतना भाग हमें सिखाने के लिये अुसका रस्किन के साथ ज़बरदस्ती अनुबंध बिठा दें।

बस अिस अुदाहरण से अनुबन्ध की पद्धति और अुसकी मर्यादा का ख्याल आ जायगा। हमारे संस्कृत ग्रंथों के टीकाकार भी अपनी टीका लिखते समय अनुबन्ध की पद्धति से ही, कम या अधिक, काम लेते हैं। जहाँ जिस चीज़ का जिक्र आया वहाँ अुसका पूरा पूरा विवरण करके आगे चले। अिस तरह से व्याकरण, छंदशास्त्र, अलंकारशास्त्र ही नहीं, अपितु संगीत, वैद्यक, कर्मकाण्ड, युद्धशास्त्र, राजनीति, सब कुछ थोड़ा थोड़ा आ जाता है। और टीका की सहायता से पढ़ने वाला विद्यार्थी अपने विषय का सर्वज्ञ और बाकी की सब बातों में बहुश्रुत हो जाता है। अनुबन्ध की मर्यादा छोड़ कर अिधर-अुधर की असंबद्ध बातें टीका में ठूंस देनेवाले टीकाकार की हँसी होती थी। जो टीकाकार अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के अुद्देश्य से बेमतलब की बातें पाठक के सामने रख देता था वह अप्रतिष्ठित हो जाता था। कालिदास के साहित्य पर टीका लिखनेवाले मल्लीनाथ ने शुरू में ही प्रतिज्ञा की है:— "ना मूलं लिख्यते किंचिन्
नानपेक्षितमुच्यते ॥"

अिन टीकाकारों में से बहुत-से लोग अनेक शास्त्रों में पारंगत होते थे और अपनी टीका-द्वारा अध्यनशील विद्यार्थियों को अुन सब शास्त्रों का थोड़ाथोड़ा ज्ञान अनुबन्ध-पद्धति से दे देते थे।

महाभारत ग्रंथ भी अनुबंध-पद्धति का ही अेक नमूना है। जहाँ जिस बात का

जिक्र आया अुसको विस्तार से समझा दिया। यों तो महाभारत केवल भारतीय युद्ध का वर्णन-मात्र है। किन्तु अुसमें अनुबंध के द्वारा अुस जमाने की भारतीय संस्कृति का पूरा पूरा चित्र अुसके सब अंग-अुपांगों के सहित खींच दिया गया है। अुस जमाने की युद्धनीति, राजनीति, धर्मचर्चा, तीर्थाटन, लोक-कथायें, राजवंशावली, प्रमाणशास्त्र, भूरचना, स्वर्गलोक—आदि दुनियाभर की बातों का जिक्र अुसमें आ जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—अिन चार पुरुषार्थों के अनेकविध शास्त्र अुसमें आ जाते हैं और वे भी अनुबंध के साथ और यथा-परिणाम। आज भी जब हम किसी अभिजात ग्रंथ का अध्ययन करते हैं तो अध्यापक अपनी टिप्पणियों के द्वारा अुस ग्रंथ के विषय की और अुसके अंदर आये हुअे अुल्लेखों के अनुबंध के सहारे अनेक विषयों की और साहित्यों की जानकारी हमें दे देते हैं।

टिप्पणियां या टीका लिखनेवाला अध्यापक जबकभी किसी बड़े पुस्तकालय में जा कर बैठता है तो वह अपनी पुस्तक का अनुबंध सारे पुस्तकालय में अनेक जगह से ढूंढता है और अिस तरह अपना पाठ्य विषय अुद्दीपित कर लेता है।

जब रेनान को औसामसीह की जीवनी लिखनी थी तो अुसने यरुसेलेम जा कर यीशु के जीवन के साथ जिन जिन बातों का अनुबंध था, वे सब देख लीं। जब आनातोले फ्रान्स ने अपना 'थाअी' नामक अुपन्यास लिखा तो अुसने रोमन अितिहास और औसाअी धर्म का सारा प्रारंभिक अितिहास, जिसको अुसे अपनी कथा के साथ अनुबद्ध करना था, देख लिया था। जब जॉर्ज अिलियट को "रोमोला" लिखना था तब अुसने सेवेनारोला के समय का न केवल सारा अितिहास ही पढ़ लिया अपितु अुस जमाने में जो अुत्सव मनाये जाते थे अुनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी भी हासिल की। जब अुस समय का लोक-जीवन जॉर्ज अिलियट को प्रत्यक्ष हुआ तभी जा कर अुसने "रोमोला" जैसा अुपन्यास जीवित कर दिया। अब जॉर्ज अिलियट का नाम अितिहासकार के तौर पर कहीं भी मशहूर नहीं है। अुसे केवल अपना अेक अुपन्यास किसी अैतिहासिक काल-खंड में बोना था और जीवित बनाना था। अिसलिअे अुसने अुपन्यास के कथानक के साथ जिन जिन बातों का अनुबंध बैठता था अुन बातों को बड़े अुत्साह और लगन से अपना लिया।

आज जनता कह सकती है कि अितिहासकार भी जो नहीं कर सकता अुतना जॉर्ज अिलियट ने सेवेनारोला का समय हमारे लिये प्रत्यक्ष किया है। शेक्सपियर और टेनीसन के बारे में भी यही कहा जा सकता है। लॉर्ड मेकॉले जैसे अितिहासकार ने अिकरार किया है कि अिंगलैंड के अितिहास का हार्द अुसे जैसा शेक्सपियर में मिला वैसा अितिहास-ग्रंथों में नहीं मिला।

जो ज्ञान अनुबंध-पद्धति से लिया अथवा दिया जाता है, वह आसानी से हजम हो जाता है। कभी भी भाररूप नहीं प्रतीत होता और हमेशा के लिये अुपस्थित रह कर प्राणशक्ति को बढ़ाता है।

अब नअी बात हमने अितनी ही निकाली है कि अनुबंध की संस्कारिता न केवल सफेदपोश लोगों के लिये ही सुलभ हो, किन्तु धूप और पानी में काम करनेवाले अुन

श्रमजीवियों के लिये भी सुलभ हो जिनकी तादाद फीसदी अस्सी से अधिक है। सब आवश्यक ज्ञान और संस्कारिता जब अुद्योग-हुनर के साथ अनुबद्ध होंगे तभी वे श्रमजीवियों के लिये सुलभ होंगे। शिक्षा के बहाने श्रमजीवियों को श्रमविमुख करके परोपजीवी सफेदपोशों की तादाद बढ़ाना हिंदुस्थान के लिये आत्महत्या का मार्ग है। और श्रमजीवियों को विद्या और संस्कार से वंचित रखना तो प्रथम कोटि का समाज-द्रोह है।

अिसलिये देश के करोडों लोगों को आजीविका, ज्ञान और कौशल दे कर अुसके साथ बाकी का सारा ज्ञान अनुबद्ध करने का तरीका हमने ढूंढ़ निकाला है।

अहिंसा की कुछ पहेलियां

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अहिंसा के बारे में कभी कभी गहरे और जटिल सवाल किये जाते हैं। अिनमें से कुछ का मैं यहां थोड़ा विचार करना चाहता हूं।

(१) **प्रश्न**—पूर्णता प्राप्त किये बगैर संपूर्ण अहिंसा शक्य नहीं है। गांधीजी खुद भी अपनी अहिंसा को अधूरी मानते हैं। तो फिर, सारे समाज को या हमारे जैसे अपूर्ण व्यक्तियों को अहिंसा की सिद्धि किस तरह मिल सकती है?

उत्तर—कभी कभी बहुत गहरे विचार में अुतर जाने से हम गगन-विहारी बन जाते हैं। कसरत करनेवाला हर अेक व्यक्ति दौड़ती हुअी मोटर अड़ाने, या चार-पांच मन का पत्थर छाती पर रखने, या गामा की बराबरी करने की शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। फिर भी, यह मुमकिन है कि अिन लोगों से भी बढ़ कर कोअी पहलवान दुनिया में पैदा हो। अगर अिन्हीं को शारीरिक शक्ति का आदर्श माना जाय तो साधारण आदमी—चाहे वह कितनी भी मिहनत से शरीर को मजबूत बनाने की कोशिश करे, तो भी—अपूर्ण ही रहेगा। तब क्या आम जनता के लिये जो अखाडे हैं वे बन्द कर दिये जायें? अुत्तर साफ है कि 'नही'। क्योंकि अखाडों का मुख्य अुद्देश्य गामा जैसे पहलवानों को ही निर्माण करना नहीं है; बल्कि साधारण दुनियादारी में सैकडों आदमियों को जितने और जिस प्रकार के शारीरिक विकास की जरूरत हो अुतना और अुस प्रकार का विकास जो व्यायाम-शाला करा सकती है अुसे हम सफल संस्था कहेंगे; फिर चाहे अुसके सौ साल के अितिहास में अुसमें से अेक भी गामा या राममूर्ति भले ही न निकला हो। अिन अखाडों में गामा और राममूर्तियों का सम्मान, तथा मार्ग-दर्शक की हैसियत से अुपयोग, हो सकता है। लेकिन अुन जैसा बनने की सबकी महत्वाकांक्षा नहीं हो सकती। अुसके अुस्ताद के लिये भी वह कसौटी नहीं हो सकती।

दूसरा भी अेक अुदाहरण ले लीजिये। सेनापति में युद्ध-शास्त्र की जितनी

काबिलियत चाहिये अुतनी हर अेक छोटे अमले में, तथा छोटे अमले के जितनी काबिलियत सामान्य सिपाहियों में हो, अैसी अपेक्षा कोअी नहीं करेगा। अुसी तरह अगर गांधीजी की अहिंसा-वृत्ति हर अेक कार्यकर्ता अपने में पा न सके, अथवा कर्यकर्ता की लियाकत साधारण जनता में आना संभव न हो, तो अिसमें घबड़ाने की कोअी बात नहीं। अिससे अुलटी स्थिति की अपेक्षा करना ही गलत होगा। जरूरत तो यह खोजने की है कि अहिंसा की कम से कम तालीम कितनी और किस तरह की होनी चाहिअे? अुससे अधिक लियाकत रखनेवाला मनुष्य अेक छोटा नेता, या गांधी, या सवाअी गांधी, भी बन सकता है। अैसी सदभिलाषा व्यक्तियों के दिल में भले ही हो, लेकिन जो अुस तक नहीं पहुंच सकता अुसे निराश होने की जरूरत नहीं। अुसके लिअे परीक्षा की कम से कम लियाकत हासिल करने का ही ध्येय रखना काफी है।

(२) प्रश्न–जिसे क्रोध आता हो, जो गुस्से में कभी बच्चों को पीट भी लेता हो, जिसकी किसीके साथ बोलचाल भी हो जाती हो, अैसा शख्स क्या यह कह सकता है कि अुसकी अहिंसाधर्म में श्रद्धा है?

उत्तर–हम अिस वक्त जिस प्रकार की और जिस क्षेत्र की अहिंसा का विचार कर रहे हैं अुसमें "गुस्से के मानी में क्रोध" और "द्वेष, वैर, जहर, के मानी में क्रोध" का भेद समझना जरूरी है। मां-बाप, शिक्षक आदि कभी कभी बच्चों पर गुस्सा करते हैं और अुन्हें सजा भी देते हैं। रास्ते पर, पानी के नल या कुंअे पर कभी कभी स्त्रियों में बोलचाल हो जाती है। पड़ोसियों में अेक का कचरा दूसरे के घर में अुड़ने जैसी छोटी-सी बात पर भी झगड़ा हो जाता है। बुढ़ापे या बीमारी में अनेक लोग बदमिजाज हो जाते हैं और छोटी-छोटी बातों से चिढ़ते हैं। यह सब क्रोध ही है और दुर्गुण भी है। फिर भी, अितने पर से हम अिन लोगों को द्वेषी, जहरीले, या वैरवृत्तिवाले नहीं कहेंगे। अुलटे, कअी बार यह भी पाया जायेगा कि खुले दिल के और सरल स्वभाव के लोगों में ही अिस प्रकार का क्रोध ज्यादा होता है और कपटी आदमी ज्यादा संयम बताते हैं। अिस प्रकार का गुस्सा जिसके प्रति प्रेम और मित्रभाव हो अुसपर भी होता है। बल्कि अुसीपर ज्यादा जल्दी होता है; पराये आदमी पर कम होता है। यह स्वभाव शिक्षा, संस्कार वगैरह की कमी का परिणाम है; लेकिन द्वेष-वृत्ति का नहीं। अहिंसाधर्म में प्रगति करने, अुसके अेक आदरपात्र सेवक और अगुआ बनने के लिअे यह त्रुटि जरूर दूर होनी चाहिअे। लेकिन अैसा नहीं कि अैसी त्रुटि होने के कारण कोअी आदमी अहिंसाधर्म का सिपाही भी नहीं हो सकता। अहिंसा के लिअे जो वस्तु महत्त्व की है वह है अद्वेष या अवैर-वृत्ति। जब किसीने कुछ नुकसान या अपमान किया हो तब अुसका बदला किस तरह लें, अुसे नुकसान किस तरह पहुंचावें, वगैरह विचार जिसके मन में आते रहते हैं और जो अुस बात को भूल ही नहीं सकता; बल्कि बदला लेने के मौके ही ढूंढता रहता है; और अुस आदमी का कुछ अनिष्ट हो तब खुश होता है, अुसके दिल में हिंसा, द्वेष या वैर की वृत्ति है। क्रोध आवे, शोक भी हो, फिर भी, अगर मन में अैसे भाव न अुठ सकें तो वह अहिंसा है।

नुकसान करनेवाले का बुरा न चाहने की शुभ वृत्ति जिसके दिल में है वह प्रसंगवशात् क्रोधवश होता हो, तो भी वह अहिंसाधर्म का अुम्मीदवार हो सकता है। यह अेक दूसरी बात है कि जितनी हद तक वह अपने गुस्से को रोकना सीखेगा अुतना ही वह अहिंसा में ज्यादा शक्ति हासिल करेगा। तात्त्विक दृष्टि से यह कह सकते हैं कि अिस 'चिढ़ के क्रोध' और 'वैर के क्रोध' में सिर्फ मात्रा का ही भेद है। फिर भी यह भेद अुतना ही बडा और महत्त्व का है जितना कि नहाने के गरम पानी और अुबलते हुअे गरम पानी के बीच का है।

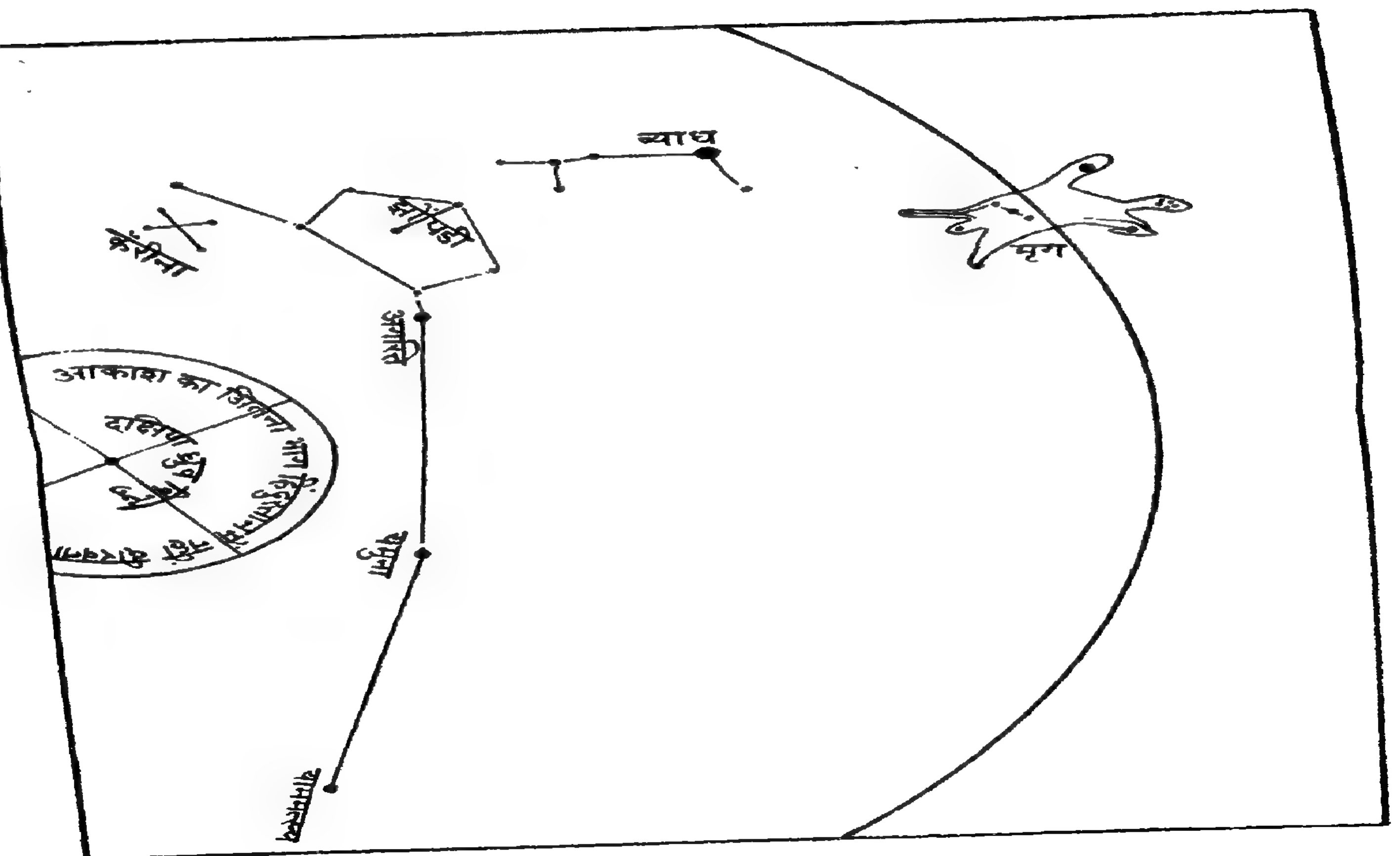
(३) **प्रश्न**—बहस या भाषणों में प्रतिपक्षी का मजाक अुड़ाने, वाग्बाण चलाने या तिरस्कार की भाषा अिस्तेमाल करने में जो अहिंसा-भंग होता है वह किस हद तक निर्दोष माना जाय?

उत्तर—मान लीजिये कि हिंसा का सादा अर्थ है घाव करना। जो प्रहार दूसरे को घाव के जैसा मालूम होता है, वह हिंसा है; फिर वह हाथ-पैर या शस्त्र से किया हो, शब्द से किया हो, या कि दिल में छिपी हुअी बद-दुआ ही हो। स्थूल घाव जब सीधी छुरी का होता है तो कम अीजा देता है। टेढी बरछी का हो तो बदन का ज्यादा हिस्सा चीर डालता है। तकली की तरह नुकीला शस्त्र हो तो अुसका घाव और भी ज्यादा खतरनाक होता है। अुसी तरह शब्दों का घाव सीधा हो तो जितनी अीजा देता है, अुससे बाह्य दृष्टि से विनोदात्मक, लेकिन तिरस्कार और वक्रतायुक्त शब्द ज्यादा चोट पहुंचाता है। जो प्रतिपक्षी के नाजुक भाग को जखम पहुंचाता है, वह घाव ही है। और यह तो हम जान सकते हैं कि हमारा शब्द किसी आदमी को महज़ विनोद मालूम होगा या प्रहार। अिसलिअे अहिंसा में अैसे प्रहार करना अयोग्य है।

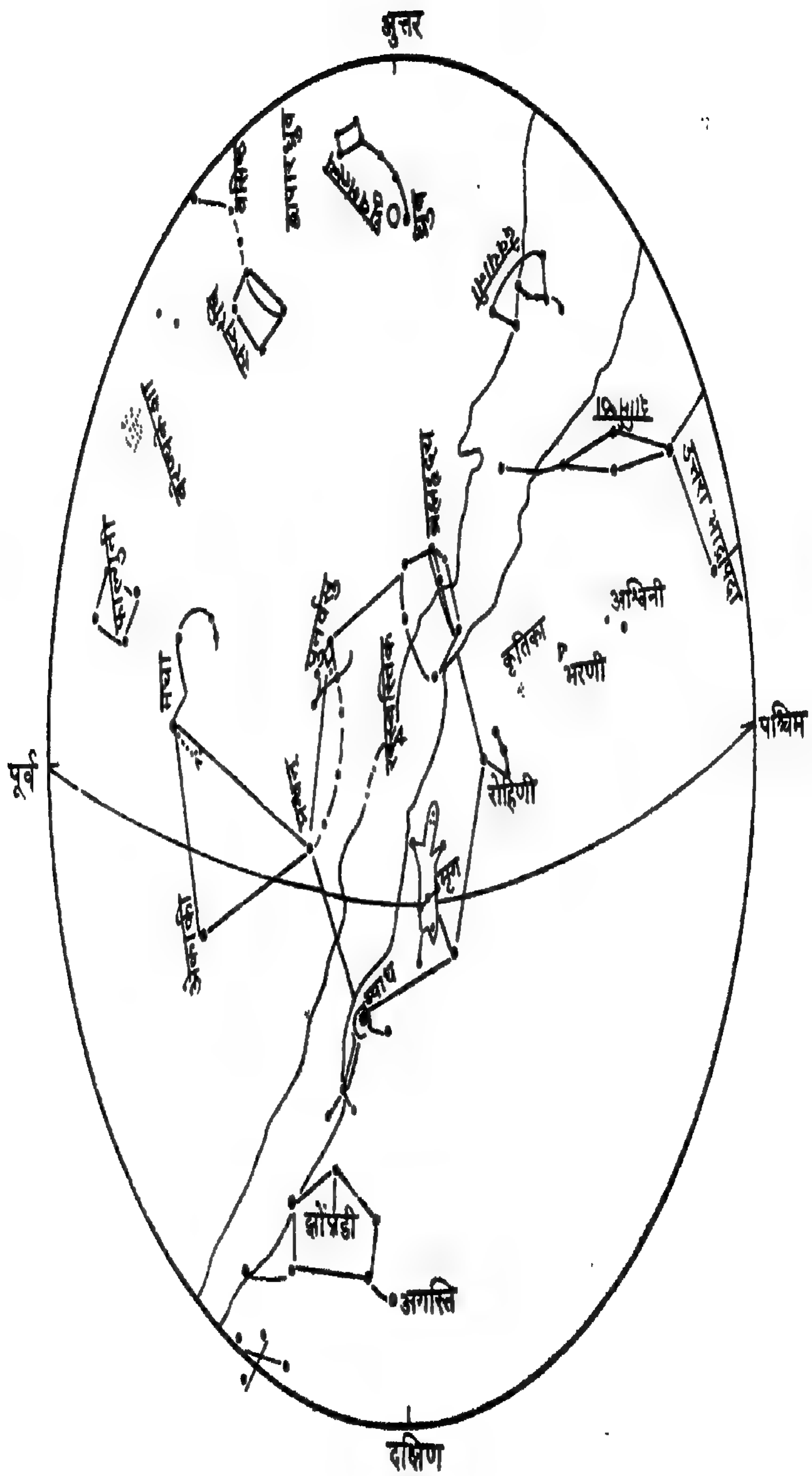
(४) **प्रश्न**—अहिंसा में अपनी व्यक्तिगत अथवा संस्था की रक्षा, अथवा न्याय के लिअे पुलिस या कचहरी की मदद ली जा सकती है या नहीं? चोर, डाकू या गुण्डों के हमले का सामना बल से कर सकते है या नहीं? अहिंसावादी स्त्री अपनी अिज्जत पर आक्रमण करनेवाले पर प्रहार कर सकती है या नहीं?

अुत्तर—यहां पर सामान्य जनता और प्रयत्न-पूर्वक अहिंसा की अुपासना करनेवाले में कुछ भेद करना चाहिअे। जो अपेक्षा अेक विचारी अहिंसक कार्यकर्ता से रक्खी जाती है वह सामान्य जनता से नहीं रक्खी जाती। मतलब, सामान्य जनता के लिअे अहिंसा की मर्यादा कुछ मोटी होना अनिवार्य है। अिसलिअे अगर हम अितना ही विचार करें कि सामान्य जनता के लिअे अहिंसाधर्म का कब और कितना पालन जरूरी समझना चाहिअे तो काफी होगा। समझदार व्यक्ति अपनी अपनी शक्ति के मुताबिक अिससे आगे बढ़ सकते हैं।

अिस दृष्टि से, अहिंसा के विकास के मानी हैं जंगल के कानून में से सभ्यता अथवा कानूनी व्यवस्था की ओर प्रयाण। अगर हर अेक आदमी अपने भयदाता या अन्याय-कर्ता के सामने हमेशा बन्दूक अुठा कर या अपने आदमियों को अिकट्ठा करके ही खड़ा होता रहे तो वह जंगल का कायदा कहा जायगा। अिसलिअे जहां पुलिस या कचहरी का आश्रय लेने के लिअे भरपूर समय या अनुकूलता हो वहां, जो शख्स अहिंसा की अुच्च मर्यादा का पालन नहीं कर सकता, वह अुनका आश्रय



व्याध
मृग
खोपड़ी
कैरीना
अगस्ति
यमुना
याममत्स्य
आकाश का जितना भाग हिंदुस्तान में नहीं दीखता
दक्षिण ध्रुव



उत्तर
पूर्व
पश्चिम
दक्षिण
मघा
कृत्तिका
भरणी
अश्विनी
रोहिणी
झोंपड़ी
अगस्ति

ले तो समाज के लिअे आवश्यक अहिंसा की मर्यादा का पालन हुआ माना जायगा। जहां वैसा आश्रय लेने की गुंजाअिश न हो (जैसे कि, जब चोर या हमला करनेवाला प्रत्यक्ष सामने आया हो) वहां वह अपनी आत्म-रक्षा के लिअे और गुनहगार को पुलीस के हवाले करने की गर्ज से अुसे अपने वश में लाने के लिअे, जितना आवश्यक हो अुतने ही बल का अुपयोग करे तो अुसमें होनेवाली हिंसा क्षम्य मानी जायगी। मगर, बात यह है कि आम तौर पर लोग अुतने ही बल का प्रयोग कर रुकते नहीं। कब्जे में आये हुअे गुनहगार को बुरी बुरी गालियां देते हैं और अितनी बुरी तरह पीटते हैं कि बाज दफा वह अधमरा हो जाता है। यह हिंसा अक्षम्य है; यह हैवानियत है। समाज को अैसे बर्ताव से परहेज रखने की तालीम देना जरूरी है। अहिंसा-पसन्द समाज के लिअे यह समझ लेना जरूरी है कि हरेक गुनहगार को अेक प्रकार का रोगी ही मानना चाहिअे। जिस तरह तलवार ले कर दौड़ते हुअे किसी पागल को या सन्निपात में अुद्दंडता करनेवाले किसी रोगी को जबरदस्ती करके भी वश में लाना पड़ता है, अुसी तरह चोर लुटेरे या अत्याचारी को पकड़ तो लेना होगा। लेकिन पागल या सन्निपातवाले मरीज को वश करने के बाद हम अुसे पीटते नहीं रहते। अुलटे, अुसको रहम की दृष्टि से देखते हैं। यही दृष्टि दूसरे गुनहगारों के प्रति भी होनी चाहिअे। अुसे हम पुलीस को सौंपते हैं अिसके मानी ये हैं कि वैसे रोगियों का अिलाज करने-वाली संस्था के हाथ में हम अुसे दे देते हैं। यह सच है कि यह संस्था भी आज अैसे ही अज्ञानी अुस्तादों की बनी हुअी है जो पुराने जमाने के शिक्षकों की तरह यह मानते हैं कि:—

"चमोटी लागे चमचम, विद्या आवे झमझम।"

लेकिन यह दोष समाजविज्ञान के और अहिंसा के विकास के साथ सुधरनेवाली चीज है। यह संस्था सुधर कर अेक प्रकार की अस्पताल, पाठशाला या खास बस्ती भले ही बन जाय, और अुसका नाम भी भले ही बदल दिया जाय, फिर भी गुनह-गारों का कब्जा लेनेवाली संस्था तो रहेगी ही।

सामाजिक दृष्टि से हिंसा-अहिंसा का जो बोध है, अुसे अिस तरह की अनिवार्य आत्मरक्षा के विषय में छेड़ने की जरूरत नहीं है। परंतु, सच्चे, या माने हुअे, हकों की प्राप्ति और कर्तव्यों की अदाअी के बारे में ही अिसका विचार करनेकी जरूरत है। हम हिन्दुस्तानी लोग कहते हैं "स्वराज्य हमारा कुदरती हक है।" मुसलमान कहते हैं "गाय की कुरबानी करना हमारा हक है," अथवा "मसजिद के आस-पास शान्ति रखना हमारा कर्तव्य है।" हिन्दू कहते हैं, 'बाजे बजाना हमारा हक है' या, 'गोहत्या रोकना हमारा कर्तव्य है।' सवर्ण कहते है, 'हरिजनों को दूर रखना हमारा धर्म है'। हरिजन-पक्षपाती कहते हैं, 'समानता अुनका हक है'—अिसी तरह मजदूर, किसान, मालिक, जमींदार, राजा, प्रजा और भिन्न भिन्न राष्ट्र अपने हक या कर्तव्य का दावा अेकदूसरे के सामने पेश करते हैं।

हक या कर्तव्य की यह बुद्धि व्यक्तिगत हो, छोटी या बड़ी कौम की हो, या सारे राष्ट्र की हो, अुसका फैसला करने का अन्तिम साधन कौनसा है? "जबरदस्ती?" "मारपीट?"

"युद्ध?" अगर हम यह कहें कि हमारा विश्वास अहिंसा में ही है, तो अुसके मानी होते हैं, अिन साधनों का त्याग। किसी भी हक को हासिल करने, या कर्तव्य को अदा करने के लिअे गालीगलौज, जबरदस्ती, मारपीट, युद्ध, तोड़फोड़, आग-अंगार, आदि नहीं किये जा सकते। प्रतिपक्षी के प्रति तिरस्कार नहीं बताया जा सकता और अुसके दिल में दहशत भी नहीं पैदा की जा सकती। अितनी बातों को अच्छी तरह समझ कर तदनुसार बर्ताव करने का नाम है 'अहिंसा की तालीम'। यह तालीम यदि कार्यकर्ता और आम जनता को मिल जाय तो कह सकते हैं कि लोग अहिंसात्मक आन्दोलन के लिअे तैयार हैं। १९३० के, तथा चंपारन, बारडोली, बोरसद, आदि के सत्याग्रहों में साधारण जनता अिस बात को अिशारे से ही समझ गयी थी। अुसने अेक खासी हद तक अुसी तरह बर्ताव भी रक्खा था। अुस वक्त अिस शर्त की हंसी करनेवाले, या अुसकी आवश्यकता पर शंका करने वाले, या अुससे असंगत आंदोलन करनेवाले कोअी नेता न थे। आज वह वायुमण्डल नहीं है। अुस वायुमण्डल को फिर से पैदा करना और लोगों में अैसी अेक बलवान् निष्ठा कायम करना कि जिससे कितनी ही विपरीत बातें कही जाने पर भी वे किसी भी हक या धर्म के लिअे अहिंसा की मर्यादा न तोड़ें अहिंसावादी सेवक का ध्येय है। आम लोगों के लिअे अहिंसाधर्म की अिससे अधिक गहरी व्याख्या में अुतरने की जरूरत नहीं।

अहिंसा-शक्ति के प्रयोगों की खोज करने वाले सेवकों को बेशक ज्यादा गहरे अर्थ में अुतरना होगा। अिसलिअे जिन प्रसंगों में आम लोगों को पुलीस, कचहरी या [illegible] का आश्रय करने की छूट हो सकती है, वहां पर भी वह अहिंसक अिलाज को ही आजमाने का, या नुकसान सहन कर लेने का, संकल्प कर सकता है। जब यह संकल्प वह अपने व्यक्तिगत संबंध में करेगा तभी तो अपनी संस्था के लिअे करने का अधिकार अुसे हो सकता है। बल्कि यह भी हो सकता है कि व्यक्तिगत मामलों में अिस संकल्प पर चलते हुअे भी अपने अधीन सार्वजनिक संस्थाके संबंध में वह अुस पर न चले। यह बात हरेक कार्यकर्ता की अपनी अहिंसा-वृत्ति और प्रयोग के प्रति निष्ठा की दृढ़ता पर अवलंबित है।

(५) **प्रश्न**—जहां कौमी झगडे न हों वहां अहिंसा को मुख्य काम किस तरह बनाया जा सकता है, और अहिंसक अिलाज की खोज किस तरह की जा सकती है?

उत्तर—कौमी झगडे का अर्थ सिर्फ हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा ही न किया जाय। बल्कि झगड़ा-झमेला करनेवाले दो पक्ष जहां पर हैं वहां कौमी झगडे का अस्तित्व माना जाय। अिस अर्थ में हमारे कम-नसीब देश में शायद ही कोअी अैसा क्षेत्र मिलेगा जहां यह स्थिति न हो। फिर जहां पर सबल निर्बल को सताता है वहां दो पक्ष पैदा हुअे न हों तो भी अहिंसक अिलाज की खोज के लिअे क्षेत्र है। अुदाहरणार्थ, कुछ स्थानों में परंपरागत प्राचीन रूढ़ि से कुलीन मानी गयी जातियां नीच कही जाने वाली जातियों पर अिस प्रकार पद्धतिपूर्वक हुक्म चलाती हैं, और अुनको अैसी दहशत में रखती आयी हैं कि अुन दलित जातियों में अपना अक पक्ष निर्माण करने की भी

हिम्मत नहीं है। बाहरी दृष्टि से कह सकते हैं कि यहां न कौमी झगडे हैं न दो पक्ष। लेकिन सचमुच में यह स्थिति झगडे से भी ज्यादा भयंकर है और कभी न कभी तीव्र झगडे का स्वरूप ले लेगी। यहां पर दलित वर्ग में अहिंसायुक्त जागृति करना और अधिकारभोगी वर्ग में कर्तव्य का भान पैदा करना सेवक के कार्यक्षेत्र में आ जाता है। जो जिसका अिलाज ढूंढ सकेगा वह हिन्दू-मुसलमानों के झगडों का अन्त करने के अिलाज की शोध में भी अपना हिस्सा अदा करेगा।

कबूतर का गटरगूँ

१ प्रयत्न, प्रामाणिकता, प्रायश्चित्त

आदरणीय संपादक भाअी,

सविनय पालागन,

'सर्वोदय' का शरद अंक आश्रम की अिमली भूजड हो जाने का शोक-संवाद लायेगा अैसी कल्पना नहीं थी। जब से सवाअी भृशुंडि अपनी राय आजादी से जाहिर करता हुआ भी बार बार रूठ कर घूघूकाका को आअिंदा चुप्पी साध लेने की धमकियां देने लगा था तभी से यह आशंका तो हो गयी थी कि मामला कुछ गडबड जरूर है। लेकिन अितनी-सी बात पर सवाअी भृशुंडि आत्मघात कराने पर आमादा हो जायगा यह मानने को जी नहीं चाहता था। अगर सवाअी किसी मौके पर अपनी राय देने में खतरा या असुविधा देखता था तो अुस खास मौके पर वह बापूजी का अनुकरण करके मौनव्रत ले सकता था। या भणसाली भाअी की तरह बारह वर्ष के मौन का संकल्प कर अुसका कडाअी से पालन करने के लिअे तांबे के तार से अपनी चोंच भी सिलवा सकता था। ये सब बातें आश्रमवासियों की खासियतें होते हुअे भी समझ में आने लायक थीं। लेकिन अितने सयाने सवाअी ने शोकमूढ या कर्तव्यमूढ हो कर अपनी हत्या कराअी, यह अुसके लिअे शोभास्पद बात नहीं हुअी। सारे भूतल को अुद्भासित और आनन्दित करनेवाली चांदनी के अुस ज्वार में अेकाकी अरक्षित बैठ कर वह मृत्यु के दूतों का आवाहन कर रहा था, यह अब स्पष्ट हो गया है। तभी तो अुसने अपने घाव का अिलाज कराने के बदले घूघू काका का भक्ष्य बनने का हठ किया। हम यह अलबत्ता स्वीकार करते हैं कि सवाअी की स्थिर-प्रसन्न बुद्धि और धीरता दर्जे-अव्वल की थी। आखिरी दम तक वह दैन्य के अधीन नहीं हुआ। लेकिन जिस बात में अुसका लोहा मानते हुअे भी जिन्दगी की यन्त्रणाओं से जान बचाने की जो कातरता अुसने बतायी अुसके लिअे हम अुसकी प्रशंसा नहीं कर सकते। और अूपर से अुस कातरता की लीपापोती करने के लिअे अुसने बडी चतुराअी से लम्बीचौडी सफाअी दे दी है।

अिससे तो यही मालूम होता है कि घूघू काका के नये नये गम्भीर प्रश्नों का जवाब देने से सवाओ कुछ घबड़ाने लगा था। अुसकी काक-दृष्टि में अुसे जो सत्य दृग्-गोचर होता था अुसके प्रगट करने में शायद अुसे बेहद खतरा दीख पड़ता था। बेचारा करता भी क्या? अपने प्रकृतिगत काक-स्वभाव से मजबूर था। लेकिन मेरे पैनी बुद्धिवाले मित्र कंबुग्रीव ने अिसका सारा दोष 'सर्वोदय' के सम्पादकों के मत्थे ही मढ़ा है। क्या 'सर्वोदय' के सम्पादक अुसकी अिस बात को अपने मासिक के पृष्ठों में जगह देकर प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं? यदि वे अिसके लिअे तैयार न हों तो कंबुग्रीव का कहना है कि फिर अुनके लिअे गांधी सेवा संघ में कोओी जगह नहीं रह जाती। सो कैसे? यह अुसीके शब्दों में सुनिये—

कल दस-साढे-दस की घण्टी हुओी और सब आश्रमवासी अपनी अपनी थाली-कटोरी लेकर बड़ी मुस्तैदी से सरस्वती मन्दिर के दुमंजिले अन्नपूर्णामन्दिर की ओर चल पड़े। अुस वक्त मैं साबरमती से नहा कर हृदयकुंज को लौटा था। बड़ी 'ओसरी' (अुसारे) की कैंची पर बैठा हुआ मेरा परम मित्र कंबुग्रीव बड़े दीन-भाव से सिसक रहा है यह देख कर मैं चकरा गया। अुसने अपना सुडौल सिर अपने कंधे पर लटका लिया था। बेचारा बहुत ही शोक-विकल था। मैं अुसके पास बैठ गया और अुसे दिलासा दिला कर पूछने लगा कि बात क्या है?

कंबुग्रीव—क्या कहूं, कलबलराम भाओी,* अिस आश्रम में बसेरा करना तो पैनी कीलों की सेज पर सोना है। भीष्म पितामह शर-शय्या पर महीनों सोते रहे अिसमें मैं अुनकी कोओी बड़ी बहादुरी नहीं समझता। बापू के अिस आश्रम में बिना करवट बदले या कराहे जो जिन्दगी बिता दे वह भीष्म पितामह से कहीं अधिक बहादुर है।

मैं—मेरा अपना भी यही अनुभव है। लेकिन अिसका तुम्हारे आज के बिलखने से क्या संबंध? क्या माजरा है सो तो बताओ?

कंबुग्रीव—क्या तुमने नवम्बर का 'सर्वोदय' नहीं देखा?

मैं—अजी, मैं अखबार पढ़ने में कुछ सुस्त हूं। अगर कोओी नयी बात होती है तो तुम लोगों से सुन लेता हूं। तुम लोग अुसपर जो चर्चा करते हो अुससे सारी बात भांप लेता हूं। अगर अखबार पढ़ने बैठूं भी तो कहां तक पढ़ूं? रोज नये नये अखबार निकलते हैं और नये नये लेखक पैदा होते जाते हैं। लेकिन पढ़ने वाले तो हम ही हम हैं। जितना छपता है अुतना सब पढ़ने लगें तो दिमाग बिगड़ जायगा। दूसरे, मेरा यह भी तजर्बा है कि कागज पर लिखे हुअे निर्जीव शब्दों से दिल कुछ सिकुड़ जाता है। जीभ से निकला हुआ शब्द जब सीधा कान में प्रवेश करता है तो रोम रोम में जोश भर देता है।

* गुजराती विनयशीलता के कारण कंबुग्रीव मुझे किसी छोटे नाम से नहीं पुकार सकता। वैसे तो किसान मुझे 'मैना का भाओी' मानते हैं और मेरी आजादी–पसन्द तबियत देख कर मेरी खासी अिज्जत भी करते हैं। परंतु आलापप्रिय आश्रमवासियों को मेरी तीक्ष्ण बोली अप्रिय लगती है। अिसलिअे अुन लोगों ने मुझे काफी लम्बा चौड़ा नाम दे दिया है।

अिसलिअे नवम्बर का 'सर्वोदय' देखने की चर्चा मैंने नहीं की। कोअी खास बात हो तो तुम ही सुना दो।

कंबुग्रीव–अरे भाअी, गजब किया, तुम्हारे 'सर्वोदय' के सम्पादकों ने! अुन्होंने सवाअी भुशुंडि का खून करा डाला और घूघू काका को भी भगा दिया।

मैं–है तो दर असल गजब की बात! लेकिन अथ से अिति तक हाल मुझे सुनना पडेगा। सिर्फ दो शब्दों में कह देने से मुझे संतोष नहीं होगा।

(मुझे सारा किस्सा साद्यन्त सुना कर)

कंबुग्रीव बोला–ये आश्रमवासी अहिंसक होने का दम भरते है, दिन-रात अहिंसा के स्तोत्र गाते रहते हैं, परंतु हैं बहेलियों से भी गयेगुजरे। बहेलिया तो बेचारा पेट के लिअे जीवहत्या करता है। लेकिन ये क्रूर आश्रमवासी बिना कारण ही, केवल अपनी शान रखने के लिअे, दूसरों की हत्या कराते हैं। कोअी खरी खरी बात कहे तो जलभुन जाते हैं। अुनकी यह मनोवृत्ति तो हिटलर की जहरीली वायु से भी घातक है।

मैं–जो बात घूघू काका से धोखे में हो गयी अुसके लिअे तुम 'सर्वोदय' के संपादकों को बरबस क्यों कोस रहे हो?

कंबुग्रीव–अजी, बेचारे घूघू काका ने गिडगिडा कर बार बार निवेदन किया कि संपादकजी अपनी राय दें। अुनसे वह यह पूछते नहीं अूबता था कि 'मैं कहीं गलती तो नहीं कर रहा हूं'? लेकिन दोनों सम्पादक अेकदम मौन रहे। कोअी जवाब नहीं दिया। सवाअी ने बार बार खतरे की सूचना दी और घूघू काका ने बडी दीनता से कहा, 'मेरी तो अक्ल काम नहीं करती, आप मेरी मदद कीजिये'। लेकिन संपादक भाअियों ने अिरादतन भाअीचारे से मुंह मोड लिया। सवाअी ने अपने आपको असहाय और मित्ररहित पाया। अुसकी मजबूत छाती भी धडधडाने लगी। कॉंग्रेस की तरह अुसे भी बयाबान में जाना पडा। न अुसे 'सर्वोदय' के संपादकों से अुद्विग्न हो कर जाना पडता और न अुसकी जान ही जाती।

मैं–तो अब क्या हो?

कंबुग्रीव–अब 'सर्वोदय' के संपादकों को, अुन्होंने जो घोर हिंसा अपने मन से की है, अुसे कबूल करना चाहिअे और अुसका अुचित प्रायश्चित्त भी करना चाहिअे। अुन्हें अपनी अहिंसा का स्पष्टीकरण करना चाहिअे। जिस अहिंसा का राग वे नित्य आलापते रहते हैं अुसका सही मतलब लोगों को समझाना चाहिअे। मेरा तो यह तजर्बा है कि कोअी मनुष्य कितना भी भला क्यों न हो, वह मनुष्येतर प्राणियों से बंधुत्व का व्यवहार करना अपनी शान के खिलाफ समझता है। किसी मनुष्य को हैवान या मनुष्येतर कहना गाली में शुमार होता है। बडे बडे महात्मा भी मनुष्यों पर अेक नियम लागू करते है और मनुष्येतर जीवधारियों पर दूसरा ही। अिसलिअे 'सर्वोदय' के सम्पादकों को मनुष्येतर प्राणियों के प्रति अपनी नीति और रुख साफ कर देना चाहिअे। यदि अैसा न हुआ तो हमारा आश्रम में रहना खतरनाक है। किसी दिन ये अहिंसाधर्मी लोग हमें बडी धार्मिकता से मौत के घाट अुतार देंगे।

मैं–यह तो तुम्हारे ही दिल की कमजोरी है। हमारे लिअे बापू के आश्रम से अधिक निर्भय स्थान अिस दुनिया के पर्दे पर और कहीं नहीं हो सकता।

कंबुग्रीव–तुम सरासर भूल कर रहे हो, कुलबलराम भाअी! खेत में बडी फसल

लूटनेवाले बन्दरों का काम तमाम कर देने की सूझ अिन्हीं अहिंसक बापूजी को ही तो थी न? लावारिस घुमक्कड कुत्तों पर भी गोलियां चलाने के समर्थन में अिन्हीं बापू ने 'नवजीवन' के बीसियों पन्ने रंगे थे; और काका साहब ने महीनों अुनके पक्ष में बाल की खाल निकालने वाली गरमगरम दलीलें पेश की थीं। हिंदुस्तान का गरीब से गरीब और बिलकुल मटियामेट हो गया हुआ गंवार भी भूतदया के लिहाज से बन्दरों और कुत्तों पर हाथ साफ नहीं करता। पर यहां तो सब कुछ अुलटा ही है। माना कि यहां बीमारों की शुश्रूषा बडी मुस्तैदी से की जाती है। पर जरासी निराशा होने लगी नहीं कि अहिंसा के ये अनोखे अुपासक गोवत्स तक को जहर की पिचकारी दिला सकते हैं। अिनका अहिंसाधर्म भी मनुष्यों के लिअे दूसरे माप रखना और पशुओं के लिअे दूसरे माप रखना गवारा कर सकता है। अिसी न्याय से तो वे घूघू काका के सवाओ को गले के नीचे अुतार जाने में अहिंसा की अनूठी विजय दिखा सकते हैं। भैया, अिनका कोओ ठिकाना नहीं। अिनका भरोसा कोओ कैसे करे?

मैं–अच्छा, तो अिसके लिअे संपादकों को क्या प्रायश्चित्त करना चाहिअे?

कंबुग्रीव–अुन्हें साफ साफ कह देना चाहिअे कि "हमारा दिल सँकरा और छोटा था। हम कौओे की अुस पैनी नजर को सह नहीं सकते थे; अपनाने की तो कौन कहे? अुसकी सच्ची सच्ची बातें हमें अितनी कडवी लगती थीं कि वे हमसे निगली नहीं जाती थीं। लेकिन वाणी-स्वातंत्र्य की दुहाओ देनेवाले हम अुनकी थू-थू भी नहीं कर सकते थे।" 'सर्वोदय' के सम्पादकों को वीरता के साथ यह स्वीकारना चाहिअे कि सवाओ मुशुंडि की स्थूल हत्या होने के बहुत पहले ही अुन्होंने अुसकी मानसिक हत्या कर डाली थी। क्योंकि अुसकी बातें अुन्हें चुभती थीं।

मैं–अगर वे अैसा न करें तो?

कंबुग्रीव–तो अुन्हें आश्रम छोड देना चाहिअे। जो लोग प्रयत्न, प्रामाणिकता और प्रायश्चित्त से भागते हैं वे न तो आश्रमवासी रहने के काबिल हैं न गांधी सेवा संघ के सदस्य ही। 'सर्वोदय' के संपादक यदि प्रायश्चित्त से मुंह मोडते हैं तो वे अपने को बापूजी के अनुयायी कहलाना छोड दें।

मैं–बात कुछ अटपटी-सी लगती है। अुसे जरा समझाओ।

कंबुग्रीव–देखो, हमारे पुराने योगदर्शन में तो पांच महाव्रत और पांच ही नियम हैं। बापू ने अुनकी संख्या बढा कर बारह महाव्रत और सैकडों नियम बना दिये हैं। लेकिन अुनपर अमल करने वाले...

मैं–जरा ठहरो। यहां तो सुबह और शाम की प्रार्थना में अेकादश व्रतों का ही नित्य कीर्तन होता है।

कंबुग्रीव–लेकिन संघ की नियमावली में बारहवां महत्त्वपूर्ण व्रत है 'अधर्म-प्रतिकार'। न जाने क्यों विनोबा ने अपने अुस श्लोक में अुसे नहीं गिनाया। दर असल वह अधर्म-प्रतिकार का व्रत ही तो है, जिसने बापूजी और किशोरलाल भाओ जैसे विरक्तों को अेकान्त कोने से राजकीय क्षेत्र में बरबस खींचा है। दुनिया को बापूजी की जो सब से बडी भेंट है वह सत्याग्रह का शस्त्र भी तो अिसी व्रत की देन है। अिसलिअे मैं

तो हमेशा आश्रम के द्वादश व्रत ही मानता हूं।

मैं–और वे सैकडों नियम ?

कंबुग्रीव–शौच पर मिट्टी डालने से ले कर भैंस के घी-दूध और दाल-चावल से परहेज करने तक सारे नियमों को गिनाता जाअूं तो शाम हो जायगी।

मैं–अच्छा, तो छोडो अुस झंझट को। मतलब की बात ही कहो।

कंबुग्रीव–तो सुनो, मैं यह कह रहा था कि व्रत-नियमों का यह जो तांता-सा बँध गया है अुसपर चलने वाले अिस आश्रम में करीब करीब नदारद ही हैं। रोजमर्रा प्रमाद करने के तो वे आदी हो गये हैं। बाज मौकों पर व्रतों के अिस कटीले रास्ते से वे भाग भी जाते हैं। लेकिन फिर भी, वे आश्रम में रह सकते हैं औ बापू अुनका रहना बरदाश्त कर लेते हैं। अितना ही नहीं, वे अपनी विशाल गोद में गिरे हुअे से गिरे हुअ को भी दबका लेते हैं। कोअी कितना भी कमजोर क्यों न हो, आश्रम में अुसके लिअे जगह है बशर्ते कि वह प्रयत्न, प्रामाणिकता और प्रायश्चित्त का त्रिशूल अपने हाथ से न छोडे।

मैं–ये गांधीवाले दावा तो यही करते हैं कि सत्य और अहिंसा हमारा सर्वस्व ह। अपरिग्रह, अस्वाद, ब्रह्मचर्य जैसे व्रतों में समझौता वे फिर भी बरदाश्त कर लेते हैं। लेकिन सत्य और अहिंसा में कदापि नहीं सहन करते। किन्हीं खास मौकों पर सत्य और अहिंसा को अेक तिल भी कम महत्व देने की बात जो कहे अुसके लिअे संघ के दरवाजे बिलकुल बंद हैं। और तुम तो बिलकुल अुलटी ही बातें कहते हो ?

कंबुग्रीव–तुम ठीक कह रहे हो। सत्य को तो अिनमें से किसीने पहचाना तक नहीं है। स्वयं बापू भी छाती पर हाथ रख कर यह नहीं कहते कि यही सत्य है। वे तो कहते हैं कि यथार्थ में सत्य क्या है, सो तो अेक भगवान ही जानते हैं। अब रही अहिंसा की बात। अुसकी तो रोज नयी नयी मर्यादायें कायम होती हैं। कभी तो मच्छर न मारने और आलू न खाने की सीमा तक वह जा पहुँचती है, तो कभी खटमल-भूषित चार॰ पाअी को खौलते पानी से धोने से ले कर बन्दरों और कुत्तों की हत्या तक वह अुतर आती है। आश्रम में चोरी और डकैती करनेवाले 'कंजर' जाति के लोगों को पुलीस के हवाले न करने की मर्यादा से ले कर वह हिटलर का खात्मा करने के लिअे पूरी ताकत लगा देने तक अुडान भरती है। अिस तरह जिसका कोअी ठीक ठिकाना नहीं है, अैसी अहिंसा का आश्रय ले कर आश्रम॰ वासी और गांधीवाले न तो कोअी संगठन कर पायेंगे न आश्रमजीवन का ढांचा ही ठीकसे बना पायेंगे। अिसी लिअे मैं तो यही समझता हूं कि बापू के अनुयायी प्रयत्न, प्रामाणिकता और प्रायश्चित्त की सिद्धान्तत्रयी के आधार पर ही आज तक संगठित रह सके हैं और शायद आगे भी रह सकें। यहीं देखो न, बधू काका ने भी सवाअी को अुदरस्थ करने का घोर कर्म 'बडी प्रामाणिकता' से किया, अैसा सर्वोदय के संपादक का कहना है। बुरेसे बुरा व्यक्ति भी यदि अपनी प्रामाणिकता साबित कर दे तो अुसपर बापूजी के चारों हाथ हैं। वह अपने अूंचे से अूंचे आदर्श से

कितना ही नीचा क्यों न रहे, यदि वह ईमानदारी से प्रयत्नशील रहे और चूक जाने पर शेरदिली से अपनी भूल कबूल कर ले और उसका प्रायश्चित्त करे, तो वह पक्का गांधीवादी हो सकता है। दूसरे सब नकली हैं।

मैं–अच्छा, तो मैं सर्वोदय के संपादकों को लिखूंगा और उनसे अनुरोध करूंगा कि वे सवाओ की मानसिक हिंसा के सूक्ष्म अपराध का प्रायश्चित्त करें।

कंबुग्रीव–मुझे भय है कि वे तुम्हारी बात टाल देंगे। कहेंगे कि सर्वोदय में ऐसी ऊट-पटांग बातों के लिये जगह नहीं है। सर्वोदय के बड़े संपादक काका साहब के पास तो घूघू काका आधी रात बीते पहुंच जाता था। करीब तीन बजे जब दूसरे सब सोते रहते थे, काका साहब जाग जाते थे। उस वक्त उनके पास कोई नहीं रहता था। काका साहब अपनी आंखें तो आकाश के तारों से लड़ाते थे और उनके कान घूघू काका अपने मधुर घूत्कार से भर देता था। इसलिये सर्वोदय में उसके लिये जगह हो जाती थी। मैं आधी रात में इस प्रकार परेशान होना और दूसरों के कान सहलाना ठीक नहीं समझता। ऐसा करके मैं बीमार होना नहीं चाहता। सूरज के प्रकाश में मैं चाहे जितना काम करने को तैयार हूं, पर दिन भर गटरगूँ–गटरगूँ करने पर भी काका साहब के कानों में मेरी आवाज नहीं पहुंची, तो अब तुम्हारी पहुंच चुकी ! संपादकों की यही तो खासियत है। बिना रू-ब-रू मिले वे अच्छे से अच्छा लेख या कविता भी नहीं छापते।

मैं–खैर, मुझे कोशिश भी तो करने दोगे ? मैं अपनी कलबल से उनके दूसरे सारे कामों में रुकावट डाल दूंगा। तब तो मजबूरन उन्हें सुनना ही पड़ेगा। लोग मुझे छिछोरा भले ही कह लें। गीता का आदेश मान कर परिप्रश्न करने के धर्म से मैं नहीं डिगूंगा। बार बार पूछूंगा और पूछता ही रहूंगा। तब उनका आचार्य–स्वभाव उन्हें मेरी बात सुनने के लिये विवश करेगा। वे या तो सवाओ की मानसिक हत्या का अपराध स्वीकार कर लेंगे और उसका प्रायश्चित्त करेंगे; या सारे पक्षिगणों के आश्रम-त्याग का संकट सहने को तैयार होंगे।

कंबुग्रीव–अच्छा, करो; कोशिश करो। लेकिन देखो, कहीं वे अपने कौशल से तुम्हें बना न लें। वे कह देंगे कि "हमें सवाओ की मृत्यु पर अफसोस है। लिहाजा उसकी यादगार में हम सर्वोदय का एक पृष्ठ काला रक्खा करेंगे।" कहीं उनके चकमें में न आ जाना। सवाओ की मानसिक हत्या का अपराध अगर वे कबूल करें तो उसके प्रायश्चित्त के रूप में वे कौए और उल्लू के संवादों की तरह हमारी चर्चा भी अपने मासिक में देने का वादा करें और मन से भी हमारे प्रति अनुदारता न दिखावें। यही एक रास्ता है।

मैं–बहुत खूब। संपादक भाइयों से मैं यह भी कहूंगा कि 'सर्वोदय' के कुछ पाठकों को काक-दृष्टि की तीक्ष्णता शायद असह्य लगी हो। परंतु यह कपोत-कूजन 'सत्यं च और प्रियं च' लगेगा। कहीं कपोत के पंखों की फटकार कुछ करारी हो जायगी तो भी घबड़ाने की बात नहीं। क्योंकि मैं आश्रमवासी उल्लू की तरह ये सारी बातें रात में नहीं करूंगा। दिन-दहाड़े करूंगा ताकि पाठक अपना बचाव भी कर सकें।

कहिये संपादक भाओ, आप मन, वचन और कर्म से प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं न ?

आपका आज्ञाकारी,

आश्रमवासी 'कलबलराम'

आकाशदर्शन

[काका कालेलकर]

राजा चाहे किसी भी स्थान पर हो और किसी भी पोशाक में हो, वह राजा ही है। अुसके राजत्व में कोअी फर्क नहीं आता। किन्तु राजा जब अपने दरबार अपने पूरे अैश्वर्य में बैठता है तो अुसकी शोभा कुछ और ही होती है।

यही न्याय रात्रि के आकाश पर घटित होता है। आकाश की सुन्दरता अखण्ड है, अद्भुत है। रात्रि के आकाश के कैफ से अैसा कोअी आदमी मुक्त नहीं रह सकता जो अुसे ध्यान से देखता हो। किन्तु आकाश का वैभव अिन दिनों—अथवा अिन रातों—जो प्रकट होता है वह आकाश को भी चकित करनेवाला होता है। वर्षाकाल समाप्त हो गया है। आकाश ने अपनी सारी आर्द्रता छोड दी है। बादल भी अब धूलि-धूसर नहीं दीख पड़ते। पूर्ण प्रायश्चित्त करने के बाद मनुष्य का हृदय जैसा निर्मल और पारदर्शक हो जाता है वैसा आजकल का आकाश है। संध्या का दरबार समाप्त होते ही यह निर्मल प्रसन्नता सबपर छा जाती है और अुसपर अुज्ज्वल तारे आ बैठते हैं।

अैसे आसमान में भी अेक आकाश-खंड अैसा है कि जहां पर अधिक से अधिक तेजस्वी तारे अिकट्ठे हो गये हैं। हीरों की अिस खान को आजकल के खगोलशास्त्री 'स्वर्गीय गोलकोंडा' कहते हैं। बीच में सनातन मृग और अुसके अिर्दगिर्द रोहिणी का शकट, ब्रह्ममण्डल की स्थाली, पुनर्वसु की नौका, मृगव्याध का कुत्ता—सब विराजमान हैं। जब रात को करीब आठ-नौ बजे मृग नक्षत्र निकलता है तो मृग के चार पांव और पेट में घुसा हुआ अिषुत्रिकांड का तीर अेकदम ध्यान खींचते हैं। यह तीर मानो आकाश की विषुवरेखा खींचने के लिअे आकाश में बढ़ता जाता है।

जब मृग निकलता है तब सिर पर खस्वस्तिक के तौर पर भाद्रपदा का चौरस फैला हुआ दीख पड़ता है। पूर्वा भाद्रपदा के दो तारे पश्चिम की ओर होते हैं। अुत्तरा के बाकी के दो तारे अुसके बाद आने से पूरब की ओर होते हैं। अुनके पास शर्मिष्ठा, ययाति, और देवयानी अपना पौराणिक नाटक खेलते रहते हैं।

जब मृग ठीक अूपर चढ़ता है तब व्याधवाला कुत्ता अपना सिर अूंचा अुठाता है। लेकिन बेचारे की हालत स्पृहणीय नहीं होती। वह मानो फांसी पर लटका हुआ दिखाअी देता है।

व्याध के काफी अूपर आते ही दक्षिण की ओर भगवान् अगस्ति दर्शन देते हैं। व्याध और अगस्ति दोनों अत्युज्ज्वल तारे हैं।

आजकल शाम को सूर्यास्त के बाद तुरन्त पश्चिम की ओर जो अुज्ज्वल ज्योति दीख पड़ती है वह कोअी तारा नहीं है। किन्तु वह हमारा चिरपरिचित असुरगुरु शुक्र ही है। यह शुक्र अब बहुत दिनों तक शाम को पश्चिम में ही दीख पड़ेगा और जब शुक्ल पक्ष में चन्द्र पश्चिम की ओर आवेगा तब दोनों के साथ साथ आने से अेक महनीय काव्य दीख पड़ेगा। १२ दिसंबर से अिस शोभा

की तलाश में रहना चाहिये। आकाश में आजकल और भी तीन ग्रह दीख पड़ते हैं। मंगल तो लाल होने से आसानी से पहचाना जाता है। गुरु को भी पहचानना कठिन नहीं है। अुसके बाद पूरब की ओर शनी-चर आहिस्ता आहिस्ता यात्रा करता हुआ दीख पड़ेगा और दिसम्बर ५ के बाद सूर्योदय के पहले पूरब की ओर बुध भी दर्शन देगा। अिस तरह अिस महीने में मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, सब के सब ग्रह दर्शन देते रहेंगे।

अब मृग-व्याध के बिलकुल दक्षिण में भगवान् अगस्ति काफी अूंचे आ गये हैं। रात को दस-साढ़े-दस बजे दक्षिण की तरफ मुंह करके अगर हम देखें तो दक्षिण-पूर्व की तरफ अगस्ति, हमारे सामने यमुना और दाहिनी ओर दक्षिण-पश्चिम के कोने में याम्यमत्स्य, ये तीन तारे क्षितिज के समान्तर अेक बड़ी डंडी बना कर फैले हुअे दीख पड़ेंगे। अिनमें अगस्ति अत्युज्ज्वल है, अुससे कुछ कम अुज्ज्वल है यमुना; और अुससे कुछ दूर और कुछ मन्द है याम्यमत्स्य। अितनी बड़ी तराजू की डंडी अिस विश्व में दूसरी नहीं है। मध्यस्थ यमुना ने अगस्ति कुछ अुज्ज्वल होने के कारण अुसे कुछ नजदीक रक्खा है और याम्यमत्स्य प्रकाश में कम होने के कारण अुसको कुछ दूर रख कर समतुला बना दी है।

पाठक को ध्यान में रखना चाहिये कि यह विराट डंडी क्षितिज के साथ थोड़े ही समय के लिअे समान्तर रहती है। बाद में वह पश्चिम की ओर झुकती है। याम्यमत्स्य अूपर से अुतर कर पश्चिम क्षितिज में डूब जाता है। और अगस्ति अूपर अुठ कर अपनी सुन्दर झोंपड़ी अपने पीछे पीछे खींच लाता है। लेकिन अिस झोंपड़ी का दर्शन अच्छी तरह करने के लिअे रात को दो बजे के करीब अुठने की जरूरत होगी। अगर देर की तो यह झोंपड़ी आकाश में अुड़ कर मानो अगस्ति के सिर पर गिरने को तैयार है अैसा दृश्य देख कर आप घबड़ा जायेंगे। अिस झोंपड़ी के बाद फॅरेना अथवा मायावी क्रूस अूपर आता है।

किन्तु प्रभात का समय दक्षिण की ओर देखने के लिअे नहीं है।

चार बजे के बाद अुठने वाले पाठक प्रथम अुत्तर की ओर देख कर देवयानी का 'M' कैसा पश्चिम की ओर अुत्तर-पश्चिम में डूब रहा है और सप्तर्षि अुत्तर-पूर्व में कैसे चढ़ रहे हैं यह देख कर बाद ही मघा के नीचे लटकता [illegible] फाल्गुनी का तगमा देखें और चित्रा, स्वाती के अुदय की राह देखें।

हस्त के बारे में अिस महीने में कुछ लिखना नहीं है। हालांकि वह चित्रा के पहले ही अपना हाथ दिखाता है।

अब की बार अेक दो मान-चित्र दिये जाते हैं; अिसलिअे वर्णन का विस्तार छोड़ दिया है। 'सर्वोदय' के पाठक कृपया अपना मौन छोड़ कर अुन्होंने क्या क्या देखा, और वे क्या क्या नहीं देख पाये; तथा जो अिस लेख में नहीं आया है अैसा क्या क्या देख सके; आदि सब मुझे बताते रहें।

सर्वोदय की दृष्टि

अहिंसक आत्मरक्षा का सवाल

कहा जाता है कि बंदर जब रात की ठंड से परेशान हो जाते हैं तो सौगन्द खाते हैं कि भोर होते ही पहले अेक मकान बना लेंगे और बाद में दूसरा काम करेंगे। किन्तु जब सुबह होता है और सूर्यनारायण की सुनहली किरणें ठण्ड को भगा देती हैं तब कपिराज अपने लिओ घर बनाने की बात भूल जाते हैं और पेड़ की शाखाओं पर अिधर अुधर कूदते-फांदते अेक-दूसरे को अपने दांतों का प्रदर्शन करने लगते हैं। अितने में भूख सताने लगती है और सारा दिन वे भक्ष्य की तलाश में दौड़ते रहते हैं। जब शाम हो जाती है और वे किसी शाखा का आश्रय लेने जाते हैं तब अुन्हें फिर याद आती है कि "दिन में अगर हम अेक घर बना लेते तो आज की जैसी कड़ी ठंड में ठिठुरना नहीं पड़ता। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब अगर आज की रात कट गयी तो तड़के तो घर बांध ही लिया।"

सैकड़ों और हजारों बरस हो गये, बन्दरों की जाति यही संकल्प करती आयी है; किन्तु आज तक किसी भी बन्दर ने अेक भी घर नहीं बनाया।

हम भारतवासी हैं तो देवों के वंशज, किन्तु हमने आज तक अिन बन्दरों का ही अनुकरण किया है। जब संकट आता है हम बड़े हैरान हो जाते हैं। सोचने लगते हैं कि अिस संकट का निवारण किस तरह किया जाय? किन्तु जैसे ही संकट दूर हुआ कि हम तुरन्त अुसे भूल जाते हैं और जब तक फिर से संकट न आवे अुसे टालने के अिलाज का नाम भी नहीं लेते। आखिर यह सृष्टि क्षणभंगुर और मायारूप ही तो है!!

भारतवर्ष के किसान सब प्रकार की विपत्तियाँ सहन करते आये हैं। किन्तु न अुन्होंने अेक भी विपत्ति का स्थायी अिलाज किया है और न ढूंढा ही है। बन्दर हमें परेशान करते हैं, कुत्ते सताया करते हैं, सांप-बिच्छू हर साल अपना करभार ले ही लेते हैं, मच्छर तंग करते हैं और प्लेग, अिन्फ्लुअेंजा आदि रोग गजनी के सुलतान जैसे हर साल चढ़ाअी करते ही हैं, हर साल नदी में बाढ़ आती है और हमारा गाय-बैल आदि जीवधन बहा कर ले जाती है, कहत आता है और मनुष्य तथा पशुओं को खा जाता है। हमने किसी का भी अिलाज करने की सोची नहीं।

हमने न तो विधवाओं के प्रश्न को हल किया है, न हरिजनों के सवाल को। हिन्दू-मुस्लिम अेकता का सवाल हमारे सामने कम से कम अेक हजार साल से है। अभी तक हम अुसका कोअी भी हल अमल में नहीं ला पाये हैं।

आत्मरक्षा का ही सवाल ले लीजिये। कहा जाता है कि आत्मरक्षा ही परम धर्म है। किन्तु अुसके बारे में हमने क्या सोचा है और अुसका क्या प्रबन्ध किया है? अंग्रेजों ने हथियार-बन्दी का कानून जारी करके हमारे शस्त्र छीन लिये। तब से हम न केवल निःशस्त्र ही हुओ, अपितु निश्चिन्त भी हो गये हैं। हम हिंसा-अहिंसा की चर्चा काफी करते हैं, किन्तु न हम हिंसा को समझते हैं और न अहिंसा को ही। अगर श्री किशोरलाल भाअी ने अहिंसा की

बात छेड़ी तो लोग अुनके सामने डॉ० मुंजे की दलीलें रख देंगे और अगर अुन्हीं लोगों के सामने डॉ० मुंजे आ गये तो वे ही लोग डॉ० मुंजे के सामने श्री किशोरलाल भाअी की दलीलें ढाल की नाअीं आगे करके अपना बचाव करेंगे। परंतु मानेंगे दोनों में से किसी की भी नहीं। अगर हम हिंसा में विश्वास रखते हैं तो सौ बरस हुअे हमने कुछ भी तैयारी क्यों नहीं की? और अगर अहिंसा में मानते हैं तो अिन बीस-पच्चीस बरसों में हमने अुसकी भी क्या तैयारी की है? दर असल हम तो मानते हैं कुछ भी न करने में।

सवाल यह है कि जब सरकार को हमने अिस युद्ध में मदद देने का विचार किया तभी हिंसा-अहिंसा की समस्या अेक-दम जीवित हो कर हमारे सामने खड़ी क्यों हो गयी? क्या गांधी सेवा संघ, और क्या कॉंग्रेस, हर अेक को अपने हृदय को टटोलना क्यों पड़ा? अगर अुसी समय हम अिस सवाल की पूरी पूरी चर्चा कर लेते तो हमारी नीति निश्चित हो जाती।

किन्तु बड़े लाट ने हमारी बात नहीं मानी, विलायत की सरकार ने भी नहीं मानी और मदद करने की बात हवा में अुड़ गयी! बस, तुरन्त हम फिर सो गये। मानो हिंसात्मक सहायता का सवाल अब कभी अुठने ही वाला नहीं है।

अिस ढंग से हमारा काम नहीं चलेगा। हमें अेकबारगी यह तय कर लेना होगा कि हिन्दुस्तान की नीति क्या रहेगी। अंग्रेजों को मदद देने की बात जाने दीजिये। अगर कहीं से हमारे देश पर आक्रमण हुआ, अथवा भीतर ही भीतर दंगा-फसाद हुआ, तो हमें क्या करना चाहिअे? अुस वक्त क्या हम सरकार की मदद लेंगे? या सरकार को मदद देंगे? अथवा सरकार की मदद के बिना ही अपने स्वतंत्र प्रयत्न से आत्मरक्षा का रास्ता ढूंढ लेंगे? वह रास्ता कौनसा होगा?—अहिंसा का या हिंसा का?

मेरी राय है कि हमारे संघ को अिसके लिअे अेक खास समिति नियुक्त करके यह सवाल हल करना चाहिअे और विशिष्ट परिस्थिति में समाज को क्या क्या करना चाहिअे, अिसके विषय में निश्चित सूचनायें देश के सामने रखनी चाहिअें। फिर ये सूचनायें ले कर कॉंग्रेस के पास भी जाना चाहिअे। कॉंग्रेस ने अपनी अेक युद्धसमिति कायम की है। अुसे अिस प्रश्न का विचार करना चाहिअे और अहिंसक राष्ट्र-रक्षा का तरीका देश को बताना चाहिअे।

का० का०

सब्र का फल मीठा होता है

गांधीजी कहते हैं, "मेरा नेतृत्व नीरस है, बेमजा है, फीका है"। यह अुनकी अपनी राय नहीं है। किन्तु जो लोग गरमागरम कार्यक्रमों के भूखे हैं अुनको वे ठंडा जवाब देते हुअे कहते हैं कि "क्या किया जाय? मेरा नेतृत्व ही अैसा ठंडा है।" गांधीजी कहते हैं कि "चाहिअे कार्य-क्षम जोश, निर्वीर्य रोष से क्या होगा?" लोगों को गांधीजी के नेतृत्व का अनुभव है, अिसलिअे वे अुन्हीं के पीछे जाते हैं। जो लोग गरम कार्यक्रम ले कर देश का नेतृत्व करना चाहते हैं, अुनके नेतृत्व का जनता को अभी अनुभव नहीं हुआ है। मंत्रियों ने अिस्तीफा दे दिया, अब तुरन्त आजादी का जंग छिड़ना ही चाहिअे अैसी बहुतों की अपेक्षा थी और

आज भी है। यह भी अेक शुभ लक्षण ही है। लोग स्वराज्य के लिअे लड़ने को अुतावले हों यह आनन्द की बात है। किन्तु बेमौके लड़ने से, अर्थात्, बिना तालीम के लड़ने से, देश का नुकसान ही होगा।

'किन्तु ठहरने से क्या होगा? जैसे जैसे दिन जाते हैं, अंग्रेज अधिकाधिक संगठित होते जाते हैं। हम मौका क्यों खोये?' यह वृत्ति चन्द लोगों में दीख पड़ती है। अुन्हें जानना चाहिअे कि राज्यकर्ता कभी के संगठित हो चुके है। देश में जितनी फूट है अुससे अुन्होंने कभी का लाभ अुठाया है। अब अुनका यह व्यूह तोड़ने के लिअे हमें कुछ समय चाहिअे। कॉंग्रेस और सब बातें छोड़ कर केवल अेक स्वातंत्र्य का सवाल ही सामने रख कर सरकार से पूछ रही है कि "स्वराज्य देने की आपकी नीयत है या नहीं? अगर स्वराज्य देने का निश्चय जाहिर हो जाय तो बाकी के सब सवाल हल करने का जिम्मा हमारा"। अिस आश्वासन से मुस्लिमलीग आदि लघुमति को यह तसल्ली होनी चाहिअे कि अगर स्वराज्य प्राप्ति में अुनका विरोध न हो, स्वराज्य हासिल करने में अगर वे हमारे साथ हों तो अपनी दूसरी मांगों के लिअे वे निश्चिन्त हो सकते हैं। अैसी हालत में अब सरकार को कुछ-न-कुछ निर्णय करना ही होगा और मुस्लिमलीग को भी अिसका निश्चय करना होगा कि "आया वे स्वराज्य लेने में कॉंग्रेस का हाथ बँटा कर बाकी अुन्हें जो कुछ चाहिअे वह कॉंग्रेस से लेंगे अथवा स्वराज्यप्राप्ति में कॉंग्रेस का विरोध करके देश को परतंत्र रखने में ब्रिटन की मदद करेंगे और अिस मदद का जो पुरस्कार अुस रास्ते मिल सके अुसीसे संतोष मानेंगे"? सवाल अेक दृष्टि से देखा जाय तो बड़ा पेंचीदा है और दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो अुसका हल हर-किसी के लिअे बिलकुल स्पष्ट है।

अैसी स्थिति में अब सरकार को भी सोचने का मौका देना चाहिअे और मुस्लिम-लीग को भी यह सोचने का मौका देना चाहिअे कि वे कौनसा रास्ता लेंगे।

यह तो हो ही नहीं सकता कि वे सोचते रहें और कॉंग्रेस सोती रहे। कॉंग्रेस को स्वराज्य की, याने सर्वराज्य की, तैयारी जोरों से करनी चाहिअे। गरीबों की सेवा करने, अुनका आत्मविश्वास बढ़ाने और राष्ट्र को संगठन की तालीम देने से ही वह तैयारी होगी।

का० का०

अधिकार-ग्रहण का प्रयोग

कॉंग्रेस ने अधिकारत्याग का निश्चय किया यह अेक दृष्टि से संतोष की बात है। "कॉंग्रेस पद-ग्रहण की नीति स्वीकार करे या नहीं" अिसके विषय में तीव्र मतभेद रहा। राष्ट्र अभी तक पद-स्वीकार के योग्य नहीं हुआ है, अैसी जिनकी मान्यता थी अुनमें से मै भी अेक था और हूं। क्रान्ति की प्रक्रिया में अधिकार-ग्रहण को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। किन्तु बहुधा वह क्रान्ति की प्रक्रिया की अन्तिम सीढ़ी होती है। अधिकार-ग्रहण के बाद अक्सर क्रान्ति की परिसमाप्ति होती है।

किन्तु क्रान्ति का तंत्र और प्रक्रिया कोअी सनातनी पद्धति के यज्ञ की विधि नहीं है। यज्ञ-विधि की हर अेक छोटी-

मोटी क्रिया का क्रम नियत होता है और अस क्रम का संबंध किसी अदृष्ट फल से होता है। क्रान्ति के कार्यक्रम का संबंध भी अुसके अुद्दिष्ट साध्य के साथ होता है; किन्तु विशिष्ट देश–काल–वर्तमान के अनुसार अुसमें हेरफेर करना आवश्यक हो जाता है। केवल मूलभूत सिद्धान्त और मुख्य नीति निभाना पर्याप्त है। अुन सिद्धान्तों या नीति में कोअी परिवर्तन या समझौता बरदाश्त नहीं करना चाहिअे।

राष्ट्र में पर्याप्त परिमाण में योग्यता और दयानत अुत्पन्न हुअी है या नहीं, अिसकी परीक्षा करने के लिअे प्रतिकार के प्रयोग करने पड़ते हैं। वे कुछ अंश में सफल और कुछ अंश में असफल होते हैं। अिस थोडी थोडी सफलता से ही राष्ट्र का कदम आगे बढ़ता है। सरकार की बनायी हुअी धारा-सभा में जा कर वहां जो अधिकार प्राप्त हों अुनका अुपयोग लोकसेवा के लिअे, और विशेषत: क्रान्ति की गति तथा क्रान्तिकारक दल की सामर्थ्य बढ़ाने के लिअे, करना भी क्रान्ति की प्रक्रिया का अेक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है।

गत पचास वर्षों में कॉंग्रेस ने जनता की जो सेवा की और आम जनता में जो अभूतपूर्व जागृति की अुस कारण अधिकार का रसायन हजम करके लोकशक्ति बढ़ाने की कला कॉंग्रेस ने हस्तगत कर ली होगी अैसा अुसके सूत्रचालकों को लगा; और अिसलिअे अुन्होंने अत्यन्त सद्बुद्धि से और स्वदेशहित की आकांक्षा से अधिकार-ग्रहण का प्रयोग किया।

'वह प्रयोग सफल हुआ या असफल?' अिस प्रश्न का 'हां' या 'ना' में जवाब देना अशक्य है। 'कॉंग्रेसी मंत्रिमंडलों का शासन कॉंग्रेसेतर मंत्रिमंडलों के कार्य से भी गयाबीता रहा,' अैसा भी कभी लोग कहते हैं। "कॉंग्रेस जो कुछ करेगी वह सब बुरा ही होगा, जब तक गांधी जिन्दा है तब तक कॉंग्रेस भूल कर भी देशहित का या सयानेपन का कोअी काम कभी कर ही नहीं सकती," अैसी जिनकी निश्चित राय बन गयी है अुन लोगों के आक्षेपों का, या आलोचना का, विचार करना आवश्यक नहीं है। परन्तु जब कभी कॉंग्रेसनिष्ठ लोग भी अुपर्युक्त प्रकार की आलोचना करते पाये जाते हैं तब हमें थोडी देर के लिअे अन्तर्मुख हो कर अिस प्रश्न का गम्भीर विचार करना चाहिअे।

अुपर्युक्त प्रामाणिक आलोचकों की आलोचना में भी अतिशयोक्ति है, यह तो बिलकुल स्पष्ट ही है। अुनके कहने का शब्दार्थ लेने के बदले मथितार्थ ही लेना चाहिअे। "कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल दूसरे मंत्रिमंडलों से भी कम दरजे के साबित हुअे," यह कथन सामान्य नहीं, बल्कि सापेक्ष है। दूसरे मंत्रिमंडल अेक तो अधिकार या प्रतिष्ठा के मोहजाल में फँस जाते थे, या सरकार से सहकार्य करते करते तदाकार हो जाते थे। दोनों दृष्टियों से वे अयोग्य होते थे। अिसलिअे अुनसे लोगों को लोकोपकारक या क्रान्ति-पोषक कार्यों की आशा ही नहीं रहती थी। किन्तु कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल तो सरकार से लोहा लेने में मंजे हुअे, त्याग और तप के व्रत में दीक्षित, जिन्होंने स्वराज्य के लिअे क्रान्ति करने का बीड़ा अठाया है, अैसे शूर सिपाहियों के, या राष्ट्रभक्तों के, मंत्रिमंडल थे। अिस कारण अपने नाम तथा परंपरा

के अनुरूप पराक्रम वे अिस क्षेत्र में भी दिखायेंगे अैसी आशा अुनसे रखना जनता के लिअे स्वाभाविक ही था। कॉंग्रेस की दृष्टि में धारा-सभायें कोअी सम्मान या सत्ता के साधन नहीं हैं; प्रत्युत प्रतिकार और सेवा के क्षेत्र हैं। अिसलिअे जनता की कॉंग्रेसी मंत्रिमंडलों की ओर देखने की दृष्टि भी कुछ विशिष्ट ही है। दूसरे मंत्रि-मंडलों की भूमिका ही भिन्न होने के कारण अुनसे कॉंग्रेसी मंत्रिमंडलों की तुलना ही नहीं हो सकती। कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल कॉंग्रेस की दृष्टि से कसौटी में खरे भले ही न अुतरे हों, तो भी दूसरे मंत्रिमंडलों की तुलना से वे हर हालत में बेहतर ही साबित होंगे। किन्तु अितने से किसी भी कॉंग्रेसजन को सन्तोष नहीं होना चाहिअे।

हम दूसरों के जितने नालायक नहीं हैं, अिस मान्यता में भूषणास्पद क्या है? यह तो अभावात्मक गुण है। मुख्य प्रश्न तो यह है कि "जनता में प्रतिकार की सामर्थ्य बढ़ाने के लिअे तथा कॉंग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को अधिक तेजी से तथा सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिअे सत्ता का कहां तक अुपयोग कॉंग्रेस कर सकी?" यदि कॉंग्रेस की प्रतिष्ठा और पराक्रम की दृष्टि से देखा जाय तो अधिकार-ग्रहण का अुपयोग जिस प्रकार और जिस परि-माण में होना आवश्यक था अुस प्रकार और अुस परिमाण में वह नहीं हो सका यह प्रांजलता से कबूल करना आवश्यक है। किन्तु अिसका कारण हमारे मंत्रि-मंडलों की अप्रामाणिकता या नादानी नहीं है; प्रत्युत कॉंग्रेससंस्था की दुर्बलता है यह कभी न भूलना चाहिअे।

अल्प-सफलता के कारण

हमारे मंत्रिमंडलों के त्यागपत्रों के बाद अब हमारा काम खतम हो गया हो अैसी बात नहीं है। बल्कि अब से ही हमारा असली काम शुरू होता है। कार्यसमिति ने तो स्पष्ट कह दिया है कि यह पहला कदम है। किन्तु दूसरा कदम रख कर कूच करने का हुक्म देने से पहले कॉंग्रेस की दुर्बलता के कारण खोज कर अुनका निरा-करण करना जरूरी है। प्रतिपक्षी को चकमा दे कर, या खाली गीदड़भभकियों से, अब काम नहीं चलनेवाला है।

अधिकार-ग्रहण के कारण कॉंग्रेस के साथ सरकार का निकटतर परिचय हुआ। अुसने हमारे गुणदोषों को खूब अच्छी तरह जान लिया है। अिस परिस्थिति में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि, व्हाअीसराय, बेधड़क कॉंग्रेस की अुपेक्षा करता है अिसकी वजह यह है कि वह कॉंग्रेस के मर्मस्थल जान गया है और मौका पा कर अुन मर्मस्थलों पर अचूक प्रहार करने में साम्राज्यशाही कभी नहीं हिचकिचायेगी। हम अपने आजतक के यश और पुण्य के बल से सरकार को प्रत्यक्ष प्रतिकार की केवल धमकी दे कर सही रास्ते पर ले आवेंगे यह कल्पना बालिश है।

हमारी संस्था की दुर्बलता का मूल कहां है यह ढूंढ कर पहले अुसे नष्ट करने में हमें जी-जान से जुट जाना चाहिअे। अगले पैंतरे की सच्ची तैयारी तो यही है। "अधिकार-ग्रहण में कॉंग्रेस को अिच्छित सफलता क्यों नहीं मिली? अुसे जातिवाद के भूत के शिकार या वर्गवाद की भावना के मतवाले अुद्दंड लोगों पर गोलियां चलानी पड़ी, अुनपर मुकदमे चलाने पड़े, विशेषाधिकारों का अुपयोग करना

पड़ा और दूसरी अनेक अनिष्ट बातें करनी पड़ीं। अिस सब के लिअे पर्याप्त कारण रहे होंगे, मंत्रिमंडलों को यह सब मजबूरन करना पड़ा होगा। किन्तु "ये कारण क्यों अुत्पन्न हुअे और अैसी मजबूरी की हालत क्यों कर आअी ?" यह महत्त्व का प्रश्न है। अिसका सारा दोष मंत्रिमंडलों के मत्थे मढ़ कर हम अपनी जान नहीं बचा सकते।

अधिकार-ग्रहण के प्रयोग की असफलता, या अत्यल्प सफलता, का कारण कॉंग्रेसजनों की वृत्ति और कृति ही है। अपने वोटों से निर्वाचित मंत्रियों की सत्ता का दुरुपयोग अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिअे, या व्यक्तिगत बड़प्पन के लिअे, करने के प्रयत्न से अच्छे अच्छे भी बाज नहीं आये। झूठे अभिवचन, झूठे अिकरार, मतों का क्रय-विक्रय और घृणित षड्यन्त्रों का तो बाजार गर्म हो गया था। "जो निर्वाचित हो सके अुसे खड़ा करो," अिस दृष्टि से खड़े किये अुम्मीदवार कॉंग्रेस के प्रतिनिधियों की हैसियत से कौंसिलों में गये ! अिस प्रकार की 'पंचरंगी', या 'रंग-बिरंगी' बहुमति के प्रति जो मंत्रिमंडल अुत्तरदायी थे वे चाहे देवदूतों के ही क्यों न होते, तोभी अपयश तो अुनके भाग्य में बदा ही होता !

"भोग से शक्ति क्षीण होती है और तप से बढ़ती है"—यह नियम सार्वत्रिक और निरपवाद है। कॉंग्रेस में अगर पराक्रम और त्याग का फल चखने की वृत्ति न बढ़ने पाती तो अुसके प्रतिनिधियों के तेज से सरकार की आंखें चौंधिया जातीं। गांधी जैसे युगावतारी महात्मा का शब्द टालने की हिम्मत किसी भी साम्राज्य के प्रतिनिधि की नहीं होती।

यह "फलाभिसंधि," हमारी अशक्ति का बीज है। अिस कारण सत्याग्रह में या जेल के कष्ट सहने में जो व्यक्ति पराक्रमी और त्यागी सिद्ध हुअे वे ही अधिकार क्षेत्र में नहीं टिक सके।

जेल और मंत्रिपदों में नाम और आकार का भेद प्रतीत होता हो तो भी मूलतः प्रकारभेद नहीं है। सविनय अवज्ञा और अधिकार-ग्रहण, दोनों अेक ही रणनीति के परस्पर-पोषक अंग हैं। अधिकार-ग्रहण का प्रयोग करते वक्त भी मनोवृत्ति सेवा और युद्ध की ही होनी चाहिअे यह बात जब तक कॉंग्रेस-जन नहीं समझते और समझने पर भी अमल में नहीं लाते तबतक देश में अधिकार-ग्रहण के लिअे आवश्यक दयानत और परिस्थिति अुत्पन्न नहीं हुअी है अैसा ही मानना होगा।

दा० ध०

वनस्थली का कन्या-विद्यालय

वनस्थली नाम ही काव्यमय है। जयपुर के दक्षिण में करीब ४५ मील के फासले पर यह छोटा-सा स्थान है। अिसका नाम जितना सुन्दर है अुतना वहाँ का दृश्य काव्यमय नहीं है। किन्तु वहाँ की अेक छोटीसी संस्था ने अिस स्थान का और राजस्थान का महत्त्व बढ़ा दिया है। श्री हीरालालजी शास्त्री राजस्थान के अेक कर्तृत्व-शाली सेवक हैं। राजनैतिक क्षेत्र में अुन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया है। मारवाड़ी समाज में सामाजिक सुधार करने का काम करने में रास्ते में कितनी कठिनाअियाँ आती हैं अिसका जिन्हें खयाल है वे हमारे अिस कथन का पूरा अर्थ समझेंगे कि

हीरालालजी शास्त्री अेक कुशल समाज-सुधारक हैं। आत्मविश्वास और नम्रता, ध्येयनिष्ठा और व्यवहार-कुशलता, अिन विरोधी गुणों का शास्त्रीजी में सुलभ संगम है।

वनस्थली शास्त्रीजी की तपोभूमि है। अपनी सहधर्मचारिणी श्री रतनदेवी शास्त्री के साथ यहाँ कार्य करते करते अुन्होंने देख लिया कि राजकीय जागृति और समाज-सुधार की नींव शिक्षा के द्वारा ही दृढ़ हो सकती है। और यह शिक्षा भी खास कर राजस्थान के लिअे स्त्री-शिक्षा से शुरू हो सकती है। शास्त्रीजी ने यह बात देख तो ली किन्तु स्त्रीशिक्षा की संस्था स्थापित करने की प्रेरणा अुन्हें अुनकी प्रतिभाशाली कन्या, कुमारी शान्ता, से मिली। अिस छोटीसी लड़की ने अपनी बालबुद्धि के अनुसार अेक छोटीसी संस्था शुरू की और अपने नन्हें नन्हें हाथों से अुसने अपनी संस्था के लिअे कुछ अीटें भी पकायीं। अीश्वर ने शास्त्रीजी को अिस तरह प्रेरणा दी और लड़की को अपने धाम को बुला लिया। प्रेमी पिता पुत्री के वियोग से अक्सर पागल बन जाते हैं। शास्त्रीजी के लिअे अुनकी पुत्री का देहान्त दीक्षारूप हो गया और अुन्होंने अपनी धर्मपत्नी के सहयोग से अिस संस्था को बढ़ाया।

आज अिस संस्था में १११ लड़कियाँ पढ़ती हैं जो सभी राजस्थान की नहीं हैं। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों की भी अनेक हैं। कन्याओं में ब्राह्मणवर्ण की और हरिजन लड़कियाँ भी हैं। जब मैं अिस संस्था को देखने गया था तब अेक मुसलमान लड़की भी भर्ती होने की तैयारी में थी। संस्था ने मकान तो मामूली बनाये हैं पर शिक्षक अच्छे ढूंढ लिये हैं। अभ्यास-क्रम में सामान्य विषय तो हैं ही, और अुद्योग, चित्रकला आदि आवश्यक विषय भी रक्खे हैं। लड़कियों के तैरने के लिअे अेक बहुत बड़ा हौज है। राजस्थान के लिअे यह कोअी मामूली चीज़ नहीं है। लड़कियों का जीवन सादा, स्वतंत्र और निर्भय है। यहाँ की लड़कियों को घोड़े पर बैठते देख कर राजस्थान के प्राचीन अितिहास का स्मरण होता है; और साअीकिल के खेल करते देख कर जापानी सर्कसों की याद आती है।

थोड़े पैसे में अधिक से अधिक काम किस तरह से निकाला जाय यह जो जानते हैं वे ही हिन्दुस्तान में सफलता-पूर्वक संस्था चला सकते हैं। शास्त्रीजी का विचार अिस संस्था को बढ़ा कर सौ लड़कियों तक यहाँ लेने का है। बाद में वे अिसकी अेक शाखा जयपुर के निकट खोलेंगे।

अिसमें कोअी शक नहीं कि यह कन्या-विद्यालय राजस्थान के रुढिप्रिय समाज में बहुत भारी और अिष्ट क्रान्ति करेगा।

जयपुर सरकार में अगर प्रजाकीय प्रवृत्ति की कद्र है तो जयपुर राज्य को शास्त्रीजी जैसे लोगों का अेक सलाहकार मंडल नियुक्त करके अुनकी सलाह से सारे जयपुर राज्य का शिक्षाक्रम चलाना चाहिअे। अंग्रेजों ने डेढ़ सौ वर्षों से अिस देश के शिक्षाक्षेत्र पर कब्जा किया। अुन्होंने हमारे लिअे जो कुछ किया अुसके लिअे हम कृतज्ञ हैं। किन्तु अंग्रेज स्वयं कहते हैं कि वे अिस देश को योग्य शिक्षा देने में सफल नहीं हुअे हैं। अब पुराना ढर्रा छोड़ कर नये तरीके से देश को नयी तालीम देने के दिन आ गये हैं। अैसे समय वनस्थली जैसी जीवित और प्रेरक संस्था को राज्य के कानूनों से जकड़ने के बदले राज्य

को अैसी संस्था के हाथ में नेतृत्व देना चाहिअे। अुसके संचालकों से प्रेरणा और सलाह लेनी चाहिअे।

२७।११।३९ का० का०

कपोत-दर्शन

नवंबर के अंक में हमने लिखा था कि सवाअी भुशुंडि और घूघूकाका का चिर-वियोग हमें दुःखद होगा और अुनकी याद हमें हमेशा सताया करेगी। लेकिन काल 'निरवधि' है और पृथ्वी 'विपुल' है। सवाअी का अेक अुत्तराधिकारी अब अेकाअेक प्रकट हुआ है।

अब हमारा पुनर्जन्म में कुछ-कुछ विश्वास हो चला है। सवाअी भुशुंडि को हम गरुड को रामायण सुनानेवाले भुशुंडि का ही युगावतार मानते थे। अब हितोपदेश के कपोतों के राजा चित्रग्रीव का आधुनिक अवतार कंबुग्रीव प्रकट हो रहा है।

पुराने जमाने में कबूतर सन्देश-वाहकों का काम बडी अीमानदारी से किया करते थे। कंबुग्रीव भी हमें कोअी न कोअी पैगाम जरूर सुनायेगा। सवाअी का जिस प्रकार अपना अेक अलग दर्शन था अुसी प्रकार संभवतः कंबुग्रीव का भी हो।

काक-दर्शन में अगर अेकदेशीयता का दोष है तो कपोत-दर्शन भी दोष से मुक्त तो नहीं है। कबूतर पंडितों की जाति का होता है। वह अपने दरबे में रहता है। कबूतरखाने की भी अेक संस्कृति होती है। अेक अखंड जीवन को हवाबन्द कमरों में विभाजित कर देना ही अुसकी विशेषता है। मतलब, सवाअी और कंबुग्रीव के दर्शनों में यह साधर्म्य है कि दोनों में अेक अेक जबरदस्त नुक्स है। अेक अेकांगी है तो दूसरा भेद-प्रवर्तक है। अेक पंडितों की दृष्टि का प्रतिनिधि है तो दूसरा विशेषज्ञों की संकीर्ण वृत्ति का।

परंतु कपोत-दर्शन और कपोत-दिल के संबंध में ये परंपरागत कल्पनायें हैं। कंबुग्रीव तो अिस क्रान्तियुग का जीव है। अिसलिअे अुसके संवादों में तंगदिली या कपोत-दिली की अपेक्षा दर्शन की विशालता और अुज्वलता ही अधिक रहेगी अैसी आशा हम कर सकते हैं।

अुसमें विनोद और निर्दोष व्यंग अवश्य रहेगा। क्यों कि वह तो जीवन का जायका है।

का० का०

क्या मुसलमान हिन्दुस्तानी नहीं हैं?

जब कॉंग्रेस ने वर्धायोजना का पुरस्कार किया और कॉंग्रेसी सरकारों ने अुसका अमल करना शुरू किया तब मुस्लिमलीग की कौन्सिल ने अिस वर्धा-योजना की जांच करने के लिअे अेक कमिटी मुकर्रर की। पिरपुर के राजा सय्यद मुहम्मद महदी अिसके संयोजक थे। अिस समिति ने वर्धा-योजना के खिलाफ़ जो जो बातें लिखी हैं यहां अुनकी चर्चा करने का हमारा विचार नहीं है। हम तो, अुन्होंने मुसलमानों को जो सूचनायें दी हैं, अुनमें से अेक ही वाक्य ले कर, अुसके क्या मानी हो सकते हैं, यह देखना चाहते हैं। वह वाक्य है:—

'The Muslims, therefore, in India, or in any other country, form a nationality of their own with their own viewpoint on all aspects of life, and can owe no allegiance to soil, blood or colour.'

अर्थात् "मुसलमान कहीं क्यों न रहें, ख्वा हिन्दुस्तान, ख्वा और किसी देश में, अुनका तो अपना अेक निराला ही राष्ट्र होता है और जिन्दगी के तमाम पहलुओं को देखने की अुनकी अपनी अेक अलग खास निगाह होती है। मुसलमान किसी भी जमीन, खून या रंग से व ादार नहीं रह सकते '।

यह तो हम अेक अनोखी ही बात सुन रहे हैं। जिस धर्म में रोज की पांच नमाजें भी काबा की तरफ मुँह करके पढ़नी होती हैं अुसके अनुयायियों के लिअे यह कहना कि वे किसी भी ज़मीन के प्रति निष्ठा नहीं रखते, हमारे ध्यान में नहीं आता। खैर, अिस बात को भी छोड़ दीजिये। मगर जब हमने खिलाफत के आन्दोलन में राष्ट्रीयता के ख़याल से हिस्सा लिया अुस वक्त भी हमसे यही कहा गया था कि जज़ीरत-अुल-अरब मुसलमानों की खास पाक भूमि है। दुनियाभर के मुसलमान अुसे आज़ाद रखने के लिअे बंधे हुअे हैं। मुसलमानों के लिअे वह धर्मभूमि है। तब तो किसीने यह नहीं कहा कि The Muslims can owe no allegiance to soil, blood or colour.

जब सर मुहम्मद अिक़बाल ने यह गाया था कि 'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा' तब भी हम यही मानते थे (और आज भी मानते हैं) कि हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दी ही हैं, और हिन्दुस्तान जितना हिन्दुओं का है अुतना ही हिन्दुस्तान मुसलमानों का भी है। हम यह भी जानते हैं कि हिन्दुस्तान में आज जितने मुसलमान हैं अुनमें बाहर से आये हुअे बहुत कम हैं। बाकी के सब पहले से अिसी देश के हैं। अुन्होंने अिस्लाम का स्वीकार किया अिसलिअे अुनकी हिन्दुस्तान के प्रति जो निष्ठा है, वह कम या गायब होने का कोअी कारण नहीं है। अुन्हें हिन्दुस्तान में जो स्थान है वैसा दुनिया के अन्य किसी भी स्थान में नहीं है। हिन्दुस्तान की जो प्राचीन संस्कृति है वह अुन्हीं के पुरखाओं की है।

जो मुसलमान परदेश से आ कर यहां बसे हैं वे भी पूरे पूरे यहां के हो गये हैं। अुन्होंने भी कभी स्वदेशी मुसलमानों की जमात अलग और बाहर से आये हुअे मुसलमानों की जमात अलग, अैसा भेद नहीं किया। अीसाअियों में युरोपियन-अीसाअी, अिण्डियन-अीसाअी, और अैंग्लो-अिण्डियन-अीसाअी अैसा भेद पाया जाता है। मुसलमानों ने अैसा भेद नहीं किया। वे सब हिन्दुस्तानी ही बन गये हैं।

"मुसलमान न तो किसी देश के हैं और न अुनका कोअी देश हो सकता है," यह कह कर लीग की अिस कमेटी ने हिन्दुस्तानी मुसलमानों की कोअी सेवा नहीं की है।

राष्ट्र की भावना का जमीन के साथ अविच्छेद्य संबंध है। अेक देश में रहनेवाले लोग अेक राष्ट्र के हो जाते हैं, फिर अुनका मज़हब चाहे कोअी भी हो। जब कैथॉलिक स्पेन के लोगों ने अिंग्लैंड पर चढ़ाअी की अुस वक्त अिंग्लैंड की नाविक-सेना का सेनापति कैथॉलिक था। अुसने भी अिंग्लैंड की रक्षा के लिअे स्पेन के विरुद्ध युद्ध किया। डा० सनयातसेन अीसाअी था। तो भी अुसने सारे चीन देश को अेक राष्ट्र समझ कर अुसकी आज़ादी के लिअे अन्त तक कोशिश की। मुसलिम मुल्कों का भी यही अितिहास है, वरना अीरान, अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान, अरबस्तान

आदि देशों की अपनी अलग अलग हस्ती ही न होती। हर अेक धर्म अेक अलग राष्ट्र है अैसा कहने से दुनिया को स्वातंत्र्य और शान्ति की आशा ही छोड़नी चाहिअे।

हमें संतोष अिस बात का है कि सौभाग्य से सभी, या बहुसंख्यक, मुसलमानों की राय अैसी नहीं है। वे भारत को अपना वतन मानते हैं और अुसे प्यार भी करते हैं। जो यह कहते हैं कि मुसलमान किसी जमीन से मुहब्बत नहीं करते अुनसे हम यह जानना चाहेंगे कि क्या मुसलमान सामान्य नागरिक के अधिकार नहीं चाहते? क्या वे यह नहीं मानते कि सभी धर्म और जातियों के नागरिकों के अैसे कुछ सामान्य अधिकार होते हैं जिनका मजहब से कोअी ताल्लुक नहीं होता? क्या अैसे सामान्य अधिकारों से अुन्हें कोअी सरोकार नहीं?

कुछ जातिवादी हिन्दू कहते हैं कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है। अब मुसलिम लीग की कमिटी कहती है कि मुसलमानों का कोअी देश ही नहीं हो सकता। दोनों के मतों में विलक्षण समानता है। सवाल होता है कि क्या मुसलमान हिन्दुस्तान पर अपना कोअी हक बतलाना नहीं चाहते?

मुसलिमलीग की कमिटी कुछ भी कहे कॉंग्रेस तो यही कहती है कि हिन्दी मुसलमान भी हिन्दुस्तान के हैं और हिन्दुस्तान अुनका है। हमें खुशी अिस बात की है कि मुस्लिम-लीग के सदर श्री जीना साहब ने अीद के अुपलक्ष में अपने सहधर्मियों को जो पैग़ाम दिया है अुसमें भी हमारी बुनियादी अेकता पर ही जोर दिया है।

का० का०

'आश्रम का अुल्लू' कौन है?

'आश्रम के अुल्लू' का असली नाम प्रकट करने के लिअे कअी मित्र आग्रह कर रहे हैं। परंतु हमें खेद है कि लेखक ने हमें वैसा करने की सख्त मनाही कर दी है। लेखक महोदय ने 'अुल्लू' अुपनाम धारण तो कर लिया; लेकिन अब अुन्हें अुस नाम से ख्याति पाने में शर्म आती है। हम मजबूर हैं! हम शिष्टाचार की मर्यादा नहीं तोड़ सकते। लेकिन फिर भी हमारे पाठकों का अिस विषय में क्या अनुमान है यह जानना मनोरंजक होगा। जिन्हें अिस विषय में दिलचस्पी है वे पाठक अगर अेक बुक पोस्ट कार्ड पर 'आश्रम का अुल्लू' =……… … अितना लिख कर भेज दें तो अुनके अनुमानों का सारांश हम पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करेंगे। मतदाता का नाम प्रकट न करने का जिम्मा हमारा।

—संपादक

सूचना—

‘सर्वोदय’ में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित को दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, ‘सर्वोदय’, वर्धा।

Reg. No. N. 741

नान्यः पन्थाः

जबकि सारी दुनिया हिंसात्मक तरीकों से डूब रही है, हमारा अुन तरीकों को फिर से अपनाने का विचार करना भी अत्यन्त दुःखद घटना होगी। अिसलिअे हमें संपूर्ण हृदय से और दृढ़ता से अहिंसा के तरीके पर ही डटे रहना चाहिअे और अुसके बदले हमारे सामने जो जो पर्याय पेश किये जावें अुनको अपनाने से अिनकार कर देना चाहिअे। हमें यह हरगिज़ नहीं भूलना चाहिअे कि विभिन्न प्रकार के तरीके साथ-साथ काम नहीं कर सकते। क्योंकि हर अेक तरीका दूसरे को कमज़ोर और बेतासीर बना देता है। अिसलिअे हमें बुद्धिमानी से अपना रास्ता चुनकर दूसरे तरीकों से खेल-तमाशा करना छोड़ देना चाहिअे। सबसे मुख्य बात तो यह है कि हमें महसूस करना चाहिअे कि अहिंसा अहिंसा ही है। वह केवल अेक शब्द ही नहीं है। जब कि हमारे दिल दूसरी तरह से सोच रहे हों, जबकि हमारे मुंह से अुससे भिन्न या विरोधी वचन निकलते हों, और जब कि हमारी कृतियां अुसके बिलकुल विपरीत होती हों, तब केवल यंत्रवत् प्रयुक्त करने के लिअे वह अेक शब्दमात्र नहीं है। अगर हम अुस शब्द के साथ न्याय करना चाहते हैं, अपने और अपने कार्य के साथ न्याय करना चाहते हैं, तो हमें अुस सिद्धान्त के प्रति हर तरह से सच्चे होना चाहिअे।

—पं० जवाहरलाल नेहरू

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा

अंक ६ वाँ

अेक अंक...	.... रु०	०—६—०
वार्षिक ...	... रु०	३—०—०
बर्मा मे ...	... रु०	३—८—०
विदेश मे ...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)		

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है :

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(२) वोरा अैण्ड कंपनी, ८, राअुण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद ।

(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता ।

(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली ।

(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू ।

(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर ।

(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअूस, नाणावट, सूरत ।

१८

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जनवरी, १९४०
वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

मंत्र—अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया ।
अिति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

अर्थ—(आत्मतत्त्व) ज्ञान से भिन्न बताया गया है और अज्ञान से भी भिन्न बताया गया है। जिन्होंने हमें वह समझा दिया अन ज्ञानी पुरुषों से हमने यह सुना है।

टिप्पणियां—(१) 'विद्यया' और 'अविद्यया' में जो तृतीया है वह पंचमी के अर्थ में प्रयुक्त है। मंत्र १३ पर से यह विदित होगा। तृतीया का अिस प्रकार पंचमी के अर्थ में प्रयोग हो सकता है। वेदों में अिस प्रकार का प्रयोग कअी जगह पाया जाता है। अिसके अतिरिक्त, यजुर्वेद में अिस जगह 'विद्याया' और 'अविद्याया' अैसे स्पष्ट पाठ ही है। छन्द की सुविधा के लिअे अुपनिषत् में वे बदल दिये गये हैं। (२) 'ज्ञान और अज्ञान से आत्मतत्त्व या आत्मज्ञान भिन्न वस्तु है', यह अिस मंत्र का अर्थ केनोपनिषत् के निम्न वचन में है—

"अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ।
अिति शुश्रुम पूर्वेषां येनस्तद्व्याचचक्षिरे ॥"

मंत्र—विद्यां चाविद्यांच यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

अर्थ—ज्ञान और अज्ञान दोनों सहित जो अुस आत्मतत्त्व को जानते है वे (अुस आत्मतत्त्व के सहारे) अज्ञान से मृत्यु को लांघ कर ज्ञान से अमृत को पहुंचते है।

टिप्पणियां—(१) विद्या और अविद्या दोनों अलग अलग स्थापित करके दोनों के संयोग का प्रतिपादन करने का अुद्देश तो अिस मंत्र में है ही। परन्तु अिसके अतिरिक्त तीसरी अेक वस्तु-आत्मज्ञान की ओर ध्यान दिलाना है। अुस तीसरी वस्तु के आधार से दोनों का योग सफल होता है। (२) मृत्यु के पार जाना और अमृत को पहुंचना, ये दोनों अेक ही फल के निवृत्त और प्रवृत्त अंग है। नदी पार करना और अुस पार के पेड़ों के फल खाना, ये दोनों क्रियायें मिल कर अेक पूरा कार्यक्रम बनता है।

राष्ट्रीय ग्राम-शाला के अनुभव

(गांव थामणा, जिला खेडा)

[नरहरि द्वा. परीख]

प्रचलित शालाओं के पाठ्यक्रम में, समय-पत्रक में, शिक्षा की पद्धति में, शिक्षा के अुद्देश्य में, शाला के वातावरण में–अैसी छोटी-बडी हरेक वस्तु में परिवर्तन किये विना वर्धा-शिक्षा का प्रयोग किसी भी स्थान पर अच्छी तरह नहीं चल सकेगा। अैसा परिवर्तन करने के लिअे सिर्फ विद्यार्थियों की ही नहीं, बल्कि अुनके मां-बापों की और प्रयोग का अमल करनेवाले शिक्षकों की भी पूरी पूरी तैयारी होनी चाहिअे। नये प्रयोग का पूरा पूरा भेद शायद अुनकी समझ में न भी आये, तो भी प्रचलित पद्धति से यह नयी चीज अच्छी है, अैसे विश्वास से अुसका अमल करने का अुत्साह तो अुन लोगों में होना ही चाहिअे। जब से गांधीजी ने नयी तालीम के बारे में अपने विचार प्रकट करना शुरू किया तब से मैं अैसे अुत्साह और श्रद्धावाले गांव की तलाश में था।

गुजरात के अेक तेजस्वी, कार्यदक्ष और ग्राम-सेवारत युवक श्री बबलभाआी सन् १९३५ में जेल से छूट कर आये, तब से अुन्होंने खेडा जिले के मासरा नाम के अेक बहुत छोटे और पिछडे हुअे गांव में रह कर ग्राम-सेवा का काम शुरू किया। अुनके काम का असर अिर्दगिर्द के गावों में भी होने लगा। मासरा के नजदीक के थामणा गांव और अुसकी शाला के साथ भी अुन्होंने गाढा संबंध बांध लिया। थामणा गांव की आबादी करीब करीब दो हजार है। अिस गांव में ब्राह्मण, बनिये, पाटीदार, मुसलमान, बढ़आी, लुहार, कुम्हार, तेली, मोची, नाआी, ढेड, चमार, भंगी आदि सब कौमों के लोग रहते हैं। गांव का मुख्य धन्धा काश्तकारी होते हुअे भी गांव में कारीगरवर्ग काफी तादाद में मौजूद है। अिसलिअे यदि यह गांव वैसा निश्चय कर ले, या अुसके लिअे वैसा करना लाजिमी हो जावे, तो वह आसानी से स्वयं पूर्ण हो सकता है। अितनी ज्यादा आबादी होने पर भी दूसरे गांवों के मुकाबले में यह गांव शहर के असर से ठीक ठीक

बचा हुआ है। ये सब सुविधायें होने से प्रयोग के लिअे यह गांव पसंद किया गया। बबलभाओी ने गांव के लोगों के सामने हमारा विचार पेश किया। गांव के लोगों ने, शाला के विद्यार्थियों ने और शिक्षकों ने बड़े अुल्लास से अिस विचार को स्वीकार कर लिया। शुरू में गांव के लोगों ने जो अुत्साह दिखाया अुसमें अुत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गयी। गांव के लोग हमें सदा सहयोग देते आये हैं और शाला के बारे में हमने जो जो मांगें कीं अुनको अुन लोगों ने पूरा किया।

गांव की शाला किराये के मकान में चलती है। तकली, धुनकी और चरखे की प्रवृत्ति के लिअे अिस मकान में पूरी जगह न होने के कारण गांव के लोगों ने गांव की धर्म-शाला की, करीब रुपया १५०० खर्च कर के मरम्मत करायी। अुसका अेक विभाग और गांव के पुस्तकालय का अेक विभाग शाला के अुपयोग के लिअे दिया। पुरानी पाठशाला के अूंचे दरजे में अंग्रेजी का अेक वर्ग जुड़ा हुआ था। मुझे लगा कि यदि अूंचे दरजे के विद्यार्थी अंग्रेजी की जगह अपना समय अुद्योग के लिअे दे तो सारी शाला में अुद्योग का वातावरण अच्छी तरह जम जायगा। अिसलिअे अंग्रेजी का वर्ग हटा देने की सूचना मैंने गांव के लोगों को दी और अुन्होंने तुरन्त ही अुसको स्वीकार कर लिया। जबसे नया प्रयोग शुरू करने की बात हुअी तबसे शिक्षकों ने कातना और धुनना सीखना शुरू किया और विद्यार्थियों को भी शाला के नियत समय के अतिरिक्त समय में कातना सिखाना शुरू करके नये प्रयोग के लिअे वातावरण तैयार किया।

अिसके बाद सरकार और ज़िला-स्कूल-बोर्ड से नया प्रयोग शुरू करने के लिअे मैंने अिस शाला की मांग की। और ता. १:३:३८ से सरकार की अनुमति से खेड़ा ज़िला स्कूलबोर्ड ने यह शाला प्रयोग के लिअे मेरे सुपुर्द कर दी। ता. २१:९:३८ के रोज, 'चरखा बारस' (गांधी-जयंती) के दिन अिस प्रयोग का आरंभ किया गया।

शुरू में तीन दरजों में अिस प्रयोग के अनु-सार नया पाठ्यक्रम दाखिल करने का हमने निश्चय किया। बालवर्ग में बहुतेरे विद्यार्थी सात साल से छोटी अुम्र के थे। अिसलिअे बालवर्ग के लिअे नये पाठ्यक्रम की पूर्व तैयारी में सहायक हो, अैसा पाठ्यक्रम हमने तैयार कर लिया। वर्धायोजना में विद्यार्थी को शाला में भरती करने की अुम्र पूरे सात साल की रखी गयी है और अिसमें बालवर्ग को स्थान नहीं दिया गया। परंतु बालक पांच साल के हो जायें अुससे पहले ही अुन्हें शाला में भरती करने के लिअे, खास करके मध्यम वर्ग और अुच्च श्रेणी के मां-बाप, आतुर हो ही जाते हैं। अिसलिअे बम्बअी-सरकार की अिस सूचना का, कि छः साल पूरे होते ही बालक को शाला में भरती किया जाय, अमल कितने ही स्कूलबोर्डों ने अभी तक नहीं किया। यह परिस्थिति होने से छः साल के बालकों को शाला में लेना ही पड़ेगा अैसा सोच कर बम्बअी सरकार की वर्धा-योजना की सलाहकारकमिटी ने वर्धाशिक्षा की पूर्व-तैयारी के तौर पर अेक साल का पाठ्यक्रम रखने के लिअे सूचना दी है और अुसका पाठ्यक्रम थामणा की शाला के बालवर्ग के पाठ्यक्रम के अनुसार बनाया है। अभी थामणा की शाला में बालवर्ग के सिवा पहले तीन दरजों में वर्धाशिक्षा-योजना के लिअे

बम्बअी सरकार का बनाया हुआ अभ्यासक्रम चलता है।

हमने शुरू में अूचे दरजे में—जिसमें पुराना पाठ्यक्रम चालू था—शाला के आधे समय में अुद्योग जारी किया। मगर अनुभव से मालूम हुआ कि अितना समय अुद्योग के लिअे देने से पुराना पाठ्यक्रम पूरा नहीं कराया जा सकता। अिसलिअे अब अूंचे दरजे में अेक घण्टा और बीस मिनिट अुद्योग रक्खा गया है। अब पुराना पाठ्यक्रम अच्छी तरह से कराया जा सकता है। यहाँ अितना कह देना आवश्यक है कि शाला में यह प्रयोग दाखिल होने से विद्यार्थियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ है। अिससे पुराने पाठ्यक्रम के अितिहास-भूगोल आदि विषयों में, जिनमें पाठ्यक्रम के कारण से और अिन्स्पेक्टरों की मांग से रटने के अूपर ज्यादा भार देना पड़ता है, अब पुराने ढंग से अध्ययन करना विद्यार्थियों को अच्छा नही लगता। पुराने अिन्सपेक्टरी ढंग से अिन विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाय, या अुन्हें प्रश्न पूछे जायें तो संभव है कि वे अिन विषयों मे कच्चे मालूम हों; मगर मैं तो अैसा मानता हूं कि अुद्योग के पीछे समय देने से अिन विद्यार्थियों ने ज्यादा ठोस और अच्छी तालीम ही हासिल की है। विद्यार्थियों का रटा हुआ ज्ञान शायद कम होगा, मगर अुनका सामान्य ज्ञान बहुत बढ़ गया है। अिसका श्रेय, यह आजमाअिश शुरू होने से शाला में जो नया जीवन और नया चैतन्य आया है, अुसको ही देना चाहिअे। नये प्रयोग का विद्यार्थियों पर जो असर हुआ है अुसकी मुख्य मुख्य बातें नीचे लिखे अनुसार हैं :—

(१) अुन लोगों में स्वच्छता, शान्ति, नियमितता और नियमपालन की आदत ड़ी है। मिलजुल कर काम करने की और दूसरों की मदद करने की वृत्ति अुन लोगों में आने लगी है।

(२) विद्यार्थियों में तेजस्विता आयी है, स्फूर्ति दिखायी देती है और स्वतंत्रता की भावना जाग्रत हुअी है। स्वातंत्र्य की भावना में पुराने विचार के कअी लोगों को तो अतिशयता भी लगेगी, क्योंकि विद्यार्थी शिक्षकों से दबे नहीं रहते हैं, रट रट कर अपना अभ्यास बराबर तैयार नहीं करते।

(३) खेल-कूद, व्यायाम और कवायद की तरफ वे ज्यादा ध्यान देते हैं। और अुनकी तंदुरुस्ती भी पहले की अपेक्षा अच्छी है।

(४) घर मे, खेत में और दूसरे कामों मे माँ-बाप को मदद करने की तत्परता विद्यार्थियों में आयी है। अिस वजह से गाँव के पुरुषों के मुकाबले मे स्त्रियों को यह शाला ज्यादा अच्छी लगती है। जो लड़का पहले अेक लोटा भी अुठाने से अिन्कार करता था वह आज घर का जो काम माँ कहे, वह बड़े चाव से करता है।

हमारे सुशिक्षित माने जानेवाले वर्ग में अेक अैसी मान्यता प्रवेश पा गयी है कि अुद्योग करना और मेहनत-मजदूरी करना विद्यार्थियों को अच्छा नहीं लगता। कहा जाता है कि विद्यार्थियों से दो तीन घण्टों तक कातने-धुनने का या अैसा दूसरा कोअी काम कराया जाय तो वे अुकता जाते हैं। अैसा भी कहा जाता है कि हमें अुनसे जबरदस्ती मेहनत-मशक्कत करवानी पडेगी और वह अुनके साथ अेक किस्म की ज्यादती-सी हो जायगी। पर यह अेक बड़ी गैर-समझ

है। जिस काम में विद्यार्थी को हाथ-पैर चलाना पडे अैसा काम अुसको ज्यादा पसंद आता है, बनिस्बत पढ़ने लिखने के। बडे बडे शिक्षा-शास्त्रियों ने तो यह बात साफ तौर पर कही है कि बालको के शिक्षा-क्रम में से या बालक के जीवन में से मेहनत-मजदूरी या दस्तकारी निकाल दी जाय तो अुसकी शक्ति बढ़ने नहीं पावेगी। शिक्षा-शास्त्री कहलाने वाला कोअी भी शख्स अिस बात से अिन्कार नही कर सकेगा। परंतु आज के शिक्षाशास्त्रियों के निजी जीवन मे दस्तकारी या मेहनत-मजदूरी का कोअी स्थान नहीं रहा है। वे लोग अपना जीवन अैसे तंग दायरे में बिताते हैं कि आम जनता से अुनका ठीक ताल्लुक नही रहता। अिसी कारण किसी अुपयोगी या अुत्पादक अुद्योग के बदले तरह तरह की अनुत्पादक प्रवृत्तियां, जिनको "हैन्डवर्क" नाम दिया जाता है, पाठशालाओं में शु करते हैं। अिन पाठशालाओं को सजाने के पीछे बहुत रुपया खर्च होता है और वह तालीम नहीं मिलती जो कि हाथों से किये हुअे किसी न किसी अुत्पादक परिश्रम ही से मिल सकती है।

अिस प्रयोग से हमें यह अनुभव हुआ है कि बालक अुद्योग बडी दिलचस्पी और लगन से करते हैं। अितना ही नहीं, बल्कि जीवन के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखने वाले अुद्योग से बालक को ज्यादा अच्छी और ठोस तालीम मिलती है।

परंतु प्रश्न तो यह पूछा जाता है कि भाषा, गणित, अितिहास, भूगोल आदि सब विषय आप अुद्योग द्वारा कैसे सिखाते है? यह कहने की जरूरत नहीं है कि 'अुद्योग' शब्द में बालक की सामाजिक और प्राकृतिक परिस्थिति भी अंतर्भूत है। अिन तीन साधनों द्वारा गणित का अच्छा और भाषा व भूगोल का साधारण ज्ञान हम बालकों को करा सके है। हमारे समाज-विद्या के पाठ्यक्रम में जो अितिहास का विभाग है वह तीन दरजे तक के छोटे विद्यार्थियों को हम नहीं पढ़ा सकते। हमने आरंभ तो अिस तरह किया कि जो विषय अिन तीन केन्द्रों द्वारा पढ़ाये जायँ अुन्हे पुराने ढंग से ही पढ़ाना जारी रक्खा। परन्तु थोडे ही समय में हमें पता चला कि यह नीति गलत है और वह अिस प्रयोग को नुकसान पहुंचावेगी। अब हमने अैसा नियम रक्खा है कि अिन तीन केन्द्रों के जरिये जितने विषयों का ज्ञान दिया जा सके अुतना ही सही। हालांकि हमारे शिक्षकगण हमेशा कहा करते हैं कि पाठ्यक्रम में लिखी हुअी कअी बातो का अनुबंध वे नही कर सकते। अनुबंध का यह शास्त्र नया है। अिस शास्त्र की छोटी-मोटी बातें और पद्धति धीरे धीरे ही विकसित हो सकेगी। कअी प्रतिभाशाली शिक्षक बालको को पढ़ाने का कार्य प्रत्यक्ष करने लगेंगे तभी अनुबंध की सब बातें निश्चित हो सकेंगी। हम चाहे जितने बडे पंडित क्यों न हों, तो भी अनुबंधी पाठ्यक्रम हम कार्यालय में बैठे बैठे नहीं बना सकेंगे। यह भी कह देना जरूरी है कि केवल पंडितों या शिक्षाशास्त्रज्ञों द्वारा भी यह अनुबंधी पाठ्यक्रम नहीं बनाया जा सकेगा। अिस पाठ्यक्रम के बनानेवाले के लिअे अुद्योग का ज्ञान आवश्यक ही है। अेक ही नहीं, अनेक मूल-अुद्योगों की बारीकियों से जो परिचित होंगे और जिन्होने समाज व प्रकृति का ज्ञान किताबों से ही नहीं,

लेकिन समाज व प्रकृति के प्रत्यक्ष संपर्क से, अुनके साथ ओत-प्रोत ही कर, हासिल किया होगा, वे ही अैसा पाठ्यक्रम बनाने के काबिल होंगे। अैसा परखा हुआ पाठ्यक्रम मिल जाने के बाद भी स्वयं हाथ से काम करने के लिअे तत्पर और बालकों के अुपयोगी सामान्य ज्ञान से युक्त शिक्षकों की आवश्यकता तो रहेगी ही। आज के जैसे शिक्षकों को थोडी मोटी-मोटी सूचनायें दे देने से काम नही हो सकेगा। अिस नयी शिक्षा-योजना को शिक्षा-विभाग की सूचनाओ तथा परिपत्रों से भी जकड़ कर तंत्रबद्ध और जड़ नहीं करना चाहिअे। यह सारी योजना अेक जिन्दा चीज़ है। अुसे जीते-जागते शिक्षक ही कामयाब कर सकेंगे। अिसके लिअे अिन्सपेक्टरों और सुपरवाअिज़रों को अपने काम करने के तरीके में परिवर्तन करना पडेगा। हिदायतें और हुक्म देनेवालों की हैसियत छोड़ कर अुन्हे स्वयं काम कर के दिखलानेवाले मार्गदर्शक बनना पडेगा।

–२–

अुद्योग-द्वारा स्वावलंबन के बारे में हम थामणा में क्या कर सके है, अुसकी ब्यौरेवार जानकारी अब पेश करता हूं।—

ता. १:१०:३८ से ता. ३१.३:३९ तक के छः महीनों मे १५० विद्यार्थियों के कातने-धुनने की जो १३३ दिन की मजदूरी हुआी अुसमें से विद्यार्थियों को सिखाने मे आया हुआ नुकसान और घाटा और अन्य छोटे-मोटे खर्च बाद करते हुअे बची रही पक्की कमाअी की रकम रुपया ६७-९-० हुअी। अिसके बाद ता. १:४:३९ से ता. ३०:९:३९ तक की दूसरी छःमाही में १२८ दिन की २१० विद्यार्थियों की वैसी ही पक्की कमाअी रुपया ४८-१०-० हुअी। दूसरी छःमाही की कमाअी कम होने का कारण यह है कि थामणा गांव की लड़कियों की शाला लड़कों की शाला के साथ छः महीनों के बाद हमने जोड़ दी। और सब लड़कियों को शुरू से दस्तकारी सिखाने में नुकसान ज्यादा आया। मैं कह चुका हूं कि अूंचे दरजे मे अुद्योग का समय दूसरी छःमाही में हमने घटा दिया। वह भी कमाअी कम होने का अेक कारण है। हमारे शिक्षकों की तनख्वाह का माहवार खर्च करीब करीब रुपया ४०० है। अुसका हम ख्याल करें तो कहना होगा कि दस्तकारी की कमाअी से स्वावलंबन हासिल करने के आदर्श से हम अभी बहुत दूर हैं। हमें यह स्वीकार करना चाहिअ कि हमारे प्रयत्नों में कअी त्रुटियां है। हमारे सब शिक्षक कातने-धुनने में पर्याप्त रूप से कुशल न थे। मैं तो अिस नतीजे पर आया हूं कि, हमारे शिक्षकगण के लिअे कातने और धुनने के लिअे चार-पांच मास की तालीम पर्याप्त नहीं हो सकती। हमे यह अनुभव अवश्य हो चुका है कि अधिक कुशलता और अेकाग्रता से प्रयत्न करने से नुकसान कम हो सकता है। जो माल तैयार किया जाय—जैसा कि हमारे यहां सूत—वह परिमाण व गुण में नियत किये हुअे दरजे का हो तब ही विद्यार्थी को सच्ची तालीम मिल सकती है। अिसमें जितनी शिथिलता या न्यूनता रहेगी अुतनी मात्रा में विद्यार्थी को गलत तरीके से काम करने की आदतें पडेगी और अुसे कु-शिक्षा मिलेगी। अर्थात् शिक्षा की दृष्टि से भी स्वावलंबन बडे ही महत्त्व की वस्तु है। अिस पहलू की ओर ध्यान दिये बिना वर्धा-शिक्षा-योजना कामयाब हो ही नहीं सकती।

अुद्योग की कमाअी के सिलसिले में और अेक बात का संकेत यहां कर दूं। हमारे देश में गरीबी अितनी है कि, विद्यार्थी अपनी दस्तकारी से जो कुछ कमाअी करे अुसका खासा हिस्सा किसी न किसी रूप में अुसीको दे दिया जाय, यह जरूरी है। हम जानते ही हैं कि आर्थिक मुसीबत ही के कारण पढ़ाअी के काबिल अुम्र के कअी बालक पाठशाला में नहीं आ सकते। कअी बालकों को ढोरों की देखभाल का या चरवाहे का काम करना पड़ता है। कअियों को खेतों में काम करनेवाले अपने मा-बापों को रोटी पहुंचाने का काम करना पड़ता है और अन्य कअियों को अपने छोटे भाअी-बहनों को संभालने के लिअे घर पर रहना पड़ता है। कअी बालकों को पहनने के लिअे काफी कपड़े भी नहीं मिलते। थोड़ेसे कपड़े होते भी हैं तो अुन्हें धोने की सहूलियत नहीं होती। कअी बालकों को भर-पेट खाना हासिल नहीं होता। फिर स्लेट या किताब के लिअे खर्च करने की तो बात ही कहां? अिसलिअे विद्यार्थियों के अुद्योग से जो कुछ कमाअी हो अुसमें से अुनके कपड़ों के लिअे, कलेवे के लिअे और अुनकी स्लेट, कलम और किताब वगैरह के लिअे पैसे देना अुचित है।

कमाअी और स्वावलंबन का विचार करते हुअे और अेक बात जो मेरे मन में रह गयी है, जिसका अमल हम थामणा की पाठशाला में नहीं कर सके, अुसका अुल्लेख भी कर दूं। मैं मानता हूं कि हरेक वर्धा-शाला के साथ अेक कुआं और थोड़ी-सी जमीन होनी ही चाहिअे। हमारे बालक अितनी अस्वच्छ हालत में पाठशाला में आते हैं कि अुन्हें नहलाना और अुनके कपड़े धुलवाना, दूसरे सब विषयों को अेक तरफ रख कर भी करना बहुत जरूरी हो जाता है। अिस काम के लिअे शाला को अेक अलाहिदा कुअें की जरूरत है। पास ही थोड़ी जमीन हो तो अुसमें बालक खोद कर क्यारियां बनावें और अुनमें सब्जी, तरकारी आदि बोवें, फल और फूल के पौदे भी बोवें लगावें, अपने आप कुअें से पानी निकाल कर अुन्हें दें। अिसमें बीज के सिवा और कुछ भी खर्च न होना चाहिअे। खाद के लिअे अुपयोगी, मगर गाँव के लोग जिसका अुपयोग नहीं करते, अैसा सब कूड़ा-कर्कट अिकट्ठा कर के शाला अुसका खाद बनावे। अैसे छोटे बगीचे में जो पैदाअिश होगी वह बालकों की खुराक में अेक कीमती चीज हो जायेगी। आज की हमारी खुराक शरीर के पोषण की दृष्टि से बहुत न्यूनतापूर्ण है। अुसमें सादे और सस्ते फल और सब्जी-तरकारी हम दाखिल कर सकें तो वह बहुत लाभदायी होगा। किसी दिन बालकों को टमाटर मिले, किसी दिन गाजर या मूली मिले, किसी दिन अच्छे साग के पत्ते मिलें, किसी दिन केला या पपीता का अेकाध टुकड़ा ही मिले तो अुनके शरीर की वृद्धि में वह बहुत अुपकारी होगा। ये सब बातें हमने गांव के लोगों के सामने रक्खी हैं और अुनका महत्त्व समझ कर गांव के लोगों ने छः अेकड़ का अेक खेत शाला के मकान और अुसके चारों ओर के मैदान के लिअे देना निश्चित किया है।

विद्यार्थी शाला की सफाअी का काम करें, शाला को लीपने-पोतने का काम करें, शाला के मकान की मरम्मत का काम करें, अिर्द-गिर्द से वस्तु अिकट्ठी कर के शाला में अेक संग्रहालय बनावें, अुत्सव के दिन शाला और

गांव की सजावट करें और अपने तथा गांव के लोगों के लिअे कुछ मनोरंजनात्मक कार्यक्रम रक्खें--आदि सब प्रवृत्तियों से यद्यपि पैसे के रूप मे कुछ भी कमाअी नहीं होती, तो भी अिस ढंग की मेहनत में विद्यार्थियों को बहुत आनंद आता है और अुससे अुन्हें ज्यादा शिक्षा मिलती है। अिसकी कीमत कूतने जायें तो रुपये-पैसों से ज्यादा होगी। अैसी प्रवृत्तियों के द्वारा विद्यार्थी अपने आसपास की कुदरत और समाज से परिचय पा कर अुसके संपर्क मे आता है, तथा अुसमें स्वावलंबन की वृत्ति पैदा होती है। अैसी सब प्रवृत्तियों द्वारा शाला का गांव के साथ निकट संबंध होता है।

हमारी शाला का गांव पर जो असर पड़ा है अुसका बयान अब मै करूंगा। शिक्षक और विद्यार्थी गांव-सफाअी का काम करते हैं। अुससे गाववालों में स्वच्छता का शौक पैदा हुआ है और वे अपने घर व आंगन साफ रखने लगे हैं। यह प्रयोग शुरू होने के बाद से गांव मे ७८ चरखे नियमित रूप से चलने लगे है।

पार साल गांव मे जितने छोटे-बड़े अुत्सव हुअे और वे जिस ढंग से मनाये गये अुससे गांववालों को अुपयोगी शिक्षा और नये संस्कार मिलने लगे हैं। आजकल के हमारे अुत्सवों में कुछ मीठा खाना और घर में जो अच्छे अच्छे कपडे हों अुन्हें पहन कर मटकना ही रह गया है। परन्तु थामणा में अब अुत्सव का दिन अैसे आलस्य में नहीं, वरन सुबह से शाम तक भांति भांति के दिलचस्प और अुपयोगी कार्यक्रमों में बसर होता है। हर रोज सायंकाल को सामुदायिक प्रार्थना होती है। अिसमें गाँव के बहुतेरे भाअी-बहन शरीक होते हैं। प्रार्थना खतम होने पर रोज की खबरें सुनायी जाती हैं। अिसके अतिरिक्त गांव के मुख्य मोहल्ले मे अेक दीवार पर हर रोज नया नया बोधक मजमून लिखा जाता है जो आम लोगों की शिक्षा का अेक बड़ा साधन साबित हुआ है। हमारी कोशिश तो यह रही है कि अिस शाला की मारफत गांव को हम गांधीजी के आदर्श के अनुरूप बनावें। परन्तु अिस बडे काम के लिअे हमारी अपनी अयोग्यता कितनी बडी है और बाहरी वायुमंडल कितना प्रतिकूल है अुसका हमें पूरा खयाल है। फिर भी हमारे खयाल से हमारे अितने कमजोर यत्न के भी बहुत ही अच्छे परिणाम हुअे हैं। और यही बात हमारी श्रद्धा को बढ़ाती है।

शिक्षा और शब्दज्ञान

जीवन-विनिमय केवल सजीव अुपकरण द्वारा ही हो सकता है। संस्कारिता, जो कि मन का जीवन है, मनुष्य को मनुष्य द्वारा ही दी जा सकती है। शब्द-ज्ञान या धर्मशास्त्रों का परोक्ष ज्ञान हमें सिर्फ शब्दपंडित बना सकता है। शब्द जड और केवल परिणामवाचक होते हैं। वे अिकट्ठे होते रहते हैं और अनके ढेर का संरक्षण बडी सावधानी से किया जाता है। लेकिन संस्कारिता तो जीवन में ही विकसित होती है, गतिमान होती है और वृद्धिगत होती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

क्या मधुमक्खी धूप खा सकती है ?

[क्षितीशचन्द्र दासगुप्त]

कअी मास पहले की बात है कि कलकत्ते से स्वास्थ्य के विषय में अेक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित हुअी थी, जिसमें मधु और मधुमक्खी के बारे में अेक लेख था। अुसमें कुछ जानने लायक बातें थीं। किन्तु अुसमें निम्न लिखित बयान गलत था:—

"मक्खीरानी को देखने के लिये छत्ते को टुकड़ेटुकड़े करके तोड़ना पड़ता है। धूप तेज होने पर मधुमक्खी छत्ते से बाहर आ कर धूप खाती है। मधुमक्खियाँ हमेशा अपनी अेक आँख रानी मक्खी की तरफ रखती हैं।"

आजकल वैज्ञानिक ढंग से मक्खी-पालन किया जाता है। खास तरीके से बनाये हुअे काठ के बकस में मधुमक्खी रखी जाती है। अिस कृत्रिम घर में मधुमक्खी बहुत आराम से रहती है। अिस कृत्रिम बासे में साधारणतः दो बकस रहते हैं। अेक अूपर और अेक नीचे सजाया रहता है। बकस के तले अेक अलग तख्ता रहता है। अूपरवाले बकस के तले कोअी तख्ता नहीं होता और नीचेवाले बकसे के अूपर कोअी ढक्कन नहीं रहता। जरूरत के मुताबिक बकस के सब भाग खोले जा सकते हैं।

नीचेवाले बकस में कअी अेक हजार कर्मी-मक्खियाँ, कअीअेक पुरुष-मक्खियाँ और अेक रानी-मक्खी रहती हैं। नीचेवाला बकस बड़ा होता है। अिस बकस में मक्खी बच्चे पैदा करती है और अुनके रोज खाने के वास्ते मधु और फूल का पराग संचित रहता है। अूपर का बकस केवल मधु जमा करने के लिअे ही रक्खा जाता है। अूपरवाले बकस में रानी नहीं जाती; या अुसको अुसमें जाने नहीं दिया जाता। नीचेवाला बड़ा बकस तले की ओर थोड़ा कटा रहता है। अुस रास्ते से मधुमक्खियाँ आती-जाती रहती हैं।

मधुमक्खी के छत्ते बनाने के वास्ते बकस के भीतर कअीअेक काठ के चौखूटे फरेम आसपास लटका दिये जाते हैं। मक्खी पालनेवाले अपनी अिच्छा के मुताबिक फरेमों को हाथ से अुठा कर अुलटपलट कर सब मक्खियों की परीक्षा करते, रानी की खबर लेते और परीक्षा के बाद फिर सबको बकस में ठीक स्थान पर रख देते हैं। अतअेव मक्खीरानी को देखने के लिये छत्तों को तोड़ना नहीं पड़ता। छत्तों के अूपर हजार-हजार मक्खियाँ बैठी रहती हैं। अैसी हालत में मक्खी पालनेवाले अिन फरेमों को अेक-अेक करके हाथ से अुठा कर परीक्षा करते हैं। और मक्खी-रानी को खोज कर निकालते हैं।

अूपर के बकस में भी अुसी तरह के कअी-अेक फरेम रहते हैं। अिन फरेमों के छत्तों में केवल मधु संचित होता है। रानी जिससे अिन फरेमों में अंडे न दे सके अिसलिअे अुसे अूपर नहीं जाने दिया जाता। साधारणतः रानी अूपर नहीं आती। दुष्ट रानी पर अधिकार रखने के लिअे दोनों बकसों के बीच अेक जाल रक्खा जाता है। अिस जाल के भीतर से हो कर रानी अूपर नहीं आ सकती। लेकिन कर्मी मक्खियाँ अुसके भीतर से अूपर जा कर मधु अिकट्ठा करती हैं।

मधु निकालने के समय अूपर के पृथक् पृथक् छत्तों की कर्मीमक्खियों को नीचे के

बकस में झाड़ दिया जाता है। विशेष तरह से बने हुअे मधु निकालनेवाले पात्र की सहायता से छत्तों से मधु निकाला जाता है। अुन खाली छत्तों को फिर बकस के भीतर रख दिया जाता है। अुन छत्तों में मक्खियाँ फिर मधु अिकट्ठा करने लग जाती हैं। अंडों, बच्चों व छत्तों को बिना नष्ट किये पालनेवाले विशुद्ध मधु संग्रह करते है। सोदपूर के खादीप्रतिष्ठान की मक्खी-शाला में हमलोग अिसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार मक्खी-पालन करते हैं। यह मधु विशुद्ध और ताजा रहता है। यह मीठा, बहुत बढ़िया और स्वादिष्ट होता है। यह भोजन का पौष्टिक सारपदार्थ है।

धूप तेज होने पर मक्खी छत्ते से बाहर आ कर धूप खाती है, यह धारणा बिलकुल गलत है। अंडा फूटने के वास्ते, मक्खी-कीट से बचने के व वृद्धि पाने के वास्ते, मक्खी के घर में विशेष ताप-परिमाण का स्वाभाविक प्रयोजन है। फागुन और चैत के महीनों में मधु के समय छत्तों में मक्खियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। अुस समय अेक छोटे बक्स में करीब करीब ३० हजार मक्खियाँ रहती है। बड़े बकस के भीतर ५० हजार से ७० हजार तक मक्खियाँ रहती है। मधुमक्खियों की संख्या बढ़ जाने के कारण बकस के अन्दर ताप-परिमाण बहुत बढ़ जाता है। बाहर की आबहवा भी अुस समय गर्म रहती है।

अतिशय गर्मी से बचने और बकस को ठंडा रखने के लिअे अिस समय बहुत–सी मक्खियाँ बकस के अवतरणतख्ते पर पंक्ति में बैठ कर तेजी से पंख चला कर भीतर हवा देती रहती है। रात में अुस सारे तख्ते पर बहुत-सी मक्खियाँ भीड़ करके बैठी रहती हैं। बकस को ठंडा रखने के लिअे ही वह सब वैसा किया करती है। जाडे के समय अपने निवासस्थान का ताप ठीक रखने के लिअे सब छत्ते पर आपस में सटसट कर बैठी रहती है। जाडे के समय सुबह को धूप निकलने के पहले ही वे सब अपना दैनिक काम आरम्भ कर देती हैं।

कर्मी मक्खियाँ छत्तों में बराबर काम करती रहती हैं। मक्खीरानी की तरफ दृष्टि दे कर अुन्हें बैठने का समय कहाँ? रानी बकस में क्रमशः अेक छत्ते से दूसरे छत्ते में घूमती रहती है। खाली घर खोजती है। घर खाली पाते ही अुसमें अंडा देती रहती है। प्रत्येक मक्खीरानी की अेक खास गन्ध होती है। मक्खीरानी के छत्तों में बराबर घूमते रहने के कारण व अुसके शरीर की गन्ध से कर्मीमक्खियाँ समझ जाती है कि रानी है कि नहीं।

यदि रानी मर जाय, कहीं खो जाय, अथवा मक्खी पालनेवाले अुसे कहीं हटा दे तो थोड़ी ही देर में सब कर्मीमक्खियां रानी की अनुपस्थिति समझ जाती है। छत्ते की कुल मक्खियाँ अस्थिर व चंचल हो जाती है। रानी की खोज में बाहर आ कर अवतरणतख्ते पर खोजती रहती है। रोती रहती हैं। बकस के चारों तरफ अुड़–अुड़ कर खोजती है। बकस के सामने हवा में थोडा अुड़ती है और टोह न पा कर लौट आती हैं। मैदान से किसी कर्मी-मक्खी को मधु लाते हुअे दरवाजे के पास देखते ही सब की सब दौड़ कर अुसके पास जाती है, और सोचती है कि शायद यह हमारी खोअी हुअी माँ की खबर लाअी है। मुँह में मुँह मिला कर पूछती हैं कि माँ कहाँ, माँ कहाँ?

घर से माँ के चले जाने पर, नजर से ओझल होनेपर, मनुष्य का बच्चा अपनी माँ की अनुपस्थिति तुरन्त समझ जाता है, पुकारते पुकारते हैरान हो जाता है, रोता है, व्याकुल हो कर घर-भर मां को खोजता फिरता है। मधुमक्खियाँ भी अपनी खोई हुअी माँ की खोज अिसी तरह किया करती हैं।

[बंगला राष्ट्रवाणी से]

सामाजिक अहिंसा की बुनियाद

[श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला]

१. अहिंसा या बनियागिरी?

१९३०-३२ के सत्याग्रह के दरमियान तथा बारडोली आदि के सत्याग्रहों में लोगों ने अहिंसक वीरता के जो सबूत दिये अुनकी तारीफ सुन कर अेक मित्र बोले, "जबतक हम यह तारीफ सिर्फ विदेशी लोगों को सुनाने के लिअे करते हैं तब तक तो ठीक है। लेकिन जब हम अपने घर में बैठ कर बातें करते हैं तब मेहरबानी करके अिस वीरता की ज्यादा सराहना न कीजियेगा। सच पूछिये तो लड़ाअी में जिस प्रकार की बहादुरी की जरूरत होती है अुसका आपको खयाल है। नहीं। चारों तरफ दुश्मन के विमान (हवाअी जहाज) मँडरा रहे हैं, अैसी हालत में अेक नौजवान अपना विमान ले कर अकेला अुनके बीच घुसा चला जाता है, और यह जानते हुअे भी कि अुसका जिन्दा वापस आना नामुमकिन है, केवल शत्रु के अेक या दो विमानों का नाश करने की आशा से ही वह अितना साहस करता है अथवा जिस बहादुरी से सबमरीन (पनडुब्बी) में डुबकी लगाता है; अुसकी बहादुरी के साथ आपके धारासणा के 'वीर' पुरुषों का क्या मुकाबला करें? आज हमारे देश में से कितने नौजवान सबमरीन या विमानी सैनिक की सिर्फ तालीम लेने के लिअे भी तैयार होंगे? दूसरे के बदन में खून निकलता हुआ देख बेहोश हो जानेवाले हम ब्राह्मण और बनिये अहिंसक वीरता तक पहुँच गये अिसका अितना ही मतलब समझना चाहिअे कि हम कायरता से सिर्फ अेक कदम आगे बढ़े हैं।

"अशोक की तरह जो लोग हिंसात्मक जीवन में से अहिंसा की ओर गये, अुन जैसे अगर आप भी क्षत्रिय होते तो आपकी अहिंसा मुझे अद्भुत लगती। लेकिन जिस अहिंसा की आप आज तारीफ कर रहे हैं, वह सिर्फ आपकी हिंसाशक्ति के अभाव का ही अुपनाम है। मुझे शक है कि जब हिंसा का स्वाद आपको मिलेगा तब आपकी यह अहिंसा कहाँ तक टिकेगी।"

स्वयं गांधीजी के बारे में भी अिसी प्रकार की शंका दूसरे रूप में प्रकट की गयी है। हाल ही में सर स० राधाकृष्णन् द्वारा प्रकाशित 'महात्मा गांधी : अभिनंदन ग्रंथ' में श्री अेडवर्ड टॉमसन लिखते हैं:—

"वह (गांधी) गुजराती है। अर्थात्, अैसी जाति में अुत्पन्न हुअे हैं जो युद्ध-प्रिय नहीं रही है और जो, विशेषतया मराठों द्वारा, बहुधा पददलित की गयी और लूटी गयी है। ... वह अहिंसा को जो अितना महत्त्व देते हैं वह अुनके अेक शान्ति-प्रिय जाति में जन्म लेने का लक्षण है। मेरा विचार है कि मराठे अिस बात को कभी नहीं भूलते कि वे मराठे हैं और गांधी गुजराती है। ...राजपूतों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है क्योंकि वह भी अेक युद्ध-प्रिय जाति है।"

यह दलील, बल्कि अुलहना, मैंने पहली बार नहीं सुना। अिसलिअे मैंने खुद अपने आपसे यह प्रश्न कअी बार पूछा है कि "गांधीजी जिस अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं, वह जो मुझजैसे अनेक लोगों को, मानो, स्वभाव ही से पसन्द आती है और हिंसा के प्रति जो घृणा पैदा होती है—यह क्या मुझमें जन्मतः रही हुअी बनिये की डरपोक वृत्ति तथा वैष्णव संस्कारों का परिणाम है या अहिंसा का— यानी मैत्री, प्रेम, करुणा आदि कोमल गुणों का—परिपाक है?"

कुछ हद तक अिस सवाल पर मन्थन करने के बाद मैं जिस नतीजे पर पहुँचा हूं वह पेश करता हूँ।

यह तो मैं बिना संकोच के कबूल करूँगा कि युद्ध-विरोध अथवा शान्ति-प्रियता कअी पीढ़ियों से मेरा खून के द्वारा अुतरा हुआ स्वभाव है। अुसके अनुशीलन के लिअे स्वयं मुझे अशोक के जैसे अनुभवों में से जाने की या बुद्धि को बहुत कसने की जरूरत कभी नहीं हुअी। मेरे जिन पूर्वजों ने सैंकड़ों वर्ष पूर्व हिंसक विचारों को छोड़ कर बौद्ध या जैन या वैष्णव संप्रदाय का स्वीकार किया होगा वे बेशक अिरादतन हिंसा से अहिंसा की ओर गये होंगे। अनेक पीढ़ियों तक अपने अिस परिवर्तन को हृदय में दृढ़ करते-करते मेरे अिन पूर्वजों ने अहिंसावृत्ति की जड़ अपने स्वभाव में अितनी मजबूत जमा दी कि बाद में वह मेरे लिअे अेक हद तक अपने प्रयत्न से प्राप्त करने की संपत्ति नहीं रही, बल्कि पूर्वजोपार्जित संपत्ति के रूप में मुझे विरासत में मिली।

परंतु संपत्ति पूर्वजोपार्जित होने ही से वह कोअी कुसंपत्ति या विपत्ति तो नहीं हो जाती और न अुसमें शरमाने जैसी ही कोअी बात होती है। हमारे लिअे अपनी कोशिश से अुस संपत्ति को बढ़ाना शक्य है। वैसा न किया जाय तो दूसरी भौतिक संपत्तियों की तरह यह भी क्षीण हो सकती है और जिस तरह पुरखों के जमाने का बरतन आहिस्ता आहिस्ता घिस-घिस कर फूट जाता है और फिर वह सिर्फ अेक स्मारक का ही काम देता है अुसी तरह यह भी अेक क्षीण और दुर्बल संस्कार बन कर रह सकता है।

तब मेरे लिअे गौर करने का सवाल तो यह है कि, "क्या मैं अिस सहजप्राप्त स्वभाव का ही अधिक विकास करूँ, या फिर से अुस हिंसक स्वभाव को प्राप्त करने की कोशिश करूँ जिसका, अुसे अेक कुसंपत्ति समझ कर, मेरे पूर्वजों ने सोच-समझ कर त्याग किया था? क्या हिंसा से अहिंसा की ओर जाने में मेरे पूर्वजों ने कुछ गैर-अिन्सानियत की"?

यह सच है कि कुछ लोगों का अैसा ही खयाल है। वे मानते हैं कि आज अेक अैसा जमाना आया है कि जिसमें हिन्दुस्तान या

दूसरी किसी भी कौम का अुद्धार हिंसक बनने से ही हो सकता है। लेकिन कोअी भी मानव-हित-चिंतक अिस विचार का नहीं है। हिंसा में रही हुअी भीषण पशुता को पूजनेवाला वर्ग अिना-गिना ही है। हिन्दुस्तान में भी अुनका क्षेत्र साफ नष्ट नहीं हुआ है। आज भी हिन्दुस्तान में लड़ाकू जातियां हैं। कअी लोगों का कहना है कि जिनमें लड़ाअी की वृत्ति, हिम्मत और कला है अैसे लोगों के अभाव और न्यूनता के कारण ही हिन्दुस्तान परतंत्र हुआ। लेकिन अिस कथन में कुछ भी अैतिहासिक सत्य नहीं है। अिसलिये हिंसा द्वारा देश का अुद्धार करने के संप्रदाय की तरफदारी के लिये कोअी जोरदार कारण नहीं है। सच्चा रास्ता तो आज भी वही है जो सदियों पहले हमारे बड़ों ने बताया था। वह है, "खून न करो, क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है'।

मतलब यह कि मुझे अनुवंश और संस्कार द्वारा प्राप्त अहिंसावृत्ति के लिअे शरमाने की कोअी वजह नहीं। बल्कि जन्म से ही यह विरासत पाने के लिअे अीश्वर और अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता-भाव रखने के लिअे काफी कारण है।

फिर भी, मुझे यह भी कबूल करना होगा कि मेरे अहिंसक स्वभाव के साथ मुझमें बहुत सी कमियां भी पैदा हो गयी हैं। वे अैसी हैं कि अूपर अूपर से वे अहिंसा-वृत्ति का ही परिणाम मालूम होती हैं। डरपोकपन और शारीरिक साहस करने की हिम्मत का अभाव अिन कमियों में मुख्य हैं। हिंसक आहार-विहार तथा जंगलों के नजदीक की बस्ती में अिन कमियों को दूर करने के कुदरती मौके मिल जाते हैं। शिकार और लड़ाअी-झगड़ों के बीच जिन्दगी बितानेवाले स्त्री-पुरुष अपना या दूसरे के रक्तपात देखने का बचपन से ही आदी हो जाते हैं। अुस तरह का साहस अुनका रोजाना जीवन हो जाता है। अुनके लिअे डरपोकपन और असाहस शरमाने योग्य चीजें होती हैं। अुनके समाज में वैसे व्यक्तियों का तिरस्कार होगा। लेकिन ब्राह्मण-बनियों के समाज में अगर कोअी आदमी हिम्मत करके अपना हाथ तोड़ ले या खतरे की जगह दौड़ कर चला जाय तो अुसकी हिम्मत के लिअे अुसका जयनाद नहीं किया जायगा; बल्कि अुससे कहा जायगा कि 'क्यों अितनी बेवकूफी करने गये?' अिन समाजों में बच्चों को 'हौअे' और अंधेरे की दहशत में और 'अरे, गिर जायगा' 'अरे लग जायगा' जैसी सावधानी की सूचनाओं के साथ ही बढ़ाया जाता है। अिसका यह परिणाम हुआ है कि हमारा यह समाज अर्ध-अपुरुष-सा बना हुआ है। अिसमें शक नहीं कि यह बड़ी शर्म की बात है।

परंतु यदि हम ठीक-ठीक सोचेंगे तो पता चलेगा कि ये कमियां अहिंसा का आवश्यक परिणाम नहीं हैं। हमारे पूर्वजों ने अहिंसा का स्वीकार किया, यह तो अच्छा ही किया, लेकिन अुस वक्त अुन्हें यह बात न सूझी, और अुस जमाने में सूझ भी नहीं सकती थी, कि जिस तरह हिंसक आहार-विहार के साथ साहस और शौर्य आदि गुणों का पोषण होता है और अुनके संगठन का शास्त्र निर्माण होता है, अुसी तरह अहिंसक जीवन के अप्रतिकूल तरीकों से अिन्हीं गुणों के विकास के निमित्त अिनके संगठन का शास्त्र भी खोजना होगा।

अिसे कुछ विस्तार से समझ लेना चाहिअे।

२. अहिंसा की वैज्ञानिक तालीम

अगर हम युद्धों के अितिहास बारीकी से पढ़ें तो मालूम होगा कि किसी भी लडाअी में जीतने के लिअे सिर्फ सिपाहियों की बडी संख्या, अुनकी व्यक्तिगत बहादुरी और लड़ाअी का अच्छे से अच्छा सरंजाम काफी नहीं है। जीत के लिअे अेक बहुत ही बडे महत्त्व की बात है, सैनिकों का संगठन। युद्ध की परिभाषा में अुसे 'फौजी तालीम,' 'बाहोश (होशमन्द) सेनापतित्व' और 'कुशल व्यूह-रचना' कहा जायगा। अेक ओर बडी बहादुर और अच्छी तरह से साधन-सम्पन्न, मगर बिना तालीम और बिना सेनापति की, दस हजार सिपाहियों की सेना हो, और दूसरी तरफ अेक हजार ही सिपाहियों की फौज हो परंतु वह अच्छी तालीम पायी हुअी और कुशल सेनापति के नेतृत्व मे हो, तो अितिहास में अैसे कअी अुदाहरण पाये जायेंगे कि जहाँ छोटी सेना ने बडी सेना को हरा दिया। हिन्दुस्तान में कितनी ही लड़ाअियों में अिन्हीं कारणों से अंग्रेजों की जीत हुअी थी। फिर, बहादुरी भी कोअी सिर्फ व्यक्तिगत गुण नहीं है। 'प' 'फ' 'ब' 'भ'-सभी थोडे थोडे बहादुर भले ही हों, लेकिन अगर वे चारों लड़ाअी की तालीम प्राप्त करें और कुशल सेनापति के नेतृत्व में अेक हो कर लडें तो अुनकी बहादुरी का जोड़ सिर्फ चौगुना ही नही, बल्कि कअी गुना हो जायगा। अिसके विपरीत वे व्यक्तिगतरूप से बडे ही शूरवीर क्यों न हों, फिर भी अगर हर अेक आदमी अपने घमंड के खुमार में रह कर ही लडना पसन्द करे तो व्यक्ति के नाते बढ़िया पराक्रम दिखाने पर भी वे हारेंगे और अुनका कुल पराक्रम पहले चार की अपेक्षा कम होगा। शायद अेकाध अुसमें से ना-हिम्मत भी हो जायगा। मतलब यह कि जिस तरह हिंसा का भी अेक विज्ञान है और अुसके अनुकूल अुसका विकास करना पड़ता है। सब लड़ाकू जातियाँ अिस बात को अच्छी तरह समझती है और अिसी लिअे तरह तरह के अुपायों से युद्ध-विज्ञान का विकास करनेके लिअे सैकडों वर्षोंसे मिहनत अुठायी गयी है।

जिस तरह अेक हिंसा-परायण समाज को लोगों में बचपन ही से हिंसक वृत्ति पैदा करने, बडी अुम्र मे लडाअी की तालीम देने, और जंग के समय अुन्हे संगठित करने की जरूरत होती है और अिसलिअे अुसका व्यवस्थित शास्त्र बनाना पड़ता है, अुसी तरह अेक अहिंसा-परायण समाज को भी अपने लोगों में बचपन से अहिंसावृत्ति का पद्धतिपूर्वक विकास करने, अुसकी तालीम देने और जब प्रसंग अुत्पन्न हो तब अुन्हें संगठित करने की जरूरत है। परंतु यह बात अहिंसकों के खयाल में भली भाँति आयी नहीं है। अुलटे अहिंसा मीं ने आम तौर पर अेकाकी और निवृत्तिमय जीवन बिताना ही पसंद किया है। निवृत्ति में नम्रता, अभिमानशून्यता, अपमान, बलात्कार आदि की जानबूझ कर तितिक्षा वगैरा अहिंसापोषक वृत्तियों को बढ़ाने का प्रयत्न ज्यादा आसान होता है। प्रवृत्तिमय जीवन में यह साधना कठिन होती है। अिसलिअे योग्य तालीम के अभाव में जब प्रवृत्तिमय जीवन बितानेवाले अहिंसक लोग अिन वृत्तियों के अनुकूल बर्ताव करने लगे तब अुससे कुछ विपरीत परिणाम निकले। अिन विपरीत परिणामों को हम 'बनियागिरी' के तिरस्कार-सूचक नाम से पुकारते हैं। अिस शब्द से जिसमें शरीर को भय हो अैसे किसी भी प्रकार के साहस के प्रति अरुचि, भय-स्थानों का दूर ही से त्याग, शरीर और संपत्ति बचाने के लिअे चाहे जितनी अपमानकारक

स्थिति में रहने की तैयारी–वगैरा कायरता के गुणों का समावेश किया जाता है। निवृत्ति में रहनेवाला अहिंसक यह चिन्ता करता है कि दूसरे की हिंसा न हो, लेकिन प्रवृत्ति में पड़ा हुआ अहिंसाधर्मी खुद अपने शरीर की हिंसा न हो अिस तरह अपने जीवन की रचना करता है। भय से दस कोस दूर रह कर ही वह अपना अहिंसा-धर्म संभालता है। अिसका नतीजा यह हुआ है कि अहिंसक को चाहे जो तमाचा जड़ दे, गालियां दे दे या लूट ले, वह 'बेचारा' बन कर चुप रहता है।

मगर, प्रवृत्ति-परायण अहिंसा-धर्मी का अैसा स्वभाव होते हुअे भी अुसे संसार में टिकने की अिच्छा तो है ही। अिसलिअे बाहर से अहिंसा का त्याग किये बिना सूक्ष्म हिंसा करने की कुछ रीतियां अुसने खोज ली हैं। खेती, गोपालन और (विशेष कर) व्यापार के द्वारा धन बढ़ाने की कला में अुसने निपुणता प्राप्त की है। और अुसमें हिंसा का गुमान करनेवाले को अुसके मिथ्याभिमान द्वारा ही मिठास के साथ लूटने, बिना खून बहाये ही खून चूसने, कुटिल-नीति से परास्त करने और व्यक्तिगत कम-खर्ची तथा हिसाबी शान करने की युक्तियाँ निकाली हैं। अिन सबका भी बनियागिरी में ही समावेश होता है। अिस प्रकार की बनियागिरी का आभास देनेवाली बहुतसी लोककथायें भी हैं। मतलब यह कि 'बनिया-गिरी' शब्द कायरता और चालबाजी का मिलाप बताता है। ये सब अहिंसा के व्यव-स्थित विकास के अभाव के परिणाम हैं।

अिसका हमें शोध करना होगा और जो लोग स्वभाव से, धर्म के संस्कार से, अपनी सारासार विवेक-बुद्धि से, या–आखिर–दूसरों द्वारा जबरदस्ती ही निःशस्त्र किये जाने से अहिंसक बनकर रहे हैं, अुन्हें अपनी अुस अहिंसा का अेक बल के रूप में परिवर्तन करने का विज्ञान निर्माण करना होगा। चैतन्य का यह स्वभाव ही है कि वह चाहे जितनी कठिन परिस्थिति में मूल स्वभाव को बिना छोड़े अपना स्वत्व बराबर बनाये रखने की, अपना संपूर्ण विकास सिद्ध करने की और अपने ध्येय को प्राप्त करने की अचूक पद्धति खोज सकता ही है। अिस शोध में अपने मुख्य स्वभाव पर बिलकुल दृढ़ रहने के बजाय यदि वह अुसे बदलने और दूसरे किसीके स्वभाव को अपनाने की व्यर्थ चेष्टा करता है तो अुतनी हद तक अुस खोज में वह निष्फल होता है। चाहे आप डारविन का 'अुत्क्रांति शास्त्र,' कोपाट्-किन का 'संघर्ष या सहयोग?' मैटरलिंक का 'दीमक' या 'मधुमक्खी का जीवन' पढ़ें, या किसी भी प्राणी के जीवन का अवलोकन करें; आप यही पायेंगे कि चैतन्य की अिस शक्ति के द्वारा ही अिस संसार में विविध प्रकार की योनियों के जीव अपना अपना जीवन टिका रहे हैं। 'जो लायक हो वह जीये' (सर्वा-अिवल ऑव द फिटेस्ट) का मतलब 'जो शरीर से बलवान हो वही जी सकता है'—अितना संकुचित नहीं है। बल्कि, "ओश्वरदत्त प्रकृति का अेक शक्ति के रूप में परिवर्तन करके जो अपनी परिस्थिति का सामना कर सकता है, वही जी सकता है"—अैसा अुदात्त है।

तात्पर्य यह है कि मुझे या मुझ जैसे दूसरे सबों को हमारे स्वभाव में वंशपरंपरागत अुतरी हुई अहिंसा का ही विकास करना चाहिअे। अिस अहिंसा का विकास कर स्वाभिमान, निर्भयता और सफलतापूर्वक हिंस्र-वृत्ति के मनुष्य या प्राणी का सामना करने का मार्ग हमें खोजना चाहिअे। अिसी का अब आगे विचार करेंगे।

३. अहिंसा के प्राथमिक नियम

अहिंसा-विज्ञान की खोज में नीचे लिखी बातें, मेरी समझ मे प्राथमिक नियमों के रूप में मानी जानी चाहिअे।

(१) अहिंसा के ही विकास और संस्करण द्वारा शक्ति पैदा करने का हमारा निश्चय होना चाहिअे। तात्कालिक लाभ-हानि की दृष्टि से हिंसा के तरीके आजमाने से या हिंसा-वृत्ति पैदा करने की चेष्टा करने से यह शक्ति अुत्पन्न नहीं की जा सकती।

(२) अहिंसा का डरपोकपन, असाहस आदि से तलाक कराना चाहिअे और बचपन से ही अहिंसक साहस और वीरता बढ़ाने के अुपायों की योजना करनी चाहिअे।

(३) अहिंसा का अेक व्यक्तिगत गुण या विभूति के रूप में ही नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति के रूप में विकास होना चाहिअे। अेक अुदाहरण दे कर यह समझाता हूँ। 'दूर-दर्शन', 'दूरश्रवण' आदि सिद्धियाँ योगाभ्यास की विभूति के रूप में कोअी व्यक्ति प्राप्त करता है। यह प्राप्ति अुसकी अपनी व्यक्तिगत ही रहती है। परंतु विज्ञान द्वारा प्राप्त तार, टेलीफोन, रेडियो आदि सिद्धियाँ सामाजिक हैं। अथवा अेक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। महाभारत में मोहास्त्र, अग्न्यस्त्र, वरुणास्त्र आदि अनेक अस्त्रों का जिक्र है। ये सब अस्त्र भिन्न भिन्न मंत्रों के आधीन होने के कारण अिनका अुपयोग अुसी व्यक्ति को हो सकता था जिसने वे मंत्र सिद्ध किये हों। परंतु आज के हिंसा के साधन वैज्ञानिक होने के कारण अुनकी अपेक्षा बहुत ज्यादा समाजगत हैं। अिसी तरह जिस अहिंसा को हमें सिद्ध करना है वह किसी 'राग-द्वेष-विषादि रहित' 'पूर्ण', 'विरागी' पुरुष द्वारा सिद्ध किये हुअे गुण के रूप में नहीं; लेकिन सामाजिक जीवन व्यतीत करनेवाले, न्याय से मिलने लायक सांसारिक सुखों की अिच्छा रखने वाले, काम क्रोधादिक विकारों से कुछ न कुछ पराभूत होने वाले, और फिर भी स्वभाव और बुद्धि दोनों से शान्ति चाहने वाले, लोग जिस तरह रेडियो या फोन का अुपयोग कर सकते हैं अुस तरह जिसका अुपयोग कर सकें, वैसी अहिंसा सिद्ध करनी है।

(४) संगठन से पैदा होनेवाली हर अेक सामाजिक शक्ति की अेक मर्यादा हमें भूलनी न चाहिअे। हमारा संगठन हिंसक हो या अहिंसक, अेक हद तक अुसमें जान–माल का खतरा रहता ही है। जब हम फौज के द्वारा अपनी रक्षा करने की सोचते हैं तब हम यह अपेक्षा नहीं करते कि हमारे देश के अेक भी व्यक्ति की मृत्यु के बिना और देश की कुछ भी हानि हुअे बिना ही अुसका बचाव हो जायगा। लेकिन अिस श्रद्धा से हम अिन साधनों को जुटाते है कि थोड़ीसी हानि सहन कर लेने से बहुत बडा लाभ होगा; अथवा सर्वस्व-नाश से बचने के लिअे अितनी हानि सहना अनिवार्य है। अहिंसक संगठन के विषय में भी अिसी तरह सोचना चाहिअे। तब अुचित व्यवहार्य सवाल तो यह है कि समाज को अहिंसक संगठन से ज्यादा खतरा है या हिंसक संगठन से। यद्यपि अिसका निश्चित अुत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि हम अेक निष्ठावान्, कुशल और तालीम-प्राप्त समाज निर्माण नहीं कर सके हैं; तो भी, अितना तो जरूर कह सकते हैं कि अिसमें

हमें और हमारे शत्रु को भी आर्थिक और शारीरिक क्लेशों का कम से कम खतरा है।

(५) आज की परिस्थिति में हमारे देश में अेक हद तक अहिंसा और हिंसा को साथ साथ चलना होगा। संख्या में अहिंसक समाज बड़ा होने पर भी हिंसक समाज बिलकुल ही नगण्य नहीं है और वह साधनों से सुसंपन्न है। साम्राज्यवाद, वर्गविग्रह, आदि नामों से हम जिसे पहचानते हैं अुसका सच्चा स्वरूप यदि देखा जाय तो हिंसा के सरंजाम से संपन्नता और अुसका अभाव ही हिंसक और अहिंसक समाजों की परिस्थितियों के बीच का भेद है। जो लोग हिंसा के सरंजाम से संपन्न है अुनकी रक्षा की जिम्मेदयारी चिन्ता करने की अहिंसक समाज को जरूरत नहीं। बल्कि जरूरत तो यह है कि अगर वह सरंजाम हमारे, याने अहिंसक समाज के, खिलाफ़ अिस्तेमाल किया जाय तो वह निकम्मा किस प्रकार किया जा सकता है।

अिसका ज्यादा स्पष्टरूप से विचार किया जाय तो शस्त्र, धन, शरीर-बल, अधिकार, अुम्र, लिंग, कौम, विद्या, बुद्धि, धर्म या दूसरे किसी बल का अुपयोग, जो लोग अुन बलों से वंचित हैं, अुनकी सेवा और भलाअी के लिअे किये जाने के बदले जब अुन कम-जोर लोगों का दमन करने के लिअे किया जाता हो, तो अहिंसक समाज के पास अैसी शक्ति होनी चाहिअे जिससे कि वह अुस गलत रास्ते से जानेवाली शक्ति को निकम्मा ठहरा सके। याने निःशस्त्र, निर्धन, निर्बल, पराधीन, बालक, स्त्री, दलित, अनपढ, मंदबुद्धि, साधु आदि लोगों की वह विशेष परिस्थिति अेक कमी के रूप में नहीं, बल्कि अेक शक्ति के रूप में प्रकट होनी चाहिअे। यह अनुभव तो थोड़ा-बहुत सभी को है ही कि बालक, स्त्री और साधु अपनी स्थिति का शक्ति के रूप में सफल अुपयोग कर सकते हैं। बाज दफा वह अुपयोग शक्ति के भान से नहीं, बल्कि लाचारी की भावना से होता है। कभी कभी कपट से भी होता है। अिसलिअे अुसमें गुस्सा, दुःख, दंभ, आदि दोष भी होते हैं। हमारा शायद अिस ओर खयाल नहीं गया कि मनुष्य-समाज में निर्बल, अपंग और निर्धन लोग अकसर अपनी अुस कमी की बदौलत ही अपना जीवन टिका सकते हैं। सांग और निरोगी भिखारी की अपेक्षा अंधे, लूले-लंगडे, रोगी भिखारियों को क्यों ज्यादा दान मिलता है? चारों ओर बेकारी हो तो भी अिनकी यह व्यंगता ही अिन्हें जिलाने में समर्थ होती है। बहुतेरे भिखारी जानते हैं कि अपंगता भी अेक शक्ति है। अिस लिअे जानबूझ कर अपंग बनने, या अपने बालकों को अपंग करने की युक्तियां भी काम में लायी जाती हैं। लेकिन ये सब मार्ग अज्ञान और वैयक्तिक संकुचित दृष्टि से खोजे गये हैं। अुनका ज्ञानपूर्वक और समाजहित की दृष्टि से शोधन नहीं हुआ। फिर भी, अिन विकृत युक्तियों की अेक निश्चित अनुभव पर रचना हुअी है। वह यह कि प्रत्येक मनुष्य में कोमलता और समभाव होता है; दीन के प्रति बंधुभाव और आदरभाव होता है। जो अुसे जाग्रत कर सकता है वह जीवन में निभ सकता है। कभी कभी अुसके बल पर अन्यायी और नाजायज़ मांगें भी पूरी करा ली जाती हैं। तब जहां अपने पक्ष में न्याय हो वहां सफलता के विषय में सन्देह की कम गुंजाअिश है।

अेक अुपमा दे कर अिसे स्पष्ट करता हूं। अहिंसक कलह अथवा सत्याग्रह अेक पुरुष और अुसकी मानिनी स्त्री के झगड़े की तरह है।

मानिनी अपने पति से रूठती है, लेकिन अुसका द्वेष नहीं करती। अपने पति के अहित की अिच्छा तो वह तनिक भी नहीं कर सकती। अुसका त्याग करने के लिअे नहीं, बल्कि अुसे और भी ज्यादा वश करने के लिअे वह अुसपर रूठती है। लेकिन अिसके लिअे वह अुसके पैरों पडना, आजिजी करना, भीख मांगना, या अपना स्वाभिमान खोना आदि अुपाय नहीं करती। अिस मूल बात को पकड़ कर कि अुसका पति अुससे या वह अपने पति से प्रेम करती है, वह अपनी शक्ति प्रकट करती है। मतलब यह कि जिस बात को हमारा प्रतिपक्षी अेक विपत्ति या निःसहायता समझता है अुसी को अपनी शक्ति बनाने में हमारी सफलता की कुंजी है।

(६) विग्रह चाहे हिंसक हो या अहिंसक, अन्त में जीत किस तरह होती है? शुद्ध द्वंद्व युद्धों के कुछ प्रसंग छोड़ दें, तो दूसरे सब झगडों के अवलोकन से पता चलेगा कि जीत का अन्तिम आधार किसी पक्ष का स्थूल बल नहीं, बल्कि जैसे जैसे विग्रह बढता जाय वैसे वैसे प्रतिपक्षी के दिल में हमारी शक्ति के प्रति आदर और खुद अपने प्रति अश्रद्धा, या शंका आदि की वृद्धि है। अंग्रेज, देशी नरेश, या किसी कौम के हृदय में हमसे लडते हुअे भी अगर हमारे प्रति आदर बढता रहे, तो हम यह निश्चय मान लें कि अन्त में जीत हमारी ही होगी। मगर यदि अुनके दिल में हमारे प्रति अनादर बढता जावे तो, अेकाध बार वे हमारी शरण में आ भी जायें तो भी, हमें समझना चाहिअे कि वे फिर लड़ने खडे होंगे। यह आदरबुद्धि हिंसक और अहिंसक साधनों के अनुसार अलग अलग निमित्तों से पैदा होती है। हिंसक साधनों में जिन निमित्तों के जरिये स्वनाश का डर पैदा होता है अुनके कारण आदर बढ़ता है। अहिंसक साधनों में हमारे चारित्र्य का परिचय होने से आदर बढ़ता है। 'आदर-बुद्धि' को संस्कृत में 'भय' भी कहते हैं। अंग्रेजी में अिसके लिअे 'आॅ' (Awe) शब्द है। अिसी अर्थ में अीश्वर को 'भयानां भयं' कहा है; अर्थात् 'आदरणीयों के भी आदरणीय'। यही अर्थ अिस कहावत का भी है कि 'भीति बिना प्रीति नही'। आजकल हम 'भय' शब्द से सिर्फ 'आपत्ति का डर' ही समझते हैं। पर यह संकुचित अर्थ है। दशरथ-सा बाप और राम-सा पुत्र हो तब भी पुत्र के मन मे पिता के लिअे अेक तरह का आदर-युक्त भय रहता है। गुरु इनाम देनेवाले हैं, यह जानते हुअे भी विद्यार्थी अुनके पास जाते हुअे अक्सर कांपता है। अिस तरह अपनेसे श्रेष्ठ पुरुष के लिअे आदर के कारण डर होता है। अैसा आदर-रूप भय होने में दोष नही है; और आखिर में अिस प्रकार का भय ही कलह का अन्त करता है। अिस अर्थ में 'भीति बिना प्रीति नहीं' वाली कहावत ठीक ही है। यदि कॉंग्रेस की ओर देखे तो साफ मालूम होगा कि जितने अंश में अुसके प्रति विपक्षी या जनता के दिल में आदर है, अुतनी ही अुसकी शक्ति है।

मतलब यह कि हिंसक दल की तरह अहिंसा का ध्येय भी प्रतिपक्षी के दिल में आदर अुत्पन्न करना है। अिसके लिअे शरीर, मन और वाणी का संयम, धन और स्त्री के विषय में अुच्च शील, सरलता, अगुप्तता, प्रतिपक्षी को संपूर्ण अभयदान, अपने पक्ष के अनुशासन का अुत्कृष्ट पालन, अुद्योगिता, विविध प्रकार के त्याग, कष्टसहन, आदि अुसके

साधन हैं। और क्योंकि अिनमें पशुबल का त्याग है, अिसलिअे ये ही अहिंसा के साधन हैं। अिसमें वाणी का जहर, गुप्त चालबाजी, प्रतिपक्षी को धोखा देने, डराने, परेशान करने आदि की हिकमतें, आलस, चोरी, 'तिकडं', स्वार्थसाधन आदि 'बाजियों' का प्रयोग सफल हो जाय तो भी ये सब छल-प्रपंच अनादर अुत्पन्न करनेवाले होने के कारण अिनसे अहिंसक युद्ध में आखिर हमारी ही हानि होती है। अिस तरह अहिंसक युद्ध में अुच्च चरित्र जीत के लिअे अनिवार्य है।

(७) और अेक महत्त्व की बात यह है कि अहिंसक मार्ग पर रहनेवाले समाज को अपने मन में यह खूब अच्छी तरह समझना चाहिअे कि कितना ही बिकट और जीवनमृत्यु का विग्रह क्यों न हो, उसमें प्रतिपक्षी के अहित की अिच्छा नहीं की जा सकती। जिससे अुसके मन में हमारे प्रति क्रोध, तिरस्कार या बैर पैदा हो अैसी भाषा या व्यवहार लड़ाअी के दौरान में भी नहीं किया जा सकता। अुसका जान-माल खतरे में है, अैसी दहशत अुसके दिल में नहीं पैदा की जा सकती।

(८) और आखिर में सब से बडी बात है, चैतन्य में श्रद्धा। सब बाह्य शक्तियों का अुद्भव चैतन्य से है, और अुसीमें अुनकी स्थिति है। बाह्य साधनों की वह माता है, और अुनपर प्रभुत्व रखती है। किसी भी परिस्थिति को वश करने के लिअे आवश्यक-रूप में बाह्य शक्ति प्रकट करने की वह क्षमता रखती है। जो अेकाग्रता से अुसकी खोज करता है, अुसके द्वारा वह प्रकट होती है, और फैलती है। हिंसक साधनों की खोज के लिअे मेहनत अुठानेवालों के सामने अुन रूपों में वह प्रकट हुअी है। अहिंसक तप करनेवालों के सामने अुनके अनुकूल रूपों में प्रकट होगी।

क्रान्तिकारक कार्यक्रम

जिन पांच तरीकों से शासकवर्ग ने आजतक सामान्य जनता पर अपना अधिकार चलाया है, अुसे नियंत्रण में रक्खा है और अुसकी प्रगति में अडंगे डाले हैं अुन तरकीबों को गांधी का कार्यक्रम निष्फल कर देता है। वे पांच तरकीबें या हिकमतें ये हैं: (१) धन, (२) शारीरिक हिंसा, (३) सामाजिक वर्गविभाजन तथा चापलूसी (४) दरबारी राजनीति (पार्लमेंटारिज़्म) और (५) बृहत् औद्योगिक संगठन। गांधी के कार्यक्रम का महत्त्व अिसीमें है।

—रिचर्ड बी. ग्रेग

वर्धाशिक्षा के प्रयोग के भयस्थान

[दिलखुश ब. दीवानजी]

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की ओर से बुनियादी तालीम की पहली परिषद पूना में अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में हुअी। बम्बअीसरकार ने अिस परिषद को निमंत्रित किया था और अुसकी सारी व्यवस्था सरकारी शिक्षा-विभाग ने की थी। तालीमी संघ के सदर डा० जाकिर हुसेन की गैरहाजिरी में काश्मीर के डा० सैयदीन ने परिषद का अध्यक्षपद स्वीकार किया था। परिषद का चार दिन का कार्यक्रम बिलकुल सटा हुआ था। साथ साथ प्रदर्शनी भी थी।

परिषद में प्रतिनिधि और प्रेक्षक हाजिर थे। आजकल वर्धा-शिक्षा के प्रयोगों का संचालन मुख्यतः सरकारी-शिक्षा-विभाग के द्वारा होता है। अतः परिषद में आये हुअे प्रतिनिधियों में से बहुत-से भिन्न भिन्न प्रान्तों के शिक्षा-विभागों से आये थे। गुजरात विद्यापीठ, तिलक विद्यापीठ, दिल्ली की जामिया-मिलिया आदि हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यकर्ता भी आये थे। परंतु निबंध-वाचन, भाषण और अुनसे अुपस्थित होनेवाली चर्चाओं में मुख्य भाग शिक्षा-विभाग के प्रतिनिधियों ने ही लिया। जैसा कि पू० काका साहब ने लिखा है, "गांधीजी के राष्ट्रीय शिक्षण के प्रयोगों का निचोड वर्धा-शिक्षा की पद्धति में सन्निहित है। वर्धा-शिक्षण की सारी योजना और कल्पना सम्पूर्णरूप से राष्ट्रीय है अितना ही नहीं, अपितु वह योजना आज की शिक्षा में जडमूल से क्रान्ति करने का प्रयत्न कर रही है। अैसी योजना के प्रथम प्रयोग सरकारी शिक्षा-विभाग द्वारा हो रहे हैं, यह अेक नयी बात है। जिन शिक्षा-विभागों को कुछ ही वर्ष पहले हमारी राष्ट्रीय शिक्षा से सख्त नफरत थी अुन्हीं विभागों में आज अुसी राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगतिमान और क्रान्तिकारी योजना के लिअे अुत्साह की अितनी बडी अुमंग आयी है, यह कुछ अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है।" परिषद की चर्चाओं में और भाषणों में अिस अस्वाभाविकता की प्रतिध्वनि प्रतीत होती थी।

आचार्य कृपालानीजी ने परिषद के प्रारंभिक भाषण में और आखिरी अुपसंहार में परिषद का ध्यान अिस अस्वाभाविकता पर दिलाया। सरकारी शिक्षाविभागों की विशेषता यह रही है कि अुनके कर्मचारियों को 'चौखट की मनोवृत्ति' की आदत होती है। प्रचलित पद्धति में जब कोअी सुधार करना होता है तो ये कर्मचारी बाह्य परिवर्तनों पर ज्यादा ध्यान देते हैं— जो हेरफेर करते हैं अुनमें क्रान्ति की दृष्टि कम होती है।

परिषद में अुत्साह था। कुछ कर दिखाने की वृत्ति दीख पडती थी। अुसके पीछे काफी परिश्रम और माथापच्ची की गयी थी। वर्धाशिक्षा के भिन्न भिन्न अंगों की जो चर्चा हुअी अुसमें से कअी बातें सीखने को मिलीं। परंतु मुझ जैसे को तो परिषद और प्रदर्शनी में वर्धा-शिक्षा के भयस्थानों का दर्शन ही अधिक हुआ। परिषद के अिन संस्मरणों में मैं मुख्यतः अिन भयस्थानों के विषय में ही कुछ लिखना चाहता हूं। अिन संस्मरणों में यह दृष्टि रखने के लिअे

में अिसी अभिप्राय से प्रेरित हुआ हूं कि अैसा करने से वर्धा-शिक्षा के प्रयोगों में हम अधिक सचेत, सावधान और जाग्रत रह सकेंगे और महात्माजी की अिस भव्य क्रान्तिकारी योजना का रहस्य अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे।

(१) परिषद की चर्चाओं तथा अुसकी सारी व्यवस्था अेवं संचालन में जिस चीज ने मुझे बहुत अस्वस्थ कर दिया वह यह है:—

वर्धायोजना आज की शिक्षा में क्रान्ति करना चाहती है। यह कोअी केवल पद्धति में परिवर्तन करने का प्रयोग नहीं है। डॉल्टन-प्रथा, मॉंटेसोरी-पद्धति या प्रोजेक्ट-योजना से कुछ भिन्न प्रकार से वर्धा-योजना का विचार और आयोजन हुआ है। यह शिक्षा का विचार तो करती है, परंतु केवल शाला, महाविद्यालय, या विद्यापीठों के विद्यार्थी और अध्यापकों का ही विचार नहीं करती। वह बालक के जीवन के समग्र विकास में अिस शिक्षा के प्रयोग दाखिल कराना चाहती है और अैसे प्रयोगों में शाला, समाज और कुटुंब को अेक शृंखला में जोड देना चाहती है। अिसलिअे न केवल आज की शिक्षा-पद्धति में ही, किन्तु बालक, मॉंबाप और शिक्षकों के जीवन में तथा समाज की सारी रचना में ही यह योजना क्रान्ति प्रकट करना चाहती है। दुःख की बात तो यह थी कि परिषद की कार्यवाही मे और संचालन में अैसी क्रान्ति का धुंधला दर्शन भी नहीं हुआ। वर्धाशिक्षा ने अुद्योग को अपने वाहन के तौर पर स्वीकारा है। परंतु गांधीजी कअी बार जोर दे कर यह कहते आये हैं कि यह अुद्योग केवल दस्तकारी या ग्राम अुद्योग ही हो सकता है। अिसका अर्थ यह होता है कि गांधीजी की ग्राम अुद्योग की समग्र प्रवृत्ति में जो ग्रामवृत्ति का आदर्श है अुसी आदर्श से वर्धा-शिक्षा के प्रयोग रंगे हुअे होने चाहिअें। ग्रामवृत्ति का अर्थ है, ग्रामजीवन में समाये हुअे सादगी, परिश्रम और समभावना के तेजस्वी संस्कारों को प्रजाजीवन में फैलाने का प्रयास। परिषद की व्यवस्था में, अुसके संचालन में तथा चर्चाओं में अिस ग्रामवृत्ति का दर्शन कम से कम हुआ। परिषद पहली ही थी; अुसका संचालन शिक्षा-विभाग के हाथों में था और प्रतिनिधि भी मुख्यतः अैसे शिक्षा-विभागों के ही थे। अिसलिअे यह त्रुटि स्वाभाविक भले ही मानी जाये, परंतु यदि त्रुटि के विषय में वर्धाप्रयोग करनेवाले जाग्रत न रहेंगे तो पद्धति के बाह्य हेर-फेरों में ही अुसके आदर्श खो जायेंगे; जीवन और शिक्षण की भिन्नता जैसी की तैसी ही बनी रहेगी।

(२) वर्धा-शिक्षा के प्रयोगों के विविध अंगों पर चर्चायें हुअी। अुनमें भी विषयों की पढाअी कैसी हो, अुद्योग की मारफत अमुक अमुक शास्त्रों का ज्ञान किस प्रकार दिया जाये, अिसीपर अधिकतर जोर दिया गया। गांधीजी ने तो अुद्योग द्वारा शिक्षा देने के प्रयोग के लिअे यह दावा किया है कि अुसमें बालकों का सर्वांगीण विकास होता है। यदि जीवनविकास शिक्षा का अन्तरात्मा हो तो वर्धा-शिक्षा के प्रयोग में अुसकी साधना सर्वोत्तम प्रकार से होती है। परंतु अनुबन्ध और समन्वय का अुद्देश्य यदि केवल विषयों की शिक्षा देने का ही रहेगा तो बालक की शक्तियों का अच्छा विकास अुसमें

द्वारा होगा ही, यह सन्देहास्पद है। जब स्वामी भारतानंद ने अनुबन्धों के होनेवाले अिस अतिरेक की ओर परिषद का ध्यान आकर्षित किया तो अुनके विचार कअी लोगों को खटके। परंतु अुनकी चेतावनी में बहुत तथ्य था। बात अैसी है कि आज की बुद्धिविलासी शिक्षा का मोह अभीतक नष्ट नहीं हुआ है और अुद्योग द्वारा भी अिन्हीं विषयों की केवल शिक्षा देने के प्रपंच रचे जाते हैं। अिसमें बालकों की बुद्धि का विकास होगा ही, अिसका निश्चय नहीं है। परंतु बडा भारी भय तो यह है कि बालक की अनेकविध दूसरी शक्तियों के तथा अुसके जीवन के अनेक संस्कारों के विकास के लिअे अैसे विषय-प्रधान अनुबन्धों में बहुत कम अवकाश रहेगा। गांधीजी कअी बार कहते हैं कि वर्धायोजना, शिक्षा के क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग है। मानवजीवन में अन्तर्निहित अुदात्त भावनाओं और संस्कारों का विकास करने में आज की सारी शिक्षा निष्फल साबित हुअी है। वर्धा-योजना अिस संस्कारिता को शिक्षा का मुख्य अंग बनाना चाहती है। परंतु परिषद की चर्चाओं में शायद ही किसीने अिस अति महत्त्व के विषय की ओर सहज भी ध्यान दिलाया होगा। स्वच्छता, संघशक्ति, सेवाभावना, संयमी जीवन, व्यवस्थितता और सत्यनिष्ठा आदि अनेक संस्कारों का वातावरण वर्धा-शालाओं में किस परिमाण में निर्माण होता है, अिस प्रश्न की तो चर्चा ही किसीने नहीं की। आज वर्धा-प्रयोगों में बडा खतरा तो यह है कि नयी शिक्षा के आदर्शों को मध्यबिन्दु में रखने के बदले पुरानी शिक्षा के, मुख्यतः केवल जानकारी देनेवाले विषयों को अनुकूल हो अिस ढब से, वर्धाप्रयोगों की रचना करने की धूम मच रही है। अुद्योग द्वारा दी जानेवाली शिक्षा में अनुबंधों का यदि यह अर्थ होनेवाला हो तो आज के बौद्धिक शिक्षण में और अैसे विषयलक्ष्यी अनुबन्धों में ज्यादा फर्क नहीं रहेगा।

(३) पाठ्यपुस्तकों के बारे में परिषद में जो चर्चायें हुअीं अुनमें यह भय और भी स्पष्ट हुआ। वर्धाप्रयोगों की खूबी यह है कि अुनमें स्वाभाविकता 'अथ से अिति तक' रहती है। प्रसंगानुसार परिवर्तन करने की पूरी पूरी गुंजाअिश अिन प्रयोगों के संचालन मे रहती है। अिसी लिअे अिसमें स्वाभाविकता की रक्षा हो सकती है। आज की शिक्षा का बडे से बडा दोष यह है कि चौखटे और विशेष हुक्म तथा परिपत्रों में अुसकी आत्मा का दम घुट जाता है। शिक्षकों की शक्ति के प्रति अिसमें घोर अविश्वास है। अिसका परिणाम यह निकलता है कि शिक्षा के अिस चौखटे में नितान्त सामान्य और अल्प शक्तिवाले रद्दी शिक्षक भी निभ सकते हैं। अिसीलिअे आज की शिक्षा में शिक्षकों की स्वयंशक्ति का अपमान करनेवाली ढेर की ढेर पाठ्यपुस्तकों के किलों में शिक्षक निर्माल्य-शिक्षा के पाठ बालकों के मगज में ठूंस रहे हैं। पाठ्यपुस्तकें तो बालकों, शिक्षकों, वातावरण और नित्य प्रति अुपस्थित होनेवाले प्रसंगों को भुला देती हैं तथा ज्ञान अेवं शिक्षा को यांत्रिक बना देती हैं। वर्धायोजना की अपेक्षा यह है कि शिक्षक ही निरंतर अेक जीवित और जाग्रत पाठ्यपुस्तक बना रहे। परंतु कहीं कहीं अैसी प्रवृत्ति दीख पडती है कि अमुक शिक्षकों के अनुभवों को पाठ्यपुस्तकों में लेखनबद्ध

कर दिया जाये और दूसरे शिक्षकों से आग्रहपूर्वक अुनका जड अनुकरण कराया जाये। पाठ्यपुस्तकों और चौखटे के अनुकूल दूसरे साधन जिस दिन वर्धाप्रयोगों में प्रविष्ट हो जायेंगे अुस दिन अिस नयी शिक्षा का मृत्यु-घंटा बज जायेगा, अिसमें शंका नहीं है।

(४) शिक्षकों की तालीम का संगठन किस प्रकार किया जाये, अिसके विषय में परिषद में सबसे अधिक चर्चा हुअी। परंतु अिसमें भी पाठ्यक्रम में मूलवस्तु तो भुला ही दी गयी थी। शिक्षकों को कितने वर्ष तक तालीम दी जाये, अुसके कुछ खंड किये जायें या नहीं, अध्यापन मन्दिरों में कितना समय दिया जाये—आदि प्रश्नों को बहुत महत्त्व दिया गया। परंतु शिक्षकों का चरित्र—अुनके जीवन का रहन-सहन और संस्कारिता के विषय में तो किसीको कुछ सूझता ही नहीं था। शिक्षक में शिक्षक-वृत्ति, बालक-प्रेम, सत्य-निष्ठा, सेवाभाव, संयमी जीवन की आदतें, आदि के लिअे योग्य वातावरण अध्यापन-वर्गों में किस तरकीब से निर्माण किया जाय, यही अुनकी सारी तालीम का मुख्य और महत्त्व का प्रश्न है। परंतु अिसकी किसीको खास चिन्ता नहीं थी। शिक्षकों को खादी और ग्राम-अुद्योग को अपने जीवन में कौन-सा स्थान देना चाहिअे, कुटुंब में तथा शाला में प्रेमधर्म के प्रयोगों द्वारा विश्वास और प्रामाणिकता का वातावरण किस प्रकार निर्माण करना चाहिअे—अिन्हीं प्रश्नों का वर्धा-शिक्षण की तालीम में प्रधान स्थान है। परंतु तो भी परिषद ने बहुत-सा वक्त तालीम की फुटकर तफसीलों की बहस में ही जाया किया।

(५) परिषद की चर्चाओं में वर्धा-शिक्षा के प्रयोगों की दूसरे महत्त्वपूर्ण पहलुओं की तो सर्वथा अुपेक्षा की गयी। आज की शिक्षा ने शिक्षितवर्ग को अुसके कुटुम्ब और गांव से बिलकुल अलग ही नहीं कर दिया, वरन वह अुस वर्ग में कुटुम्ब-द्रोह और समाज-द्रोह की मलिन प्रवृत्तियां ही बढाती जा रही है। ग्राम-अुद्योग तथा बालकों के सामाजिक अेवं भौगोलिक वातावरण को शिक्षा के साधन बना कर वर्धायोजना ने कुटुंब, गांव और समाज के वातावरण को बालक की शिक्षा के अधिक से अधिक अनुकूल बनाने पर खास जोर दिया है। शिक्षक बालकों के मां-बाप के संसर्ग में अधिक से अधिक आवें अिस बात पर तो परिषद में मानो किसीको कुछ कहना ही नहीं था। वर्धाशालाओं में पढनेवाले बालक अपने घरों में अधिक अुपयोगी किस प्रकार हो सकते हैं, यह विषय बडे महत्त्व का है। लेकिन अिसके बावजूद भी परिषद ने अुसकी कुछ भी चर्चा नहीं की।

परिषद का वातावरण अैसा था। अुससे यह स्पष्ट दिखायी देता था कि वर्धा-शिक्षा के आदर्शों को शिक्षा की चिल्लर तफसील में भुला दिया जाता है। शिक्षक और शिक्षकों के अध्यापनवर्ग के संचालक यदि वर्धा-शिक्षा के अिन भयस्थानों के विषय में सतर्क नहीं रहेंगे तो महात्माजी का यह महान प्रयोग शायद ही सफल हो।

(गुजराती 'शिक्षण और साहित्य' से)

खादी,—अहिंसा का शरीर

[हरिभाअू अुपाध्याय]

मैंने कअी बार अपने व्याख्यानों और चर्चाओं में यह कहा है कि महात्मा गांधी की संसार को दो देनें सबसे बडी हैं। अेक अहिंसा और दूसरी खादी। अिधर महात्माजी यह समझाने का प्रयत्न जोरों से कर रहे हैं कि खादी अुनके नजदीक अहिंसा का प्रतीक है। अिसे हम समझने का यत्न करें। अहिंसा यदि आत्मा है तो खादी अुसका शरीर है। अहिंसा की जो भावना हमारे अन्दर है, अुसे यदि सामाजिक रूप में हमें प्रकट करना है तो हम खादी के रूप में जितनी अच्छी तरह प्रकट कर सकते हैं, अुतना दूसरी तरह नहीं।

हिंसा के दो मुख्य लक्षण हैं—अेक, जो वस्तु न्यायतः हमारी नहीं है, अुसका अनुचित अुपयोग करने की भावना, दूसरे बैर रखने या बदला लेने की भावना। समाज में पहली अर्थात् शोषण करने की भावना ने जितना अनर्थ किया है, समाज की व्यवस्था पर जितना बुरा असर डाला है और समाज को जितना प्रभावित कर रक्खा है, अुतना बैर या बदला लेने की भावना ने नहीं। बल्कि अधिक गहरा विचार किया जाय तो मालूम होगा कि अिस शोषण-वृत्ति में से ही वैरवृत्ति का जन्म होता है। अिसलिअे यदि समाज से वैरभाव अर्थात् शत्रुता और प्रतिहिंसा का भाव मिटाना है तो हृदय से शोषण के भाव को ही नष्ट करना होगा। और यदि समाज में से हिंसा को नष्ट करके अहिंसा को प्रस्थापित करना है तो शोषण के हर रूप को हर स्थान से हटाने का दृढ़ प्रयत्न करना होगा। और यह काम हम खादी के द्वारा जितनी आसानी से कर सकते हैं, अुतना और किसी तरह से नहीं।

'खादी' का यहां व्यापक अर्थ लेना चाहिये। खादी के लिअे न बहुत पूंजी, न बहुत श्रम-संग्रह की जरूरत है। जहांकहीं संग्रह या परिग्रह की भावना है, वहां किसी न किसी रूप में शोषण को विद्यमान ही समझिये। 'खादी' थोडे रुपये में, थोडे साधनों से, थोडी जगह में बन सकती है और मेहनत और मजदूरी का बटवारा अैसे स्वाभाविक क्रम से और न्यायपूर्वक हो जाता है कि किसीको किसीका शोषण करने की सहसा गुंजाअिश नहीं रह जाती। यदि 'खादी' की व्याख्या कपडे तक सीमित न रख कर तमाम हाथ से बनी चीजों तक मान ली जाय, तो आर्थिक शोषण का प्रश्न बहुत आसानी से हल हो सकता है। क्योंकि खादी में जो अुसूल है, वह वास्तव में हाथ-परिश्रम से तैयार किये माल को अिस्तेमाल करना है। मशीन से माल तैयार करने की भावना की जड़ में धनसंग्रह की लालसा के सिवा और कुछ नहीं है। अगर जनता की, या बनानेवाले की, सुख-सुविधा की ही भावना अुसमें हो तो वह 'खादी' और 'खादी के अुसूल' से ही पूरी हो सकती है, मशीन और मशीन के अुसूल से किसी प्रकार नहीं।

प्रत्येक भावना की कोअी स्थूल कसोटी होनी ही है। कोई भावना जब तक अमूर्त रहती है, तब तक न वह जानी जा सकती है, न अुसका कोई सामाजिक मूल्य ही है। आपके मन में अहिंसा की भावना है, अुसका परिचय आप संसार को कैसे देंगे? अुससे

समाज को लाभ कैसे पहुंचावेंगे। अिसके लिअे आपको कुछ वैसे कार्य और व्यवहार करने पड़ेंगे। हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत मे तीन प्रकार से हम अपनी अहिंसा की भावना अच्छी तरह और अुपयोगी ढंग से प्रकट कर सकते हैं। अेक, कौमी समता के लिअे प्रयत्न करके, दूसरा, हरिजनों की सेवा करके और तीसरा, खादी को अपना कर और चरखा कात करके। कोअी भावना तभी अुपयोगी हो सकती है, जब वह अैसे रूप मे प्रकट हो, जिससे देश और समाज की बहुत बडी आवश्यकता या अभाव की पूर्ति होती हो। हिन्दुस्तान में अिस समय ये तीन सबसे बडी आवश्यकतायें है। मगर न्यायपूर्ण आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से खादी सम्बन्धी आवश्यकता सर्वोपरि है और अिसीलिअे गांधीजी अिस बात पर सबसे अधिक जोर दे रहे है। अिस महत्त्व को ध्यान मे रख कर ही मै कहा करता हू कि खादी गांधीजी की संसार को अेक महान देन है।

खादी हिन्दुस्तान में पहले भी थी, पर अुस समय वह महज अेक कपड़ा थी। आज वह अेक भावना है, अेक अुसूल है; और अिस रूप मे वह महान् देन है। गांधीजी ने अब तमाम कॉंग्रेसजनों से चाहा है कि वे चरखा कातें। अुन्होने जिस तरह खादी के महत्त्व को समझा है, अुसे देखते हुअे जिस दिन अुनका बस पड़ेगा, अुस दिन वे अुसे सबके लिअे अनिवार्य कर दें तो आश्चर्य नहीं। यदि हिन्दुस्तान से ही नहीं, संसार से, शोषण को खत्म करना है, तो हिन्दुस्तान को ही नहीं, सारी दुनिया को अेक दिन खादी की योजना स्वीकार किये बिना गति नहीं। स्वतन्त्र समझे जानेवाले यूरोपीय राष्ट्र के सामने जो संकट आज मुह बाये खड़ा है, और जिसमें सबको भारी विनाश होता दिखायी पड़ता है, अुसकी पुनरावृत्ति जो नहीं चाहते अुन्हें खादी के अुसूल को, अर्थात् अहिंसा की भावना को, अपनाये बिना दूसरा रास्ता ही नहीं है।

पोशाक वृत्ति का द्योतक है

अिसी गुण मे खादी का महत्त्व है। जमानों तक सभी देशों में कपडे की किस्म और अुसके सिलाने की तर्ज अुसे पहननेवाले स्त्री और पुरुषों की सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक रहा है। मनुष्य का भेष और अुसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में यह जो चिर-साहचर्य रहा है अुसके कारण हिंदुस्थान में खद्दर को सामाजिक और राजनैतिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। खद्दर पहनने का यह मतलब है कि खद्दरपोश या तो अेक गरीब किसान है, या कॉंग्रेस के द्वारा भारत की गरीब जनता के साथ सहानुभूति रखनेवाला है। खादी पहनना स्वतंत्रता का अैलान है। देश की भीतरी शक्ति का, आत्म-निर्भरता का और विनयशीलता का प्रतीक है।

—रिचर्ड बी. ग्रेग

आकाशदर्शन

[काका कालेलकर]

(१)

सर्वोदय के प्रथम वर्ष में आकाश की ज्योतियों के बारे में मैंने 'देवों का काव्य' शीर्षक पांच लेख लिखे थे और यह महत्वाकांक्षा रक्खी थी कि आकाश की ओर देखनेवालों को केवल वर्णन-मात्र से आकाश के मुख्य मुख्य तारों का परिचय करा दूंगा। परन्तु कअी मित्रों ने लिखा कि अिस तरह से सारी बातें ध्यान में नहीं आतीं। अब की बार मानचित्र देते ही लोगों का ध्यान अिस ओर गया है। पाठक कृपया ये मानचित्र सम्हाल कर रक्खें। जिन्होंने खो दिये हों वे डाअी आने के टिकट भेज कर फिर से मंगवा सकते हैं। आगे भी समय समय पर नये नये मानचित्र दिये जायेंगे।

अब अिन मानचित्रों द्वारा ज्योतियों से परिचय किस तरह किया जा सकता है, यह मुझे बताना है। दक्षिण ध्रुव के मानचित्र की बात अगले अंक में करूंगा। अिस वक्त आकाश के ब्रह्महृदय, रोहिणी, बाणराज, (मृग का अेक पांव) व्याध, प्रश्वन् और पुनर्वसु अिन छः तारों के दिव्य षट्कोण का जो मानचित्र दिया है, अुसीके बारे में थोडा कहूंगा।

पृथ्वी के किसी भी देश के नकशे में अूपर अुत्तर, नीचे दक्षिण, पाठक की दाहिनी ओर पूर्व और बायीं ओर पश्चिम दिशायें होती हैं। आकाश का नकशा अिससे अुलटा होता है, यह बात अिस नकशे को छत की ओर पकड़ कर पाठक आसानी से समझ सकते हैं।

अब जिस दिशा की तरफ हम मुंह करके आकाश देखते हैं अुस दिशा को नकशे में नीचे करके आराम कुर्सी पर लेट कर आकाश देखना चाहिअे। जो नक्शा दिया है अुसका आकाश में देखने का समय भी जानना चाहिअे। जनवरी के प्रारंभ में रात को ११-१५ और ११-३० के बीच आकाश में तारों की जो स्थिति होगी वही अिस नकशे में बतायी गयी है। आज जो तारे आकाश में जैसे दीख पड़ते हैं वैसे ही कल चार मिनिट जल्दी दीख पड़ेंगे। अिस हिसाब से ८ जनवरी को यह नक्शा १०-४५ बजे काम आयेगा और पंद्रह जनवरी को १०-१५ के करीब काम आयेगा। बाअीस-तेअीस के करीब ९-४५ को अिसे हाथ में ले कर हम आकाश देख सकेंगे और जनवरी के अन्त में यही नक्शा ९-१५ के करीब काम देगा। फरवरी में पाठक अिससे अधिक लाभ अुठा सकेंगे। क्योंकि फरवरी में क्रमशः ९-१५ से लेकर ७-३० तक हम अिसे देखने के लिअे काम में ला सकते हैं।

यह हो गयी समय की बात। पाठक सबसे पहले दक्षिण की ओर मुंह करके वहां अत्यंत अुज्ज्वल तेज से चमकते हुअे अगस्ति को प्रथम प्रणाम करें। अगस्ति ऋषि ने जब विंध्य और सातपुडा के पहाड़ लांघने का प्रथम प्रयास किया तब यही तारा अुनके सामने रहता था अिसलिअे अिस तारे को 'अगस्ति' ही नाम दिया गया है

अगस्ति मुनि आकाश में आहिस्ता आहिस्ता दक्षिण-पश्चिम की ओर जाते हैं और अुनकी झोंपडी (या आश्रम कह लीजिये) अुनके पीछे पीछे आती है। झोंपडी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है त्यों त्यों अुसकी जमीन पश्चिम की ओर दबती जाती है और पूरब की ओर अूंची होती जाती

है। यह कैसे होता यह अगर देखना है तो दक्षिण के मानचित्र को कार्डबोर्ड की तख्ती पर रख कर दक्षिण ध्रुव-बिन्दु पर अेक अलपीन (कील) लगा कर कागज को घुमा दीजिये। अिस झोंपडी के जमीन का जो तारा अगस्ति के बिलकुल नजदीक है वह बिलकुल मन्द है। अुसके अूपर का अुससे कुछ बड़ा है। अुससे बड़ा है छप्पर के अूपरवाला तारा। अिसके आगे वाला ओलती का तारा अुससे भी अधिक चमकता है; और फिर जमीन का आग्नेय दिशा का तारा अुसके भी बढ़ कर है। अिस तरह यह अुत्तरोत्तर बढ़ने वाले प्रकाश के तारों का अेक पंचकोण है। झोंपडी के अंदर दो दीवालों के बीच छप्पर में लटकता हुआ अेक तारा दीये का काम करता है, अुसकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। अगस्ति और अुसकी झोंपडी सबसे पहले देखने के लिअे अिसलिअे कहा कि थोडी देर के बाद झोंपडी अपने ठिकाने पर नहीं रहेगी।

दक्षिण की अिस झोंपडी को देख कर हम पश्चिम की ओर झुके। अगर ठीक समय पर पश्चिम की तरफ देखेंगे तो वहां पर भाद्रपदा का बड़ा चतुष्कोण पूरा पूरा देखने में आवेगा। अुसके अूपर अश्विनी के तीन तारे दीख पडेंगे। दो बडे और अेक छोटा। अुसके अूपर कृत्तिका के छः तारों का अेक छोटासा और नयनमनोहर गुच्छा दीख पडेगा।

अश्विनी और कृत्तिका के बीच, किन्तु कुछ अुत्तर की ओर झुका हुआ अेक छोटासा और बिलकुल मन्द त्रिकोण दीख पडेगा। वह है भरणी नक्षत्र जिसपर पितरों का श्राद्ध होता है।

कृत्तिका के अूपर रोहिणी का कुछ तिरछा सा v अुड़ रहा है। v के प्रारंभ में जो तारा है वह सबसे बड़ा है। सारे v को रोहिणी कहते हैं। अुसके अुस अुज्ज्वल तारे को रोहिणी का योगतारा कहते हैं। रोहिणी का v का आकार देख कर प्राचीन लोगों ने अुसे वल्मीक (बमीठा) की अुपमा दी है। चन्द लोगों ने अुसमें गाडी की बैठक की कल्पना की है। 'रोहिणी शकटाकारा'।

यहां से हमारे दिव्य षट्कोण का प्रारंभ होता है। दाहिनी ओर ब्रह्महृदय और बायीं ओर मृग का पिछला पांव बाणराज; बाणराज के अूपर आकाश का सबसे बड़ा तारा व्याध; ये सब आसानी से दीख पड़ते हैं। व्याध और रोहिणी के योग-तारे के बीच मृग के पेट में घुसा अिषुत्रिकाड बाण हम देख सकते हैं। व्याध की दाहिनी ओर, यानी अुत्तर की ओर, प्रश्वन् मिलेगा। प्रश्वन् आकाश की पुनर्वसु की किश्ती का शिरोभाग (मोहरा) है। प्रश्वन से लेकर छह तारों की जो गोल रेखा होती है वही हमारी किश्ती की रीढ है। यहां पर पुनर्वसु के दो तारे हैं और नीचे ब्रह्ममण्डल के अूपर का योग-तारा (ब्रह्महृदय का तारा) अिस षट्कोण को पूरा कर देता है।

हम कहीं भी खडे हो जावें, आकाश का जो बिन्दु हमारे ठीक सिर पर आता है अुस बिन्दु को हमारी परिभाषा में ख-स्वस्तिक कहते हैं। ख-स्वस्तिक कोअी तारा नहीं है, केवल अेक काल्पनिक बिन्दु है। और वह हमारे सिर पर ही रहने के लिअे बाध्य है।

अब हम अुत्तर की ओर अपना मुंह करें और नक्शे में जहां अुत्तर लिखा है अुस छोर को नीचे रख दें। अब हमारे सामने कुछ बायीं तरफ आकाश में कुछ तारों की अेक M जैसी आकृति बनी हुअी हम देखेंगे। अिसका आकार देखते ही हम अुसकी अेक

झूलती आराम कुर्सी (रॉकिंग औजी चेअर) बना सकते हैं। अिस पर बैठ कर अिसे अपना यान बनाकर देव आराम कर सकते हैं। अिस देवयानी को अंग्रेजी में कॅस्योपिया कहते हैं।

[पाठक ज्योतिष के अन्य देशी ग्रंथों में कॅस्योपिया का नाम देवयानी नहीं पायेंगे; किन्तु शर्मिष्ठा पायेंगे। यह नाम पुराना नहीं है। महाराष्ट्र के ज्योतिषी श्री बालशास्त्री जांभेकर ने कभी अंग्रेजी नामों के प्रतियोगी देशी नाम रख दिये। परस्यूस, अँड्रोमिडा और कॅस्योपिया की कथा सुन कर अुन्होंने ययाति, देवयानी और शर्मिष्ठा ये नाम रख दिये। हमारी पौराणिक वार्ता में शर्मिष्ठा का महत्त्व कम है। कवियों का ध्यान देवयानी की ओर ही अधिक गया है। आकाश में कॅस्योपिया का नक्षत्र-मंडल अितना स्पष्ट और सुंदर है कि अुसको देवयानी कहना चाहिअे। और वह देव-यान तो है ही।]

देवयानी और सप्तर्षि आकाश में हमेशा अुत्तर ध्रुव के आमनेसामने रहते हैं। जब देवयानी अुपर चढ़ती है तब सप्तर्षि क्षितिज के नीचे डूब जाते है। पाठक देखेंगे कि अिन दिनों देवयानी की आराम कुर्सी धीमे धीमे पीछे हटती है और सप्तर्षि अुसी क्रम से अपना शिर अूंचा करते जाते हैं।

अबकी बार अितनी बातें काफी हैं। किसी अगले महीने में ब्रह्ममंडल की हुंडी, पुनर्वसु की किश्ती, मृग की चमड़ी, व्याधवाला कुत्ता, अित्यादि नक्षत्रों के विस्तृत चित्र दिये जायेंगे। अिसी लेख के अंत में पाठक अिन सब तारों के और नक्षत्रों के अंग्रेजी नाम भी पायेंगे। जिनके पास ज्योतिष की अंग्रेजी किताबें और नक्शे हैं वे अिन नामों से लाभ अुठा सकते हैं। दिये हुअे दो नक्शों की मदद से पाठक आकाश का दर्शन करते जायें और जो बात ध्यान में न आवे अुसके बारे में मुझे पत्र लिख कर पूछें।

अगस्ति–Canopus
भाद्रपदा–Pegasus
अश्विनी–Hamul
भरणी–Musca
कृत्तिका–Pleiades
(रोहिणी योग तारा)–Aldeberonm
मृग–Orion
बाणराज–Rigel
आर्द्रा–Betelgeuse
व्याध–Sirius
प्रश्वन्–Procyon
पुनर्वसु–Castor and Pollaus
ब्रह्महृदय–Capella
ख-स्वस्तिक–Zenith
ध्रुव–Pole Star
सप्तर्षि–Great Bear
ध्रुवमत्स्य–Little Bear
द्वापर ध्रुव–Tuban
वशिष्ट–Mizar
अरुंधती–Alcor या Saidak
शर्मिष्ठा–Andromeda
देवयानी–Cassiopeia
मघा–(Leo)
मघा (योगतारा)–Regulus
फाल्गुनीयोगतारा–Denebola
अेकाकी–Alfard
वरेण्यकेशा–Coma Berenices
कैरेना–False Cross
यमुना–Achernar
वाममत्स्य–Fomalhaut

२

ब्राह्मे मुहूर्ते दक्षिण की ओर

आज तारीख २२ दिसम्बर को यह लिख रहा हूं। सुबह की प्रार्थना पूरी करके साढे पाँच बजे आकाश देखा। दक्षिण की ओर मुंह करके खड़ा हूँ। यहां से दाहिनी ओर याने पश्चिम में व्याध का कुत्ता (Canis Major) क्षितिज के नीचे डूबने की तैयारी कर रहा है। आगे का पाँव क्षितिज तक पहुंच गया है। दुम सीधी रह कर कुत्ते का आवेश बता रही है। पिछला पांव अूंचा का अूंचा ही है। अधर बायें हाथ (पूर्व की ओर) बुध काफी अूंचा आगया है। अुसके नजदीक वृश्चिक राशि के बिच्छू का पेट, याने ज्येष्ठा नक्षत्र, अपने मध्य तारा पारिजात की लाल छटा दिखा रहा है। मुंह पूरब की तरफ करने से अूपर हस्त नक्षत्र आकाश पर पाँच अुंगलियों का छाप लगता हुआ दीख रहा है। अुसके नीचे चित्रा है (जो कन्या राशि का शिर है)। अिस चित्रा के बायें, याने अुत्तर की ओर, स्वाति का बड़ा तारा हम आसानी से पहचान सकते हैं। अुसे छोड़ कर हम वापस चित्रा के पास आवें। चित्रा के नीचे विशाखा के दो तारे हमने देख लिये हैं। अुसके बाद अनुराधा के चार तारे भी हम देख चुके हैं। अुसके नीचे ज्येष्ठा के तीन तारे खड़े हैं। बीच का पारिजात थोडीसी लाल छटा दिखाता है। मानों हर-सिंगार का फूल ही है। अुसके बाद बिच्छू का डंक-मूल नक्षत्र-अुगने को है। किन्तु क्या किया जाय? अुषाके तेज में वह ढँक गया है।

जब तक मृगनक्षत्र कुत्ते के डर से पश्चिम के क्षितिज के अंदर डूब नहीं जाता तब तक पूर्व की ओर वृश्चिक अुगता नहीं। गाँव के बुड्ढे लोग कहते हैं 'वृश्चिक का दंश हो गया अिस लिअे मृग मर गया'।

सीधे दक्षिण की ओर अगस्ति कब का डूब गया है। अुसकी झोंपडी भी करीब करीब ओझल हो गयी है। झोंपडी के पीछे केरीना आता है जिसे अंग्रेजी में फॉल्सक्रॉस भी कहते हैं। हम अिसे पश्चिमी क्रूस कहें। अिसके बाद सदर्न क्रॉस, याने त्रिशंकु आता है। यह सच्चा क्रॉस है। अगर कॅरीना पश्चिम क्रूस है तो यह त्रिशंकु पूर्व क्रूस कहलाना चाहिअे, हालांकि हैं तो दोनों दक्षिणी ही। अिस त्रिशंकु के शिर पर दो तारे लटकते हैं। किन्तु अुनका महत्त्व नहीं है। त्रिशंकु की दाहिनी ओर, याने हमारी बायीं ओर, पूर्व की तरफ दो चमकीले तारे हैं जिन्हें जय-विजय कहते हैं। अिन दोनों की अुंगली त्रिशंकु का निर्देश करती है, अिस वास्ते अंग्रेजी में अिन्हें पॉअिन्टर्स कहते हैं। अिनका शास्त्रीय नाम है आल्फा सेन्टॉरी, और बीटा सेन्टॉरी। जो तारा त्रिशंकु के पास और अूंचा है वह है बीटा। जो पूर्व की ओर नीचे है वह है आल्फा। यह आल्फा अथवा जय, सूर्यनारायण का दोस्त है। क्योंकि हमारी सूर्यमाला से वह बिलकुल नजदीक है। अुसका प्रकाश हमारे यहाँ चार साढे चार वर्ष के अंदर ही आ पहुंचता है।

जो दृश्य आज हमने साढे पाँच बजे देखा वह पाठक पाँचवी जनवरी को, याने पंद्रह दिन के बाद, सुबह साढे चार बजे देख सकेंगे और आज से भी अच्छी तरह देख सकेंगे, क्योंकि अुस वक्त अुषा का जोर कम हो गया होगा।

वर्धाशिक्षा का हार्द—अनुबन्ध

[काका कालेलकर]

काम करते-करते धन की जैसे जैसे जरूरत पड़े वैसे हम धन अिकट्ठा करते जायें और अुसे खर्च करते जायें, यह स्वाभाविक स्थिति है। अैसे धन का कभी बोझ नहीं मालूम होता।

जितनी भूख लगी अुतना ही खा लिया और काम करते गये, थक जाने पर कुछ आराम किया, फिर भूख लगने पर फिर खा लिया और फिर काम करने लगे, यह स्वाभाविक स्थिति है। अिससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है, शक्ति बढ़ती है, पुरुषार्थ सिद्ध होता है और पेट पर, खून पर, या दिमाग पर, कोअी बोझ नहीं पड़ता। मिताहार का यह रहस्य हर अेक जानता है। मितधनार्जन का रहस्य अभी मनुष्य के ध्यान में नहीं आया है। अिसलिअे वह बिना सोचे-विचारे बेतहाशा धन कमाता जाता है और धन-रोग से पीडित रहता है।

पेट में अन्न ज्यादा ठूंस लेने से वहां वह सड़ने लगता है और स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है। जेब में बहुत ज्यादा धन भर देने से लुटने का डर पैदा होता है और दिमाग में धन का कृत्रिम खयाल जम जाने से दिमाग भी बिगड़ जाता है।

ज्ञान का जब अत्याहार होता है और अपच होता है तब अुससे क्या क्या हानियां होती हैं, अिसका खयाल मनुष्यजाति को अभी तक नहीं आया है।

आवश्यकता निरे ज्ञान-वृद्धि की नहीं; किन्तु जीवन-समृद्धि की है। जीवन जैसे जैसे समृद्ध होता जाता है, ज्ञान की भूख बढ़ती ही जाती है और अिस तरह से जीवन-समृद्धि के हेतु जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह बोझ-रूप नहीं होता; किन्तु जीवन-पुष्टि को, जीवन-तुष्टि को और पुरुषार्थ को बढ़ाता जाता है।

शिक्षा-शास्त्रियों पर यह बात बार बार प्रकट करने की आवश्यकता है, अिसलिअे अिसकी पुनरावृत्ति की है। यह दृष्टि शायद बिलकुल नवीन है, अिसलिअे अुसे बार बार दुहराना चाहिअे।

आज तक के शिक्षा-शास्त्री मानते थे कि शिक्षा का अुद्देश्य ज्ञानवृद्धि है। अुसके बाद अिस अुद्देश्य में सुधार करके वे कहने लगे कि शिक्षा का अुद्देश्य ज्ञान-समृद्धि तो है ही किन्तु अुसके साथ साथ संस्कारिता बढ़ाना भी है; क्योंकि तभी जा कर मनुष्य प्रभावशाली बनता है और नेतृत्व के गुण प्रकट करता है।

जब राजसत्ता के दिन बीत गये और लोकसत्ता के दिन आये तो शिक्षा के अुद्देश्यों में और अेक बात जोड़ दी गयी। वह यह कि शिक्षा के द्वारा कौशल्य बढ़ना चाहिये और धनोपार्जन-क्षमता भी आनी चाहिये। अिस परिवर्तन की ओर भी हमें ध्यान देना चाहिअे। अुद्देश्य में यह संशोधन होने के बाद से सफेद-पोशों की संस्कारिता की प्रतिष्ठा कुछ कम हो गयी है।

किन्तु अब हमें समझ लेना चाहिअे कि शिक्षा का अुद्देश्य प्रधानतया जीवन-शुद्धि और जीवन-समृद्धि ही होना अुचित है।

"जीवन के लिअे शिक्षा" नहीं; किन्तु "जीवन द्वारा शिक्षा और शिक्षा द्वारा

जीवन"—ही हमारा सूत्र होना चाहिये।

विद्यामंदिर में क्या पढाया जाता है यह सवाल अुतने महत्व का नहीं है जितना कि विद्यामंदिर में कैसा जीवन जीया जाता है यह सवाल है। जो बुनियादी दस्तकारी हम पसंद करते हैं वह अगर हमारे जीवन के साथ बुनी जाय—अथवा हमारी बुनियादी दस्तकारी के ताने पर हमारा समग्र जीवन बुना जाय—तो हमारी शिक्षा और हमारा जीवन दोनों कृतार्थ होंगे। अुत्पादक काम के साथ कौन कौन से विषय हम अनुबद्ध कर सकते हैं यह देखने की अपेक्षा अुस परिश्रम के साथ कितनी जीवन-समृद्धि हम अनुबद्ध कर सकते हैं यह देखना चाहिये। फिर वह जीवन-समृद्धि ही कह देगी कि क्या सीखना है और कितना सीखना है।

हमने पहले से यह तय कर लिया कि हमारी शिक्षा में फलाने फलाने विषय आवश्यक हैं और फिर अुन सबका परिश्रम के साथ अनुबन्ध करने चले। यह गलत तरीका है। अगर हम देखते कि देश की और विशिष्ट समाज की आज की हालत में हर अेक व्यक्ति का और हर अेक समाज का जीवन कैसा है और अुसे कौन-सा रूप देना है, कहां तक अुसे ले जाना है और कितनी जीवन-समृद्धि हम सिद्ध कर सकते हैं, तो बुनियादी दस्तकारी पसन्द करने में भी हमें कठिनाअी नहीं होती। और न अुसके साथ कौन कौन-सा ज्ञान, कौन कौन-सा कौशल्य और कौन कौन-सी संस्कारिता अनुबद्ध करनी है अिसका निश्चय करने में ही हमें कठिनाअी होती। अेक सूत्र के रूप में अगर कहना हो तो— "हमें शिक्षा में ज्ञान दृष्टि छोड कर जीवन-दृष्टि का धारण और अनुसरण करना चाहिये"। जो शिक्षक जीवन-दरिद्री हैं वे वर्धायोजना के सफल शिक्षक नहीं बनेंगे, फिर वे चाहे जितने विद्वान और अनुबन्ध की कला के कोविद क्यों न हों। जो शिक्षक जीवन-वीर हैं, जीवन-कुशल हैं, जीवन-समृद्ध हैं अुनका प्रभाव समाज पर आप ही पडता है और अुनके द्वारा चलायी हुअी शिक्षा जीवन-जागृति के लिअे पर्याप्त होती है।

शिक्षा के मौजूदा तरीके और भावी तरीके में जो फर्क है वह अेक मिसाल के जरिये हम अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकते हैं। जो जिन्दा-दिल शिक्षक हैं और जिनके पास जीवनदृष्टि है अुनके बारे में अक्सर यह शिकायत होती है कि वे अपने वर्ग में विषयान्तर बहुत करते हैं।

जिनकी बुद्धि का कोअी ठीक ठिकाना ही नहीं है, जो थोड़ासा सहारा मिलते ही वहीं से कहीं भाग जाते हैं और अपना अुद्देश्य भूल कर बकते ही चले जाते हैं अैसे विहगवृत्ति शिक्षक तो कोअी पसन्द नहीं करेगा। वे तो पक्षी की तरह अेक विषय से दूसरे विषय पर और वहां से तीसरी किसी बात पर अुड़ते ही जायेंगे। अंग्रेजी में जिसे 'नॉनसेन्स व्हाअिम्स' कहते हैं वैसा जो विषयान्तर करते हैं अुनको तो शिक्षक का कार्य सौंपना ही नहीं चाहिअे।

किन्तु जो सफल शिक्षक हैं; विद्वान और बहुश्रुत भी हैं अुनके विषयान्तर की मिसाल हम दे रहे हैं। जो मुख्याध्यापक विषयपरायण, पाठ्यक्रमपरायण और परीक्षा-परायण हैं अुनको अैसे प्रतिभाशाली शिक्षकों का विषयान्तर हमेशा अखरता है। और बाज दफा लाचार हो कर अैसे शिक्षक अपने लट्टू विद्यार्थियों को घर पर बुलाकर स्वतंत्रता से सिखाते हैं।

वर्धायोजना अैसे शिक्षकों को स्वतंत्रता

भी देती हुआी अुनपर योग्य नियंत्रण भी डालती हैं। अपना मूल विषय ले कर अुसके साथ जितनी कुछ अन्य बातें अनुबद्ध हो सकती हैं अुनको तो वह अवश्य चलावें। अैसे विषयान्तर के लिये अुनको कोअी डांटेगा नहीं; बल्कि धन्यवाद ही देगा। किन्तु जहां अनुबन्ध की संभावना नहीं है और मूल विषय की प्रधानता नहीं है अैसी बातें अुन्हें छोड देनी चाहिअें।

मराठी में अेक कहावत—है 'हरिदास की की कथा मूल वचन पर'। अिसे समझने के लिअे महाराष्ट्र के अेक खास रिवाज का ज्ञान चाहिअे। महाराष्ट्र के 'हरिदास', याने 'कथाकार', रामायण, महाभारत, वेदांग, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों में और कथा–साहित्य में प्रवीण होते हैं। संगीत और काव्य में भी अुनकी अच्छी गति होती है। वे मन्दिर में जा कर जब कथा करते हैं तब प्रथम कोअी धर्मवचन या किसी संत का जीवनसूत्र ले कर अुसपर प्रवचन करते हैं। जिसे पूर्वरंग, या ब्रह्मनिरूपण, कहा जाता है अुसमें मूल वचन को अुद्दीपित करने के लिअे वे दुनियाभर की बातें लाते हैं। फिर अुत्तररंग का प्रारंभ होता है जिसमें अुसी वचन की सिद्धि के लिअे किसी कथा या आख्यान का विस्तार वे करते हैं और अुसमें नव रसों का साक्षात्कार कराते है। हरिदास की सफलता अिसमें है कि वह जो कुछ विषयांतर करेगा अुसका मूल वचन के साथ अनुबन्ध दिखा सके। चौमासे में चार महीनों तक हरिदास की कथा सुनने से श्रोताओं को अनेकानेक विषयों का जीवनस्पर्शी ज्ञान हो जाता है। अेक विद्वान हरिदास के सहवास से सारा समाज बहुश्रुत, धर्मज्ञ और रसिक बन जाता है। दोनों में शिक्षा-दृष्टि कम रहती है, जीवनदृष्टि प्रधान रहती है, हालांकि आज के आदर्श की कसौटी से अुसे अेकांगी कहना चाहिअे।

अिन सब अुदाहरणों से पाठकों को अितना खयाल आया होगा कि अनुबन्ध कोअी अनोखी चीज नहीं है। अुसका शास्त्र भी गूढ नहीं है। जीवन में सर्वत्र अनुबन्ध भरा हुआ है और अनुबन्धपद्धति में सारा जीवन भर देना चाहिअे।

अब बुनियादी तालीम में भिन्न भिन्न दस्तकारियां ले कर हम कौन कौन से अनुबन्ध खडे कर सकते है अुसके प्रत्यक्ष अुदाहरण देने चाहिअें; जिसके बिना शिक्षकों को पूरा दिशादर्शन नहीं होगा।

भूलसुधार

दिसंबर के अंक में पृष्ठ २३७ पर १८ वीं पंक्ति में 'यथा–परिणाम' की जगह 'यथा–परिमाण' पढा जाय।

जनवरी के अंक में पृष्ठ २६८ पर नीचे से तीसरी पंक्ति में 'परिणाम वाचक' की जगह 'परिमाणवाचक' पढा जाय।

—सं०

हत्याग्रह और सत्याग्रह

[काका कालेलकर]

स्वामी रामतीर्थ ने कहीं अेक पुराने किस्से का जिक्र किया है:—दो भाअी या मित्र बादशाह के पास नौकरी मांगने के लिअे गये। बादशाह ने पूछा, 'तुम क्या क्या कर सकते हो? किस योग्यता के आधार पर नौकरी चाहते हो?' दोनों ने कहा—'हम वीर हैं। हम प्राण की पर्वाह किये बिना लड़ सकते हैं।' बादशाह ने कहा, 'अपनी यह योग्यता सिद्ध कर दिखाओ तो नौकरी मिलेगी।'

सामने कोअी शत्रु तो था नहीं। मगर योग्यता तो सिद्ध करनी थी। क्या करते? दोनों ने शस्त्र निकाल कर अेक दूसरे पर हमला किया। प्राण की पर्वाह किये बिना दोनों लड़े और दोनों अेक दूसरे के प्रहार से नीचे गिर पड़े। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि दोनों ने अपनी वीरता का सम्पूर्ण और अन्तिम सबूत दे दिया।

वीरता का तो सबूत वह था ही। किन्तु वीरता के अलावा शायद और भी किसी चीज़ का अुन्होंने सबूत दे दिया। किन्तु अुनकी आलोचना अुनके पीछे हम क्यों करें?

* * *

हिंसा जैसी निर्वीर्य चीज दुनिया में दूसरी कोअी है ही नहीं। हिंसा के कारण न कोअी दुर्जन दुर्जनता से बाज़ आया है और न कोअी सज्जन अपनी तेजस्विता से हाथ धो बैठा है। हिंसा का अुद्देश्य लोगों को डरा कर प्रतिकूल काम से रोकना है। खूनी आदमी को फांसी की सज़ा अिसलिअे दी जाती है कि वह फिर हत्या न करे। किन्तु यह अुद्देश्य गौण है। असली अुद्देश्य यह है कि खूनी को सजा हुअी देख कर दूसरे लोग हत्या करने से डरें। लेकिन क्या अैसा कभी हुआ है?

आदमी हत्या अिसलिअे नहीं करता कि अुसे हत्या करने की आदत होती है; किन्तु अिसलिअे कि किसी व्यक्ति-विशेष का जीना अुसके लिअे असह्य हो जाता है। यह मानना ठीक नहीं होगा कि अुसने अेक की हत्या की अिसलिअे वह हर अेक की हत्या करता चला जायगा। जो लोग हत्या करने पर भी अपनी प्रतिष्ठा के कारण पकड़े नहीं जाते वे बार बार हत्या करते हों अैसा अनुभव नहीं है।

समाज में हम यह भी देखते हैं कि खूनी को फांसी हो या न हो, हर साल सारे देश में हत्याओं की संख्या करीब वही रहती है। जो हत्या करना चाहता है वह फांसी के डर से रुकता नहीं और जो निडर है वह मौत के डर से कभी अपने काम से हटता भी नहीं है। निडर मनुष्य सज्जन हो या दुर्जन, अुसके लिअे हिंसा तनिक भी प्रतिबंधक नहीं है। अबिसीनिया, पोलेंड, और फिनलेंड के लोग जानते ही थे कि विरोध करने के मानी ही हैं आत्महत्या करना। यह जानते हुअे भी वे लड़े। शायद अुन्होंने सोचा कि "लड़े बिना हार मानना अपमानास्पद है। अिसलिअे मारते मारते मरेंगे। और जब मरना ही है तो हमारी मौत शत्रु को जितनी महंगी पड़े अुतना करना ही अच्छा। शत्रु के जितने अधिक लोग मार कर हम मरेंगे अुतना ही अच्छा। हमारी मौत की कीमत शत्रु को अधिक से

अधिक चुकानी पड़े यही हम चाहते हैं"।

* * *

असके विरुद्ध चेकोस्लोव्हाकिया के मुख्य वजीरों ने आधुनिक वृत्ति दिखायी। जहां विजय की और आत्मरक्षा की गुंजाअिश ही नहीं वहां दोनों दलों के मनुष्यों की हत्या कराने से लाभ ही क्या है? सशस्त्र डाकुओं को देख कर जैसे कोअी मुसाफिर अपनी जेब खाली कर देता है, चारों तरफ से पुलीस द्वारा घेरे जाने पर डाकू जैसे तुरन्त आधीन हो जाता है असी तरह शत्रु की और अपनी शक्ति का खयाल करके जहां विजय की तनिक भी आशा न हो वहां शरण जाना ही अच्छा, असीमें मनुष्यता है। चेक प्रजा के प्रधान ने कहा 'थैंक गॉड वुअी सरेंडर्ड' ('अीश्वर को धन्यवाद! हम शत्रु के अधीन हुअे'।) ताश के खेल में अगर प्रतिपक्षी के हाथ में हुक्म के सब पत्ते चले गये हों तो खेलने में स्वाद ही क्या रहा? क्या हार मान कर दुबारा खेलना ही अच्छा नहीं है?।

* * *

जर्मन जहाज 'ग्रॅफ स्पी' ने जब देखा कि वह अकेला है और आसपास शत्रु-जहाजों की संख्या बहुत बड़ी है तब असके सामने तीन रास्ते थे:—अेक, आत्म-समर्पण करना, दूसरा, लड़ते-लड़ते डूब जाना या पकड़ा जाना और तीसरा, वह जो अिस जहाज के कप्तान ने किया; जिसे जापान में 'हरि-केरी' कहते हैं। आत्म-समर्पण का रास्ता पुरातन है। लड़ते-लड़ते मर जाने का रास्ता झांसीवाली लक्ष्मीबाअी ने बताया था। लड़े बिना आत्मनाश करके शत्रु के हाथों से बच जाने का वह रास्ता है जिसका अमल सीजर के दोस्त ब्रूटस ने किया था। राजपूतों की रानियां भी अिसी तरह 'जौहर' करती थीं।

* * *

जब बादशाह नीरो ने अपने मन्त्री महान् दार्शनिक सिनेका को प्राणदण्ड की सजा दी तब असे पकड़ कर जल्लाद को नहीं सौंपा। अैसा कलाशून्य काम भला वह क्यों करता? असने सिनेका को कहला भेजा कि "आपको प्राणदंड की सजा हुअी है। आप जैसे अुचित समझें प्राणत्याग कर दें"। बूढ़े ने अपने हाथ से अपनी नसें काट लीं। तब भी शरीर में रक्त कम होने से वह ठीक ठीक न बहा। अिसलिअे वह गरम पानी में जा बैठा और अिस तरह असने अपना देहत्याग किया।

* * *

सत्याग्रही मुफ्त में मरना नहीं चाहता। वह जरूरत पड़ने पर प्राणदण्ड जरूर देता है। किन्तु शत्रु से लड़ कर, असे मारने की कोशिश कर, असे आत्म-समर्थन का मौका नहीं देता। शत्रु में वीरता का भी संचार नहीं होने देता। सत्याग्रही बिना किसी शस्त्र के प्रतिकार किये और बिना हार माने विरोध करता रहता है जिससे शत्रु को या तो अपनी दुष्टता छोड़नी पड़ती है और दुनिया के सामने और अपनी आत्मा के सामने भी हत्यारे जल्लाद की भूमिका धारण करनी पड़ती है। आदमी चाहे जितना गया-गुजरा हो दीर्घकाल तक अिस भूमिका को बरदाश्त नहीं कर सकता।

"थैंक गॉड वुअी सरेंडर्ड"—"अीश्वर की कृपा कि असने हमें आत्म-समर्पण की सद्बुद्धि और हिम्मत दी," अैसा कहने की नौबत सत्याग्रही पर नहीं आ पड़ती।

* * *

पोलैंड के लाखों लोग मर गये होंगे। जर्मनी के भी असले कम नहीं मरे होंगे।

पोलैंड की वीरता सिद्ध हो चुकी, किन्तु जर्मनी की क्रूरता कम नहीं हुअी। अगर पोलैंड ने सत्याग्रह किया होता तो पोलैंड का आज जितना नुकसान हुआ है अुससे अधिक न हुआ होता। पोलैंड का स्वाभिमान आज से किसी कदर कम नहीं रहता बल्कि कुछ अधिक ही हो जाता। जर्मनी को जो यह कहने का मौका मिला कि अुसने अपना कीमती और गरम खून बहा कर पोलैंड को जीता है वह अुसे न मिला होता। जर्मन लोग स्वयं पोलैंड-विजय पर अभिमान करने की जगह शरम से सिर झुकाते। जर्मनी की अत्याचार-वृत्ति जो आज संगठित है अुसका संगठन कमजोर हो जाता और पोलैंड ने जर्मनी में और सारी दुनिया में कुछ न कुछ धर्मबुद्धि का बीज बोया होता।

* * *

रोमन अितिहास के प्रारंभ का किस्सा है। जब रोम लड़ते लड़ते हार गया तब सब नगर-पिता राजसभा में गम्भीर हो कर निश्चल बैठ गये थे। शत्रु की सेना ने अन्दर घुस कर देखा और देख कर वे चकित हुअे। ये जिन्दा मनुष्य हैं या पत्थर की मूर्तियां हैं यह देखने के लिअे किसी सैनिक ने अक नगरपिता की डाढी को स्पर्श किया। वह वृद्ध सत्याग्रह तो जानता नहीं था। अुसने क्रोध में आ कर अुस सैनिक पर प्रहार किया। फिर क्या था? शत्रु सैनिकों ने अुन बूढों को वहीं के वहीं ढेर कर दिया।

अगर वे सत्याग्रह का तत्त्व जानते होते तो वे कत्ल होने से बच जाते अैसा मानना तो कठिन है; किन्तु जानबूझ कर सत्याग्रह की वृत्ति धारण कर के वे कत्ल हो जाते तो अुनके बलिदान का असर कुछ और ही होता।

* * *

शत्रु हिम्मत हार जाय, अुसकी शक्ति नष्ट हो जाय और वह निराश हो कर युद्ध छोड़ दे, यही युद्ध करने का अुद्देश्य होता है।' सत्याग्रह का अुद्देश्य भिन्न है। सत्याग्रही चाहता है कि शत्रु अपने कार्य में केवल विफल ही न हो जाय, किन्तु अुससे विरक्त भी हो जाय। शत्रु का हृदय अगर क्रूर का क्रूर ही बना रहा तो हमने अुसपर विजय क्या पायी? अगर शत्रु दब गया तो वह हृदय में जलता रहेगा। 'जयं वेरं पसवति दुःखं सेति पराजितो'– 'जिसका पराजय हुआ हो अुसे रात को नींद नहीं आती, अुसके मन में वैरभाव बढ़ता ही जाता है'। अिस तरह शत्रु को हरा कर अुसका तेजोवध करने से दुनिया की हिंसा बढ़ती है। और यदि हम हार गये तो हमारी भी वही हालत होती है। सत्याग्रही स्वयं निर्भय हो कर दूसरे को अभयदान देता है, जिससे लोभी अपने लो के लिअे शरम अनुभव करता है, क्रोधी का क्रोध गल जाता है। सत्याग्रही की वीरता के प्रति सारी दुनिया के दिल में आदरभाव पैदा होता है और दुनिया मे तेजस्विता और मित्रता बढ़ती है।

* * *

आजकल छोटे छोटे राष्ट्रों का और निहत्थे राष्ट्रों का लड़ना व्यर्थ है। युद्ध का शास्त्र और प्राणनाश के साधन अितने बढ़े हैं कि छोटों के लिअे, कमजोरों के लिअे और ना-तैयारों के लिअे युद्ध का मार्ग है ही नहीं। अुन्हें आये दिन किसी न किसी बलिष्ठ के पेट में जा कर ही बैठना है। जिन लोगों के

युद्ध का ही पेशा पसन्द किया है और पंचहथियारी योद्धाओं के समान जो नवास्त्रिशस्त्र सुसज्जित हैं वे अेक दूसरे से लड़ते रहेंगे, और परस्पर नाश करते रहेंगे। युद्धज्वर, डर, शंका, लोभ, अीर्ष्या, ये सब भूत हैं। जिन पर ये सवार हुअे हैं अुनका सत्यानाश किये बिना वे रहेंगे नहीं। अिन भूतों से बचने का अेक ही मंत्र है और वह है सत्याग्रह।

सत्याग्रह को अपना असर करने के लिअे जो कीमत देनी पड़ती है अुससे वह हटता नहीं। अगर हिंसा निर्वीर्य और विफल है तो सत्याग्रह रामबाण, अमोघ और विश्वविजयी है। अुसमें किसीका भी पराजय नहीं है। सत्याग्रह के विश्वविजय में सारे विश्व को परास्त कर किसी अेक के विजयी होने की बात नहीं है। अुसमें तो सारा विश्व ही विजयी हो कर रहता है

कौमी झगड़े

(अेक रोचक संवाद)

[काका कालेलकर]

अेक पारसी सज्जन मुझसे मिलने आये थे। कहने लगे, "अब स्वराज्य का क्या होगा? जिन्ना साहब ने अैसा अड़ंगा लगाया है। न हिन्दू अपनी तंगदिली छोड़ सकते हैं, न मुसलमान। हम तो देखते हैं कि दोनों में दोष हैं।"

मैंने तुरन्त कह दिया, "दोनों में दोष अवश्य होंगे, किन्तु अुन दोनों के दोष देख कर अपने आपको अूंचे धरातल पर बैठाने का आपका बड़प्पन मुझे रुचिकर नहीं लगता। जहां कहीं दो आदमी या दो पक्ष लड़ते रहते हैं, वहां तीसरे के सामने वे तिरस्कार-पात्र ही हो जाते हैं; किन्तु अिस परिस्थिति से लाभ अुठा कर अगर वह तीसरा अपनेको दोनों से श्रेष्ठ बताने लगे तो अुसकी वह मुफ्त की बड़ाअी अुन्हें भाती नहीं।"

मेरी अिस कड़ुअी टीका से वे कुछ अस्वस्थ-से हो गये। अुनमें अपनी बड़ाअी करने की आदत थी ही नहीं, यह मैं भी जानता था। किन्तु बड़ों का बहुत अनुभव होने के कारण मैंने अपना जवाब अुन्हें भी दे दिया।

वे दुःखी हो कर कहने लगे, "देखिये, काका साहब, दोनों जमातों में हमारे अच्छे से अच्छे मित्र हैं। अुनकी संस्कारिता, अुनकी सज्जनता और अुनकी न्यायप्रियता देख कर हमारा शिर अुनके सामने झुक जाता है। अेक ही खयाल मन में आता है कि अीश्वर की कितनी कृपा है कि अैसे आला दरज के दोस्त अुसने हमें दिये हैं। किन्तु जब हिन्दू और मुसलमान की बात आती है तब वे अैसे बिगड़ जाते हैं कि अेक दूसरे की नेक-नीयती पर विश्वास ही नहीं करते। ये महाशय जब व्यक्तिशः अेक दूसरे से मिलते हैं तब भी हिन्दू और मुसलमान का भेद मन में लाये बिना दूसरे से अैसे पेश आते हैं कि मानो अेक ही माँ के दो बेटे हों। लेकिन जिनसे जरा सम्प्रदाय की

बात छोड़िये। फौरन अविश्वास, स्वार्थ और तंगदिली का भूत अुन पर सवार हो जाता है। दोनों में यह दोष पाया जाता है। किससे क्या कहें?"

मैंने अुनसे कहा, "मॉरल मैन अेंड अिम्मॉरल सोसायटी" नामक किताब आपने पढ़ी होगी। आप पूछते हैं किससे क्या कहें? अिसका कुछ जबाब देना चाहता हूं"।

"जो दोष दोनों में आप देखते हैं वह आपमें नहीं हैं, अैसा तो आप नहीं मानते? आपके दोषों को प्रकट होने का मौका नहीं मिला, अितनी ही बात है। आप दोनों से श्रेष्ठ नहीं हैं, अितना जब ध्यान में रक्खेंगे तभी दोनों की कुछ सेवा कर सकेंगे।

"सिर्फ अितना कह देना कि दोनों में दोष हैं, दोनों को समझदारी से काम लेना चाहिअे, हृदय-परिवर्तन करना चाहिअे और अुदारता दिखानी चाहिअे, किसी काम का नहीं है। अिससे किसीको दिशा-सूचन नहीं होता।

"अगर आप हिन्दुओं के सामने मुसलमानों के दोषों का बयान करेंगे और मुसलमानों के सामने हिन्दुओं के दोषों का वर्णन करेंगे तो जब तक वे अलग अलग हैं तब तक हर अेक कहेगा कि आप अच्छे हैं, आप न्याय-प्रिय हैं। आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। किन्तु जब अित्तेफ़ाक से दोनों अेक दूसरे के पास आ जायेंगे तो दोनों की हाजिरी में आपको तो मौन ही धारण करना पड़ेगा और आपकी स्थिति दयाजनक होगी। मैं जानता हूं कि यह रास्ता व्यक्तिशः आपको पसन्द नहीं है। आप अिसे खुशामद का रास्ता कहते हैं और नफरत की दृष्टि से देखते हैं।

"दूसरा रास्ता यह है कि आप दोनों से प्यार करें, दोनों के साथ संबंध रक्खें, दोनों की सेवा करें और किसी को मनाने की कोशिश न करें। जब कोअी अेक-दूसरे की निन्दा करता है तब दुःखी हो कर अुसकी बात चुपचाप सुन लें और अितना ही स्पष्ट बतावें कि अिसका दूसरा पहलू भी हो सकता है। दृढ़ता के साथ अिस नीति का अमल करने से और दोनों के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखने से आपकी स्थिति साफ रहेगी और मौका आने पर दोनों के बीच समझौता करने की आपमें शक्ति रहेगी।

"अगर दोनों पर आपका कुछ प्रभाव है, दोनों आपको मानते हैं तो आप अिससे कुछ आगे बढ़ सकते हैं। जो पक्ष दूसरे की शिकायत करने आपके पास आवे अुससे कहिये कि लड़ कर अेक-दूसरे का नाश करके आप अिस सवाल को हल नहीं कर सकेंगे। दोनों की स्थिति अिस देश में अैसी है कि कोअी भी अेक पक्ष दूसरे का नाश नहीं कर सकेगा और जब तक बीच में अंग्रेज हैं तबतक वे अेक पक्ष को दूसरे पक्ष को परास्त भी नहीं करने देंगे। दोनों गुलाम रहें, दोनों अेक दूसरे का अविश्वास करें और दोनों थोड़े थोड़े लड़ते रहें तभी तो अंग्रेज आज अिस पक्ष की और कल अुस पक्ष की थोड़ी थोड़ी मदद करके अपने राज को आपके दिल में मजबूत कर सकते हैं। अंग्रेज हैं अिसलिअे हम बच गये हैं, नहीं तो दूसरा पक्ष हमारा कब का नाश कर डालता, यह खयाल दोनों पक्षों के मन में जम जाता है।

"अितना तो आप कहेंगे ही। किन्तु जो पक्ष आपसे दूसरे की शिकायत करने आता है अुसके साथ खानगी बातें करते समय अुस के द्वारा होनेवाले दोषों को आप बताते जायँ, अपनी तटस्थता से लाभ अुठा कर प्रेम से

आप अुसे अुसके पक्ष की भूल बता दें और अुसे सुधारने का प्रोत्साहन देवें।

"और भी अेक बात है। दोनों पक्षों में समान दोष होते हुअे भी हर अेक झगडे में किसी न किसी अेक पक्ष का विशेष अपराध होता ही है। अुस समय दोनों सरीखे हैं, दोनों तंगदिल हैं, अितना कहने से काम नहीं चलेगा। अगर आपकी न्याय-बुद्धि प्रखर है और आप दोनों का हित चाहते हैं, और दोनों पर आपका प्रभाव है तो आपका अपनी आवाज अुठा कर कहना चाहिअे कि दोनों के दोष चाहे जितने क्यों न हों, किन्तु अिस मामले में तो दोष फलाने पक्ष का ही है। अपनी आवाज अुठा कर न्याय की बात जब आप कहेंगे तब आपका असर जरूर होगा। मैं जानता हूं कि अितना करने से अेक पक्ष आपपर बिगड जायगा और दूसरा आपको अपनी ओर खींच कर आपको भी पक्षकार (फ़रीक) बनाने की कोशिश करेगा। अैसे समय आपको तटस्थ रह कर अपने आपको सम्हालना होगा। मुमकिन है कि दोनों आप पर नाराज होंगे, किन्तु थोडे दिन के ही लिअे। और नाराज हुअे तो भी क्या?"

अितने में अेक अीसाअी महाशय वहां आ पहुंचे। अुनसे भी वही बातें हुअीं। मैंने अपना विचार अुनको भी सुनाया। वे कहने लगे, "काकासाहब, आपकी बात सही है, हमलोग पहले पहले समझते थे कि धर्म की समानता के कारण राज्यकर्ता और हम अेक ही हैं। आपलोग हमें दूर दूर रखते थे, अिसलिअे हम अीसाअी हो गये। बाद में हमें यह अनुभव हुआ कि अीसाअीधर्म का स्वीकार करने पर भी हमारे राज्यकर्ता हमें दूर के दूर ही रखते हैं। हम न हिन्दुस्तान के रहे, न अिंग्लैंड के हुअे। अपनी देशनिष्ठा हम भूल गये थे और हमारी राजनिष्ठा किसी काम न आयी। हम देखते हैं कि राज्यकर्ताओं ने हमसे लाभ तो अुठाया। किन्तु जब वे हारेंगे तब राज आपके ही हाथ में छोड़ कर जायेंगे। हम अपने लिअे स्वराज्य हासिल नहीं कर सकते। हम अंग्रेजों से कुछ लाभ अुठा कर अुनका साम्राज्य और देश की गुलामी मजबूत कर सकते हैं। अब हम समझ चुके है कि हमें देशद्रोह का ही कमीशन (आड़त) मिलता है।"

मैंने कहा, "आपने ठीक बात कही। अब आपको स्वराज्य का पक्ष लेना चाहिअे। हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़ते हैं अिससे लाभ अुठा कर अगर आप यों कहने लगेंगे कि हम भी अेक 'मैनॉरिटी' (अल्पसंख्यांक समाज) हैं; हमें भी हमारे सेफगार्ड्स (संरक्षक निर्बंध) चाहिअे; तो अेक स्वराज्य को छोड़ कर, बाकी सबकुछ आप 'सेफगार्ड' (सुरक्षित) कर सकेंगे। सबसे पहले तो देश की गुलामी 'सेफगार्ड' करेंगे। आप अपने को 'हिन्दुस्तानीअीसाअी' कहते है। यह नाम छोड़ कर आप अपने को 'अीसाअीहिन्दुस्तानी' कहिये; और स्वराज्य का विरोध न कर जिससे सब के सब अल्पसंख्याक लोग निश्चिन्त हो जायें, अैसा विधान बनाने में हाथ बटाअिये।

"यह देखिये हमारे मित्र अर्देसरजी है। अिनसे बातचीत कीजिये। ये और आप मिल कर जो कुछ तय करेंगे वह हमे मंजूर है। स्वराज्य पाना है, अिस अेक शर्त पर आप मुसलमानों को जो कुछ देने की बात करेंगे वह हमें मंजूर है। हमने आपको 'कोरा चेक' दे दिया है।"

अितने में श्री देशपांडे वहां आ गये। अुन्होंने पिछली बात कुछ सुनी नहीं थी। वे कहने लगे, "अजी, अेक 'कोरा चेक' दे कर

स्वराज्य के लिअे दिली सहायता मिलती हो तो मैं 'कोरा चेक' देने के लिअे भी तैयार हूं। किन्तु अुनको 'कोरे चेक' से संतोष नहीं है। अुन्हें तो अेक समूची कोरी 'चेक-बुक' चाहिअे, जिसे ले कर वे रोज रोज नयी नयी फर्माअिशें कर सकें। और कोरा चेक पा कर भी स्वराज्य की मांग करने में और अुसके लिअे लड़ने में वे हमारे साथ थोडे ही आनेवाले हैं? आखिरी चेक पर अुनकी यह फर्माअिश होगी कि 'जब कि तुमने सब कुछ दे दिया है तब अब तुम अिस जमीन पर भारभूत हो कर क्यों रहते हो? आत्महत्त्या कर लो और छुट्टी पाओ।' "

मैंने हंस कर कहा, "कोरे चेक की यह व्याख्या नयी है। मैं अिन लोगों से कहता था कि स्वराज्य के लिअे अेक होने की शर्त पर जो जिसको चाहिअे वह देने को तैयार हूं। और मैं तो आर्देसर साहब के साथ और डेव्हिड साहब के ही साथ बात कर रहा था। आपके दिमाग में जिन्ना साहब भरे हुअे हैं।"

अितने में पडोस के कमरे में से बूटासिंगजी आ गये। हम अुन्हें सरदारजी कहते थे। अुन्होंने कहा, "आप सब साहब मिल कर क्या क्या बँटवारा कर रहे हैं? हम भी तो अेक अल्पसंख्याक जाति हैं। हमारी संख्या की ओर न देखिये। हमारे अितिहास का और क्षात्रतेज का ध्यान रख कर ही हमें हमारा हिस्सा मिलना चाहिअे।"

आर्देसरजी ने कहा, "अजी, मैं जो टालना चाहता था वही बात यहां आ कर खडी हो गयी है। मैं बँटवारा करने नहीं आया था। मैं कहता था कि आदमी चाहे जिस संप्रदाय का हो, व्यक्ति के नाते वह अच्छा ही होता है। जब वह अपनी जमात का प्रतिनिधि बनता है तब अुसमें तंगदिली आ जाती है।"

मैंने कहा, "ये सब अपनी अपनी जमात के ही प्रतिनिधि बनते हैं। अिसलिअे सामान्य मनुष्यता का प्रतिनिधि कोअी नहीं रहता। हर अेक को अपनी अपनी जाति का खयाल है। सारे राष्ट्र का और स्वराज्य का खयाल नहीं है।"

सरदारजी मेरी बात सुनते ही नहीं थे। कहने लगे, "हम सिक्ख लोग केवल पंजाब में ही हैं। अिसलिअे हमें स्वराज्य का सच्चा खयाल नहीं आता। अगर अम्बेडकर हमारी बात मान जायें और हिन्दुस्तान भर के हरिजन 'वाह गुरु की फतह' कहने लगें, तो हम अकेले सिक्ख ही हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिला देंगे"। सब बोल अुठे, "वाह बहादुर, वाह!!" अितना कहने की ही देर थी कि सरदारजी ठण्डे हो गये। कहने लगे, मैं कृपाण की बात नहीं कह रहा था। गुरु का बाग के सत्याग्रह का मुझे खयाल था।"

डेव्हिड साहब कहने लगे, "वह कुछ भी हो। हमें सबसे पहले स्वराज्य का खयाल रखना चाहिअे और सब मिल कर ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहिअे। यदि अकेले सिक्ख सत्याग्रह करेंगे तो क्या वह 'सिक्खराज' नहीं होगा?"

देशपांडे ने बात पूरी करते कहा, "आप सब मैनॉरिटी मिल कर अेक बडी मेजॉरिटी हैं। सच्ची मैनॉरिटी तो हम ही हैं।"

आर्देसर ने कहा, "मैं फिर से कहता हूं कि आप मैनॉरिटी–मेजॉरिटी का यह पचड़ा छोड दें। जिस प्राकर अेक अेक आदमी व्यक्ति की हैसियत से अच्छा है अुसी प्रकार हर अेक अपनी अपनी कौम को, अपने अपने फिरके को तंगदिली

से बचाने की कोशिश करेगा तो अच्छा होगा। अिन फिरकों का खयाल ही छोड देना चाहिये।"

"ठीक है, ठीक है," सरदारजी बोले, "सच तो यह है कि अधिकार के बँटवारे का प्रश्न ही नहीं अुठना चाहिअे। जहां बँटवारा है वहां स्वराज्य नहीं है। हर अेक को अगर पूरा पूरा नागरिक स्वातंत्र्य और मजहबी स्वातंत्र्य मिल जाय तो बँटवारे का सवाल ही कहां रहा? जो लोग पिछडे हुअे हैं अुनको अधिक शिक्षा दी जाय तो मामला तय है।"

कबूतर का गटरगूँ

२. हृदयपरिवर्तन

आदरणीय संपादक भाअी,

सविनय पालागन,

शीतकाल की धूप बडी नशीली चीज है। मैं अपने दोस्त कंबुग्रीव से कह रहा था कि अगर कहीं सरदार साहब कॉंग्रेसी वजारत के दिनों में विनोबा को प्रधानमंत्री बनाते तो नशाबन्दी की फेहरिस्त में शिशिर ऋतु की धूप भी शामिल की जाती। और फिर वह भी अल्प-संख्यकों के अेक तगडे दल के लिअे सत्याग्रह का अेक माकूल कारण साबित हो जाता। मैं विनोबा के प्रति अन्याय नहीं करना चाहता। यह तो जाहिर ही है कि सावली परिषद में अुन्होंने धूप को किसानों का घी बताया था और खुले में आकाश के नीचे नंगे बदन काम करनेवालों को धनवान तथा धूप से बचने वालों को दरिद्री घोषित किया था। लेकिन जिस प्रकार अन्नमात्र से शराब निकाली जा सकती है तो भी हम सभी अन्नों से परहेज नहीं रखते, अुनमें कुछ विवेक करते हैं, अुसी प्रकार विनोबा आतपान्न का भी वर्गीकरण कर डालते हैं। भादों की धूप में काम करनेवाले किसानों की अुन्हें अीर्षा होती है। वे सोचते है कि अुमदा से अुमदा घी ये किसान अकेले हडप कर रहे हैं। चैत बैसाख का ताप भी अुन्हें अत्यंत ओजस्वी और ग्राह्य प्रतीत होता है। परंतु शिशिरातप विनोबा के शास्त्र में निषिद्ध है। वे कहते हैं, 'जाडों में धूप खानेवाले का अुत्साह क्षीण हो जाता है। अुसकी बुद्धि जाग्रत नहीं रहती। और होशहवास ठिकाने न रहने के कारण वह अपना कर्तव्य करने में भी चूकता है।

विनोबा गीता के योगी हैं। अपने चेले-चाटों को भी योगी बनाने के लिअे वे अपने प्राण निचोड रहे हैं। अुनके लिअे गीतावाक्य स्वभावगत हो सकता है। यथा—'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।' पर हम परिन्दों को अैसा बनावटी जीवन नहीं सुहाता। (हमारे घूघूकाका अपना राग आलाप सकते हैं परंतु बहुत खोजने पर भी अुनका किसी

को पता नहीं चलता।)

यह तो आदमियों को ही मुबारक है कि वे ठीक ठीक अिन्सान भी बनना नहीं जानते; मगर दम भरते हैं योगी, सिद्ध, महायोगी, पूर्ण योगी और जाने क्या क्या बनने का! फिर भी, मैं विनोबा की अिस बात का प्रचारक बन गया हू कि जाडों मे आतपसेवन हानिकारक है। हाल ही मे अेक किस्सा अैसा बन गया जिससे हमे यह अनुभव हो गया कि जाडों की धूप का नशा खतरनाक है।

कुछ दिन हुअ हृदयकुंज के दक्षिण मे पानी की पुरानी टंकी बालू से पाट कर जो छोटासा चबूतरा बनाया गया है अुस-पर बैठे बैठे मै और कबुग्रीव गप्पे छांट रहे थे और धूप खा रहे थे। 'जर्मनी का वह अभूतपूर्व अस्त्र चुबक-सुरंग ही है या और कुछ'?–अिसके विषय मे अनुमान की तरंगो में हम तैर रहे थे। अुस मीठी धूप मे हमे यह सुध भी न रही कि बिल्ली कब अुस चबूतरे के नीचे चुपके से आ धमकी। वह अेकाअेक झपट कर हमारी पीठ की तरफ की कगार पर कूद पडी। लेकिन भगवान को हमें बचाना ही मंजूर था, अिसलिअे अुसके पिछले पैर नीचे को खिसके और बालू मे आवाज हुयी। कंबुग्रीव ने आहट सुन ली। वह ताड गया। मुझे आगाह करने के लिअे अुसने अपने पंख फडफडाये। हम बाल बाल बच गये। अगर हम शिशिर की मीठी धूप के मोह में न फँसते तो न अैसे बेहोश होते और न अैसे खतरे में ही पडे होते।

खैर, अपनी बीती बातें छपवा कर ख्याति कमाने के लिअे मैं यह किस्सा नहीं बता रहा हूं। अपनी बातें अखबारों में छपी हुअी देखने का शौक पक्षियों को नहीं होता। यह मद्दी कुटेव आदमियों में ही पायी जाती है। लेकिन अिस प्रसंग को ले कर हममें अेक मार्के की चर्चा छिड गयी और कंबुग्रीव ने अेक बडा भारी पैगाम सुनाया। अुसे आपकी सेवा में अुपस्थित करना अपना कर्तव्य समझ कर ये पंक्तियां भेज रहा हू।

* * *

सवाल यह हुआ कि आश्रम में मुद्दतों रह कर भी यह बिल्ली अितनी हिंसक और खूंखार कैसे रह गयी? अिसी सवाल को ले कर चर्चा होने लगी।

मैं–देखो कंबु भाअी, चलो, अिन आश्रम-वालों से हम हृदय-परिवर्तन का तिलिस्म हासिल कर लें और आश्रम की तमाम बिल्लियों का हृदय-परिवर्तन करने मे जुट जायें। हम अैसा करेंगे तो हमारे बापूजी का सुयश भूमंडल की भांति नभोमंडल के भी कोने कोने को आलोकित कर देगा।

कंबुग्रीव–(कुछ अकड कर बैठ गया और बोला,) 'हृदय-परिवर्तन से तुम्हारा क्या मतलब है? तुम्हारे खयाल में जैसे हम किसी तख्ते को पलट देते हैं अुस तरह से हृदय भी पलटा जा सकता है?—तख्ते की तरह अुलट कर रख दिया जा सकता है?

मैं—कम से कम गुजराती भाषा में तो बापूजी ने यही क्रियापद पसन्द किया है। वे हमेशा कहते और लिखते आये हैं, 'जब तक विरोधी का हृदय पलट जानेका सबूत नहीं मिलता तब तक मैं अपनी हार ही मानूंगा'। अिसपर से मेरा कुछ अैसा खयाल हो गया है कि बापूजी के आत्मबल के प्रभाव से अेक हृदय के गायब होने पर अुसकी जगह नया हृदय ले लेता है, जिसका रूपरंग भी कुछ और ही होता होगा।

परिवर्तन कहते हैं ? पिछले महायुद्ध में जर्मनी को जब सब तरफ से घेर लिया गया तो अुसने चुपचाप अपने हथियार नीचे रख दिये और वार्साअी में मित्रराष्ट्रों की तमाम नाजायज मांगे मंजूर कर लीं। लाचारी का समय बीतते ही अब वह फिर से खम ठोक कर मैदान में अुतर गया है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि सन १९१८ में अुसका हृदय-परिवर्तन हो गया था और अब बीस बरस के बाद वह परिवर्तन फिर गायब हो गया ?

कंबुग्रीव–वह तो स्पष्ट ही हार और कमजोरी थी। अहिंसा की लडाअी में विरोधी को कमजोर कर देनेवाली कोअी चीज नहीं होती। अहिंसावादी खुद घुलेगा और पिसेगा; लेकिन अुस पर आक्रमण करनेवाला सदा हृष्टपुष्ट रहेगा और ताकत तथा शस्त्र-सरंजाम नये नये रूपों में संगठित करता रहेगा। अैसे सामर्थ्यशाली व्यक्ति को अपने पक्ष की ओर स्वेच्छा से झुका लेने का मतलब है हृदय-परिवर्तन। अिसे लाचारी नहीं, बल्कि समझदारी कहना चाहिअे। जालिम यह महसूस करने लगता है कि जो चीज मैं अिन लोगों से कराना चाहता हूं या लेना चाहता हूं अुसे वे मरते दम तक देने या करने वाले नहीं हैं। अिन्हें खुश रख कर ही मैं अिनकी मदद ले सकता हूं। अिनकी दोस्ती ही काम आयगी; दुश्मनी नहीं।

मैं–तो क्या हृदय-परिवर्तन का सीधासादा अर्थ समझदारी होगा ?

कंबुग्रीव–अगर समझदारी भी कह लो तो मुझे खास आपत्ति नहीं है। लेकिन मैंने तो अुसके लिअे दूसरा ही शब्द निश्चित किया है। बहुत सोच-विचार करने पर मैं अिस नतीजे पर पहुंचा हूं कि हृदय परिवर्तन कोअी नया रसायन नहीं है। हमारे अितिहास के आदि काल से मनुष्यों ने अिस रसायन का प्रयोग किया है। अुस क्रिया को व्यक्त करनेवाला प्रचलित क्रियापद है 'हिलाना'। गुजराती में अुसे 'हेळववुं' कहते हैं। लेकिन सबसे अुपयुक्त धातु मराठी में है 'माणसाळवणें' 'आदमियों मे लाना'।

मैं–क्या गाय, घोडे, तोते और हमारी बिरादरीवाले मैना जैसे परीन्दो को पालतू बनाने के लिये मनुष्यजाति जो हिकमतें लडाती है अुन्हींसे तुम्हारा मतलब है ?

कंबुग्रीव–हां, अुन्हींसे। यह तो मैं कह चुका हूं कि मनुष्य का दिमाग अेक ही ढाल पर से लुढकने का आदी है। अिसलिअे हजारों वर्षों तक मनुष्यों को आपस मे अिस रसायन का प्रयोग करने की नहीं सूझी। बापूजी ने यह बात सुझा दी, अिसलिअे अुन्हें दुनिया भर के समझदार मनुष्य बहुत बडे मसीह और तारनहार कहने लगे। आदमी आदमी को किस तरह पालतू बना सकता है या हिला सकता है अिसका अेक पूरा पूरा शास्त्र ही बन सकता है। बापूजी अुसी की रचना में लगे हुअे हैं। पर अुसकी विधि और परिभाषा बनाने मे मनुष्यों को सदियां लग जायँगी। शब्दों की अुलझन मे से वे जल्दी रास्ता नहीं निकाल पायेंगे। लेकिन हम पंखीवृन्द अुसे शीघ्र वाणीबद्ध कर सकते हैं।

मैं–तो कर क्यो नहीं देते ? सर्वोदय के पाठक तुम्हारी विधि और परिभाषा का अवश्य विचार करेंगे।

कंबुग्रीव–लेकिन अब तो शिशिरातप का कंफ अपना असर बताने लगा है। सर्वोदय के सम्पादक चाहेंगे तो अगली बैठक में मैं आदमियों को हिलाने, याने अुनका हृदय-परिवर्तन करने, की कुछ विधियां बता दूंगा।

मैं—सिर्फ विधि बताने से काम नहीं चलेगा। कुछ प्रयोग भी दिखाने होंगे। सर्वोदय के सम्पादकों ने तो हमें स्थान दे दिया है। अब अगर अुसका पाठकवृन्द हमारे सर्वोदय की जगह अडाने पर अेतराज करे तो देखा जायगा।

क्यों संपादकजी, कंबुग्रीव को आपकी ओर से आश्वासन देने में मैंने कोअी गलती तो नहीं की ?

आज्ञाकारी,
'कलपकराम'

मंगल-गुरु-युति

पाठक दो दिन न चूकें। पाँच दिसंबर से पूर्व की ओर जो बुध दीखता था वह अधिक से अधिक ग्यारह जनवरी तक ही पूर्व में दीखेगा। थोडे दिन पहले वह काफी अूचा चढ गया था। अब वह तेजी से नीचे आ रहा है।

शाम को आकाश में मंगल, गुरु और शनि करीब अेक पंक्ति में आये हैं। गुरु का तेज छिपता नहीं। अुसकी कुछ पश्चिम की ओर लाल मंगल है और गुरु की पूरब की ओर शनि है।

मंगल तेजी से गुरु के पास जा रहा है। छ: जनवरी को वे दोनों अेक ही अुत्तर-दक्षिण लकीर पर आ जायेंगे। अुत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुव में से पसार होने वाले काल्पनिक वर्तुल को याम्योत्तरवृत्त कहते हैं। : जनवरी को मंगल और गुरु अेक ही वृत्त पर आने पर यह कहा जाता है कि अुनकी युति हुअी।

युति के समय मंगल और गुरु में से कोअी किसीकी पूरब की ओर या पश्चिम की ओर न होगा। दोनों के बीच पूर्व-पश्चिम अंतर शून्य होगा।

का० का०

सर्वोदय की दृष्टि

आचार्य रामदेवजी का स्वर्गवास

आचार्य रामदेवजी की मृत्यु से आर्यसमाज का अेक बड़ा विद्वान शिक्षाशास्त्री चल बसा है। हर अेक जिन्दा समाज को धर्म, शिक्षा, राजनीति और अर्थनीति मे जाग्रत रहना पड़ता है। अिसमें भी प्रथम स्थान है शिक्षा का। अगर किसी समाज की शिक्षा, जीवित, तेजस्वी और सर्वांगीण है तो अुसके अुत्कर्ष में कोअी भी चीज सफलतापूर्वक बाधा नहीं डाल सकती। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक पुनरुज्जीवन का जो सन्देशा देश को दिया अुसका राजनैतिक असर लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल आदि समाजसेवकों पर तुरन्त हुआ। अुसी सन्देशे का शैक्षणिक असर महात्मा हंसराज और महात्मा मुनशीराम पर हुआ। मुनशीरामजी ने अंग्रेजी विद्या और वेद्विद्या के बीच समझौता करने का सस्ता और व्यवहार्य मार्ग न ले कर वैदिक संस्कृति का आधुनिक संस्करण तैयार करने की श्रद्धा से गुरुकुल खोला और अुसीको अुन्होंने अपना जीवन अर्पण किया। वैदिक संस्कृति पर श्रद्धा रख कर दीर्घकाल की तपस्या के अन्त में वे श्रद्धानन्द हुअे और ओश्वर ने अुनको अुनके गुरु के समान अपने मरण द्वारा भी समाज और राष्ट्र की सेवा करने का मौका दिया।

स्वामी श्रद्धानन्दजी के अिस राष्ट्रीय शिक्षणविषयक प्रयोग के सहचर आचार्य रामदेवजी थे। रामदेवजी ने बहुत दिन तक 'वैदिक' मैगेझिन चलाया। आर्यसमाज को भारतवर्ष का अितिहास दिया। हिन्दी भाषा की अुत्कृष्ट सेवा की। किन्तु अुनका प्रधान जीवनकार्य तो गुरुकुल की सेवा ही है।

राष्ट्रीय शिक्षा की बुनियाद में आर्य परंपरा होनी चाहिअे यह गुरुकुल का मुख्य सिद्धान्त है। अिस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिअे आचार्य रामदेवजी ने अेकाग्रता से कोशिश की। श्रद्धानन्दजी के गुरुकुल की हिफाजत अच्छी तरह से कर के अन्त में वह संस्था अुन्होंने श्रद्धानंदजी के सुयोग्य शिष्य आचार्य देवशर्माजी के हाथों में सौंप दी और खुद कन्याशिक्षा का प्रश्न हाथ में ले कर देहरादून में अेक कन्यागुरुकुल खोला।

आर्यसमाजी लोग संस्था खोलने में और चलाने में बडे सफल हुअे हैं। सनातनी हिन्दु समाज में जो दानश्रद्धा रही है अुसी का शिक्षा के चैतन्यदायी कार्य में परिवर्तन करने का श्रेय आर्यसमाज को है। ब्रह्मसमाज ने शिक्षाक्षेत्र में जो काम किया है अुससे कहीं अधिक आर्यसमाज ने कर दिखलाया है। अिसका कारण यह है कि सुधारक होते हुअे भी परंपरागत वैदिक संस्कृति के प्रति अुन्होंने अपनी निष्ठा शिथिल नहीं होने दी।

आचार्य रामदेवजी का देहरादून का कन्या-गुरुकुल मैंने कअी बार देखा है। आर्य-समाज की शिक्षा संस्थायें देश के शिक्षा-प्रयोग में अग्रगामी होनी चाहिअें अैसी आचार्य रामदेवजी की महत्त्वाकांक्षा थी। कांगडी गुरुकुल में और देहरादून कन्यागुरुकुल में खादीविद्या का प्रवेश तो हुआ ही है। वर्धा-योजना और सेगांवशिक्षा-पद्धति के प्रयोग वहां पर होने चाहिअें। आचार्य रामदेवजी अिस बात को गम्भीरता से सोच रहे थे। किन्तु

अुनका शरीर जर्जरित हो गया था। स्वास्थ्यलाभ के लिअे महाराष्ट्र में आ कर यहां की कोअी अच्छी शिक्षा संस्था में रहने का अुन्होने मेरे साथ निश्चित किया था। लेकिन अुनको आराम देने के लिअे यमधर्म ने अुनको अपने यहां बुला लिया।

कन्या गुरुकुल का भार आचार्या विद्यावतीजी योग्यता के साथ वहन करती ही हैं। कन्यागुरुकुल ही आचार्य रामदेवजी का चैतन्यपूर्ण स्मारक हो सकता है।

२५ : १२ : ३९ का० का०

पूना की अखिल भारतीय शिक्षा-परिषद

हमारे देश में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रयोग कोअी चालीस या पचास वर्ष से जगह जगह होते आये हैं; लेकिन सारी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं को अेक सूत्र में बांधने का पहला प्रयत्न १९२१ की अखिल भारतीय कॉंग्रेस महासमिति की बैठक में श्री मुहम्मदअली ने किया। लेकिन अुस वक्त मौलाना मुहम्मद-अली की सूचना या कार्यपद्धति किसीको पसन्द नहीं आयी। अिसलिअे अुस वक्त कुछ भी न हो सका। अुसके बाद दूसरा प्रयत्न गया कॉंग्रेस के समय बाबू भगवानदासजी ने किया। अुस अधिवेशन के वक्त भी अुसका कोअी परिणाम नही निकला। परन्तु १९२३ में काशी में अुन्होंने अेक परिषद बुलायी। अुसमें राष्ट्रीय शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त क्या होने चाहिअें अिसकी चर्चा करीब पंद्रह-बीस दिन तक चलती रही। गुजरात विद्यापीठ के द्वारा जो प्रयोग किया जा रहा था अुसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि अिस परिषद में सुनायी देती थी। तदनंतर १९२४ में बेलगांव में राष्ट्रीय शिक्षण की कुछ चर्चा हुअी, लेकिन अुससे फलनिष्पत्ति कुछ भी नहीं हुअी।

अिस के बाद फिर वह प्रयत्न आता है जो १९३० में गुजरात विद्यापीठ ने अपने नव-वार्षिक अुत्सव के अुपलक्ष में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षण-परिषद बुला कर किया था। अिस अवसर पर गुजरात विद्यापीठ का निमंत्रण स्वीकार कर तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, प्रेम महाविद्यालय, आन्ध्र जातीय कलाशाला, आदि सभी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं के और महासंस्थाओं के प्रतिनिधि आये थे। अिस परिषद में राष्ट्रीय शिक्षा का अुद्देश्य कुछ अंश में मर्यादित परंतु अुत्कट और निश्चित किया गया। "राष्ट्रीय शिक्षा का अुद्देश्य स्वराज्य-प्रेमी नागरिक निर्माण करना नहीं है; बल्कि स्वराज्य-परायण, चारित्र्य-वान, संस्कारी सेवक (सैनिक) निर्माण करना है" अैसा अिस परिषद ने तय किया। यह परिषद विचार-विनिमय के लिअे थी। अिस विचार-विनिमय में से अेक स्थायी संगठन बनाने के लिअे काशी विद्यापीठ के अुपाधि-वितरण के अवसर पर अेक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-समिति कायम की गयी और यह तय हुआ कि अिस समिति के द्वारा सारे हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय शिक्षा अेक सूत्र में बांधी जाय। परंतु गोलमेज परिषद समाप्त होते ही अुग्र दमननीति का प्रारंभ हुआ और राष्ट्रीय शिक्षा का सवाल फिर खटाअी में पड़ गया।

१९३१ से १९३७ तक राष्ट्रीय शिक्षा का सवाल आगे नहीं आया। अुसके प्रयोग में अनेक फेर-बदल हुअे। लेकिन संगठित प्रयत्न नहीं हुआ। आगे चल कर जब कॉंग्रेस ने अधिकार-ग्रहण का निश्चय किया और ग्यारह प्रान्तों में से आठ में कॉंग्रेसी मंत्रि-

मंडल स्थापित हुअे तब राष्ट्रीय शिक्षा का विचार फिर शुरू हुआ। अिसी वक्त वर्धा में सौ-सवा-सौ राष्ट्रीय शिक्षा-प्रेमियों की अेक परिषद बुलायी गयी और अुसके सामने गांधीजी ने अपने चार प्रख्यात प्रस्ताव अुपस्थित किये। अिस परिषद में जो चर्चा हुअी वह बिलकुल नयी थी और अुसीमें से वर्धा-शिक्षा योजना का आरंभ तथा हिंदुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना हुअी।

अिसके पहले के संगठन में अेक मात्र मुसलमान राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था जामिया मिलिया ने कभी कोअी हिस्सा नहीं लिया था। अुपयुक्त मुहूर्त जाननेवाले डॉ० जाकिर हुसेन ने वर्धा-परिषद में प्रमुख भाग लिया और गांधीजी ने अुन्हींको तालीमी संघ का अध्यक्ष बनाया।

अिस संघ ने कॉंग्रेस की अमलदारी में दो साल तक जो काम किया अुसका सिंहावलोकन और भावी कार्य की दिशा निश्चित करने के लिअे पूना में सबको अेकत्रित करना तय हुआ।

जिसने शिक्षा को ही अेक अुत्पादक अुद्योग बना लिया अुस पूना नगर में अिस परिषद का होना औचित्यपूर्ण था।

अिस परिषद का अुद्देश्य, शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से वर्धा-योजना निर्दोष है या सदोष, गांधीजी ने अपनी मूल भूमिका में कोअी परिवर्तन किया है या नहीं, हस्त-कौशल्य के विकास से बुद्धि में मन्दता आती है या नहीं, आदि सनातन प्रश्नों की बहस करना नहीं था। जिनमें अिस योजना का प्रयोग करने की श्रद्धा है अैसे प्रत्यक्ष कार्यकर्ताओं की यह परिषद थी। अैसे कार्यकर्ताओं के अनुभव सुनने से लाभ होगा, यह जिनकी धारणा थी अैसे कअी छोटे-बडे प्रेक्षक भी परिषद में अुपस्थित थे। अुन तीन चार दिनों की चर्चा जिन्होंने सुनी है अुन्हें यह विश्वास हो गया होगा कि अिस परिषद में भाग लेनेवालों ने मनःपूर्वक और श्रमपूर्वक प्रयत्न किया है।

अिस परिषद की अपूर्वता यह थी कि क्रान्तिकारी कॉंग्रेसवालों की और राष्ट्रीय शिक्षा के पुरस्कर्ताओं की बनायी हुअी योजना कार्यान्वित करने की जिम्मेवारी सरकारी शिक्षा-विभाग ने ली थी। अिस कारण सद्यः विचित्र प्रतीत होनेवाला संगम वहां दिखायी देता था। जिन लोगों ने सरकारी शिक्षा-विभाग के प्रति अपनी निष्ठा बताने के लिअे कॉंग्रेस का अुत्साह धारण किया होगा अुन्हें कॉंग्रेस को अधिकारन्यास करते देख कर भी वही निष्ठा अिस परिषद में बतानी पड रही होगी, अिस विचार से अुभय पक्षों को कुछ अटपटा-सा लगता था। जिन थोडे विभागनिष्ठ लोगों का मुझे अनुभव हुआ है अुनके विषय में मैं यह कह सकता हूं कि अुन्होंने अपनी तरफ से अिस योजना को अपनाने का और अुसके विषय में अुत्साह रखने का प्रयत्न अीमानदारी से किया है। जिन लोगों ने शिक्षा के भिन्न भिन्न प्रयोग किये हैं अुन्हें अेक दूसरे के अनुभव, कठिनाअियां और सूचना सुनने में अमृत के घूंट पीने का मजा आता है। लेकिन जिन्हें अैसे कार्यानन्द का अनुभव नहीं है अुनका यह बकवास सुन कर जी अूबता जाता है। अुन्हें तो सिद्धान्तों का विवेचन, चटपटी टीकाटिप्पणी, मुलायम या अकडबाज भाषा में ही मजा आता है।

अिस परिषद में आज तक राष्ट्रीय शिक्षा में भाग लेनेवाले हमारे कार्यकर्ताओं का

बहुत कम हिस्सा था। शिक्षाविभाग के कर्मचारियों ने बर्धायोजना को तंत्रबद्ध करने के लिअे क्या क्या कोशिशें कीं अिसी का विवरण अधिक पाया गया। किन्हीं किन्हीं बहुत ही मार्के की बातों पर भी चर्चा हुअी। बम्बअी प्रान्त की ओर से अिस नीति का समर्थन किया गया कि किसी अेक अविभक्त क्षेत्र में मनःपूर्वक बर्धायोजना का प्रयोग किया जावे और वहां जो अनुभव आवे अुसके आधार पर तथा जैसे जैसे हमारा मनुष्य-बल बढता जावे अुसके अनुसार समूचे प्रान्त में अिस योजना का प्रसार किया जावे। युक्त प्रान्त में श्री सम्पूर्णानन्दजी ने परिस्थिति को देख-परख कर दूसरी ही नीति पसन्द की है। वे कहते हैं कि "समूचे प्रान्त में पहले वर्ग के लिअे नयी योजना अमल में लायी जाय और अुतने अेक वर्ग के लिअे पुरानी पद्धति तोड दी जाय। अिस नीति से हम पुरानी पद्धति की जडें आसानी से खोद सकेंगे। पुरानी पद्धति घासपात के समान है। अगर अुसका जरासा भी बीज कहीं रह जाय तो वह सबभर फैल कर ही रहेगा। ये क्रान्ति के दिन हैं। गलतियां होंगी। गलतियां मालूम होते ही अुन्हें सुधार लेना चाहिअे। पुराने की जडें अुखाड देना महत्त्व का काम है; अन्यथा नये की जडें जम ही नहीं सकेंगी।" बम्बअी प्रान्त कहता है कि "शिक्षा राष्ट्रनिर्माण का काम है। वहां अैसी जल्दबाजी क्या काम आयेगी? अगर यह योजना बिगड जावे और बदनाम हो जावे तो फिर अुनका कोअी प्रयोग ही नहीं करेगा। हमारे प्रतिपक्षी यही तो चाहते हैं"। मुझे दोनों के कथन में तथ्य दिखाअी दिया। अिसलिअे अन्त में सर्वसम्मति से यही तय पाया कि युक्तप्रान्त में वे अपनी ही नीति से काम लें। परन्तु कुछ अखंड क्षेत्र में बम्बअी-वालों की नीति का भी प्रयोग करें।

दूसरा अेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव परिषद ने सर्वसम्मति से मंजूर फर्माया वह अक्षरशः नीचे देता हूं।

"यह परिषद अिस बात को महसूस करती है कि हिन्दुस्तान के शिक्षा-क्रम में अंग्रेजी की पढाअी बहुत जल्दी शुरू करने से सारी पढाअी बिगड गयी है और देश का नुकसान हुआ है और सब विषय देशी भाषा में न पढाने से देशी भाषाओं की शिक्षा-शक्ति भी क्षीण हो गयी है। अंग्रेजी के जरिये सब बातें पढने से विद्यार्थियों के मगज पर बोझ भी बढता है।

"अिसलिअे अिस परिषद की सिफारिश है कि सिर्फ बुनियादी तालीम में ही नहीं, किन्तु हिंदुस्तान की तमाम स्कूलों में कहीं भी, जब तक विद्यार्थियों को सात बरस की बाकायदा तालीम अपनी जन्मभाषा में (स्वभाषा में) नहीं मिली है तब तक, अंग्रेजी बिलकुल नहीं पढाअी जाय।

"जिन लोगों की मादरी जबान अंग्रेजी है अुनके लिअे यह बात लागू न हो।"

अिस विषय में गांधीजी का आग्रह सर्व-परिचित ही है। राष्ट्रीय शिक्षा में काम करनेवाले तथा अहर्निश राष्ट्रहित की चिन्ता करनेवाले लोगों का अनुभव ही अुन्हें यही बताता है। लेकिन यद्यपि परिषद ने सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया तो भी जनता अिस विषय में कहां तक आग्रह रखेगी अिसमें शंका है। गांधीजी जिस तरह अमुक काम अमुक कालमर्यादा में होना ही चाहिअे अैसा संकल्प करके अपनी सारी शक्ति की बाजी लगा देते हैं अुसी प्रकार

यदि देश के नेता, समाज-सेवक और जिन्होंने अपने आपको राष्ट्रीय शिक्षा को अर्पित कर दिया है वे सब लोग जोरों का प्रयत्न करेंगे तो राष्ट्र की छाती पर जो अेक जबरदस्त भूत सवार हो गया है अुसको दफनाने का श्रेय अुन्हें मिलेगा।

चूंकि वर्धा-शिक्षण जीवन-शिक्षण है और चूंकि राष्ट्र-जीवन ग्राम-जीवन है, अिसलिअे शिक्षकों में जनपद-वृत्ति निर्माण करना नितान्त आवश्यक है। अिसके विषय में भी अेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव परिषद ने किया है। अिस अेक प्रस्ताव का मर्म यदि हमारी समझ में आ जावे और सारे देश में अुसका अमल हो तो दूसरा कुछ भी करने की जरूरत नहीं रहेगी।

मूल अुद्योग पसन्द करने में स्थानीय परिस्थिति और व्यवस्थाविशेष का खास खयाल रखना चाहिअे, यह आग्रह भी कम महत्त्व का नहीं है। खर्च का हिसाब करते हुअे अिस बात का खयाल रखना चाहिअे कि वर्धाशालाओं में प्राथमिक और माध्यमिक, यानी प्रायमरी से ले कर हाअीस्कूल तक, की शिक्षा स्वभाषा द्वारा दी जायेगी। अिसी दृष्टि से अुनका महत्त्व कूतना चाहिअे। परिषद के अन्य प्रस्ताव प्रत्यक्ष कार्यकर्ताओं की ही अुपयोगी हैं।

दो तीन प्रस्ताव परिषद का अनुभवमूलक विश्वास प्रकट करते हैं:—

(१) वर्धायोजना राष्ट्र के लिअे बहुत अुपयोगी है और राष्ट्र के लिअे हितकारी है। अिसलिअे राज्यव्यवस्था में पक्षान्तर होने पर भी वह जारी रहनी चाहिअे।

(२) दो वर्ष का अनुभव संतोषकारक और भविष्य के लिअे आशाजनक है।

(३) अनुबन्धी शिक्षा-पद्धति न केवल शास्त्रशुद्ध ही है, अपितु व्यवहार-सिद्ध भी।

(४) शहरों में भी यह योजना अमल में लायी जा सकती है।

अिन प्रस्तावों का महत्त्व अुनके पीछे रहे हुअे अनुभव के कारण है।

अब अिस परिषद से फलनिष्पत्ति क्या हुअी? परिषद में तंत्रचर्चा अधिक हुअी और वर्धायोजना का चैतन्य दरकिनारे कर दिया गया—अैसी आलोचना गुजरात के दो प्रमुख कार्यकर्ताओं ने की है अुसकी तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिअे। श्री भारतानन्द ने अेक दो-टूक प्रस्ताव पेश करके विभाग-निष्ठ और शिक्षा-परायण लोगों को बहुत हैरान कर डाला। परंतु यदि गुजरात विद्यापीठवाले अुनका पक्ष अुपस्थित करते तो वह अधिक अच्छी तरह अुपस्थित किया जाता। अगर बहुत ज्यादा तनातनी होती तो शिक्षण-परायण लोग और ग्रामसेवा-परायण लोगों में फूट पैदा हो जाती। जिन्हें चैतन्य की चिंता है वे आज तंत्र को दृढ होने दें और अुसमें से चैतन्य तिरोहित होने न पावे अिसका भी ध्यान रक्खें; यही अेक मार्ग है।

कॉंग्रेस दीर्घकाल तक अधिकार-विमुख नहीं रहेगी। जब वह पुनः अधिकार की बागडोर अपने हाथ में लेगी तब अुसका बल पहले की बनिस्बत कहीं अधिक होगा। अुस वक्त अिस योजना की स्वाभाविकता बाहर आयेगी। फिलहाल तो मूल अुद्योग की स्थापना, अनुबन्धी शिक्षा-पद्धति का प्रयोग, अंग्रेजी का निर्वासन और जानपद वृत्ति का आग्रह, अितनी बातें सम्हालना पर्याप्त है।

आचार्य कृपालानी के दो भाषण हुअे। दोनों अितने सुन्दर हुअे कि सारी परिषद

अेक तरफ और दूसरी तरफ ये दो भाषण अैसा अगर कोअी कहे तो बहुत से लोग वह मंजूर करेंगे। श्री बालासाहब खेर के भाषण में प्रांजलता, अुत्कटता और दो वर्ष के जोशीले कार्य का सार था।

का० का०

संघवृत्त

आगामी सम्मेलन

कार्यवाहक समिति की बैठक ता. २१-१२-३९ को वर्धा में हुअी थी। संघ का आगामी वार्षिक सम्मेलन ता. २० फरवरी १९४० से ता. २६ फरवरी १९४० तक मलिकन्दा (ज़ि० ढाका, पूर्व-बंगाल) में करने का निश्चय हुआ है।

अध्यक्ष का चुनाव

श्री किशोरलालभाअी को अध्यक्षपदारूढ हो कर पाँच वर्ष पूरे हो चुके हैं। नियमानुसार अब अध्यक्षपद के लिअे फिर से चुनाव करना पड़ेगा। मुख्यतः स्वास्थ्य के कारण पुनर्निर्वाचन के लिअे श्री किशोरलालभाअी ने अनिच्छा प्रकट की है। अुनके स्थान पर किसे अध्यक्ष चुना जाय अिसका विचार भी कार्यवाहक समिति में हुआ था। लेकिन अिसके विषय में कोअी पक्की राय अभी नहीं हो पायी है। अब सम्मेलन में ही अिसका निर्णय हो सकेगा।

का. वा. स. का निर्वाचन

नियमानुसार कार्यवाहक समिति से अब की बार श्री. गोपबन्धु चौधरी और श्री गंगाधररावजी देशपांडे की निवृत्त होने की बारी है। अिनके स्थान पर भी अपने में से दो का चुनाव सेवक सदस्यों को सम्मेलन में करना होगा। निवृत्त होनेवाले सदस्य भी फिर से चुन जा सकते हैं।

नियम-परिवर्तन

कार्यवाहक समिति की ओर से नियम संख्या ४ (अी) ४; ४ (अु) ३ और ४ (अे) में निम्न प्रकार बदल करने का विषय आगामी सम्मेलन में पेश करने का निश्चय हुआ है—

कलम ४ (अी) ४ में

"प्रति मास" के बदले "प्रति तिमाही में"
"अेक हजार" के बदले "नव हजार"
और बढाओ—

"और सिवाय कि वह चरखा संघ का सदस्य हो, संघ को प्रतिवर्ष अपने हाथ का काता हुआ, कम से कम बारह हजार गज सूत दे।

कलम ४ (अु) ३ में

"प्रतिमास" के बदले "प्रति तिमाही में"
"अेक हजार" के बदले "छः हजार"
और बढाओ—

" और सिवा कि वह चरखा संघ का सदस्य हो, संघ को प्रतिवर्ष अपने हाथ का काता हुआ कम से कम बारह हजार गज सूत दे।"

कलम ४ (अे) में

" नियमपूर्वक अथवा अेकमुश्त अितनी " के बदले " अेकमुश्त अथवा नियमपूर्वक प्रतिवर्ष रु. ६ से अितनी अधिक " और बढाओ—

" अथवा प्रतिवर्ष कम से कम १२००० गज अपने हाथ का काता हुआ दस से अधिक अंक का सम और मजबूत सूत दे।"

सदस्यों से निवेदन है कि अिस परिवर्तन के संबंध में अपनी सूचनायें तथा नियम-परिवर्तन के सम्बन्ध में और भी कोअी सूचना हो तो वह ता. १५ जनवरी १९४० के पहले कार्यालय में पहुंच सके अिस तरह भिजवाने की कृपा करें।

वार्षिक विवरण

चूंकि आगामी सम्मेलन पिछले सम्मेलनों की अपेक्षा बहुत जल्दी हो रहा है, सदस्यों से निवेदन है कि वे अपने वार्षिक कार्य-विवरण हिसाब के साथ, ता. २० जनवरी १९४० के पहले कार्यालय में पहुंच सके अिस तरह भिजवाने का ख्याल रक्खें।

र. श्री. धोत्रे
मंत्री, गांधी सेवा संघ

" मैं संप्रदाय-प्रवर्तक नहीं हूं "

गांधीवाद जैसी कोअी चीज़ मेरे तो दिमाग में ही नहीं है। मैं कोअी संप्रदाय-प्रवर्तक नहीं हूं। तत्त्वज्ञानी होने का तो मैंने कभी दावा भी नहीं किया है। मेरा यह प्रयत्न भी नहीं है। कअी लोगों ने मुझसे कहा कि तुम गांधीविचार की अेक स्मृति लिखो। मैंने कहा, स्मृतिकार कहां और मैं कहां? मेरे पास कोअी योजना नहीं है। स्मृति बनाने का अधिकार मेरा नहीं है। जो होगा, मेरी मृत्यु के बाद होगा। मैंने तो केवल बगैर योजना के, अपने निजी ढंग से यही प्रयत्न किया है कि हम अपने नित्य जीवन में सत्य अहिंसा आदि सनातन तत्त्वों का व्यापक प्रयोग करें। बालक की तरह जैसी प्रेरणा मिली, प्रवाह में जो चीजें आ गयीं, अुसमें जो सूझा वह किया।

फिर, मुझे पता चला कि जो मैं कर रहा हूं वह सत्य के प्रयोग हैं। अैसा करने में कभी कभी मुझसे भूलें भी हुअी हैं। और अपनी भूलों से मुझे शिक्षा भी मिली है। अिस तरह मेरे लिअे जीवन अेक सत्य का प्रयोग है। सत्य की शोध में ही अहिंसा का साधन मुझे प्राप्त हुआ।

— गांधीजी

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg. No. N. 741

निर्बल के बल राम

फिर भी, यह सवाल बाकी रह जाता है कि हमारा मकसद किस रास्ते पर है? बडे बडे देश मतवाले हो कर जिस रास्ते जा रहे हैं वह हमारे लिअे बेशक बंद है। ये बडे बडे राष्ट्र अपनी अिस दौड़ में किस मुकाम पर पहुँचेंगे अिसका कोअी ठिकाना नहीं। सिर्फ अितना ही कहा जा सकता है कि अितिहास की गति अति गहन है। कमजोरों के दुःख भी बलाढ्यों के जहाज़ में सूराख करते पाये गये हैं। अितिहास में केवल युद्ध और लड़ाअी के ही सुयोग नहीं होते; वंचितों की निराशा भी अनुकूल अवसरों को खींच लाती है— वे कहां से आ सकते हैं यह तो अिस क्षण हम नहीं कह सकते। हम यह ठीक ठीक नहीं बता सकते, अिसी कारण अुस सुअवसर का आकस्मिक अुद्भव अिन बलाढ्य राष्ट्रों को हैरान कर देगा। जिन अभागे लोगों के लिअे मेल-मिलाप और मित्रता के रास्ते में कांटे बिछा दिये जाते हैं और लड़ाअी के रास्ते में रोडे डाल दिये जाते हैं, वे ही तो विधाता की अतर्क्य गति की ओर अुत्कट अुत्कंठा से देखते रहते हैं। लेकिन जो लोग राजनीति के क्षेत्र में दूसरे राष्ट्रों को दबा मारते हैं और युद्ध में नरसंहार के यंत्र बढ़ाते चले जाते हैं, वे जब अीश्वर के नाम की आड़ लेना चाहते हैं तो हमें आश्वासन नहीं मिलता। साक्षात् अीश्वर का ही नाम ले कर हम यह कहेंगे कि बाहर से हम असहाय भले ही दिखायी दें, परंतु फिर भी हम असहाय नहीं हैं। अिन्सानों की जिस दुनियां में हम रहते हैं, अुस दुनियां की निःस्वार्थी मानवता, जो हमें अपना ही मानती है, कहीं से न कहीं से आ कर हमारे पक्ष में मिलेगी। नहीं तो, विधाता का दूसरा अर्थ ही क्या हो सकता है?

दिसंबर, १९३९ के "माडर्न रिव्यू" से

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

श्रेय वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक
काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा
अंक ७ वाँ

फरवरी

अेक अंक...	रु० ०–६–०
वार्षिक	रु० ३–०–०
बर्मा में	रु० ३–८–०
विदेश में	६ शिलिंग
	१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)	

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है :

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अॅण्ड कंपनी, ८, राअुण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, कॅनाट सर्कस, न्यू देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअूस, नाणावट, सूरत।
(१०) सस्ता साहित्य मंडल, अिन्दौर।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

फरवरी, १९४०
वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

मंत्र—अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय अिव ते तमो य अु संभूत्यां रताः ॥१२॥

अर्थ—जिन्होंने निरोध को ही साधनसर्वस्व मान लिया वे मानो घने अंधेरे में प्रवेश कर गये। जो विकास में ही मग्न हो गये वे मानो अुससे भी घने अंधेरे में जा पहुँचे।

टिप्पणियां-(१) पिछले तीन श्लोकों में बुद्धि-शोधन हुआ। अब यहां से हृदय-शोधन शुरू होता है। (२) (पापों का, दोषों का, या असद्वृत्ति का) निरोध, और (पुण्य का, गुणों का, या सद्वृत्ति का) विकास, दोनों हृदय-शोधन की अेक ही क्रिया के निवृत्त और प्रवृत्त अंग हैं। अतअेव अुनके फल भी चौदहवें मंत्र में निवृत्त और प्रवृत्त रूप के दर्शाये गये हैं। (३) यहां जो 'संभूति' और 'असंभूति' शब्द हैं अुनके अर्थ के विषय में अेकमत नहीं है, और आगे भी होने की अधिक आशा नहीं की जा सकती। यहां जो अर्थ-निश्चय किया गया है, अुसके विषय में अितना ही निवेदन है कि अुसमें वैदिक वाङ्मय की जितनी साक्षी ली जा सकी अुतनी ली गयी है। (४) जिस प्रकार आत्मज्ञानविहीन अेकांतिक बौद्धिक साधना में अुसी प्रकार आत्मज्ञानविहीन अेकांतिक हार्दिक साधना में भी नाना प्रकार का अंधेरा भरपूर होता है। वह हर अेक अपने लिये आप खोज ले। अुसे पूर्णतः टालने के लिअे आत्मज्ञान की ही आवश्यकता है।

मंत्र—अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात्।
अिति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

अर्थ—(आत्मतत्त्व) विकास से भिन्न और निरोध से भी भिन्न बतलाया गया है। जिन्होंने हमें वह समझाया अुन ज्ञानी पुरुषों से हमने अैसा सुना है।

टिप्पणियां—(१) अुभयविध बौद्धिक साधना से, तथा अुभयविध हार्दिक साधना से भी आत्मज्ञान भिन्न वस्तु है। अिसे अुपनिषद् ही प्रतिपादन कर सकते हैं। लेकिन वे भी पूर्वगुरुओं का हवाला देते हैं। 'बिनु गुरु होय कि ज्ञान?' यही अिसका निष्कर्ष है। (२) 'संभूति' और 'असंभूति' की जगह 'संभव' और 'असंभव' शब्द केवल छन्द की सुविधा के लिअे प्रयुक्त है।

❦

जयपुर–सत्याग्रह

[हरिभाऊ उपाध्याय]

राजपूताने में जयपुर आबादी के लिहाज से सब से बडी और आमदनी के लिहाज से दूसरे नम्बर की रियासत है। साधारणतया हरिजन–पाठशालाओं, खानगी व अंग्रेजी शिक्षणालयों, पुस्तकालयों, दवाखानों, सेवा-समितियों, खादी-केन्द्रों आदि के द्वारा जितने छोटे-बडे रचनात्मक काम अिस रियासत में फैले हुये हैं, अुतने, और राजनैतिक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक सुधार या प्रगति के कामों में जयपुर रियासत के–जिसमें सीकर और शेखावाटी शामिल हैं– धनी-मानी जितनी दिलचस्पी लेते हैं, अुतनी, मध्यभारत और राजपूताना की किसी रियासत में नहीं हैं। फिर भी, कोअी तीन साल पहले तक जयपुर राजनैतिक प्रगति में पिछड़ा हुआ माना जाता था। जबसे श्री हीरालालजी शास्त्री अपने विश्वस्त साथियों के साथ प्रजा-मंडल में शामिल हुअे और श्री जमनालालजी ने अुसका अध्यक्ष-पद ग्रहण किया, तबसे जयपुर–राज्य में राजनैतिक जागृति और आकांक्षाओं की अेक बडी लहर अुमड़ पडी। परन्तु श्री जमनालालजी के नेतृत्व में प्रजामंडल अुस लहर में बह नहीं गया—अुसने अपनी शक्ति को तौल–तौल कर कदम बढ़ाया, साफ–सीधे और सहयोग लेने–देने की प्रवृत्ति रक्खी, 'संघर्ष नहीं, सहयोग जीवन का नियम है', अिस आदर्श पर और 'संघर्ष आ ही पडे तो अुससे पीछे हटना कायरता है', अिस नीति पर, वे दृढ़ता से चलते रहे।

प्रजामंडल का कार्यक्रम द्विविध था—

(१) राजनैतिक मांगों—जैसे अुत्तरदायी शासन और नागरिक स्वतंत्रता को जयपुर–दरबार के सामने रखना और जन–मत को अुसके संबंध में शिक्षित करना;

(२) प्रजा के कष्ट दूर करने संबंधी भिन्न भिन्न सेवा तथा रचनात्मक–कार्यों मे दिलचस्पी लेना।

श्री जमनालालजी के प्रजा-मण्डल का अध्यक्ष होने के समय सीकर–रावराजा तथा जयपुर– दरबार मे जोर का झगड़ा चल रहा था, जिसमे मध्यकालीन रजवाडों की लडाअी का दृश्य दीखने लगा था; अुसमें सीकर-निवासी तथा जयपुर–प्रजामण्डल के अध्यक्ष होने के नाते जमनालालजी को विशेष दिलचस्पी लेनी पडी। सीकर–आंदोलनकारियों की गलतफहमियों और नाराजगियों का शिकार हो कर भी जमनालालजी ने जयपुर–दरबार और सीकर–प्रजा को नेक-सलाहें दीं, और अपना सारा प्रभाव खर्च करके गोलाबारी और हत्याकाण्ड होने से—अुसके दुष्परिणामों से—जयपुर–दरबार और सीकर की प्रजा की रक्षा की। अिससे स्वभावतः जमनालालजी और प्रजामण्डल का नैतिक बल बढ़ा। अिसके बाद ही जयपुर–रियासत में सख्त अकाल पड़ा—जिसमें संकट-निवारण का कार्य करना प्रजामण्डल ने अपना धर्म समझा।

अिधर प्रजामण्डल प्रायः तमाम निज़ामतों में अपनी शाखायें खोल कर अपना संगठन पहले ही दृढ़ कर चुका था। ज्यों-ज्यों प्रजामंडल जनता में प्रविष्ट और प्रिय होता जा रहा था, त्यों-त्यों जयपुर के अंग्रेज शासक भयभीत होते जाते थे। अुनकी राय में प्रजामंडल यदि रहे भी तो मुट्ठी भर पढे-लिखे

लोगों में और शहरों में भले ही रहे, गांवों में और जनता में न फैलें। असलिये अुन्होंने प्रकट और अप्रकटरूप से अैसी बंदिशें लगाना और बांधना शुरू किया जिसमें प्रजामंडल के नेता और कार्यकर्ता ग्रामीण जनता के संपर्क में न आवें। अुनकी अिस प्रवृति का अंत हुआ जमनालालजी के खिलाफ़ जयपुर-राज्य में प्रवेश करने की निषेधाज्ञा के रूप में; जबकि वे मुख्यतः अकाल-संकट-निवारण संबंधी प्रजामंडल के कार्यों की देखभाल के लिअे जयपुर आ रहे थे। शांतिप्रिय, मगर स्वामिमानी, जमनालालजी अिस अनुचित हस्तक्षेप को सहन नहीं कर सकते थे, न प्रजामंडल ही अपने प्रिय नेता पर हुअे अिस वार को हज़म कर सकता था। गांधीजी ने भी अिसमें प्रजामंडल और जमनालालजी के भावों को ठीक समझा अेवं अुनके पक्ष का समर्थन किया। अंत को अेक मास का नोटीस देने के बाद भी जब अधिकारियों ने अपनी गलती को ठीक नहीं किया, तो १ फरवरी १९३९ को जमनालालजी ने अिस आज्ञा को भंग करने के अुद्देश से जयपुर मे प्रवेश किया। जयपुर-राज्य के तत्कालीन कर्ता-धर्ता सर बीचम सेंटजॉन अपनी हेकडी में यह गलती कर तो गये। मगर गलती करने का जितना साहस अुन्होंने दिखाया अुतना अुसे सुधारने का नैतिक बल अुनमें न था। अधिकारियों और सत्ताधारियों की यह आम प्रवृत्ति पायी जाती है कि काम करते समय वे जितना साहस और दृढ़ता दिखाते हैं, अुतनी अपनी गलती को मानने और सुधारने में नहीं। अिसीसे वे लोगों में अप्रिय और निर्बल होते जाते हैं। अिस नैतिक साहस के अभाव में सर बीचम की हालत 'सांप छछूंदर' की-सी हो गयी। अुन्हें जमनालालजी को जेल में रखने, या अपने हुक्म को वापिस लेने, का साहस न हुआ। दो बार पकड़-पकड़ कर अपनी हद के बाहर छोड़ आये। तीसरी बार जमनालालजी ने अुन्हें अपने को जेल में रखने पर मजबूर कर दिया। फिर तो प्रजामण्डल के मुख्य नेताओं पर भी सरकार ने छापा मारा और सत्याग्रह पूरे रंग में आ गया।

१८ मार्च तक सत्याग्रह चला। ६०० के लगभग गिरफ्तारियां हुअीं। अन्त में ता. ९ अगस्त को जयपुर महाराज की दूरदर्शिता और समयसूचकता से जमनालालजी बिना-शर्त छोड़े गये—यह सत्याग्रह की विजय थी। यदि गांधीजी का वरदहस्त, जमनालालजी का नेतृत्व, श्री हीरालालजी और अुनके विश्वस्त साथियों का दृढ़ संगठन तथा जनता का स्वेच्छापूर्ण सहयोग—अितनी सब अनुकूलताओं का सुंदर संगम न हुआ होता तो जयपुर-दरबार को भी वस्तुस्थिति को समझने और अुसके अनुकूल अपने को बनाने की प्रेरणा न हुअी होती।

मुझे यह लिखते हुअे बड़ा खेद होता है कि जयपुर–नरेश का बनाया यह सहयोग और सद्भावना का वातावरण अधिकारियों की बेरुखी से बिगड़ता जा रहा है। यह देख कर मेरे मन में गंभीरता से यह प्रश्न अुठता है कि, "अितने अधिक पुण्य, बल, परिश्रम और कष्ट–सहन से जो वस्तु मिली क्या अुसकी जड़ सहज में ही और अितनी जल्दी हिलायी जा सकती है? और जो अैसी कोशिश करते हैं, क्या वे अिन तमाम पुण्यप्रभावों से प्रभावित ही न हुअे? यदि न हुअे तो अिसकी जिम्मेदारी किस पर है? और प्रजामण्डल पर अिसकी कितनी और क्या जिम्मेदारी है"?

सौभाग्यवश, मैं अुन लोगों में से हूं जिन्हें जयपुर-सत्याग्रह को बहुत नजदीक से ही नहीं, खूब अन्दर से देखने का मौका मिला है। जयपुर में पैदा न होते हुअे भी जयपुर और जयपुरियों से मेरा अैसा सम्बन्ध रहा है कि जयपुर मुझे अपना घर ही मालूम होता है। अैसी अवस्था में मैंने अेक जयपुरी की भावना से ही अिन प्रश्नों पर विचार किया है, अुसका नतीजा यह है :—

सत्याग्रह का असर सामनेवाले पर तीन तरह से होता है:–(१) सत्याग्रहियों की निष्ठा और शुद्धता का सीधा असर प्रतिपक्षी के दिल पर होता है, जिससे वह अपनी अल्पता और सत्याग्रही की महानता अेवं अपने पक्ष की अन्याय्यता या निर्बलता और सत्याग्रही की न्याय्यता का अनुभव करने लगता है और अपनी हार मान लेता है। अिसे शुद्ध सत्याग्रह की पूर्ण विजय कहना चाहिअे। अिसमें सत्याग्रही विजय से फूलता नहीं—अपने अकेले के या अपने ही पक्ष के लिअे 'विजय' शब्द लगाना अुसे सत्य, शिव और सुन्दर नहीं मालूम होता—अिसमें अुसे सामनेवाले की भी अुतनी ही विजय दिखायी देती है; क्योंकि सामनेवाले ने अपनी कमजोरी पकड़ ली और अुसपर हावी हो गया; यह अुसकी कम विजय नहीं है। अिसी तरह पराजित, या ज्यादा सही भाषा में कहें तो, हृदय-परिवर्तित व्यक्ति या पक्ष यह महसूस नहीं कर पाता कि मेरी हार हुअी, हार की लज्जा या ग्लानि अुसके पास नहीं फटकती; बल्कि अपनी निर्बलता पर विजय पाने और जिसे भूल से अपना शत्रु मान लिया था, अुसे अपने मित्र के रूप में पाने और देखने का आनन्द वह अनुभव करता है। अिस परिणाम में फिर दोनों में द्वेष या कलह का भय या संभावना नहीं रहती।

(२) सत्याग्रहियों के बल-संगठन का प्रभाव सामनेवाले पर पड़ता है। जिससे वह अपनी हानि-लाभ का हिसाब लगाने लगता है और अन्त में सत्याग्रही से लड़ते रहने में अपनी हानि समझ कर अुससे सुलह करता है। अिसमें सत्याग्रही के गुण या आंतरिक शक्ति की अपेक्षा बाह्य बल अथवा संगठन मुख्य-रूप से काम करता और असर डालता है; अेवं दोनों अेक तरह के सौदे से संतुष्ट हो जाते हैं। अिसमें फिर दोनों में लड़ाअी-झगड़ा होने की आशंका और सम्भावना रहती है; क्योंकि भौतिक हानिलाभ का हिसाब तो परिस्थिति के अनुसार बदलता और कम-ज्यादा होता रहता है। अिसमें तत्काल फल जल्दी निकलता है, लेकिन अुसके स्थायी होने में शंका रहती है।

(३) "सत्याग्रही" कहलानेवालों के अन्धाधुन्ध बल और आतंक से प्रतिपक्षी घबरा कर और परेशान हो कर हतबुद्ध हो जाता है और 'सत्याग्रही' की शरण जाता है। अिसमें 'सत्याग्रह' नाम-मात्र का होता है। अेक प्रकार की हिंसा या प्रति-हिंसा का ही वह सत्याग्रही, या शिष्ट-सज्जन, रूप है और सामनेवाला भी किसी तरह टक जाने का बहाना, या ढोंग, या बाह्य क्रिया, करके अपने शत्रु की आंख में धूल झोंकता है, पहला मौका पाते ही वह अुसपर फिर वार करता है और अपने वादों या आश्वासनों से फिरने और पलटने का अेवं अुनके अर्थों को तोड़ने-मरोड़ने का यत्न करता है। असल में तो अिस 'सत्याग्रह' को 'शस्त्राग्रह' से भी निकम्मा और भयंकर समझना चाहिअे।

जिससे दोनों पक्षों को न लाभ है, न शांति है, न कल्याण है। शुद्ध सत्याग्रह जैसे अुभय पक्ष के लिअे कल्याणकारी और मंगलदायी है, वैसे ही यह अुभय पक्ष के हित, लाभ, शांति, सबके लिअे घातक है। अिसमें अपनी विजय माननेवाला अधिक धोखे और घाटे में रहता है।

अब जयपुर में यदि फिर वातावरण बिगड़ रहा है तो हम सत्याग्रहियों के लिअे सोचने और आत्मनिरीक्षण करने का अवसर है। अिन तीन में से 'जयपुर-सत्याग्रह' किस कोटि में आता है? मेरी राय और अनुभव में वह तीसरी कोटि का तो हरगिज नहीं था। प्रथम कोटि में भी वह नहीं चढ़ाया जा सकता। दूसरी कोटि में अुसकी गिनती होनी चाहिअे। पहली कोटि के सत्याग्रह के नमूने तो स्वयं गांधीजी के चलाये सत्याग्रहों में भले ही मिलें। अधिकांश सत्याग्रहों को दूसरी कोटि में ही स्थान मिलेगा। मेरी राय में यदि प्रजामण्डल के नेता और कार्यकर्ता दूसरे नम्बर से प्रथम नम्बर में आने का प्रयत्न करते रहेंगे तो अिस वातावरण को बिगाड़ने की जिम्मेदारी अुनपर कदापि नहीं आ सकेगी। दूसरे नम्बर से पहले में आने के लिअे प्रजामण्डल का ध्यान नीचे लिखी बातों की ओर जाना जरूरी है:

(१) अहिंसा के अुच्चतम और शुद्धतम रूप को समझने तथा ग्रहण करने का यत्न करना।

(२) सत्याग्रह,– अर्थात् सत्य और अहिंसा–सम्बन्धी ज्ञान और प्रयोगों की चर्चा को बढ़ाना।

(३) कार्यकर्ताओं के पारस्परिक, संस्थागत तथा सामाजिक व्यवहार में, तथा, समाज और जनता में हुअे झगडेटंटों को सुलझाने में, अहिंसावृत्ति और अहिंसात्मक साधनों से ही कितना काम लिया जाता है, अिसका विशेष-रूप से ध्यान रखना।

(४) रचनात्मक और विशेषकर खादी के कामों में विशेषरूप से जुट पड़ना। जितनी निष्ठा और वेग से अिसमें जुटा जायगा, वह परिचायक होगा अुत्तरदायी शासन की मांग की सच्ची लगन का; अुसमें से वास्तविक अहिंसा प्रकट और स्थिर होगी। प्रचार और संघटनात्मक कार्यों की अपेक्षा रचनात्मक कार्यों में अहिंसात्मक गुणों के अुदय होने और स्थिर रहने की विशेष संभावना है।

(५) प्रजामण्डल के तमाम पदाधिकारियों और कमिटियों के सदस्यों के लिअे खादी पहनना और चरखा कातना लाजमी करना।

यदि जयपुर-दरबार की मनःस्थिति सुलह करते समय वास्तव में तीसरी कोटि के प्रभाव में काम करनेवाले प्रतिपक्षी की रही हो तो अुन्होंने यह सुलह करके अपना या राज्य का कोअी लाभ और हित नहीं किया है। अुन्हें या अुनके अधिकारियों को कम-से-कम दूसरी कोटि की वृष्टि अवश्य रखनी चाहिअे, क्योंकि अन्त में यह बात तो अुन्हें कभी न भूलनी चाहिअे कि "राज्य और राजा प्रजा के लिये हैं; जाग्रत और संगठित प्रजा-बल को रोकने का सामर्थ्य संसार की किसी शक्ति में नहीं होता।"

सह-शिक्षण

[काका कालेलकर]

१

सामाजिक आदर्श और शिक्षा

सहशिक्षण का सवाल अभी तक हल नहीं हुआ है। जिन देशों में सहशिक्षण सार्वत्रिक है वहां पर भी चन्द लोग अुसके बारे में साशंक है; और सुना जाता है कि स्वीडन और नॉर्वे में अर्से तक सहशिक्षण चलाने के बाद वह बन्द कर दिया गया। अेक ओर लोग सहशिक्षण से डरते हैं और दूसरी ओर सहशिक्षण से नैतिक लाभ भी बहुतसे बताये जाते हैं। सहशिक्षण के बिना देश के युवकों की और युवतियों की शिक्षा अेक अत्यंत महत्त्व के पहलू में अपूर्ण रह जाती है, अैसा भी कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि युवक और युवतियाँ जहां अेकत्र आती हैं वहां पर और कुछ होता या न होता हो, शिक्षण तो होता ही नहीं, यह निश्चित है।

अिंग्लैंड में जब स्त्रियों को पार्लमेंट की सदस्यता का अधिकार नहीं था और अुस अधिकार की प्राप्ति के लिअे अुनका आन्दोलन शुरू हुआ था तब विरोधी लोग अैसी ही दलील पेश करते थे कि पार्लमेंट के सभागृह में जब स्त्री और पुरुष साथ बैठ कर चर्चा करने लगेंगे तो राजकाज तो अलग रहेगा और केवल परस्पर-अनुनय और आराधन की बातें ही चलेंगी।

मनुष्य के अितिहास में अक्सर यह पाया गया है कि हर अेक परिवर्तन के जो बडे बडे लाभ बताये जाते हैं वे आगे जा कर वास्तविक नहीं पाये जाते और जिन बडी बडी हानियों का डर बताया जाता है अुतनी हानि भी नहीं होती। मनुष्यस्वभाव की गति कुछ विचित्र ही है। चाहे कैसी भी हालत क्यों न हो, अुसमेंसे वह अपना रास्ता निकाल ही लेता है। क्योंकि मनुष्य-स्वभाव न तो अेकाअेक अूंचा चढ़ने के लिअे तैयार होता है और न सदा के लिअे गिर जाना पसन्द करता है। जैसी कुछ परिस्थिति हो, अुसके अनुकूल रह कर मनुष्य-स्वभाव अपने हमेशा के धरातल पर स्थिर हो जाता है।

अिसीलिअे अनुभवी सुधारक कहते हैं कि जो कुछ परिवर्तन करना हो अेकदम न करो, आहिस्ता आहिस्ता करो। सभी सामाजिक सुधारों के निस्बत 'हेसन स्लोली' का अुपदेश खासतौर से दिया जाता है। कोअी सुधार कितना भी आवश्यक क्यों न हो, और अुसके बिना चाहे कितना भी नुकसान क्यों न होता हो, तेजी से दौड़ते समय भी मनुष्य-स्वभाव का खयाल करके गति को जरा संयत रखना चाहिअे।

सबसे पहले यह जान लेना जरूरी है कि अिस सहशिक्षा के सवाल का असली रूप क्या है?

लड़के और लड़कियों के अेक ही स्कूल में और अेक ही कक्षा में साथ बैठ कर पढ़ने को 'सह-शिक्षण' कहते हैं। हमारा सामाजिक स्वभाव अितना बलवान् है कि जहाँ सहशिक्षण की प्रथा है वहाँ भी कक्षा में लड़के अलग बैठते हैं और लड़कियाँ अलग। सभा में भी जहां स्त्री और पुरुष अेकत्र आते हैं वहां स्त्रियों के लिअे खास अलग जगह होती है और पुरुषों के लिअे अलग। जहां जी चाहे शामिल-शरीक हो कर बैठने का रिवाज हमारे देश में शुरू नहीं हुआ है।

अेक ही छात्रालय में लड़के और लड़कियों के रहने का भी रिवाज कहीं शुरू नहीं हुआ है और जहाँतक मुझे पता है यूरोप या अमेरिका में भी क ीं अैसी व्यवस्था तो नहीं है कि लड़के और लड़कियाँ अेक ही छात्रालय में अेक दूसरे के पड़ोस में रहें। रूस का हाल हम नहीं जानते। विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के 'सहजीवन' का सवाल तो अभीतक आया ही नहीं है। अभी तो सवाल केवल 'सह-शिक्षा' का ही है; 'सह-वास' का नहीं।

सह-शिक्षा का सवाल हर अेक प्रान्त के लिअे और हर अेक कौम के लिअे अेक-सा नहीं है। जहाँ गोशे या पर्दे का सवाल है वहां सहशिक्षा की कल्पना भी शायद कोअी नहीं कर सकेगा। जिस समाज में पर्दे की प्रथा नहीं है और स्त्री-पुरुष अपनी अपनी मर्यादा सम्हाल कर अेक दूसरे से मिल सकते हैं और बातचीत कर सकते हैं वहाँ का सवाल अलग है।

शाला में अगर अेक ही समाज के लड़के-लड़कियां पढ़ने आती हों तब तो यह सवाल बहुत कुछ आसान हो जाता है। जहां पर्दे की प्रथा नहीं है वहाँ की सहशिक्षण-संस्था में अगर पर्दे की प्रथा-वाले समाज के चन्द लड़के आ जाते हैं तो सारा वायुमण्डल बिगड़ जाता है। पारसियों की सहशिक्षण-संस्थामें अगर देहात के हिन्दू या मुसलमान लड़के पढ़ने जावें तो अुनकी स्थिति भी कु विचित्र-सी हो जाती है। अिसलिअे जब हम सहशिक्षण के सवाल का विचार करते हैं तब हमें यह देखना चाहिअे कि संस्था में आनेवाले लड़के-लड़कियां भिन्न-समाजीय हैं या अेक ही समाज के?

अिस तरह सहशिक्षण का सवाल निरा शैक्षणिक न हो कर सामाजिक है, अिस बात की तरफ खास ध्यान देना चाहिअे।

सहशिक्षण में शैक्षणिक दृष्टि ही न हो अैसा तो नहीं है। अगर स्त्री की और पुरुष की ग्रहणशक्ति भिन्न हो तो अुन्हें साथ पढ़ाने से लाभ है या हानि?-यह देखना चाहिअे। हर अेक मनुष्य को गणितबुद्धि, तर्कशक्ति, कलारुचि, अिन्द्रियनिग्रह, युद्धकौशल्य, आदि अनेक बातों में प्रवीण करना आवश्यक है। अिन बातों में अगर स्त्री और पुरुष का विकासक्रम और अनुशीलन की अुत्कटता अेक-सी हो तो सहशिक्षण में कठिनाअी नहीं होगी। थोड़ा-सा फ़रक रहने से दोनों को लाभ ही है। क्योंकि तेज की सोहबत से अेक हद तक मन्द भी तेज हो जाता है। किन्तु अगर दोनों का अन्तर अकाट्य रहा तो दोनों का साथ पढ़ना दोनों के लिअे हानिकारक है।

सहशिक्षण में अुम्र का भी सवाल अपना अेक विशेष महत्त्व रखता है। यह अुम्र का सवाल शैक्षणिक दृष्टि से भी प्रधानता रखता है और सामाजिक दृष्टि से भी।

बहुत-से शिक्षाशास्त्री कहते आये हैं कि बचपन से दस वर्ष तक लड़के और लड़कियों में न तो ध्यान आकर्षित करने लायक कोअी शारीरिक भेद होता है और न अुनके स्वभाव में ही लिंगभेद का कोअी महत्त्व होता है। अिसलिअे दस वर्ष तक, याने संकुचित प्राथमिक शिक्षा के खतम होने तक, लड़के और लड़कियों को साथ पढ़ने में किसी किस्म का खतरा नहीं है। अितना ही नहीं, किन्तु अुससे सब तरह से लाभ ही है। और अगर सहशिक्षणी प्राथमिक संस्थाओं में पढ़ाने का काम स्त्रियों के हाथों में ही सौंपा जाय तो वह आदर्श स्थिति होगी।

हम भी मानते हैं कि देश भर में प्राथमिक शिक्षा का कार्य स्त्रियों के ही सुपुर्द किया जाय। (प्राथमिक शिक्षा में केवल स्त्रियाँ ही शिक्षिकायें रहें या स्त्री और पुरुष दोनों पढ़ाने का काम करें ?—— यह सवाल भी विचार करने योग्य है, किन्तु अुसका विवेचन अलग करना होगा।)

जब लड़के और लड़कियाँ अठारह या बीस बरस के हो जाते हैं तब वे कामविकार क्या चीज है यह अच्छी तरह से समझने लगते हैं। स्त्री-पुरुष का आकर्षण और अुसकी जिम्मेवारी— दोनों बातों का अुन्हें खयाल होता है। अैसी हालत में अपने को सम्हालना या अधःपात के रास्ते भटकना अुनकी मर्जी का सवाल है। "जिम्मेवारी का जिन्हें खयाल है अुन्हें पूर्ण स्वतंत्रता देनी ही चाहिअे। फिर अुसका नतीजा चाहे जो हो," अैसा कहनेवाला और माननेवाला भी अेक पक्ष है। अिसीलिअे कॉलेज में लड़के-लड़कियां साथ साथ पढ़ें अिसमें अुसे कोअी आपत्ति नही है।

अिसके विरुद्ध दूसरा पक्ष कहता है कि अपने अुत्तरदायित्व का खयाल जिन्हें है वे सब अुसका पालन करने की शक्ति जबतक नहीं रखते तबतक समाज को अुन्हें सम्हालना चाहिअे। बच्चों में अुत्तरदायित्व का खयाल नहीं होता, जिसलिअे माँ-बाप और पालक अुनपर अंकुश रखते हैं। अुसी तरह समाज के सामान्य स्त्री-पुरुष अपना अुत्तरदायित्व समझते हुअे भी अुसको निबाहने की शक्ति नहीं रखते अिसलिअे अुनके लिअे सामाजिक शिष्टाचार और नियंत्रण आवश्यक है। मनुष्य की जितनी शक्ति है अुससे अधिक बोझ अुसपर नहीं डालना चाहिअे।

शिक्षा में हम जैसे जैसे आगे बढ़ते हैं वैसे वैसे शिक्षा का खर्च भी बढ़ता है। पुरुषों और स्त्रियों के लिअे अलग अलग कॉलेजों की व्यवस्था कम से कम हमारे देश के लिअे अशक्य-प्राय है। देश भर में स्त्रियों के लिअे दो-चार कॉलेज खोलने से यह सवाल हल नहीं हो सकता। देशभर की लड़कियाँ पढ़ने के लिअे अितनी दूर जा भी नहीं सकतीं। अिन सब बातों का विचार करते अिस निर्णय पर आना पड़ता है कि या तो लड़कियों के लिअे कॉलेज की शिक्षा ही बन्द कर दी जाय, या फिर अुन्हें पुरुषों के कॉलेजों में ही पढ़ने की अिजाजत दी जाय।

सवाल विशेषकर अुठता है माध्यमिक संस्थाओं का, जहाँ दस और अठारह के बीच की अुम्र के लड़के और लड़कियाँ पढ़ सकती हैं। अिस अुम्र में लड़कों में और लड़कियों में विकारों की जाग्रति हो सकती है; किन्तु अुन्हें अुसका पूरा खयाल नहीं होता। अुन्हें अपने कर्तव्य की शिक्षा भी नहीं दी जाती। मगर अुन्हें निःसंकोचभाव से मिलने-जुलने से रोका भी नहीं जा सकता। अैसी हालत में सहशिक्षा का प्रयोग करना कहां तक मुनासिब है—यह सबसे बड़ा सवाल है।

शिक्षण की दृष्टि से अिसका विचार करने के पहले सामाजिक दृष्टि से सोचना चाहिअे।

जिस समाज में पर्दे की प्रथा है वहाँ के लोग घर में कैसे रहते हैं यह हम नहीं जानते। यह पर्दे की प्रथा अितनी भद्दी और असंस्कारी है कि घर के भीतर भी जो लोग अेक दूसरे से मुंह छिपाते हैं अुनके जीवन-क्रम का विचार करने को भी जी नहीं चाहता। भारत में अैसे कअी समाज हैं जो अपने परिवार के बाहर के लोगों

को अपने घर के अंदर नहीं आने देते और अपने कुटुंबीयों से परिचय नहीं बढ़ाने देते। किन्तु अेक ही खानदान के लोग और अुनके सब रिश्तेदार आपस में अेक दूसरे से किसी किस्म का पर्दा नहीं करते। अक्सर अैसा देखा गया है कि अैसे समाजों में सदाचार की दृढ़ता अधिक से अधिक पायी जाती है। क्योंकि वहाँ बच्चों को मर्यादित स्वतंत्रता के साथ साथ शील-रक्षा की शिक्षा भी परिवार के वायुमण्डल में ही मिलती रहती है। जिस समाज में पर्दे और गोशे की प्रथा है अुसके बच्चों के लिअे सहशिक्षण का प्रयोग आसान नहीं है। अुसमें मुख्य कठिनाअी बच्चों की ओर से नहीं आती; किन्तु शिक्षकों की ओर से ही आती है।

सामान्यरूप से हर परिस्थिति के लिअे यही सिद्धान्त माना जा सकता है कि सह-शिक्षण में जो कठिनाअी है वह सब से अधिक शिक्षकों की ओर से है। क्योंकि अुनके पास मर्यादित स्वतंत्रता, स्व-सम्मान और शील-रक्षा का कोअी निश्चित और सर्वमान्य आदर्श नहीं होता। जो आदर्श शिक्षक स्वयं हज़म नहीं कर पाया है अुसका सच्चा वायुमंडल वह कभी बना नहीं सकता। यूरोप में हस्तान्दोलन का रिवाज है। कहीं कहीं चुम्बन-आलिंगन का भी रिवाज होता है। जिनके लिअे यह स्वाभाविक है वे अुसे समझ सकते हैं और निबाह भी सकते हैं। हमारे देश में हम अैसे रिवाज चलाने जायें तो सारा मामला बिगड़ जायगा। यही बात सहशिक्षण की भी है।

जब तक हमारे देश में समाजसुधार का आन्दोलन शुरू ही नहीं हुआ था तब तक हर अेक जाति का और समाज का अपना अपना अेक अलग भला-या-बुरा आदर्श निश्चित था। अब वह स्थिरता टूट गयी है। और अब अलग अलग समाजों के अलग अलग आदर्श चलाना भी दिन पर दिन मुश्किल होता जायगा। वे लोग जो कि असुधारक हैं, और वे जो कि किसी भी आदर्श में विश्वास ही नहीं करते—दोनों प्रगति के विरोधी हैं। सामाजिक आदर्शों में कुछ मर्यादा और स्थिरता ही सबसे बड़ी सामाजिक शक्ति है।

२

गुरुगृह, या वर-वधू-मृगया का क्षेत्र ?

आजकल नवयुवकों की ओर से अेक अत्यंत स्वाभाविक किन्तु विचित्र दलील पेश की जाती है। वे कहते हैं कि "अब वह ज़माना गुजर चुका है जब कि हमारी शादियाँ हमारे माँ-बाप, या रिश्तेदार, या कुटुंब के पुरोहित, ठीक कर लेते थे। अब तो हमें अपनी सहचारिणी स्वयं ही ढूंढ़नी होगी। और जब तक सहशिक्षण की प्रथा नहीं है तब तक हम अपने समाज की लड़कियों को किस तरह पहचानें, अुनसे किस तरह परिचय बढ़ावें और अेक दूसरे को पसन्द भी किस तरह करें"?

अिस प्रश्न की स्वाभाविकता तो स्पष्ट ही है। अुसकी विचित्रता अिस बात में है कि नवयुवक शिक्षा-संस्था को ही अपनी सहचारिणी ढूंढ़ने का क्षे[त्र] और मौका मान बैठे हैं। हमारा सामाजिक आदर्श कहता है कि शिक्षालयों में विकारी दृष्टि के लिअे अवकाश ही नहीं रहना

चाहिये। विकारी दृष्टि और ज्ञान की अुपासना, दोनों में कभी भी मेल नहीं हो सकता। अगर अध्ययन-काल में लड़के और लड़कियां परस्पर-अनुनय और प्रणयालाप करने लगें, अथवा शादी की दृष्टि से अेक दूसरे का निरीक्षण-परीक्षण करने लगें, तो शिक्षा का तो अन्त ही है अैसा समझना चाहिये। प्राचीन काल में जब अनेक लड़के और लड़कियां अेक ही गुरु के पास साथ साथ पढ़ती थीं तब अैसा सामाजिक नियम ही था कि अेक गुरुगृह में पढ़नेवाले लड़के-लड़कियों का नाता भाओी-बहन का रहे। अुनमें शादी हो ही नहीं सकती थी। शिक्षक और विद्यार्थिनी का संबंध पिता-पुत्री का और विद्यार्थियों अेवं विद्यार्थिनियों का संबंध गुरु-भाओी और गुरु-बहन का हो, यह आदर्श कायम करके शिक्षा का वायुमंडल निर्दोष और निर्भय बनाया गया था।

युवकों को और युवतियों को चाहिये कि वे अपने शिक्षा-काल में शादी का विचार ही न करें। अितना ही नहीं; किन्तु अपनी भावी सह-धर्मचारिणी या सहधर्मचरको ढूंढ़ने का प्रयत्न भी वहां न करें। शिक्षा-काल अुसके लिये अनुकूल नहीं है और शिक्षालय कोओी पति-या-पत्नी शोध का क्षेत्र नहीं है।

अगर समाज यह मानता है कि युवक और युवतियों का अपना अपना साथी ढूंढ लेना अिष्ट और अुचित है, या अपरिहार्य है, तो समाज को अपने जीवन में—शिक्षालयों में नहीं—अैसे मौके निर्माण करने चाहिये जब कि लड़के और लड़कियां अत्यन्त शुद्ध, प्रसन्न और खुली परिस्थिति में अेक दूसरे के परिचय में आ सकें। कहा जाता है कि यूरोप में जब परिवार के सब लोग रविवार के दिन गिर्जाघर में अुपासना के लिये जाते हैं; तब वहां बड़े लोग जिस वक्त आंखें मूंद कर भगवान का ध्यान करते हैं; अुस वक्त युवक और युवतियाँ अुस भक्ति के वायुमंडल में अेक दूसरे को सैना-सैनी करने की कोशिश करते हैं। हमारी शालायें अैसे गिर्जाघर का स्थान ले लें यह हम सर्वथा अनुचित मानते हैं। जिस समाज में युवकों को और युवतियों को अेक दूसरे के परिचय में आने का स्वाभाविक और शुद्ध मौका दिया ही नहीं जाता अुस समाज में सह-शिक्षण की प्रथा चलानी ही नहीं चाहिये। क्योंकि अुससे न तो विवाह के सवाल का कुछ निर्णय हो सकता है, न शिक्षा का वायुमंडल ही निर्दोष रह सकता है।

नवयुवकों को चाहिये कि वे अपनी वैवाहिक कठिनाअियाँ दूसरी चाहे जिस रीति से दूर करने की सोचें; किन्तु शिक्षालयों को अिस अपवित्र दृष्टि के आक्रमण से सुरक्षित रक्खें।

विधानपंचायत और अहिंसात्मक क्रान्ति

[*आचार्य शंकर दत्तात्रेय जावडेकर*]

"अब तक किसी प्रजा पर किसी विदेशी सत्ता का राज है तब तक अुस प्रजा के जुदा-जुदा अंगों में फूट रहेगी ही। .... कार्यसमिति का विश्वास है कि स्थायी अेकता के दर्शन तो अुसी वक्त होंगे जब विदेशी हुकूमत का नामनिशान मिट जायगा।......काँग्रेस ने जैसी राष्ट्रीय पंचायत तजवीज की है वही अिस सवाल का आखिरी निपटारा करने का अेक मात्र अुपाय है। ....काँग्रेसवालों ने अब अच्छी तरह समझ लिया है कि खूब परिश्रम के बिना स्वाधीनता मिलनेवाली नहीं है। काँग्रेस ने अहिंसा का अहद लिया है, अिसलिअे अुस का आखिरी जोर सविनयभंग है, जो सत्याग्रह का ही अेक अंग है।

(कार्यसमिति का प्रस्ताव,
वर्धा, ता. २२ दिसंबर १९३९)

भारतीय राजनीति की अपूर्वता

जो लोग मौजूदा राजनैतिक घटनाचक्र को भलीभाँति समझना चाहते हैं अुन्हें सब से पहले भारतीय राजनीति के यथार्थ रूप को अच्छी तरह समझ लेना चाहिअे। वह जीवित राजनीति है और अब प्रौढ़ दशा को पहुंच चुकी है। दूसरे राष्ट्रों के अितिहास का अनुकरण करने की बाल्यावस्था में अब वह नहीं रही। अब तो अुसने संसार के अितिहास में नये अध्याय लिखना शुरू कर दिया है। हिन्दुस्तान में आज अेक क्रान्ति हो रही है और अुस क्रान्ति का रूप बिलकुल अपूर्व है। अिंग्लैंड, अमेरिका, फरान्स या रूस आदि देशों के अितिहास में जो घटनायें घटीं वे अुसी रूप में अिस देश में भी घटेंगी, या घटनी चाहिअें, अैसी अपेक्षा या अिच्छा करना भी गलत होगा। आधुनिक भारत में गये बीस वर्षों से अेक क्रान्तिकारक नवशक्ति अपना प्रभाव दिखा रही है और अुसकी सामर्थ्य लगातार बढ़ रही है। अुसका बाह्य रूप पाश्चात्य देशों की क्रान्तिकारक लोकशक्ति के जैसा भले ही दिखाअी देता हो; लेकिन अुसका अन्तः स्वरूप अधिक शुद्ध और अधिक सात्त्विक है। सिर्फ अिंग्लैंड की विधानवादी क्रान्ति का ही अितिहास जाननेवाले हमारे नरमदल के भाअियों को, और केवल रूस और फरान्स की विप्लववादी क्रान्तियों का ही अितिहास जाननेवाले हमारे कम्युनिस्ट भाअियों को, अपना अद्भुत प्रभाव दिखानेवाली भारत की अिस आत्मशक्ति का यथार्थ ज्ञान अब तक नहीं हुआ है।

नरमदलवाले विधानवादी स्वास्थ्यपंडित (निष्क्रियवादी) अिस भ्रम में हैं कि भारतीय राजनीति को क्रान्तिकारक रूप कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। और हमारे क्रान्तिमीमांसकों की यह दृढ़ श्रद्धा है कि क्रान्ति हमेशा रक्तपात के भीषण भेष में ही प्रकट होती है। अिसलिअे भारतीय राजनीति का आज का रूप अिन दोनों को असमंजस में डाल रहा है। अुन्हें अपने विचारों को सुलझाने के लिअे सब से पहले यह समझ लेना चाहिअे कि हम संसार में अघटित घटनाओं के जमाने में जीवित

हैं और हमारा राष्ट्र संसार के अितिहास में अेक नया अध्याय लिखने जा रहा है। महात्मा गांधी की विभूति, सत्याग्रह का सिद्धान्त और अहिंसक क्रान्ति की घटना में जो अपूर्वता है, वह जब तक समझ में नहीं आयेगी तब तक भारतीय राजनीति का आकलन कोअी नहीं कर सकता। वर्तमान महायुद्ध के बाद नया संसार निर्माण होनेवाला है, अिस नयी दुनिया में हिन्दुस्तान अेक स्वतंत्र राष्ट्र के नाते रहनेवाला है, ब्रिटिश आदि यूरोपीय राष्ट्रों का साम्राज्यवाद नष्ट होनेवाला है और गत दो-तीन शताब्दियों तक सारे संसार पर अपना अधिकार जमानेवाली यूरोप की आसुरी पूंजीवादी संस्कृति नष्ट होनेवाली है—यह भविष्य जो स्पष्ट देख सकते हैं वे ही अिसका विचार कर सकते हैं कि अब मानवसंस्कृति को नया आधार कौनसा मिलेगा, या मिलना चाहिअे। जिन्होंने अिस प्रश्न का थोडा भी विचार किया है अुन सब को आज यह निश्चितरूप से दिखायी दे रहा है कि भविष्य में मानवीय संस्कृति को आत्मबल का ही अधिष्ठान मिलना आवश्यक है। भारत में निर्मित सत्याग्रही क्रान्तिशास्त्र अिस आत्मबल का ही अेक रूप है और वर्तमान भारतीय क्रान्ति के रूप में संसार के अितिहास के अेक नये पर्व की भूमिका लिखी जा रही है। महात्मा गांधी, सत्याग्रह तथा भारतीय क्रान्ति के रूप में यह जो नया बल, या आत्मशक्ति, प्रकट हो रही है अुसकी बदौलत संसार के दलित राष्ट्रों का अेवं दलित वर्गों का अुद्धार होगा, सच्ची अभिनव मानवीय संस्कृति निर्माण होगी और सभी को वास्तविक लोकशाही का, स्वतंत्रता का और यथार्थ शांति का लाभ होगा।

बाहुबल, बुद्धिबल और आत्मबल

बीस साल पहले भारतीय राजनीति ने विधानवादी आन्दोलन की लकीर पीटना छोड़ दिया। 'ब्रिटिश पार्लमेंट ही हमारा भाग्यविधाता, आदिदेवता, है और अुसके प्रासाद में से हमें हमारे सारे अधिकार प्राप्त होंगे'—यह अिस विधानवादी राजनीति का आधारभूत सिद्धान्त था। अिस नीति से हम अपना स्वातंत्र्य प्राप्त नहीं कर सकते अिसका धुंधला ज्ञान १९०५ के बाद आधुनिक भारत को होने लगा। अिसके बाद के दस-पंद्रह साल हमारी राजनीति के लिअे नये आधार की खोज में व्यतीत हुअे। १९१९ में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राजनीति को यह नया आधार प्राप्त हुआ। यही अहिंसक सत्याग्रही क्रान्तिशास्त्र है। पुराना बुद्धिबल का आधार निष्प्रभ और निष्फल साबित हुआ। अिसलिअे यह आत्मबल का नया आधार खोजा गया। लेकिन अिस आत्मबल की राजनीति का क्या रूप होगा अिसका अुस समय किसी को पता नहीं था। पुरानी और नयी—दोनो पीढियों के राजनीतिज्ञों का यही खयाल था कि अिस राजनीति का विकास होते होते अन्त में अुसे शस्त्रबल का आधार लेना पडेगा और अुसमें से खून की नदियाँ बहने लगेंगी। पुरानी पीढी के राजनैतिक विचारकों को खून की नदियों के ये भीषण दृश्य देख कर डर लगने लगा और नयी पीढी के तरुणों को अुस भविष्य की कल्पना से अुल्लास और आशा होने लगी। आधुनिक यूरोप में जब जब राजनीति ने बुद्धिबल का आधार छोड़ दिया तब तब अुसे शस्त्रबल का ही आश्रय लेना पड़ा है। यह अैतिहासिक सत्य है। अिसलिअे यह स्वाभाविक ही था कि हिन्दुस्तान

में भी अुसी अितिहास की पुनरावृत्ति का डर या आशा हो। मनुष्य के पास बाहुबल या बुद्धिबल के अलावा तीसरा कोअी बल ही नहीं है—यह सिद्धान्त आधुनिक यूरोप ने रूढ़ किया है। अिस सिद्धान्त का खण्डन करके महात्मा गांधी, सत्याग्रह और भारतीय क्रान्ति को दुनिया पर यह प्रकट करना है कि अुक्त दोनों बलों से श्रेष्ठ आत्मबल मनुष्य में है और अुसके आधार के बिना मानवीय राजनीति तथा सभ्यता के प्रश्न हल नहीं हो सकते। भारतीय राजनीति बुद्धिबल का आधार छोड कर बाहुबल या शस्त्रबल पर अधिष्ठित होने के बदले आत्मबल पर अधिष्ठित हुअी है। अिसीलिअे आज अुसे अहिंसक क्रान्ति का जगदुद्धारक मंगल स्वरूप प्राप्त हुआ है।

शान्तिमय वातावरण की आवश्यकता

अिस राजनीति को आज स्वतंत्रता, स्वयं-निर्णय (आत्मनिर्णय) और विधानपंचायत (परिषद) का रूप प्राप्त हुआ है। विधानपरिषद की कल्पना नयी नहीं है। यूरोप में और अन्य देशों में जब जब राज्य-क्रान्तियाँ हुअीं तब तब पुराना विधान तोड़ कर नया विधान बनाने का कार्य करना पड़ा। अैसे संक्रमणकाल में ही विधानपंचायत की राजनीति जोर पकड़ती है। जब तक पुराने विधान के विकास द्वारा ही नये राजनैतिक सुधार अमल में आते रहते हैं तब तक सुधारवादी वैधानिक राजनीति का युग कायम रहता है। जब यह अनुभव होने लगता है कि अैसे सुधारवादी आन्दोलन से काम नहीं चल सकता और प्रचलित शासनविधान में आमूलाग्र परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, तब क्रान्तिवादी राजनीति का जन्म होता है। यह राज्यक्रान्ति लाठी के बल पर न हो कर न्याय के जोर से हो; अिस अभिप्राय से प्रजातंत्र के युग में विधानपंचायत की योजना निकाली गयी। ब्रिटेन में क्रॉमवेल की राज्यक्रान्ति, अमेरिका का स्वातंत्र्ययुद्ध, फरान्स की राज्यक्रान्ति, रूस की राज्यक्रान्ति, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणआफ्रिका आदि ब्रिटिश अुपनिवेशों की स्वराज्यप्राप्ति—आदि क्रान्तिकारक अवसरों में से विधानपरिषद की राजनीति का जन्म हुआ। तात्पर्य यह कि जबकभी पुराना शासनविधान जड़मूल से अुखाड़ कर अुसकी जगह नया शासन-विधान, नये सिद्धान्तों पर, कायम करने का अवसर आता है, तब प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार नया शासन विधान बनाने के लिअे विधानपरिषद कराने की परिपाटी प्रजातंत्र-युग में जारी हुअी है। लेकिन विधानपरिषद की राजनीति की सफलता के लिअे और नया शासनविधान प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार बनाने के लिअे परिवर्तन-काल में भी शान्ति का वायुमण्डल बनाये रखने की आवश्यकता होती है। पुरानी राज्यसंस्था नयी क्रान्तिकारक शक्ति से सम्मानपूर्ण समझौता कर ले और नये शासनविधान के निर्माण-काल में शान्तता का वायुमंडल कायम रखने में मदद दे; तथा नयी क्रान्तिकारक शक्ति भी शान्ति की वृत्ति रख कर पुरानी राज्यसंस्था से सन्मान-पूर्वक सहयोग करे; तभी तो शान्तता के वायुमंडल में नये शासनविधान का जन्म हो सकता है। अिसके विपरीत पुरानी सरकार नयी क्रान्तिशक्ति को कुचलने की अुद्दंड वृत्ति से ही काम ले, तो नयी क्रान्ति-शक्ति भीषण रक्तपाती रूप ले कर ही

जन्म लेती है। अैसे फौजी वायुमंण्डल में प्रजातन्त्र के निर्माण का विधानपरिषद का प्रयोग सफल नहीं हो सकता। जब पुरानी राज्य-संस्था अपनी अमलदारी का जमाना गुजर चुका यह समझ कर शान्तवृत्ति से अपने क्रिया-करम की तैयारी करती है और नयी क्रान्तिशक्ति भी निरंकुश फौजी वृत्ति के बदले शान्तता की सात्विक वृत्ति से ही काम लेती है, तभी नये प्रजातंत्र का निर्माण शान्ति से होता है, या हो सकता है।

विधान-परिषद की असफलता के कारण

क्रॉमवेल, नेपोलियन या लेनिन के जमाने में जो राज्यक्रान्तियाँ हुअीं अुस वक्त भी विधानपरिषदों की बात सोची गयी थी। लेकिन वे विधान-परिषदें सफल नहीं हुअीं। क्रॉमवेल के जमाने में ब्रिटिश पार्लमेंट ही विधानपरिषद बन गयी थी। लेकिन क्रॉमवेल ने अपने सिपाही ला कर अुसे तोड़ दिया। फरेंच राज्यक्रान्ति के वक्त भी विधानपरिषद ने प्रजातंत्र की स्थापना की। लेकिन आगे चल कर वहाँ के सामंतों ने बगावत की और विदेशी राजाओं की सहायता से फरासीसी लोकशाही का गला घोंटने के लिअे राक्षसी षड्यंत्र रचा। तब नेपोलियन को लोकशाही तोड़ कर अनियंत्रित फौजी शासन स्थापित करना पड़ा। रूस की राज्यक्रान्ति के समय ज़ारशाही ने आखिर तक समझौते का रुख न बतलाया। अिसलिअे देश में बेबंदशाही (अन्धाधुन्धी) का साम्राज्य फैल गया। अुसके बाद कैरेन्स्की की अमलदारी शुरू हुअी। अुसने भी यथा-समय वि।नपरिषद कराने के बदले देश की क्रान्तिशक्तियों को कुचलने के लिअे ब्रिटिश और फरासीसी पूंजीपतियों की गुलामी स्वीकार की। अुस वक्त देश में सर्वत्र चौपट-राज फैल गया। अैसी अराजकता और बेबन्दशाही के जमाने में जो विधान-परिषद हुअी थी वह बोल्शेव्हिकों ने तोड़ दी और अुन्होंने अपने ही दल की अनियंत्रित सत्ता स्थापित की। मतलब यह कि जब— जैसा कि प्रथम चार्ल्स, सोलहवें लुअी या ज़ार के दृष्टान्तों में पाया जाता है— पुरानी राज्यसंस्था आखिर तक क्रान्ति-शक्ति को कुचलने की आसुरी वृत्ति अपनाती है; और, क्रॉमवेल, नेपोलियन, या लेनिन के जमाने की नाअीं, देश का प्रस्थापित राज्ययंत्र टूट कर सब तरफ बेबन्दशाही फैल जाती है; तब विधानपरिषद का लोकशाही प्रयोग सफल होने की बजाय फौजशाही या अेकपक्षीय अनियंत्रित सत्ता कायम हो जाती है।

ब्रिटिश अुपनिवेशों का दृष्टान्त

अिसके विपरीत ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण आफ्रिका, आदि ब्रिटिश अुपनिवेशों को जब स्वराज्य मिला अुस वक्त पुरानी राज्य-संस्था न क्रान्तिशक्ति से सम्मानपूर्ण समझौता करके विधानपरिषद के छोटे प्रयोग सफल कर दिखाये— अैसे भी अुदाहरण अितिहास में पाये जाते हैं। अिन अुपनिवेशों में गोरे लोग बहुत थोड़े थे और अुन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि वहाँ के मूलनिवासी काले लोगों का अुनकी लोकशाही में कोअी स्थान नहीं रहेगा। अिसलिअे वहाँ की विधान-परिषदें बहुत छोटी थीं और अुनमें से जिस लोकशाही का जन्म हुआ वह अेक तरह से गोरों का आधिपत्य ही हो गया है। आयर्लैंड में भी अेक प्रकार की विधानपरिषद कायम कर दी गयी थी। दर असल तो वह

प्रस्थापित राज्ययंत्र को तोड़ कर स्थापित की हुअी लोकसभा ही थी। परंतु फिर भी अुसके प्रतिनिधियों से पार्लमेंट ने सुलह की और अुसके बाद शान्तता का वातावरण निर्माण हुआ। मतलब यह कि, जबकभी पुरानी राज्यसंस्था क्रान्तिशक्ति से समझौता करके अपना मृत्युसंस्कार और नयी लोकशाही का जन्मसंस्कार करने में हाथ बटाती है, तथा अुभय पक्ष शान्ति की रक्षा के प्रयत्न करते हैं; तबकहीं विधान-परिषद में से लोकशाही का जन्म होता है। परंतु जब जब पुरानी राज्यसंस्था या अुसके आश्रित आखिर तक क्रान्ति-शक्ति से लड़ने की कोशिश करते हैं; तब तब क्रान्ति सफल होने पर खून-खच्चर का, बेबन्दशाही का और बदअमली का दौर-दौरा होता है और विधान-परिषदें असफल होती हैं। फलतः देश में निरंकुश फौजी सत्ता, या अेक-पक्षीय सत्ता, कायम होती है। यह अितिहास का अनुभव कहा जा सकता है।

हमारी परिस्थिति की अनुकूलता

हिन्दुस्तान जैसे महाद्वीपप्राय देश में लोकशाही की स्थापना का प्रयोग जितना अपूर्व है अुतना ही अपूर्व अितने बड़े महाद्वीप-कल्प राष्ट्र पर अनियंत्रित विदेशी साम्राज्यशाही डेढ़सौ वर्षों तक कायम करने का ब्रिटिशों का प्रयोग भी अपूर्व ही है। अुसी प्रकार हिन्दुस्तान में आविर्भूत अहिंसक क्रान्तितंत्र (क्रान्तिकला) और सत्याग्रही तत्त्वज्ञान भी अपूर्व ही है। अुतनी ही अलौकिक महात्मा गांधी की विभूति और अुन्होंने अिन बीस वर्षों में अिस देश में जिस राजनीति का सूत्रपात किया वह राजनीति भी है। महात्मा गांधी के समान साधुवृत्ति का नेता संसार की किसी भी राज्यक्रान्ति के समय पैदा नहीं हुआ था और न लोकशाही की आधारभूत अहिंसावृत्ति भी किसी क्रान्ति-कारक के पास आविर्भूत हुअी थी। अतः विधानपरिषद की लोकशाही की स्थापना की राजनीति पूर्णरूप से सफल होने के लिअे वर्तमान भरतखंड में जितना सुयोग है अुतना पहले कभी किसी देश में नहीं था। विधान-परिषदों की राजनीति अिसके पूर्व अनेक राज्य-क्रान्तियों के समय पर असफल हुअी। तो भी हिन्दुस्तान में वह सफल होगी अैसी आशा का प्रधान कारण महात्मा गांधी का अलौकिक विभूतिमत्व तथा सत्याग्रह का अपूर्व क्रान्ति-शास्त्र ही है। यही वजह है कि भारतीय राजनीति बुद्धिबल का आधार छोड़ देने के बाद शस्त्रबल का आधार लेने के बदले आत्मबल का आधार ले कर विकसित होने लगी।

विधानपरिषद और सौत्रामणि यज्ञ

प्राचीन भारत में पुराने राजा को गद्दी से अुतार कर नये राजा को अभिषिक्त करने के लिअे सौत्रामणि नामक यज्ञ किया जाता था। अिस सौत्रामणि यज्ञ का नेतृत्व तत्कालीन अृषिवर्ग या यतिवर्ग करता था। आधुनिक यूरोप से निकली हुअी विधान-परिषद की क्रान्तिकारी योजना भी अिस सौत्रामणि यज्ञ का ही आधुनिक रूप है। परंतु आधुनिक यूरोप ने अिस घातक सिद्धान्त का स्वीकार किया कि धर्म और अध्यात्म का राजकाज से कोअी संबंध नहीं है। अतः वहां क्रान्तिकारक राजनीति ने सौत्रामणि यज्ञ का धार्मिक तथा शान्तिमय रूप लेने के बदले रक्तपात का राक्षसी रूप धारण किया। राक्षसी हिंसा-वृत्ति धर्मवृत्ति अेवं यज्ञसंस्था से असंगत

है। अिसलिअे आधुनिक यूरोप के अितिहास में अनियंत्रित राजसत्ता और सशस्त्र क्रान्ति-शक्ति के गजग्राह (खींचातानी) में विधान परिषदों का सौत्रामणि यज्ञ राक्षसी शक्तियों द्वारा अुध्वस्त किया गया है। लेकिन महात्मा गांधी ने आधुनिक भारत में जो क्रान्ति-शक्ति निर्माण की है अुसमें यह यज्ञ-विध्वंसक वृत्ति नहीं है। अुसमें तो प्राचीन ॠषिवर्ग की धार्मिक और आध्यात्मिक वृत्ति प्रकट हुअी है।

हिंसाप्रधान राजनीति और लोभमूलक अर्थनीति

आधुनिक यूरोप में जिस समय लोकशाही अुत्पन्न हुअी अुसी समय राजनीति और अर्थनीति का धर्म अेवं अध्यात्म से रिश्ता तोड़ दिया गया। अिसलिअे वहां की संस्कृति को हिंसा तथा लोभ का आधार मिलता गया। राजनीति में हिंसा और अर्थनीति में लोभ का प्राधान्य होने लगा। अिसलिअे यूरोप के राष्ट्रवाद में से धनिकशाही (पूंजीशाही) पैदा हुअी। अिस साम्राज्यशाही के प्रतिकार में से भारतीय राष्ट्रवाद अुत्पन्न हुआ है और ब्रिटिश धनिक-शाही के प्रतिकार में से भारतीय अर्थनीति का जन्म हुआ है। अतः महात्मा गांधी यह कहते हैं कि भारतीय राजनीति तथा अर्थनीति हिंसा और लोभ का आधार न ले। सत्याग्रही राजनीति का आधार अहिंसा और सत्याग्रही अर्थनीति का आधार अपरिग्रह है। अहिंसा और अपरिग्रह की नींव पर नयी मानवीय संस्कृति निर्माण करने का प्रयत्न महात्मा गांधी कर रहे हैं। अहिंसा के आधार पर ही वास्तविक लोकशाही का निर्माण हो सकता है, यह महात्मा गांधी का दृढ विश्वास है। अिसीलिअे अुन्होंने अपने क्रान्तिशास्त्र को अहिंसा का रूप दिया है और वे अिस बात की निरंतर चेष्टा कर रहे हैं कि विधानपरिषद के अवसर पर प्राचीन सौत्रामणि यज्ञ के समान शान्ति, धर्म और अध्यात्म का वायुमण्डल कायम हो।

विधानपरिषद के शत्रु और मित्र

हिंसामय और लोभप्रधान पाश्चात्य संस्कृति ने जिनकी दृष्टि को मंत्रमुग्ध कर दिया है, अुन्हें यह डर या आशा है कि विधानपरिषद के अधिवेशन के वक्त रक्त-पात होगा और रूस के समान अिस देश में भी वह तोड़ दी जायगी। जिन्हें यह डर है वे विधानवादी आन्दोलन पर कायम रह कर अपने विधान का निर्णय ब्रिटिश लोगों को सौंपने के लिअे तैयार हैं। अिसके विपरीत जिन लोगों को विधानपरिषद तोड़ कर लेनिन की राजनीति का आरंभ करने की आशा है वे केवल अेक रण-घोष (स्लोगन) के तौर पर विधान परिषद का समर्थन करना चाहते हैं। परंतु महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलालजी जैसे लोकशाही के सच्चे समर्थक विधानपरिषद केवल अहिंसक क्रान्ति के काल में ही सफल हो सकती है यह जान कर, अहिंसक क्रान्ति की नीति का सच्चे दिल से अनुसरण कर रहे हैं। लोकशाही राज्यपद्धति अहिंसावादियों की समझ में आसानी से आ सकती है। क्योंकि वह अहिंसा की पोषक है। अुसी तरह अहिंसावादियों की समझ में विधानपरिषद की राजनीति भी सहज में आ सकती है। क्योंकि लोकशाही के आरंभ का और साम्राज्यशाही के विनाश का वही अेकमात्र अहिंसक मार्ग है। जो यह क्रान्ति नहीं चाहते, अथवा जिनकी यह दृढ़ धारणा है कि वह हिंसा के सिवा हो ही

नहीं सकती, वे विधानपरिषद का समर्थन बुद्धिपूर्वक कर ही नहीं सकते। अिनमें से पहले अुसे गोलमेजपरिषद का विधानवादी रूप देने की कोशिश करते हैं और दूसरे अुसे यथासमय तोड़ने की ताक में हैं। अिस प्रकार पहले अपनी विधानवादी वृत्ति के कारण और दूसरे सशस्त्र क्रान्तिवाद के कारण विधानपरिषद के कट्टर और वास्तविक शत्रु हो जाते हैं। परंतु केवल अहिंसक क्रान्ति-कारक ही विधानपरिषद के सच्चे पुरस्कर्ता हैं। अुनकी अिस निष्ठा का आधार सत्य और अहिंसा में अुनकी अटल श्रद्धा है। वर्तमान भारतीय राजनीति की बागडोर अिन्हीं अहिंसक क्रान्तिकारियों के हाथ में है। अिसीलिअे यह दृढ़ आशा है कि यहां की विधानपरिषद प्राचीन भारत के सोत्रामणि यज्ञ का धार्मिक रूप लेगी और आधुनिक भारत में अहिंसा की नींव पर लोकशाही के शुद्ध रूप का निर्माण होगा।

विरोधियों के तीन वर्ग

यह स्वाभाविक है कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही हमारी राष्ट्रीय विधानपरिषद की तथा भारतीय राष्ट्रीयता अेवं लोकशाही की कट्टर दुश्मन हो। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यशाही केवल अपने बल अिस देश में राज नहीं कर सकती। अुसने अपने मायावी मोहक रूप की बदौलत अपने अनेक मित्र बना लिये हैं। अुसके ये मित्र विधानवादी राजनैतिक तत्त्वज्ञान से मुग्ध नरमदलवाले और साम्राज्य सत्ता के रोब और दबदबे से भयभीत देशी नरेश, तथा ब्रिटिशों की कुटिल नीति के लोभ अेवं अज्ञान के शिकार बने हुअे जातिनिष्ठ, धर्म-निष्ठ तथा धननिष्ठ नेता हैं। विधानपरिषद के विरोध के अिन तीन वर्गों के अलग अलग कारण हैं। मगर फिर भी, अुन सबके विरोध का अेक सामान्य मूल कारण यह है कि वे अैसा समझते हैं कि जबतक हिन्दुस्तान की सार्वभौम सत्ता ब्रिटिश लोगों के हाथ में रहेगी तभी तक अुनकी संपत्ति और सत्ता अबाधित रहेगी। नरमदल की राजनीति का अन्तिम ध्येय ब्रिटिश साम्राज्य-शाही की चौखट से बाहर जा ही नहीं सकता। भारतीय राजकाज की अन्तिम निर्णायक सार्वभौम सत्ता अिंग्लैंड से हिन्दुस्तान में लाने की क्रान्तिकारी राजनीति अुनकी परंपरागत विचारप्रणाली में बैठ ही नहीं सकती। देशी नरेश और पूंजीपति अपनी सत्ता और संपत्ति की लालच से, और भारतीय लोक-शाही के डर से, साम्राज्यसत्ता के दोस्त बन गये हैं। अगर अुन्हें यह विश्वास होता कि क्रान्ति के बाद अिस देश में सामंतशाही और धनिकशाही स्थापित होगी तो ये वर्ग भी क्रान्तिकारी राजनीति में शामिल हो जाते और विधानपरिषद पर अपना कबजा जमा कर या अुसे तोड़ कर अपनी अनि-यंत्रित सत्ता अिस देश में कायम करते। परंतु यहाँ की सामन्तशाही और पूंजीशाही में न तो अितना आत्मविश्वास है और न अितना नेतृत्व-कौशल्य, या अितनी कर्तृत्वशक्ति। अिसलिअे अुन्हें ब्रिटिश लोगों की अपेक्षा विधान-परिषद से अधिक डर लगता है। ये दोनों वर्ग सच्ची विधानपरिषद का विरोध अवश्य करेंगे।

सामन्त और पूंजीपति

परंतु अिस सामन्त और पूंजिपतियों के वर्ग में भी जो दूरदर्शी हैं अुन्हें यह विरोध छोड़ देना ही अुचित है। क्योंकि यदि वे

वैसा न करेंगे तो अन्त में अुन्हें भारतीय जनता का रोष सहन करना पड़ेगा। अिसलिअे अुन्हें चाहिअे कि वे अिस समय जनता से द्रोह करके साम्राज्यसत्ता का आश्रय न ले कर हिन्दी लोकशाही की बढ़ती हुअी शक्ति के साथ, अगर सहयोग नहीं तो कम-से-कम, अविरोध का व्यवहार करें। अिसीमें दूरदर्शिता है। अिसके अलावा वर्तमान भारतीय क्रान्तिशक्ति अनत्याचारी होने से अुनके वर्ग का सम्पूर्ण निःपात करने की नीति भी अुसने अख्त्यार नहीं की है। और फिर, जिस साम्राज्यसत्ता के बल, वे भारतीय लोकशाही का विरोध करना चाहते हैं वह साम्राज्यसत्ता ही सांप्रत क्षीण हो रही है। अिसलिअे यह जान कर कि ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता अस्ताचल की ओर जा रही है, अुन्हें दूरदृष्टि से अिस देश में अुदीयमान नयी सार्वभौम सत्ता से सहयोग करना चाहिअे। कम-से-कम अुससे झगड़ा तो मोल नहीं लेना चाहिअे। अितनी दूरदृष्टि कुछ पूंजीपतियों को भले ही प्राप्त हो जावे; लेकिन सामन्तों और देशी राजाओं को अज्ञान तथा अनीति ने अितना घेर लिया है कि अुन्हें अितनी दूरदृष्टि प्राप्त होना असंभव-सा प्रतीत होता है। अुन्हें दूरदृष्टि प्राप्त होने के लिअे ब्रिटिश रेसिडेन्ट और अधिकारियों को ही अुनके गले यह बात अुतारनी चाहिअे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ लोभी और स्वार्थी होते हुअे भी अन्धे नहीं हैं। अिसलिअे वे अपना भीषण भविष्य जितना जल्दी देख सकते हैं अुतना अुनके अुक्त मित्र नहीं देख सकते। अिसलिअे "हमारे अिन मित्रों से हमें बचा"—अैसी प्रार्थना भगवान से करने की नौबत ब्रिटिश राजनीतिज्ञों पर जल्दी ही आनेवाली है। परंतु यह तभी हो सकता है जबकि हर असल ब्रिटिश राजनीतिज्ञ स्वार्थ और लोभ से अन्धे न हो गये हों। मौजूदा चेंबरलेन-मंत्रिमंडल और भारत-सचिव लॉर्ड झेटलैंड देशी नरेशों के समान अन्धे भले ही न हों, लेकिन फिर भी, संसार के अदूरदृष्टि और स्वार्थान्ध राजनीतिज्ञों में अुनका अनुक्रमांक (नम्बर) काफी अपर लगेगा। अिस कारण जब तक भारतीय जनता सत्याग्रह की अग्निपरीक्षा में से अुत्तीर्ण हो कर अपना आत्मतेज प्रकट नहीं करती तब तक अुनके दिमाग में अपने भविष्य का प्रकाश पड़ने की बहुत कम संभावना है। •

धर्मनिष्ठ और जातिनिष्ठ नेता

अब धर्मनिष्ठ और जातिनिष्ठ नेता और अुनकी दलबन्दियों का विचार करें। हिन्दुस्तान में धर्म और जातियाँ हजारों साल से हैं। लेकिन लोकशाही के राजकाज में जातिनिष्ठ पृथक्-निर्वाचन-क्षेत्र बना कर राष्ट्रभावना छिन्न-भिन्न करने की तरकीब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के ही दिमाग की अुपज है। अिन भिन्न निर्वाचिनक्षेत्रों की मदद से राजनिष्ठ राजनीति निर्माण करके राष्ट्रीय लोकशाही की प्रभावी राजनीति को शिकस्त देने की चाल ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने मोर्ले-मिण्टो सुधारों के जमाने से ही शुरू की थी। मॉण्टफोर्ड सुधारों के बाद अिस चाल ने जोर पकड़ा और दक्षिण में ब्राह्मणेतर पक्ष तथा अुत्तर में मुसलमानों के आन्दोलन को बल मिला। अिस प्रकार कॉंग्रेस की राजनीति पर हमले किये गये। अिसी नमूने पर अस्पृश्यों की राजनीति डॉ० अम्बेडकर आदि नेताओं ने शुरू की। आज ब्राह्मणेत्तर आन्दोलन अपना अराष्ट्रीय रूप छोड़ कर कॉंग्रेस-निष्ठ हो गया

है। मुसलमानों में भी अेक राष्ट्रीय पक्ष बन गया है और कांग्रेस में लाखों मुसलमान शामिल हुअे हैं। कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में हजारों मुसलमान जेल जाने को भी तैयार हो सकते हैं यह भी साबित हो चुका है। अितना ही नहीं, बल्कि सरहद्द प्रान्त और सिंध जैसे दर असल मुसलमानी प्रान्तों में मुसलमान जनता ने कांग्रेस का समर्थन किया। अिसलिअे मुस्लिम लीग की हालत धीरे धीरे पुराने ब्राह्मणेतर पक्ष जैसी और बैरिस्टर जीन्ना की हालत अ-राष्ट्रीय ब्राह्मणेतर नेताओं जैसी होने लगेगी। तो भी मुस्लिम लीग ही अकेली मुसलमानों की प्रतिनिधि है, अैसा बैरिस्टर जीन्ना दावा करते हैं। और ब्रिटिश सरकार भी लोगों को अुसी भ्रम में डालना चाहती है। दर असल तो जातिनिष्ठ नेताओं की राजनीति नरमदल की नीति का ही बिगड़ा हुआ रूप है। क्रान्तिकारी राजनीति जिन लोगों की ताकत से परे है, लेकिन सिर्फ नरमदल की नीति के आधार पर जो लोग साधारण जनता की व्होट प्राप्त नहीं कर सकते, अुन्होंने नरमदल की विधानवादी राजनीति पर धर्मनिष्ठा और जातिनिष्ठा का रोगन चढ़ा-कर अेक नयी राजनीति का भ्रम फैलाया है। लोकमान्य तिलक ने नरमदल की नीति के बारह बजा दिये। अुसके बाद अुसके लिअे अपने पुराने नरम और साम्राज्यनिष्ठ रूप में जीवित रहना असम्भव हो गया। अिसलिअे लोकशाही के जमाने में अज्ञान जनता को परंपरागत जातिनिष्ठा और धर्मनिष्ठा के फेर में डाल कर साम्राज्य-सत्ता की मदद करने के लिअे यह नयी राजनीति अवतीर्ण हुअी है। अिन बीस वर्षों में अिस धर्मनिष्ठ और जातिनिष्ठ राजनीति को बढ़ावा दे कर भारतीय लोकशाही पर आक्रमण करने की नीति ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अख्त्यार की। गोलमेज परिषद में यह नीति अपनी चरम सीमा को पहुंची। तब से भारतीय राजनीति में गोलमेज परिषद अेक मज़ाक की बात हो गअी है। हिन्दु-स्तानियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की पर्वाह न करते हुअे सभी दलों के दाँत खट्टे करने की हिकमत का नाम गोलमेज परिषद—अैसा अुसका अर्थ भारतीय राजनैतिक कोष में दर्ज हो चुका है।

अिसके बाद विधान परिषद की क्रान्ति-कारी राजनीति का आरंभ हुआ। अुसका अहिंसक रूप जान कर महात्मा गांधी ने अुसकी सिद्धि के लिअे अपना सारा आत्म-बल लगा देने का निश्चय किया। अिस विधान-परिषद में जनता के सच्चे प्रतिनिधि ही आवें अिस मनशा से अुसका चुनाव सार्वत्रिक मतदान के अधिकार से हो और अल्प-संख्यक जमातों के हित की रक्षा होने के लिअे अुन्हें, जहां मुमकिन हो, अलग निर्वाचन की सुविधा दी जावे, अैसी योजना की गयी है। लेकिन अैसे सार्वत्रिक मतदान से निर्वाचित प्रतिनिधियों में अपनी कोअी हस्ती नहीं रहेगी यह जान कर जातिनिष्ठ और धर्म-निष्ठ नेताओं ने तथा अुनके दलों ने विधान-परिषद की योजना का विरोध करना शुरू किया है। अपना विरोध सफल करने के लिअे बैरिस्टर जीन्ना और डॉ० अम्बेडकर अेक हो गये और कुछ हिन्दूसभा भक्त भी अुन में शामिल हो गये हैं। अिनमें से कोअी भी यह नहीं मानता कि वे जनता के विश्वास-पात्र हैं। अिसलिअे अुन्हें यह

विश्वास नहीं है कि वे और अुनके दल विधानपरिषद में बडी संख्या में आ सकेंगे।

लेकिन ये जातिनिष्ठ नेता केवल विधानपरिषद के ही विरोधी नहीं हैं। वरन् अुन्हें लोकशाही का यह मौलिक सिद्धान्त भी मान्य नहीं है कि भारतीय स्वराज्य में बहुसंख्य दल का मन्त्रिमंडल हो, और वह अेक-पक्षीय हो। अिसलिअे अिन जातिनिष्ठ दलों ने यह शिकायत करना शुरू किया है कि कॉंग्रेस ने अेक-पक्षीय मंत्रिमंडल बना कर अुन पर बड़ा जुल्म ढाया। अिस चिल्लाहट में नरमदलवाले और लोकशाही स्वराज्य-पक्षवाले भी कभी कभी अपनी आवाज मिला देते हैं। अिस प्रकार कॉंग्रेस-विरोधी सारे विधानवादी नरमदल विधानपरिषद के खिलाफ़ हैं।

दूसरे प्रकार के विरोधी

अिसके विपरीत जिनकी यह श्रद्धा है कि महात्मा गांधी की अहिंसक क्रान्ति कभी यशस्वी हो ही नहीं सकती, वे फिलहाल विधानपरिषद की घोषणा का अुपयोग क्रान्तिकारी परिस्थिति निर्माण करने के लिअे तथा साम्राज्यसत्ता नष्ट करने के लिअे भले ही कर रहे हों, तो भी अुचित अवसर आते ही विधानपरिषद तोड़ कर मजदूर और किसानों की ओर से अेक-वर्गीय अनियंत्रित सत्ता स्थापित करने के विचार क्रान्तिकारियों के दिमाग में चक्कर लगा रहे हों तो कोअी ताज्जुब नहीं। विधानपरिषद के ये दो प्रकार के विरोधक हैं। लेकिन अुन दोनों को दोष न देते हुअे अपनी अहिंसात्मक राजनीति सफल कर दिखाने की हिंमत कॉंग्रेस आज कर रही है।

आत्मबल की कार्यक्षमता

अिन बीस वर्षों में भारतीय जनता का आत्मबल संगठित करके अुसके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य को प्रभावित करने का महत्कार्य महात्मा गांधी ने किया है। अगर आज हिन्दुस्तान में अैसी कोअी ताकत है जिसका कि ब्रिटिश साम्राज्यसत्ता पर असर होता है, तो वह सत्याग्रही कॉंग्रेस की ही ताकत है, अिसमें कोअी शक नहीं रहा। यहाँ की जनता अब यह भी भली-भांति समझ चुकी है कि अैसी प्रभावी शक्ति के बिना किसी भी प्रकार की राजनीति सफल नहीं हो सकती; और यह कि अुसकी सर्वांगीण अुन्नति में साम्राज्यसत्ता ही बाधक हो रही है। अिसीलिअे सभी जातियों और धर्मों की साधारण जनता कॉंग्रेस की हिमायती हो रही है। फलतः जातिनिष्ठ नेता और अुनकी जात की जनता का अेक दूसरे से विच्छेद हो रहा है और दिन-पर-दिन यह वस्तु-स्थिति प्रकट हो रही है कि ये नेता अुन जातियों या धर्मों के नेता नहीं हैं। वरन् अुन जातियों में या धर्मों में जो लोग साम्राज्य-शाही के आश्रित हैं अुनके नेता हैं। अैसे नेताओं को हिन्दुस्तान में नेतृत्व या मंत्रि-पद प्राप्त नहीं होगा अिस डर से वे कॉंग्रेस की विधानपरिषद का अर्थात भारतीय जनता की स्वतंत्रता और स्वयंनिर्णय का विरोध कर रहे हैं—यह बात अब हलके हलके समझदार लोगों के ध्यान में आने लगी है।

साम्राज्यशाही का अन्त निकट है

लेकिन साम्राज्यशाही के अिन आश्रितों के ध्यान में अेक बात आज भी नहीं आ रही है। वह यह कि अब ब्रिटिश साम्राज्यशाही

के अवसान की घड़ी बिलकुल समीप आ गयी है और हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सत्ता का सार्वभौमत्व टिकना असंभव हो गया है। ब्रिटिश साम्राज्य, यूरोप की श्रेष्ठता और महाजनी संस्कृति के दिन अब लद चुके हैं। संसार में अेक सांस्कृतिक क्रान्ति अवश्यंभावी है। अिस बात का ज्ञान हमारे नरमदल वाले राजनीतिज्ञों, देशी नरेशों, सामन्तों और पूंजी-पतियों तथा जातिनिष्ठ अेवं धर्मनिष्ठ नेताओं को करा देना आवश्यक है। ये सब ब्रिटिश साम्राज्यसत्ता के आश्रित और भक्त हैं; अिस-लिअे अुन्हें यह ज्ञान करा देने की जिम्मेवारी अुसी सत्ता की है। अब साम्राज्यवादियों को चाहिअे कि वे अपनी मृत्यु की घड़ी की समीपता देख कर अपना मृत्युपत्र बनाने की और अपने क्रियाकर्म की यथाविधि तैयारी करने की हिम्मत दिखावें। जो लोग मृत्युपत्र और क्रियाकर्म की तैयारी में रुकावट करते हैं वे यह नहीं जानते कि केवल मृत्युपत्र या क्रियाकर्म की तैयारी रोक देने से वे साम्राज्यशाही की मृत्यु टाल नहीं सकते। लेकिन आसक्ति और मोह से अन्धे हो कर जो आगे की सोच नहीं सकते अुनकी मृत्यु, बिना मृत्युपत्र के होती है और क्रियाकर्म भी यथाविधि नहीं हो पाता। आगे अुनके वारिसों में झगड़े-झमेले होते हैं और अन्त में अेक की मृत्यु के बाद दूसरों को भी मारपीट या भूख से मरने की नौबत आती है। अिस भावी संकट को टालने के लिअे मुमूर्षु व्यक्ति के हितैषी मित्र अुससे वसीयतनामा लिखा लेते हैं। महात्मा गांधी भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से यही तकाजा कर रहे हैं और अुनसे बड़े प्रेम से अनुरोध कर रहे हैं कि 'अपना वसीयतनामा लिखो और भविष्य के लिअे कुछ अिन्तजाम कर जाओ'। लेकिन अुनकी यह प्रेम की बात अब तक चेंबरलेन, झेटलेंड प्रभृति ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के गले नहीं अुतरती। अतः अुनकी दृष्टि शुद्ध करने के लिअे सत्याग्रह-संग्राम करके स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करने का निश्चय कॉंग्रेस को करना पड़ा है। जहां ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की दृष्टि में परिवर्तन हुआ और अुन्होंने विधानपरिषद को अपनी सम्मति दे दी कि विधानपरिषद के सारे विरोधियों का विरोध अपने आप हवा हो जायगा। ब्रिटिश राज-नीतिज्ञों को अपनी साम्राज्यशाही का अन्त अब दिखायी देने लगा है। अब अितना ही बाकी है कि वे अपने आश्रितों को अपने अुत्तराधिकारियों के पास जा कर अपना अपना प्रबन्ध कर लेने की हिदायत दे दें।

सार्वभौम-सत्ता का अुत्तराधिकार

ब्रिटिश साम्राज्यशाही की सत्ता का अुत्तरा-धिकार भारतीय लोकशाही का ही हो सकता है, न कि साम्राज्यशाही के आश्रितों का। क्योंकि अिन आश्रितों में से किसी भी अेक में, या अनेकों में, भारतीय जनता का राजकाज चलने की ताकत या अक्ल नहीं है। अगर अुनमें यह ताकत होती तो भारत का सार्वभौमत्व ब्रिटिशों के हाथों में न गया होता और अगर गया भी होता तो अुसे वापस लेने की कोशिश ये सर्वप्रथम करते। परंतु ब्रिटिशलोग सार्वभौम सत्ताधीश हुअे और अुनके सार्वभौमत्व की जड़ें हिलाने का कार्य सत्याग्रही भारतीय जनता ने ही किया है। अब यह जनता ब्रिटिशों के बाद यहां की सार्वभौम सत्ता होगी अिसके विषय में कोअी सन्देह नहीं। केवल साम्राज्यशाही के

आश्रित हो यह बात मानने से अिनकार करते हैं। लेकिन जब खुद साम्राज्यसत्ता ही अपना मृत्युपत्र बनायेगी और यह घोषित करेगी कि आअिन्दा भारत में लोकशाही की ही सार्वभौमसत्ता रहेगी; तब अिन आश्रितों को भी विश्वास होगा और फिर वे विधान-परिषद का विरोध करने से बाज आयेंगे।

अभिनव मानव-संस्कृति का निर्माण

अिस प्रकार भारतीय क्रान्ति यदि सत्याग्रह द्वारा सफल होगी तो यहाँ अेक अभिनव मानव-संस्कृति का निर्माण होगा और आधुनिक यूरोप में अुत्पन्न व्यक्तिस्वातंत्र्य, राष्ट्रस्वातंत्र्य, सामाजिक और आर्थिक समता तथा लोकसत्ता और समाजसत्ता को सत्य-निष्ठा तथा अहिंसा का अधिष्ठान प्राप्त होगा। धर्म और अध्यात्म का आधार छोड़ कर राजनीति और अर्थनीति का निर्माण करने से कौन-सी अनर्थ परंपरा आ पड़ती है यह यूरोप के विनाश के बाद सारी दुनिया पर प्रकट हो जायगा। तब आधुनिक यूरोप में अुपजी हुअी अर्थ-काम-प्रधान संस्कृति नष्ट हो कर धर्म-मोक्ष-प्रधान अभिनव संस्कृति की दीक्षा संसार को देने का कार्य सत्याग्रही भरतखंड शुरू करेगा। लेकिन यह सब तभी होगा जब सारे भारतनिवासी अेक निष्ठा से और अनुशासनपूर्वक तथा सच्चे दिल से महात्मा गांधी का नेतृत्व स्वीकार करेंगे।

(मराठी 'चित्रमय जगत्', जनवरी १९४०)

अन्तिम विजय का अधिकारी

परन्तु अुस भावी युग का आरंभ हो चुका है जब कि शस्त्रास्त्रों से लैस व्यक्ति के सामने निःशस्त्र व्यक्ति निर्भीकता से खड़ा होगा। अुस दिन विजय अुसकी नहीं होगी जो कत्ल कर सकता है बल्कि अुसकी जिसे मरना मंजूर है। जो दुःख देता है अुसकी हार होगी, और जो कष्ट सहन कर सकता है, अुसीको अन्तिम विजय प्राप्त होगी। स्थूल बल का सामना आत्मबल से करता हुआ मनुष्य यह घोषित करेगा कि अब वह हैवान नहीं रहा; बल्कि प्राकृतिक निर्वाचिन की सीमाओं को पार कर चुका है। अिन महान् सत्यों को प्रमाणित करने का कर्तव्य और दायित्व हमें सौंपा गया है।

"मॉडर्न रिव्यू"
जनवरी १९४०

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कातने की शर्त क्यों ?

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

यह सब स्वातंत्र्य-प्रेमी लोग चाहते हैं कि हमारे देश में हमारा ही राज हो और अुसके लिअे जोर का आन्दोलन हो। "१९३०-३२ के जैसा कोअी और का आन्दोलन कब शुरू होगा?"—अिसके लिअे बहुत-से कॉग्रेसवादी बेचन हो अुठे हैं। कुछ स्वातंत्र्यभक्त गांधीजी पर अिसीलिअे नाराज भी हैं कि वे जल्दी आन्दोलन शुरू करने के बदले हम पर खादी पहनने की और चरखा चलाने की शर्त लादते है। दरिद्रता दूर करने में खादी का तात्कालिक अुपयोग हो सकता है—अिस दृष्टि से कअी लोग खादी के विषय में गांधीजी का आग्रह समझ सकते हैं; और सही भी मानते हैं। लेकिन हर अेक से यह अुम्मीद करना कि वह काते—यह बात बहुत-से नेताओं की भी समझ में नहीं आती; न वे यह भी समझ सकते हैं कि खादी पहनने और कातने से अंग्रेजी राज को नष्ट करने के प्रयत्न का क्या संबंध हो सकता है। मुख्य सवाल तो यह है कि "क्या अंग्रेज सरकार से लड़ने के लिअे गांधीजी के नेतृत्व की हमें जरूरत है अिसीलिअे हम कातें?—या दर असल कातने का स्वराज्य से कोअी जरूरी संबंध है अिसलिअे गांधीजी अिस तरह की शर्त पर जोर देते हैं?"

संपूर्ण-स्वराज्य-वादियों को अितना तो मानना ही पड़ेगा कि पूर्ण-स्वराज्य के रूप में देश को जो स्थिति प्राप्त होगी वह स्थायी होनी चाहिअे और देश के लिअे वह अेक संपत्ति के रूप में आनी चाहिअे, न कि विपत्ति के रूप में। देश में अितनी ताकत पैदा होनी चाहिअे कि अंग्रेजी राज्य का बंधन टूट जाने पर हम किसी दूसरे देश के गुलाम न हो सकें या देश में दंगा-फसाद, बगावत और बलवों की धूम मच कर निरंतर यादवी (भीतरी कलह) पैदा होने का डर न रहे। जिन्हें यह ध्येय मान्य है वे यह भी मानेंगे कि स्वराज्य-प्राप्ति का साधन अहिंसक ही होना आवश्यक है।

हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिअे कि हमारी गुलामी का सब से पहला कारण हमारे अन्दर पैदा हुअी खराबियाँ हैं। महत्त्वाकांक्षी विदेशियों द्वारा हराये जाने के पहले ही हम अपनी बुराअियों के सबब से पराजय के लायक बन गये थे। अिन दोषों में से सबसे बड़ा दोष है—व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा। सदियों से हमारी संस्कृति ने हममें अेक अैसी वृत्ति पैदा कर दी है कि जिस व्यक्ति में कोअी विशेष पुरुषार्थ या शक्ति हो वह केवल अपने, या अपने कुछ अिने-गिने अनुयायियों के, ही हित की फिक्र करता है। अपना अेक छोटा-सा मंडल, संप्रदाय, आश्रम या राज्य कायम कर अुसका सर्वेसर्वा बनने की और अिस अुद्देश्य से, जिस राज्य या संस्था का वह पहले से अेक अंग रहा हो, अुस राज्य या संस्था को तोड़ने या कमजोर करने की प्रवृत्ति हमारे देश में कअी शताब्दियों से पायी जाती है। यह वृत्ति आध्यात्मिक वृत्तिवाले और भौतिक वृत्ति वाले—दोनों तरह के लोगों में पायी जाती है। हमारी विशेष शक्ति जड़ को मजबूत करने की कोशिश करने के बदले अुससे अलग होने की ही कोशिश में खर्च होती है। अगर हम अपने देश का अितिहास

देखें और हमारी प्रगति में रुकावट करने-वाले कारणों का विचार करें तो मालूम होगा कि हमारे पराजय का यही मूल कारण है। यह भेद हिन्दू और मुसलमान दोनों जमातों में है। जब तक यह विकार मौजूद है तब तक स्थायी और सुखमय स्वराज्य की स्थापना असंभव है।

मतलब यह कि, राज्यक्रान्ति की सफलता के लिये हमारे जनस्वभाव में क्रान्ति होना जरूरी है। स्वभावक्रान्ति केवल प्रवचन, अुपदेश, वक्तृता, साहित्य, गीत, आदि से नहीं होती। अिन साधनों से अुसकी भूमिका तैयार हो जाती है। लेकिन तैयार की हुअी जमीन में भी तो बिना अच्छा बीज बोये फल नहीं मिलता। वह बीज है—नये विचारों के साथ अुन विचारों के अनुरूप कर्म का अभ्यासयोग।

हम सब 'हमारा देश', अिन शब्दों का प्रयोग करते हैं। लेकिन 'देश' शब्द का अर्थ राजशाही (राजकीय) दृष्टि से और लोकशाही (प्रजाकीय) दृष्टि से बिलकुल भिन्न होता है। राजशाही (राज-वादी) दृष्टि से 'देश' शब्द का अर्थ है—पृथ्वी का अेक खास भौगोलिक विभाग। अिस दृष्टि से हिन्दुस्तान, काश्मीर से कन्याकुमारी तक और सरहद्द प्रान्त से आसाम तक का भूमिभाग है। अिस भूमिभाग पर जिस-किसी की सत्ता हो अुसीका वहाँ राज्य कहा जाता है।

परन्तु लोकशाही (प्रजावाद) की दृष्टि से 'देश' शब्द का अर्थ अितना संकीर्ण नहीं होता। अिस दृष्टि से 'देश' शब्द का अर्थ है—हिन्दुस्तान की पैंतीस करोड़ जनता। जिस व्यवस्था से अुस जनता का कल्याण होगा अुसीको स्वराज्य कहना चाहिये।

'हमारा देश' कहते ही अगर हमारी दृष्टि के सामने सिर्फ हिन्दुस्तान का नकशा और अुसमें अेक देवी की प्रतिमा ही आती हो, और अुसके प्रति हमारा हृदय भक्ति से अुमड़ आता हो, तो वह राजशाही (राजदृष्टि) के अनुरूप देशभक्ति है। अितनी भक्ति स्थायी और सुखमय स्वराज्य की स्थापना के लिये काफी नहीं है। 'हमारा देश' कहते ही हमारी आंखों के सामने पैंतीस करोड़ हिन्दुस्तानी जनता का चित्र खड़ा होना चाहिये। अनेक जातियाँ, भाषा, धर्म, धन्धे, संस्कार आदि से युक्त महान हिन्दु-स्तानी जन-सागर ही दर असल हिन्दुस्तान देश है; और अुसके हित की व्यवस्था ही स्वराज्य है।

अब, पैंतीस करोड़ जनता का चित्र आंखों के सामने आने के लिये अेक खास दृष्टि चाहिये। अगर वह दृष्टि न हो तो 'हमारे देश के लोग' कहने पर भी हमारे दिल में अुन शब्दों का बहुत ही संकीर्ण अर्थ आयेगा। हमने अक्सर कभी देहातियों को यह कहते सुना है कि फलानी बात 'सारी दुनिया' में फैल गयी है। लेकिन जरा गहराअी से देखने पर पता चलता है कि अुनकी 'सारी दुनिया' अुनका अपना गांव, या बहुत तो आसपास के कुछ गांव—अितनी ही होती है। अिसी तरह बहुत-से पढ़े-लिखे लोग भी जब 'हम लोग' शब्द का प्रयोग करते हैं तो अुनका मतलब केवल अपनी जाति, धर्म, भाषा, या धन्धे के लोगों से ही होता है। अुदाहरण के लिये मध्यम श्रेणी के लोग जब यह कहते हैं कि 'बेकारी बेहद बढ़ गयी है, अुसका कुछ न कुछ अिलाज करना चाहिये'—तब अुनके सामने केवल मध्यम श्रेणी के ही लोग होते हैं। अुनकी योजनायें केवल अुसी श्रेणी के लोगों के लिये होती हैं। दो या ढाअी आने की रोजी देने का प्रबन्ध करनेवाली योजना अुनकी

दृष्टि से बेकार है। क्योंकि अुसमें मध्यम श्रेणी के लोग शामिल नहीं हो सकते। वे तो 'हम लोग' शब्द से केवल 'मध्यम श्रेणी के लोग' ही समझते हैं। अिसलिये दूसरी श्रेणियों के लोगों के प्रति अुनमें अपनेपन की भावना नहीं है और न अुनकी हालत पर विचार करने की दृष्टि ही है।

गांधीजी ने पैंतीस करोड़ लोगों का दर्शन किया है और वह दर्शन हमें कराने के लिअे अुन्होंने हमारे सामने चरखे का प्रतीक रक्खा है। अगर हम अपने देश की प्रजा को अलग अलग वर्गों में बाँट दें, तो शायद दस-पंद्रह लाख लोगों की गणना राजा-महाराजा, धनाढ्य और खुशहाल लोगों में हो सकेगी। चार-पांच करोड़ अैसे गिन लीजिये जो मध्यम स्थिति में रह कर गुजर-बसर कर सकते हैं। अिसके बाद आठ-नौ करोड़ों की हालत अगर बहुत ही गिरी हुअी नहीं तो कम-से-कम कंगाली की तो होती ही है। लम्बी बीमारी, मौत या शादी जैसे खर्च के मौके, या बेकारी के दिन, आने पर अुन्हें रोटियों के लाले पड़ते हैं। और कर्जदारी तो सदा बनी ही रहती है। अिन सब-से बहुत बड़ा, याने करीब करीब बीस करोड़ आदमियों का, अेक अैसा वर्ग है जिसे साल में से जब-तब दोनों जून पेटभर अन्न मिलता है और कम-से-कम चार-पांच महीने दो या चार पैसे की रोजी देनेवाला धन्धा भी नहीं मिलता। मतलब यह कि, हिन्दुस्तान वह देश है जहाँ तीन-चौथाअी से भी अधिक समाज भूखों मरता है, या भूखों मरने के डर में दिन काटता है। अिसी हिन्दुस्तान का वर्णन गांधीजी ने दूसरे शब्दों में 'सात लाख गांवड़ों का', या 'दरिद्र-नारायण का देश', कह कर किया है। जिस व्यवस्था द्वारा अिन दरिद्र-नारायणों का कल्याण हो सकेगा, वही दर असल स्वराज्य है। जो संस्था अुन्हीं के हित के लिअे कोशिश करती रहेगी, वही दर असल राष्ट्रीय कॉंग्रेस होगी और जो कार्यकर्ता या सदस्य अुसके कल्याण के कर्मयोग का आचार करेंगे वे ही सच्चे कॉंग्रेसवादी होंगे।

सारी जीवसृष्टि के क्षुधा-पिपासा (भूख प्यास, आदि षडूर्मियाँ (छः प्रकार की स्वाभाविक प्रेरणायें) होती हैं। आदमियों के और भी दो अूर्मियाँ होती हैं—शीतोष्णता और लज्जा। अिन अूर्मियों का जाति, धर्म, अुम्र, लिंग या अमीरी-गरीबी से कोअी संबंध नहीं है। भूख और प्यास के समान अिन अुमंगों के भी समाधान की सुविधा सब को होनी चाहिअे। शितोष्णता और लज्जा का निवारण कपड़े से होता है। जिस तरह कुछ लोगों को अुपनेत्रों के रूप में चश्मे की जरूरत होती है, अुसी तरह सब अर्वाचीन मनुष्यों के लिअे वस्त्र 'अुपत्वचा' ही हो गयी है। वह 'अुपत्वचा' मौसम और परिस्थिति के अनुसार मोटी, महीन या कीमती और सस्ती हो सकती है। अून, रेशम, कपास, आदि कअी पदार्थों से वह बनायी जा सकती है। लेकिन अुसकी जरूरत सबको है। वह अुपत्वचा है अिसीलिअे अुसे परिश्रम से बनाना पड़ता है। अुसके बनाने का सर्वोपलभ्य साधन चरखा है। अिसलिअे गांधीजी कहते हैं कि चरखा हमारे स्वराज्य का प्रतीक है। अुसके द्वारा गांधीजी हमें अुनकी याद दिलाते हैं जिनके लिअे कि स्वराज्य चाहिअे। अुनकी गरीबी का द्योतक यंत्र वे हमें दिखाते हैं, अुनसे अेकता करने के लिअे हमसे कहते हैं और हमें अुनके लिअे श्रमरूपी यज्ञ करने

का अुपदेश देते हैं। हमारे देश की व्यापक आर्थिक अुन्नति के प्रयास की पहली सीढी चरखा है। वह जाति-धर्म-भेदतीत है। करोडों लोगों का संगठन करने की अुसमें शक्ति है। करोडों लोगों को पेट के लिअे अुसकी जरूरत है। कुछ करोडों को, अगर पेट के लिअे नहीं तो, स्वावलंबन की दृष्टि से वह अुपयोगी है। दूसरों के लिअे, अुक्त दो कारणों के लिअे नहीं तो भी, करोडों से समानता के और अुनकी सेवा के चिन्ह के रूप में, समाज की नयी अर्थव्यवस्था के प्रतीक के रूप में और राजनैतिक संगठन के साधन के रूप में अुसका महत्त्व है।

अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि पुराने जमाने में चरखा और खादी होते हुअे भी हम गुलाम हुअे। बात सही है। लेकिन अुसकी वजह दूसरी है। पुराने जमाने में चरखा था। लेकिन वह अनायास था। अुसका कोअी प्रतिस्पर्धी नहीं था। अिसलिअे बुद्धिमान लोग अुसमें संशोधन करने के लिअे अपना दिमाग नहीं चलाते थे। बम्बअी जैसे बडे शहर में रह कर स्वास्थ्य बिगड़ने के बाद ही शारीरिक संपत्ति के लिअे देहात की शुद्ध हवा का मूल्य हम महसूस करते हैं। अुसी तरह अुस समय यह छोटा-सा चक्र हमारे देश में कितनी दौलत पैदा करता था और कितना मूककार्य करता था—अिसका हमें पता नहीं था।

"हम अपने देश के दरिद्र-नारायणों के लिअे चरखा चलाते हैं"—अिस संकल्प में ही अुसका राजनैतिक महत्व है। गरीब और अज्ञान जनता में चरखे का प्रचार केवल अुदरनिर्वाह के लिअे और शरीररक्षा के लिअे है; लेकिन बुद्धिमान और स्वातंत्र्याकांक्षी कॉंग्रेसवादियों के लिअे अुसका मूल्य अुसकी संगठन-शक्ति और अुसके मूलभूत संकल्प में है। अेक विशेष आकृति और रंगवाला कपडे का टुकड़ा अितना महत्त्वपूर्ण क्यों समझा जाता है कि अुसके लिअे लोग अपनी जान भी दे देते हैं?—अिसमें अुस कपडे की या अुसके रंग, अथवा अुसपर बनी हुअी आकृति की कीमत नहीं है। कीमत है अुस संकल्प की जो अिन सब के मूल में है। हम अपने संकल्प से अुस कपडे में अपने देश की सारी प्रतिष्ठा मूर्ति-मती करते हैं। अुसी तरह अगर हम अेक राय से स्वराज्य के लिअे यज्ञ करने के संकल्प से सूत-परिश्रम करें, तो हमारे अुस संकल्प से ही सूत कातना स्वराज्य-प्राप्ति का साधन हो जाता है। राष्ट्र के लिअे चरखे का स्वतंत्ररूप से आर्थिक महत्त्व है ही। अिसके अलावा वह अहिंसक समाज का प्रतीक भी है। अिन भावनाओं में स्वराज्य का संकल्प मिला कर चरखे को राजनैतिक महत्त्व प्राप्त करा देना अुचित ही है।

मुझे आशा है कि जनता चरखे को स्वराज्य के लिअे राष्ट्रीय संगठन का तथा दरिद्रनारायण की सेवा का साधन मान कर गांधीजी के सूत्र-यज्ञ संबंधी आदेश पर अमल करने का दृढ़ संकल्प करेगी।

(मराठी 'हिन्द सेवक' से)

स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा का अर्थ

[विनोबा का अेक प्रवचन]

(ता. २६-१२-'३९ को नवभारत विद्यालय वर्धा में नागपुर प्रांतिक कॉंग्रेस कार्यकर्ताओं तथा सैनिकों के शिबिर में श्री विनोबाजी ने निम्न प्रवचन दिया :)

आप अिस प्रान्त के कार्यकर्ता यहां जमा हुअे हैं अिसलिअे मुझ से कहा गया कि मैं अपने विचार आप लोगों के सामने रक्खूं; मैंने अिनकार नहीं किया और न हिचकते हुअे स्वीकार किया। आपका यहां अेकत्र होना मुझे पसन्द आया। अिसलिअे अपना कर्तव्य समझ कर मैं अपने विचार आप लोगों के सामने अुपस्थित करने आया हूं।

ज्ञान के अन्न की कमी

अक्सर अैसा देखा गया है कि हमारे कार्यकर्ताओं को ज्ञान का अन्न जितना पहुंचाना चाहिअे अुतना पहुंचाने की व्यवस्था हम नहीं करते। हमारे राष्ट्र की विशालता और हमारे प्रश्नों की बिकटता के लिहाज से हमारे पास कार्यकर्ता बहुत कम हैं और अुन कार्यकर्ताओं के पास ज्ञान की पूँजी अुससे भी कम है। हमें बहुतसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है। लेकिन हम सिर्फ बडी संख्या नहीं चाहते। अगर हमारे पास कर्तव्यदक्ष, चारित्र्यवान और अपने कार्य की भूमिका भलीभांति समझनेवाले ज्ञानवान कार्यकर्ता थोडे भी हों तो भी काम बहुत होगा।

आज से ठीक अेक महीने बाद, २६ जनवरी को, हमें स्वातंत्र्य की प्रतिज्ञा करनी है। आज तक की हुअी प्रतिज्ञा अधिक स्पष्ट भाषा में दोहरानी है। करीब दस वर्ष से हर साल हम अुसे दोहराते हैं। अितनी बडी पुनरावृत्ति का क्या प्रयोजन है? यह आप लोगों को समझाने के लिअे मैं अुस प्रतिज्ञा का स्पष्टीकरण करनेवाला हूं।

अविरत युद्ध

हम कहते हैं कि अब स्वराज्य की लडाअी नजदीक आ रही है, लेकिन यह गलत है। "लडाअी करीब है," कहने का मतलब यह होता है कि आज लडाअी जारी नहीं है। यह बात सही नहीं है। हमारी लडाअी तो निरंतर जारी ही है और जारी रहनी चाहिअे। हमारी लडाअी का रूप अेक नदी के समान है। वह निरंतर बहती ही रहती है। फिर भी, अुसके प्रवाह में गरमियों में और बरसात में फर्क होता है। जाडों में हम नदी का असली रूप देख पाते हैं। किन्तु वह बहती तो अखंड रहती है। अुसी प्रकार हमारी लडाअी भिन्न भिन्न रूप लेती हुअी भी नित्य जारी है। हम कार्यकर्ताओं की अैसी धारणा होनी चाहिअे कि हम तो हमेशा लडाअी में ही लगे हैं।

जो यह मानते हैं कि अब तक हम लडाअी नहीं कर रहे थे और अब करनेवाले हैं, अुनके सामने यह सवाल पेश होता है कि अब लडाअी के लिअे क्या तैयारी करें? वे सोचते हैं कि 'अब जेल में जाना पडेगा; अिसलिअे अपनी आदतें बदलनी चाहिअें।' लेकिन मैं तो कहता हूं कि हमारी लडाअी

हमेशा जारी है। हम लड़ाओी की आदतें डाल चुके हैं। अब अुन आदतों के बदलने का क्या मतलब है ? अब क्या बगैर लड़ाओी की आदतें डालनी होंगी ? हमें निरंतर यही भाव जाग्रत रखना चाहिये कि हमारी लड़ाओी हमेशा चालू है।

केवल वाङ्मय पुनरुच्चार व्यर्थ है

अिस साल स्वातंत्र्य की प्रतिज्ञा में कुछ बातें जोड़ दी गयी हैं और अुन बातों के साथ अुस प्रतिज्ञा का पुनरुच्चारण करने के लिये कहा गया है। लेकिन जहाँ श्रद्धा न हो वहां निरे पुनरुच्चार से क्या होगा ? मुझे अेक किस्सा याद आता है। अेक था साधु। अुसने अपने चेले से कहा कि "रामनाम जपने से मनुष्य हर किसी संकट में से पार हो सकता है '। अुसके वाक्य में शिष्य को श्रद्धा तो थी। लेकिन अुसे यह पूरा पूरा विश्वास नहीं था कि चाहे जिस संकट में से रामनाम अुसे तार देगा। अेक बार अुसे नदी पार करनी थी। वह बेचारा अर्धश्रद्धालु रामनाम रटते हुअे नदी पार करने लगा। जैसे-तैसे गले तक पानी में गया और वहां से गोते खाता हुआ बड़ी मुश्किल से वापस आया। गुरु से कहने लगा, "लगातार नामस्मरण किया, लेकिन पानी कम नहीं हुआ। सारा अकारथ गया।" गुरु बोला, "अनेक बार नामस्मरण किया अिसलिये अकारथ गया। अगर नामस्मरण में तुझे श्रद्धा थी तो अेक बार किया हुआ नामस्मरण तुझे बस क्यों नहीं लगा ? श्रद्धा कम थी अिसलिये तूने बार बार नामस्मरण किया और अिसीलिये गोते खाये।" स्वातंत्र्य की प्रतिज्ञा अेक बार मनःपूर्वक करनेवाला सचमुच निश्चयी है जैसा हमें मान सकते हैं। लेकिन अगर वह हर साल प्रतिज्ञा करने लगे—अिस साल नंबर अेक की प्रतिज्ञा, अगले साल नंबर दो की प्रतिज्ञा, फिर तीसरे साल नंबर तीन की प्रतिज्ञा—अिस तरह प्रतिज्ञायें करने लगे—तो यह शक होने लगेगा कि अिसकी प्रतिज्ञा का कोअी अर्थ है या नहीं ? केवल वाङ्मय के पुनरुच्चार से प्रतिज्ञा दृढ नहीं होती।

स्वावलंबी और परावलंबी फाकाकशी

लेकिन अिस साल की प्रतिज्ञा महज दोहराने के लिये नहीं है। अुसमें महत्त्वपूर्ण स्पष्टीकरण है। हमारी गुलामी के अनेक कारण हैं। अंग्रेजी राज्य पर हम कअी आक्षेप कर सकते हैं; लेकिन सब-से बड़ा आक्षेप तो यह है कि अंग्रेजी राज्य की बदौलत हमें फाकाकशी की देन मिली। आप अगर जनता से पूछिये कि 'तुम्हारी स्वराज्य की परिभाषा क्या है' ? तो वह अिस प्रकार जवाब देगी—"आप कहते हैं कि आठ प्रान्तों में कॉंग्रेस की अमलदारी रह चुकी है। कॉंग्रेस का अुस तरह का राज अगर ग्यारह-के-ग्यारहों प्रान्तों में हो जावे, और अब तक जो अधिकार नहीं मिले थे वे भी सब मिल जावें; मगर हमारी फाकाकशी ज्यों-की-त्यों बनी रहे—तो हम तो यही कहेंगे कि यह स्वराज्य नहीं है। यही हमारी परिभाषा है"। परावलंबन की जगह स्वावलंबन प्राप्त हो जावे मगर भूखों मरना कायम ही रहे; तो केवल भारत की ही जनता नहीं, बल्कि भारत की जनता के जैसी शोचनीय हालत में रहनेवाली संसार के किसी भी देश की जनता यही कहेगी कि "हम वह स्वावलंबी फाकाकशी नहीं चाहते। न हम स्वावलंबी अुपास के कायल हैं, न परावलंबी।

हम तो भूखों मरना ही नहीं चाहते। फाकाकशी ही नहीं चाहिये, फिर अुसका विशेषण कुछ भी क्यों न हो"।

कुछ वक्ता जोश में आ कर कह देते हैं कि "गुलामी में चाहे जितना अन्न मिले तो भी, हमें गुलामी नहीं चाहिये; स्वतंत्रता चाहिये। फिर, स्वतंत्रता में हमारी चाहे जितनी बुरी हालत हो; भूखों भी क्यों न मरना पडे।" लेकिन अुन्हीं वक्ताओं से अगर आप यह कहें कि "अगर स्वराज्य में रेलगाडियां न हों तो?" तब वे कहने लगते हैं कि, "अैसा स्वराज्य किस काम का?" अुनसे आप पूछिये कि "रेलगाडीवाली गुलामी की अपेक्षा बिनारेलगाडीवाली स्वतंत्रता क्या श्रेष्ठ नहीं है?" लेकिन बात अुनके गले नहीं अुतरेगी। "स्वराज्य की कमी सुराज्य से पूरी नहीं हो सकती"—यह कहनेवाले बिना-रेलवाले स्वराज्य की कल्पना से भी घबडाते हैं। तब बतलाअिये कि अगर भूखों मरने की कल्पना से साधारण आदमी घबडाने लगें तो क्या आश्चर्य है?

स्वराज्य रोटी का सवाल है

यहां मुझे कोंकण की कातकरी नामक जाति के अेक रिवाज की याद आती है। कातकरी अपनी जाति के मरे हुअे आदमी से कहता है, "देख, अगले जनम में बामण बनेगा तो रट-रट कर मरेगा; फलाना बनेगा तो फलाना कर-कर के मरेगा; लेकिन अगर कातकरी बनेगा तो बन का राजा बनेगा।" वह गाँव की संस्कारवान् परतंत्रता नहीं चाहता; अुसे जंगल की संस्कारहीन स्वतंत्रता ही प्रिय है। शहरि और बनैले चूहों का किस्सा मशहूर है। वह बनैला चूहा कहने लगा कि 'मुझे न शहर की यह शान चाहिये, और न यह पराधीनता'। अगर जनता की भी यही हालत होती तो हमें सर्वत्र स्वतंत्रता ही दिखायी देती। स्वातंत्र्य की प्रतिज्ञा तो ठेठ वेदकाल से चली आयी है—

व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये

अिस वेदवचन में स्वातंत्र्य की प्रतिज्ञा व्यक्त की गयी है। 'व्यचिष्ठ' का अर्थ है—अत्यंत व्यापक, जिसमें सबको मतदान का अधिकार है; और 'बहुपाय्य' से मतलब है—जिसकी बहुसंख्या अल्पसंख्या की रक्षा के लिअे खबरदार है; अैसे स्वराज्य के लिअे हम कोशिश कर रहे हैं—यह अुस प्रतिज्ञा का अर्थ है। मतलब यह कि अुस अत्रि ऋषि के जमाने से अिस पंडित जवाहरलाल के जमाने तक वही स्वातंत्र्य की प्रतिज्ञा विद्यमान है। वेद की प्रतिज्ञा जैसी आप चाहते हैं ठीक वैसी ही है। अुसमें भी बहुवचन का प्रयोग है।

सारांश यह कि हम अपने जोशीले व्याख्यानों में, या कविताओं में, स्वराज्य की जो व्याख्या करते हैं वह आम जनता के गले नहीं अुतरी है। जिसमें अन्न-जल का अिन्तजाम न हो अैसा स्वराज्य जनता नहीं चाहती। अुसे नैमित्तिक अुपासों का अभ्यास है। अेकादशी, शिवरात्रि के दिन वह व्रत रखती है। लेकिन हमेशा की फाकाकशी वह सहन नहीं कर सकती। चाहे आप अिसे हमारा पशुत्व भले ही कह लीजिये। लेकिन अिस मानवीय पशु को पेटभर अन्न चाहिये। समाजवादियों और साम्यवादियों के कथन में यही तथ्यांश (सत्य) है। हमारी भी मुख्य पुकार यही है। हम भुखमरापन नहीं चाहते। हमें भरपेट अन्न चाहिये। चाहे आप अिसे हमारा अधिकार कहिये, कर्तव्य कहिये, या और किसी नाम

से पुकारिये। भरपेट खाने की स्वतंत्रता हमें चाहिये।

हिन्दुस्तान में अिस प्रकार की स्वतंत्रता हमारा प्रधान विचार है। मैं स्वराज्य के विषय में विचार क्यों करता हूं?—अिसलिअे कि हिन्दुस्तान में स्वराज्य के लिअे विचार न करना महा पाप है। स्वराज्य का सवाल फाकाकशी से मुक्त होने का सवाल है। जैसा कि तिलक कहते थे, वह 'दाल-रोटी का सवाल है'। बुद्धिमान आदमी अपने घोडे या बैल को पेट-भर खिलाता है। वह यह तो चाहता है कि यह घोड़ा घोड़ा ही रहे, बैल बैल ही रहे, मेरे जैसा आदमी न बने; लेकिन वह अुसे पेटभर खाने को तो देता है और तब अुससे काम लेता है।

अिसमें सौदे की बात कहां है?

लेकिन यह अंग्रेजी-राज हमें पेटभर खिलाता भी नहीं। अैसा राज हमें अेक क्षण के लिअे भी सहन नहीं करना चाहिअे। यही स्वराज्य का सवाल है। आज कॉंग्रेस यह सवाल अुठाती है तो सरकार कहती है कि 'तुम सौदा करना चाहती हो'। ये परमार्थी (कॉंग्रेसवाले) जवाब देते हैं 'नहीं, हम सौदा नहीं करना चाहते'। अरे, अिसमें सौदा है ही कहां? तुम हमें खाने को कुछ देते नहीं और कहते हो कि लड़ने चलो। हम खाने के लिअे मांगते हैं यह क्या सौदा है? अेक सिपाही अपने घोडे को न चने खिलाता है, न पानी पिलाता है; पर अुससे कहता है कि 'लड़ाअी पर चल'। घोडा कहता है, "मुझे दानापानी तो दे।" सिपाही झुंझला कर बोलता है, "तू मेरे संकट के वक्त अिस तरह सौदे की बातें करता है"? अरे भाअी, तुझपर तो आफत आज आयी है; लेकिन मेरी विपदा तो आज सौ साल से निरंतर कायम है। अिसमें सौदा कहाँ है?

हमारे स्वराज्य के प्रश्न अिस प्रकार के हैं। मीठा तेल साढे पांच आना सेर मिलता था वह अब आठ आना सेर हो गया। यह मेरा स्वराज्य का प्रश्न है। अिसमें सौदे की बात ही क्या है? दवाखाने में पडे हुअे मरीज से गामा पहलवान कहता है कि "मेरी कुश्ती बदी है, मेरी मदद के लिअे चल।" मरीज कहता है, "भाअी पहले मुझे दवापानी तो दे।" गामा झल्ला कर कहता है, "मेरी मुसीबत के वक्त तू मुझसे सौदा करता है? क्यों?"

स्वराज्य की यही भाषा जनता की समझ में आती है। वह खाने-पीने की चीजें मांगती है। जिस देश में खाने-पीने के सामान की अिफारात थी, अिसलिअे जहां विदेशी आ आ कर बसते थे वहां लोग रोटियों को मुहताज हो रहे हैं, यह अेक नयी बात है। यह अंग्रेजी राज की देन है। अिसलिअे हम अुस राज को सहन नहीं कर सकते। स्वराज्य की यह सीधी-सादी, समझ में आने लायक व्याख्या है।

वर्तमान यूरोप: अहिंसा का पदार्थपाठ

कोअी कोअी पूछते हैं कि अहिंसा से स्वराज्य कैसे मिलेगा? अिसकी चर्चा अगर हम आज शुरू करें तो वह स्वराज्यप्राप्ति तक खतम नहीं होगी। अिसलिअे मैं अुस फेर में नहीं पडता। वर्तमान यूरोप का चित्र अहिंसा का पदार्थपाठ है। अहिंसा के अभाव से क्या होता है?—अिसका पता मौजूदा यूरोप को देखने से चलता है। छोटे-छोटे राष्ट्र तो आज कच्चे खाये जा रहे हैं।

आज-कल तो सभी काम बिजली के बटन की तेजी से होते हैं। पहले आदमी सौ-सौ वर्ष जीते थे; अब तडाक-फडाक मर जाते हैं। पंद्रह दिन में समूचे राष्ट्र गायब हो जाते हैं। पहले अैसी बातें न किसी ने देखी थीं, न सुनी थीं। आज तो मानो बटन दबाते ही राष्ट्र नदारद हो जाता है। चीन का कितना बडा हिस्सा जापान निगल गया है अिसका आज हमें पता ही नहीं। विश्व में जब नया नक्शा तैयार होगा तब हमें पता चलेगा। शस्त्रास्त्रों की अितनी तैयारी करने पर भी आखिर चीन की क्या हालत हुअी? हिन्दुस्तान जैसा गलित-कलेवर राष्ट्र शस्त्रास्त्रों से स्वराज्य कब पायेगा? 'यतेमहि' (कोशिश करना) तो अत्रि के जमाने से शुरू ही है। क्या अुसी तरह अनन्त काल तक कोशिश ही करते रहें? आज तो सब कोअी छडी में ही विश्वास करते हैं। हिटलर से ले कर मामूली देहाती शिक्षक तक सब का अेक ही सूत्र में विश्वास है: " छडी लागे चट विद्या आवे पट। "

यूरोप की बुद्धिबल में अश्रद्धा

कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि 'तुम नये विचार नही पढ़ते। आधुनिक विचारों के साथ परिचय नहीं बढाते'। सुनता हूं कि ये विचार यूरोप से जहाज में आते हैं और बम्बअी के धक्के पर लगते हैं। मगर अुधर से जो कुछ आता है वह सब-कुछ अच्छा ही होता है अैसा तो अनुभव नहीं है। अुधर से अिन्फ्लुअेंझा की हवा आयी, जिससे साठ लाख आदमी मरे। विचारों की हवा के ये झकोरे बराय-मिहरबानी बन्द कीजिये। हम शिक्षा लेने के लिअे किस शाला में जायें— यह भी तो सोचने की बात है। जिस शिक्षक की शाला में पांचसौ छडियां और सिर्फ दो ही चार पुस्तकें हों अुसकी शाला में भी क्या हम जायेंगे? यूरोप के लोग बहुत-सी पुस्तकें लिखते हैं। अुनके पीछे खर्च भी बहुत करते हैं—यह मैं जानता हूं। लेकिन साथ साथ में यह भी तो देखता हूं कि वे फौज पर पुस्तकों से कितना गुना ज्यादा खर्च करते हैं। हमें विचार भी तो अुसीसे ग्रहण करना चाहिअे जिसका कि विचार में विश्वास हो। शंकराचार्य जैसा कोअी हो तो अुससे हम विचार ले सकते है। क्योंकि अुसकी तो यह प्रतिज्ञा है कि 'मैं विचार ही दूंगा'। अुससे पूछिये कि " अगर मेरी समझ में न आवे तो? " वह यही जवाब देगा कि " मैं फिर समझाअूंगा।" " और फिर समझ में न आया तो?" " दुबारा समझाअूंगा, । " "और फिर भी न आया तो?" " फिर समझाअूंगा, समझाता ही जाअूंगा। अन्त तक विचार से ही समझाअूंगा "—अैसी जिसकी प्रतिज्ञा है अुस शंकराचार्य से विचार सीखने को मैं तैयार हूं। अैसी प्रतिज्ञा अगर जर्मन या रशियन करता तो अुसकी पुस्तकें भी मैं खरीदता। लेकिन वह सिर्फ अितना ही कहता है कि " तुम मेरी पुस्तकें पढो।" और अगर हम पूछते है कि " हमारी समझ में न आया तो? " तो वह जवाब देता है, " पिटोगे। " जिसका विचारों की अपेक्षा छडी में विश्वास अधिक है अुससे विचार कैसे लें?

हथियार-परस्ती बनाम बहादुरी

यूरोप की पद्धति का अनुकरण करना हिन्दुस्थान के खून में ही नहीं है। कहा जाता है कि अंग्रेजों ने हिंदुस्तानियों

के हथियार छीन लिये यह बड़ा नैतिक अपराध किया है। मैं भी यही मानता हूं। जबरदस्ती समूचे राष्ट्र के हथियार छीनना घोर अपराध है। लेकिन मैं अपने दिल में सोचता हूं कि "अिन मुट्ठीभर लोगों ने अुस समय के पच्चीस करोड लोगों के हथियार छीन कैसे लिये? अिन पच्चीस करोडों के हाथ क्या घास खाने गये थे? अुन्होंने हथियार मांगते ही अिन्होंने दे कैसे दिये"?—अिस का अेक ही कारण हो सकता है। वे हथियार हम लोगों के जीवन का अंग नहीं थे। अगर हमारे जीवन का अंग होते तो वे छीने नहीं जाते। तुकाराम ने अेक भले आदमी का जिक्र किया है। अुसके अेक हाथ में ढाल और दूसरे हाथ में तलवार थी। बेचारे के दोनों हाथ अुलझे हुअे थे, अिसलिअे वह कोअी बहादुरी का काम नहीं कर सकता था। वही न्याय तो यहां पर भी लागू नहीं करना है न? अिसलिअे हमारे हथियार छीन लिये गये अिसका सीधा अर्थ यही हो सकता है कि हिन्दुस्तान के लोगों के खून में हथियार नहीं थे। कुछ फौजी जातियाँ थीं। दूसरे लोग भी हथियार रख सकते थे। लेकिन रखे रखे अुनपर जंग चढ गया था।

लेकिन अिसका यह मतलब हरगिज नहीं कि हिन्दुस्थान के लोग बहादुर नहीं थे। अुसका मतलब अितना ही है कि अुनका हथियारों पर दार-मदार नहीं था। हिन्दुस्थान के सारे अितिहास में यह आरोप किसीने नहीं किया है कि यहां के लोग शूर नहीं हैं। सिकंदर को सारी जमीन मुलायम लगी; लेकिन हिन्दुस्तान में अुसने खासी ठोकर खायी। जहां जहां अूंट जा सकता था वहां मुसलमान मजे में चले गये। जहां खजूर और रेत थी वहां अुनका अूंट बढता चला गया। लेकिन हिन्दुस्तान में प्रवेश पाने के लिअे अुन्हें बीस साल लगे। हिन्दुस्तान बहादुर नहीं था अिसका अितिहास में कोअी सबूत नहीं है।

हमारी संस्कृति की मर्यादा

लेकिन हमारी संस्कृति की अेक मर्यादा निश्चित थी। अिसीलिअे हमने दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण कभी नहीं किया। किसी-न-किसी कारण से हमारी संस्कृति अहिंसक रही। तभी तो हमारी पैंतीस करोड़ जनता है। यूरोपीय राष्ट्र दो करोड़ या चार करोड़ की ही बात कह सकते है। यहां पैंतीस करोड हैं।

हिंसा टूटी-फूटी और अहिंसा साबित है

अिसका यह कारण है कि हिंसा का सिद्धान्त टूटा-फूटा और अहिंसा का सिद्धान्त साबित है। यूरोप की हालत कांच के प्याले जैसी है। जमीन पर पटकते ही टुकडे-टुकडे हो जाता है। आप जरा अेकाध कांच का प्याला जमीन पर पटक कर तमाशा देखिये। यूरोपीय राष्ट्रों के नकशों के समान छोट-बडे टुकडे हो जायंगे। लेकिन हम लोगों ने अपना पानी पीने का साबित प्याला बडी हिफाजत से सम्हाला है। कोअी सज्जन बम्बअी जाते हैं; वहां किराये पर अेक कमरा ले लेते हैं। अिकलौते अेक मियाँ और अिकलौती अेक बीबी—यह अनाथ परिवार कहलाने लगा!! वही हाल यूरोपीय राष्ट्रों का है। यूरोप हमें सिखाता है कि अगर हम अहिंसा का मार्ग अपनायेंगे तो ही अेक राष्ट्र की हैसियत से जी सकेंगे। यह बात हमारी जनता बडी जल्दी समझ जाती है। लेकिन हम शिक्षितों के गले

वह अब तक नहीं अुतरती। क्योंकि हम पढ़े-लिखे लोग अंग्रेजों के मानसपुत्र ठहरे। अंग्रेजों का हम पर बड़ा अहसान है। अुन्होंने हमारे दिमागों पर जादू कर दिया है। लिखीलिखे तो पूंजी का कहीं ठिकाना न होते हुअे भी हम बड़े पैमाने पर अुत्पादन की लम्बी लम्बी बातें करते हैं। हैसियत चरखा खरीदने की भी नहीं है, लेकिन बात पुतली-घर खोलने की करते हैं।

हमारा बौद्धिक पारतंत्र्य

अंग्रेजी राज से हमारी आम जनता का यह नुकसान हुआ है कि वह भूखों मरने लगी है और शिक्षित वर्ग का नुकसान अिस बुद्धिपारतंत्र्य के रूप में हुआ है। हम अुनकी तीन करोड़ की किताबें खरीदते हैं। 'शिष्य-स्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्,' कह कर, हाथ जोड़ कर, अुन पुस्तकों को पढ़ते हैं और तीन करोड़ रुपया गुरुदक्षिणा में देते हैं। अुन्होंने हमारी बुद्धि 'स्व-तंत्र'—याने अुनके अपने तंत्र (वश)— में कर ली है। हमसे कहा जाता है कि हम अुनसे शिक्षा लें। क्या शिक्षा लें? बहुत बड़े पैमाने पर हत्या करने की? क्या यह भी बड़े पैमाने पर अुत्पादन का ही अेक रूप समझा जाय? हम अुनसे क्या सीखें? समाज-शास्त्र सीखें? जिन लोगों ने पैंतीस करोड़ जनता को अेकत्र सम्हाला वे समाज-शास्त्र जानते हैं, या वे जो दो-दो तीन-तीन करोड़ के नन्हें-नन्हें राष्ट्र बना कर आपस में लड़ाअी-झगड़े करते रहते हैं? कहा जाता है कि किसी जमाने में फ्रान्स में अेक क्रान्ति हुअी और अुसमें से स्वतंत्रता, समता तथा बंधुता के सिद्धान्त पैदा हुअे। अुससे कितने ही पहले ये मुट्ठीभर पारसी अिस देश में आये और अुन्हें हमने सम्हाला। तो क्या हम बंधुता जानते ही नहीं थे? अै यूरोप, तेरे पास अैसा क्या है कि हम तुझसे बंधुता का पाठ लें? तूने हमको लूटा; क्या यही तेरे बंधुत्व का सबूत समझा जाय?

याद रखिये कि अगर आप हिंसा के फेर में पड़े तो अिस देश के यूरोप के समान केवल छोटे-छोटे टुकड़े हो कर ही नहीं रहेंगे। बल्कि हमारी खास परिस्थिति के कारण टुकड़े भी नहीं मिलेंगे। हमारा तो चूरा ही हो जायगा।

प्रतिज्ञा के तीन भाग

हमारी स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा के तीन भाग हैं। पहला—**स्वतंत्रता की आवश्यकता क्यों है?** दूसरा—**स्वतंत्रता जिस मार्ग से प्राप्त करनी है अुस मार्ग में श्रद्धा** और तीसरा—**हमारी साधन-सामग्री** का, अर्थात **रचनात्मक कार्यक्रम** का। अब तक दो भागों का विवरण किया। अब रचनात्मक कार्य-क्रम पर आता हूं।

रचनात्मक कार्यक्रम

रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू-मुस्लिम अेकता, अस्पृश्यता-निवारण, ग्राम-सेवा और खादी, आदि का समावेश है।

मुख्य बात यह है कि हम सच्चे दिल से और लगन से कृति करें। लोग कहते हैं कि, "तुम रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर देते हो लेकिन अुधर जीन्ना क्या कहते हैं, आम्बेडकर का क्या कहना है?—वह तो सुनिये। वह सुन कर गुस्सा आता है।" आम्बेडकर कहते हैं कि "जिन लोगों ने पूना

का समझौता किया और जिन्हीं बदमाशों ने अुसे तोड़ दिया।" हम कहते हैं, 'हमने ओमानदारी से अुस समझौते पर अमल करने की कोशिश की'। लेकिन जरा वस्तुस्थिति तो देखिये। जनता में क्या हो रहा है? दूर की बात जाने दीजिये। सेगांव और पौनार को ही ले लीजिये। पौनार में कातने के लिअे जो लड़के आते हैं अुनमें कुछ हरिजन लड़के भी हैं। अुनमें से अेक हरिजन लड़के से मैंने कहा, 'तू खाना पकाना जानता है?' अुसने कहा 'नहीं'। मैंने कहा, 'हमारे यहां रसोअी बनाने आया कर, हम तुझे सिखा देंगे।' वह हमारे यहां रसोअी बनाने आने लगा। मैं पौनार के कुछ लोगों को नेवता देने लगा। शुरू में जो दस-पांच लोग आये वे ही आये। अब कोअी नहीं आता। मैं वहां गाय के दूध से घी बनाता हूं और मही मुफ्त में बांटता हूं। लेकिन मुफ्त का मही लेने के लिअे भी कोअी नहीं आता। यह हाल है।

अच्छा हम कार्यकर्ता लोग भी लगन से काम करते हों, यह बात भी नहीं है। किसी कार्यकर्ता से कहा जाय कि अेक हरिजन लड़का बिलकुल अपने निज के बेटे के समान अपने परिवार में रक्खो; तो वह कहता है कि यह बात मेरी स्त्री को पसन्द नहीं है, मेरी माँ तो मानेगी ही नहीं। 'स्त्री को पसन्द नहीं है, माँ मानती नहीं है' यह सब सही है। लेकिन अुससे परिणाम क्या निकलता है? यही कि हम हरिजनों को दूर रखते हैं। असलिअे अम्बेडकर तो मुझे अवतार ही लगता है। चाहे किसी प्रकार की क्यों न हो, हरिजनों में वह चेतना पैदा करता है। वह हमारा भरोसा कैसे करे? 'अिसे पसन्द नहीं है, वह मानता नहीं है'—अिन बातों का मूल्य हमारे नजदीक हरिजनों को अपनाने से भी अधिक है। हम कहते हैं, हम हरिजनों को अपने घर में नहीं रख सकते, हम अुनके घर भोजन नहीं कर सकते। अिस तरह हृदय से हृदय कैसे मिलेगा?

समाजवादी की हिकमत बेकार है

समाजवादी कहता है, "तुम यह अस्पृश्यता-निवारण की झंझट ही छोड़ो। मुख्य गरीबी का और भूख का ही सवाल लो।" मैं कहता हूं, "भाअी, तुम्हारी युक्ति बड़ी अच्छी है, मैं अुसे स्वीकारने को भी तैयार हूं। लेकिन, भाअी मेरे, वह काम नहीं आयगी। हिन्दुस्तान से भी ज्यादा कंगाल कौम दुनिया में और कहीं है? लेकिन मेरा मुफ्त दिया हुआ मठा भी सवर्ण लोग लेने को तैयार नहीं हैं। यह सवाल तुम्हारी हिकमत से हल नहीं होगा। तुम कहोगे कि अब छुआ-छूत कम हो चला है। रेल में, स्कूलों में, लोग छूत नहीं मानते। लेकिन अिसमें तो बहुत-कुछ करामत अंग्रेजों की है। अिसका यह अर्थ नहीं कि जनता ने छुआ-छूत मानना छोड़ दिया है।"

वास्तविक अस्पृश्यतानिवारण

अश्वमेध सहस्रेण सत्यंच तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते।

(हजारों अश्वमेधों के साथ सत्य तौला गया। पाया गया कि सत्य ही श्रेष्ठ है।) हरिजनों के लिअे बोर्डिंग खोलना, अुन्हें छात्रवृत्तियाँ देना—ये सब बाह्य कृतियां-अश्वमेधों के समान हैं। अैसे हजारों अश्वमेध-यज्ञों की अपेक्षा अेक हरिजन लड़का अपने परिवार में रखना—जिस

प्रेम से हम अपने कुटुंबीयों से पेश आते हैं अुसी प्रेम से अुसके साथ व्यवहार करना—यह सत्य अधिक महत्त्व रखता है। हमें अुनके सुख में और अुनके दुख में शामिल होना चाहिये। अुन्हें अपनाना चाहिये और जिस तरह अुनकी स्थिति को ओढ़ लेना चाहिये।

जातीय दंगों का अिलाज

हिन्दू-मुस्लिम अेकता के सवाल का भी अैसा ही खिलवाड़ किया जा रहा है। आज जो कुछ हो रहा है मैं तो अुसे खिलवाड़ ही कहूंगा। अेक कहता है "तुम आपस में लड़ते हो अिसलिअे तुम्हें स्वराज्य नहीं मिलेगा।" दूसरा जवाब देता है "स्वराज्य नहीं है अिसीलिअे आपस में लड़ाअी होती है।"—अैसा तमाशा चल रहा है। जरा देहातों में जा कर देखिये। वहाँ हिन्दू-मुसलमानों में बैर नहीं है। सच पूछिये तो अुनमें बैर है ही नहीं। कुछ महत्त्वाकांक्षी, बेकार और पढ़े-लिखे लोग दोनों को जुआ कर खिलवाड़ करते हैं। अिन लोगों के तीन विशेषण ध्यान में रखिये—पढ़े-लिखे, महत्त्वाकांक्षी और बेकार। ये लोग हिन्दू-मुसलमानों को बरबस अुभाड़ कर अुनके झगड़ों का झुनझुने के समान अुपयोग करते हैं।

अिसका क्या अिलाज किया जाय? अेक ही अिलाज है। जहां कहीं अैसी वारदात हो जाये वहां जा कर हम अपने प्राण दे दें। यह अुपाय देहातों में काम नहीं आ सकता। क्योंकि दंगे वहां से शुरू नहीं होते। ये पढ़े-लिखे, बेकार और महत्त्वाकांक्षी लोग जहां दंगे कराते हैं, या अुनके शब्दों में कहें तो 'बंदोबस्त करते हैं'—वहीं जा कर प्रयोग करना चाहिये। अिन व्यवस्थापकों ने दुनिया को परेशान कर डाला है। अुनसे अितनी ही विनय है कि, "भाअी मेरे, यह व्यवस्था का धन्धा छोड़ो और खुद व्यवस्थित बनो।" लेकिन वे मानेंगे नहीं। अिसलिअे यही अेक अिलाज है कि जहां दंगा हो जाय वहाँ जा कर हम अपना सिर फुड़वा लें। सौ-दो-सौ शान्तिपरायण लोगों को अैसे मौकों पर अपने सिर फुड़वा लेने चाहियें।

अिन झगड़ों का कोअी ठौर-ठिकाना ही नहीं। ये सिर्फ हिन्दू-मुसलमानों में ही नहीं हैं। पहले ब्रह्मणेतर दल था ही। अब सुनते हैं कि कोअी मराठालीग भी निकाली गयी है। भुखमरे टुकड़ेखोरों का बाजार गर्म है। मैं जब बड़ौदे में रहता था तो वहां का अेक पारसी किसी तेवहार के अुपलक्ष्य में कभी-कभी भिखारियों को अन्न बाँटता था। अुन टुकड़ों के लिअे वे आपस में लड़ते थे। वही हाल यहां है। सरकार से जो कुछ टुकड़े मिलेंगे अुन्हें ये बीच में ही हड़पना चाहते हैं। हमारे तत्त्वज्ञान में मृत्यु के डर को स्थान नहीं है। और अब रोटियों के अभाव में भूखों मरने का भी अभ्यास हमें हो गया है। अिसलिअे जहाँ दंगा हो रहा हो वहाँ हमें शान्तिपूर्वक जा कर बैठ जाना चाहिये। अिच्छा हो तो कातना शुरू कर देना चाहिये। अितना काफी है। हम लोगों की अैसी धारणा है कि बिना नारियल और सिंदूर चढ़ाये पूजा नहीं होती। नारियल की जगह मुसंबी, नारंगी, आम, आदि चढ़ाने से काम नहीं चलता। नारियल और सिंदूर ही चाहिये। अिसलिअे मैं कहता हूं कि आप अपना सिर फुड़वा कर अपना खून चढ़ाअिये तो पूजा पूरी हो जायगी। लेन-देन के समझौतों से अिन झगड़ों का निपटारा नहीं होगा। न 'लेन' चाहिये न 'देन'। मुस्लिमलीग से कैसे तसफिया किया जाय?

सर्वसुलभ अुपासना

खादी के विषय में भी लोग असी तरह पूछते हैं। कहते हैं कि "खादी तो ठीक है; लेकिन यह कातने की बला आप क्यों लगा रहे हैं?" मैं कहता हूं कि "क्या करूं? अगर कातने के लिअे न कहूं, तो क्या सिमथी बनाने कहूं? तुम्हीं तो कहते हो न; कि लोग भूखों मर रहे हैं? अैसी हालत में कुछ न-कुछ निर्माण करनेवाली क्रिया ही राष्ट्रीय अुपासना हो सकती है। असीको आज अनुशासन कहते हैं। नहीं तो स्वराज्य के आन्दोलन में आप जनता को किस तरह शामिल करेंगे?" अगर कोअी काम न हो तो सिर्फ मेरे जैसा बातूनी आदमी ही स्वराज्य का आन्दोलन कर सकेगा—अर्थात्, व्याख्यान दे सकेगा। लाखों-करोड़ों लोगों को स्वराज्य के आन्दोलन में सीधे शामिल करने की कोअी तरकीब निकालो। जो तरकीब निकालोगे वह भी अैसी होनी चाहिअे कि जिसे लोग सहज में समझ सकें। अखबारवालों को जब कोअी बात खास तौर पर लोगों के सामने रखनी हो तो वे अेक-अेक अिंच के बुलन्द टाअीप में शीर्षक देते हैं। यूरोप में तो अब सिर्फ शीर्षकों से ही काम नहीं चलता; वहाँ चित्र देने पड़ते हैं। वहां के मजदूर चित्रों पर से समाचार भाँप जाते हैं। भावार्थ यह कि स्थूल, स्पष्ट और लोगों का ध्यान आकर्षित करने लायक चीज होनी चाहिअे। तभी कुछ काम होगा। खादी और चरखा लोगों की समझ में आसानी से आनेवाला, अहिंसक आन्दोलन का प्रत्यक्ष चिन्ह है। अुससे सारे राष्ट्र में स्फूर्ति की आग फैल सकती है। अगर अिस अिमारत में कल आग लग जाय तो अुसके जलने में कितनी देर लगेगी? आप अैसा हिसाब न कीजिये कि अिसमें पहली चिनगारी लगने के लिअे अगर चालीस साल लगे तो सारी अिमारत जलने में कितने साल लगेंगे। अैसा अूट-पटांग त्रैराशिक आप न करें। अिस अिमारत में आग लगने के लिअे चालीस साल भले ही लग गये हों; लेकिन अुसके खाक होने के लिअे अेक घन्टा काफी है। अिसलिअे तोते के समान क्रान्ति के सिद्धान्त रटने और रटाने से काम नहीं होगा। सिर्फ सुआ पढ़ाने से राष्ट्र नहीं सुलगते। मिट्ठू की तरह राष्ट्र को सिर्फ—

> लटपट पगिया चतुर सुजान।
> पढ़ो प्रभाते श्री भगवान॥
>
> या
>
> सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।

का मंत्र पढ़ाने से काम नहीं होता।

मंत्र और तंत्र का संबंध

आप मंत्र का अर्थ तो समझते हैं न? आज-कल तो लोग मंत्र ही पढ़ते हैं। 'अिन्किलाब जिन्दाबाद'—अित्यादि कअी तरह के मंत्र अच्छे भले भले पढ़े-लिखे आदमी भी रास्ते पर अुच्च स्वर से चिल्ला चिल्ला कर पढ़ते हैं। पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि पुराने लोगों को मंत्रों में बेहद विश्वास था। मेरी शिकायत यह है कि तुम लोगों का विश्वास मंत्र में पुराने आदमियों की बनिस्बत कहीं अधिक है। स्वराज्य का मंत्र जनता तक आप कैसे पहुंचायेंगे? अिसका अेक ही रास्ता है—मंत्र के साथ तंत्र भी चाहिअे। जनता से सम्पर्क कायम करने के लिअे मंत्र की द्योतक किसी न किसी बाह्य कृति की जरूरत है। अितिहास में अिस बात के सबूत विद्यमान हैं कि कैसे तंत्रयुक्त मंत्र से समूचे राष्ट्र प्रज्वलित हो अुठते हैं।

विधानपंचायत क्यों ?

आज हम क्या मांग रहे हैं ? हम आज ही स्वतंत्रता नहीं मांगते। वह 'सौदा' हम आज नहीं कर रहे हैं। हम अितना ही कहते हैं कि तुम अपनी नेक-नीयती साबित करने के लिअे अितना तो करो कि हमारी विधान-पंचायत की मांग मंजूर कर लो।

यह विधानपरिषद क्या है ? आप सिर्फ शब्दों से चिपटे न रहिये। स्वराज्य जब मिलेगा तब मिलेगा। लेकिन शब्दों के जंजाल से तो आज ही छुटकारा पाअिये। विधान-परिषद की मांग का अितना ही मतलब है कि हर अेक बालिग व्यक्ति को मतदान का अधिकार हो, और वह किस तरह का राज्य चाहता है यह खुद तय करने की आजादी हो। अगर वह यह तय करे कि मौजूदा राज ही अच्छा है तो भी कोअी हर्ज नहीं।

'हरिजन' में बापू को अेक अंग्रेज का लिखा हुआ पत्र छपा है। वह कहता है कि सब लोगों की राय लेने की झंझट में पड़ने के बदले सयाने लोगों की सलाह से अिसका निर्णय किया जाय। अुसकी बात मुझे भी जँचती है। 'फी-आदमी अेक राय'— यह बात तो मुझे भी कुछ बेतुकी-सी मालूम होती है। हर अेक के अेक ही राय क्यों ? अेक ही सिर है अिसलिअे ? सिर की तरफ ध्यान गया अिसलिअे 'फी-आदमी' अेक राय का नियम बना। और अगर कानों की तरफ ध्यान जाता तो ? हर अेक के दो-दो रायें होनी चाहिअें अैसा कहते। "हर अेक के दो कान होते हैं; तस्मात् हर अेक के दो रायें होनी चाहिअें।" हर अेक को अेक ही राय का अधिकार होना चाहिअे अिसका मुझे कोअी सयुक्तिक कारण नजर नहीं आता, सिवा अिसके कि हर अेक के अेक ही सिर होता है। क्योंकि हमारा यह अनुभव है कि अेक मनुष्य में जितनी बुद्धि होती है अुसकी अपेक्षा दूसरे में हजार गुनी अधिक हो सकती है। लेकिन फिर भी बापू ने अुस अंग्रेज-सज्जन को दिया हुआ जवाब ठीक है। बापू पूछते हैं कि "ये सयाने लोग हैं कहां ? और अुनका प्रमाणपत्र क्या है ?" यह सवाल मुझे भी कुंठित कर देता है। मैं अेक सयाने को दूसरे हजार आदमियों की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता हूं। लेकिन अिस सयाने का प्रमाणपत्र क्या हो ? आज तो यही परिभाषा हो गयी है कि व्हाअिसराय जिसे प्रमाणपत्र दे दे वही सयाना है। अिस तरह के सयानों ने गोलमेज-परिषद में जो चपला किया सो दुनिया जानती है। अगर यह कहा जाय कि जिसे कॉंग्रेस सयाना कहेगी वही सयाना समझा जाय; तो यह बात भी बहुत-से लोग मानने को तैयार नहीं हैं। हम अपने घरों में भी यही करते हैं। जब किसी अेक की, या किसी बुजुर्ग की, बात मानने के लिअे परिवार के लोग तैयार नहीं होते तो हम सभी की राय ले लेते हैं। वही अब तय किया है। विधानपंचायत द्वारा हम अिस सवाल का निपटारा करनेवाले हैं।

बोलती खिपड़ियाँ और गूंगे आदमी

कहा जाता है कि अिन निरक्षर लोगों की राय ले कर काम कैसे चलेगा ? मैं कहता हूं कि लिखने-पढ़ने का यह व्यर्थ मोल-भाव क्यों ? बिना तकलीफ के दूसरे लोगों के भेजों में ज्ञान ठूंस देने की आलसी लोगों की हिकमत का नाम है लिखना-पढ़ना। अिस लिखने-पढ़ने से बहुत बड़ा नुकसान हुआ है।

सेगांव के महात्मा गांधी अगर किशोरलालभाओी से कुछ कहना चाहते हैं तो अेक रुक्के पर लिख कर बंद लिफाफे में भेज देते हैं। वह लिफाफा ले कर अेक अनाडी आदमी किशोरलालभाओी को दे देता है और वे बापू की बात समझ लेते हैं। छुटपन में हम 'बोलती छिपटी' (टाकिंग चिप) का किस्सा पढ़ा करते थे। लोग कहते हैं कि 'देखो क्या चमत्कार है! पढ़ने-लिखने की कला की बदोलत छिपटियां भी बोलने लगीं।' मेरी यह शिकायत है कि सिर्फ छिपटियां ही बोलनेवाली नहीं हुओीं; बल्कि बोलनेवाले छिपटियों जैसे गूंगे हो गये। अगर लिखने की कला न होती तो गांधीजी को अपनी जगह छोड़ कर किशोरलालभाओी के पास जाना पड़ता। लेकिन हमेशा अैसा करना मुश्किल है। अिसलिओे दूसरा अुपाय यह करना पड़ता कि अुन्हें अपने आसपास के लोगों को अच्छी तरह से समझा-बुझा कर अितना होशियार बनाना पड़ता कि वे ठीक-ठीक सन्देशा पहुंचा सकें। लेकिन लिखने की कला की बदोलत आदमियों को 'छिपटियां' बनाने से काम चल सकता है। गांधीजी के पास जितने बेवकूफ आदमी रह सकते हैं अुतने क्या कभी प्राचीन ॠषियों के पास रह सकते थे? आज चिट्ठी के जरिये गांधीजी की बात बीच के आदमियों को लांघ कर मेंढक के समान छलांग मार कर किशोरलालभाओी के पास पहुंच जाती है।

"हिन्दुस्तान के लोग भेड़-बकरियों जैसे अपढ़ हैं। तभी तो तीन-चार लाख गोरे अुनपर राज कर सकते हैं। अितनी तो भेड़ें भी कोओी सम्हाल नहीं सकता।"—अिस तरह की बातें मैं कओी बार व्याख्यानों में सुनता हूं। मेरा जवाब यह है कि अगर हिन्दुस्तान के लोग भेड़ें होते तो अुनकी देखभाल के लिओे बहुत-से लोगों की जरूरत पड़ती। वे आदमी हैं—और मुरब्बी और सुजान आदमी हैं; अिसलिओे अुनकी राज्यव्यवस्था के लिओे बहुत आदमियों की जरूरत नहीं। ये फालतू तीन-चार लाख गोरे नहीं थे तब भी अुनका राज खूब अच्छी तरह चलता था।

यहां के लोग अपढ़ भले ही हों; लेकिन अजान नहीं हैं। हमारे यहां अिसपर कभी बहस नहीं हुओी कि स्त्रियों को मतदान का अधिकार हो, या न हो। यूरोप में स्त्रियों को मतदान के अधिकार के लिओे अपने पुरुषों से लड़ना पड़ा। हमारे यहां बेसंट और सरोजिनीदेवी का कांग्रेस का अध्यक्षपद लेना स्वाभाविक माना गया।

मतलब यह कि यहां के लोग सुजान और अनुभवी हैं। पढ़े-लिखे न हों तो भी विधानपंचायत के लिओे प्रतिनिधि चुनने के लायक हैं।

अिस तरह यह सारा विषय मैंने आपके सामने चुनक कर रख दिया है।

कबूतर का गटरगूँ

३. हृदय-संघर्ष

आदरणीय सम्पादकभाअी,

सविनय पालागन,

आज जब मैं हृदयकुञ्ज में पहुंचा तो कम्बुग्रीव अुसारे की कैंची पर बड़ी अैंठ से टहलता हुआ ठसक दिखा रहा था। अुसकी गरदन फूल कर ड्योढ़ी गुनी मोटी हो गयी थी। मुझे देखते ही बिना राम राम किये ही अुसने अपना गटरगूं शुरू कर दिया।

कम्बुग्रीव–आज तो मैंने आश्रम-परम्परा की धड़ल्ले के साथ अवहेलना की है। अपनी बिरादरी के अेक बालक की खूब अच्छी तरह मरम्मत करके आया हूँ।

हरिहरभाअी की 'मौन्टेसरी-पद्धति,' या जुगतरामभाअी की 'मातुश्री-पद्धति' को मैं हर बात में आदर्श मानने के लिये तैयार नहीं हूं। कोअी पन्द्रह-बीस दिन हुअे होंगे; वह कबूतरी पुचकार-पुचकार कर अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को पंखों से काम लेना सिखा रही थी, पर कोअी बच्चा अिस कैंची से नीचे अुतरता ही नहीं था। जरा पंख फड़फड़ाये और मां के गले से चिपट गया। मां अपने वात्सल्यभरे पंख में आध आध घंटे तक अुसे छिपाये रखती थी और फिर अुसे तालीम देना शुरू करती थी। पर वह बच्चा अुड़ने की हिम्मत ही न करता था। आख़िर मुझसे रहा न गया, कबूतरी को तो मैंने अलग हटने के लिअे कहा और स्वयं अुस बच्चे पर टूट पड़ा। वह घबराहट के मारे नीचे गिर पड़ा और पंख के सहारे खिड़की में फुदक कर बैठ गया। वहां जा कर मैंने फिर अुसे दो तीन झपट्टे जमाये तब बेचारा अुड़ कर आंगन में बैठा। मैंने फिर अुसे मारा, तब वह छप्पर पर जा पहुंचा। अब निःसंदेह वह अपनी माता से जल्दी सबक ले लेगा।

मैं–तुम्हारा अभिप्राय क्या है? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि पिटाअी ही ज्ञान-प्राप्ति का राजमार्ग है?

कम्बुग्रीव–तुम्हारे कटाक्ष से मैं डरनेवाला नहीं हूं। अिस बात में मैं दृढ़ हूं कि बिना ठोकर खाये कोअी तरक्की नहीं करता।

मैं–तब तो सारी शिक्षायोजनाओं को ताक पर रख कर आश्रम के अिन शिक्षा-पंडितों को पुराने गवारू तरीके पर लौट जाना चाहिये। भोर होते ही हरेक बच्चे पर हाथ साफ़ करना चाहिये, और बच्चों के हाथ-पैर बांध कर अुन्हें कमरे में औंधा लटकाने का सिलसिला फिरसे जारी करना चाहिये।

कम्बुग्रीव-यदि अैसा करने से सचमुच तरक्की होती हो तो मैं अैसी पिटाअी से परहेज न करूंगा। परन्तु जिस पिटाअी से दिमाग़ के दरवाजे बन्द हो जायें, दिल मुर्झाने लगे, और बच्चे को अपनी जिन्दगी का भी बोझ होने लगे, वह बहुत खतरनाक है। अिसके विपरीत दुध-मुंहे बच्चों को भी मन्दिर के देवता की तरह पूजा जाय, जिन्हें बैठने का सहूर नहीं अैसे नन्हें नन्हें बच्चों को 'सरोज बहिन' 'चम्पा बहिन' 'अुर्मिला बहिन' या 'विट्ठलभाअी' 'गणेशभाअी,' 'मधुकरभाअी' कह कर पुकारा जाये, और पुराने जमाने में जिस तरह विद्यार्थिगण आचार्य की सेवा-टहल में लगे रहते थे, अुसी तरह

शिक्षक-गण विद्यार्थियों की सेवा-टहल में जुटे रहें—यह भी कम खतरनाक नहीं है। जरूरत है विद्यार्थी के हृदय पर आघात करने की। शिक्षक विद्यार्थी के हृदय को ज्यों-ज्यों अधिकाधिक चोट पहुंचायेगा त्यों-त्यों विद्यार्थी की जिज्ञासा, योग्यता, स्मृति, प्रज्ञा, मेधा—सब कुछ जाग्रत होने लगेगी।

मैं–तब तो कंबुभाजी, किशोरलालभाजी ने जिस तरह "केळवणीना पाया" नामक पुस्तक लिखी है, अुसी तरह तुम भी "चोट की प्रतिभा" पर अेक पुस्तक लिखो।

कंबुग्रीव–बिल्ली के चंगुल से अुस दिन हम संयोगवश बच गये। तभी से मैं अिस विषय पर दिन-रात सोच रहा हूं। हृदय पकड़ने वाले सूत्रों का शास्त्रीय संग्रह हो जाना बहुत जरूरी है। परंतु मुझे बड़ा भारी डर तो यह है कि·········

मैं–यही न कि गांधी सेवा संघ वाले और आश्रम वाले अपनी कड़ी आलोचना से तुम्हारी अुस पुस्तक की धज्जियां अुड़ा देंगे?

कंबुग्रीव–अजी अिसका मुझे कोअी डर नहीं। दादा धर्माधिकारी और मगनभाअी देसाअी जैसे बेदर्द और बेरहम आलोचकों के कठोर प्रहार भी मैं सह सकता हूं, और अपने साप्ताहिक पत्र में महादेवभाअी, प्यारेलालजी, या गुजराती "कुमार" में छपनेवाले आश्रम के अितिहास में वे प्रभुदासभाअी, मेरी बुरी से बुरी बदनामी करें, तो भी मैं गम खा सकता हूं। मुझे तो अेक दूसरा ही भय है।

मैं–जो आलोचना और बदनामी से नहीं डरता, अुसे फिर डर किस बात का? तुमने वह गुजराती मिसाल तो सुनी ही होगी कि "जेने नहीं लाज, अेने मानुं बरनुं राज।" हिन्दी में भी कुछ अैसी ही कहावत है कि "नंगे से खुदा भी डरता है"। बंगाल प्रोन्शियल समिति ने आज अैसा ही छोटा-सा राज्य पाया है, यह बात सारा देश जानता है।

कंबुग्रीव–यहां लाज और राज की बात नहीं है। मुझे तो अिस बात का डर है कि 'हरिजन सेवक' में ै-तीन महिनों से बापूजी अहिंसा के बारे में नित नयी नयी बातें हमारे सिर पर थोप रहे हैं। मैं जो पुस्तक लिखूंगा वह कहीं छापखाने से बाहर आने के पहले ही पुरानी न हो जाय? जाने किस समय बापूजी अपनी युद्धनीति में कौनसे रंग लायेंगे—कैसा प्रकाश डालेंगे? 'गांधी' और 'आंधी' का शब्दानुप्रास केवल शाब्दिक ही नहीं है। बापूजी का वेग कभी कभी आंधी से कअी गुना तेज हो जाता है। आज-कल बापूजी अहिंसा के अमोघ बल के बारे में धुआंधार विवेचन कर रहे हैं। वे समूचे मानवसमाज को अहिंसा की विराट वीचिमालाओं द्वारा आगे आगे बहा ले जाने के लिये दिन-रात कोशिश कर रहे हैं। पूर्णिमा के चांद की तरह अुन्होंने समस्त मानव-सागरों में खलबली मचा दी है। अैसी परिस्थिति में हृदय-परिवर्तन जैसे गूढ़ और नित-नूतन विषय को किताब की चार दीवारों में बंद कर लेना वैसी ही बेवकूफी होगी, जैसी कि हमारे बिरादर टिटहरे ने समुद्र को रोकने की कोशिश करते में की थी।

मैं–अिस तरह पस्तहिम्मत होना हम चिड़ियों को शोभा नहीं देता। यह तो आदमियों की ही बीमारी है कि महीनों और वर्षों मिहनत-मशक्कत करके कोअी चीज बना पायेंगे और जो चीज बन जायगी वह निकम्मी और खब्तियल साबित होने पर

भी अुसे फेंक देने की हिम्मत नहीं करेंगे। हम पक्षीगण अिस अवगुण से बरी हैं। हम प्रति वर्ष नया घोंसला बनाते हैं। और तुम कबूतर तो घोंसला बनाने के धैर्य मे ला-सानी हो। दिन में दस बार भी सारे घोंसले का ढांचा गिर जाये तो भी तुम नही हारते और फिरसे बनाते हो। तो फिर हृदय-परिवर्तन के बारे मे तुम्हारा कथन निकम्मा या अपूर्ण साबित हो तो अुसमें रंज की क्या बात है? दुबारा अुन सिद्धांतों का संकलन हो जायगा।

कम्बुग्रीव– खैर! तुम्हारी ही बात सही। मै अपने सुपारी के-से ठोस दिमाग की सारी ताकत 'हृदय-संघर्ष' के गूढ़ विषय में लगाने का साहस करता हूं। जहाँ गलती दीख पड़े वहाँ बता देना।

मैं–गलती बताने के ठेकेदार 'सर्वोदय' के दो-दो सम्पादक जो बैठे हैं!

कम्बुग्रीव– किसी भी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के हृदय पर बाहर का दबाव पड़ने से तीन परिणाम निकलते हैं.—

१. हृदयाघात २. हृदय-परिवर्तन ३. हृदय-दान। अिनमेंसे प्रत्येक के फिर क्रमशः चार चार रूप होते हैं:—

हृदयघात के—अुदासीनता, द्वेश, क्रूरता और आत्महत्या।

हृदय-परिवर्तन के— आदर, सहानुभूति, अुदारता और अुत्सर्ग।

हृदयदान के—वात्सल्य, समर्पण, पूजा और आत्म-विलोपन।

अिन तीन परिणामों में से तीसरा परिणाम वहीं प्राप्त होता है जहाँ कि व्यक्तिगत सम्बन्ध असाधारण अुच्च भूमिका पर पहुंच जाते हैं। सामुदायिकरूप से कोअी सारा का सारा समाज किसी दूसरे समाज से हृदय-दान प्राप्त कर सके—यह तो अिस समय कल्पना के परे की बात है। हो सकता है कि किसी दूर के भविष्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन अुतनी अूंची सतह पर जा पहुचे। अिस समय अुपस्थित विषय है—सामूहिक आन्दोलन का हृदय पर होनेवाला असर। वह अूपर बताये गये पहले दो प्रकार का होता है—अेक हृदयघात और दूसरा हृदय-परिवर्तन। प्रत्येक शिक्षाशास्त्री, समाज-सुधारक और सत्याग्रही सेनानायक के लिअे यह जान लना अनिवार्य हो जाता है कि किस प्रकार के दबाव से हृदयघात या हृदय-परिवर्तन सिद्ध होगा? और कौनसी चोट हृदय का कैसा रूप प्रकट करेगी?

मैं– तुम्हारी अिस बात को तो मैं कबूल करूंगा कि चोट पहुँचाये बिना आदमी की प्रगति नही होती। लेकिन चोट पहुँचाने मे यदि गलती हो जाय, तो?

कम्बुग्रीव–चतुर–से–चतुर सेनापति भी हमला करने में गलती कर जाता है, परन्तु अुसकी सिफत तो अिस बात में होती है कि वह सबसे पहले विपरीत परिणाम को भाँप लेता है; और फौरन अपना मोर्चा बदल देता है। यही वजह है कि बापूजी बार बार अपनी हिमालय से भारी भूलों का अैलान करते है; बीच ही मे लड़ाअी रोक देते हैं; और पिछली बार राजकोट मे तो अुन्होंने सारा मैदान ही छोड़ जाने की अद्वितीय वीरता दिखलायी है।

मैं—सारी दुनिया को जहां निरी कायरता नजर आती है, वहीं सत्याग्रह के शास्त्रियों को वीरता की चरम सीमा दीख पड़ती है! अिसीको तो नौजवान लोग सठियायी हुअी बुद्धि कहते हैं।

कम्बुग्रीव– अगर राजकोट-प्रकरण की बहस में तुम मुझे घसीटोगे तो मैं अपनी

बात खतम नहीं कर पाअूंगा। हृदय-परिवर्तन के बदले परिणाम में हृदयाघात की मात्रा बढ़ती हुअी देख कर अपने दल के सारे-के-सारे बलिदानों को भुला देने की और अपने सैनिकों के अुत्साह का संवरण करने की यह अद्भुत वीरता अपनी जिन्दा लाशों से समुद्र की खाअी पाटने की जापानियों की वीरता-से कअी गुनी बढ़कर है।

हृदय संघर्ष के रणवीरों को अितना ध्यान तो रखना ही चाहिअे कि कहीं हृदय-परिवर्तन के चारों पहलुओं के बदले हृदयाघात के चार पहलू तो प्रकट नहीं हो रहे हैं? यदि आदर के बदले अुदासीनता, सहानुभूति के बदले द्वेश, अुदारता के बदले क्रूरता और अुत्सर्ग, यानी अपनी चीज या अपनी सत्ता का थोड़ा-सा अंश भी दूसरे को सौंपने की वृत्ति के बदले अपनी प्रतिष्ठा, अिन्सानियत और अपनी हस्ती भी खतरे में डालने की टेक अगर विरोधी पक्ष में बढ़ने लगे तो वह सत्याग्रह नहीं, विनाशाग्रह कहलायेगा। सारे संघर्ष को अैसी अधोभूमिका पर गिरने से बचाने के लिअे अपने पिछले सारे बलिदानों को भुला देना, और विरोधी पक्ष पर नये सिरे से नैतिक दबाव डालना साधारण वीरता का काम नहीं है।

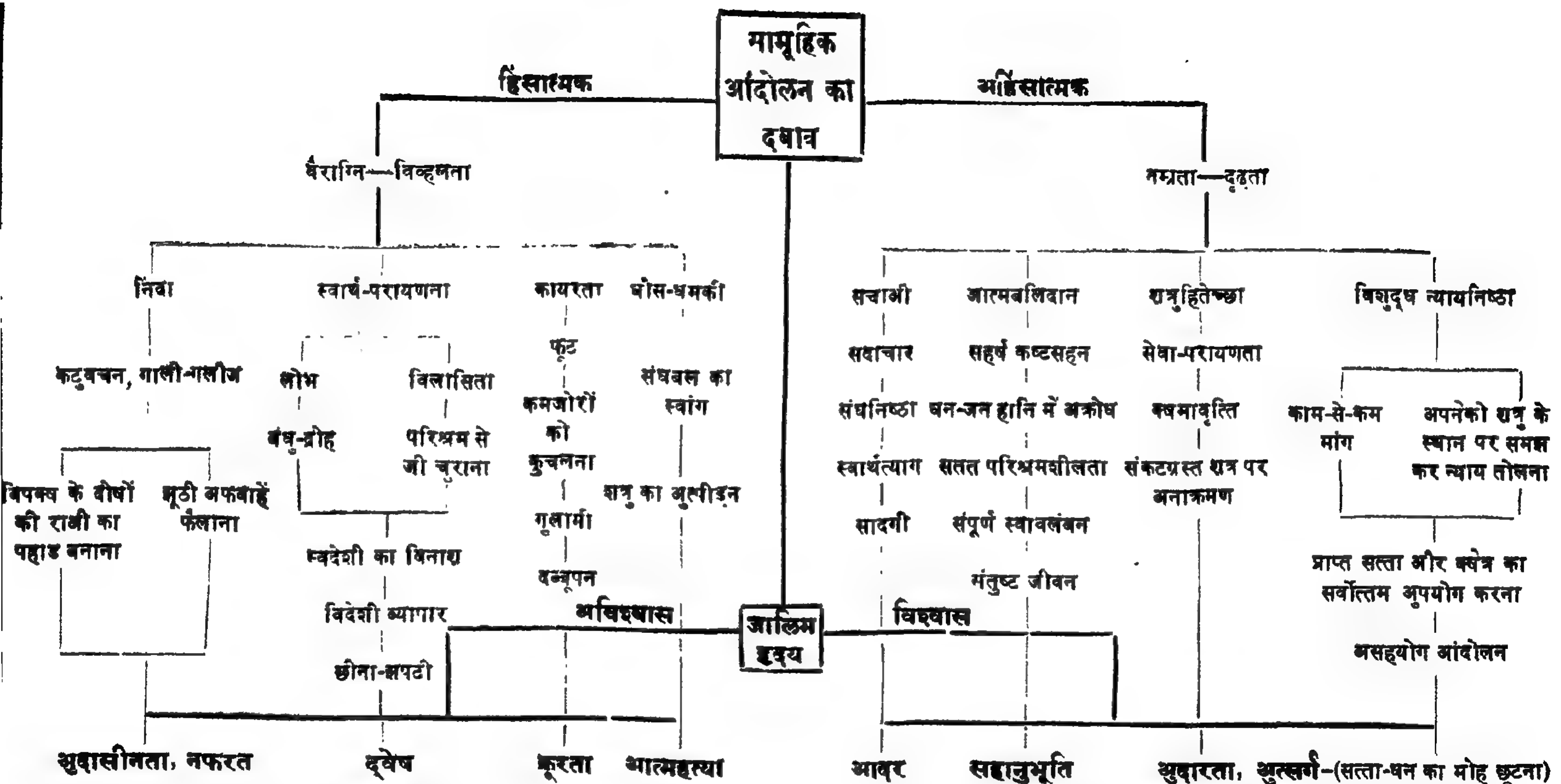
मैं—लेकिन मरें सत्याग्रही, जलें सत्याग्रही, अपने घर-बार बरबाद करें सत्याग्रही; और विरोधी पक्ष दिन-दिन हरा-भरा बनता चले, और अूपर से सत्याग्रहियों पर खार खाता रहे; तो अुसमें सत्याग्रहियों का क्या कसूर?

कम्बुग्रीव—यही तो समझने की बात है। मैं अेक नक्शा तुम्हें बताअूंगा। अिससे हृदय-परिवर्तन और हृदयाघाती बलों का व्यूह तुम्हारी समझ में आ जायेगा। अिस व्यूह का अन्तिम लक्ष्य है विरोधी या जालिम को अपनाना। जैसा कि मैं अिससे पहले बतला चुका हूं हृदय-परिवर्तन का पर्यायवाची शब्द है 'हिलाना' ('पालतू बनाना')। जंगली, खूंखार, निर्मम प्राणी को मार डालना, कत्ल कर देना, मिनटों का खेल है। परन्तु अुसे पालतू बनाना वर्षों और युगों का काम है। किसी जीव को काट कर चबा जाने में जितना स्वाद है अुससे कअी गुना स्वाद जिन्दगी भर अुसे पालने-पोसने में है—अिसका भारतवासियों को पूरा पूरा स्वानुभव है। सत्याग्रह-संग्राम में यही सिद्धान्त काम करता है। किसीका हृदय-परिवर्तन करने, या अुसे पालतू बनानेका मतलब है अुसका विश्वास कमाना। जो आदमी या मनुष्य-समूह विश्वास नहीं कमा सकता अुसके काबू में हम कबूतरों जैसे निर्बल और निःशस्त्र जीव भी नहीं रहते। और जो हमारा विश्वास पा लेते हैं अुनका कार्य करने के लिअे गोला-बारूद की घनघोर वर्षा में हम अपनी जान खतरे में डाल कर दौड़ जाते हैं। बस; अब अिस नक्शे को समझ लो। अिसकी मैं कोअी व्याख्या करना नहीं चाहता।

सम्पादक भाअी! फिर कम्बुग्रीव ने जमीन पर बैठ कर पारिजात की क्यारी में अपने विचारों का पूरा खाका पैर के पंजे से खींच दिया। वह दो हिस्सों में बँटा था— हृदयाघात और हृदय-परिवर्तन। जो बात पहिले मुझे बिलकुल धुंधली दिखायी देती थी वह अुस नक्शे से बहुत स्पष्ट हो गयी। कम्बुग्रीव की अनुमति से अुसकी नकल सर्वोदय के लिअे आपके पास भेज रहा हूं। लेकिन कम्बुग्रीव की अेक शर्त है कि आकाश-दर्शन के नक्शों के काका साहब जैसे विवरण भेज रहे हैं वैसे कम्बुग्रीव से न मांगे जायें। अुसका कहना है नक्शा स्वयं पर्याप्त विवरण है।

आपका आज्ञाकारी

"[illegible]"



नक्शे की समझ—अूपरवाले जिन जिन बलों का जोर नीचे के जिस पलड़े पर पड़ेगा अुसके अनुसार 'जालिम हृदय', 'हृदयाघात' या हृदय-परिवर्तन की ओर झुकेगा।

२. काले मोटे अक्षरों में छपा नक्शा 'जालिम हृदय' की गति-विधि का सूचक है और अूपरवाला सादे अक्षरों में छपा नक्शा सामूहिक आंदोलन की प्रगति का सूचक है।

सर्वोदय की दृष्टि

गांधीजी की शर्त

अब की बार गांधीजी ने देश का नेतृत्व अेक छोटी-सी शर्त पर लिया है। शर्त तो छोटी-सी है किन्तु अबकी बार वे अुसका पालन बडी दृढ़ता से करानेवाले हैं। लोग गांधीजी का नेतृत्व तो चाहते है किन्तु अुनकी दृष्टि को नहीं समझते। चन्द लोग यह अनावश्यक भी समझते हैं। जो लोग गांधीजी के कार्यक्रम की समालोचना नहीं करते, बल्कि अुसे चुपचाप स्वीकार ही कर लेते हैं, वे सभी गांधीजी की सारी बातें समझते हैं, अथवा मानते है, अैसा अनुमान करना खतरनाक है। जितने लोग अुनका खुल्लमखुल्ला विरोध करते हैं अुतने भर अुनके विरोधी हैं, अैसा हमें नहीं समझना चाहिअे। चन्द लोग बोलने की हिम्मत करते हैं, दूसरे कभी नहीं करते। प्रसंग आयेगा तब देखा जायगा, " सब से भली चुप " अैसा समझ कर वे चलते हैं।

तब क्या गांधीजी की बात सचमुच राष्ट्र-मान्य नहीं है? अैसा होता तो गांधीजी की तीन दिन भी नही चलती। राष्ट्र के अधिकांश लोग स्वभाव से, हृदय से, गांधीजी को मानते हैं——गांधीजी का मार्ग अुनके लिअे अधिक-से-अधिक अनुकूल है। अगर सामान्य जनता और गांधीजी का ही सवाल होता तो किसी किस्म की कठिनाअी नहीं होती। किन्तु बुद्धि में अनेक शाखायें पैदा करनेवाले हमलोग हैं। हम कहते हैं कि हमलोगों का भी तो देश को नसीहत देने का अधिकार है! हम जो नये नये 'वाद' पैदा करते हैं अुनसे देश में बुद्धिभेद पैदा होता है। अतः देश की शक्ति अेकाग्र नहीं हो सकती। किन्तु ये अनेक 'वाद' हम कैसे टाल सकते हैं? अनेक 'वाद' चलानेवाले लोगों पर गांधीजी चिढ़ भी कैसे सकते हैं? देश अुन 'वादियों' का भी है जिनकी सहायता से स्वराज्य का आन्दोलन चलाने की गांधीजी आशा रखते हैं। अुनको अपने-अपने विचार देश के सामने रखने का अधिकार पूरा पूरा होना ही चाहिअे। अुससे अगर गांधीजी का कार्य अुत्तरोत्तर कठिन होता जाता हो तो गांधीजी को वह सब बरदाश्त करना ही चाहिअे। गांधीजी ने आज तक अिस बात की कभी शिकायत भी नहीं की। और यदि की भी हो तो जिसके साथ अुनकी दिन-रात गुफ्तगू चलती है अुस भगवान से ही की होगी। वे पक्के खिलाडी है। कभी यह शिकायत नहीं करते कि मेरे हाथ में ताश के हलके पत्ते क्यों आये? जैसे पत्ते हाथ में आ जावे वैसे ले कर वे खेलने लगते है। अितना ही नहीं, किन्तु अुनको जैसे साथी मिल जाते है अुन्हींको ले कर खेलते हैं। साथी अगर कुछ बिगाड़ भी दे तो वह भी खेल का अंग ही मान कर आगे बढ़ते है।

जब कभी कोअी वैद्य किसीकी चिकित्सा करता है तो दवा के साथ कुछ परहेज भी बताता जाता है। अगर मरीज वैद्य की बातें शुरू से मान जाय तब तो काम आसान है। किन्तु अगर मरीज ने अपथ्य करना जारी रक्खा तो वैद्य को भी अपने परहेज पर ज्यादा दृढ होना पड़ता है।

गांधीजी ने देश में अहिंसा का वायुमण्डल बनाने की जी-जान से कोशिश की——अुपवास

किये, प्रायश्चित्त किये, अपना आन्दोलन स्थगित किया, क्रान्तिकारियों से अनुनय किया। जबतक गांधीजी के कार्य में किसीने बाधा नहीं डाली तबतक वे आगे बढ़ते गये। किन्तु जब देश के ही लोग बे-मौके अपनी अपनी बातें-आगे करने लगे और गांधीजी के मार्ग की समालोचना करने लगे तब देश में बुद्धिभेद पैदा हुआ, संगठन शिथिल हो गया और देश की तैयारी नहीं रही।

अिन लोगों की अेक बात खास ध्यान में लेने लायक है। वे कहते है कि देश में वायुमंडल तो जैसा हम चाहते हैं वैसा हो, किन्तु लड़ाअी का नेतृत्व लें गांधीजी। अेक समाजसत्तावादी नवयुवक ने मुझसे चर्चा करते हुअे कहा कि हम चाहते हैं कि अिस बूढे की शक्ति और हम नौजवानों की अक्ल का अगर संयोग हो जाय जिससे सारा काम अच्छी तरह से चले। मैं अपनी हंसी रोक नहीं सका। बूढे की शक्ति और नौजवानों की शक्तिहीन अक्ल—खासा संयोग है! सभी समाजवादी अिस ढंग से विचार नहीं करते। किन्तु अितना तो कहते ही है कि वायु-मंडल हमारी मर्जी का हो और लड़ें गांधीजी।

अगर युद्ध केवल अेक खेल होता और करोड़ों देशवासियों के जान-माल का सवाल न होता तो बात अलग थी; किन्तु गांधीजी अन्धा युद्ध तो नहीं चला सकते।

निःशस्त्र युद्ध और सशस्त्र युद्ध

सशस्त्र युद्ध के लिअे राष्ट्र की जो तैयारी चाहिअे अुससे बिलकुल भिन्न प्रकार की,—किन्तु अुससे किसी कदर कम नहीं—तैयारी किये बिना हम अहिंसक युद्ध नहीं चला सकते और न सफलता की आशा रख सकते हैं। सशस्त्र युद्ध के लिअे सेना की पूरी तैयारी हो तो काफी है। सामान्य जनता हिम्मत न हारे, कष्ट-सहन के लिअे तैयार रहे और युद्धनीति के प्रतिकूल न चले, अितना बस है।

अहिंसक युद्ध के लिअे अेक खास मर्यादा तक सारी जनता की तैयारी होनी चाहिअे। सशस्त्र युद्ध जारी रहे तभी तक युद्ध की तैयारी की जरूरत होती है। युद्ध समाप्त होते ही लोग अपने हमेशा के पुराने ढंग के जीवन पर वापस जा सकते हैं। अहिंसक युद्ध का रास्ता कुछ निराला ही है। समाज में अगर अहिंसक शक्ति पैदा करनी हो तो अुसका जीवन-क्रम ही बदलना चाहिअे। "हम रहेंगे तो दुनिया के दूसरे देशों के समान मगर लड़ेंगे अहिंसा के ढंग से,"—यह बात चलनेवाली नहीं है। "हम दूसरे देशों के जितना भी राष्ट्र संगठन नहीं करेंगे और तो भी हम अेक राष्ट्र बन कर लड़ेंगे,"—यह कल्पना केवल मनोराज्य ही है।

गांधीजी ने देश का नेतृत्व स्वीकारते समय स्पष्टरूप से कह दिया है कि मुझे देश में सर्वत्र खादी चाहिअे। खादी कोअी वैद्य की फीस नहीं है कि अितनी फीस दे देने पर वह चिकित्सा करेगा। खादी तो राष्ट्र का परहेज है जिसके बिना चिकित्सा हो ही नहीं सकती।

खादी में दो गुण हैं। अेक तो खादी के द्वारा हम देश के गरीब लोगों को अपना सकते हैं; आज जहां अुनको भूखों मरना पड़ता है वहां हम अुन्हें कुछ खिला सकते हैं। स्वयं कातने से हम खादी कुछ सस्ती भी कर सकते हैं। खादी का दूसरा और सब से बड़ा लाभ यह है कि जब सारा का सारा देश खादी पहनने लगेगा

तब हिन्दुस्तान के साथ कपड़े की तिजारत करनेवाले अिंग्लैंड और जापान जैसे देशों की बिगड़ी हुअी निगाह शुद्ध हो जायगी। हिन्दुस्तान के साथ अिंग्लैंड का सब से बड़ा संबंध है कपड़े का। हिन्दुस्तान के देशी मिलवाले भी देश को कुछ कम नहीं चूसते। खादी सार्वत्रिक होते ही अंग्रेजों का मलिन स्वार्थ रहेगा ही नहीं और फिर वे हमारी स्वतंत्रता के हामी बन जायेंगे। कम-से-कम बरबस विरोधी तो नहीं रहेंगे। वे आज जिस तरह हम लोगों के बीच फूट पैदा करते रहते हैं वैसा आगे नहीं करेंगे। अुन्हें अिस बात की शर्म आने लगेगी।

अेक विश्वास हमें दृढ करना होगा कि किसी भी देश की जनता के लिअे स्वतंत्रता का रास्ता कभी भी बन्द नहीं हो सकता। अगर स्वतंत्रता ही हमारा ध्येय हो जाय और अुसके लिअे हम सर्वस्व का बलिदान करने के लिअे तैयार हो जायँ, तो चाहे हमारी संख्या कम हो या ज्यादा — हमारे विरोधी संगठित हों या असंगठित — हम स्वतंत्र हो ही जायेंगे। अिसलिअे अन्तिम विचार करके गांधीजी ने यह निर्णय दिया है कि यदि हम तुरन्त और सचमुच आज़ाद होना चाहते हैं तो हमें मुसलमानों के प्रति मानसिक विरोध भी नहीं रखना चाहिअे। वे कैसे भी चलें, हमें तो अुन्हें अपने भाअी ही समझना चाहिअे और अपने जीवन की सबसे महत्त्व की जरूरत जो कपड़ा— अुसके विषय में पूर्णतया स्वावलंबी बनना चाहिअे। अगर कपड़े के बारे में हम खादीनिष्ठ हो गये तो बाकी ग्राम-अुद्योग हम आसानी से प्रस्थापित कर सकेंगे।

अगर हम बड़े बड़े कल-कारखाने चलाने के फेर में पड़े तो न तो हम देश में अहिंसा का वायुमंडल प्रस्थापित कर सकेंगे और न शस्त्र-युद्ध ही टाल सकेंगे।

का० का०

कस्मै देवाय हविषा विधेम?

स्वतंत्रता-प्राप्ति का पुराना और अितिहास-प्रसिद्ध तरीका युद्ध है। युद्ध में परास्त होने के बाद और सिर पर गुलामी आने के बाद युद्ध की तैयारी के लिअे देश में षड्यंत्र करते रहना और परदेश की मदद के लिअे कुछ न कुछ कोशिश करते रहना— यह अेक बड़ी साधना होती है। अपने आपको व्यवहारकुशल और स्वातंत्र्यवीर समझनेवाले लोग अिसी मार्ग में विश्वास करते हैं। अिस पक्ष के लोगों ने १८५७ के साल में अेक बड़ा प्रयोग कर के देखा। अन्दर की फूट, बे-खबरी, गफलत और चारित्र्यहीनता के कारण अुसमें शिकस्त खायी और वे निराश हो गये। निराशा दीर्घकाल तक नहीं टिक सकती। अुन्होंने फिरसे तैयारी करना शुरू किया। किन्तु यह कार्य कितना बड़ा है, अुसके लिअे किस प्रकार की तैयारी चाहिअे, शत्रु की शक्ति और तैयारी कितनी है—अिसका अुनके पास कोअी हिसाब नहीं था और जिन स्वभावदोषों के कारण हम परास्त हो गये थे अुन दोषों को पहचान कर अुन्हें दूर करने की जो कोशिश होनी चाहिअे थी वह अुनसे नहीं बनी।

अितने में कॉंग्रेस का आन्दोलन आया। अुसके तो रहनुमा अंग्रेज ही थे। अुन्होंने कहा कि "ब्रिटिश जनता न्यायप्रिय है, अुसे हिन्दुस्थान की हालत के बारे में शिक्षित करो, वह हिन्दुस्थान को जरूर न्याय देगी।"

हम लोगों ने अिस तरह लिबरल पार्टी में विश्वास करना शुरू किया और लिबरल दल का तत्त्वज्ञान ही हमारा राजनैतिक स्मृतिशास्त्र बन गया।

बाद में यह पाया कि लिबरललोग मुश्किल से अधिकारारूढ होते हैं और जब होते भी हैं तो दिल के और व्होट–बल के अितने कमजोर होते हैं कि हिन्दुस्थान को सिवा सहानुभूति के और कुछ भी नहीं दे सकते। अुनमें जब हमारा विश्वास कमजोर होने लगा तब हम फिरसे स्वावलंबन की बातें सोचने लगे। अितने में मजदूरदल ने आगे आ कर कहा, 'हम आपके खैरख्वाह है, हम रैडिकल हैं, हम अधिकार-पद पर आते ही आपको सब कुछ दे सकेंगे।' हमारे बडे बडे नेता मजदूरपक्ष के नेताओं के प्रशंसक बन गये। अुसके बाद मजदूरदल कुछ दिन के लिअे अधिकारारूढ हो गया। जॉन मोर्ले के कार्यकाल में जो हालत श्री गोखले की हुअी वही हालत रॅम्से मॅकडोनाल्ड के दिनों मे अुक्त नेताओं की हुअी।

अिस बीच में गरमपक्ष के लोगों ने बम का मार्ग आजमा कर देखा। परदेश में जा कर कितनी सहानुभूति मिल सकती है यह देखने के लिअे वहांवालों के दरवाजे भी खटखटाये। बडी बडी सभायें कराके, सरकार का निषेध करके केवल लोगों में असंतोष जाग्रत करने का निषेधात्मक रास्ता अेक पक्ष ने आजमाया। काम आगे बढा। अितने में भारतीय संस्कृति का हार्द पहचान कर गांधीजी ने सत्याग्रह का और रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा राष्ट्रसंगठन का प्राचीन, किन्तु नया, रास्ता निकाला। परदेशी विचार पर निर्भर रहनेवाले लोगों को पहली बार अेक स्वदेशी तत्त्वज्ञान मिला जिसमें शक्ति की सच्ची अुपासना थी; और थी राष्ट्रनिर्माण की पूरी सामर्थ्य।

अिस मार्ग का अनुसरण करके देश के कअी स्त्री-पुरुष जेल में गये। गांधीजी के लाडले और युवकों के प्रतिनिधि पंडित जवाहरलाल नेहरू अिस युद्ध में बडे जोश से शामिल हुअे। किन्तु अुन्होंने गांधीजी के स्वदेशी तत्त्वज्ञान के विषय में शंका प्रकट कर परदेश का समाजशास्त्र प्रतिष्ठित किया और देश के नवयुवक गांधीजी की ठंडी युद्धनीति से अूब कर देश में मतभेद पैदा करने लगे। अिन लोगों को रूस का तत्त्वज्ञान और रूस की विजय बहुत ही आकर्षक मालूम हुअी; और देखते देखते गांधीजी की जगह मार्क्स, लेनिन और स्टॅलिन ने ले ली। अब देश में स्वातंत्र्य का जोश बढता चला। अुसके साथ साथ कमजोरी बढानेवाले मतभेद भी बढे। जवाहरलालजी ने मतभेद की नींव तो डाली किन्तु वे स्वयं कॉंग्रेस के साथ ही रहे और गांधीजी के नेतृत्व का अुन्होने कभी भी त्याग नहीं किया। जवाहरलालजी के समाजवाद से मजदूर और किसानों में अेक नयी वृत्ति आ गयी जिसके साथ अगर गांधीजी की अहिंसा भी होती तो कॉंग्रेस के काम को सबसे अधिक फायदा पहुंचता। किन्तु मार्क्स, लेनिन, स्टॅलिन कहां अहिंसावादी थे?—फिर हमारे किसान-मजदूरों के आन्दोलन से अुसका आग्रह कैसे रक्खा जाय? गांधीजी को खुश रखने के लिअे और कॉंग्रेस में रहने के लिअे अहिंसा का कुछ संकल्प मुह से बोल दिया और अुस का मनमाना अर्थ कर लिया; और छुट्टी पायी!—अैसा तरीका देश में बहुत चला।

देश में जोश बढ़ा, वाद-विवाद बढ़ा, मतभेद बढ़े, किन्तु अुसकी शक्ति नहीं बढ़ी—वह तो घट ही गयी।

अैसी हालत में वर्तमान महायुद्ध आया। हमारी अहिंसा-निष्ठा, हमारी संस्कृति-निष्ठा कितनी गहरी है या कितनी छिछली है—अिसकी अेक क्षण में कसौटी हुअी और राष्ट्र को अपना दिल टटोलने का मौका मिला।

अब हम देखते हैं कि जहां 'रेस' (वंश) का खयाल बढ़ता है वहां 'गोरे' और 'हब्शी' के जैसा सवाल खड़ा होता है। चाहे आप अमेरिका में जाअिये या दक्षिण आफ्रिका में। जहां 'वंश' का सवाल आया वहां 'गोरे' और 'पीले' का झगड़ा बढ़ता है; फिर वह अमेरिका के जापानी रेस्टरां के बारे में ही क्यों न हो। जहां 'वंश' का सवाल आता है वहां 'जर्मन' और 'यहूदी' का भी झगड़ा शुरू होता है और अुसकी निर्दय सफलता देख कर सारी दुनिया चकित हो जाती है।

यूरोप में समाज-सत्तावाद को बढ़ता देख कर राष्ट्रपूजा ने—नैशनॅलिज़म ने— नया रूप धारण किया और वह 'फैसिज़म' और 'नात्सीज़म' में परिणत हो गया।

हिन्दुस्तान में बिपिनचन्द्र पाल और अरविंद घोष के प्रचार से जो मैजिनीछाप राष्ट्रीयता बढ़ गयी थी अुसका विरोध श्री रवीन्द्रनाथ ने किया। स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्रीयता कुछ और तरह की थी। अुसका प्रचार भारत में बहुत हुआ। अब गांधीजी ने भारतीय ढंग की अेक राष्ट्रीयता चलायी है जिसकी बुनियाद में भारतीय संस्कृति है, जो सब धर्मों को समान मानती है, सबों का स्वीकार करती है और भिन्न भिन्न धर्म, पंथ और फिरकों को अेकत्र ला कर अुनका अेक कुटुंब बनाना चाहती है। अिस बुनियादी सर्व-संग्राहक भारतीय संस्कृति का व्याकरण है—सत्य, अहिंसा, सेवा, त्याग और बलिदान। जो लोग अिस व्याकरण के नियमों का पालन नहीं करते वे भारतीय संस्कृति को क्षीण करते हैं। मगर भारतीय संस्कृति अुन्हें निबाह कर ही अुन्हें शुद्ध करने की और आत्मसात् करने की श्रद्धा रखती है।

रूस के प्रति हमारे देश में जो श्रद्धा और भक्ति पैदा हुअी थी अुसका प्रचार बहुत हुआ। और "अगर हिंसा से—जितनी अत्यावश्यक है अुतनी ही हिंसा करके—हम स्वतंत्र बन सकते हैं तो हिंसा का परहेज क्यों रक्खा जाय," अैसा कहनेवाले लोगों की संख्या बढ़ी। किन्तु स्टैलिन ने यह सिद्ध कर दिया कि हिंसा शत्रु को जब मारेगी तब मारेगी, परन्तु हिंसाकरनेवाले की आत्मा को, अुसकी तत्वनिष्ठा को और लोकहित को तो प्रथम मार डालती है। अब भारत के समाजवादी लोग सोचने लगे हैं कि हम रूस का साम्यवाद ही चलावें या अुसका कोअी नया अहिंसक संस्करण तैयार करें।

अब अेक तरह की राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि सावरकर हैं और दूसरी तरह की राष्ट्रीयता के सुभाषबाबू। अिनपर राष्ट्र का कुछ न कुछ मोह अवश्य है; किन्तु विश्वास नहीं बैठ सकता। अॅबिसीनिया का और स्पेन का अनुभव होने के बाद जिस तरह लीग ऑफ नेशन्स की परीक्षा हो चुकी अुसी तरह पोलेंड और फिनलेंड के बाद रूस के कम्युनिज़म का भी अिम्तिहान हो गया है। कम्युनॅलिज़म और कम्युनिज़म में यह अेक साम्य है कि दोनों समूचे समाज का विचार नहीं करते।

अब तो न रूस के पीछे जाने को जी चाहता है, न दूसरों को भिन्न या पराये माननेवाली राष्ट्रीयता के ही पीछे जाने का। मतमतान्तर तो बहुत हैं। "किसके पीछे जायँ?"—"कस्मै देवाय हविषा विधेम?"

१२-१२-'३९ का० का०

संघवृत्त

सरदार वल्लभभाओ

अिधर कुछ अखबारों में अैसी अफ़वाह छपी है कि सरदार वल्लभभाओ ने 'गांधी सेवा संघ' से अिस्तीफ़ा दिया है; और हर अेक की अपनी-अपनी कल्पनाशक्ति के अनुसार अुस अिस्तीफे के कारण भी बताये गये हैं। अिस मामले में सच बात अिस प्रकार है:—

कओी दिनों से सरदार वल्लभभाओ संघ की सदस्यता से मुक्त होने की अिच्छा करते रहे हैं। यह बात संघ के सदस्य शायद जानते ही होंगे। गांधीजी ने भी वृन्दावन-सम्मेलन में अिसकी तरफ कुछ अिशारा किया था। (देखिये विवरण पृष्ठ ३७, अथवा 'सर्वोदय' अंक ११, जून १९३९, पृष्ठ ३१)

लेकिन अुस समय अुसके जो कारण थे, वे बाद में नहीं रहे। मगर फिर भी, पार्लमेंटरी बोर्ड का काम सम्हालने में सरदार कदम कदम पर यह महसूस करते थे कि सेवक-सदस्यता का धर्म अुसके शुद्ध रूप में निबाहने में अुन्हें धर्मसंकट का सामना करना पड़ता है। अुनके दिल में हमेशा अिस विषय में शंका बनी रहती थी। अिसकी तरफ अुन्होंने अपने वृन्दावन के भाषण में कुछ अिशारा किया है। श्री जमनालालजी संघ के सेवक-सदस्य कहलाने में जो कठीनाओी महसूस करते थे वैसी ही परिस्थिति यह भी थी। अिसलिअे कार्यवाहक समिति की हाल की बैठक में अिस विषय की चर्चा हो कर यह निश्चित हुआ कि अुन्हें सेवक-सदस्यता से मुक्त हो कर सहायक-सदस्य रहने की अिजाजत दी जाय। यह खबर सर्वोदय के पिछले अंक में ही दी जाती। परंतु अुसकी बाजाप्ता कार्रवाओी (विधि) पूरी नहीं होने पायी थी। अिसलिअे वह न दी जा सकी। अिस बीच में कुछ सुनी-सुनायी बातों के आधार पर कुछ अखबारों के संवाददाताओ ने कल्पना की अिमारतें खड़ी करना शुरू कर दिया। मतलब यह कि, सरदार वल्लभभाओ अब संघ के सहायक-सदस्य हो गये हैं और अुनकी संघ की कार्यवाहक समिति की ट्रस्टीशिप और सदस्यता कायम है।

अध्यक्ष

मेरे बारे में भी यह बात फैलायी गयी है कि, हालांकि मेरी मियाद सम्मेलन के वक्त खतम होती है तो भी, तुरन्त निवृत्त होने की अिच्छा से मैंने अपना त्याग-पत्र पेश कर दिया है। अिस बात में कुछ भी सत्य नहीं है।

तकली या चरखा?

कुछ सदस्यों की राय है कि सम्मेलन के सूत्र-यज्ञ में चरखे के बदले तकली चलाने की सूचना सदस्यों को दी जाय। यह तो मैं मानता हूं कि चरखे की अपेक्षा तकली में सामूहिक कताओी की दृष्टि से अधिक

गुण है। सबसे बड़ी बात यह है कि अुस में नाद बिलकुल नहीं होता; जगह कम लगती है और कुशल और सशक्त आदमी के हाथ में वह चरखे के बराबर काम दे सकती है। फिर भी, चरखे की मुमानियत करना मैं ठीक नहीं समझता; क्योंकि चरखे में भी अेक अैसा गुण है जो तकली में नहीं पाया जाता। वह यह कि अशक्त आदमी भी अुसे चला कर लाभ अुठा सकता है। मेरे जैसों के लिअे तकली चलाना असंभव-सा है। और फिर अब की सम्मेलन में कताअी का कार्यक्रम दो घण्टों का रखना तय हुआ है। यज्ञ-कार्य का सब से अच्छा प्रबन्ध तो वह है कि जिसमें अशक्त से अशक्त भी हाथ बटा सके। असलिअे यह खयाल पैदा करना अुचित नहीं है कि सूत्र-यज्ञ में चरखा नहीं चलाना चाहिअे। लेकिन मैं अिस विचार से सहमत हूं कि जितने सदस्य तकली चलाने में कुशल हैं वे सामूहिक कताअी के लिअे चरखे की जगह तकली पसंद करें।

कि. घ. मशरूवाला
अध्यक्ष, गांधी सेवा संघ

वृन्दावन-विवरण

वृन्दावन-सम्मेलन का विवरण छप कर तैयार हो गया है और सदस्यों के पास भेज दिया गया है।

विवरण की कीमत डाकव्यय सहित अेक रुपया रक्खी है।

मलिकन्दा-सम्मेलन

आगामी सम्मेलन के बारे में परिपत्र भी ब-दस्तूर सदस्यों की सेवा में भेजा जा चुका है। सम्मेलन में विचारार्थ प्रस्ताव, प्रश्न आदि जो सदस्य भेजना चाहें, वे अुन्हें शीघ्र ही भेजने की कृपा करें।

जो सदस्य सम्मेलन में अुपस्थित न हो सकें वे सम्मेलन के सात दिनों तक अधिक-से-अधिक समय दे कर चरखा कातें और अिस तरह अपने-अपने स्थान से ही सम्मेलन में अपना सहयोग देवें। जितना सूत तैयार हो जाय अुसकी सूचना कार्यालय के पास भेजें।

त्याग-पत्र

निम्न लिखित सेवक-सदस्यों ने संघ से त्यागपत्र दिये हैं।

१ श्री रमणीकलाल मगनलाल मोदी
२ श्री. माधवलाल शंकरलाल पंड्या
३ श्री. जयदेव वेदालंकार

कार्य और स्थान

सदस्यों को स्मरण रहे कि अुनके कार्य में और स्थान में बदल होते ही अुसकी सूचना कार्यालय के पास तुरन्त पहुंच जाना आवश्यक है। महत्व के बदल करने के पहले अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करना अुचित है।

द० श्री० धोत्रे
मंत्री, गांधी सेवा संघ

आकाश-दर्शन

[काका कालेलकर]

पिछले साल आकाश की ज्योतियों के बारे में मैं लिखता चला गया; किन्तु पाठकों की ओर से कोओी खास जिज्ञासा नहीं दिखायी गयी। कओी लोगों ने यह मान लिया कि वर्षों पहले मैंने गुजराती में ' देवों का काव्य ' शीर्षक जो लेखमाला लिखी थी अुसीका शायद यह अनुवाद है। अिसलिअे भी चन्द लोगों ने अुसे नहीं पढा! कुछ अैसे भी पाठक थे जिनको न तो देवों से मतलब था और न काव्य-विवेचन से। अुन्होंने लेखों का शीर्षक देख कर ही अुन लेखों से मुह मोड लिया। शीर्षक बदलते ही अुन्हें पता चला कि ये तो हमारे सनातन साथी, प्रसन्न-वदन, तारों की बातें है। तब से वे चाव से पढने लगे है। आकाश-दर्शन सीधा और सरल नाम है। 'देवों का काव्य' वक्रोक्ति थी। देव भले ही परोक्षप्रिय हों, आदमी को सीधी बात पसन्द आती है। अब लोग पढने लगे हैं और मानचित्र भी देखने लगे हैं। पत्र लिख कर पूछते भी हैं। अब मेरा विचार है कि आकाश के कुछ अत्यंत आकर्षक तारक-समूहों की मुख्य आकृतियां बता दू और वह कैसे पहचाने जायँ यह भी कह दू। मुझे ज्योतिष के बारे में बहुत कुछ कहना है। हिन्दुस्तान, अरबस्तान खाल्डिया, मिसर देश, यूनान, रोम, चीन, अमेरिका---सभी देशों के हमारे प्राचीन पूर्वजों ने नक्षत्र-विद्या में दिलचस्पी ली है और अपना आनन्द कओी तरह से व्यक्त किया है। अगर अिन तारा-प्रेमी ज्योतिषियों का वृत्तान्त हम सुनें तो दूसरे विज्ञानवीरों की तपस्या की अपेक्षा अिनकी तपस्या किसी प्रकार कम दर्जे की नहीं मालूम होगी।

ज्योतिषशास्त्र पिछले पच्चीस वर्षों में अितना कुछ बढा है कि अुसने अनन्त का विस्तार भी हमारे लिअे अनन्त गुना बढा दिया है। पहले हम अेक ही विश्व की बात करते थे। ज्योतिषशास्त्र ने देखा है कि जैसे किसी देश में अनेक नगर होते हैं अथवा किसी महासागर में अनेक टापू होते है, या सहारा जैसे वीरान मरुस्थलों में जैसे 'ओअेसिस' अथवा 'रणोद्यान' होते हैं, अुसी तरह अिस अनन्त आकाश में अेक के पीछे अेक अैसे अनन्त विश्व पाये गये हैं। अेक-अेक विश्व में लक्षावधि तारे होते हैं और अेक-अेक तारे के साथ यदि अुनकी ग्रहमालायें हों, तो अुनकी तो कल्पना ही नहीं हो सकती। अिन तारों और तारकनगरो के, तथा अिन विश्वों के अन्तर भी हम पृथ्वी पर बैठे-बैठे नाप सकते हैं। अितना ही नहीं, किन्तु अिन तारों के पेट मे कौन-कौन-सी वायुयें हैं और अुष्णता कितनी है अिसका भी अन्दाजा अुनकी नब्ज देखे बिना ही हम लगा सकते हैं। यह सब किस तरह किया जाता है अिसका भी कुछ बयान करना होगा।

आज कल के दिन---अर्थात रातें---तारक निरीक्षण के लिअे अत्यन्त अनुकूल है। आकाश स्वच्छ होता है, रात्रि में घंटे ज्यादा होते हैं, तारों के तेज मे भी ज्यादा खुमारी आती है और शाम का आध घण्टा और सुबह का आध घण्टा मिल कर हम करीब करीब सारा का सारा आकाश देख सकते है। अिसलिअे पाठक अिन लेखों की राह न देखते हुअे अपने मन से आकाश के अिन दिव्य गणों के साथ परिचय बढावें और अपने ही मन से भिन्न भिन्न आकृतियाँ बनावे। वे पायेंगे कि जो आकृतियाँ अुन्होंने अपने मन से निश्चित की होंगी वे ही अनेक देशों के प्राचीनों ने भी निश्चित की है।

* * *

अिस महीने में हम सब-के-सब ग्रह देख सकेंगे। शाम को पश्चिम में शुक्र का अप्रतिम

तेज ध्यान खींचता ही है; अुसके अूपर गुरु विराजमान है; गुरु के अूपर मंगल और मंगल के अूपर शनि। अिन चारों को अिस तरह-से देख कर हठात् यह विचार आता है कि ये जरा दाहिने-बायें देख कर अेक सीधी कतार में आ जायें तो क्याही अच्छा हो! अगर भगवान अिन्हें "अेक कतार" का हुक्म दें तो वे तुरन्त अेक सीधी रेखा में आ जायेंगे। लेकिन भगवान हमारी आंखों की तृप्ति के लिअे थोड़े ही अिन ग्रहों की कवायत ले रहे हैं?

फरवरी की ६ ठी तारीख के बाद बुध भी पश्चिम की ओर सूर्यास्त के पश्चात् तुरन्त दीख पड़गा। किन्तु थोड़े ही समय में वह सूर्य के पीछे पीछे जायेगा। दिन-पर-दिन बुध पश्चिम में ज्यादा समय रहेगा और सूर्यास्त के बाद वह अुत्तरोत्तर अूपर को दीख पड़ेगा। फलतः अुसका अस्त भी सूर्यास्त के बाद देर से होता जायेगा। करीब अेक महीने तक बुध अूंचा ही अूंचा चढ़ता जायगा। अेक महीने के बाद वह आहिस्ता आहिस्ता नीचे को आता हुआ दिखायी देगा और फिर अुसका पश्चिम में सूर्यास्त के साथ ही अस्त हो जायेगा। पंद्रह दिन की छुट्टी लेने के बाद वह फिर से मार्च महीने के तीसरे सप्ताह में पूर्व में दर्शन देगा। अिस तरह से यह सूर्य का अन्तेवासी कभी पूर्व में और कभी पश्चिम में दर्शन देता रहता है। वह कभी सूर्य से बहुत दूर नहीं जा सकता। अिस वजह से मध्यरात्रि को बुध का दर्शन होना असंभव है।

शुक्र की भी यही हालत है, किन्तु सूर्य से कुछ अधिक दूर होने के कारण वह आकाश में बुध की अपेक्षा कुछ अधिक अूंचा चढ़ सकता है और सुबह और शाम को आकाश में अधिक देर तक दर्शन दे सकता है।

शनि और गुरु दोनों धीमी-धीमी चाल से चलनेवाले ग्रह हैं। शनि का तो नाम ही 'शनैश्चर'—'मन्दगामी'— है। पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करने में अेक साल लेती है तो शनीचर २९ वर्ष में कहीं अपनी परिक्रमा पूरी कर पाते हैं।

शनीचर के बाद और भी तीन ग्रह हैं। किन्तु अुन्हें हम दूरबीन से ही देख सकते हैं। निरी आंखों से अुनमें से कोअी दिखायी भी दे तो भी असंख्य तारों में से अुसे पहचान लेना अशक्य ही है।

अिन सब ग्रहों को अेक परिक्रमा के लिअे जितना समय लगता है वह ध्यान में रखने लायक है: बुध को सूर्य की अेक प्रदक्षिणा के लिअे ८८ (अठासी) दिन लगते हैं। शुक्र करीब अेक साल के अंदर अपनी प्रदक्षिणा पूरी कर लेता है। मंगल का वर्ष ६८७ दिन का है। गुरु का अेक वर्ष हमारे १२ वर्ष के बराबर है और शनि का, जैसा कि हम अूपर कह चुके हैं, २९½ वर्ष का है। अिस के बाद के ग्रह जैसे दूर रहते हैं वैसे अुनके वर्ष भी ९४, १६५ और २५० वर्ष के हैं। अिस तरह से आज सूर्य के आसपास घूमनेवाले ग्रह ९ हैं। अंतिम ग्रह का आविष्कार १९३० में हुआ। अुसका नाम 'प्लूटो' अथवा 'प्रांतक' है। पाश्चात्यों के पुराणों में प्लूटो यमराज का नाम है। हमारे यहाँ यमराज को 'अंतक' भी कहते हैं। अिस ग्रह को प्रांतक कहने से दो बातें ध्यान में आती हैं: अेक तो यह कि वह सूर्यमाला के सीमाप्रांत में है और दूसरी यह कि पाश्चात्य लोगों ने अुसे 'अंतक', यानी 'यमराज', का नाम दिया है। बुध से ले कर प्रांतक तक ग्रहों की आबादी है। अुसके बाद बहुत दूर तक केवल अंधेरा ही अंधेरा है। केवल पोला आकाश ही आकाश है।

* * *

खगोल की सामान्य बातें जाननेवाले लोगों को यह पता है कि हमारा चंद्र कभी पृथ्वी की ओर से मुंह नहीं मोड़ता। वह पृथ्वी के अिर्द-गिर्द हमेशा घूमता रहता है, किन्तु अुसने कभी पृथ्वी को अपनी पीठ नहीं दिखायी।

अिसी तरह बुध और शुक्र भी सदा अपना मुंह सूर्य की ओर रख कर अपनी वफादारी जाहिर करते रहते हैं। दूरबीन से बुध और शुक्र दोनों की चांद के जैसी कलायें दीख पड़ती हैं। शुक्र जब पृथ्वी के नजदीक आता है तब अुसका आकार बड़ा होता है, किन्तु अुसकी कला छोटी होती है। जब वह हमसे दूर जाता है तब अुसका बिंब पूर्णिमा के जैसा पूर्ण होते हुअे भी अंतर बढ़ जाने के कारण छोटा दिखायी देता है।

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg. No. N. 741

बावन तोले पाव रत्ती स्वदेशी

मुझे अिसमें गंभीर संदेह है कि कपडे के कारखाने और मिलें बंगाल की मांग कहां तक पूरी कर सकेंगी; और यदि बंबअी, अहमदाबाद या दूसरे स्थानों की तरह वह मांग पूरी की भी जा सके तो भी वैसा करना कहां तक वांछनीय होगा। बहुत पुराने ज़माने से बंगाल में कपडे बुनने का अेक अैसा व्यवसाय रहा है जिसकी कभी सभ्य राष्ट्र प्रशंसा और अीर्ष्या करते थे। बंगाल के सामाजिक संगठन का यह अुद्योग अेक महत्त्वपूर्ण घटक है। गंगा के डेल्टा के हर अेक ज़िले में पचास हजार से ले कर अेक लाख तक आदमी जन्म, स्वाभाविक प्रवृत्ति और पेशे से जुलाहे हैं। विदेशी प्रतियोगिता के मारे और प्रोत्साहन के अभाव में वे बेचारे भूखों मर रहे थे। स्वदेशी आन्दोलन ने अुन्हें मानो नया जीवन दिया है; अुन्हे नया जोश और गति दे कर अुनकी शक्ति बढायी है। अिस देशी दस्तकारी का विकास मेरी निगाह में अुतना ही महत्त्व रखता है जितना कि मिलें और कारखाने। बल्कि अधिक। क्योंकि वह अेक स्वयं–व्यवस्थित, स्वयं–संचालित और स्वाश्रयी योजना है। अुसकी बदौलत कअी गुने अधिक आदमियों को काम मिलता है; और वह अधिक मज़बूत आर्थिक सिद्धांतों पर स्थित है। मिलें चाहे पनपें या मुरझायें: लेकिन अेक जाति कैसे नष्ट हो सकती है?

७:१०:१९०७
बंगभंग-दिन

—बाबू अंबिकाचरण मजूमदार

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा
अंक ८ वाँ

मार्च
[illegible]

अेक अंक...	.... रु०	०-६-०
वार्षिक ...	... रु०	३-०-०
बर्मा में ...	... रु०	३-८-०
विदेश में ...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)		

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है:

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अैण्ड कंपनी, ८, राअुण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, कॅनाट सर्कस, न्यू देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनअू। (८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअुस, भागाघट, सूरत।
(१०) सस्ता साहित्य मंडल, अिन्दौर।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

मार्च, १९४०
वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

मंत्र—संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृत मश्नुते ॥ १४॥

अर्थ—विकास और निरोध, दोनों सहित जो अुस आत्मतत्त्व को जानते हैं, वे (अुस आत्मतत्त्व के बल) निरोध से मृत्यु को पार कर विकास से अमृत को पहुँचते हैं।

टिप्पणी—अिस मंत्र में 'असंभूति' के लिये 'विनाश' यह दूसरा पर्यायशब्द प्रयुक्त है। अुसका अुद्देश यह है, कि दोषनिवृत्ति या निरोध के दो हिस्से हैं, (१) नये दोषों से बचना, (२) पुराने दोष छोड़ना। 'असंभूति' शब्द के अक्षरार्थ से पहला हिस्सा सुझाया जाता है। दूसरा हिस्सा सुझाने के लिये 'विनाश' शब्द है। योगशास्त्र 'निरोध' शब्द में दोनों हिस्सों का समावेश करता है।

मन्त्र—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५॥

अर्थ—सुवर्णमय पात्र से सत्य का मुख ढँका हुआ है। हे विश्वपोषक प्रभो, मैं सत्य-धर्म का अुपासक हूं। मुझे दर्शन दिलाने के लिअे तू अुसे प्रकट कर।

टिप्पणियां—(१) 'सत्यधर्म' शब्द का अुल्लेख अुसके पुराने रूप में ('सत्यधर्मन्') ऋग्वेद ने चार-पांच बार किया है। वहां वह बहुव्रीहि है। अिसलिअे अुसका अर्थ होगा "सत्य की अुपासना जिसका धर्म है वह।"

(२) यह वैदिक धर्म की सार्वभौम प्रार्थना है। अिसी में से अगले तीन मंत्रों में जो ध्यानत्रयी है अुसका संपादन करना है।

मनुष्य की स्वभवागत अहिंसावृत्ति

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

–१–

कअी वर्ष बीत गये। (शायद सन १९२२ या '२३ की बात है।) अमलनेर का तत्त्वज्ञान-मन्दिर देखने गया था। महाराष्ट्र के अेक प्रसिद्ध अध्यापक, जो अब दिवंगत हो चुके हैं, अुस वक्त वहां काम करते थे। अुन्होंने मुझसे कहा कि पौर्वात्य और पाश्चात्य तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन करके पौर्वात्य तत्त्वज्ञान, विशेष कर वेदान्त, कितना श्रेष्ठ और पूर्ण है—यह सिद्ध करने का प्रयत्न अुस संस्था में रहनेवाले विद्वान करते हैं। अपनी संस्था की बहुत-सी जानकारी देने के बाद अुन्होंने मुझसे सत्याग्रहाश्रम का हाल पूछा। मैंने वह बतलाया। बाद में वे मुझसे कहने लगे, "देखिये, मैं सच कहता हूं। आप बुरा न मानिये। हम लोगों को आपकी यह अहिंसा बिलकुल नहीं जँचती। यह तो गांधीजी का अेक खब्त है। वह मनुष्यस्वभाव के विरुद्ध है।" वगैरा वगैरा।

अैसा कहा जा सकता है कि यह राय—अगर सारी महाराष्ट्रीय जनता के मत की नहीं, तो कम से कम जिस शिक्षित वर्ग ने आज तक महाराष्ट्र का जनमत बनाया है और अुसका नेतृत्व किया है—अुस वर्ग के मत की प्रतिनिधि-रूप है।

प्रयोगों द्वारा मत-परिवर्तन

अपनी जो राय बन गयी हो अुसे साहित्यिक और तार्किक शक्ति के जरिये बडी कुशलता से प्रतिपादन करने की कला में यह विद्वान वर्ग सिद्धहस्त है। अिसलिअे लोगों में दूसरे किसी मत के प्रति श्रद्धा अुत्पन्न करने के लिअे पहले अिस विद्वान वर्ग के मत में क्रान्ति कराना जरूरी हो जाता है। जब तक हम अिनका मत-परिवर्तन नहीं कर सकते तब तक चाहे साधारण जन-स्वभाव दूसरी तरह का और अहिंसा-शक्ति के अनुकूल क्यों न हो, तो भी लोगों की सारी शंकाओं का निरास हम नहीं कर सकते। सभी चित् शक्तियों का यह धर्म है कि साशंक अवस्था में वे अपना पूर्ण और बलवान् स्वरूप प्रकट नहीं कर सकतीं। कारण स्पष्ट है। स्वस्थ शरीर में किसी रोग के जन्तु पैदा कर देना जितना आसान है अुतना अुन जन्तुओं का वहां से अुन्मूलन करना नहीं है। शंका पैदा करना जितना आसान है अुतना आसान अुसका निरसन करना नहीं है। अुसके लिअे केवल साहित्यिक और तार्किक कला ही काफी नहीं है। बल्कि बार बार अनेक प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा अनुभव से सिद्ध करने की तथा लोगों की वृत्ति भिन्न संस्कारों द्वारा नये ढाँचे में ढालने की जरूरत होती है। अतः अिस काम के लिअे अहिंसा-शक्ति का प्रतिपादन करनेवाले साहित्यकारों और तार्किकों की अपेक्षा अुस शक्ति के कुशल सेनापति अधिक योग्य हैं। अुन्हें अपने अहिंसा के प्रयोगों द्वारा विद्वानों के मत-परिवर्तन का प्रयत्न करना चाहिअे। वे सफल ही होंगे यह कहना तो मुश्किल है। क्यों कि छुटपन-से जो मत कायम हो जाता है वह अेका-अेक नहीं बदलता। और अगर मत बदल भी जाय तो भी स्वभाव नहीं बदलता; और मत बदलने की चेष्टा करनेवाले के प्रति मत्सर का भाव पैदा होने का संभव रहता है। यह

विषय केवल मत से संबंध रखनेवाला नहीं है। यह स्वभाव का सवाल है। अिसलिअे मत-परिवर्तन कराने का प्रयत्न करनेवाले पर क्रोध भी आता है। लेकिन यद्यपि वर्तमान विद्वानों का मत न बदले; तो भी अहिंसा के सफल प्रयोग नयी पीढ़ी के जीवन को नये ढाँचे में ढालने में सहायक होंगे और साधारण जनता को जल्दी ही जँचने लगेंगे।

अतः मेरी तो यह राय है कि जिनका आज अहिंसा में थोड़ा-बहुत विश्वास है; वे, जो विद्वान् अुसे नहीं मानते अुनका, साहित्य और तर्क द्वारा मत-परिवर्तन कराने की झंझट में न पड़ें। बल्कि वे अहिंसा के सफल प्रयोग कर दिखाने का और नयी पीढ़ी में अहिंसावृत्ति निर्माण करने का प्रयत्न करें। किसी जमाने में पृथ्वी अपने-आप की और सूर्य की चारों तरफ घूमती है; अैसा कहनेवाले लोग सिर्री समझे जाते थे। किसी जमाने के वैज्ञानिकों को यह असंभव प्रतीत होता था कि हवा की अपेक्षा भारी पदार्थ के बने हुअे विमान भी हवा में अुड़ सकेंगे। अिसी प्रकार आज के मानसशास्त्री और विज्ञानशास्त्री अिस बात पर जोर देते हुअे पाये जाते हैं कि "अहिंसा साधारण जनस्वभाव के प्रतिकूल है;" और यह कि "विकासवादी वैज्ञानिकों ने प्राणिमात्र में विद्यमान जिस आत्मरक्षा की प्रेरणा का निरूपण किया है अुसी में से हिंसा का अुद्भव हुआ है"। लेकिन अिसके बावजूद भी जिन लोगों की बुद्धि को अहिंसा जँचती है, अुन्हें अनुभव की दिशा में अपना कदम लगातार आगे बढ़ाते रहना चाहिअे।

—२—

सामाजिक विशेषताओं के बारे में भ्रम

आज कल यह कहने का रिवाज जोर पकड़ रहा है कि "हर अेक मनुष्य की अेक खास प्रकृति होती है और प्रत्येक समाज की भी अेक प्रकृति—विशेष होती है। महाराष्ट्रीय स्वभाव फलाने तरह का होता है, गुजराती ढिमके तरह का, बंगाली अैसे होते हैं, कानडी वैसे होते हैं, मुसलमान में अमुक खासियतें होनी ही चाहिअें"—आदि आदि तरह की बातें हम आज-कल बहुत जोरों से कहने लगे हैं। गुजरातियों का महाराष्ट्रीयों के विषय में, या महाराष्ट्रीयों का गुजरातियों के विषय में, कोअी खास राय कायम कर लेना अल्प अनुभव का परिणाम है। समझदार लोगों को अैसे विचार हरगिज नहीं फैलाने चाहिअें। बल्कि अुन्हें तो अपने प्रान्त के लोगों की अैसी धारणायें दूर करने की कोशिश करनी चाहिअे। अैसी गलत धारणाओं की बदौलत प्रान्तों में परस्पर विद्वेष पैदा होता है। लेकिन ये धारणायें बिलकुल अूपरी होती हैं। अुनके कारण आक्षेपित समाज के लोगों का स्वभाव बदलता हो, सो बात नहीं। अुदाहरण के लिअे, महाराष्ट्र में अगर यह धारणा हो कि गुजराती लोग भावना-प्रधान होते हैं, या महाराष्ट्र के देशस्थ ब्राह्मणों की अैसी धारणा हो कि कोंकणस्थ ब्राह्मण भावनाशून्य होते हैं, अथवा कोंकणस्थ ब्राह्मणों की यह धारणा हो कि देशस्थ फूहड़ होते हैं, तो अुसकी बदौलत जो व्यवहार-कुशल गुजराती हैं, जो कोंकणस्थ भावुक हैं, या जो देशस्थ व्यवस्थित हैं, अुनका स्वभाव बदलने की कोअी संभावना नहीं है।

लेकिन जब किसी समाज के लेखक या वक्ता अपने समाज के विषय में यह कहने लगते हैं कि

"हम अैसे हैं और वैसे हैं, हमें फलानी चीज जँचती है और अिसकी हरगिज नहीं जँच सकती, हमारे खून में यह है और वह नहीं है, हमारी परंपरा अमुक है", आदि आदि—तब अेक बड़ी भयानक बात पैदा हो जाती है। क्योंकि अैसी बातें बार बार दोहराने से जो संस्कार स्वभावगत न हों वे भी अुन बातों के लगातार सुनते रहने से पैदा होने लगते हैं। "गांधीजी गुजराती हैं अिसलिअे हमें पसन्द नहीं हैं; अहिंसा भावनामय है, अिसलिअे हम अुसके खिलाफ हैं; लोकमान्य ने अहिंसा का प्रतिपादन नहीं किया अिसलिअे हम अुसे नहीं चाहते; श्री समर्थ रामदास के साहित्य में हिंसा या मुसलमानों के द्वेष को स्थान है अिसलिअे हम अहिंसा और सांप्रदायिक अेकता की बातें सुनना नहीं चाहते; तुकाराम महाराज ने भी दुष्टों का नाश करने के पक्ष में अपनी सम्मति दी है अिसलिअे अहिंसाधर्म हमारे प्रान्त के लिअे अनुकूल नहीं है; अहिंसा जैनों और बौद्धों की है, वह हिन्दुओं की नहीं है"—अिस प्रकार के संस्कार करते रहने से, अहिंसावृत्ति अुत्पन्न होना संभव और अुचित हो तो भी, वह चित्त में घर नहीं कर सकती।

सद्वृत्ति और असद्वृत्ति

मतलब यह कि, बुद्धिमान मनुष्य को यह अुचित नहीं है कि वह हर अेक सत् या असत् वृत्ति को प्रान्त-स्वभाव बनाने की चेष्टा करे। अगर हिंसा ही अुचित हो तो अुसकी नींव केवल महाराष्ट्र में ही पुख्ता हो यह काफी नहीं है। अगर अहिंसा ही अुचित हो तो केवल गुजरात में अुसका विकास होने से काम नहीं चलेगा। हिंसा, अहिंसा, या दोनों का तारतम्यपूर्ण मिश्रण—जो कुछ भी मनुष्य की अुन्नति के लिअे अुपयुक्त हो—अुसका विकास प्रत्येक मनुष्य में कराने की कोशिश होनी चाहिअे। हिंसा-अहिंसा, दया-क्रोध, क्षमा-दंड, आदि वृत्तियां हैं, न कि कृतियां। वृत्ति में व्यक्तिगत विशेषता की न्यूनाधिकता रहेगी। लेकिन भौगोलिक या जातीय कारणों से विशेषता नहीं होनी चाहिअे। कम से कम अुसे पैदा करने की कोशिश तो कदापि नहीं होनी चाहिअे। कृतियों के विषय में अिस प्रकार का प्रयत्न किया जा सकता है। अुदाहरण के लिअे, समुद्र के किनारे रहनेवाले लोगों में परंपरा से नाविकविद्या में निपुणता निर्माण हो तो अुस में कोअी दोष नहीं। समतल भूमि पर रहनेवाले लोगों में कृषि-कौशल्य निर्माण करने का प्रयत्न करने में हर्ज नहीं है। लेकिन अहिंसा, शौर्य, भय, अुदारता, कृपणता आदि गुणों की वृत्तियां आम तौर पर सर्वत्र विकसित होनी चाहिअें।

तात्पर्य यह कि, अगर अहिंसा अेक हीन वृत्ति हो तो वह कहीं भी नहीं होनी चाहिअे। और अगर वह अुदात्त हो; मगर महाराष्ट्र में अुसके विकास के लिअे काफी कोशिश न की गयी हो, तो अब अुसके विकास की चेष्टा करनी चाहिअे। केवल प्रान्ताभिमान के कारण अुसका निषेध करना न तर्कशुद्ध है और न स्वार्थ-साधक ही।

—२—

केवल प्राकृत प्राणी

काम-क्रोध-लोभ-भय, आदि के समान अहिंसा-दया-क्षमा-औदार्य आदि वृत्तियाँ भी प्राणिमात्र में निसर्गतः मौजूद हैं। अैसा अेक भी जीवधारी नहीं है जिसमें अहिंसा लेशमात्र भी न हो। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि हिंसावृत्ति-शून्य जीवधारी भी अब तक कभी पैदा नहीं हुआ है।

मनुष्येतर जानवरों की हर अेक योनि में विविध वृत्तियों का विकास विशेष प्रकार से हुआ है। 'यह गाय सीधी है, वह अुद्दंड है'—अिस तरह के कुछ व्यक्तिगत भेद भले ही पाये जाते हों; लेकिन अक्सर ये भेद बहुत छोटे दायरे में रहते हैं। शायद ये भेद पालतू जानवरों में ही पैदा होते हैं। कौओ, चिडियाँ, गीदड, चीलें वगैरा आजाद प्राणियों में अुनके जाति-स्वभाव ही पाये जाते हैं। व्यक्तिगत स्वभाव-भेद कम से कम अितने स्पष्ट तो नहीं होते कि वे नजर आयें।

प्रकृति और प्रयत्न

लेकिन मनुष्य की बात कुछ और हो गयी है। वहां प्रत्येक व्यक्ति, तथा भौगोलिक, राजनैतिक, धार्मिक या जातीय बन्धनों से संबद्ध मानव-समूह, ने अिस वृत्ति का विकास, या ह्रास, भिन्न भिन्न परिमाण में किया हुआ पाया जाता है। मनुष्य केवल निसर्गावलंबित नहीं रह गया है। वह अपनी वृत्ति में भी प्रयत्न-पूर्वक फर्क करता है।

परंतु फिर भी अेक पीढी या अेक व्यक्ति के जीवन में यह परिवर्तन अेक खास मर्यादा में ही हो सकता है। प्रकृतिधर्म में आमूल परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अिसीलिअे तो गीताकार को कहना पडा कि:—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

और अर्जुन का जाति-स्वभाव जान कर अुससे कहना पडा:—

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य अिति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥

तात्पर्य यह कि, मनुष्य में भिन्न भिन्न प्रकार के स्वभाव तथा वृत्ति पैदा करने का सतत प्रयत्न प्राचीन काल-से ही होता आया है। लेकिन अेक अवधि में या व्यक्ति में अुस प्रयत्न को मर्यादित सफलता ही मिल सकी है। अिसी प्रयत्न के पर्यायवाची शब्द हैं—संस्कृति, संस्कारधर्म, शिक्षा, तालीम, सिविलिजेशन, कल्चर, आदि।

अिन प्रयत्नों की और भी अेक मर्यादा है। संस्कार बदलने का कितना ही प्रयत्न करने पर भी मूल वृत्तियों का आमूल अुच्छेद कभी नहीं हो सकता। अर्थात्, अगर अहिंसा मानव-स्वभाव की अेक मूल वृत्ति हो तो अुसका किसी अेक व्यक्ति या समाज से अत्यंत अुच्छेद होना असंभव है। वह अपने विकसित रूप में भले ही न रहे, किन्तु बीजरूप में तो अवश्य रहेगी। चाहे यह बेलि बहुत बडे क्षेत्र में न फैले, फिर भी, वह अपने छोटे-से नपे-तुले दायरे में तो अवश्य रहेगी। अुसमें बडे-बडे फल भले ही न लगें लेकिन छोटे अवश्य लगेंगे। अेक पीढी में वह सूख गयी-सी मालूम हो, तो भी दूसरी पीढी में वह फिर पनपेगी। परंतु अहिंसा-शून्य व्यक्ति या समाज बन ही नहीं सकता। अुसी तरह अगर हिंसा भी मूल वृत्ति हो तो अुसके लिअे भी यही कहना पडेगा।

'हिंसा' और 'हिंसा' की व्याख्या

तब हमें सबसे पहले अिस बात की खोज-बीन करना जरूरी है कि हिंसा और अहिंसा में से मनुष्य की मूल वृत्ति कौनसी है? और यदि ये दोनों अुसकी मूल वृत्तियाँ हों तो अेक दूसरे से अुनका मेल कैसे कराया जाय?

अिसका शोध करने के लिअे 'हिंसा' और 'अहिंसा'—दोनों शब्दों को अेक निश्चित अर्थ देना जरूरी है। अन्यथा, बहुत-सी चर्चा फिजूल जायेगी।

बीजरूप से देखा जाय तो अहिंसा का अर्थ है—अपनी खुद की शारीरिक, वाचिक या

मानसिक अिच्छायें, कल्पनायें, आदर्श, सुख, आवश्यकतायें, आदि का दमन कर दूसरे जीव की सुख-प्राप्ति, या दुःख निवृति के हेतु संतोष-पूर्वक त्याग करनेकी वृत्ति। हिंसा का अर्थ है—दूसरे जीवों की शारीरिक, वाचिक या मानसिक अिच्छा, कल्पना, आदर्श, सुख, आवश्यकता, आदि की पर्वाह न करते हुअे अपनी ही सुख-प्राप्ति, या दुःख-निवृत्ति करने की वृत्ति।

' हिंसा '-' अहिंसा ' का विश्लेषण

अिसमें दो बातें हैं। अहिंसा में दूसरे के लिअे खुद खपने की और अुसमें संतोष मानने की स्पष्ट वृत्ति होती है। हिंसा के लिअे दूसरे को दुख देने की, या होने की, स्पष्ट वृत्ति आवश्यक नहीं है। केवल खुद को सुख हो, अथवा दुख न हो, और दूसरे के सुख दुख की पर्वाह न हो, अितना काफी है। पहली में, यानी अहिंसा में, स्पष्ट भावना खुद कुछ कष्ट सहने की है। और दूसरी में, अर्थात् हिंसा में, स्पष्ट भावना स्वार्थ-सिद्धि की और जीवनाभिलाषा की है। जब जीवनाभिलाषा सुगमता से सिद्ध नहीं होती तब अिस ला-पर्वाही में से कठोरता पैदा होती है। प्राणिमात्र में जो सहज हिंसा है अुनका यह परिस्थिति के कारण बना हुआ विकृत रूप है। वह हमेशा आवश्यक नहीं होती। अिसलिअे यह नहीं कहा जा सकता कि वह प्राणि-स्वभाव है।

कोअी प्राणी जब दूसरों के प्रति अुदासीन या निष्ठुर होता है अुस वक्त वह हिंसक बनता है। जब वह दूसरों के प्रति मोहवश, कारुण्यवश, या अन्य किसी भावना से प्रेरित हो कर, अपनी अुदासीनता या कठोरता छोड़ कर अुसकी चिन्ता करने लगता है, तब वह अहिंसक बनता है। हर अेक प्राणी में ये दोनों वृत्तियाँ निसर्गसिद्ध हैं। दूसरों के लिअे त्याग करने की वृत्ति का अगर निसर्गतः ही अभाव होता और वह वृत्ति बाद में कृत्रिमरूप से प्राप्त की गयी होती, तो संसार में प्राणि-सृष्टि का संभव ही न होता। जन्तु-मात्र अपनी संतान के लिअे, और कअी बार अपनी जाति तथा बंधुओं के लिअे, और कभी कभी तो दूसरी जातियों के लिअे भी, नित्य या नैमित्तिक त्याग करता है; अिसीलिअे प्राणियों का सृजन और पालन हो सकता है। जिन योनियों में समूह-जीवन का विकास हुआ है अुनमें यह वृत्ति विशेष परिमाण में बढ़ी है। अिन प्राणियों में से मनुष्य अेक है।

मनुष्येतर जीवों में संगठित हिंसा का अभाव

अेक दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्येतर प्राणियों में स्वार्थ-साधन की वृत्ति की अपेक्षा त्याग की वृत्ति अधिक बलवान् पायी जाती है। स्वार्थ-सिद्धि के लिअे वे दूसरे प्राणियों का नाश करते तो हैं; लेकिन अुसमें बहुत-सी मर्यादायें होती हैं। बाज दफा अेक ही जाति के दो व्यक्तिओं में लड़ाअी हो कर वे अेक दूसरे की जान भी ले लेते हैं। परंतु हिंस्र प्राणियों में भी कभी अैसा नहीं देखा जाता कि अेक ही योनि के दो दल, अेक दूसरे पर आक्रमण कर युद्ध कर रहे हों। अेक जाति के चूहे दूसरी जाति के चूहों को भले ही मार डालें; लेकिन अेक ही योनि के चूहों का अेक समूह स्व-योनि के दूसरे समूह से दल बना कर लड़ाअी नहीं करता। मतलब यह कि मनुष्येतर प्राणियों के जीवन में आम तौर पर व्यक्तिगत हिंसावृत्ति है। दूसरी योनियों के प्राणियों के नाश के लिअे हिंसा का तात्कालिक संगठन भी क्वचित् पाया जाता है, परंतु आम तौर पर हिंसक संगठन—संगठित हिंसा—नहीं पायी जाती।

अहिंसा और समूह-जीवन

लेकिन जिन प्राणियों में समूह–जीवन पाया जाता है अनमें थोडे या अधिक परिमाण में अहिंसक संगठन होता ही है। यह कहा जा सकता है कि अहिंसावृत्ति के विकास के बाद ही प्राणियों में समूह-जीवन की योग्यता पैदा होती है। या यों कह लीजिये कि किसी कारण से समूह-जीवन की अभिलाषा पैदा होने पर अहिंसक संगठन की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। परन्तु प्राणि जीवन का निरीक्षण करने से यह निश्चितरूप से ज्ञात हो जायेगा कि अहिंसक संगठन और समाज-जीवन का पारस्परिक समवाय संबंध है।

अहिंसक संगठन में मनुष्य कोअी अपवाद-रूप जन्तु नहीं है। मनुष्य चाहे बिलकुल बर्बर अवस्था में हो या बिलकुल अद्यतन 'सभ्यता' की अवस्था में हो, अुसके लिअे अेक समाज के रूप में जीवित रहना तभी संभव होगा जब कि व्यक्ति, व्यक्ति तथा परिवार के लिअे, परिवार जाति के लिअे, जाति राष्ट्र के लिअे और राष्ट्र अखिल मनुष्यसमाज के लिअे, विवेकबल या भावनाबल से त्याग करेंगे। चाहे यों कह लीजिये कि व्यवस्थित समाज की स्थापना का ही दूसरा नाम अहिंसक संगठन है।

मनुष्य का त्रिविध रूप

लेकिन मनुष्य और दूसरे प्राणियों में अेक बड़ा भेद है। पालतू जानवरों के सिवाय दूसरे सारे प्राणी केवल प्राकृत हैं। वे प्रकृति की प्रेरणा से व्यवहार करते हैं और अुसके नियमों के आधीन हो कर रहते हैं। वे स्वप्रकृति या बाह्य प्रकृति में कोअी परिवर्तन करने की कोशिश नहीं करते। मनुष्य भी अन्ततः प्रकृति की प्रेरणाओं और नियमों के आधीन तो है। लेकिन अेक हद तक वह अपनी और बाह्य प्रकृतियों में परिवर्तन करता है। यह परिवर्तन विकृत और संस्कृत दोनों तरह का हो सकता है। मतलब यह कि, मनुष्य प्राकृत, विकृत और संस्कृत—अैसा त्रिविध प्राणी है। त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम,) के समान प्रकृति, विकृति और संस्कृति भी हर अेक मनुष्य में थोडे या अधिक परिमाण में होती ही है।

मनुष्य का स्व-जाति-द्रोह

अिसलिअे हर बात में मनुष्य का व्यवहार दूसरे प्राणियों की अपेक्षा कुछ भिन्न रूप का होता है। अुदाहरण के लिअे, मैं अूपर कह आया हूं कि मनुष्येतर जीवधारियों में नैमित्तिक संगठन का अपवाद छोड़ कर हिंसक संगठन नहीं होता। जीवनाभिलाषा होते हुअे भी आम तौर पर स्वजाति–शत्रुत्व नहीं होता। बल्कि अुनके व्यवहार से तो अैसा प्रतीत होता है कि मानो अहिंसक संगठन से ही जीवन का धारण-पोषण सुचारु-रूप से हो सकता है—अैसी अुनकी धारणा हो। अपने खाद्य प्राणियों के अतिरिक्त दूसरे प्राणियों को फाड़ने की वृत्ति अुनमें साधारण-रूप से पैदा नहीं होती। परंतु मनुष्य में जिस प्रकार अहिंसक संगठन का विशेष विकास हुआ है अुसी प्रकार हिंसक संगठन का भी बहुत बड़ा विकास हुआ है। स्वयोनि-शत्रुत्व-रूपी विकृति बहुत भद्दी तरह से प्रकट हुअी है। अिसलिअे अुस संगठन का अुपयोग केवल खाद्य या पीड़क जन्तुओं के संहार तक ही सीमित न रह कर वह निर्दोष प्राणियों की हत्या तथा स्वयोनि-संहार के लिअे भी बेहद काम में लाया जाता है।

हिंसक संगठन का, यानी लड़ाअी की तैयारी का, सवाल हमारे सामने क्यों अुपस्थित होता है? अिसका अेक ही कारण है। वह यह कि

मनुष्य में स्वयोनि-शत्रुत्व अमर्याद है। हजारों वर्षों के अनुशीलन से मनुष्यों में यह गुण रूढ हो गया है। परंतु अितना ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह गुण चाहे कितना ही प्राचीन क्यों न हो, अुसकी बदौलत प्रकृति में संस्कृति के बदले विकृति ही हुअी है। जिस प्रकार तपेदिक या कोढ़ मनुष्य-समाज में वेद-काल से विद्यमान होते हुअे भी वे विकार ही हैं, विकार ही रहेंगे और अुखाड फेंकने के ही योग्य समझे जायेंगे; अुसी प्रकार स्वयोनि-शत्रुत्व भी; चाहे वह बाबा आदम के जमाने से ही क्यों न चला आता हो; अेक विकार ही है और अुसकी जड़ें खोदना संस्कृति का अुद्दिष्ट कार्य है।

–४–

अेक मार्मिक प्रश्न

अुपर्युक्त सारी बातें स्वीकार करने पर भी अेक प्रश्न रह जाता है "जो दूसरे के लिअे संतोषपूर्वक त्याग करता है अुसके विषय में हमें कोअी शिकायत नहीं है। लेकिन जब अेक तरफ स्वार्थ–तृप्ति की विकृत वृत्ति हो और दूसरी तरफ, संतोषपूर्वक नहीं, बरन लाचारी से, त्याग करने की परिस्थिति हो, तो अुस समय अुस दूसरे पक्ष की स्थिति न तो 'प्राकृत' कही जा सकती है और न 'संस्कृत' ही। अुसे तो 'विकृति' ही कहना होगा। आपकी ही व्याख्या के अनुसार जिसमें त्याग हो परंतु संतोष न हो, अुसे 'अहिंसा' नहीं कह सकते। चाहे अुसे 'भय', 'निःसहायता', या और किसी दूसरे नाम से पुकारिये। लेकिन यह तो मानना ही पडेगा कि वह विकृति है। जिस प्रकार जब अुभय पक्षोंमें विकृति हो तब न्याय के रूप में अेक विवेक पैदा होता है, जो स्वार्थ-साधु पक्ष का निग्रह और त्रस्त पक्ष की सहायता के लिअे निःस्वार्थी मनुष्य को प्रेरित करता है। चिडिया बिल्ली का भक्ष्य है। अिसलिअे अगर बिल्ली चिडिया को पकड ले, तो दर असल हमें बिल्ली पर गुस्सा आने का या दखल देने का कोअी कारण नहीं होना चाहिअे। लेकिन हम यह साफ देखते हैं कि चिड़िया अपनी खुशी से बिल्ली का शिकार नहीं बनती। बल्कि विवश हो कर अपनी प्राण-हानि सहन कर लेती है। अिसलिअे हमारे अन्दर अेक न्यायवृत्ति जाग्रत हो कर वह हमें चिड़िया को बचाने की गर्ज से बिल्ली का निग्रह करने को प्रेरित करती है। अिसमें बिल्ली को बाज दफ़ा अेकाध धौल भी खानी पड़ती है। यदि विवेक से देखा जाय तो बिल्ली पर गुस्सा आने का कोअी कारण नहीं है। अुस पर भी दया ही आती है। लेकिन फिर भी अगर दुबारा वैसा मौका आये तो हम फिर वही करेंगे जो अब किया है। क्योंकि जब बलवान और निर्बल में अपने अपने स्वार्थ के लिअे संघर्ष पैदा होता है, तो बलवान का निग्रह और निर्बल की मदद करने की अेक बलवान वृत्ति हमारे अन्दर मौजूद है। अिसे अहिंसा कहा जाय, या हिंसा? अब अगर संयोग से हम या वह चिड़िया, अुस चिड़िया के अन्दर किसी अुपाय से बिल्ली को हरा कर आत्मरक्षा करने का बल पैदा कर सके; तो अुस बल को विकृति क्यों कहा जाय? बल्कि, यह क्यों न कहा जाय कि हम या वह चिड़िया अधिक संस्कारी बनी?

यहां चिड़िया और बिल्ली भिन्न योनि के जन्तु हैं, यह बात सही है। कदाचित् आप यह भी कहेंगे कि अुनके लिअे दूसरा नियम होगा और मनुष्य-मनुष्य के व्यवहार के लिअे दूसरा। लेकिन यह क्यों? अगर आदमियों में भी अेक व्यक्ति या समूह बिल्ली जैसा बन गया हो, और दूसरा चिड़ियों जैसा, तो वहां भी वही नियम क्यों न लागू किया जाय? अिसलिअे आपके अिस हिंसा-अहिंसा के पृथक्करण में न्यायवृत्ति का स्थान कहां है, सो तो समझाअिये"।

अब अिसका विचार करें।

न्यायवृत्ति, साहाय्यवृत्ति का मानुष रूप है

विचार करने से ज्ञान होगा कि न्यायवृत्ति केवल मानुषी वृत्ति है। दीगर प्रकृतिवश प्राणियों में न्यायवृत्ति जैसी कोअी प्रेरणा नहीं है। अुन में साहाय्य-वृत्ति की प्रेरणा है। खुद कष्ट सह कर भी स्व-योनि के या दूसरी योनियों के जन्तुओं की सहायता करने की वृत्ति प्राणि-मात्र में पायी जाती है। अुसीके मानुषरूप को हम 'न्यायवृत्ति' संज्ञा देते हैं। मतलब यह कि, न्यायवृत्ति प्राणि-मात्र में पायी जानेवाली साहाय्य-वृत्ति का ही अेक रूप है।

साहाय्य-वृत्ति के क्षेत्र में व्यक्ति केवल अकेला खुद नहीं आ सकता। दूसरे प्राणी, या दूसरों के साथ वह स्वयं, आ सकता है। केवल अपने लिअे प्रयत्न करना साहाय्य-वृत्ति नहीं है। वह तो महज जीवनाभिलाषा—प्रकृति-धर्म-गत हिंसा—है। दूसरों के लिअे खपना साहाय्यवृत्ति है। अुसमें संतोष-पूर्वक खुद त्याग करने की वृत्ति है। अिसलिअे वह अहिंसा के क्षेत्र में आती है।

साहाय्यवृत्ति का द्विविध रूप

लेकिन दूसरी सारी वृत्तियों की तरह साहाय्य-वृत्ति ने भी मानवयोनि में विकृत और संस्कृत दोनों रूप लिये हैं। मूलभूत प्रश्न यह नहीं है कि "न्यायवृत्ति अहिंसक है या हिंसक"; बल्कि यह कि "अुसके कौन-से रूप प्राकृत हैं, कौन-से विकृत और कौन-से संस्कृत?" न्याय-वृत्ति—साहाय्य-वृत्ति—अहिंसा से भिन्न नहीं है। अिसलिअे अहिंसा की शुद्धि, वृद्धि और संस्कृति में ही न्यायवृत्ति का परिपोष हो सकता है।

अिसलिअे यह प्रश्न छोड़ कर हम अहिंसक संगठन के मूल प्रश्न का ही विचार करें।

—५—

आत्म-रक्षा का प्रश्न

अिस संबंध में पा क की भूमिका अिस प्रकार हो सकती है :—

"थोडी देर के लिअे आप का यह सारा कथन मान भी लिया जाय; तो भी हमारे सामने सवाल यह है कि स्वयोनि-शत्रुत्व चाहे अेक विकार भले ही हो; परंतु आज वह मनुष्यसमाज में बिलकुल दृढ़ हो गया है। अिसलिअे हमें यह डर सदा बना रहता है कि मनुष्यों की कोअी न कोअी टोली हम पर कहीं धावा न बोल दे। अिन टोलियों पर दूसरी तरह के संस्कार करने का भी कोअी साधन हमें प्राप्त नहीं है। अुनके नेता तो अुनका वह विकार बढ़ाने की ही कोशिश करते रहते हैं और निर्बल टोलियों के संहार के लिअे बहुत बडी तैयारी करने में जुटे रहते हैं। अैसी दशा में सिवाय बलवान हिंसक संगठन के हमारे सामने दूसरा चारा ही कौनसा है?"

प्रश्न का वास्तविक रूप

यदि यह सवाल आज ही हमारे सामने व्यवहार्य रूप में अुपस्थित हो जाय,—यानी, हमें दर असल पूर्ण स्वराज्य हासिल हो जाये और अपने देश का भला-बुरा जो चाहे सो करने की आजादी मिल जाये—तो मैं यह मानता हूँ कि देश की रक्षा के लिअे मौजूदा हालत में हमें किसी न किसी परिमाण में हिंसक संगठन की आवश्यकता रहेगी। क्योंकि देश की रक्षा के लिअे जो विशेष अहिंसक संगठन चाहिअे अुसकी तैयारी हम अब तक नहीं कर पाये हैं। अिसलिअे जिस प्रकार कॉंग्रेस की प्रान्तीय सरकारों को पुलीस की नित्य, और फौज की नैमित्तिक, मदद लेनी पड़ रही है और अुस रूप में हिंसक सामग्री तैयार रखनी पड़ रही है; अुसी तरह यदि आज ही स्वराज्य मिल जाये, तो अखिल भारतीय कॉंग्रेस सरकार को भी—बावजूद अिसके कि अुसका ध्येय अहिंसक है—वही करना पडेगा।

लेकिन हमारे सामने आज यह प्रश्न अुसके व्यवहार्य रूप में प्रस्तुत नहीं है। आज जिन पर देशरक्षा की जिम्मेवारी है अुनका अिस संबंध में अितना निश्चय है कि चाहे भारतवर्ष अेक आवाज से हिंसक साधनों का निषेध क्यों न करता रहे और अुस दिशा में अुनके प्रयत्न में बाधा क्यों न डालता रहे; तो भी वे अपना स्वार्थ जान कर हिन्दुस्तान को विदेशी आक्रमण से बचाने के सब आवश्यक अुपाय करेंगे।

अिसलिअे हमारे सामने यह प्रश्न आज ही समाधान के लिअे प्रस्तुत नहीं है। बल्कि अिस रूप में पेश है कि 'भविष्य में अगर अहिंसा से अुसे हल करना हो तो वह कहां तक संभव है, और अगर संभव हो, तो अुसके लिअे आज ही से कौन-से अुपाय करने चाहिअें ?'

अहिंसक संगठन की अनिवार्यता

अिसी दृष्टि से अब अिसका विचार करें। अिस संबंध में अेक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी चाहिअे। वह यह कि जिस मात्रा में किसी प्रजा का अहिंसक संगठन बलवान होगा अुसी मात्रा में अुसका हिंसक संगठन भी बलवान हो सकता है। अगर अहिंसा का संगठन निर्बल हो तो हिंसा का संगठन भी निर्बल रहेगा। साधारण बोलचाल की भाषा में, जिस मात्रा में कोअी प्रजा सुसंगठित, व्यवस्थित, स्वावलंबी और अेक-दिल होगी अुसी मात्रा में वह दूसरी प्रजा का सामना करने के लिअे सुसंगठित, व्यवस्थित और अेकदिल हो सकेगी। जिस प्रजा में भीतरी फूट, अव्यवस्था, परावलंबन, बहुशाख बुद्धि, आदि दोष पाये जाते हैं, वह बलवान हिंसक संगठन भी नहीं कर सकेगी। अगर हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ, मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ, या सारे हिन्दुस्तानियों को अंग्रेजों के खिलाफ, अथवा सारे साम्राज्य को जापान, जर्मनी आदि के खिलाफ, हिंसक अुपाय काम म लाने हों तो हर अेक को अपने अपने अुद्देश्य के अनुसार अपने अपने दायरे में—यानी सारे हिन्दुओं को, सारे मुसलमानों को, सारे हिन्दुस्तानियों को या साम्राज्यान्तर्गत सारी प्रजाओं को आपस में—सच्चे दिल से अेकता करनी पडेगी। अगर हिन्दुओं में आपस की फूट हो, मुसलमानों में भीतरी संघर्ष हो, या हिन्दुतानियों में आपसी झगडे हों, अथवा साम्राज्य की भिन्न भिन्न प्रजाओं में अंतःकलह हो, तो दुश्मन के खिलाफ बलवान हिंसक संगठन भी नहीं किया जा सकता।

हिंसा की स्वतंत्र प्रतिष्ठा नहीं है

मतलब यह कि, जिस तरह असत्य की कोअी स्वतंत्र प्रतिष्ठा नहीं है, अुसे किसी न किसी

सत्य के आधार पर ही खड़ा होना पड़ता है; असी तरह हिंसक संगठन की भी कोअी स्वतंत्र प्रतिष्ठा नहीं है। अहिंसक संगठन की नींव पर ही असका निर्माण हो सकता है।

अितना तो हमें निर्विवाद-रूप से मानना ही पड़ेगा कि स्वाधीनता प्राप्त होने पर अफगानिस्तान, रूस, जर्मनी, जापान वगैरा का मुकाबला करने के लिअे हमें हिंसक साधनों से काम लेना पड़े या न पड़े, लेकिन हमारे अपने देश का बलवान अहिंसक संगठन करना नितान्त आवश्यक है। असके बिना न तो हम हिंसा का बलवान संगठन कर सकेंगे और न विशेष प्रकार का अहिंसक संगठन ही कर सकेंगे।

युद्ध की निर्जीव और सजीव सामग्री

हिंसा के संगठन से हम युद्ध का साज-सामान, फौजी तालीम और लेफ्ट-राइट फौज— अितना अर्थ समझते हैं। असमें युद्ध का साहित्य कितना और किस प्रकार का हो यह तो अुस जमाने के वैज्ञानिक आविष्कारों पर निर्भर रहेगा। आखिर वह निर्जीव साधन है। वहां सवाल सिर्फ पैसे का और भंडार भरने का ही है। लेकिन फौज जीवित साधन है। असलिअे अुसका योग्य प्रकार से शिक्षित होना मुख्य चीज है। अगर अनुशासन में रहनेवाले शिक्षा-प्राप्त, निष्ठावान् सिपाही न हों तो सारे अद्यतन साधनों के होते हुअे भी विजय प्राप्त नहीं हो सकती।

किसी भी देश में अिस प्रकार के सैनिकों की संख्या कुल जनसंख्या का अेक छोटासा अंश ही होती है। लड़ाअी छिड़ जाने पर भी प्रत्यक्ष युद्धकार्य में लगे हुअे सैनिक, या सेना के साथवाले लोग, बहुत नहीं होते। अुनसे कभी गुने ज्यादा सैनिकेतर नागरिक अपने अपने घरों में होते हैं। यह सैनिकेतर वर्ग कअी तरह की असुविधायें सह कर, कअी प्रकार से त्याग कर, सारा काम चलाता है और सैनिकों की मदद करता है। सैनिक वर्ग में आम तौर पर केवल हट्टे-कट्टे नौजवान ही होते हैं। शेष सारी आबाल-वृद्ध जनता अहिंसक संगठन के द्वारा, लेकिन हिंसा में श्रद्धा हो जाने के कारण, युद्ध जारी रखने में मदद करती है। खुद त्याग करके सहायता करने की सैनिकेतर जनता की यह तत्परता ही बहुत बड़ी मात्रा में युद्ध की सफलता का कारण होती है। हिंसक युद्ध के लिअे भी सैनिकेतर जनता का यह अहिंसक संगठन अनिवार्य है।

आंकड़े देखने से विदित होगा कि फी सदी पच्चीस आदमी भी हिंसा के प्रत्यक्ष कार्य में भाग नहीं लेते। लेकिन अिन सैकड़ा पच्चीस नौजवानों को मौका आने पर खून करने को प्रवृत्त करने के लिअे हमें जनता के दिल में यह विकार निरंतर पैदा करना पड़ता है कि मानों हिंसा ही जीवन-निर्वाह की कुंजी है। जो बाल्यावस्था से ही सुनने में मजेदार मालूम हों अैसी युद्ध कथायें रच कर, जिन्हें हमने अपना दुश्मन मान लिया है अुनके प्रति द्वेष पैदा करने के लिअे सच्ची और झूठी बातें गढ़ कर, द्वेष बुद्धि से सराबोर वातावरण बनाना पड़ता है। अिस सारे प्रयास का फल अितना ही निकलता है कि होनहार तरुणों का अेक अैसा छोटा-सा दल तैयार होता है, जो विपक्ष के जितने आदमी हाथ आ सकें अुनके प्रति आततायी के जैसा व्यवहार करने के लिअे प्रवृत्त होता है और मनुष्यों में स्वयोनि-शत्रुत्व-रूपी विकृति जीवित रखता है। यह विकृति निसर्ग-विरुद्ध, नीति-विरुद्ध धर्म-विरुद्ध और अध्यात्म-विरुद्ध है।

अहिंसक सैनिक मिलने की आशा

अब मान लीजिये कि व्यापक हिंसा करने के लिअे प्रजा में जिस अहिंसक संगठन की आवश्यकता है वह सब हम अच्छी तरह कर रहे हैं; सारी प्रजा में अेकता स्थापित करते हैं; आपस के धार्मिक, प्रान्तीय, जातीय और आर्थिक, कलह और अन्याय निपटाते हैं; जनता को स्वावलंबन से अपने सारे काम करने की शिक्षा और प्रेरणा देते हैं, अुसे संयम और परिश्रम-शीलता की आदतें डालते है; अेक दूसरे के लिअे त्याग करने की निसर्गदत्त वृत्ति का सिंचन और अनुशीलन कर अुसे पुष्ट करते हैं; "मनुष्य-जाति को दूसरे प्राणियों की अपेक्षा स्मृति, तर्क, विवेक, भाषा आदि की जो विशेष देन मिली है अुसका अुद्देश मनुष्य-जाति के अेक छोटे-से अंश के भोगविलास की सिद्धि नहीं है; बल्कि अुसके द्वारा समग्र मानव जाति का और दूसरे प्राणियों का भी हित संपन्न होना चाहिअे"—अिस प्रकार के संस्कार भी देते जा रहे हैं; तो जिस प्रकार हिंसक राज्य हिंसक सेना के लिअे विकारवश जनता में से कुछ बहादुर और साहसी सिपाही पाने की अुम्मीद रखते हैं, अुसी प्रकार हम भी अैसी संस्कारी जनता में से कुछ बहादुर, साहसी, परंतु अहिंसक, सैनिक पाने की आशा क्यों न करे?

'युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च' की वृत्तिवाले बहादुरों की जरूरत दोनों तरह की संगठना के लिअे होगी। दोनों में स्वदेशभक्ति की जरूरत समान होगी। परंतु जहां हिंसक फौज को, जिसे अुसने अपना शत्रु माना है अुस जनता के प्रति घोर द्वेषबुद्धि से विकृत होना पड़ता है, वहां अहिंसक सेना को शत्रु के प्रति भी कारुण्य तथा दया की और अुसके हित के लिअे त्याग करने की प्रफुल्लतर वृत्ति का विकास अपने अन्दर करना पड़ेगा। अुचित पद्धति से प्रयत्न करने पर यह असंभव क्यों माना जाय?

हिंसा और वीरता

शूरता सिर्फ हिंसा में ही बसनेवाला गुण नहीं है। वह अेक स्वतंत्र वृत्ति है। वह हिंसक मनुष्य में भी हो सकती है और अहिंसक मनुष्य में भी। हमारे देश के संतों ने यह भेद बहुत पुराने जमाने में ही जान लिया था।

सती, शूर, अरु संत का, तीनों का अेक तार।
जरे, मरे, सुख परहरे, तब रीझे किरतार॥
तब रीझे किरतार, सबै संसार सराहे।
नहीं तो होत खुवार, हार जीत सब ही जावे॥
वाखत ब्रह्मानंद महा दृढ अचल मति का।
तीनों का अेक तार, शूर, अरु संत, सती का॥

—६—

अहिंसक संगठन का अन्यर्थ अुपयोग

लेकिन अितने से शायद पाठक को संतोष नहीं होगा। वह कहेगा कि, "मान लीजिये कि सन्तों के वृन्द बनाने के अभिप्राय से आपने सिपाहियों की सेना नहीं बनायी। लेकिन आपकी अहिंसा-निष्ठ सेना प्रस्तुत होने से पहले ही कोअी शत्रु हमारे देश पर धावा बोल दे तो देश की क्या हालत होगी? आप तो लोगों को अहिंसा की ही सीख देते रहेंगे, अुनपर अुसीके संस्कार करते रहेंगे। अतः सिपाहियत के लिअे कठोरता के जिन गुणों की जरूरत है अुनका विकास नहीं हो सकेगा। अैसी स्थिति में क्या हमारी फजीहत नहीं होगी?"

थोडा विचार करने से मालूम होगा कि अिस प्रकार का अन्देशा करने की कोअी वजह नहीं है। अहिंसक संगठन जितना दृढ़ होगा अुतना ही, अुसकी बदौलत, मौका पडने पर, सशस्त्र फौज तैयार करना आसान होगा, न कि मुश्किल। क्योंकि जनता में अेकता, सहयोग, त्यागवृत्ति, स्वावलंबन, आदि गुणों का विकास हुआ होगा और, जैसा कि अूपर कहा जा चुका है, अनुशासनयुक्त वीरता का भी अुसमें अुत्कर्ष हुआ होगा। अैसी जनता के लिअे युद्ध का कर्तव्य अुपस्थित ही हो जाय तो अुसे सज्ज होने में देर नहीं लगेगी। अब तक संतों की सेना नहीं बन सकी अिसका अितना ही अर्थ है कि लोगों में किसी न किसी अंश में मारक वृत्ति विद्यमान है।

विकृति की विशेषता

अिसके अलावा, सूक्ष्म हिंसा, यानी जीवनाभिलाषा, जीवधारियों में से कभी पूर्णरूप से नष्ट नहीं होगी। वह अनुशासन में रह सकती है; विकृत भी हो सकती है; किन्तु नष्ट नहीं होगी। संस्कृति की अपेक्षा विकृति में अेक बडी भारी क्षमता यह है कि अुसका वेग गुणाकारपद्धति से बढ़ता है। अूपर चढने के लिअे हर कदम पर परिश्रम करना पडता है, शक्ति लगानी पडती है। लेकिन नीचे गिरने के लिअे केवल अेक धक्का काफी है। बाकी की सारी क्रिया अुत्तरोत्तर अधिक वेग से अपने आप होती है। आवश्यकता तो अुस वेग के नियमन की होती है। मतलब यह कि, विकृति को अनुशासन के बंधन की जरूरत है। सुसंगठित जनता में अहिंसा का अनुशासन थोडासा शिथिल होते ही हिंसा अपने आप जोर पकडती है। अिसलिअे अहिंसा के संस्कार की बदौलत हिंसक शक्ति नष्ट होने का अन्देशा कतअी नहीं है।

सहज और श्रम-साध्य प्रगति

सच तो यह है कि, प्राणिमात्र को जिस वस्तु का ज्ञान अनजाने, स्वाभाविकरूप से, मिलता रहता है अुसका महत्त्व, अुसके विकास में पायी हुअी सफलता, या रही हुअी त्रुटियां, विचार के बिना वे महसूस नहीं करते। परंतु जिस चीज के पीछे अुन्होंने कृत्रिमरूप से बहुत मिहनत की हो अुसका महत्त्व और अुसमें की हुअी प्रगति वे कभी नहीं भूलते। हम अपनी मातृभाषा बाल्यावस्था से ही अनजाने सीखते रहते हैं। अन्य भाषा-भाषी पडौसी हों तो अुन की भाषा भी बोलने लगते हैं। लेकिन अुसका महत्त्व, या अुसमें की हुअी तरक्की, का अन्दाज लगाने की हमें कभी नहीं सूझती। लेकिन अंग्रेजी भाषा हम बडी मिहनत से सीखते हैं; अिसलिये अुसका महत्त्व महसूस करते हैं और अुसमें की हुअी तरक्की भी समय समय पर नापते हैं।

अबोधपूर्वक हुअी प्रगति और ज्ञान के विषय में हमें अितना अज्ञान होता है कि अुसमें बुद्धिपूर्वक प्रगति करने की बात छेडनेवालों को कभी कभी विरोध का सामना करना पडता है। जिसके दोनों पैर साबित हैं अुसके लिअे चलना, दौडना, या अटारी पर चढना सहज है। वह समझता है कि अिसमें सीखने की कोअी बात ही नहीं। अिसलिअे अगर कोअी व्यायाम-विशारद यह कहने लगे कि चलना, दौडना और चढना भी अेक कला है, जो हमें परिश्रम से सिद्ध करनी चाहिअे, तो कअी लोग अुसकी बात पर हसेंगे। परन्तु बिच्छूचाल चलना, तैरना, घोडे पर सवारी करना, साअीकिल चलाना, आदि श्रमसाध्य कलाओं का महत्त्व हमारी समझ में तुरन्त आ जाता है।

हिंसक अुपचार विकृति का लक्षण है

अहिंसा-हिंसा पर भी यही नियम घटित होता है। संसार में अहिंसा की—दूसरे के लिअे खुद खपने की—अेक बलवान प्रेरणा जन्तुमात्र में स्वाभाव से ही है। अिसीलिअे अनेक प्राणी झुंड बना कर रह सकते हैं और दीमक, मधुमक्खी और चींटियों से ले कर मनुष्य तक, अनेक जन्तु अपनी अपनी हैसियत के अनुसार व्यवस्थित समाज-रचना तथा, छोटी बडी रज्य-रचना भी करते हैं। अुन सब में नियमन, दंड, शासन, आदि होते हैं। लेकिन यह मानना गलत होगा कि हर अेक समाज अिन्हीं की बदौलत चलता है। ये बातें अपवाद-रूप हैं और जिस मात्रा में अहिंसक संगठन बलवान होगा अुसी मात्रा में ये साधन कम काम में लाये जायेंगे।

अिन अुपायों के अुपयोग की आवश्यकता, दवा या अिन्जक्शन की आवश्यकता के समान, विकृति का लक्षण है। कभी कभी विकृति संक्रामक बीमारी की तरह फैल सकती है। अुस मौके पर अिन अुपायों को बडे पैमाने पर और व्यवस्थितरूप में काम में लाने की नौबत आती है। लेकिन अिन कभी कभी होनेवाली विकृतियों का अिलाज करने के लिअे मनुष्य-समाज ने हद से ज्यादा मिहनत की है। अिसलिअे अुसकी अैसी श्रद्धा हो गयी है कि विकृति का अिलाज करना ही अध्यात्म है, वही धर्म है और वही विज्ञान है, वही अेकमात्र जीवन कला है, समाज-व्यवस्था और राजकारण में वही नीति है। दण्डनीति और युद्ध-कला के बडे जबरदस्त शास्त्र मनुष्यों ने बनाये हैं।

यह अिलाज असर क्यों नहीं करता?

मैं मानता हूं कि मनुष्य ने बडी मिहनत से और सैकडों साल के तजुर्बे से ये शास्त्र बनाये हैं। लेकिन यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है कि समाज से जो दोष नष्ट करने के लिअे यह अुपाय-योजना करनी पडती है वे दोष अब तक नष्ट क्यों नहीं होते? कहा जाता है कि यूरोप से कुष्ठ रोग बिलकुल मिट गया, चेचक भी जाता रहा है। अिसलिअे मैं यह मानने को तैयार हूं कि जिन अुपायों से ये बीमारियां नष्ट हुअीं अुनमें कुछ अुपाय-योजना थी। लेकिन स्वयोनि-शत्रुत्व के मर्ज पर अैसा कोअी असर होता हुआ नजर नहीं आता। अिसलिअे मेरी यह धारणा है कि अिसमें कोअी न कोअी गलती जरूर है।

नींव ही कच्ची है

यह नुक्स कौनसा हो सकता है? हमारे समाज-जीवन की नींव ही—जिस पर हमने यह सारा हिंसक संगठन का ढांचा खडा किया है—कमजोर है। अुसपर अिमारत बनाने के पहले जितनी मिहनत ली गयी, जिन पत्थरों से अुसे पाटा गया और जिन तत्त्वों से अुन पत्थरों की जोडाअी की गयी—वह सारा सामान रद्दी था। अुसका वैज्ञानिक शोध भी ठीक ठीक नहीं हुआ। अुसपर मिहनत तो बहुत कम ली गयी। फलस्वरूप जिस प्रकार नालन्दा के विश्व-विद्यालय की अिमारतों की अटारियों में और अूपर के हिस्सों में भव्य और विशाल रचना होते हुअे भी नींव की जमीन ही कच्ची होने के कारण कअी बार अिमारतें बनाने पर भी वे सब निकम्मी ठहरीं और अुनको छोड़ देना पडा; अुसी तरह हमारी समाजरचना तथा संस्कृति का बाह्यरूप भव्य और शोभनीय दिखायी देता है; लेकिन ज्यों ही वे पूर्णता को पहुंचना चाहती हैं त्यों ही अपने ही बोझ से दब कर ढह जाती है।

अिसलिअे हमें संस्कृति की बुनियाद का ही खयाल करना चाहिअे और अुसीका शास्त्र पहले सीखना चाहिअे।

अगर यह न्याय-संगत प्रतीत होता हो, तो यह अच्छीं तरह समझ लेना चाहिअे कि समाज-रूपी मंदिर की सुरक्षितता अुसके अहिंसक संगठन पर निर्भर है, न कि हिंसक संगठन पर। हर अेक चल और दौड सकता है; लेकिन फिर भी चलने-दौडने का अेक खास शास्त्र है ही। अुसी तरह प्राणिमात्र की अन्तवर्ती अहिंसा-वृत्ति का शास्त्रीय ढंग से अनुशीलन होना, और समाजरचना मे अुसका शास्त्रीय ढब से संगठन होना जरूरी है। अुसपर बनायी हुअी अिमारत देखने मे सीधी-सादी लगे तो भी टिकाअू और सुखप्रद होगी। लेकिन कच्ची बुनियाद पर बनी हुअी खूबसूरत लगनेवाली अिमारत भी न तो मजबूत होगी, और न आराम-देह।

विकृति को ही संस्कृति का नाम

चश्मा, बूट-सूट, दांत और अप-टू-डेट वेशभूषा से सजे हुअे किसी चिर-रोग-ग्रस्त युवक के विषय में यह कहना कि वह सलोना दीखता है, विरूप को सुरूप कहने के बराबर है। अुसी प्रकार मनुष्यों की हिंसा पर मनुष्यों ने जिस समाज-रचना का निर्माण किया है अुसे संस्कृति के नाम से पुकारना विकृति को ही संस्कृति मानना है।

प्राणियों में हिंसावृत्ति भी है ही। जीवना-भिलाषा का ही वह अपर नाम है। लेकिन अुसका अिलाज हिंसात्मक संगठन नहीं है; प्रत्युत, शास्त्र-शुद्ध अहिंसात्मक संगठन है। अुचित अुपायों से और अुचित ढंग से हर अेक को जीवनयापन का सुयोग मिले तो यह वृत्ति संतुष्ट हो जाती है। किसी व्यक्ति में अेकाध मर्ज की तरह, या बाज दफा, सारे समाज में छूत की बीमारी की तरह, वह फट पडे तो अुसका निवारण करना चाहिअे। लेकिन अैसा करने में भी अूपर अूपर के अुग्र अुपचार करने की अपेक्षा, 'व्यक्ति अथवा समाज की नींव में कहां कमजोरी पैदा हो गयी है'—अिसी की धैर्य से खोज करनी चाहिअे।

—७—

अहिंसा और भीरुता

हम लोगों में अिस वहम ने घर कर लिया है कि हिंसावृत्ति और शूरता अेक ही गुण है और हिन्दुस्तान में अहिंसा धर्म पर ही बेहद जोर दिया गया अिसलिअे वह पराधीन होता गया।

मैं अूपर कह चुका हूं कि हिंसा और शौर्य ये दोनों बिलकुल भिन्न वृत्तियां हैं। कोअी जीव हिंसक हो कर भी कायर हो सकता है और अहिंसक हो कर भी बहादुर हो सकता है। बहुधा अैसा देखा गया है कि जहां हिंसा होती है वहां भय भी होता है। जिसमें स्पष्ट साहसिकता है अैसी शूरता शायद अहिंसा के साथ हमेशा न पायी जाय। लेकिन वह अहिंसा के साथ होती ही नहीं अैसी बात नहीं है। हिंसा, अहिंसा, साहस और शौर्य आदि अेक वृत्ति के रूप में मनुष्य में सहज है। लेकिन गुण के रूप में वे परिश्रम-पूर्वक किये हुअे अनुशीलन ही से प्रकट होते हैं।

भारत में अहिंसक संगठन की कमी

यह कोअी नहीं साबित कर सकता कि

हमारे देश में किसी भी जमाने में वीरता का गुण बहुत कम रहा हो। कम से कम खास जातियों ने निरंतर परिश्रम-पूर्वक अुसका विकास किया। लेकिन अहिंसा—विशेष कर संगठित सामाजिक अहिंसा—के गुण की कमी हमेशा पायी गयी है। चाहे महाभारत-काल का, राजपूतों का, मुगलों का, या चाहे सिक्खों का और मराठों का, अितिहास ले लीजिये। आप यही पायेंगे कि अश्वत्थामा–कर्ण विवाद, शल्य–कर्ण विवाद, जयचन्दी फूट की परम्परा अविच्छिन्नरूप से चली आयी है। कुरुक्षेत्र के युद्ध से ले कर पानपत के युद्ध तक सेनापति के मरने पर सेना में अन्धाधुंधी, आपस में लडाअी और अन्त में पलायन—यही हमारा अितिहास रहा है। अिसमें व्यक्ति की हैसियत से सेनापति या सैनिकों में वीरता का अभाव नहीं दिखायी देता। बहादुरी और हिम्मत की कमी नहीं है। परंतु प्रेम, अनुशासन और कर्तव्यबुद्धि की व्यापकता तथा अुनका संगठन बिलकुल नदारद है।

वह नेताओं में ही नहीं है; अिसीलिअे जनता में भी नहीं है। बुद्धिभेद और वैमनस्य पैदा करनेवाला तर्ककौशल्य सदा सुलभ रहा है। लेकिन सब से मेल करनेवाली बुद्धि और कर्म-कौशल्य सदा दुर्लभ रहा है। क्योंकि हमारे अन्दर आम तौर पर अहिंसा अेक असंस्कृत और मूढ वृत्ति के रूप में होते हुअे भी अुसका सामाजिक अनुशीलन कभी नहीं किया गया।

संतों की सीख का विश्लेषण

हम बडे गर्व से कहते हैं कि हमारे देश में 'अहिंसा परमो धर्मः' 'सत्यमेव जयते,' आदि घोष (स्लोगन्स) विद्यमान हैं। हमारे संतों ने ब्रह्मचर्य, संयम, अिन्द्रियनिग्रह, आत्मानात्म-विवेक, भूतदया, वैराग्य, आदि का भूरि-भूरि अुपदेश किया है। अिसलिअे साधारणरूप से हमारी अैसी धारणा हो गयी है कि हमारे देश की व्यापक आध्यात्मिक संस्कृति है। कोअी कोअी तो अैसा भी मानते हैं कि हमने अिन गुणों का अतिरेक ही कर डाला है।

लेकिन अिन अुपदेशों का अेक दूसरी दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। जो गुण किसी समाज में व्यापकरूप में पाये जाते हों, अुनका बार बार अुपदेश करने की प्रवृत्ति साधारणतः नहीं होनी चाहिअे। जिन गुणों का समाज में अधिक अनुभव नहीं होता, मगर जिनकी आवश्यकता तो प्रतीत होती है, अुन्हीं पर अुपदेशक जोर देगा। अुपर्युक्त गुणों का सन्तों ने निरंतर अुपदेश दिया अिसका यही कारण हो सकता है कि अुन्होंने समाज में अिन गुणों का अस्तित्व पर्याप्त परिमाण में नहीं पाया। यह अुपदेश करनेवाले सन्तों ने दूसरी भी कुछ बातें समय समय पर कही हैं। अुन्होंने कहा है कि "संसार स्वार्थमय है, हमारे आत्मीय और सगे–संबंधी, सभी अपना अपना स्वार्थ देखते हैं, कोअी किसी का निःस्वार्थ आप्त नहीं है।" अिस पर से यह पता चलता है कि अुन्हें जीवन में क्या अनुभव होता था, पारमार्थिक वृत्तिवालों के लिअे अुस वृत्ति के विकास के रास्ते में, हमारा समाज कौन कौनसी कठिनाअियां अुपस्थित करता था और अिसलिअे सब का त्याग करना ही अेकमात्र मार्ग क्यों समझा गया।

हमारी जनता की प्रकृति

अिसके विपरीत हमें अुन गुणों का भी विचार करना चाहिअे जो हममें नहीं थे और न जिनके लिअे हमारी भाषा में कोअी शब्द ही थे। बल्कि

जिनके समान वृत्तियों का हमारे सन्तों ने निषेध भी किया। अुदाहरण के लिअे, 'स्वदेश-भक्ति' या 'स्वदेशाभिमान' शब्द हमारे पुराने साहित्य में नहीं पाये जाते। वर्णाभिमान, जात्यभिमान आदि का संतों ने जोर से निषेध किया है। क्योंकि अिस देश में अैसा बिरला ही कोअी रहा होगा जो अपनी भूमि से प्रेम न करता हो। अपना खेत, अपना गांव या अपना प्रान्त छोडने की वृत्ति हममें बडी मुश्किल से पैदा होती है। अिनसे बिछुडने मे हमें अत्यधिक दुःख होता है।

किसानों में तो अितना जबरदस्त भूमिप्रेम पाया जाता है कि खेत की कानूनी मालकियत से हाथ धो बैठने पर भी अुस पर अपना कबजा जमाये रखने के लिअे वे अपनी जान लडा देंगे। हमारा वर्णाभिमान और जात्यभिमान तो मशहूर ही है। स्मृतिकारों ने अुसका अितना जबरदस्त शास्त्र बना रखा है कि बुद्ध और महावीर से ले कर आज तक हर अेक संत के अुस की निन्दा करने पर भी; हमारे समाज से अुसका प्राबल्य नष्ट नहीं हुआ।

बुद्ध से ले कर गांधी तक अिस देश में जो महान प्रवर्तक हुअे अुन सब ने साधारण जनता के लिअे पांच ही नियम बतलाये हैं:—चोरी न करो, व्यभिचार न करो, शराब न पीओ, मांस न खाओ, झूठ न बोलो। अिन पांच में से मांस का निषेध करने की तो आज किसी की हिम्मत ही नहीं होती। और अगर कोअी हिम्मत करे भी तो अुसकी कोअी मानेगा नहीं। लेकिन अिस पर से कि ढाअी हजार वर्षों से हमें लगातार अिन पांच ही नियमों का अुपदेश करना पड रहा है हमारी सर्व-साधारण संस्कृति के रूप का पता चलता है।

मतलब यह कि, अहिंसा, ब्रम्हचर्य, अस्तेय, आदि के विषय में हमारे देश में विपुल साहित्य और प्रचुर अुपदेश अुपलब्ध है। अिसपर से यह अनुमान करना गलत होगा कि सद्‌गुणसंपन्न संपत्ति हमारी जनता की प्रकृति है। अितना ही कहा जा सकता है कि हमारी प्रकृति को अिन गुणों द्वारा संस्कृत करने का प्रयास सैकडों वर्षों से हो रहा है। अनेक महापुरुषों ने अिसके लिअे अपनी सारी अुम्र बिता दी। लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि हमने कोअी विशेष प्रगति की। कारण यह है कि अुनके कार्य में विकृतिग्रस्त लोगों ने विघ्न डालने में कुछ अुठा नहीं रक्खा। तथापि अहिंसा-प्रेरित मनुष्य अुस प्रयत्न को छोड नहीं सकते।

—८—

वास्तविक आवश्यकता

"अगर जर्मनी या जापान का आक्रमण हो जाय तो हम कौनसा अहिंसक अिलाज करें यह आज ही बतलाओ"—अैसा प्रश्न अप्रासंगिक है। आज हमारे सामने जो प्रश्न अुपस्थित है वह तो यह है कि "अंग्रेजों के और हमारे दरमियान परतंत्रता का जो बन्धन है वह कैसे काटा जाये, और हम स्वाधीन किस तरह बनें"? हिंसावादी भी यह महसूस करते हैं कि अिसका कोअी व्यवहार्य हिंसक अुपाय अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। हमारी अहिंसा शुद्ध भले ही न रही हो, लेकिन यह अुन्हें भी मानना पडेगा कि जैसी कुछ संमिश्र और स्थूल अहिंसा का हमने प्रयोग किया अुसकी बदौलत हमें थोडीबहुत सफलता भी मिली। अिसलिअे व्यवहारचातुर्य तो अिसी

में है कि समझदार लोग हिंसा-अहिंसा के बाल की खाल निकालने के बदले अहिंसा के सेनापति के बतलाये हुअे तरीके से अुसे शुद्ध और संगठित करने की कोशिश में जुट जायें।

अगर हम आजादी चाहते हैं तो सारा देश अेक होना चाहिअे। जातीय, प्रान्तीय, धार्मिक और वार्णिक द्वेष नष्ट होने चाहिअें, प्रजा का आन्तरिक व्यवहार न्याय और नीति के अनुसार चलना चाहिअे। बलवानों को निर्बलों के लिअे खपना चाहिअे। अुनके शोषण से बाज आना चाहिअे। हर अेक को पेटभर रोटी, तनभर कपड़ा और आरामभर मकान मिलने का प्रबन्ध करने में सारे सुज्ञों को हमराय हो जाना चाहिअे। यह सब संपन्न करने के लिअे व्यक्तिगत तथा समाज व्यापी अहिंसा की, यानी दूसरे के लिअे सानन्द, कर्तव्यबुद्धि से और प्रेम से खपने की आवश्यकता है, न कि हिंसा या द्वेष की। जरूरत निःस्वार्थ बुद्धि की है, न कि स्वार्थबुद्धि की; सर्वव्यापी ममता की है, न कि तंग दरबों में बन्द किये हुअे अहंममत्व के भाव की।

आत्मरक्षा का अहिंसक तरीका कब मिलेगा?

यदि हम अपने जीवन तथा संस्कारों में अिस प्रकार की क्रान्ति कर सकें तो जर्मनी या जापान के आक्रमण से अपना बचाव करने की अहिंसक योजना भी हमें अपने आप सूझ जायेगी। क्योंकि यह क्रान्ति तो अहिंसा के अनुशीलन से ही हो सकेगी। तब तक आज कितना ही सिर क्यों न खुजायें, तो भी वह तरीका नहीं सूझेगा। जो कुछ सुझाया जायगा वह बालिश कल्पना में शुमार होगा। क्योंकि अुसके सुझाने के लिअे जिस पूर्व-परिस्थिति की आवश्यकता है वही आज नहीं है। आज बेतार के तार से अेक क्षण में अेक शब्द सारे संसार में भेजा जा सकता है। अब अगर कोअी पूछ बैठे कि 'फर्ज कीजिये कि शब्द के समान अेक विनाशक किरण भी दुनिया भर में फैलायी जा सके तो अुससे अपनी रक्षा का कौनसा अुपाय किया जाय?'—तो समझदार वैज्ञानिक अितना ही जवाब दे सकेगा कि पहले अुस तरह का यंत्र तो बनने दो तब मेरे दिमाग में विचार आने लगेंगे।

आज हिंसक साधनों से हम अपनी रक्षा करते हैं। लेकिन अुसके लिअे हमारे पास कितनी सेना है, किस किस्म की कितनी तोपें, वायुयान, जहरीली वायु के गोले, मास्क, आदि साधन हैं, वे कहां कहां रक्खे गये हैं, अच्छी हालत में हैं या नहीं?—अिसकी चर्चा या जांचपड़ताल हम कहां करते हैं? सर फिलिप चेटवुड से अिस संबंध में कितनी जानकारी मांगते हैं? हम तो यही मानते हैं कि जो लोग युद्धकला के विश्वास-पात्र विशेषज्ञ हैं वे अुचित प्रबन्ध करेंगे ही। और अिस विश्वास से युद्ध के दिनों में भी निश्चिन्त हो कर सोते हैं।

वास्तविक समस्या

अगर अहिंसा के क्षेत्र में भी अिसी प्रकार हमारी अेक विशेष साधना हो जाये तो क्या अुसके भी कुछ विशेषज्ञ पैदा नहीं होंगे? हमारे देश में अहिंसाधर्म में प्रवीण और अहिंसा से जनता की रक्षा कर सकने का आत्मविश्वास रखनेवाला जो वीर पुरुष होगा अुसी को हम अपना युद्ध-मंत्री बनायेंगे और अुसकी सूचनाओं पर चलेंगे। तात्पर्य यह कि, 'जर्मनी के खिलाफ अहिंसक योजना क्या हो?'—यह सवाल अुतना महत्त्व नहीं रखता जितना महत्त्व यह सवाल रखता है कि 'हम अपने नित्य के जीवन के छोटे-बड़े कलह अहिंसा से किस प्रकार मिटावें?' अगर दो

आदमियों में युद्ध करने के शास्त्र का आविष्कार हो जाये तो सैकड़ों और लाखों की लड़ाओी का शास्त्र भी खोजा जा सकेगा। यही नियम अहिंसा पर भी लागू है।

अन्त में 'गांधी विचार दोहन' से अिस संबंध में दो परिच्छेद अुद्धृत कर यह लंबा लेख समाप्त करता हूं:—

"अहिंसा में तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुअी है। अिस अमोघ शक्ति की अब तक पूरी पूरी खोज नहीं हुअी है! 'अहिंसा के समीप सारे वैर-भाव शान्त हो जाते हैं',—यह सूत्र शास्त्रों का कोरा पांडित्य ही नहीं है, बल्कि ऋषियों का अनुभव-वाक्य है। अिस शक्ति का संपूर्ण विकास और सब अवसरों और कार्यों में अिसके प्रयोग का मार्ग अब तक स्पष्ट नहीं हुआ है। हिंसा के मर्गों के संशोधनार्थ मनुष्य ने जितना सुदीर्घ अुद्योग किया है और अुसके फलस्वरूप हिंसा को बहुत बड़े परिणाम में अेक विज्ञानशास्त्र -सा बना दिया है; अुतना अुद्योग यदि अहिंसा-शक्ति के संशोधन में किया जावे, तो मनुष्य जाति के दुःखों के निवारेणार्थ यह अेक अनमोल, अव्यर्थ तथा अन्त में अुभय पक्षों का कल्याण करनेवाला साधन सिद्ध होगा।

"जिस श्रद्धा और अध्यवसाय से वैज्ञानिक प्रकृति के बलों की खोज-बीन करते हैं और अुसके नियमों को विविध प्रकार से व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते हैं, अुतनी ही श्रद्धा और अध्यवसाय से अहिंसा की युक्ति का अन्वेषण तथा अुसके नियमों को व्यवहार में लाने का प्रयत्न करने की आवश्यकता है।"

('गांधी विचार दोहन': 'अहिंसा' १०, ११)

सृष्टि की संहार-लीला का सबक

[काका कालेलकर]

—१—

"राजा रूठे नगरी रक्खे अपनी; मैं हर रुठ्या कहां जाना?" —मीराबाअी

यूरोप में संहारलीला विश्व-नाश का संकल्प करके मुहूर्त की राह जोह रही है। अॅबिसीनिया स्पेन, चीन आदि के अनुभव ताजे हैं ही। मनुष्य जब घात करने के लिअे अुद्यत हो जाता है तब प्रत्यक्ष हत्या से जितना नुकसान होता है अुससे कहीं बढ़कर वह नुकसान है जो हिंसावृत्ति बढ़ने से हृदयनाश के रूप में होता है। तो भी ये सब मानवी आपत्तियां हैं। मनुष्य चाहे तो अिन में से बच सकता है। शत्रु की शरण जा कर, युद्ध से भाग कर या देशान्तर कर, मनुष्य अपने को बचा सकता है। किन्तु यह रास्ता कायरों का है। वीरों को वह पसंद नहीं आता।

वीरों को भी मानवी संहार से बचने का अुपाय मिल सकता है। शत्रु की अपेक्षा अधिक तैयारी करके और बहुत-से शूरों की बलि दे कर बाकी के लोग बच सकते हैं। सत्याग्रह कर के भी मनुष्य युद्धों का अिलाज कर सकता है और प्राणहानि टाल सकता है।

किन्तु जब कुदरत का कोप होता है, 'हरि रूठ' जाता है, तब बचने का कोअी अपाय नहीं

है। भूचाल, बाढ़, हैज़ा, प्लेग आदि बीमारियां, या अकाल अित्यादि कुदरती आपत्तियां, जब आ पड़ती हैं, तब जो मनुष्य-संहार होता है अुससे कौन कैसे बच सकता है? जो वीर हैं वे ही बच सकेंगे अैसा तो हम नहीं कह सकते। और न जो कायर हैं वे ही बच सकेंगे अैसा ही कोअी नियम है। कुदरती आपत्ति वीरों को खा जायगी और अबला और बच्चों को छोड़ देगी अैसा भी कहीं नियम नहीं है। पवित्र लोग बच जाते हैं और अपवित्र ही मृत्यु के शिकार होते हैं अैसा कहीं नहीं पाया जाता। जब द्वारका समुद्र के अन्दर में डूबनेवाली थी तब अपने श्रेष्ठ भक्तों को भगवान ने द्वारका छोड़ जाने का आदेश दिया और अुन्हें बचाया। सज्जनों के प्रति भगवान का यह पक्षपात हम सही मानें या न मानें, लेकिन भगवान ने फिर कभी अैसा पक्षपात नहीं किया है। अब तो जबकभी आपत्ति आती है तो वह बिना किसी भेदभाव के अपना अन्ध विनाश-कार्य कर ही डालती है।

अभी तुर्कों के अंगोरा में भयानक—जिससे भय भी भयभीत हो जावे अितना भयानक—प्राकृतिक प्रकोप हुआ। महायुद्ध चाहे जितना भीषण हो, अुसमें अेक दिन के अन्दर, अेक क्षण के अन्दर, पैंतालीस हजार लोगों का संहार सहज नहीं हो सकता। युद्ध में लोग कम से कम अेक दूसरे पर गर्म होते हैं, शूर लोग बदला लेते हैं, संकट कहां से आया है अुसे पहचान कर अुसका अिलाज करते हैं। प्राचीन काल के धर्म-युद्ध में सोते हुअे शत्रु को जगा कर, अुसके हाथ में शस्त्र न हो तो अुसे शस्त्र दे कर, अुसके पास रथ न हो तो खुद रथ से अुतर कर, पहले समानता ला कर, बाद में क्षत्रिय लोग युद्ध करते थे। किन्तु कुदरत ने धर्मयुद्ध का अैसा नियम न कभी माना है, न कभी पाला है। भूचाल कभी यह नहीं देखता कि दिन है या रात, लोग घर में हैं या बाहर घूम रहे हैं। वह तो अेक क्षण के अन्दर बड़े बड़े अूंचे महलों को जमींदोज़ कर देता है। शहर के छोटे-बड़े सब मकानों को अिस तरह डगमग-डगमग हिला देता है कि मानो वे सब ताश के ही प्रासाद हों।

भूचाल से कभी कभी कभी मकान अपना मुंह फेर कर विरुद्ध दिशा में देखने लगते हैं। नदी का पाट अूपर अुठ कर अुस नदी को कहीं और ही भेज देता है। कभी कभी जहां जंगल था वहां अेक तालाब बना देता है और जहां सरोवर था वहां हिमालय जैसा पर्वतराज खड़ा कर देता है। कहा जाता है कि अिसी ढंग से प्राचीन काल का अेक सारा का सारा खंड ही अटलांटिक महासागर की तह में जा बैठा है। भूमध्य-समुद्र के बारे में भी अैसी ही कहानी कही जाती है।

किन्तु अब की बार तुर्कों के अूपर जो गज़ब की आपत्ति गुज़री है वह बेमिसाल है। अभूतपूर्व भूचाल हो कर मकान ढह गये, हजारों लोग ज़मीन के अन्दर गड़ गये; अितने में पानी ने सोचा कि मैं थोड़े ही किसीसे कम हूं; मैं भी कुछ करतब दिखाअूं। पानी की अैसी बाढ़ आयी कि बचे-खुचे बहुत-से आदमी और मवेशी बह गये और डूब गये। लोग अिन दोनों में से जान बचाने की फ़िक्र में थे कि अितने में वहां पर पागल कुत्तों का अेक बड़ा दल प्रकट हुआ। पुराणों में अैसी आपत्तियों की तालिका में चूहे हैं, टिड्डे हैं, और धान के खेत वीरान करनेवाले तोतों का भी ज़िक्र है।

'अतिवृष्टिः अनावृष्टिः शलभाः मूषकाः शुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेताः अीतयः स्मृताः॥'

पाठान्तर में कहा है—

'स्वचक्रं परचक्रं चि॰ च सप्तैताः अीतयः स्मृताः।

'स्वचक्र' का अर्थ है "आंतरिक कलह" और 'परचक्र' का "विदेशियों का आक्रमण"। अैसी 'अीति' अथवा 'आपत्ति' में भगवान ने अब पागल कुत्तों की अेक आपत्ति और बढ़ा दी है।

अंगोरा के अुत्तर में कृष्णसमुद्र है। अुसमें भी वह पागलपन पहुंच गया। अुसने भी अेक अैसा तूफान मचाया कि जीवन पर विहार करनेवाली असंख्य नौकाअें मृत्यु को भेंट कर दीं।

अब अिस महान प्राण-नाश के लिअे किस पर क्रोध करें? अुसका अिलाज भी क्या करें? जिस मानवी संस्कृति के हम अितने भक्त हैं और जिसकी रक्षा के लिअे हम प्राणपण से कोशिश कर रहे हैं अुसकी कीमत कुदरत की नजर में कुछ भी नहीं है। शहद की मक्खियों का छत्ता, दीमक का बमीठा, समुद्र में बढ़नेवाले प्रवाल के कीटकों के झाड़ और मानवी महा साम्राज्य—सबका मूल्य प्रकृति की दृष्टि में, कुदरत की निगाह में, अेक ही है। शहद की मक्खियों का छत्ता जिस सहजता से चरवाहे का लड़का तोड़ लेता है अुसी आसानी से अितिहास-विधाता बड़े बड़े साम्राज्यों को भी अेक क्षण में मिट्टी में मिला सकता है। अितिहास कहता है कि समरकन्द और बुखारा की ओर अमूदरिया और सरदरिया के किनारे तीन खण्डों की तिजारत चलती थी और अेक बड़ी आन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति का वहां विकास हुआ था। किन्तु जहां भगवान ने अेक फूंक मारी और आंधी चली; कि रेती की बाढ़ आयी और वह सारी आबादी, वह सारी संस्कृति, अेक क्षण में हवा हो गयी! पांपी शहर जिस तरह ज्वालामुखी के तप्तरस में जलभुन गया अुसी तरह मध्य अेशिया का वह प्राचीन शहर सिकता-समुद्र की सूखी तह में डूब गया और सदा के लिअे नष्ट हो गया। वहां के ज़ालिम राजा भी मर गये और प्रजाहित के लिअे लड़नेवाले लोकनेता भी दफ़न हो गये। न्यायकारी और अन्यायकारी, प्रामाणिक, अप्रमाणिक, स्वपक्षीय और विपक्षीय—सभी धरती में समा गये। तमाम आनन्द और तमाम दुःख, सदाचार और अनीति, जीवन और कलह—सब कुछ अेकदम शान्त हो गया। हजारों बरसों से मनुष्यजाति ने जो पुरुषार्थ किया था वह सब देखते देखते स्मृति-शेष हो गया। स्मृति भी कहां से रहे? स्मृति रखने के लिअे भी तो कोअी जिन्दा रहना चाहिअे? जो संस्कृति रेत के समुद्र में डूब गयी वह विस्मृति की खाअी में भी डूब गयी। हजारों वर्षों के बाद जब भगवान ने फिर से फूंक मारी और आंधी अुलटी चलने लगी और सिकता-सागर में भाटा आया तब ये सब प्राचीन अवशेष दृग्गोचर हुअे! जिस संस्कृति की स्मृति भी नष्ट हो गयी थी अुसके कुछ अवशिष्ट प्रत्यक्ष अवयव मनुष्य के हाथ लगे।

जो भूचाल अंगोरा में हुआ वही अगर भूमध्य-समुद्र के अन्दर हो जाता तो शायद भूमध्य समुद्र की भूमि अूपर अुठ आती, मुसोलिनी का अिटाली, आतातुर्क का तुर्कस्तान, फरान्स का आलजेरिया और नेगस का अेबिसिनिया,—सब कुछ पानी में डूब जाता और जहां आज सहारा मरुस्थल है वहां फिरसे अेक बड़ा समुद्र गर्जना करने लगता। फिर तो यूरोप का सवाल ही अेकदम बदल जाता। और अगर सारे यूरोप में कुछ अैसी प्राकृतिक अुथल-पुथल हो जाती तो फिर फैसिजम और नात्सीजम, बोल्शेविज़म और कॅपिटालिजम—सब के सब 'वाद' चिर-कालीन निद्रा के वश हो जाते! मनुष्यजीवन कुदरत के अधीन अितना है, अितना क्षणभंगुर है कि अुसमें क्षुद्र लाभ-हानि के लिअे, राग-द्वेष के ज्वर में रहना मनुष्य को कहां तक अुचित है, यह सोचने के दिन आ गये हैं। यूरोप

के महायुद्ध के साथ मानो अपना अुपहास-गर्भ व्यंग करने के लिअे और अपना लोकक्षयकृत् विकट हास्य हँसने के लिअे ही विश्व-नियंता ने अंगोरा का भूचाल भेज दिया! मनुष्य ने जो युद्ध चलाया है अुसपर भगवान् ने अपना भाष्य कर दिया।

मानव-पिता मनु भगवान कहते हैं, 'न चैनं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केन चित् ?' अैसी क्षणभंगुर काया धारण करके अभिमान क्या करना है और किसीसे वैर भी क्या रखना है? असंख्य महायुद्ध लड़ने के बाद जो सबक प्राचीनों ने सीखा था वह फिर से सीखने के लिअे मनुष्य को प्राचीनों के समान, किन्तु अुनसे कहीं अधिक, कीमत देनी पड रही है। यही है मनुष्य की बुद्धिमत्ता!!

—२—

"अिस सृष्टि में नीति का साम्राज्य है या केवल अन्धे अदृष्ट का? मनुष्य को जो दुःख सहन करना पड़ता है वह अुसके दुराचार का फल है, या वह केवल अेक आकस्मिक घटना है—अित्तेफाक है?"—यह सवाल बार बार मन में अुठता है और जब अंगोरा के जैसे भीषण संकट आ पड़ते हैं तब यह सवाल और भी वेग से मन में आता है। बिहार के भूकंप के बाद जब गांधीजी ने कहा कि "अिस भयानक प्रकोप के पीछे मैं भारत के महापाप की सजा देखता हूं;" तब सारे बुद्धिवादी लोगों ने आश्चर्य व्यक्त किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भी दुःख के साथ कहना पड़ा कि गांधीजी का कहना युक्तिसंगत नहीं है; अैसे वहम के साथ वे सहमत नहीं हो सकते। अितना ही नहीं, किन्तु गांधीजी जैसे महापुरुष द्वारा अैसा प्रचार होने से जनता पर जो असर होगा अुसे दूर करने के लिअे अुनको अपना मतभेद जाहिरा तौर पर प्रकट करना आवश्यक मालूम हुआ। गांधीजी ने सब आलोचकों से अेक ही सवाल पूछा कि "क्या अिस दुनिया में अंशतः नीति का राज्य है और अंशतः अदृष्ट का? अगर जो कुछ होता है अुसका कोअी न कोअी कारण होना ही चाहिअे, और हरअेक कारण का कुछ न कुछ नतीजा होना ही चाहिअे, तो क्या अिस महान प्रकोप के पीछे भी किसी न किसी मानवी अपराध का कारण नहीं होना चाहिअे?"

गांधीजी से भूचाल ने आ कर यह नहीं कहा था कि मैं अस्पृश्यतारूपी पाप का ही फल हूं। गांधीजी यह भी नहीं मानते थे कि अस्पृश्यता बिहार में ही है और दूसरे प्रान्तों में नहीं है और न यह कि बिहार का भूकंप बिहार के ही लोगों के पापों का फल था। कुदरत में सब चीजें अेक दूसरे के साथ अनुबद्ध हैं। पेट साफ न होने से सिर में दर्द होने लगता है। राज्यकर्ता की नीयत बिगड़ने से प्रजा को कष्ट भुगतना पड़ता है। अेक आदमी के संपर्क में आने से सारे शहर को हैजे का, या अैसी ही किसी बीमारी का, शिकार होना पड़ता है। हाथ ने चोरी की तो पीठ पर कोड़े पड़ते हैं, अिसीलिअे कि हाथ और पीठ अेक ही शरीर के अवयव हैं। कुदरत की सजा भी अिसी तरह सार्वत्रिक अनुबन्ध का पाठ पढ़ाने के लिअे ही चाहे जहां प्रकट हो सकती है। कुदरत की यह रचना हम पूर्णतया नहीं समझ सकते और तो भी नीति के सार्वभौम तत्त्वों पर हमारी श्रद्धा होती

है। अिसीलिअ जो बात हम अनुभव से सिद्ध नहीं कर सकते और न विरुद्ध तर्क से काट सकते हैं, अुसको श्रद्धा से मान लेते हैं। गांधीजी ने देख लिया कि बिहार का भूचाल अेक असाधारण आपत्ति है। अिसका संबंध देश के किसी असाधारण और सैकड़ों वर्ष पुराने व्यापक पाप से ही हो सकता है। अिसीलिअे अुन्होंने अपनी श्रद्धा अुस समय प्रकट की।

और हम जरा सोचें कि 'अदृष्ट' के मानी क्या होते है? 'अकस्मात्' का अर्थ क्या है? 'दैव' किसे कहते हैं? जो कारण तो है किन्तु दिखायी नहीं देता वही 'अ-दृष्ट' है। जिस घटना का 'कस्मात्' अथवा कारण हम नहीं खोज पाते; किन्तु जिसका कुछ न कुछ कारण तो होना ही चाहिअे, अैसी घटना को हम 'अ–कस्मात्' कहते हैं।

अिस घटना के मानवी और कुदरती कारण का हिसाब लगाने के बाद और भी कुछ अज्ञात कारण रह जाते हैं। 'अधिष्ठान,' 'कर्ता' 'नाना प्रकार के करण' और 'विविध व्यापार'—अिन चारों किस्म के कारणों का हिसाब करने के बाद जो अवशिष्ट कारण रह जाते हैं अुन्हीं को हम 'दैव' कहते हैं। 'शेष चार कारणों में तो कोअी न कोअी नैतिक हेतु होता है; और केवल अज्ञात कारण में ही नैतिक हेतु का अभाव है'—यह कहना युक्तिसंगत नहीं है। किन्तु अगर किसी कारण के बारे में हम अितना भी कह सकें कि वह हेतु-शून्य है, तो वह पूर्णतया अज्ञात नहीं रहा।

खैर! बुद्धिमानी अिसमें है कि हर अेक महान् प्रसंग से हम कुछ न कुछ सबक सीख लें; अन्धे और बेहोश रहने में ही बुद्धि की सफलता न मानें। अिधर जब कि यूरोप का महायुद्ध चल रहा है, पचास हजार लोग प्राकृतिक दुर्घटना से यों ही मर जाते हैं, अिस बात में मनुष्य के लिअे कुछ बोध ही नहीं है अैसा मानना तो कतलखाने की बगल में मजे से घास चरनेवाले जानवरों की स्थिति में रहना है। मनुष्य को विचार करके अपने युद्धज्वर को हटाना चाहिअे।

साधुत्व ही स्वास्थ्य है

संशयात्माओं से मैं पूछता हूँ कि सृष्टि के केन्द्र में यदि कोअी सत्तत्त्व नहीं है, तो मनुष्यता को अेक युग के अिस प्राणघातक संघर्ष से यह विश्वव्यापी दारुण वेदना क्यों हो रही है? रोग के कारण पीड़ा होती है; क्या यह अिस बात का सबूत नहीं है कि स्वास्थ्य की स्वाधीनता में ही जीवन का स्वाभाविक सत्य निहित है? यंत्रणा जीवन का निषेध है। स्वास्थ्य जीवन की विधायक प्रतिज्ञा है। हमारा शरीर अिस सिद्धान्त को मानता है, अिसीलिअे वह अन्त तक घोर प्रतिकार करता है। यदि रोग के कारण हमें कोअी पीड़ा न होती तो अवश्य हम जीवन पर दगाबाजी का आरोप कर सकते थे। सब तरफ युद्ध की बीमारी फैल रही है। यह युद्ध कौन कराता है?—विश्व के हृदय में स्थित सत्तत्त्व की अपमानित सार्वभौम सत्ता।

'मॉडर्न रिव्यू'
जनवरी १९४०

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गांधीजी के अनुयायी

[श्री हरिभाऊ अुपाध्याय]

जिस समय हिन्दुस्तान में राजनैतिक या राष्ट्रीय क्षेत्र में शायद ही कोअी अैसा प्रमुख व्यक्ति या दल हो, जो गांधीजी के सिद्धान्तों या व्यक्तित्व से प्रभावित न हुआ हो। जहां तक कौंग्रेस से ताल्लुक है कौंग्रेस के प्रायः सभी दल गांधीजी के झंडे के नीचे अेकत्र हो गये हैं। जल्दी से जल्दी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है कि गांधीजी ने फिर सत्याग्रह का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया है। यह तो सभी मानते और जानते हैं कि गांधीजी चाहे कितने ही शक्तिशाली पुरुष हों, अुनका अपना अेक सिद्धान्त और दर्शन है और अुसीकी साधना से अुन्हें यह बल मिलता है। मैं तो दूर भविष्य में जितना देख सकता हूं, मुझे यह निश्चित होता जा रहा है कि गांधीजी का यह सिद्धान्त् और दर्शन हिन्दुस्तान की तो कायापलट करेगा ही, दुनिया के राजनैतिक, राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन पर भी अपनी अमिट छाप छोड़े बिना न रहेगा। यह संतोष की बात है कि लोग अब गांधीजी के व्यक्तित्व के जादू और चमत्कारों से आगे बढ़ कर अुनके सिद्धान्तों और दर्शन को समझने में भी काफी दिलचस्पी लेने लगे हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—सर राधाकृष्णन् संपादित 'महात्मा गांधी' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ। फिर भी यह जानना आवश्यक है कि अिनमें गांधीजी के सच्चे अनुयायी कौन हैं? और जो हैं अुन्हें अपनी जिम्मेदारी समझने की कितनी जरूरत है।

मेरी राय में गांधीजी के झंडे के नीचे आज अितने प्रकार के लोग हैं—(१) जिन्होंने गांधीजी *के सिद्धान्त और आदर्श को ग्रहण कर लिया है;*

(२) जिन्हें गांधीजी के व्यक्तित्व और चमत्कारों ने प्रभावित किया है और जो गांधीजी के सिद्धांत और दर्शन का जिज्ञासु की दृष्टि से अध्ययन कर रहे हैं।

(३) जो गांधीजी की राजनैतिक दूरदर्शिता और अुनके योद्धापन से प्रभावित हैं; जिन्हें अुनके सिद्धान्त और दर्शन में कोअी खास दिलचस्पी नहीं है;

(४) जो समयसाधु हैं; जिनकी न कोअी नीति न कोअी सिद्धान्त निश्चित है, और जो अुगते सूर्य को नमस्कार करने की प्रवृत्ति रखते हैं।

(५) जो न गांधीजी को चाहते हैं, न अुनके सिद्धान्त और दर्शन को पसंद करते हैं, मगर परिस्थिति से मजबूर हो कर गांधीजी के साथ हैं, और पहला मौका पाते ही वे अपना असली रूप प्रकट करेंगे।

अिनमें शुरू के तीन वर्ग ही अधिक विचारणीय हैं, ध्यान देने योग्य हैं। शेष दो का तो हम अध्ययन करते रहें और अुनसे सावधान रहते रहें, अितना बस है।

प्रथम तीन में पहला वर्ग ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अिसमें भी दो प्रकार के लोग हैं। अेक तो वे जो शुरू से ही महात्माजी के सिद्धान्त और दर्शन से आकर्षित और प्रभावित हुअे हैं। दूसरे वे जो अुनके व्यक्तित्व और चमत्कार से अुनकी ओर आकर्षित हुअे; लेकिन बाद को अुनके तत्त्व और दर्शन तक पहुँच कर अुसके कायल हो गये। अिन दोनों में अब अुन लोगों का समावेश हो जाता है जो अपने जीवन में और जीवन-कार्यों में मूल प्रेरणा सत्य से पाते हों और जिनका अन्तःकरण अहिंसा से, अर्थात्

सात्विक गुणों से, युक्त हो। भले ही वे राज-नैतिक कार्यकर्ता हों, देश की आजादी के लिअे मरमिटने की साध रखते हों; परन्तु यह अुनके जीवन में दूसरे नंबर की चीज़ होगी। वे देश की आज़ादी से भी बढ़ कर मूल्य और महत्त्व सत्य और अहिंसा, का मानते हैं। यदि सत्य की प्रेरणा को कुचल कर अहिंसा की भावना को ठुकरा कर देश के लिअे आज़ादी मिलने का ढंग दीखता हो तो भी वे आशंकित होंगे कि क्या सचमुच यह आज़ादी ही होगी ? और अिसलिअे वे अुस आज़ादी से डर कर दूर रहना पसंद करेंगे, क्योंकि अुनके मत में वह आज़ादी वास्तव में कोअी आज़ादी नहीं है जो मनुष्य और समाज को सत्य से दूर ले जाती हो। या जो मनुष्य के मृदुलतम और अुच्चतम गुणों का, या सात्विक संस्कारों, अर्थात् अहिंसा का, लोप करने के लिअे मजबूर करती हो। जब सत्य ही न रहा तो वह आज़ादी, या अुस आज़ादी का अुपभोग करने-वाला समाज टिकेगा किस पर ? और जब अहिंसा न रही अर्थात् प्रेम, स्नेह, अुदारता, क्षमाशीलता, सौजन्य और दयालुता न रही, तो अुस आज़ादी में सुगन्ध और सौन्दर्य कहाँ से आयगा ? कौन अुसका प्रेमी या भक्त बना रहेगा ? आज़ादी जैसे-तैसे भी हासिल कर लेना अेक तरह से कम महत्त्व की बात नहीं है, परन्तु आज़ादी को टिका रखना अेवं अुसे सर्वप्रिय सर्व-सुखदायक और सर्वोदय-कारक बना रखना अुससे कहीं अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। और अिसी में गांधीजी के सत्याग्रह, अर्थात् सत्य और अहिंसा का, अत्यन्त और सच्चा व्यावहारिक मूल्य निहित है।

स्वराज्य को टिकाये रखने में कौमी अेकता और हरिजन-सेवा का बड़ा महत्त्व है। गृहयुद्ध और अुसके दुष्परिणामों से देश को बचाये रखने के लिअे कौमी अेकता का प्रयत्न प्राण-पण से करना ज़रूरी है। किसी भी अेकता का आधार अहिंसा और सत्य ही हो सकता है। सत्य का अेकता की भाषा में अेक ही अर्थ हो सकता है—'न्याय'। जो 'न्याय्य' है वही सदा टिक सकता है और जो सदा टिका रहता है अुसी को सत्य कहते हैं। पर झगड़ों के अवसर पर शान्ति, सद्भावना, सहिष्णुता, क्षमाशीलता के आधार पर अुन्हें निपटाना ही अेक मात्र कारगर और स्थिर अुपाय हो सकता है। अिसीको अहिंसात्मक अुपाय कहते हैं। गांधी-अनुयायी नहीं, तो अिस जिम्मेदारी को कौन अुठावेगा ?

हरिजन-सेवा का अर्थ है करोड़ों पतित समझे जानेवाले दलितों को मनुष्यता की कोटि में ला बिठाना। पहले तो हमने अुन्हें दलित करने का गुनाह किया और फिर पतित ठहरा दिया—अिस दुहरे पाप का प्रायश्चित्त अिसके सिवा और क्या हो सकता है कि जब तक हिन्दू समाज से यह कलंक न मिटे तब तक किसी गांधीवादी को चैन से नींद न आवे ? यह भी अहिंसा की पूरी और सच्ची साधना के बिना नहीं हो सकता। और अितने करोड़ों को मनुष्यता के साधारण अधि-कारों से वंचित रखते हुअे आपके स्वराज्य का मूल्य भी क्या होगा ?

स्वराज्य आ गया और टिकने भी लगा—पर हम 'स्वराज्य' में करेंगे क्या ? भारतीय मनुष्य को और समाज को अूंचा अुठावेंगे या नहीं ? बलवान् और प्रगतिशील बनावेंगे या नहीं? अुसकी दिशा क्या होगी ? स्थायी लाभ पहुंचाने वाली आर्थिक या सामाजिक योजना क्या होगी ? अिसके जवाब में खादी तथा ग्रामोद्योगों का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। गांधीवादी की कोअी भी योजना सत्य अर्थात् न्याय, और अहिंसा अर्थात् शोषण वृत्ति के अभाव, पर आधारित होगी। मनुष्यों,

वर्गों और समाजों के बीच पूर्ण समभाव पर अुसकी भित्ति और स्थिति होगी। सत्ता के या साधन-सम्पत्ति के केन्द्रीकरण से यह व्यवस्था न बन सकेगी। केन्द्रीकरण से अन्याय और शोषण की जड नहीं कट सकती। विकेन्द्रीकरण में ही अुसकी अधिक संभावना हो सकती है। राष्ट्र की रक्षा का ही अेक अैसा प्रश्न है जिसमें केन्द्रीकरण अेक अंश तक काम दे सकता है; हालांकि अिस प्रश्न को भी विकेन्द्रीकरण के द्वारा हल करने में ही अहिंसात्मक या सत्याग्रही समाज-व्यवस्था की सच्ची सफलता मानी जायगी। अिस दिशा में, अर्थात् खादी और ग्रामोद्योगों को सफल बनाने में, भी गांधीवादी के सिवा और किसे हार्दिक अुत्साह हो सकता है? कहने का आशय यह है कि सैद्धान्तिक ज्ञान के अलावा गांधीवादी की, अर्थात् अिस लेख में गिनाये प्रथम वर्ग की, व्यावहारिक परीक्षा अिन तीन कामों की पूर्णता और सफलता में होनेवाली है। अिन तीन कामों के मूल तथा फल में सत्य-अहिंसा का अधिष्ठान तथा विकास होना चाहिअे। अिस परिणाम से अुनकी वृत्ति की शुद्धता, या सिद्धांत अथवा आदर्श के प्रति अुनकी निष्ठा, की जाँच होगी। अितनी बडी जिम्मेदारी अिस प्रथम वर्ग के अूपर है—जिसे अुसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिअे।

जो 'जिज्ञासु' अर्थात् दूसरे वर्ग में हैं अुनके लिये प्रथम वर्ग की जिम्मेदारी और कर्तव्य की गुरुता काफी पथदर्शन और प्रोत्साहन का काम देगी।

तीसरे वर्ग के लोग स्वराज्य के बाद की अवस्थाओं पर ध्यान देते हुअे नहीं मालूम होते। यह अुनकी दृष्टि की कमी है। अिसमें अुन्हें सुधार और प्रगति करने की जरूरत है।

पिछले दो वर्ग अेक से अेक भयंकर हैं। मगर जो गांधीजी के पथ पर चलना चाहता है अुसे डरने की जरूरत नहीं है—सावधान रहना काफी है। यदि सत्य का मार्ग वास्तव में न्याय का और कल्याण का ही मार्ग है और सत्य के अनुयायी अुसके सच्चे पथिक हैं तो ये वर्ग अगले तीन वर्गों में आये बिना न रहेंगे। या अुनका अस्तित्व ही न रहेगा।

अंतस्थ देवत्व की शोध

अपने प्राणों की बाजी लगा कर वीर पुरुषों ने अपनी प्राथमिक पशुवृत्ति का नियंत्रण किया है और अपने आत्मगत देवत्व का अविष्कार किया है। अेक के बाद दूसरी बहादुर पीढी के अविरत और निर्भय प्रयत्न की बदौलत यह अविष्कार जारी रहता है। जहाँ हम असफल हों, जहाँ हम परास्त हों, वहाँ हमें कष्ट सहन करना चाहिअे; परन्तु क्षमा का पात्र कभी नहीं बनना चाहिअे। अपने आत्मगत देवत्व को अपमानित कर हम अपनी झुझलाहट में निर्लज्ज हो कर क्षमा की याचना न करें और न यह पुकार मचायें कि ओश्वर तो है ही नहीं। अगर वह नहीं है, तो कसूर किसका है? निष्क्रियता में फंसा हुआ भीरु अपनी हि सत्ता का निषेध करता है और फिर दौड कर किसी गुरु की शरण लेता है, या किसी पुरोहित को घूस दे कर घंटा और घडियालों के कर्णकटु निनाद से अपनी शक्तियों को बधिर कर देता है।

मॉडर्न रिव्यू, जनवरी, १९४० —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कबूतर का गटरगूँ

४. घर बनाम बाहर

आदरणीय संपादक भाअी,

सविनय पालागन,

आपको शायद पता न होगा कि कम्बुग्रीव को आपकी गैर-जिम्मेदारी की बातों से काफी सदमा पहुंचा है। आप संपादक हैं। आपको चाहिअे कि किसी को बदनाम करने से पहले अुससे खुलासा मांगे। आपने आज तक वैसा नहीं किया। अिसलिअे कम्बुग्रीव जैसे धैर्यशाली को भी नाराज होना पड़ रहा है। आज मैं हृदय-कुंज में पहुंचा तो अपनी लाल लाल आंखों से मुझे घूरते हुअे वह बोला।

कम्बुग्रीव–कलबलराम भाअी, तुम अपने काका साहब को लिखो कि आयन्दा तंगदिल मनुष्य-कुटुम्बों की तुलना कबूतरखाने से न किया करें। और दादा धर्माधिकारी से भी कहो कि "हवाबन्द कमरे की संस्कृति" का लांछन कपोतों पर से हटा कर अपने ही बिरादरों पर लगायें।

मैं–आखिर, माजरा क्या है?

कम्बुग्रीव–तुम्हें याद होगा कि अिस सत्याग्रहाश्रम को बापूजीने जब अुद्योग-मन्दिर घोषित किया; अुस जमाने में यह 'हृदय-कुंज' आश्रम की बहिनों का अेक जबरदस्त अड्डा था। यहां गंगा बहिन वैद्य सरीखी वयोवृद्ध माताओं से ले कर आनन्दी सरीखी लड़कियों की चहल-पहल रहती थी।

मैं–आह; अुस जमाने की याद न दिलाओ! वे दिन हवा हो गये! वह रौनक न पहले थी न आगे कभी आयगी! हमारे 'गुटगल' (गलगलों) के समाज में अुस समय के स्त्री-समाज का जिक्र आज भी बड़े आदर के साथ किया जाता है। यहीं सब कितनी बेलाग और बेफिक्र बहनें रहती थीं। सुबह के साढ़े-तीन बजे से रात को बापूजी के सोने के समय तक कैसी सुहावनी कलबल चलती रहती थी। अिस मकान में अुनका कलरव और आंगन में हम लोगों का कलरव निरंतर गूंजता था। अब तो यहां सन्नाटा-सा रहता है। जब कोअी यात्री आ जाते हैं तब कुछ रौनक आती है।

कम्बुग्रीव–आज सबेरे जो यात्री आये थे, अुनमें अुस जमाने की दो बहनें भी थीं और तुम्हारी ही तरह अुस गुजरे हुअे जमाने की याद करके आहें भरती थीं। कहती थी, "दस बरस बीत गये पर अभी तक पूर्ण स्वातन्त्र्य नहीं आया, बापूजी का यह अुजड़ा हुआ बसेरा फिर बसा ही नहीं। और हम जो अितनी आजादी से घूमा या बिचरा करती थीं अब अपने अपने कबूतर-खानों में सदा के लिअे बन्द हैं। सचमुच स्त्री-जन्म भगवान का अभिशाप ही है। अेक स्त्री के लिअे कहीं आजादी नहीं है। बापूजी की गोद में यहां पर बिना दबाव के हम रहीं। परन्तु अब वह आजादी स्वप्नवत् हो गयी है।"—अिस तरह की बातें करती हुअीं वे लौट गयीं और मैं 'कबूतर-खाने' के अुनके कटाक्ष पर बेतरह खीज गया!

मैं:–क्यों, क्या कबूतर-खाना अेक दम्पती के संकुचित निवास का सही सूचक नहीं है?

कम्बुग्रीव:–हरगिज नहीं। कबूतर-दम्पती का आदर्श तो बहुत अूंचा है। मगर तंगदिल मनुष्यों की निन्दा करने के लिअे अुनकी तुलना हमारे साथ की जाती है। तुम्हीं बताओ, अितने बड़े आश्रम में तुमने कभी हमारे तंग दरबे देखे? सच बात तो यह है कि आदमी छोटे-छोटे हवाबन्द खानों के अलमारी-नुमा संदूकचे बनवाता है और पालतू कबूतरों को आदत

बिगाड़ कर हम लोगों की बेअिज्जती करता है। असल में यह बदी है आदमी की। मगर बदनाम होते हैं हम।

मैं:–अिसमें बदनामी की क्या बात है? पक्षीवर्ग में भी कबूतरों के जोड़े की बड़ी ख्याति है। तुम्हारे अंडों तक में नर-मादी की जोड़ी नहीं टूटती। बैठने में, चुगने में, हर जगह तुम्हारी जुगल-जोड़ी होती है। अकेले या तीन-तीन तो क्वचित ही नजर आते हो। यही गुण आजकल मनुष्य भी अधिक अधिक मात्रा में अपनाते जाते है। खासकर अपनी शादी का सट्टा-बट्टा स्वयं जमाने वाले दम्पती।

कम्बुग्रीवः–सारे मुकाबले में तुम सब से बड़ा पहलू छोड़ रहे हो।

मैं:–वह क्या?

कम्बुग्रीवः–हम परस्पर सम्पूर्ण समानता के नाते से रहते हैं। कोअी किसी का बंधा हुआ नहीं रहता। हम बंधे रहते हैं सिर्फ अपने गिरोह के साथ। सामूहिक सहचार हमारा प्रथम धर्म होता है। 'कबूतर–कबूतरी दोनों बने रहें, बाकी दुनिया चाहे भाड़ में जावे'—अैसी तंगदिली को हम अपने पास फटकने तक नहीं देते। हम पर चाहे कितनी भी आपत्ति आवे; पत्थर ही क्या, हम पर गोलियां भी बरसाअी जायें; हम अपने गिरोह को छोड़ कर स्थानान्तर नहीं करते।

मैं–तो क्या, तुम्हारा घर (घोंसला) बिलकुल दिखावटी होता है; मियां-बीबी कतअी बेलाग रहते हो?

कम्बुग्रीव–तुम तो निरे आदमियों के-से वकील बन बैठे हो, कलबलराम भाअी! आदमी का दिमाग सन्तुलन से कोसों दूर रहता है। अेक बात समझाने जाओगे तो दूसरे सिरे की समझ बैठेंगे। बापूजी ने कहा 'चरखा कातो,' तो ये सयानों की दुम समझ बैठे 'हल छोड़ दो, कुल्हाड़ी छोड़ दो और मर्दानगी भी छोड़ दो'। अेक कोने में बैठ कर बेवा की तरह रोते हुअे कातते रहने की और कातते हुअे रोते रहने की बात ही अुनके दिमाग में आती है। चिल्ला चिल्ला कर बापूजी का गला बैठा जा रहा कि "चर्खा कातने की सामूहिक मर्दानगी दिखाओ, पुरुषार्थ प्रकट करो।" और ये बुद्धिमान् समझ रहे हैं "चरखे की ओट में अपनी नामर्दी ढांको।" तुमने भी मेरी बात का अैसा ही अर्थ लगा लिया। मैंने कहा, "हम गिरोह-धर्म को—सामूहिक सहचार को—पड़ोसी प्रेम को—अपने दैनिक जीवन में पहला स्थान देते हैं; और तुम समझ बैठे कि गृहधर्म को ढीला रखने की मैं बात कर रहा हूं! तुम्हें पता है?—मरते दम तक कबूतर अपनी कबूतरी नहीं बदलता। हमारे यहां अेक के साथ रहना और अन्य की प्रशंसा करना, सर्वनाश से भी बुरा समझा जाता है।

मैं– दो में से अेक बात बताओ। तुम समाज या घर में से किसके प्रति वफ़ादार हो? आकाश में विचरना और पैरों से फुदकने का आनन्द लेना—दोनों ही अेक साथ नहीं हो सकते। जिस समय तुम पैरों के बल फुदकते हो अुस वक्त पंख से कोअी मतलब नहीं रहता और पंखों के बल अुड़ते हो तब पैर बिलकुल बेकार होते हैं। या तो तुम समाज के हो या घर के। दोनों के हरगिज नहीं हो सकते।

कम्बुग्रीव–क्या बताअूं कलबलराम भाअी, तुम्हारा दिमाग बहुत ओछा है। अुपमाओं से कोअी सिद्धान्त स्थापित नहीं किया जा सकता। तुमने पंख और पैरों की अुपमा दी। मैं छाती और पंख की अुपमा दूंगा। असली बल छाती में है। छाती मजबूत रही तो तुम अुड़ भी सकोगे और कूद भी सकोगे। अगर रूपक ही चाहिअे तो

समाजनिष्ठा को मैं छाती कहूंगा, दम्पती को पैर और अंडे-बच्चों को पंख। पंखों की तरह बच्चे हमें बहुत ऊंचे ले जाते हैं और विराट आकाश की तरह अथाह भविष्य में संचार कराते हैं। जिस नीलाकाश में मैं अब ऊंचे ऊंचे चढ़ जाता हूं और फिर कला खाता हूं तब, और छोटे छोटे कबूतरों को तालीम देता हूं तब, मेरे रोम रोम में आनंद अुमड़ आता है। जिस तरह दोनों पैरों के बिना कदम नहीं अुठाया जा सकता अुसी तरह बिना पति-पत्नी के कर्तव्य भी अदा नहीं किया जा सकता। अेक पैर टूटने पर जिस तरह बैठना-अुठना मुहाल हो जाता है, अुसी तरह जोड़ी टूटते ही जीना हराम हो जाता है। लेकिन असली बल छाती में ही है। छाती में दम न रहा तो पंख और पैर दोनों बेकार हैं। दोनों का बोझ ही हमें ले डूबेगा। यही बात हमारी गिरोह-निष्ठा में है। यही बात हमारे पड़ोसी-प्रेम में और सामूहिक सहचार में है। हमारा प्रत्येक पल अपने गिरोह की शुभ कामना में बीतता है। तुम तो जानते ही हो कि चाहे हमें अेक डिब्बे में बन्द करके भुलावा देने के लिअे अुलटे-सीधे ही ले जा कर छोड़ दो; तो भी हम सीधे अपने मुकाम पर आ जाते हैं। क्योंकि हमारी हलचल कुछ भी हो, हमारा ध्यान अपने मुकाम पर से कभी नहीं डिगता। अपने घरेलू कर्तव्य में अेक दूसरे के फन्दे में हम चाहे कितने ही फँसे रहें, हमारी निष्ठा तो गिरोह में ही होती है। और ये जो लड़कियाँ सबेरे यहाँ आयी थीं अुनकी आहें भर कर अपने आप को कबूतर-खाने में गिरफ्तार बतलाना हमारा घोर अपमान नहीं तो क्या था? नित्यप्रति शब्दों के सिक्के ढालनेवाले काकासाहब की टकसाल से ही यह शब्द निकला है। पर अुसमें वे गलती कर गये हैं। अपने ही परिवार में तंगदिल हो कर फँस जाना सचमुच 'हवाबंद सूराखों की संस्कृति' है। पर वह कबूतरों की संस्कृति नहीं है; चाहे आदमियों की भले ही हो। पारिवारिक जीवन में रचे-पचे रहने पर भी सारा परिवार हम पारावतों की तरह सामूहिक सहचार को अपना ले तो अिन बहनों को अपना स्त्री-जीवन अभिशाप नहीं; अपितु अीश्वर का आशीर्वाद प्रतीत होगा।

मैं—आखिर तुमने भी अेक रूपक से ही अपना सिद्धान्त स्थापित किया। खैर; अब मेरे दिल में से यह बात निकल गयी कि गृह-निष्ठा और समाज-निष्ठा परस्पर विरोधी हैं। पर अेक सवाल रह जाता है। यदि स्त्री और पुरुष के बीच आपस में कभी लड़ाअी छिड़ जाय तो क्या गृह-निष्ठा और समाज-निष्ठा में से किसी अेक की ही विजय होने का अन्देशा नहीं रहेगा? अैसी हालत में तुम्हारे कबूतर-खाने में क्या होता है?

कम्बुग्रीव—कलबलराम भाअी, तुम मुझे चिढ़ाने की कोशिश कर रहे हो। मालूम होता है तुम गुरगलों (गलगलों) में हमेशा आपस में लड़ाअी होती रहती है। अिसीलिअे तुम अिस बात के विषय में बेचैन हो। परन्तु गहराअी से जाँचोगे तो अितनी लड़न्त-भिड़न्त के बाद भी तुम्हारी समाज-निष्ठा बनी रहती है और घर भी चलता है। कोअी अनुभव का किस्सा लाओगे तो अुस पर फिर चर्चा करने को मैं तैयार हूं।

सम्पादक भाअी, हमारी चर्चा अधूरी ही रह गयी। यह कोअी पूरी होनेवाली चर्चा थोड़े ही है? परन्तु अब अितना तो शायद आप भी वादा करेंगे कि आपने 'कबूतरखाना' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया है अुस अर्थ में आयन्दा न करेंगे।

आज्ञाकारी—

कलबलराम

ग्राम-पंचायत का प्रश्न

[प्रभुदास गांधी]

ग्राम-संगठन या ग्रामसुधार की चर्चा जहां की जाती है वहां पंचायत के बारे में बहुत श्रद्धा और भक्ति दिखाओी जाती है। युक्त प्रान्तीय ग्राम-सुधार का विराट आयोजन पंचायत की बुनियाद पर किया गया है। ग्रामसुधारक को आज्ञा दी जाती है कि वह ग्राम में जा कर सबसे पहिले अेक पंचायत का संगठन करे। देहाती नेताओं के व्याख्यान भी ज्यादातर अिसी विषय पर होते हैं। जब कि हम जनतंत्रात्मक राज्य के लिये जूझ रहे हैं और कांग्रेस का सारा विधान भी जनतंत्रात्मक है तब पंचायतों का "सौ मर्ज की अेक दवा" समझा जाना स्वाभाविक भी है।

परन्तु सवाल यह है कि क्या अूपर से थोपी हुअी पंचायत गुलामी को घटाने के बदले बढ़ा न देगी? बड़े वटवृक्ष की शीतल छांह में गांववालों को और अुनके मवेशियों को बहुत आराम मिलेगा यह तथ्य की बात है। परन्तु कहीं से बरगद का सूखा ठूंठ ला कर गाड़ देने से तो वह सुख नहीं मिलेगा? नयी पंचायतों के मार्फत ग्राम-सुधार, या समाज-सुधार, करने का अेक मात्र तरीका जहां अमल में लाया जाता है; या अन्य सेवा-प्रवृत्तियों की बनिस्बत पंचायत-संगठन पर बहुत ज्यादा जोर दिया जाता है, वहां शीघ्र ही पंचायतें सुखदायी न हो कर दुःखदायी साबित होती हैं।

गांवों में दारिद्र्य के भीषण तांडव से भी अधिक विकराल वह कुचक्र है जो गांव के बलशाली गुट्टों के हाथों चलाया जाता है। पंचायत स्थापित होते ही अिन बलवान् गुट्टों के हाथ में संगठित ताकत आ जाती है। अैसे विविध किस्सों का बयान करने का यहां स्थान नहीं है। फिर भी संक्षेप में अितना कहना बस है कि पंचायत के कानूनों का अमल गांव के सफेदपोशों की खुदगर्जी के हक में और दीन-दुखियों का कष्ट बढ़ाने में होता है। यह सर्व-सामान्य अनुभव है।

फिर भी पंचायत के असूल पर कोअी कालिख नहीं पोती जा सकती। 'पंच-परमेश्वर' वाली मिसाल सिर्फ मिसाल ही नहीं; अेक अमूल्य सिद्धांत है। जरूरत अुसके सही प्रयोग की है। अमृत जैसा दूध भी गंदी आंतों में पड़ने से हलाहल विष जैसा असर करता है। अुसी तरह गांव की शुद्धि के बिना पंचायतरूपी अमृत भी जहर के मानिन्द होना लाजिमी है। ग्राम-सुधार में—ग्रामसंगठन में—पंचायत का कार्यक्रम सबसे पहिले नहीं—सबसे अंत में होना चाहिये। ग्रामरूपी मंदिर का पंचायत सुवर्ण कलश है। मंदिर मजबूत और स्वच्छ बनाने के पहिले कलश की फिकर नहीं करनी चाहिये। जब कि गांव टूटा-फूटा हो, अुसके अिर्द-गिर्द घूरों का परकोटा हो, अुसकी गलियों में घुटने भर कींच की दलदल हो, और अुसके खेत में पैदा होनेवाला अन्न तथा कपास गांव में आने से पहिले ही मंडियों में चला जाता हो, तो वहां पंचायत का क्या काम?

घरेलू अुद्योग-धंधे, स्वच्छ खान-पान, अपने गांव के बने कपड़े की सब के शरीरों में पर्याप्त गरमी, अच्छा साहित्य लिखने-पढ़ने और अमल में लाने की आदत और पड़ोसी को सहायता करने की तत्परता, जब गांव में प्रकट होगी; तब पंचायत का जो कलश चढ़ाया जायगा वही गांव की शोभा बढ़ायेगा। "पहिले पंचायत बाद में ग्राम-पुनर्निर्माण" का सूत्र बदल कर 'पहिले सेवा और अंत में ग्रामपंचायत' के सूत्र को अपना लक्ष्य बनाना हमारे लिये सुखकर और श्रेयस्कर होगा।

क्रान्ति के प्रतीक की स्वतंत्र प्रतिष्ठा

[दादा धर्माधिकारी]

कअी क्रान्तिवादी युवक आज यह व्यंग-पूर्ण सवाल पूछते हुअे पाये जाते हैं कि 'चरखे का क्रान्ति से क्या संबंध हो सकता है ?'

यह सवाल पूछनेवाले नवयुवकों के दो वर्ग हैं :—

अेक वे जिन्हें हम "ठप्पेवाले" क्रान्तिवादी कह सकते हैं। खादी पर तरह तरह के बेलबूटे छापने के लिअे कुछ ठप्पे काम में लाये जाते हैं। अुन ठप्पों को रंग में डुबो कर खादी पर छाप देने से काम चल जाता है। अुसी तरह जिन लोगों के दिमाग में क्रान्ति की प्रणाली के कुछ ठप्पे हैं। अुन्हें वे हिन्दुस्तान पर लगा कर क्रान्ति करना चाहते हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना चाहिअे कि मेरा मतलब समझदार समाजवादियों से नहीं है।

दूसरे वे हैं जो यह समझते है कि अितिहास केवल अेक टकसाली घटनाओं की शृंखला है। पूर्वघटित घटनाओं की पुनरावृत्ति को ही वे देश की परंपरा और अितिहास मानते हैं। अिसलिये वे गेरुअे या भगवें वस्त्र का संन्यास से रिश्ता फौरन समझ और मान सकते हैं। अुसे हिन्दू संस्कृति का प्रतीक भी मान सकते हैं। "केसरिया बाना" वीरवृत्ति का चिन्ह मान सकते हैं। खाकी पोशाक में सिपाहियत का दर्शन कर सकते हैं। चांद और हरे रंग में अिसलाम के सिद्धान्तों का साक्षात्कार कर सकते हैं। परन्तु खादी या चरखे में क्रान्ति नहीं देख सकते। अुनका चश्मा कुछ अैसे पत्थर का बना है जिस से भूतकाल तो नजर आता है परन्तु भविष्य दिखायी ही नहीं देता। कुछ लोगों को रतौंधी हो जाती है। यह भविष्यान्धत्व भी अेक अैसा ही मर्ज है।

मैंने अपने अेक ठप्पेवाले मित्र से पूछा, "आप यह तो मानते हैं कि हँसिये और हथौड़े का क्रान्ति से घनिष्ट संबंध है? आप के लाल झंडे पर हँसिये और हथौड़े का चित्र तो अवश्य होता ही है।"

अुसने तुरन्त जवाब दिया; "वह तो महज् अेक प्रतीक है। वह अिस का द्योतक है कि हम किस प्रकार की क्रान्ति चाहते हैं। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य अुत्पादक शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाना है।"

मैं—तो फिर क्या चरखा भी अुत्पादक शरीर-श्रम का अुपकरण नहीं है ?

मेरा मित्र—है क्यों नहीं? लेकिन तुम यह भूल जाते हो कि वह क्रान्ति का केवल अेक अुपलक्षण है। क्रान्ति का वह साक्षात् साधन नहीं है। क्रान्ति तो अन्य साधनों से करनी पड़ेगी। अिसीलिअे हम सब लोगों से यह नहीं कहते कि तुम हँसिया और हथौड़ा चलाओ। हँसिये और हथौड़े को हमने यज्ञकर्म का अुपकरण नहीं बना रखा है। यह रहस्यवाद आप ही को मुबारक हो। आप तो बुद्धि के पीछे लठ ले कर दौड़ना ही सीखे हैं।

मैं—आप अितना तो मानते हैं कि समाज के प्रचलित मूल्यों को हम बिलकुल बदल देना चाहते हैं; और अुनकी जगह अैसे नये मूल्य कायम करना चाहते हैं जो हमारी क्रान्ति के अुद्देश्य के द्योतक होंगे? आज सम्पत्ति का प्रतीक सिक्का माना जाता है। दर असल तो वह अेक विनिमय का सुविधा-जनक साधन-मात्र है। न तो वह सम्पत्ति है; न सम्पत्ति का साधन। सम्पत्ति का साधन तो प्रत्यक्ष

अुत्पादक परिश्रम ही है। अिसीलिअे आप अुसकी प्रतिष्ठा बढ़ाना अपना फ़र्ज मानते हैं। हँसिया और हथौड़ा अुत्पादक अुद्योग के अुपकरण हैं। अिसीलिअे आप अुनकी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं। तब यह बतलाअिये कि चरखे को, जो यहां की जनता के लिअे सर्व-सुलभ अुद्योग है, अिस मूल्य-परिवर्तन का चिन्ह मानने में क्या हर्ज है?

मेरा मित्र—यह तो हम भी मानते हैं कि चरखा अिस मूल्य-परिवर्तन का प्रतीक हो सकता है। अिसीलिअे हमने अपने राष्ट्रीय झंडे पर अुसका चित्र रक्खा है। अिससे ज्यादा हम अुसकी अिज्ज़त क्या कर सकते थे? लेकिन तुम तो अुसे क्रान्ति का ही साधन बनाने जा रहे हो। चरखे से क्रान्ति कैसे होगी? क्रान्ति तो प्रत्यक्ष प्रतिकार से ही होगी, न कि किसी अुत्पादक परिश्रम के ज़रिये।

मैं—अच्छा तो अिस प्रत्यक्ष प्रतिकार की पद्धति कैसी होगी: हिंसक या अहिंसक?

मेरा मित्र—जहां तक हो सके अहिंसक, और अगर अहिंसा से काम न बना तो हिंसक।

मैं—तो क्या मैं आपके कथन का यह मतलब समझूं कि दुनिया की सारी चीजों की प्रतिष्ठा तलवार पर निर्भर है? क्या आप संसार को यह पाठ पढ़ाना चाहते हैं कि तलवार ही अेक-मात्र स्वयं-प्रतिष्ठित मूल्य है और अन्य सब मूल्य अुसके आधीन हैं? तब तो यह कहना होगा कि आप संसार में पशुबल की प्रतिष्ठा को चिरस्थायी करने आये हैं; न कि अुत्पादक अुद्योग की प्रतिष्ठा कायम करने।

मेरा मित्र—हम विवश हैं। हम न तो अहिंसा के पुजारी हैं और न तलवार पर आशिक हैं। हम तो बुद्धिवादी और वस्तुवादी हैं। हम संसार में मनुष्यता की प्रतिष्ठा कायम करने के लिअे कटिबद्ध हैं।

मैं—लेकिन आप यह कैसे मान सकते हैं कि मनुष्यता की प्रतिष्ठा तलवार पर निर्भर है। तब तो प्रतिष्ठा तलवार की है; न कि मनुष्य की।"

मैं अिस वार्तालाप को यहीं खत्म करता हूं। मेरा मतलब अितना ही है कि हम जिस विशेष मूल्य की प्रतिष्ठा द्वारा क्रान्ति करना चाहते हैं वह मूल्य गौण या परतंत्र नहीं माना जा सकता। अुसकी प्रतिष्ठा किसी दीगर मूल्य पर अवलंबित नहीं रहनी चाहिअे।

आखिर, फैसिज़्म और क्रान्तिवाद में सब से बड़ा भेद तो यही है कि फैसिज़्म युद्धवाद तथा तलवार की प्रतिष्ठा का अभिभावक है और क्रान्तिवाद अुसका शीघ्रातिशीघ्र अन्त कर देना चाहता है। अिसलिअे हमें अैसे ही साधनों और अुपकरणों से काम लेना चाहिअे जो तलवार की प्रतिष्ठा बढ़ाने के बदले अुसे नष्ट करने में सहायक हों।

मनुष्यता की प्रतिष्ठा का अन्तिम आधार अुसका आत्मबल ही हो सकता है। समाजोपयोगी शरीरश्रम अुस आत्मबल का अेक व्यक्त रूप है। अिसलिअे हमें हँसिया-हथौड़े या चरखे को तलवार का आश्रित या टहलुआ कदापि नहीं बनाना चाहिअे।

जिनके झंडे पर हँसिये और हथौड़े का चित्र होते हुअे भी जो क्रान्ति के लिअे तलवार की जरूरत महसूस करते हैं अुनकी बुद्धि अभी तलवार की शक्ति से प्रभावित है। तब तक वे विशुद्ध बुद्धिवादी भी नहीं कहला सकते। वे खड्गावलंबी बुद्धिवादी हैं। अभी विशुद्ध बुद्धिवाद के अेक कदम पीछे हैं।

अब रहा यह सवाल कि "खादी या चरखा क्रान्ति के प्रतीक भले ही माने जायें; लेकिन यह आग्रह किसलिअे कि हर अेक को खादी

पहननी ही चाहिये और चरखा चलाना ही चाहिये ? यह तो फिर वही पुराने कर्मजड मीमांसकों का कर्मकाण्ड आ गया। पुराने मीमांसक पात्र-प्रोक्षण से ले कर सोमयाग तक हर अेक क्रिया का संबंध स्वर्ग से लगा देते थे। अैसा ही कुछ यहां भी हो रहा है।"

अिसके अुत्तर में अितना ही निवेदन है कि प्रतीक भी दो प्रकार के होते हैं: अेक केवल प्रतिमात्मक और दूसरा क्रियात्मक। प्रतीक के पीछे जो भावना होती है अुसपर अुसकी परिणामकारिता निर्भर है। वह भावना जाग्रत रखने के लिअे अुस प्रतीक से प्रत्यक्ष संबंध रखनेवाली किसी नियमित क्रिया की जरूरत होती है।

कातने की क्रिया में ये दोनों गुण मौजूद हैं। अुत्पादक अुद्योग का वह प्रतीक भी है और अभ्यास भी। 'असकृत् आवृत्तिः अभ्यासः'—"अभ्यास का अर्थ है बार बार अुसी क्रिया को दोहराना"। अगर हमें तलवार की प्रतिष्ठा बढ़ानी होती तो हम हिंसक प्रतिकार की 'असकृत् आवृत्ति' याने, 'कवायत' करते। परन्तु हमें तो अुत्पादक अुद्योग की प्रतिष्ठा कायम करनी है। अिस लिअे हम अुस अुद्योग की 'असकृत् आवृत्ति,' या अभ्यास, करेंगे। यही है अहिंसक युद्ध की कवायत। अिसलिअे जब गांधीजी कहते हैं कि चरखा चलाना अहिंसक लड़ाअी की तैयारी है, तो वे कोअी बिलकुल ही अूल-जलूल प्रलाप नहीं करते।

जो लोग भगवे वस्त्र को धर्म या संस्कृति का प्रतीक मानते हैं; या जो हरे रंग और चांद को धर्म का प्रतीक मानते हैं; वे भी तलवार को धर्म का संरक्षक मानते हैं। अुनके मत में भी धर्म की कोअी स्वतंत्र प्रतिष्ठा या शक्ति नहीं है। अुनका धर्म भी पर-प्रतिष्ठित ही है। धर्म की अपेक्षा तलवार में अुनका विश्वास अधिक है। क्या यह धर्म का अपमान नहीं है ? अिससे बढ़ कर नास्तिकता और क्या हो सकती है ?

'ठप्पेवाले' क्रान्तिवादी और परंपरा-परायण युद्धवादी ने अिस प्रश्न का मूलग्राही विचार नहीं किया है। अिसीलिअे वे यह स्पष्ट बात भी नहीं देख सकते कि क्रान्ति का प्रतीक अुसके सिद्धान्तों के और लक्ष्य के अनुरूप ही होना चाहिअे; और प्रतीक अगर क्रियात्मक न होगा तो अुसकी मूलभूत भावना जीवित नहीं रह सकेगी।

अन्तस्तल की टेर

मनुष्य की सब से श्रेष्ठ प्रार्थना यह है कि वह असत्य से सत्य की ओर बढ़े, अंधेरे से अुजेले की दिशा में अग्रसर हो, मृत्यु से अमृतत्व की तरफ पग बढ़ावे। यह दुर्बलों के अुपयुक्त प्रार्थना नहीं है। वह तो मनुष्य के परम कल्याण का आव्हान है। वह अुसे कष्ट और वेदनाओं में से पूर्णता की ओर पुकार रहा है। वह मनुष्य की अन्तरात्मा में से रुद्र की स्फूर्ति व्यक्त करता है और अुसे सत्य के विकट मार्ग पर आरूढ़ करता है।

मॉडर्न रिव्यू
जनवरी, १९४० } —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नवयुग निर्माण में स्त्रियों का स्थान

[ताराबहन मोडक]

जिस संकुचित वातावरण में रह कर स्त्रियां स्वयं संकुचित विचारोंवाली बन गयी थीं और जिस वातवरण के कारण पुरुषों के अन्दर भी स्त्रियों के बारे में संकुचित विचार पैदा हो गये थे, अुन सबको मिटा कर आज सुधरे हुअे संसार में यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि स्त्री और पुरुष दोनों मानव समाज के दो अंग हैं, जिन पर समाज की समान जिम्मेदारी है। अिस प्रकार संसार में स्त्रियों के जो आन्दोलन चले, अुन्होंने समाज में स्त्रियों के अधिकारों को स्थापित करने का बहुत बड़ा काम किया है।

अब हमें अिससे भी आगे बढ़ कर आगे काम करना है। मनुष्य-जीवन में स्त्री की जो जिम्मेदारियाँ हैं अुनको अंगीकार करके हमें स्त्रियों की ओरसे अपना विशिष्ट भाग प्रदान करना है। अब तक गृह-जीवन स्त्रियों के हाथ में था और बाहर का सारा व्यवहार पुरुषों के हाथ में था। अिसके दो परिणाम स्पष्ट रूप से आज हमारे सामन हैं। अेक तो यह कि आज समाज में पुरुषों के सभी व्यवहारों को अेक प्रकार की श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा प्राप्त है; और स्त्रियों के काम को जनाना समझ कर अुन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है। आज भी कहीं बाहर जा कर काम करने में स्त्रियां विशेष गौरव का अनुभव करती हैं; जब कि घर में रहनेवाली और घर सम्हालने वाली बहनें अपने मन में यही समझती हैं कि हम कुछ नहीं करतीं, और हमारा जीवन व्यर्थ ही बीत रहा है।

दूसरा परिणाम यह हुआ है कि बाहर के सब व्यवहारों पर पुरुषों की छाप पड़ी हुअी है। आज हम जिस जगत् में रह रहे हैं, वह आदि से अन्त तक पुरुषों की सृष्टि है। व्यापार, व्यवहार, कानून-कायदा, राजनीति, धर्मनीति, अुद्योगधन्धे, सभी कुछ पुरुषों के बनाये हुअे हैं। स्त्रियाँ आज अिन कामों में कितना ही भाग क्यों न लें तब भी वे पुरुष बन कर यानी पुरुषों द्वारा ठहराये हुअे तरीके से, अुनके द्वारा विकसित की गयी पद्धति से ही, अुन सब कामों को करती हैं। स्त्रियां आज कितनी ही आगे क्यों न बढ़ जायें, कितने ही विभिन्न क्षेत्रों को क्यों न पादाक्रान्त कर लें और पुरुषों की बराबरी करने का कितना ही आत्मसंतोष क्यों न अनुभव करें—तथापि आखिरकार अुनको रहना तो अुसी दुनिया में है, जिसका विधाता पुरुष है। आज स्त्रियां पुरुषों जैसी, यानी अुनकी समता करनेवाली भले बन गयी हों, परंतु पुरुषों की बराबरी करने का जो प्रयत्न अुनकी तरफ से हो रहा है, वह अुनकी हीन वृत्ति का ही सूचक है। जो लोग यह समझते हैं कि हम यूरोपियनों के समान नहीं हैं, वे हमेशा अिसके दुःख को अपना साथ लिये फिरते हैं और रहनसहन, खान-पान, आदि हर अेक बात में अुन्हींका अनुकरण करने की चेष्टा करते हैं। जो लघुता-ग्रंथी अिन लोगों में पायी जाती है, अुसीकी शिकार हमारी बहुत-सी बहनें भी हैं। तात्पर्य यह है कि स्त्री को स्त्री के रूप में मानव समाज के अन्दर अपना विशिष्ट स्थान बना लेना है। यह काम वह किस प्रकार से कर सकती है ?

जो काम स्त्रियों को कुदरत की ओर से सौंपा गया है और जिसे वे भलीभांति कर सकती हैं अुसी बाल-संगोपन और बाल-शिक्षा के काम को यदि वे पूरी तरह सम्हाल लें, तो

वे अेक बहुत बडी जिम्मेदारी को सम्हाल लेंगी।

स्त्रियां कह सकती हैं कि अिसमें आपने नयी बात क्या कही? आज न जाने कितने युगों से हम घर की और बच्चों की ही गुलामी करती आयी हैं और रात दिन अुन्हींका पाखाना-पेशाब अुठाती रहती है; फिर अुसीको करने में विशेषता क्या है? पहली विशेषता तो भावना की है। बहनों को समझना चाहिअे कि यह काम सिर पर आ कर पडा हुआ कोअी बोझ नहीं है, और पुरुष जितने भी काम करते हैं अुनमें से किसी से किसी प्रकार हलका नहीं है। अिस भावना से यदि हम अिन कामों को करें तो अिनमें हम रस की घूंटें पी सकते हैं। अिसमें संदेह नहीं कि भावना के रंग से रंग कर हमारे सब काम अधिक सजीव और प्रकाशित हो अुठेंगे।

दूसरी विशेषता है अुन्हीं कामों को करने के तरीकों की। परंपरागत तरीकों से बच्चों की परवरिश करना अेक बात है, और अिस संबंध के शास्त्रों का अध्ययन करके स्वयंप्रयोगों द्वारा अुन तरीकों म अुन्नति करना दूसरी बात है। यदि स्त्रियां बाल-संगोपन संबंधी शास्त्रों का अध्ययन करें, गहराअी के साथ अिन विषयों का चिन्तन और मनन करें, और अिस प्रकार अपने अनुभवों और विचारों की भेंट समाज के चरणों में चढाती रहें तो यह काम आज जितना हीन और गौण माना जाता है, अुतना न स्वयं स्त्रियों को ही हीन और गौण मालूम होगा, और न पुरुषों को ही गौण लगेगा। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है। अेक आअी० सी० अेस्० सज्जन मुझसे आकर मिले और मेरे साथ बच्चों के संबंध में थोडी बातचीत करने लगे। अुनकी शिक्षित धर्मपत्नी भी अिस बातचीत में हमारे साथ बराबरी से भाग ले रही थीं। दोनों बडी गंभीरता के साथ बाल-मनोविकास की चर्चा कर रहे थे। अिसी बीच मेरे मन में यह विचार आया कि अिन आअी० सी० अेस्० महोदय को अपने ऑफिस का काम अपनी पत्नी के बाल-संगोपन की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और अधिक महत्त्व का मालूम होता है। जो मनःस्थिति अिन आअी० सी० अेस्० सज्जन की थी, वही प्रायः सब पुरुषों की अिस संबंध में हो सकती है; परंतु यदि प्रत्येक स्त्री अिस विषय का शास्त्रीय अध्ययन करे और शास्त्रीय दृष्टि से सब बातों का विचार करके अुनको अपने आचरण में अुतारने लगे, तो पुरुषों की यह दृष्टि बदल सकती है।

तात्पर्य यह कि यदि हमारी बहनें बाल-मनोविज्ञान, बाल-शिक्षाशास्त्र, बाल-शरीर और बाल-मानस के विकास का और अैसे अन्य विषयों का गंभीर अध्ययन करके तदनुसार अिस दिशा में भलीभांति काम करने लगें तो पुरुषों के दिल में कभी यह खयाल अुठेगा ही नहीं कि चूंकि स्त्रियाँ अुनकी तरह बाहर जा कर नौकरी नहीं करतीं, अिसलिअे वे कोअी कम महत्त्व का काम करती हैं। मराठी में अेक कहावत है कि—"जिच्या हातांत पाळण्याची दोरी ती जगास अुद्धारी," यानी जिसके हाथ में पालने की डोरी है वही संसार की अुद्धारकर्त्री भी है। यह कहावत आज या तो केवल लेखों और निबंधों में प्रयुक्त होती है अथवा मातृदिन के अुत्सव पर दोहरा दी जाती है। पर यदि बहनें मन में धार लें तो कल यही चीज पूरे अर्थों में सत्य और सार्थक हो सकती है।

दूसरी बात में यह कहना चाहती हूँ कि संसार के मानवी व्यवहारों में स्त्री को स्त्री के नाते अैसा परिवर्तन करना चाहिअे जो अुसके विचारों और वृत्ति के अनुकूल हो। आजकल जिस तरह का व्यवहार देश देश और जाति जाति के बीच

में हो रहा है अुसमें कअी प्रकार का जंगलीपन भरा हुआ है; पशुता भी है; हृदय-शून्यता और अमानुषता भी है। पुरुषों की अिस दुनिया में यह अेक सामान्य धारणा बनी हुअी है कि जहां जहां व्यवहार का संबंध आता है, वहां वहां अुसकी नींव असत्य पर ही बनी होनी चाहिअे। मनुष्य को दुनिया में यही सोच कर चलना चाहिअे कि यहां जो कुछ है सो बुरा ही बुरा है। जितने हक या अधिकार पाने हैं, वे सब लड़-झगड़ कर ही पाने हैं। ये और अैसे अन्य अनेक अलिखित नियम आज मनुष्यों के आपसी व्यवहार में प्रचलित हैं।

मैं मानती हूं कि यदि स्त्रियां पुरुषों का अनुकरण करना छोड़ दें और जो कुछ अुनके मन को अच्छा जंचे वैसा ही करने लगें, तो मनुष्यों के व्यवहार में वे बहुत कुछ परिवर्तन कर सकती हैं और अुसको अभीष्ट रूप भी दे सकती हैं। अिसमें शक नहीं कि जो संस्कार पीढ़ियों और सदियों पुराने हैं, अुनके दूर होने या बदलने में भी काफी समय लगेगा। फिर भी, दुनिया में अैसी कोअी चीज नहीं, जो असम्भव हो। आजकल की स्त्री दो रोगों से ग्रस्त है। अेक रोग तो यह है कि वह चाहे या न चाहे तो भी अुसका मन यह मानना चाहता है कि पुरुष जो कहता है वही ठीक है। पुरुषों के ठहराये हुअे नीति नियम, अुनके बनाये हुअे विधि-विधान, अुनके तैयार किये हुअे कानून-कायदे और अुनके द्वारा प्रचारित रीति-रिवाज, जो कुछ भी है सो सब अुसको सोलहों आने ठीक मालूम होते हैं। किसी स्त्री का भाषण सुन कर स्त्रियां यदि अुसके विचार ठीक हुअे तो अुसे ठीक कहती हैं, अन्यथा साफ साफ कह देती हैं कि भाषण में धरा क्या था? योंही कुछ अंडबंड बक गयी! अपनी समझ में न तो कोअी बात आयी और न जंची। परन्तु जब वे ही बातें किसी पुरुष के व्याख्यान में सुनती हैं, तो अुनका झुकाव अुन बातों को सच मानने की तरफ ही ज्यादा होता है। अिसीको मैं लघुता-ग्रंथी (अिन्फीरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स) कहती हूं। अिसी कारण आज स्त्रियां स्वयं स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने की हिम्मत नहीं कर पातीं। वे पुरुषों की बराबरी का दावा तो करना चाहती हैं, परन्तु आचार, व्यवहार और विचार में वे प्रायः पुरुषों की ही जूठन से काम लेती हैं। दूसरे शब्दों में यद्यपि बाह्यतः वे पुरुषों के स्वामित्व को मानने से अिनकार करती हैं, तथापि अुनकी बौद्धिक गुलामी से अपने को छुड़ा नहीं पातीं।

स्त्री का दूसरा रोग है तंगदिली अर्थात् हृदय की संकुचितता। आज स्त्री महान् बातों का अुतनी ही महानता के साथ विचार नहीं कर पाती। अुसके लिअे यह बहुत जरूरी है कि वह अपने हृदय को विशाल बनावे और दुनिया को विशाल दृष्टि से देखे।

आज स्त्रियों में पारस्परिक निन्दा का, असहिष्णुता का, असहानुभूति का और अिसी तरह के अन्य 'स्त्री सुलभ' दूषणों का जो बाहुल्य पाया जाता है अुसकी जड़ में ये दो रोग रहे हुअे हैं और ये सब दोष अुसके अिसी रोगी मन के परिणाम अथवा चिन्ह हैं।

हमें यह ध्यान में रखना चाहिअे कि स्त्री को यह रोग घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहने के कारण ही लगा है। गृहिणी और माता के रूप में अपने कर्त्तव्यों का भलीभांति पालन करना मानव हित की दृष्टि से स्त्री का सबसे बड़ा काम है। अिस तथ्य को समझ कर जिस दिन स्त्रियां पुनः अिस ओर झुकेंगी अुस दिन अुन्हें खास तौर पर यह बात ध्यान में रखनी होगी कि वे भविष्य में कभी अपने को संकुचित

वातावरण में रख कर तंग और संकुचित बनने से यत्नपूर्वक बचायेंगी। अर्थात् अुनको यह बात सदा ध्यान में रखनी होगी कि वे स्वयं भी देश की नागरिक हैं, समाज का अंग हैं और मातृ-भूमि की सन्तान हैं। अतअेव अिन सब नातों से भी अुनके अपने कुछ कर्त्तव्य हैं ही, जिनको भूल जाना कभी हितकारक नहीं हो सकता। अिस दिशा में वे प्रत्यक्ष कुछ काम न कर सकें, तब भी अैसे प्रश्नों पर सोचते रहना और अुनके संबंध की आवश्यक जानकारी प्राप्त करते रहना बहुत जरूरी है।

अिसी तरह जब जब अवसर मिले लोक-हित का कुछ न कुछ काम घर से बाहर निकल कर करनेकी जिम्मेदारी अपने सिर लेते रहना भी अुनके लिअे अच्छा है।

(ता० ११-२-४० को महिला आश्रम, वर्धा, के चतुर्थ वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिये हुअे भाषण से।)

ब्रिटिश राज्य की दी हुअी अेकता

ब्रिटिश अमलदारी में अब तक हमें संयुक्त शासन मिला है, परन्तु संयुक्त दायित्व नहीं मिला—अिसीलिअे हमारा मिलन बाहरी है। अैसा मिलन हमें निकट नहीं लाता, वह केवल हमें समानान्तर रखता है। अिसलिअे जरासा धक्का लगते ही हम अेक दूसरे से टकराने लगते हैं। वह अेक जड़ और निर्जीव सान्निध्य है, सजीव और सक्रिय मिलन नहीं है। वह अेक ही फर्श पर सोये हुअे दो आदमियों की निकटता है; न कि अेक ही रास्ते पर चलनेवाले दो जाग्रत सहयात्रियों का सह-प्रवास। अुसमें अैसा कुछ भी नहीं जिसपर हमें गौरव और आनंद हो। हम अितने पतित भले ही हो जावें कि अुसके लिअे धन्यवाद दें, लेकिन अुसके बल हमारा अुत्थान नहीं हो सकता।

'मॉडर्न रिव्यू'
जनवरी, १९४०

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सर्वोदय की दृष्टि

राजसत्ता का आधार

हिन्दुस्तान की सैर करने के लिअे आये हुअे किसी विदेशी यात्री से पूछा गया कि अिस देश में वे क्या देखने आये? जवाब मिला—'ताजमहल और गांधी'। भारत अद्‌भुत वस्तुओं का अेक अप्रतिम भंडार है। जितने आश्चर्य अिस देश में पाये जाते हैं अुतने दुनिया में शायद ही और कहीं हों। 'ताजमहल' दुनिया की आठवीं अद्‌भुत वस्तु मानी जाती है। गांधी तो, खैर, अद्वितीय हैं ही।

लकिन जिसके आंखें हों अुसे अिस देश में और भी कअी आश्चर्य दिखायी देंगे। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि अितना बड़ा गुलामखाना यही अेक है। दुनिया के पर्दे पर 'भारत में अंग्रेजी राज' सबसे बड़ा आश्चर्य है।

अिस महान् चमत्कार के पीछे और भी अनेक आश्चर्य हैं जिनकी बदौलत वह शक्य हुआ है। अैसे धर्मध्वजी जो धर्म की रक्षा के लिअे अपनी गुलामी की जंजीरों को मज़बूत करना चाहते हैं और कहां पाअियेगा? अैसे स्वदेशाभिमानी जो अपने देशबंधुओं से डरते हैं और अुनसे अपनी रक्षा करने के लिअे विदेशी सत्ता का सहारा लेते हैं, दुनियां में और कहां है?

अिस देश में अैसे अनेक चमत्कार हैं जो अपने अपने क्षेत्र में बिलकुल ला-सानी हैं। अुन्हींमें से अेक यह भी है कि अिस देश में अैसे राजा हैं जो अपनी प्रजा को अपना दुश्मन समझते हैं; और विदेशी सत्ता से संरक्षण का आश्वासन चाहते हैं।

अेक ज़माना था जब राजा को गाय की और प्रजा को वत्स की अुपमा दी जाती थी। लेकिन अब ज़माना बदल गया है। अब तो राजा अपने और प्रजा के हित में विरोध देखता है और सार्वभौम सत्ता से यह आश्वासन चाहता है कि अिस विरोध को बनाये रखने में वह हर तरह अुसकी मदद करेगी।

गांधीजी राजा लोगों से कहते हैं, "आअिये, आप रियासती जनता के प्रतिनिधि बन कर आअिये। हम आप अेक साथ बैठ कर देश के लिअे अेक अच्छा विधान बना लें। आपकी प्रजा आनन्दित होगी और आपका भी संतोष बढ़ेगा।"

लेकिन राजा लोग समझते हैं कि "यह कैसी हिमाकत है? हम अपनी प्रजा के प्रतिनिधि?—अुसके सेवक? यह तो हमारा घोर अपमान है। गांधीजी कहते तो हैं अपने आपको राजाओं का मित्र लेकिन अिस तरह हमारा गला काटने पर आमादा है।"

हमारे यहां के राजा लोग अिस युग में नहीं रहते। वे नहीं जानते कि अब राजसत्ता के दिन लद गये हैं। यह तो लोकसत्ता का, प्रातिनिधिक शासन का, ज़माना है। जब भारत सुखी और सम्पन्न था अुस युग में भी राजा अपनी प्रजा का अप्रत्यक्ष और स्वयंनियुक्त प्रतिनिधि होता था। प्रजा की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुमति से ही वह राज करता था। 'लोकाराधन' के लिअे प्राणों से प्यारी और विश्वमान्य जानकी को भी छोड़ने के लिअे तैयार हो जाता था। क्या आज के सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजा अुन्हींके वंशज नहीं हैं?

पुराने ज़माने में राजा विष्णु का अंश माना जाता था। अुसकी सत्ता अीश्वरदत्त मानी जाती थी। लेकिन 'विष्णु' अपनी अनुमति किसके द्वारा देता है? हमारे यहां अेक

पुरानी धारणा है कि अग्नि देवों का मुख है। अिसीलिअे वह 'हुताशन' कहलाता है। दूसरी यह भी धारणा है कि ब्राह्मण—याने अपरिग्रही, निःस्पृह और अेकनिष्ठ समाजसेवक—भी देवों का मुख है। अुसी तरह परमात्मा विश्वात्मा के रूप में अपनी अनुमति देता है।

"जो पांच हि मन लागै नीका।
करहुँ हरषि हिय राम हि टीका॥"

लैटिन में भी अेक कहावत है,—"जनता की आवाज़ परमात्मा की आवाज़ है।" जनता की अनुमति से जिसे राजपद प्राप्त होता है वही विष्णु का अंश है। केवल दक्षिणार्थी और मिष्टान्नप्रिय ब्राह्मण अीश्वर का मुख नहीं है। वे शहरों और गांवों को वीरान करनेवाले नरभक्षक बकासुर के मुख है। अुसी तरह जनता-जनार्दन का जो प्रतिनिधि नहीं है वह विष्णु का भी प्रतिनिधि नहीं हो सकता।

अिस दृष्टि से जनता का प्रतिनिधि बनने में राजा लोगों को अपनी हेठी नहीं समझनी चाहिअे; बल्कि अपना गौरव और प्रतिष्ठा समझनी चाहिअे। जो राजत्व जनता की अनुमति और सन्तोष पर स्थित है वह सुप्रतिष्ठित और सुरक्षित है। जनता का सुख ही अुसकी अविकंपनीय भित्ति है और संतुष्ट जनता का प्रेम ही अुसका सर्वश्रेष्ठ बल। फिर अुसे किसी बाह्य आश्वासन की ज़रूरत नहीं रह जाती। प्रजा का सहयोग ही अुसके लिअे सुरक्षा का पर्याप्त आश्वासन है।

जब सर सी. पी. रामस्वामी अय्यर जैसे विधान-पंडित भी यह कहते पाये जाते हैं कि "अगर ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता अधिकारन्यास कर दे तो भारतीय रियासतों की फिर वही स्थिति रहेगी जो ब्रिटिशों के साथ संधि होने से पहले थी;" तब तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रह जाता। ब्रिटिश सरकार से सन्धि करने की अपेक्षा भारतीय जनता के साथ सन्धि करना क्या अितना अपमानजनक है? जिनके दिल में जनता के प्रति अितना अनादर है वे अिस युग के लोक-प्रतिनिधि कैसे हो सकते हैं? अुनका राजत्व ताश का महल है जो पवन के हलके-से झोके से ढह सकता है।

जिस अिंग्लैंड के सिंहासन के प्रति हमारे राजालोग अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं वह सिंहासन अपनी सत्ता लोकप्रतिनिधियों की राय से नियंत्रित मानता है। लोकसत्ता की मर्यादा में रहने में वह अपनी शान और गौरव समझता है। क्या हमारे राजाओं को भी अपनी प्रजा के वास्तविक प्रतिनिधि बनने में अपने आपको गौरवान्वित और महिमान्वित नहीं मानना चाहिअे? क्या अुन्होंने ब्रिटिश सम्राट से संधि अिसीलिअे की थी कि अुन्हें अनियंत्रित सत्ता के अुपयोग की सनद मिले? क्या अपनी प्रजा के और अपने हित में विरोध स्वीकार करना लज्जा-जनक नहीं है?

ये प्रश्न है जिनका हमारे देशी नरेशों को गंभीरता से विचार करना चाहिअे। सामंतशाही और महाजनशाही का युग अब समाप्त हो रहा है। लेकिन जो शासन के क्षेत्र को भी जनता की सेवा का अेक महत्त्वपूर्ण साधन मानते हैं अुनका स्थान सदा रहेगा। जनता अपनी आंखें बिछा कर अुनका स्वागत करेगी। अुन्हें यह कदापि नहीं भूलना चाहिअे कि राजकीय अधिकार—बल्कि सारी राजनैतिक सत्ता—की बुनियाद जनमत है।

अिसलिअे अुन्हें गांधीजी की निम्न सूचना पर बडी तत्परता से अमल करना चाहिअे:—

"जहां तक देशी राजाओं का ताल्लुक है, वे भी हिन्दुस्तान के राजनैतिक भाग्य का निर्णय करनेवाली अिस राष्ट्रीय पंचायत में शामिल हो

सकते हैं। मगर अपनी व्यक्तिगत हैसियत से नहीं; बल्कि अपनी जनता के प्रतिनिधियों की हैसियत से। मांडलिक राजाओं के नाते वे ब्रिटिश ताज के बड़े आश्रित हैं। मैं तो समझता हूं कि ब्रिटिश ताज से पृथक् अुनकी कोअी सत्ता नहीं है; कम से कम अुससे श्रेष्ठ प्रतिष्ठा तो नहीं है: ब्रिटिश सम्राट की आज सारे भारतवर्ष में जो सत्ता है अुसे यदि वह छोड़ दे तो स्वाभाविक रूप से देशी राजाओं को भी अपनी सत्ता छोड़ना पड़ेगी। अुन्हें भारत की जनता की ओर देखने में गर्व होना चाहिये। आशा है कि हिन्दुस्तान की मूक और प्रतिनिधिरहित जनता की ओर से जो मांग मैं कर रहा हूं वह बेजा नहीं समझी जायगी।"

अुन्हीं राजाओं के अेक दूसरे आदरणीय और शान्त मित्र माननीय श्रीनिवास शास्त्री ने अुन्हें निम्न संयत शब्दों में गंभीर चेतावनी दी थी:—

"कलकत्ते में मैंने अपना अंदेशा प्रकट किया था और यहां मैं अुसे दोहराता हूं कि वे अुस परिणाम से बचने की कोशिश करें जो शायद अुन्हें भुगतना पड़े—अुस परिणाम से जो अुन लोगों को भुगतना पड़ेगा जो हिन्दुस्तान के अपनी ध्येय की ओर प्रगति के रास्ते में रोड़ों के समान अपना अुपयोग होने देंगे। आज वे सुरक्षित भले ही हों। लेकिन वह दिन आने ही वाला है जब भारत पूर्णरूप से जाग्रत होगा, अपने अिच्छा पर अमल करने में और जिन लोगों ने अुसकी ध्येय-प्राप्ति में मदद करने के बजाय अुसके रास्ते में बाधायें अुपस्थित कीं अुनके प्रति यथोचित् व्यवहार करने में समर्थ होगा।"

यह किसी बिगड़े दिमागवाले क्रान्तिकारी की धमकी नहीं है। अेक शान्त और गंभीर प्रकृतिवाले समयज्ञ और व्यवहारपटु राजनीतिज्ञ की सात्विक चेतावनी है।

दा० ध०

देशी राजा दूरदर्शी बनें

मनुष्यमात्र का स्वभाव यमराज अच्छी तरह से जानते हैं। कुमार नचिकेतस् से अपने वार्तालाप में यमराज कहते हैं कि विधाता ने मनुष्य की खोपड़ी में आंख, कान आदि बाहर की ओर खुलनेवाली खिड़कियां बनायीं। अिसलिअे मनुष्य बाहर की बातें देखता है और बाहर की ही बातें सुनता है, अंतर्मुख नहीं होता। अैसे बुद्धिमान लोग बिरले ही होते हैं जो अपनी बाहरी आंखें मूंद कर अंदर देखते हैं और चैतन्य को पहचान कर अमर हो जाते हैं।

मनुष्य अंतर्मुख भले ही न हो; किन्तु अुसे भविष्य की ओर तो देखना ही चाहिअे। क्योंकि विधाता ने मनुष्य को आंखें आगे की ओर दी हैं, न कि पीछे की ओर। कहा जाता है कि भूत की खोपड़ी में आंखें पीछे की ओर होती हैं और अुसके पैर भी अुलटे होते हैं।

जो लोग अपने भूतकाल का ही स्मरण करते हैं, अुसीको यथार्थ मानते हैं और जब प्रयोग करते हैं तब भूतकाल की ही ओर लौटते हैं, वे भूतकोटि के लोग हैं। अुनके लिअे वर्तमानकाल भी नहीं है; फिर भविष्य काल तो कहां से हो?

हमारे देश के राजाओं में से अधिकतर अिस कोटि के मालूम होते हैं। वे अुन दिनों को याद करते हैं जब कि अुन्होंने अंग्रेजों के साथ सुलहनामा करके अपनी स्वतंत्रता—स्पष्ट शब्दों में भले ही न हो—अंग्रेजों के चरणों में अर्पण कर दी।

ये अजीब क्षत्रीय हैं

अपनी आजादी बेच कर अुन्होंने क्या कमाया? अंग्रेजों की ओर से यह वचन पाया कि अगर कोओी बाहरी शत्रु अुनपर हमला करे, या अुनकी प्रजा अुनके खिलाफ़ बगावत करे, तो अंग्रेज़ बहादुर अुनकी रक्षा करेंगे। अपनी स्वतंत्रता बेच कर सलामती खरीदनेवाले लोग दुनिया में होते हैं। किन्तु अपनी ही प्रजा से रक्षण पाने के लिअे परदेशियों से वचन लेनेवाले अनोखे क्षत्रिय तो हिन्दुस्तान में ही पाये जाते हैं।

हिन्दुस्तान के लिअे यह प्रश्न बड़ा महत्त्व रखता है कि देशी राजाओं के साथ अंग्रेजों ने जो सुलहनामे किये अुनमें अपनी ही प्रजा से राजा का रक्षण करने की बात किसने सुझायी?—अंग्रेज विजेताओं ने? या हमारे राजाओं ने? या अुन्हें नेक (!) सलाह देनेवाले अुनके वजीरों ने? कोओी अितिहास-संशोधक खोजबीन करके अिसका पता लगावे तो अुसे बड़ी राष्ट्रसेवा का श्रेय मिलेगा।

थोथा स्वतंत्रता-प्रेम

मुझे याद है कि बचपन में हम अिन राजाओं की कओी खानगी बातें सुनते थे। अेक राजा ने अेक देशसेवक से अेकान्त में कहा था कि "आप तो राजवंशी नहीं हैं तो भी पराधीनता से आपका खून अितना खोलता है; तो हम जो राजा रह चुके हैं और राज्यवैभव भोग चुके हैं अुन्हें यह पराधीनता कितनी अखरती होगी? लेकिन क्या किया जाय? हम तो अवसर की राह देख रहे हैं। क्या हमने अपनी मा का दूध नहीं पिया है? क्या हम क्षत्रियों की सन्तान नहीं हैं; कि हमें स्वातंत्र्य की लगन न हो?" चंद नवयुवक अिस राजवंशी नाटक के जाल में फंस गये और अुन्होंने अपनी गुप्त योजनायें अैसे राजाओं पर जी खोल कर प्रकट कर दीं। कहते हैं कि ये बातें ब्रिटिश सी. आय. डी. के कानों तक पहुंचने में चौबीस घंटे भी नहीं लगे। अिसमें तनिक भी शक नहीं कि शराब के सामने माता के दूध का असर टिकने नहीं पाता और विलास की बाढ़ में क्षात्र वंश की टेक भी डूब जाती है।

दुहरी चाल

भारतीय प्रजा ने अपनी आजादी के लिअे अिन राजाओं से बहुत कुछ आशायें रखी थीं, किन्तु अिन्होंने अेक अुंगली भी नहीं अुठायी। '५७ के 'गदर' के ज़माने में अिन राजाओं ने और अुनके मंत्री या वजीरों ने जिस बुद्धिमानी का परिचय दिया अुसकी कहां तक सराहना करें! वे अैसी चाल चले कि कुछ न पूछिये! अपनी फौज को तो गदर के पक्ष में शरीक होने दिया और स्वयं आप सुलहनामे की शर्त के अनुसार अपने लिये रक्षण की याचना करने ब्रिटिश रेसिडेन्सी में जा पहुंचे। अभिप्राय यह था कि अगर गदरवालों की जीत हो गयी तो फौज अपने राजा को सिंहासन पर बैठायेगी ही; और अगर हार गये तो राजा लोग और अुनकी खानदान तो सुरक्षित हैं ही। अिस दुरंगी नीति में बुद्धिमानी अवश्य थी। किन्तु अुनकी अुस अश्रद्धा में ही हार के सब बीज मौजूद थे। तब से आज तक अिन राजाओं ने अपने अस्तित्व का कोओी लक्षण नहीं बतलाया था। परन्तु अब अेकाअेक भारत की गुलामी और अपनी सुरक्षितता के संरक्षक बन कर वे आगे आ रहे हैं। अिनमें अपवादरूप अितने कम राजा हैं कि अुनका अुल्लेख करना भी अुन्हें खतरे में डालने के बराबर है।

प्रजा का डर क्यों ?

अिन राजाओं को अपनी प्रजा से डरने का क्या कारण है ? अुन्हें यह डर है कि कहीं अुनके मौज-शौक कम न हो जायें। जिनकी अभिरुचि विकृत नहीं हुअी है अुनके मौज-शौक के लिअे भी अितना धन नहीं चाहिअे जो अपनी प्रजा को गुलामी में रख कर ही प्राप्त किया जा सके। व्यसनों में चित्त को जितना आनंद मिलता है अुससे कहीं अधिक प्रजाहित की योजनाओं का विचार करने में और अुन्हें अमल में लाने में होता है। किन्तु अुसके लिअे पुरानी नामर्द अभिरुचि छोड़नी चाहिअे और नया पुरुषार्थ अपनाना चाहिअे। करीब पचास वर्ष हो गये अंग्रेजों ने अिन राजा-महाराजाओं को और अुनके कुँअरों को अंग्रेजी शिक्षा देना शुरू कर दिया है। यह कैसी शिक्षा है जिसकी बदौलत अैसा अेक भी राजा पैदा नहीं हुआ जो अपनी प्रजा का विश्वास कर सके ? यूरोप के राजनैतिक अितिहास के अध्ययन के बाद भी यदि कोअी राजा अपने सारे अधिकार अपनी प्रजा को सौंपने में गौरव और आनन्द अनुभव नहीं करता तो वह अध्ययन किस काम का ?

का० का०

राष्ट्रीयता पर रामानन्द बाबू

फरवरी के 'मॉडर्न रिव्यू' से अेक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी नीचे दी जाती है :—

"संसार में अैसा कोअी देश नहीं है जहां किसी अेक ही धर्म के अनुयायियों का समूह—चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो—अपने आपमें अेक राष्ट्र माना जाता हो। परन्तु श्री. वि. दा. सावरकर की राय अिसके विपरीत है। वे अैसा मानते हैं कि हिन्दू लोग ही भारतीय राष्ट्र हैं; क्योंकि अुनकी संख्या अिस देश में सबसे अधिक है। हम अिससे सहमत नहीं हैं। अुनकी अिस राय से कुछ हिन्दुस्तानी मुसलमानों की अिस कल्पना का कि वे अेक स्वतंत्र राष्ट्र हैं, अप्रत्यक्ष समर्थन होता है।

अगर भारतीय राष्ट्र सिर्फ हिन्दुओं का ही हो, तो फिर ब्रिटिश राष्ट्र प्रोटेस्टेन्ट मत के ब्रिटिशों का ही होगा, क्योंकि अुन्हींकी तादाद सबसे बड़ी है। जो ब्रिटिश लोग कैथोलिक, यहूदी या मुसलमान हैं, या जो अज्ञेयवादी अथवा नास्तिक हैं, अुनकी गिनती ब्रिटिश राष्ट्र में नहीं हो सकती।

अमेरिका में अैसा कौनसा अेक ही वंश, धार्मिक जमात, भाषा या अुप-राष्ट्र...है जिसे हम अमेरिकन राष्ट्र कह सकें ? वहां तो अितने बहुत-से हैं !

सोवियट रूस में कम से कम सौ अुप-राष्ट्र हैं। अुनमें कअी धर्म हैं और कितने ही नास्तिक भी हैं। मोटे हिसाब से वे कोअी दो सौ भाषायें बोलते हैं। क्या वे अेक राष्ट्र हैं ?

जो मुसलमान यह समझते हैं कि अुनकी अपनी अेक अलग भारतीय संस्कृति है अुनसे हम सहमत नहीं हैं। केवल सरहद प्रांत में बोली जानेवाली पश्तु के सिवा, जो भारतीय भाषायें दूसरे प्रान्तों के मुसलमानों की मातृभाषायें हैं वे ही वहां के हिन्दुओं की भी मातृभाषायें हैं। अुर्दू भाषा और साहित्य तो हिन्दू और मुसलमानों के सम्मिलित प्रयत्न का फल है। दूसरे सारे प्रान्तीय साहित्य अुन अुन प्रान्तों की हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी आदि सभी अधिवासियों के हैं। भारत के सभी धर्मों के लोगों के लिअे हिन्दुस्तानी संगीत समान है। भारतीय कला भी सब की संयुक्त सम्पत्ति और संयुक्त अुद्योग है।

अिस विषय की अिससे अधिक विस्तृत चर्चा अेक छोटीसी टिप्पणी में नहीं की जा सकती।"

बंगाल के कुछ मुसलमानों की सम्मति

रामानन्द बाबू हिन्दू महासभा के अेक प्रतिष्ठित नेता हैं। अिस दृष्टि से अुनकी अुक्त टिप्पणी का महत्त्व है। लेकिन हिन्दुस्तान के सभी मुसलमान श्री मुहम्मदअली जीना या अुनके विचार के लोगों के साथ नहीं हैं अिसका सबूत मॉडर्न रिव्यू के अिसी अंक में प्रकाशित अेक वक्तव्य से मिलता है,जो बंगाल के चंद प्रतिष्ठित मुसलमानों ने २५ जनवरी १९४० को, २६ जनवरी के स्वतंत्रता-दिन के अुपलक्ष में प्रकाशित किया था। अिस वक्तव्य का पहला वाक्य नीचे दिया जाता है:—

"अिसलाम सदा से समानता, स्वाधीनता, विश्वबंधुत्व, लोकसत्ता, और राष्ट्रीयता का हामी रहा है। अति प्राचीन काल से ही हम मुसलमान यह मानते आये हैं कि अेक देश में अेक ही राष्ट्र होता है और राष्ट्रीयता से रंग, धर्म या जाति के भेदों का कोअी संबंध नहीं है। अिसलिअे हिंदुस्तान में, हिन्दू, मुसलमान, जैन, अीसाअी, पारसी, सिक्ख, आदि का बना हुआ अेक ही राष्ट्र है।"

दा० ध०

सरदार पृथ्वीसिंगजी की नयी योजना

जिसने कभी व्यायाम, कसरत और खेल से लाभ अुठाया नहीं है क्या वह भी शरीर विकास की किसी योजना पर अपनी राय दे सकता है? व्यायाम, कसरत और शरीर-विकास अेक बड़ा महत्त्व का विषय है। धर्म को छोड़ कर दूसरे किसी भी महत्त्व के विषय पर मामूली लोग अपना मत प्रकट करने की हिम्मत नहीं करते। किन्तु संपादकों को तो सर्वज्ञ बनना ही पड़ता है। वह हर किसी विषय पर अपनी राय बड़े विश्वास के साथ दे सकता है।

श्री स्वामीरावजी ने—(सरदार पृथ्वीसिंग जी का यह चिर-परिचित नाम छोड़ देने को जी नहीं चाहता। पृथ्वीसिंगजी क्रान्ति के मार्ग के शिक्ष होंगे किन्तु व्यायाम-विद्या-विशारद तो स्वामीराव ही हैं।) श्री स्वामीरावजी ने राष्ट्र के नवयुवकों की शारीरिक अुन्नति के लिअे हम क्या कर सकते हैं और कैसे कर सकते हैं अिसपर वर्षों से विचार किया है। और नवयुवकों में रह कर अुन्हें तैयार भी किया है। वे अिस विषय के शास्त्र, कला और पद्धति तीनों में निपुण हैं।

बम्बअी सरकार के लिअे बनायी हुअी अेक योजना अुन्होंने अभी मेरे हाथ में दी है। संपादक की हैसियत से ही नहीं किन्तु शिक्षा-शास्त्री की हैसियत से मैंने अुसे ध्यानपूर्वक पढ़ा। शारीरिक विकास के अुद्देश्य से बनायी हुअी अनेक योजनायें मैं देख चुका हूं। अुन योजनाओं में और अिसमें मैं कअी महत्त्व के फरक देखता हूं। साधारण योजनाओं में थोड़े विद्यार्थी अधिक से अधिक विकास किस तरह से कर सकते हैं यही बात होती है। सबसे अच्छा कुश्ती लड़ने वाला, सबसे श्रेष्ठ तैरनेवाला, सबसे तेज दौड़ने-वाला तैयार करने की कोशिशें जहां होती हैं वहां पर स्पर्धा करनेवाले पांच-दस लोग ही तैयारी करते हैं। बाकी के लोग सोचते हैं कि ये चीजें हमारे लिअे नहीं हैं और अपने रास्ते जाते हैं। अितना ही नहीं किन्तु शारीरिक विकास के प्रति अरुचि बढ़ाते हैं।

स्वामीरावजी की योजना में मुट्ठीभर लोगों को सर्वोच्च शिखर पर ले जाने की बात नहीं है। किन्तु अैसी अेक सर्वसामान्य मर्यादा बनाने की बात है जिसके नीचे कोअी जा ही न सके। जो अिस मर्यादा तक नहीं पहुँच सकेगा अुसका शिक्षाक्रम ही स्थगित किया जायगा। अिसी

लिअे में कहता हूं कि यह योजना राष्ट्रीय वृत्ति से बनायी हुअी है ।

अिस योजना की दूसरी राष्ट्रीयता अिस बात में है कि अिसमें विद्यार्थी, अुसके मातापिता या शिक्षासंस्था, किसी पर अेक पाअी का भी बोझ नहीं बढ़ाया जाता । सर्वसामान्य जीवन के लिअे जो शक्तियां आवश्यक हैं और जिन क्रियाओं का करना मामूली तौर पर स्वाभाविक है अैसी बातों का ही पुरस्कार करके यह योजना बनायी गयी है ।

अिस योजना का तीसरा और सब से श्रेष्ठ राष्ट्रीय तत्त्व अिस बात में है कि प्रतिद्वंद्विता के कारण जो अीर्ष्या, मत्सर और दिल की जलन पैदा होती है अुसे हमारे राष्ट्रीय जीवन में से हटाने का अुपाय अिसमें बताया है और संघ-व्यायाम, संभूयसमुत्थान और सामुदायिक पुरुषार्थ का ही अिसमें पुरस्कार किया है ।

अिस योजना में स्वामीरावजी ने अपने पेशे का महत्त्व बढ़ाने की कोशिश नहीं की है किन्तु राष्ट्रहित के अेक महत्त्व के सवाल का हल सफलतापूर्वक बताया है । यह योजना विद्यार्थी, अुनका बौद्धिक विकास और शिक्षासंस्थाओं की कठिनाअियां आदि बातों को ही निगाह में रख कर बनायी गयी है । राष्ट्रहितचिंतकों को अिसका श्रद्धापूर्वक विचार करना चाहिअे और राष्ट्रसेवकों को अिसे अमल में लाने के रास्ते ढूंढने चाहिअे ।

* * *

यह कहते हमें हर्ष होता है कि सरदार पृथ्वीसिंगजी अब अिसी काम को ले कर अपनी नयी सेवा शुरू करनेवाले हैं । अनुकूल स्थान पसन्द करके वहां पर अेक अैसी योजना वे शुरू करना चाहते हैं जहां देश के नवयुवकों को सर्वांगीण शिक्षा दी जाय । अेक तरफ से वे शरीरविज्ञान भी सीखेंगे और दूसरी तरफ मानसशास्त्र का भी परिचय पायेंगे । देश के लाखों गांवों के अर्थशास्त्र को भी वे समझ लेंगे और जो गांवों में चलाये जा सकें अैसे अुद्योग-हुन्नर को भी हस्तगत करेंगे ।

अिस संस्था में शरीर-विकास का अुद्देश होगा लोक सेवा; न कि केवल प्रतिमल्ल का पराजय । देश के नवयुवकों को बौद्धिक और नैतिक विकास के लिअे अनुकूल परिस्थिति बना कर अैसे वायुमण्डल में सेवाक्षमता पैदा करने के लिअे शरीर-विकास का रास्ता बताया जायगा ।

अेक आदमी सारे राष्ट्र को नहीं सिखा सकता । किन्तु स्थान स्थान से योग्य युवानों को ले कर और अुन्हें दीक्षा दे कर अुन्हींके द्वारा यह व्यापक काम कराना है ।

हिंसामार्ग में मुट्ठीभर लोगों की तैयारी से कुछ तो काम निकल सकता है । अहिंसा मार्ग में राष्ट्रीय पैमाने पर व्यापक काम करने से ही राष्ट्र का अुद्धार हो सकता है । अिसलिअे अब अुन्होंने वह मार्ग अपनाया है ।

कोअी अैसा न माने कि लाठी-काठी-बोथाटी (बनेटी) आदि अुपकरणों का अहिंसा से मेल नहीं बैठता । सुदृढ़ शरीर, विकसित अिन्द्रियां, सहनशीलता और हर किसम के शारीरिक व्यापार का कौशल्य, अहिंसक मनुष्य को अुतना ही आवश्यक है जितना कि हिंसा में माननेवाले मनुष्य को है । बल्कि, मैं तो यह कहूंगा कि आजकल के वैज्ञानिक हत्याग्रह के जमाने में लाठी-काठी-बनैटी युद्धोपयोगी शस्त्र नहीं हैं । बड़े बड़े मेलों में, छोटे बड़े कूचों में और अैसे ही अन्य समाज सेवा के कार्यों में अिन अुपकरणों का महत्त्व अवश्य है । श्री पृथ्वीसिंगजी के अुत्साह और लगन और अुनकी देशनिष्ठा से नवयुवक अवश्य लाभ अुठावें और अहिंसक बहादुरी का परिचय पावें ।

पुनश्च झंडा गीत

अिस अंक में श्री. सियारामशरणजी के झंडा गीत का नया संस्करण हम दे रहे हैं। बडे बडे कवि अपनी कविता में कोअी न कोअी परिवर्तन करते ही रहते हैं। जब तक अुनकी रचना अभ्यंग और समाधानकारक न हो, तब तक अुन्हें चैन नहीं पड़ता। जो प्रेरणा अुन्हें कहीं से मिलती है, अुसे शब्दबद्ध करना अेक प्रकार की अुपासना ही होती है; और चाहे लोग अुनकी कृति पर मुग्ध हो जायें, अुन्हें तो कुछ न कुछ असंतोष रहता ही है। अुपासना का यह अेक अनिवार्य लक्षण है। शकुन्तला का भावगम्य चित्र खींचने के अनेक प्रयत्न करने के बाद दुष्यन्त कहता है—

यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्
क्रियते तत्तदन्यथा
तथापि तस्या लावण्यं
रेखया किंचिदन्वितम्।

अिस श्लोक में कालिदास ने दुष्यन्त के मुख से कविमात्र का अनुभव ग्रथित किया है।

हम आशा करते हैं कि पाठक अिस झंडागीत को जड़ा कर अपने दीवानखाने में टांग देंगे और अपने बच्चों को अिसे कण्ठ करने का प्रोत्साहन देंगे।

जिन्हें अिस गीत की अधिक प्रतियाँ आवश्यक हों, वे कृपया १॥ आने के टिकिट भेज कर सर्वोदय कार्यालय से मंगवा लें।

का० का०

आकाश दर्शन

[काका कालेलकर]

आशा है कि सर्वोदय के पाठक सूर्योदय के बाद अुठनेवाले सूर्यवंशी नहीं होंगे। रात में जागरण करके सिनेमा देखना और अपनी आँखें बिगाड़ना, और कअी बार अपनी चित्तवृत्ति अुत्तेजित और मलिन करना अुन्हें पसन्द नहीं आता होगा। अिसकी अपेक्षा संध्या का विविधरंगी वैभव, रात की शान्त तेजस्वी ज्योतियों की समृद्धि और प्रातःकाल के ब्राह्ममुहूर्त के बाद पूरब की पुण्यशोभा और अुसी शोभा को हजम करके बढ़नेवाली अुषा का तेज देखने के वे आदी होंगे अैसी आशा करता हूं।

अभी किसी दुःखी व्यक्ति को सलाह देते हुअे गांधीजी ने जो लिखा है वह पाठकों ने 'हरिजन' में पढ़ा ही होगा। गांधीजी कहते हैं—

"कामुक साहित्य, सिनेमा और कामोत्तेजक चित्र जो आजकल अखबारों के पन्ने भ्रष्ट करते हैं देखना छोड़ दीजिअे। ......और रात को किसी सादी-सी ज्योतिष की पुस्तक के सहारे थोड़ा आकाश-दर्शन कीजिअे। आपकी आंखों के आगे वह नजारा आयेगा जो दुनिया के किसी सिनेमा में न मिल सकेगा। संभव है, किसी दिन आपको असंख्य तारागणों की जग-मगाहट में अीश्वर साक्षात् दिखाअी दे जाये और आप अपने को अिस दिव्य दृश्य के साथ अेकतार कर लें तो आपको ब्रह्माण्ड का

सुकोमल शान्तिप्रद संगीत भी सुनायी देने लगेगा। रोज रात को अैसा करके देखिअे। आपकी दृष्टि और हृदय दोनों शुद्ध हो जायेंगे।"

(हरिजन सेवक ता० ३:२:'४०)

पाठक अगर चार बजे अुठ कर पूरब की ओर देखेंगे तो जो दृश्य दिखायी देगा वह वे अुम्र भर नहीं भूलेंगे। अगर वे कुछ देर से अुठेंगे तो भी हर्ज तो नहीं है। किन्तु अुषा आ कर सब तारों को पोंछ जाय अुसके पहले ही ताराओं की 'रंगवल्ली' देखनी चाहिअे।

पूरब की ओर मुंह करके पाठक सबसे पहले दक्षिण और अुत्तर की तरफ़ ध्यान से देखें। मुसलमान भक्त नमाज पढ़ते समय जैसे दाहिनी और बायीं ओर देखते हैं अुसी तरह हम भी देखें। अुत्तर में सप्तर्षि और ध्रुवमत्स्य तो हैं ही। दाहिनी ओर यानी दक्षिण को त्रिशंकु (सदर्न क्रास) गिर रहा है और जय-विजय अपनी पूरी शोभा बताते हुअे जमीन के साथ समांतर चमक रहे हैं और अुनकी आधार-रेखा पर अनेक तारे जहां जगह मिली वहां खड़े हैं—अैसा दृश्य दिखाअी देगा। वहां से पीछे को मुड़ते ही वृश्चिक का अूंचा विस्तार अेकदम ध्यान खींचेगा। अनुराधा नक्षत्र से बना हुआ अुसका सिर; पारिजात की लालिमा से सुशोभित, ज्येष्ठा नक्षत्र से बननेवाला अुसका पेट; और मूल नक्षत्र से बननेवाला अुसका डंख (शंकु या नांगी) ये सब अेक दफ़ा पहचानने के बाद कभी भी भुलाये नहीं जा सकते।

सीधे पूरब को आपको पुराना परिचित श्रवण अपने मातापिता की बहंगी लिये हुअे दीख पड़ेगा। अिसका दर्शन कुछ महीनों के पहले हमने पश्चिम की ओर किया था। अब वह सुबह पूरब की तरफ़ आया है।

जय-विजय के पास से जो गंगा बहती है वह वृश्चिक के डंख को भिगो कर समान्तर दो स्रोत में पूरब की तरफ आती है और आगे बढ़ती हुअी दशरथ (अभिजित्) के बीच से होती हुअी हंस को अपने प्रवाह में तैरता हुआ छोड़ कर देवयानी (लक्ष्मी) के चरण छूती हुअी आगे ब्रह्ममंडल की ओर बहती है।

श्रवण और दशरथ देखने के लिअे ये दिन अच्छे हैं। दशरथ आकाश-गंगा के अुस पार अूंचा खड़ा है और श्रवण अिस पार हमारे क्षितिज के नजदीक नदी के किनारे आ पहुंचा है। आअिये, अिन दोनों को प्रणाम करें।

अब की बार पाठकों का खास परिचय करना है हंस से। हंस का आकार कुछ कुछ कनकौवा के जैसा है। सब से तेजस्वी है हंस का पुच्छ। अुसके बाद जो तीन तारे आते हैं अुनमें से बीच का तारा है हंस का पेट। दोनों तरफ़ के दो तारे हंस के पंख समझिये। आगे जा कर अेक मन्द तारा हंस की पतली गर्दन है और अिसके आगे वैसा ही अेक मन्द तारा हंस की चोंच बनता है। पश्चिम में जब हंस को हम देखते थे तब वह अूपर से क्षितिज के तरफ डूबने को दौड़ता था। अब वह पूर्व के क्षितिज में से अुठ कर पूरब का रास्ता ले रहा है। पाठक हंस को पूर्व और अीशान्य के बीच आकाश गंगा में देखें।

यों तो हंस नक्षत्र सुन्दर है ही। किन्तु आज-कल अुसका महत्त्व बहुत ही बढ़ गया है। अिसका कारण यह है कि हंस नक्षत्र के पेट में बड़ी दुर्बीन के सहारे अेक अद्भुत विश्व वैज्ञानिकों ने देखा है। हंस-पुच्छ का जो अुज्ज्वल तारा है वह प्रथम कोटि में भी अपनी खास प्रतिष्ठा रखता है। अुसका तेज हमारे सूर्य के तेज से दस हजार गुना अधिक है। वह अितना

दूर है कि अुसका प्रकाश हम तक आ पहुंचने में छह सौ बावन वर्ष लगते हैं यानें रात को हंस की जो प्रकाश-किरण हम देखते हैं वह वहां से ज्ञानेश्वर के दिनों में निकली थी !

ग्रीक पुराणों में लिखा है कि आर्फियस अेक अप्रतिम गायक था। वह अपनी वीणा बजा कर चेतन और अचेतन सब को मोहित करता था। जब अुसकी प्रिया सर्पदंश से यमलोक को सिधारी तब वह भी अुसके पीछे पीछे गया और वहां यमराज को अपने संगीत से मुग्ध करके अपनी प्रिया को फिर से मनुष्यलोक में ले आया। किन्तु यमराज की शर्त का पालन न कर सकने से यमलोक के सीमाप्रान्त में ही अुसे फिर खोना पड़ा। यही आर्फियस हंस हो कर आकाश गंगा में नहा रहा है और अुसकी वीणा वीणा (अभिजित्) के नाम से अुसके पास ही पड़ी है।

वाङ्मय परिचय

मारुं गामडुं—(मेरा देहात) लेखक-श्री बबलभाअी प्राणजीवनदास महेता; प्रकाशक—गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; पृ. २०६; मूल्य ०-९-०

श्री बबलभाअी महेता 'गांधी सेवा संघ' के अेक तरुण सदस्य हैं। कॉलेज का अध्ययन छोड कर, गुजरात विद्यापीठ के ग्राम सेवा मंदिर में वे दाखिल हुअे। सन १९३४ में सत्याग्रह आन्दोलन के मुलतवी किये जाने पर गांधीजी के आदेशानुसार अुन्होंने किसी देहात की सेवा में लग जाने का निर्णय किया, और गुजरात के खेडा जिला का मासरा नामक देहात पसंद किया। श्री बबलभाअी का वतन काठियावाड़ है। अर्थात्, अिस देहात से अुनका कोअी पूर्व संबंध नहीं था। गुजरात में देहातों की बसती भी अकसर जाति के अनुसार होती है। याने, कोअी देहात ब्राह्मणों के, तो कुछ पाटीदारों के या कुछ कोलिओं के, अिस तरह खास जातियों के होते हैं। जो गांव जिस जाति का अुसके अलावा दूसरी किसी जाति के किसान अुसमें नहीं पाये जायेंगे। कोअी पेशेवार लोग रह सकते हैं।

मासरा गांव बारैया नाम की गुजरात की अेक पिछडी हुअी जाति का है। पुराने जमाने में बारैया क्षत्रियों की कौम थी। आज भी दो-चार बारैया राज्य हैं। पर अेक जमाने से यह जाति बहुत पीछे पड़ गयी है और आज अुनकी गिनती पिछडी हुअी तथा गुनाह करनेवाली जातियों में की जाती है। केवल निरक्षर ही नहीं हैं, बल्कि कृषिविद्या आदि में भी वे बहुत ही अज्ञानी हैं। अुन्हींके पडोस में बसे हुअे पाटीदारों ने अपनी खेती-कला की निपुणता के कारण खेडा जिला की भूमि को अेक बगीचा बना दिया है। पर ये लोग अुसमें से अपने पेट के लिअे भी मुश्किल से हलका धान्य पैदा कर सकते हैं।

श्री बबलभाअी ने तीन साल में मासरा और आसपास के देहातों में अपनी सेवा से अच्छा नाम कमाया है। मासरा के नजदीक धामणा नामका कुछ बड़ा गांव है। गुजरात में बुनियादी तालीम की प्रथम पाठशाला धामणा में स्थापित हुअी। लोगों में यह रुचि अुत्पन्न करने का श्रेय बबलभाअी को है। तब से बबलभाअी को अपना निवासस्थान मासरा के

बदले थामणा को बनाना पड़ा है। फिर भी, मासरा के लोगों से अुनका जो संबंध बंध गया है, जिससे अुनके लिअे 'मेरा देहात' के मानी थामणा नहीं, किन्तु मासरा ही है।

अिस पुस्तक में श्री बबलभाअी ने मासरा की सारी बातें, अपने अनुभव, अवलोकन, सफलता, निष्फलता, जनता के गुण-दोष, कठिनाअियां आदि का बयान बहुत सरल भाषा में किया है। अिस पुस्तक में अवतरण करने योग्य, अितने पृष्ठ हैं कि अुद्धरण देने लगूं तो यह आलोचना कभी पृष्ठों की लंबी हो जा सकती है। और फिर भी अुसे मूल में पढ़ने की जरूरत टल नहीं सकती। संपादक महाशयों से मेरी सूचना है कि पुस्तक के कुछ भागों का वे अनुवाद अेकाध अंक में नमूने के लिअे दें और पाठकों से मेरी सिफारिश है कि अुनमें से जो गुजराती अच्छी तरह समझ सकते हैं, अिसे जरूर पढ़ें। हरेक देहाती कार्यकर्ता अिससे लाभ अुठाये बिना न रहेगा।

अेक और बात कह देना अुचित है। अिस पुस्तक के आरंभ में 'महाराज' श्री रविशंकर व्यास ने 'मेरी अभिलाषा' का शीर्षक दे कर अेक सुन्दर प्रस्तावना लिखी है। श्री रविशंकर भाअी गुजरात में बारैया, पाटण वाडिया आदि पिछड़ी और गुनाहगार मानी हुअी जातियों में अितना काम किया है कि ये जातियां अुनका गुरु के रूप में आदर करती हैं, और 'महाराज' के नाम से ही वे अब पहचाने जाते हैं। वे लिखते हैं:—

"मैंने अपना सारा जीवन बारैया और पाटण वाडिया कौम की सेवा में बिताया है। मेरे दिल से मैं अब अिन कौमों से अलग नहीं हूं। अुनके घर, खेत और अुनके तेवहार आदि जो करुण दृश्य मुझे देखने मिले हैं, अुनका हूबहू वर्णन मैं अिस पुस्तक में पाता हूं।"

"····ग्रामजनता के बीच में अुन्हींका आदमी बन कर खुली आंख और कान से ज्ञानपूर्वक रहनेवाला ही अिस प्रकार का चित्र खींच सकता है। बबलभाअी अिस तरह के आदमी हैं। मासरा सरीखे पिछड़े हुअे देहात में, वहां के लोगों का ही आदमी बन कर वे रहे, लोक-हृदय के महीन से महीन भाव और वेदनाओं का अुन्होंने अनुभव किया, अुनकी अच्छी बुरी वृत्तियों तथा अुनके कारणों की खोज की, और वर्तमान परिस्थिति की कठिनाअियों से पैदा होनेवाली व्याकुलता से व्यथित हुअे, तभी वे अिस चित्र को खींच सके हैं।·······

"शारीरिक श्रम से कसा हुआ शरीर, दूसरे के लिअे कष्ट सहने की वृत्ति रखनेवाला दिल, और अटपटी समस्याओं का फैसला कर सकने वाली तीक्ष्ण बुद्धि—यह मेरी अेक आदर्श सेवक के गुणों की कामना है। ग्रामसेवक आखिर जनता का सेवक है। जनता मालिक है। जिस सेवक की आवश्यकतायें अपने मालिक से ज्यादा हों, अुससे मालिक किस तरह सेवा ले सकता है? सेवक तो वही हो सकता है, जो ज्यादा से ज्यादा दे और कम-से-कम ले।"

श्री बबलभाअी शुरू में बाहर से मासिक पांच रूपये निर्वाहवेतन लेते थे। फिर भी, अुन्होंने अनुभव किया कि अितनी रकम बाहर से नियमित रूप से आती है, अिसका जनता के अूपर अच्छा परिणाम नहीं होता। अिसलिअे अुन्होंने अपने कमरे में सवा सेर की छोटी छोटी मटकियां रख दीं। और लोगों से कहा कि अुनमें वे अपनी अिच्छानुसार चाहे जब क्रमशः दाल, चावल और बाजरी डाल दिया करें। अकाल में भी लोगों ने अुनकी मटकियां खाली न होने दीं। आजकल मासरा और आसपास के देहात के लोगों ने मासिक पांच रूपये का खर्च अुन्हें पहुंचा देने का भार अपने सिर पर अुठा लिया है।

बबलभाअी ने अपना कार्यक्रम किस तरह बनाया, और अुनके सेवक लोग किस प्रकार के हैं, अिसका मनोरंजक तथा बोधप्रद वर्णन तो लेखक के ही शब्दों में पढ़ना चाहिअे।

कि. घ. म.

अध्यक्ष का भाषण

(गांधी सेवा संघ के अध्यक्ष श्री किशोरलालभाई मशरूवाला का
संघ के छठे सम्मेलन का भाषण)

बहनो और भाइयो,

प्रास्ताविक

आपके दर्शन पा कर आनंद होता है। मुझे खेद है कि इस साल में आपकी कोई सेवा नहीं कर सका। वृन्दावन के सम्मेलन के बाद में सिर्फ अेक बार बारडोली तक जा आया। फिर दूसरी कोई मुसाफरी नहीं कर सका। सितंबर तक कहीं जाने का कोई खास मौका नहीं आया; और बाद में मेरी तबियत मुसाफरी करने के योग्य नहीं रही। इसलिअे राजस्थान-कर्नाटक, तथा युक्तप्रान्त के सदस्यों से मिलने की जरूरत होते हुअे भी मुझे मजबूर हो कर वर्धा में ही रहना पड़ा।

इस वक्त आपके सामने दो महत्त्व की बाते हैं:

मौजूदा महायुद्ध का असर

यूरोप में युद्ध छिड जाने के बाद कॉंग्रेस और अंग्रेज सरकार के बीच जो वाद पैदा हो गया, और उसके जो परिणाम हुअे उन्हें आप जानते ही हैं। राजनैतिक परिणामों के अलावा संघ के उद्देश्य की, तथा हमारे व्यक्तिगत आचार, विचार और शक्ति की दृष्टि से भी हमारे सोचने के लिअे उस घटना ने काफी मसाला तैयार कर दिया है। इस विषय में जो चर्चाअें हुईं, उन्हें 'सर्वोदय' और परिपत्रों द्वारा आप जानते ही हैं। इसलिअे उन्हें यहां दोहराने की जरूरत नहीं है। लेकिन यहां उनका निश्चितरूप में विचार कर लेना ठीक होगा।

संघ और राजनीति

गांधी सेवा संघ राजनैतिक संस्था नहीं है। पर, वह राजनीति से परहेज भी नहीं करता। बल्कि, अहिंसा की नींव पर राज्य की रचना करना, और अहिंसात्मक संस्कृति का निर्माण करना उसका भीतरी उद्देश्य है। जब गांधी सेवा संघ की स्थापना हुई थी तब १९१९ में मुकर्रर किये

हुओ कॉंग्रेस के रचनात्मक कामों के करने के लिओ चर्खा संघ, ग्रामोद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ, तालीमी संघ आदि खास संस्थायें नहीं थीं। इन्हें अहिंसात्मक संस्कृति की अलग अलग शाखाओं कह सकते हैं। हरेक शाखा अब अेक अेक स्वतंत्र और अपने आपमें पूरी संस्था बन गयी है। तब केवल रचनात्मक कामों को चलाने के लिओ गांधी सेवा संघ की हस्ती की कोई खास जरूरत नहीं बतायी जा सकती। अब रहा कॉंग्रेस का राजनैतिक काम। जब तक प्रान्तीय कारोबार चलाने का भार कॉंग्रेस पर नहीं आया था, तब तक हिंसा और अहिंसा के सवालों पर अलग अलग दलों में तत्त्वचर्चायें भले ही होती रही हों; लेकिन दोनों में से अेक को पसंद कर लेने का कोई मौका नहीं आया था।

अधिकार-ग्रहण का परिणाम

प्रांतीय कारोबार में कुछ अधिकार मिल जाने पर अैसे मौके पैदा होते गये। और जब मौजूदा लडाई छिड़ गई, तब 'हमारी रुचि या श्रद्धा किस तरफ है', इसकी परीक्षा का अेक बड़ा भारी मौका आ गया। कॉंग्रेस के नेताओं और अनेक प्रान्तों के मंत्रियों के मुह से उस वक्त अैसे शब्द निकलने लगे कि अगर अंग्रेज सरकार हिंदुस्तान को पूर्ण स्वराज दे दे तो कॉंग्रेस अंग्रेज सरकार की पैसे और सिपाहियों से लडाई में पूरी पूरी मदद करेगी, और देश के लाखों जवानों को जर्मनी के साथ लडने के लिओ भेज देगी। जहां तक मुझे मालूम है गांधी सेवा संघ के किसी भी कॉंग्रेसी नेता, या धारासभा के सदस्य ने, इस विचार या सूचना का विरोध नहीं किया। बल्कि, अनुमान तो यह होता है कि उनकी भी यही विचारधारा थी। याने, "बगैर पशुबल के साजो-समान के राज का कारोबार चलाना और देश की स्वाधीनता कायम रखना साधारण मनुष्य-समाज की शक्ति से परे है", अैसी जो आम राय है, उसमें गांधी सेवा संघ के कॉंग्रेसी कार्यकर्ता अपवादरूप नहीं हैं। लेकिन पू० बापूजी ने हमारे सामने रखी हुई मान्यता तो अैसी रही है कि साधारण मनुष्य भी अहिंसा का अेक हद तक पालन कर सकता है। यदि यह बात सच है, तो गांधी सेवा संघ की नीति कैसी होनी चाहिओ? अगर हम अैसे बारीक मौकों पर कोई विशेष आचार न रख सके, तो संघ की हस्ती का क्या हेतु हो सकता है?

संघ का अस्तित्व किस लिये?

सिर्फ इसीलिओ कि गांधी सेवा संघ के पास थोडीसी जायदाद और पूंजी है, और कुछ कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं का खर्च उसमें से चलता है, उसे अेक व्यापक संस्था के रूप में चलाने की जरूरत नहीं मानी जा सकती। वह प्रबंध तो अेक ट्रस्ट के द्वारा भी हो सकता है। अथवा १९३४ के पहले संघ का जैसा रूप था वैसा ही रूप, योग्य फेरफार के साथ, रखने से वह काम चलाया जा सकता है। पर १९३४ में संघ को जो व्यापक रूप दिया गया, और गांधीजी के सत्याग्रह के सिद्धान्तों को मान्य रख कर लोकसेवा करनेवाले सब छोटे-बडे कार्यकर्ताओं का अेक बड़ा संगठन करने का जो प्रयत्न शुरू हुआ, उसे जारी रखना कहां तक ठीक है, इस बात पर आप गंभीरता से विचार करें।

आपके पास जो परिपत्र भेजा गया था, उसके उत्तरों में बडी भारी संख्या में सदस्यों की यह राय पाई गई कि संघ बन्द न किया जाय; बल्कि उसमें अहिंसाशक्ति का संगठन और विकास को प्रधान स्थान दे कर उसे चलाया जाय। इसके लिओ अगर जरूरत हो तो मौजूदा परिस्थिति में संघ के सदस्यों को कॉंग्रेस कमिटियों के पदाधिकारों से हट कर कॉंग्रेस की सेवा करनी चाहिओ और सब रचनात्मक काम करते हुओ अहिंसात्मक उपायों से मनुष्यों के झगडों को निपटाने के मार्गों की खोज करनी चाहिओ और उसे अपना खास 'मिशन' बनाना चाहिओ।

कार्यवाहक समिति में भी अधिकतर सदस्यों की यह राय हुई कि संघ को बन्द करना उचित नहीं होगा।

यह राय तो बहुत शुभ है। लेकिन इस नतीजे पर पहुंचने से हम पर किस तरह की जिम्मेदारियां आती हैं, और उन्हें अदा करने की हमारी कितनी ताकत और तैयारी है, इस की पूरी चर्चा करने के बाद यह राय बनी हुई नहीं है। बल्कि, जिस तरह की परिपत्र की भाषा थी, और सवालों की रचना थी, उसके अनुरूप वह राय थी। इसलिअे बेहतर तो यह होगा कि आप इस सवाल की यहां पूरी पूरी चर्चा कर लें, और इस कार का पक्का निर्णय कर लें ताकि आइन्दा संघ को चलाने या बन्द करने की चर्चा बार बार पैदा ही न हो।

"क्या संघ की ज़रूरत है?"

इसमें अेक पक्ष यह है कि "जो लोग अहिंसा में उतनी श्रद्धा रखते हैं जितनी कि पू. बापूजी चाहते हैं, वे उसकी व्यक्तिगत साधना कर सकते हैं। उसके लिअे कोई संस्था बनाने की जरूरत नहीं है। यह अनुभव हमेशा नहीं होता कि अेक महापुरुष की खास शिक्षा का भावी विकास उसकी संस्थाओं या अनुयायियों द्वारा ही होता हो। बल्कि कई बार जो उसके अनुयायी नहीं कहलाते वे उसका अच्छा अनुसरण करते हैं। मतलब यह कि अैसी कोई बात नहीं है कि पू. बापूजी की अहिंसा का भावी विकास उनके आश्रमवासी, या गांधी सेवा संघ के सदस्य, अथवा गांधीवादी लोग ही करेंगे। बल्कि, अैसा भी होना संभव है कि हम लोग अहिंसा का कोई तुच्छ भेष रख लें और उसके असली प्राण का नाश कर दें। इसलिअे अैसी आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिअे संस्था की जरूरत नहीं है।" पू. बापूजी ने भी कभी कभी इसी तरह के विचार प्रकट किये हैं।

संगठन की ज़रूरत

मेरी निजी राय यह है कि अगर हम अहिंसा, का अेक व्यक्तिगत सिद्धि के रूप में नहीं, बल्कि समाजव्यापी शक्ति के रूप में संगठन चाहते हों, तो अहिंसा में विश्वास रखनेवाले लोगों का किसी न किसी रूप में सहयोग या संगठन होना जरूरी है। यों तो नयी नयी संस्थायें खोलने की तरफ मेरी प्रवृत्ति नहीं है। फिर भी मैं समझता हूं कि समाज बहुधा संस्थाओं द्वारा ही अपनी प्रगति साधता है। फिर, हमारी (हिंदु और मुस्लिम दोनों) संस्कृतियों में अेक अैसा दोष आ गया है कि अक संस्था बनाने की जगह, या दो संस्थाओं को अेक करने की जगह, उसे तोड़ने या अेक संस्था की दो या दस बनाने की ओर हमारी प्रवृत्ति अधिक होती है। इस दृष्टि से भी कोई बनी-बनाई संस्था तोडने को तब तक मेरा जी नहीं चाहता, जब तक कि उसमें प्राण हो और उसकी उपयोगिता भी हो।

संस्था के जीवन की शर्तें

पर, गांधी सेवा संघ में प्राण है या नहीं, और उसकी उपयोगिता है या नहीं, इसका निर्णय आपको करना चाहिअे। अेक संस्था के रजिस्टर पर चाहे सो सदस्य दर्ज हों, फिर भी वह संस्था उतने ही सदस्यों की होती है जो उसके संचालन में उत्साह से भाग लेते हैं; अथवा जिन्हें उसके कारण कुछ स्फूर्ति, मार्गदर्शन और मानसिक आलम्बन मिलता है, और जिनको अपना उद्देश्य सफल करने में वह सहायक होती है। जो न तो उसके संचालन में दिलचस्पी लेते हैं और न उससे कोई लाभ ही होता हुआ पाते हैं, मगर फिर भी जो केवल किसी व्यक्ति के लिहाज से या पुराना संबंध तोड़ने के प्रति अरुचि के कारण, या संघ से मिलनेवाली आर्थिक सहायता

की वजह से अपनी सदस्यता कायम रखते हैं, वे अगर उस संस्था को कोअी हानि नहीं पहुँचाते तो उसका कोई लाभ भी नहीं करते हैं। उसके नियमों का वे उत्साह से पालन नहीं कर सकते। उन नियमों की अगर उन्हें याद आवे या दिखाई आवे तो उन्हें अैसा कष्ट होता है मानो कोई उनके पैरों में बेडी डाल रहा हो।

किसी संस्था में अैसे सदस्यों की संख्या जितनी अधिक होती है उतनी ही वह संस्था अधिक निष्प्राण बनती जाती है। जब अैसी परिस्थिति आ जावे तो उस संस्था को तोड़ देने में ही हित होता है। क्योंकि उसे तोड़ देने पर जिन्हें वैसी संस्था की ज़रूरत मालूम होती हो, वे अपनी रुचि के अनुसार दूसरी योजना बनाने के लिअे स्वतंत्र हो जाते हैं।

मेरी आपसे यह अर्ज है कि आप इस बात का साफ साफ विचार कर लें। हरेक सदस्य अपना स्थान इन तीनों में से किस वर्ग में है उसकी अपने आप जांच कर लें, और जो तीसरे वर्ग में हों वे निःसंकोच संघ को बंद करने के पक्ष में राय दें। मेरी राय में इसकी चर्चा और गिनती लग जाने पर आगे का विचार करना ठीक होगा।

अेक जटिल समस्या

अेक तरफ़ से देखा जाय तो, इस सवाल में से कि "गांधी सेवा संघ के सदस्यों को राज-नैतिक कामों में,— यानी कॉंग्रेस तथा धारासभा आदि संस्थाओं में--कितना और किस तरह का हिस्सा लेना चाहिअे," यह प्रश्न उठा है कि "संघ को बन्द करना चाहिअे या कायम रखना चाहिअे।" क्योंकि इन कामों के करने में अहिंसा के सिद्धान्त और सरकारी कारोबार के बीच विरोध के रूप में धर्म-संकट पैदा होता है। अेक तरफ़ से अहिंसा का भंग होने के डर से यदि हम शक्ति रखते हुअे भी इन कामों से परहेज रखते हैं, तो हमारी अहिंसा अेक तुच्छ शक्ति बन जाती है और दूसरी तरफ़ से यदि हम अिन कामों में पड़ते हैं तो आम तौर पर जिस हद तक अहिंसा की मर्यादा मानने की कॉंग्रेस की ताकत है, उसी हद में हमें भी रहना पड़ता है और हिंसक उपाय काम में लाने का फ़र्ज पैदा होता है। सरदार वल्लभभाई अिस संकट का अनुभव करते रहे, और आखिर उन्होंने यह निर्णय किया कि अहिंसा में श्रद्धा होते हुअे भी वे उस सिद्धान्त पर दृढ रह कर पार्लमेन्टरी बोर्ड का काम चलाने का रास्ता नहीं निकाल सकते। और सिद्धान्तवादी होने का दावा करके निष्क्रियता का स्वीकार करना उनके जैसे कर्ममार्गी के लिअे असंभव है। मेरा खयाल है कि मानवसमाज की आज जो अवस्था है, उसमें सिर्फ सरदार वल्लभभाई के लिअे ही नहीं, बरन हम सबके लिअे राजकीय कर्मयोग में अधिकार-स्वीकार के साथ शुद्ध अहिंसा बरतना करीब करीब असंभव है। सिर्फ वे ही नहीं जो कि स्वभाव से ही हिंसा के प्रति रुचि रखनेवाले हैं, बरन वे भी जो कि स्वभाव और बुद्धि से अहिंसा में श्रद्धा रखनेवाले हैं, समाज के किन्हीं किन्हीं कामों के लिअे हिंसा की कुछ न कुछ जरूरत महसूस करते हैं और यह अंदेशा करते हैं कि उतनी हिंसा के लिअे समाज-रचना में यदि अवकाश न रक्खा जाय तो समाज में अराजकता और अरक्षितता फैलने का डर है। आज जिस तरह का नागरिकधर्म हमें सिखाया जाता है, उसके अनुसार अगर गांधी सेवा संघ का कोई कर्मचारी सार्वजनिक पैसे की चोरी करे, और उसके ट्रस्टी उसपर कानूनी कार्रवाई न करें, तो यह माना जायगा कि उन्होंने ट्रस्टियों के धर्म का पालन नहीं किया। अगर मैं अध्यक्ष के नाते वैसी कार्रवाई रोकूं तो ट्रस्टी मुझे कह सकते हैं कि मेरी यह मुमानियत वे मंजूर नहीं कर सकेंगे। अगर मेरे सामने किसी आदमी ने कोई गंभीर गुनाह किया है, और उसके लिअे उसे सजा दिलाने में

मैं हाकिम की मदद न करूं, तो मुझपर नागरिकधर्म का भंग करने का आरोप लगाया जायगा। कॉंग्रेस-सरकार भी आज इन विचारों को मान कर ही बस सकती है। क्योंकि उसके लिअे समाजमत का सच्चा प्रतिबिंब होना जरूरी है। समाज की इस हालत में हर परिस्थिति में अहिंसा में विश्वास रखनेवाला अेक सत्याग्रही समाज क्या करे ?

मेरी अपनी कल्पना

मेरी इस विषय में जो कल्पना है वह आपके सामने रखता हूं :

अिस विषय के दो पहलू हैं: अेक यह कि हमारे बीच में बापूजी जैसा अेक लोकोत्तर विभूतिमान पुरुष मोजूद हो, और वह अपनी ही शक्ति से अेक बडी आध्यात्मिक विजय प्राप्त कर ले, तथा उसमें कुछ समय तक साधारण लोगों से भी अपूर्व पराक्रम करा ले।

और दूसरा यह कि जिनका अैसे आध्यात्मिक सिद्धान्त में विश्वास हो वे अैसे छोटे-छोटे व्यक्ति हों जो कि समाज के साधारण प्रवाह के खिलाफ अपूर्व पराक्रम भले ही कर न सकें, परन्तु प्रवाह में बह न जाने की, और जीवन के चंद मोकों पर बहाव का सफलता-पूर्वक विरोध भी करने की हिम्मत रखते हों।

पहली अवस्था में, उस पुरुष को किसी संस्था या संगठन की जरूरत नहीं रहती। वह खुद ही संस्थाओं का संस्थापक और संगठन का केन्द्र होता है। पर दूसरे प्रकार के लोगों के लिअे संस्था और संगठन जरूरी होता है।

संघ दूसरे प्रकार की संस्था है

गांधी सेवा संघ मेरे विचार में दूसरे प्रकार के लोगों की संस्था है। यह मुमकिन है कि अुसमें से कभी दूसरा गांधी पैदा न हो। दूसरा गांधी तो पू. बापूजी की तरह अपने ही आप निर्माण होगा। पर मेरी कल्पना में अेक अैसा सत्याग्रही समाज बन सकता है जो कि समाज के हिंसाभिमुख प्रवाह को अगर अेकदम बदल न सका, तोभी उसमें बह भी नहीं जायेगा; और जो कभी कभी उस प्रवाह का सफलतापूर्वक विरोध भी करेगा। इस उद्देश्य से अैसा समाज राजकीय, सामाजिक, आर्थिक वगैरा सब प्रकार के कामों में शरीक तो हो, अच्छे कामों में सहयोग भी देता रहे, लेकिन जिसमें हिंसा का कुछ स्वीकार करना अनिवार्य-सा हो जाता हो, वैसी किसी संस्था में अधिकार-स्वीकार न करे। उस समाज का यह निश्चय हो कि चाहे कितना ही नुकसान क्यों न हो, अपने कामों में वह हिंसात्मक इलाजों का स्वीकार न करेगा। जब किसी बुराई को हटाने का अहिंसात्मक इलाज वह बता सके, तब वह उसका प्रयोग करने के लिअे आगे बढे। उस वक्त अगर समाज की किसी संस्था में उसे अधिकारस्वीकार करने की जरूरत हो, तो वह उतना काम पूरा कर देने के लिअे अधिकार ले ले। पर, बाद में फिर उसे आमलोगों के प्रतिनिधियों को सौंप दे। मेरा यह विश्वास है कि उच्च चरित्र, बुद्धि, व्यवहार-कुशलता और अपने क्षेत्रों का अच्छा ज्ञान रखनेवाले सत्याग्रहियों का अैसा अेक समाज हो सकता है जो बिना अधिकार लिये और बिना अहिंसा को छोडे ही अपनी इतनी प्रतिष्ठा जमा सकता है कि जब वह किसी विषय पर अपनी आवाज उठावे तो वहां की दुनिया को उसे सुनना ही पडे, और यदि सुनने भर से ही वह उसकी राय मान न ले और उसे दुबारा अपनी आवाज उठानी पडे तो दुनिया को उसे मानने पर मजबूर हो जाना पडे। सत्याग्रही समाज न तो कहीं अपने उम्मीदवार खडे करे और न कहीं गुण्डों की मदद

से अपनी धाक जमावे। वह तो केवल अनेक क्षेत्रों में समाज की सेवा करता रहे। लेकिन फिर भी उसकी यह प्रतिष्ठा हो कि किसी विषय पर वह जो विचार प्रकट करे, उन्हें जनता को और राज को आदर के साथ सुनना ही पडे, अथवा फिर सत्याग्रही इलाजों का सामना करना पडे।

गांधी सेवा संघ के विषय में सत्याग्रहियों के इस प्रकार के अेक संगठन की मेरी कल्पना थी। हुदली में धारासभा-प्रवेश के विषय में मैं जो आप सबसे असहमत हुआ, अुसके पीछे अैसे संघ का स्वप्न ही था। पर मैं उसे आप लोगों पर ठीक ठीक भाषा में प्रकट नहीं कर सका था। आज भी मैं नहीं कह सकता कि मैं अपनी कल्पना कहां तक भलीभांति प्रकट कर सकता हूं।

हुदली का निर्णय

पर, यह तो संघ के विषय में मेरा ही अपना अेक स्वप्न रहा। अैसी किसी कल्पना से इस संघ का निर्माण नहीं हुआ। जिस कल्पना को ले कर संघ बनाया गया था, उसके अनुसार हुदली का निर्णय उचित ही था। उस निर्णय को बदलने की अपेक्षा मैं तो यह कहूंगा कि अुस वक्त आपने जो कदम उठाया उसीपर आप मजबूती से डटे रहें। पर यह निश्चय कर लें कि आप जिस संस्था में जायेंगे उसमें अहिंसा का जितना प्रवेश हो सके उतना कराने की पूरी कोशिश करेंगे और व्यवहार्यता के बहाने हिंसा के प्रवाह में बह न जायेंगे। जो संस्था आपकी सेवा चाहे उससे साफ कहें कि आप तो अपना काम सत्य और अहिंसा का पालन करके ही चला सकेंगे, और अुसके कारण कभी अैसे मौके भी पैदा हो जाना मुमकिन है जब कि स्थूलरूप में उस संस्था को कुछ नुकसान भी सहना पडे।

संघ का मार्गदर्शक कैसा हो?

गांधी सेवा संघ के सदस्यों के लिअे अैसा करना मैं मुश्किल नहीं समझता। लेकिन, अगर इतनी बडी नीति निबाहने के लिअे जो दूसरी शर्त जरूरी है वह हम पूरी न करें तो असंतोष अथवा धर्म-संकट अनुभव करते रहना अनिवार्य है। कॉंग्रेस की तरह गांधी सेवा संघ अपनी कार्य-वाहक समिति द्वारा नहीं चल सकता। वह चल सकता है अंशतः स्वयं सदस्यों की विवेक बुद्धि और सिद्धान्त-निष्ठा के बल, और अंशतः उसके अध्यक्ष अथवा मंत्री द्वारा कराये जानेवाले मार्गदर्शन के आधार पर। इसमें पहली बात मुख्य है। पर दूसरी भी आवश्यक है। मेरा निश्चित मत है कि गांधी सेवा संघ जैसी संस्था केवल कार्यालय सम्हालने वाले अध्यक्ष अथवा मंत्री के द्वारा सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। इन दोनों में से कम से कम अेक तो अैसा प्राणवान, निष्ठावान, और उत्साही व्यक्ति होना चाहिअे जो सदस्यों के कार्यक्षेत्र में आनवाले सब कामों से कुछ न कुछ संपर्क रखनेवाला, स्वयं कुछ न कुछ कर दिखाने वाला हो। अगर वह किसी सदस्य के किसी काम या निर्णय की नुकताचीनी करे, तो अुस नुकताचीनी के पीछे अेक सिद्ध-मांत्रिक का बल होना चाहिअे। केवल तर्क या विवेचन की पूर्णता होना काफी नहीं है। जिस तरह अनुष्ठान द्वारा मंत्र को बलवान् न रखनेवाले मांत्रिक का मंत्रोच्चार व्यर्थ जाता है, या मुश्किल से असर करता है, उसी तरह रचनात्मक या राजनैतिक कामों में कहीं पर भी कर्तृत्वविहीन अध्यक्ष या मंत्री का सिद्धान्त-निरूपण व्यर्थ होता है।

मेरी कठिनाई

अपने लिये में और ज्यादा क्या कहूं ? पांच साल तक जिस प्रेम से आपने मुझे अपनाया है और जिस भाव से मेरी ओर देखा है, उसे में अच्छी तरह जानता हूं। आपके मुंह से मैं अपनी प्रशंसा के शब्द सुनना नहीं चाहता। मैं जानता हूं कि दूसरे किसी सदस्य को अध्यक्ष बनाने में आप इस या उस विचार से कठिनाई महसूस करते हैं। मुझे यह भी मालूम है कि आप मेरी ओर देखते हैं, और मेरे शरीर पर दया करते हैं। पर, जब मैं इस जिम्मेदारी से मुझे मुक्त करने के लिये आपसे विनय करता हूं तब अपने शरीर पर दया का भाव जाग्रत करने में मुझे शर्म आती है। इसमें शक नहीं कि वह अेक कमनसीब परिस्थिति है। लेकिन, मैं स्वयं जो मुश्किल अनुभव करता हूं उसका कारण शरीर की दुर्बलता की अपेक्षा मेरे मन का निरुत्साह है। चारों ओर आन्दोलन, जलसे, जुलूस और भिन्न भिन्न क्षेत्रों में तरह तरह की प्रवृत्तियों की जो धूम मची है, अुनमें से किसी में भी मुझे रस नहीं आता। जिन्दा होते हुअे भी अनेक विधियों और रूढ़ियों में मुझे अेक रॉबोट (यंत्र-मनुष्य) की तरह काम करना पड़ता है। आम जनता को विवाह, जनेऊ, ज्ञातिभोज, दिवाली, दशहरा आदि में रस होता है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को झण्डावन्दन, प्रभातफेरी, गणेशोत्सव, गीताजयन्ती, स्वातंत्र्यदिन, पचास बैल या बावन हाथियों के जुलूस; आदि में मजा आता है। अेक समय था जब मैं भी इन सब कामों में आनंद से भाग लेता था, पर अब जब कभी मुझपर अैसे किसी काम में सहयोग देने का कर्तव्यभार आ पड़ता है, तब उनके करने में जहाँ आसपास के सब लोगों के मुख पर आनंद की लहरें दीख पड़ती हैं वहां मैं तो अपने आप को अेक विकट परिस्थिति मे फँसे हुअे प्राणी की तरह पाता हूं। रंगभूमि के अेक नट की तरह इसमें अभिनय करने की कला अब तक मैं हासिल नहीं कर सका, और न हासिल करने की रुचि ही है। मेरे या गांधी सेवा संघ के सदस्यों के प्रयत्नों की अपेक्षा अखबारवालों और दूसरे सज्जनों की बदौलत संघ को अेक अखिल भारतीय संस्था की ख्याति मिली है। उसके कारण संघ के अध्यक्ष को तरह तरह की राष्ट्रीय संस्थाओं में बुलाया जाता है। इस व्यवहार का प्रति दिन बढ़ता जाना संभव है, और स्वाभाविक भी है।

ज़िम्मेवारी से छुटकारा चाहता हूं

फिर में स्वयं मानता हूं और आपका भी यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि मै कम से कम दो-तीन साल में अेक बार तो आपके प्रान्त का दौरा करूं, आपकी संस्था स्वयं देखूं, आपके साथियों से परिचय करूं और आपके बीच कुछ दिन रहूं। यह भी आवश्यक है कि वर्धा में मैं आपको तथा दूसरे भी सेवेच्छु लोगों को कुछ दिन ठहराने का और हमारे सिद्धान्तों से तथा सेवा के तरीकों से परिचित होने का प्रबन्ध करूं। दौरा करने की मेरी शारीरिक शक्ति कम होती जा रही है और दूसरा प्रबन्ध करने के मानी होते हैं वर्धा में और भी अेक संस्था बढ़ाना। यह मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। मै इस अपेक्षा को अनावश्यक नहीं समझता, लेकिन मेरी यह लाचारी है। मैं तो जब किसी निमित्त से आप वर्धा आ जाते हैं तब भी आपका दो-दिन के लिये आतिथ्य नहीं कर सकता। इसकी मुझे सदैव बड़ी शर्म मालूम होती रही है। शरीर तो अस्वस्थ रहते हुअे भी कुछ साल तक चलता रहे यह असंभव नहीं है और दिमाग भी मुमकिन है कि दिये हुअे विचारों को प्रकट करने की तथा नये विचार समझने की ताकत खो न बैठे। पर विचारों की ताजगी और कर्तृत्व-

प्रेरक शक्ति अेक अलग चीज है, जो अगर असल में मुझमें हो तो ही मेरे शब्दों द्वारा पैदा हो सकती है। फिर, अगर मुझसे केवल इसी प्रकार का काम आप कराना चाहते हों, तो उसके लिअे मुझे अध्यक्षपद की कोई जरूरत नहीं है। जब तक डाकघर मेरी डाक को और प्रकाशक मेरे लेखों को लौटा नहीं देते, अुसे मैं वैसे भी कर सकूंगा। पर दिल अब किसी जिम्मेदारी का बोझ उठाना नहीं चाहता।

यह मेरी स्थिति है। पू० बापूजी तथा कार्यवाहक समिति के सदस्यों के सामने मैं उसे रख चुका हूं। पू० बापूजी मुझसे कहते हैं "मैं तुम्हें इस वक्त आग्रह नहीं करूंगा। यदि स्वतंत्र-रूप से तुम्हें (अध्यक्ष बने) रहने का धर्म स्वयं सूझ जाय तो अुत्तम है। लेकिन, अगर इससे उलटा ही तुम अनुभव करो, तो मुझे तुम्हारे लिअे अनुकूलता कर देनी होगी।"

इस उत्तर से मेरा बोझ और भी बढ़ गया है। मैंने जो कहा है उससे अधिक मैं क्या कहूं? आप अपनी और मेरी दोनों की परिस्थिति का विचार कर के जैसा उचित समझें, वैसा निर्णय करें। अगर आप यही निर्णय करेंगे कि आप मुझे छोड़ नहीं सकते तो यह मान कर कि परमेश्वर की अभी यही इच्छा है, मैं बिना आपसे खुशामद कराये उसे मंजूर कर लूंगा, और अपना मन संतुष्ट रखने का प्रयत्न करूंगा।

(मलिकन्दा, पूर्व बंगाल, ता० २० फरवरी १९४०)

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिअे रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg. No. N. 741

ये अुद्गार भी तो अेक सच्चे मुसलमान के ही हैं

अिस संक्षिप्त अैतिहासिक सिंहावलोकन का निचोड़ दो शब्दों में दिया जा सकता है—जो अुन तत्त्वों को और शर्तों को, जिनके आधार पर हम हिन्दुस्तान में रहते हैं, बिलकुल साफ़ साफ़ और पूरी तरह व्यक्त करते हैं। हम "हिन्दुस्तानी मुसलमान हैं।" ये दो शब्द—'हिन्दुस्तानी मुसलमान'—हमारी राष्ट्रीयता और धर्मभावना व्यक्त करते हैं। जिन दो बातों से संबंध रखनेवाली जिम्मेदारियां और कर्तव्य जब तक हम अपनी दृष्टि के सामने रखेंगे तब तक हम गुमराह नहीं होंगे। हिन्दुस्तानी मुसलमान पहले हिन्दुस्तानी हैं। अपने गैरमुस्लिम भाअियों के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है अिस विषय में मैंने अपने विचार कभी छिपाये नहीं हैं; अिसलिये जो कुछ मैं कहता आया हूं अुसे दुहराने के सिवाय और क्या कर सकता हूं? मैं अुन आदमियों में से हूं जो भारतीय राजनीति की तरफ़ संकीर्ण या सांप्रदायिक दृष्टि से नहीं देखते। जहां हिन्दुस्तान की भलाअी का या, हिन्दुस्तानियों के साथ न्याय का, सवाल हो वहां मैं केवल सबसे पहले हिन्दुस्तानी ही नहीं हूं; बल्कि बाद में भी हिन्दुस्तानी हूं और आख़िर में भी हिन्दुस्तानी ही हूं—केवल हिन्दुस्तानी ही हूं। मैं किसी जमात या व्यक्ति का पक्षपाती नहीं हूं। मैं अुनके साथ हूं जो न केवल किसी जमात के बल्कि किसी व्यक्ति के भी हित या अधिकार को बिना नुकसान पहुंचाये समूचे हिन्दुस्तान की अुन्नति चाहते हैं।

१९१५ की मुस्लिमलीग का अध्यक्षीय भाषण — मज़हरुल हक़

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

श्रेय वः पन्थाः सुकृतस्य लोके



सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा | अंक ९ वाँ

अप्रैल १९५०

अेक अंक... .... रु० ०—६—०
वार्षिक ... ... रु० ३—०—०
बर्मा में ... ... रु० ३—८—०
विदेश में ... ... ६ शिलिंग
१.५० डॉलर.
(सब डाक-सहित)

अनुक्रमणिका

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

अप्रैल, १९४०
वर्धा

अीशावास्योपनिषत्

[विनोबा]

मंत्र—पूषन्नेकर्ष यम सूर्यप्राजापत्यव्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥१६॥

अर्थ—तू अिस विश्व का पोषण करनेवाला और तू ही अकेला निरीक्षक है। तू ही नियमन करनेवाला और प्रवर्तन करनेवाला है। तू सबका प्रजावत् पालन करनेवाला है। तू अपनी ये (पोषणादि) रश्मियां खोल कर और अेकत्रित कर दिखा। तेरा तेजस्वी और परम कल्याणमय रूप (अिस समय) में देख रहा हूं। जो वह पुरुष है वही मैं हूं।

टिप्पणी—(१) यहां सूर्य के प्रतीक द्वारा अीश्वर का ध्यान करना है। जो अन्तर्यामी सूर्य का प्रेरक है वही मेरी बुद्धि का प्रेरक है। 'सत्य' अुसकी संज्ञा (नाम) है। 'सूर्य' और 'बुद्धि' को ही सुनहरे ढँकने समझना चाहिये।

मंत्र—वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतँ स्मर क्रतो स्मर कृतँ स्मर ॥ १७ ॥

अर्थ—यह प्राण अुस अमृत और चैतन्यमय वायु में घुलमिल जायेगा और अिस शरीर की राख होगी। हे संकल्पमय जीव अीश्वर का नाम ले कर याद कर अपना किया हुआ याद कर। हे (मेरे) जीव, याद कर, किया हुआ याद कर।

टिप्पणी—(१) यहाँ वायु के प्रतीक में अीश्वर का ध्यान करना है। जो अंतर्यामी वायु का चालक है वही मेरे प्राण का चालक है। 'सत्य' अुसकी संज्ञा (नाम) है। "वायु" और "प्राण" सुनहरे ढँकने समझे जायें।

मंत्र—अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥

अर्थ—हे अग्नि, विश्व में जितने ज्ञान हैं अुनकी थाह तूने पा ली है। हमें सीधे रास्ते से अुस परमानन्द की ओर ले जा। आडाटेढ़ा चलनेवाला पाप हमसे दूर कर। तुझसे हम बार बार नम्र वचनों से विनय करते हैं।

टिप्पणियां—(१) यहाँ अग्नि प्रतीक में ओश्वर का ध्यान विहित है। जो अंतर्यामी अग्नि का अुद्दीपक है वही मेरे शरीर का अुद्दीपक है। 'सत्य' अुसकी संज्ञा (नाम) है। 'अग्नि' और 'शरीर' सुनहरे ढँकने समझने चाहिअें।

(२) कुछ पाठभेदों को छोड़ कर, यह अुपनिषत् यजुर्वेद का आखिरी अध्याय है। अिसलिअे यह मंत्र भी यजुर्वेदगत ही है। लेकिन मूल यजुर्वेद में भी वह ऋग्वेद से आया है। (ऋग्वेद १. १८९. १.) । यदि मनुष्य से कोअी गर्हित कर्म हो जाये, या मार्गभ्रंश हो जाये, तो अैसे अवसर पर शास्त्र में अिस मंत्र के जप का विधान है।

(३) मंत्र १६ से १८ तक की ध्यानत्रयी मिल कर अेक संपूर्ण चिंतन है। "भूः भुवः स्वः" ये ॐकार की तीन मात्रायें हैं। पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, ये अुनके आधिभौतिक अर्थ हैं। अग्नि, वायु, सूर्य, ये अुनका अधिदैवत है और शरीर, प्राण, बुद्धि, ये अुनका अध्यात्म है।

शान्तिमन्त्र—ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

अर्थ—वह पूर्ण है, यह पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण ही निष्पन्न होता है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने से बाकी पूर्ण ही बच जाता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भूल सुधार

मार्च के अंक में—पृष्ठ ३६९; पंक्ति २३ में 'हिंसा' और 'हिंसा' की व्याख्या' की जगह 'अहिंसा' और 'हिंसा' की व्याख्या' पढा जाय।

—सं०

गांधीजी का भाषण

-१-

भाअियो और बहनो,

मेरी दुविधा

भाअी जाजूजी ने आपसे कह दिया है कि अगर मैं मनाही नहीं करता तो किशोरलाल आज आग्रह-पूर्वक यहां आनेवाले थे। आपसे मैं जो कुछ कहूंगा अुसे वे सुनना चाहते थे। मैंने अुनसे कह दिया कि तुम्हें अुसके सुनने की जरूरत नहीं है। लेकिन अुनका जी नहीं मानता। अिसलिअे अुन्होंने कहा कि मैं 'लाअुड स्पीकर' के जरिये अपने कमरे में पडे पडे सुन लूंगा। कल अुनका भाषण जब पढ़ा जा रहा था तो वे सुन सकते थे। अुसी तरह आज मेरा भाषण भी सुन लेंगे। आज मैं कुछ दुविधा में पड़ा हूँ। सामान्यतः अैसा नहीं होता; जो शब्द मैं बोलना चाहता हूँ, वे सहज में अपने आप अैसे ही आ जाते हैं। आज अैसा होगा या नहीं; यह मैं नहीं जानता। मै अब भी विचार तो कर रहा हूँ कि आप लोगों को क्या सलाह दूं। लेकिन अभी तक मुझे ठीक ठीक पता नहीं है कि मैं आप लोगो को कोनसी निश्चित सलाह दूंगा।

प्रफुल्लबाबू की श्रद्धा के मानी

पहले प्रफुल्लबाबू ने जो कुछ कहा अुसके विषय में दो शब्द कहना चाहता हूँ। अुन्होंने जो कहा वह अगर दर असल अुनके हृदय की ध्वनि है तो मैं कहूंगा कि अुन्होंने मेरी बात ठीक ठीक समझ ली है। मैंने 'अगर' शब्द का अुपयोग जानबूझ कर सावधानी के कारण किया है। मैं मनुष्य के हृदय को थोडे ही पहचान सकता हूं? अगर अुन्होंने केवल भावनावश हो कर, जोश में आ कर, शब्दों का अुच्चारण किया है, अुसके अर्थ को अगर वे घोंट घोंट कर पी नहीं गये हैं, तो अुससे किसीका कोअी फायदा नहीं होगा। लेकिन मेरा विश्वास और आशा है कि अुन्होंने केवल अुच्चारणमात्र नहीं किया है, बल्कि अपनी श्रद्धा का दर्शन हमें कराया है। मैं भी मानता हूँ कि गांधी सेवा संघ के सदस्य अगर अपनी अपनी दूसरी प्रवृत्तियां छोड़ कर चरखे को ही ले कर बैठ जायें तो भी हम हिन्दुस्तान की आजादी पा सकेंगे। ये विचार तो मेरे है; मगर अुन्हें प्रकट करने की मेरी हिम्मत नहीं है। प्रफुल्लबाबू ने बिना हिचके अुन्हें प्रकट करने की हिम्मत की।

अुन्होंने कह दिया कि दो सौ या तीन सौ आदमियों से काम नहीं चलेगा, कम-से-कम अेक लाख आदमी चाहिअें। लेकिन यहां तो तीस कोटि मनुष्य पडे है। तीस कोटि में अेक लाख तो बिन्दुमात्र है। परंतु यदि अेक लाख मनुष्य भी विश्वास से काम करें तो बडी शक्ति पैदा कर सकते हैं। यह श्रद्धा की बात है, सिद्ध करने की नहीं। अिसका आंकडों से हिसाब नहीं किया जा सकता। मैं आंकडों का भी हिसाब करा रहा हूं। चरखे से हिन्दुस्तान का कपडे का सवाल कैसे हल किया जा सकता है, यह आंकडों से दिखाना पडेगा। अुसके लिअे आंकडे तैयार करने को कृष्णदास गांधी से कहा है। वह सारा हिसाब मैं कर रहा हूं और दूसरो से करा रहा हूं। हिसाब जब पूरा हो जायगा तो अुसे प्रकाशित भी करूंगा।

लेकिन प्रफुल्लबाबू ने जिस बात पर जोर दे कर कहा है, वह यह है कि हर अेक कार्यकर्ता कम-से-कम अेक लाख गज सूत काता करे। यह प्रश्न केवल आंकडे और हिसाब का नहीं है। अुन्होंने तो यह भी कहा है कि अुनका यह विश्वास है कि चरखा अहिंसा का प्रतीक है। अिसी विश्वास से अगर श्रद्धालु आदमी काम करें तो अुसका चेप (छूत) फैल जाता है। रोग का भी छूत फैलता है, लेकिन वह नाशक होता है। श्रद्धा का छूत पोषक होता है। रोग के जब

से अेक अैसा आदमी कहता है जो सारासार विचार कर सकता है, जिसका मस्तिष्क काम करता है, और जिसने सफलता-पूर्वक वकालत भी की है। मैं यह साक्षी देता हूं कि हम यदि अहिंसा का अनुसंधान करके ध्यानपूर्वक चरखा नहीं चलाते हैं तो गांधीवाद का अवश्य ध्वंस हो जाना चाहिअे। क्यों कि फिर अुसमें कोअी शक्ति नहीं रह जाती।

माला फेरने का दृष्टान्त

अेक दृष्टान्त देता हूं। अेक आदमी है, वह माला तो फेरता है लेकिन अुसका दिल अूपर को जाता है, नीचे को जाता है, चारों ओर भटकता फिरता है; तो वह माला अुसको गिराती है। वह झूठा आश्वासन लेता है कि मैं माला फेरता हूं। वहां माला का अीश्वर से अनुसंधान नहीं है। वह कितना ही माला फेरता रहे ज्यों का त्यों रहेगा। अुसकी अंगुलियों में कष्ट होना शुरू हो जाता है। अुसकी माला निकम्मी ही नहीं है, नुकसानदेह भी है। क्योंकि अुसमें दंभ है। माला अनेक धर्मों में अनादि काल से नामस्मरण का साधन रही है। लेकिन जहाँ ध्यान और अनुसंधान नहीं है वहां दंभ ही रह जाता है। अिस तरह माला फेरनेवाला अीश्वर को धोखा देता है और जगत को भी।

यही बात चरखे पर लागू है। चरखे में मैंने जो शक्ति पायी वह यदि आप न पावें; जैसी मेरी श्रद्धा है वैसी अगर आपकी न हो; तो वह चरखा ही आपका नाश करेगा। आप गांधी सेवा संघ के सदस्य हैं, अिसलिअे अेक लाख गज सूत कात लेंगे। धोत्रे अपने विवरण में हिसाब देगा कि अितना अितना सूत हुआ। आप कहेंगे प्रगति है। मैं कहूँगा नहीं। आपको अभिमान हो जायगा। मैं कहूँगा कि अगर जड़वत् माला फेरने में दंभ है तो यंत्रवत् चरखा चलाने में आत्म-वंचना है और, आपको अभिमान होने लगेगा अिसलिअे, दंभ भी है। अगर अैसा न होता तो चरखा कातनेवाली लाखों स्त्रियों को हम संघ का सदस्य बना लेते। लेकिन हमारे दिल में यह विचार कभी आया ही नहीं।

जब आप अनुसंधान से कातेंगे, चरखे के तमाम सहचारी भावों को समझबूझ कर ज्ञान-पूर्वक कातेंगे, तब वह आपकी बुद्धि को सतेज बनायेगा। अुसमें आपके हृदय को बल मिलेगा। आपकी बुद्धि का और हृदय का बल दिनों दिन बढ़ता ही रहेगा। आपका सूत अच्छा निकलने लगेगा। आप विचार करने लगेंगे कि चरखे से स्वराज्य कैसे मिलेगा? आपको हर दिन नयी नयी बातें दिखायी देने लगेंगी। और अिस तरह चरखा आपको आपके अभीष्ट के अधिकाधिक निकट पहुँचाता रहेगा। चरखा अहिंसा का प्रतीक है, अिसका क्या अर्थ है, अिसका मैंने थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराया। प्रफुल्लबाबू ने जो कुछ कहा अुसमें क्या चीज भरी है, अिसका भी थोड़ा-सा स्पष्टीकरण किया। अब मैं अिस बात को लबाना नहीं चाहता। मुझे डर है कि जितने आदमी यहां आये हैं अुनमें अहिंसा का अैसा बल नहीं है।

मुझमें भी सूक्ष्म असत्य

अिसलिअे हम अपना निरीक्षण करें। "क्या हम वैसे अहिंसावादी हैं जैसा कि हमें होना चाहिअे? क्या हम राग-द्वेष के अधीन हो कर हिंसा नहीं करते? जिनके साथ हम बैठे हैं, जिनके साथ हमें काम करना है, क्या अुनके लिअे हमारे दिल में कोअी प्रेम है"? मैं अपना आत्म-परीक्षण अिसी प्रकार करता हूं। मेरा विश्वास है कि मैं खुद वैसा अहिंसक नहीं हूं। हाल ही में, कोअी चार पाँच दिन की बात है, अपने व्यवहार पर से मुझे पता चला कि मेरे

बर्ताव मे भी अनजान में असत्य आ जाता है। सेगांव में मैं अकसर मौन रहता हूं। मौन रहने से मुझे शान्ति मिलती है। दिल पर से अेक बोझ-सा अुतर जाता है। अगर मुझसे कोअी हमेशा के लिअे मौन रहने के लिअे कहे तो मैं नाचूंगा। सेगांव में अक्सर मुझे जो कहना होता है अुसे मैं लिख देता हूँ। लेकिन अितने दिन के अनुभव के बाद भी मैं कहता हूँ कि मुझमें असत्य ने स्थान लिया है। अहिंसा के खयाल से मनुष्य दूसरे को खुश करना चाहता है। धर्म भी कहता ह कि सत्य भी बोलो और प्रिय भी बोलो। लेकिन यह बडा कठिन प्रयत्न है। मधुर बोलने के प्रयत्न मे से भी असत्य आ जाता है। केवल लोगों को अच्छा लगे अिसलिअे अुन्हें खुश करने को कुछ कहना धर्म नही है। शास्त्रकारों का जो वाक्य है अुसकी मैं विस्तृत व्याख्या या स्पष्टीकरण नहीं कर रहा हूँ। अुन्होंने तो ठीक ही कहा है कि सत्य भी बोलो और प्रिय भी बोलो। लेकिन हम अुनका पूरा वाक्य कहां समझते है? हम तो दूसरों को खुश करने के लिअे केवल प्रिय ही बोलते हे। यह धर्म नहीं है। सेगाँव में कोअी आना चाहता है। मान लीजिअे प्रेमाबहन आना चाहती है। मुझसे पूछती है, 'मै आ जाअूं?' अुसे प्रसन्न करने के लिअे मैं कह देता हूँ 'आ सकती है।' अिसका विचार नहीं करता कि वहाँ अुसका कोअी काम है या नही? मुझे आप वैद्य, नेता या शिक्षक, चाहे जो भी समझें। तो भी मेरा यह धर्म है कि अिस प्रकार का असत्य न करूं। जहाँ सेवा की जरूरत नहीं होती, अिच्छा भी नहीं होती, वहाँ केवल दूसरों की मर्जी के लिअे सेवा ले लेता हूं। परसों शान्तिनिकेतन जाना था। वहाँ वसुमति, अनसूया और दूसरे लोग आना चाहते थे। मैंने सोचा यह तो मेरी तीर्थयात्रा है। वहाँ बहुत लोगों को क्यों ले जाअूं? लेकिन मुझे संकोच हुआ। अुनको खुश करने के लिअे मैंने कहा शान्तिनिकेतन से पूछ लिया जाय। महादेव ने तार दे कर पूछा। वे बेचारे अिनकार थोडे ही कर सकते थे? अुन्होंने कहा जितने आओगे सबका स्वागत है। लेकिन मैं अगर सबको ले जाता तो बेवकूफ बनता। क्योंकि न शान्तिनिकेतनवालों को शान्ति रहती और न मुझे ही। अिस प्रकार अुनके आतिथ्य पर बोझ डालना मेरा धर्म नहीं था। मेरा कर्तव्य था कि मै अपने साथियों से कह देता कि मैं अुन्हींको ले जाअूंगा जिनकी कि मुझे अपने काम के लिअे जरूरत है। लेकिन मैं बुजदिल बन गया। मेरा सत्यवादित्व भी गया और अहिंसा भी गयी। परंतु अन्त में मैंने निडर बन कर सबको लिख दिया कि मै सिर्फ अिने-गिने लोगों को ही साथ मे ले जाअूंगा। मेरे सौभाग्य से मेरे साथी मेरे अिस प्रकार आगा-पीछा करने को सह लेते है।

'हिन्द स्वराज्य' कैसे लिखी

अगर मुझको नेतागिरी करना है, करोडों को रास्ता दिखाना है, अुन्हें अपने पीछे दरिया में फेंक देना है, तो मुझे लज्जा के कारण असत्य नही करना चाहिअ। अगर मैं अैसा करूंगा तो नेतागिरी के लिअे नालायक ठहरूंगा। अहिंसा की नीति का यह आवश्यक अंग है। मैंने चरखे को अुस नीति का व्यक्त प्रतीक माना है। आप मुझसे पूछेंगे कि यह सब तुमने कहां से पाया? मैं कहूंगा, सेवा के अनुभव से। १९०८ से मेरे दिल में यह बात जमी हुअी थी। अुस समय तो मैं करघे-चरखे का भेद भी नही जानता था। लेकिन बीज रूप में चरखे से मुझे प्रेरणा मिली। शायद आपको पता नहीं होगा कि मैंने 'हिन्द स्वराज्य' किसके लिअे लिखा। अब तो वे मर गये हैं अिसलिअे अुनका नाम बताने में भी हर्ज नहीं है। मैंने सारा 'हिन्द स्वराज्य' अपने मित्र डा० प्राणजीवन महेता के लिअे लिखा। अुनसे जो चर्चा हुअी वही अुसमें आयी है। अेक महीना मैं डा० महेता के साथ रहा। वे मुझे प्यार करते थे लेकिन मेरी बुद्धि की

कैसे कर सकते हैं? अुनपर दया करेंगे। वे अज्ञानी हैं अिसलिअे अीश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वह अुन्हें ज्ञान दे। हम तितिक्षा से अुनके आघात सह लेंगे। हमारे हृदय से दया के अुद्‌गार निकलेंगे। सिर्फ लोगों को सुनाने के लिअे नहीं; बल्कि सच्चे दिल से हम अुनपर दया करेंगे। कोअी मुझपर हमला करता है लेकिन मुझे अुसपर गुस्सा नहीं आता। वह मारता जाता है, मैं सहता जाता हूं; मरते मरते भी मेरे मुख पर दर्द का भाव नहीं, बल्कि हास्य है, मेरे दिल में रोष के बदले दया है—तो मैं कहूंगा कि हमने वीरपुरुषों की अहिंसा सिद्‌ध कर ली। मैं आपसे पूछता हूं कि जो आपको गाली देते रहते हैं, क्या अुनके प्रति आपके दिल में दया है? समाजवादी और दूसरे सब 'वादी' जो हमारा विरोध करते हैं, क्या अुनके लिअे हमारे दिल में दया है? अहिंसा में अितनी ताकत है कि वह विरोधियों को मित्र बना लेती है और अुनका प्रेम प्राप्त कर लेती है। मुझे डर है, और मेरे पास अैसे सबूत हैं, कि हम अैसे नही हे। हममें से अैसे जो नहीं हैं अुन्हें प्रामाणिकता से संघ से हट जाना चाहिअे। सभी अेक-से हों तो सभी को हट जाना होगा। शायद मुझे भी कहना पडे कि मैं भी अिस लायक नहीं हूं। तब तो यहाँ से संघ की पूर्णाहुति ही करके जाना अच्छा है। हम किशोरलालभाअी पर संघ के संचालन का बोझ क्यों रक्खें? क्या हमें अुन्हें यहाँ दफन करना है? अुन्हें रातदिन संघ की चिंता रहती है। स्वास्थ्य बिगड जाता है। वह धोत्रे पडा है। काम के बोझ के नीचे दबा जा रहा है। क्यों न हम अुनको अुस बोझ से मुक्त कर दें?

संघ का विसर्जन कर दीजिये

मैं आपसे कहता हूं कि संघ का विसर्जन करने में हमारी कोअी हानि नहीं है। संघ में अगर कुछ है तो अुसके तीन सौ सदस्य अुसकी तीन सौ शाखायें हो जाती हैं। और अिस प्रकार की शक्ति अगर हमारे सदस्य नही दिखा सकते तब तो कहना पडेगा कि संघ में कुछ था ही नहीं। तब फिर अुसे कायम रखने से क्या लाभ? मेरी तो यही सलाह है कि हम अुसकी पूर्णाहुति करके यहाँ से जायँ।

हम यह कदम डर के मारे नहीं अुठा रहे हैं। अपने बल का संग्रह करने के लिअे अुठा रहे हैं। क्योंकि अगर हम यह काम शुद्‌ध बुद्‌धि से करेंगे तो हमारी शक्ति बढेगी और आज हमारी हस्ती से जो डर पैदा हो रहा है वह नहीं रहेगा। हमारी शक्ति अगर किसी के दिल में डर पैदा करती है, या हिंसा की प्रेरणा करती है, तो वह अहिंसक नहीं हो सकती। अुस हालत में हम संघ का आश्रय लेंगे तो हमारा कल्याण नहीं होगा। वह हमें अहिंसक शक्ति नहीं दे सकता। और न हम अुसकी शक्ति बढा सकते हैं। क्योंकि हम तो खुद ही आश्रय चाहते हैं। अगर हम पैसे के लिअे या सामुदायिक बल के लिअे संघ का आश्रय चाहते हों तो हम सत्य और अहिंसा के अभ्यास के लिअे निकम्मे हैं। अगर हमारे लिअे भगवान का आश्रय काफी नहीं है तो हमारे हिसाब में गलती है।

जब हम संस्था के अिस बाह्य रूप का अन्त कर देंगे तो हमारे अन्दर नम्रता की शक्ति पैदा होगी। अँग्रेजी में अेक कहावत है कि 'जो यह जानता है कि मैं कुछ नहीं जानता वही दर असल ज्ञानी है'। जिस दिन हम अितने नम्र हो जायेंगे कि अपने आपको शून्यवत् बना लेंगे अुसी दिन हमारी शक्ति बढेगी। फिर तो गांधी सेवा संघ अेक दूसरी ही अनोखी अव्यक्त संस्था बन जायगी। वह सीता जो लुप्त हो गयी, अमर है। आज तक हम अुसका नाम ले कर पावन होते हैं। वह सीता जिन्दा है। छाया की सीता मर गयी। अगर हम दर असल शक्तिशाली होना चाहते हैं तो संघ का विसर्जन कर दें। यह भी शक्ति का काम है। अिसके लिअे भी हिम्मत और बल चाहिअे।

राज्यप्रकरण को भुला दीजिये

अगर आपमें यह शक्ति नहीं है तो आप संघ को दूसरा रूप दे दें। मेरी यह स्पष्ट राय है कि आप राज्य-प्रकरण भूल जायें। मैं वही शख्स हूं जिसने हुदली में कहा था कि हम राज्य-प्रकरण में चले जायें। मैंने ही आपको राज्य-प्रकरण में खींचा था, अुसके लिअे मुझे पश्चात्ताप नहीं है। अुस समय की परिस्थिति में वही सलाह ठीक थी। अगर हम राजकारण में न पड़ते तो आज जो अनुभव हमें मिला है वह कभी न मिलता। किशोरलाल ने मुझे कअी अुदाहरण सुनाये कि हम किस तरह अिस छोटे-से संघ में पदों और अधिकारों के लिअे लड़े। अिसका यह अर्थ है कि हमारे में अहिंसा की शक्ति नहीं है, काफी मात्रा में सत्य भी नहीं है। अगर हम अपने राजनैतिक व्यवहार में सत्य और अहिंसा की शक्ति प्रकट करते तो अितिहास कुछ दूसरा ही हो जाता।

हमारे अन्दर आगे बढ़ने की, नेता बनने की, महत्त्वाकांक्षा रही। लेकिन नेता बनने का असली अर्थ हम नहीं समझ सके। 'मैं सबसे बड़ा नेता बन जाअूं' अिसका अर्थ यह है कि 'मैं सबसे बड़ा सेवक बन जाअूं'। सेवा भी अुसकी करो जिसे सेवा की जरूरत है। जिसे सेवा की जरूरत नहीं है अुसकी सेवा करना ढोंग है। वह तो दंभ है।

मेरी अैसी ही सेवा की जाती है। यह भी मेरे असत्य का ही अेक अुदाहरण है। मैं अपने असत्य कहां तक गिनाअूं। अुनकी तो लंबी फेहरिस्त हो जायगी। मुझे पैर दबवाने की जरूरत नहीं होती। दूसरों को खुश करने के लिअे नाहक पैर दबवाता हूं। मेरा पतन होता है। वह (पैर दबानेवाला) समझता है कि अुसे पुण्य मिलता है। लेकिन वह भी पुण्य नहीं ले जाता। थोड़ा-सा भोग ले जाता है। यह सेवा नहीं है।

अिसी तरह हम अधिकार और सत्ता के द्वारा सेवा का दंभ करते हैं। लोगों को सिर्फ दिखाना चाहते हैं कि हम सेवा में लगे हैं। अिसलिअे हमारा धर्म तो यह है कि हम राज्य-प्रकरण को भूल जायें। तब तक भूल जायें जब तक देश के सभी दल हमसे आ कर यह न कहें कि 'तुम आओ, तुम्हारी जरूरत है। तुम्हारे बगैर काम नहीं चलता।' तब तक हम बैठे बैठे सेवा करते रहें। नालायक और निठल्ले बन कर बैठे रहें अैसा नहीं। आखिर जो भिन्न भिन्न संस्थाओं के अधिकारपदों पर चुने जाते हैं, अैसे आदमी अेक लाख भी तो नहीं होंगे। हम लाख में से अेक न बनें। हम तो तीस कोटि में से अेक बनें। हम तीस कोटि में से अेक लाख में क्यों जायें? अेक लाख के लिअे हम शून्य हो जायें। तीस कोटि में घुल-मिल जाना बहुत बड़ी बात है।

वल्लभभाअी का अैसा खयाल है कि शायद संघ के अधिकांश सदस्य राज्य-प्रकरण में हैं। अगर वे सब छोड़ दें तो संघ में कितने आदमी रह जाते हैं? चार-छह आदमी शायद रह जायें। मैं नहीं जानता कि कितने सदस्य राजकारण में पड़े हैं। मैंने घोत्रे से फेहरिस्त मांगी है। लेकिन अुससे मेरी सलाह में कोअी अन्तर नहीं पड़ता। मैं यह कब कहता हूं कि वे सब राज्य-प्रकरण से भाग जायें। अगर वे वहां पैसे और सत्ता के मोह से या प्रतिष्ठा के लिअे रहते हों तो अुन्हें निकल जाना चाहिअे। अगर सेवा-भाव से रहते हों तो रहें। लेकिन अिस की परीक्षा कौन करेगा? मैं नहीं कर सकता, न किशोरलाल ही कर सकता है। वह कोअी भगवान थोड़े ही है? किसीके दिल का हाल वह क्या जाने? मैं राजकारण छोड़ने की बात नहीं कह रहा हूं। मैं तो यह कह रहा हूं कि जो राज-कारण में हैं वे वहां अपनी हिम्मत पर रहें। संघ के आश्रय की अपेक्षा न रखें। अिसलिअे जो राजकारण में हैं, या जाना चाहते

ह, वे संघ छोड़ दें। अगर सभी असे हैं तो संघ अपने आप खतम हो जाता है। दो चार ही बच जाते हैं तो भी संघ कायम रखने की जरूरत नहीं है।

सच्चा संगठन

हर अेक सदस्य जो कुछ करे अपनी जवाबदारी पर करे। मैं तो निश्चयपूर्वक कहता हूं कि आपको गांधी-सेवा संघ को समेट ही लेना चाहिअे। असके बाह्य रूप का लोप ही कर देना चाहिअ। हम चाहे कांग्रेस में रहें, या रचनात्मक कार्य में रहें, अपनी जिम्मेवारी पर रहें। खामख्वाह क्यों गांधी को, या गांधीवाद जैसी कोअी चीज हो तो असको, बदनाम करें? संघ के रहने से यह व्यर्थ का अभिमान पैदा होता है कि हम दूसरों से अच्छे हैं। दर असल हम दूसरों से किसी बात में अच्छे नहीं हैं। जैसे दूसरे हैं वैसे ही हम हैं—कुछ कम या अधिक मात्रा में। अिस तरह की तुलना करना हमारे लिअे लज्जा की बात है। हमको तो दूसरों में घुल-मिल कर अनकी सेवा करना है। दूध में मिश्री जिस तरह मिल जाती है असी तरह हम सबमें घुल जावें। हम जो कुछ हैं अपने दिल में रहे, अपने सिद्धान्तों पर नम्रता से दृढ़ रहे और शून्य हो कर सेवा करते रहे।

अगर आपमें हिम्मत है तो आप गांधी सेवा संघ को समेट लें; अथवा अगर अतनी हिम्मत नहीं है, तो राज्य-प्रकरण में से हट जायें। यानी किसी भी कॉंग्रेस कमेटी में गांधी सेवा संघ का कोअी सदस्य न रहे। संघ के रूप को समेटने पर भी हमारा आन्तरिक संबंध तो कायम ही रहेगा। हम अेक–दूसरे के साथ अगर सिद्धान्तों के और प्रेम के बन्धन से बंधे हैं तो हमारा अेक अव्यक्त संगठन रहेगा। वही सच्चा संगठन होगा। अिसका मतलब यह नहीं कि हम कोअी गुप्त संगठन करने जा रहे हैं। हमें किसी स्थूल संगठन की जरूरत ही नहीं है। जो चीज हमने गांधी सेवा संघ से पायी है असे हमसे कौन छीन सकता है? हमने जो कुछ प्राप्त कर लिया है असे खोने का कोअी डर नहीं। हृदय-तंत्र के साथ मिली हुअी चीज कोअी नहीं छीन सकता। हम अपने सिद्धान्तों का त्याग कभी नहीं करेंगे। हम तो अपने को असत्य के बोझ से मुक्त कर रहे हैं। जब कि अितनी कटुता और अितना जहर फैल रहा है तो खामोशी के सिवा दूसरा कोअी अपाय नहीं।

मैं यह नहीं कहता कि हमने आज तक जो किया वह गलत था। वह तो आवश्यक ही था। असमें हमें नयी शिक्षा और नया अनुभव मिला। अब हम अेक नये युग का आरंभ कर रहे हैं। जो लोग राजकारण में सत्य और अहिंसा को निबाह सकते हैं वे वहाँ रहें, लेकिन संघ को छोड़ दें। संघ में राज्य-प्रकरण नहीं रहेगा। राज्य-प्रकरण के बाद रचनात्मक काम ही रह जाता है। लेकिन चरखा संघ आदि संस्थायें जो काम कर रही हैं असके बाद क्या बच जाता है? यह दूसरा सवाल है। असको तो बाद में लूंगा। आपको समझाते समझाते मेरा दिमाग साफ हो गया है। अिसलिअे अेक बात मैंने निश्चितरूप में आपके सामने रख दी है कि आप संघ की पूर्णाहुति कर दें। कम-से-कम असमें से राजकारण बिलकुल निकाल दें। तब फिर संघ का क्या रूप बन जाता है यह सवाल बाद में आयेगा।

अपनी हिम्मत पर राजकारण करें

आजूजी—जो राज्य-प्रकरण में सेवा-भाव से रहे हैं क्या वे भी हट जायें? अगर अनकी संख्या अधिक हो तो भी क्या संघ को समेट लें?

झंडा-वन्दन

[श्री सियारामशरण गुप्त]

अेक हमारा अूँचा झंडा, अेक हमारा देश,
अिस झंडे के नीचे निश्चित अेक अमिट अुद्देश ।
हमारा अेक अमिट अुद्देश ।

देखा जागृति के प्रभात में अेक स्वतन्त्र प्रकाश;
फैला है सब ओर अेक-सा अेक अतुल अुल्लास ।
कोटि कोटि कंठों में कूजित अेक विजय-विश्वास,
मुक्त पवन में अुड़ अुठने का अेक अमर अभिलाष ।
सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं वैर-विद्वेष,
अेक हमारा अूँचा झंडा, अेक हमारा देश ।

कितने वीरों ने कर करके प्राणों का बलिदान,
मरते-मरते भी गाया है अिस झंडे का गान ।
रक्खेंगे अूँचे अुठ हम भी अक्षय अिसकी आन,
चक्खेंगे अिसकी छाया में रस-विष अेक समान ।
अेक हमारी सुख-सुविधा है, अेक हमारा क्लेश,
अेक हमारा अूँचा झंडा, अेक हमारा देश ।

मातृभूमि की मानवता का जाग्रत जयजयकार;
फहर अुठे अूँचे से अूँचा यह अविरोध, अुदार ।
साहस, अभय और पौरुष का यह सजीव संचार;
लहर अुठे जन-जन के मन में सत्य अहिंसा प्यार ।
अगनित धाराओं का संगम, मिलन-तीर्थ-सन्देश;
अेक हमारा अूँचा झंडा, अेक हमारा देश ।
सुनें सब, अेक हमारा देश ।

श्रीकृष्ण छा. लि., वर्धा

गांधीजी—वे रहें। लेकिन संघ के सदस्यों के रूप में नहीं। अगर वे स्वतंत्ररूप से नहीं रह सकते तो वे निकम्मे हैं। सरदार और राजेन्द्रबाबू राजकारण से हटने लगें तो मैं अुनको रोकूंगा। लेकिन वे संघ के सदस्य न रहें। मैं जानता हूं कि वे अपने बल पर सेवा-भाव से राजकारण में रह सकते हैं। अब अगर कोअी अैसे लोगों का वर्ग रह जाता है जो कि अेक-दूसरे की गरमी चाहते है तो अुनका विचार वे करेंगे। संघ नहीं कर सकता। अहिंसा अैसी शक्ति है कि अुसे सिवा अीश्वर के कोअी मदद नहीं चाहिअे। अगर वे अैसे नहीं हैं तो वे पंगु हैं। जो राज्य-प्रकरण में पडे हैं अुन्हें पंगु नहीं होना चाहिअे। क्योंकि वहां तो अहिंसा की कडी परीक्षा होती है। यहां अितनी कडी नहीं होती। राज्य-प्रकरण में जानेवालों को किसी के आश्रय की जरूरत नहीं होनी चाहिअे। अेक अीश्वर का आश्रय बस है।

अब अगर अिस प्रकार अपनी हिम्मत पर सेवा-भाव से राज-कारण में पडनेवाले सदस्यों की संख्या बहुत बडी हो, तो भी क्या हर्ज है? संघ मे चार-छह ही आदमी रह जायें तो भी मैं नाचूंगा। अगर वे सच्चे होंगे तो छह के छह करोड हो जायेंगे। अुनमें अितनी शक्ति होगी। मेरा अितना ही कहना है कि जो सेवाभाव से राज्य-प्रकरण मे पडे हैं वे वहीं रहे, मगर संघ में न रहें।

समयानुकूल सलाह

मैं दुबारा समझा दूं। मैं यह नहीं कहता कि जो राज-प्रकरण मे पडे हैं वे वहां से निकल जायें। मैं तो अितना ही कहता हूं कि वे संघ में न रहें। अुनके निकल जाने से संघ की शक्ति कम नहीं होगी बल्कि बढेगी। जो लोग रह जायेंगे वे अगर काम के नही होंगे तो संघ मिट जायगा। हमारे पास कोअी विशेष चीज नहीं है। हममें दूसरे लोगों की अपेक्षा कोअी विशेष गुण नहीं है। हमारी जो विशेषता हो सकती है वह अभी आयी नहीं है। हम अगर जबरदस्ती अपने आपको दूसरों से अूंचा समझेंगे तो संघ को तो मरना ही है; और बदनाम हो कर मरना है। अगर हममें कोअी स्वतंत्र शक्ति नहीं है तो संघ की हँसी होगी। अगर हममे अहिंसा की स्वतन्त्र शक्ति हो तो संघ के बिना भी हम सेवा कर सकेंगे। चाहे मैं जंगल में अकेला जा कर रहूं या श्मशान में जा कर रहूं, तो अुससे यह शक्ति नहीं आनेवाली है। वहाँ भूतों से नहीं डरूंगा, लेकिन सेवा की शक्ति कैसे आयेगी? वह तो रचनात्मक मूककार्य से ही आ सकती है।

जो राज्यक्षेत्र में पडे है अुनमें भी सत्य और अहिंसा की स्वतंत्र शक्ति होनी चाहिअे; क्योंकि यही अुनका 'क्रीड' है। मैं अिसका साक्षी हूं कि अिस देश में कॉंग्रेस सबसे बडी शक्ति है। क्या कॉंग्रेस राजकारण के लिअे काफी नहीं है? तब हम क्यों दूसरी संस्था कायम करें? हमारी संस्था के बारे में लोग अैसा समझने लगे हैं कि वह भी कॉंग्रेस का ही काम करती हुअी अपनी अलग हस्ती रखना चाहती है। अिसका तो यह अर्थ होता है कि वह कॉंग्रेस की बराबरी करना चाहती है। अिसलिअे मैंने जो सलाह दी है, आज के वायुमंडल में वही सही है। हुदली में मैंने जो सलाह दी थी वह अुस वक्त के वायुमंडल में अुचित थी। मुझमें यह अधिकता है कि जिस वक्त मेरा हृदय जो बताता है वही कहता हूं। आज मेरा हृदय जो कह रहा है वही प्रकट कर रहा हूं। मैं नहीं जानता अेक महीने के बाद मैं क्या कहूंगा। मैं अैसा आदमी हूं जो अिर्द-गिर्द की बातों का अच्छा असर ले लेता है और बुरा असर नहीं लेता। मेरी साधना ही अैसी रही है कि अच्छी शक्तियाँ और अच्छे परिणाम मुझमें आ जाते हैं। मैं अुनसे अपृस्ष्ट नहीं रह सकता।

आपके सामने बैठ कर विचार करते करते मेरा हृदय और बुद्धि खुल गयी है। मैं विचार करके नहीं आया था लेकिन फिर भी स्पष्ट सलाह दे दी। जिस किसी को कुछ शंका हो

या मुझसे यह कहना हो कि 'तुम अितनी चीज नहीं जानते थे अिसलिअे अैसी सलाह दे रहे हो', तो वे कह सकते हैं। जिन्हें स्वतंत्ररूप से अपनी राय देनी हो वे भी अपनी राय प्रकट कर सकते हैं। (८–० से ८–४५ तक)

गांधी सेवा संघ, छठा सम्मेलन
मालिकान्दा, २०-२-४०

गांधीजी से परिप्रश्न

देशी रियासतों के विषय में नीति

रामरतन शर्मा–राजकारण के निसबत खालसा के लिअे जो नीति बतलायी गयी है, क्या वही देशी राज्यों के लिअे भी है ?

गांधीजी–हां, वही।

संगठित अहिंसा की प्रतिक्रिया

स्वामी सत्यानन्दजी–हमारे और आपमें समान धर्म है। अिसलिअे आपके विचारों की प्रतिक्रिया हमारे अूपर होती है। वह भविष्य में भी होती रहेगी। संघ के न रहते हुअे भी स्वतंत्ररूप से हमारी बुद्धि और हमारा हृदय आपके विचारों का समर्थन करते रहेंगे। जब आप लडेंगे तब हम भी लडेंगे। अिसलिअे यह लांछन कि हमारा अेक दल है, संघ के न रहते हुअे भी रहेगा और 'ध्वंस हो' के नारे लगते रहेंगे। अिसलिअे संघ बंद कर देने से फायदा तो कोअी नहीं होगा; अुलटे यह नुकसान होगा कि संघ की शक्ति की जो प्रतिक्रिया सामाजिक जीवन पर होती है वह न होगी।

गांधीजी–मेरा तो अैसा विश्वास है कि अगर दर असल हमारे में शक्ति भरी है तो वह शक्ति कम न होगी। समाज के जीवन पर हमारी कृतियों का असर भी बराबर पडेगा। अब तक हमने संघ बना कर जिस तरह से प्रयोग किया अुससे हमें सफलता नहीं मिलेगी। अहिंसा किस तरह काम करती है अिसका पूरा अनुभव अिसमें से नहीं मिलता। अहिंसा अेक स्वयंभू शक्ति है। संघ की अुपाधि यदि अुसकी शक्ति को न रोके तो वह ज्यादा काम करती है। मैंने जो यह लिखा है कि–"यदि हिन्दुस्तान मे अहिंसा का अेक भी संपूर्ण प्रतिनिधि पैदा हो जाय तो भी हमारा काम सिद्ध होगा"— वह पूर्ण वाक्य है। मेरा मतलब यह नहीं है कि वह अकेला सब कुछ कर लेगा। अकेला तो अीश्वर भी नहीं कर सकता। अुसे भी अनेक रूप लेने पड़ते हैं। मेरा मतलब यह है कि यह अकेला प्रतिनिधि सबको अपनी ओर खींच लेगा। संघ की शक्ति आपको कमजोर कर देगी। अुसमें आपका जो अपनापन है वह प्रकट नहीं होने पाता। आप केवल संघ की शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, अपनी आत्मा की शक्ति का नहीं। संघ में जो शक्ति है वह

भी आपकी ही शक्तियों का समुदाय है। अहिंसा के विकास के लिअे शक्तियों के समुदाय के अैसे संगठन की जरूरत नहीं रह जाती। मैं बाह्य साधनों की आवश्यकता महसूस नहीं करता। जो अपने आपको गांधीवादी कहलाते हैं, अुनमें अगर रोष है, बुजदिली है, तो वे किसी संघ को सुशोभित नहीं कर सकते। अैसा गांधीवाद नहीं रहेगा। मैंने सारे हिन्दुस्तान को अपना क्षेत्र बनाया है, या यों कहिये कि, अीश्वर ने यह क्षेत्र मुझे दिया है। अिसका अेक विशेष कारण है। मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान के घर घर में अहिंसा है। यूरोप में तीन सौ आदमियों की अैसी जमात नहीं मिलेगी जिनसे मैं अैसी बातें कह सकूं, अैसी आपसे कह रहा हूं। यही कारण है कि अीश्वर ने मुझे अपने प्रयोगों के लिअे यह क्षेत्र दिया। मैं क्षेत्र क्या पसन्द कर सकता हूं ? मेरी क्या शक्ति है ? वह तो अुसीने दिया है। अिसलिअे मेरी निश्चित राय है कि अहिंसा के सिवा दूसरी सारी बातें आपको फँसानेवाली हैं। आपके सवाल का मेरा अुत्तर अितना ही है कि संघ के न रहते हुअे भी हमारी स्वतंत्र अहिंसक शक्ति की प्रतिक्रिया समाज के जीवन पर होती ही रहेगी।

हमारी कसौटी

गोपाळराव काळे–मेरा अेक सवाल है। हम राज्य-प्रकरण में सेवाभाव से काम करते हैं या नहीं, अिसकी कसौटी क्या हो ?—दूसरों की की हुअी टीका-टिप्पणी या हमारे अपने दिल की गवाही ? दूसरे अगर यही कहते रहें कि यह महत्त्वाकांक्षी है, तो अुसका विचार करे या नहीं ?

गांधीजी–अिसकी कसौटी खुद का मन ही है। अगर हमारा मन साफ है तो दूसरों की टीका का विचार करने की जरूरत नहीं।

काँग्रेस और संघ

नरहरिभाअी–कांग्रेस का 'क्रीड' भी तो 'पीसफुल और लेजिटिमेट' ही है। तो फिर आप राज-कारण में पड़नेवालों को संघ छोड़ने को क्यों कहते हैं ?

गांधीजी–अगर अैसा है, तो हमने अलग संस्था ही क्यों बनायी ? जमनालालजी की अैसी कल्पना थी कि जो सत्य और अहिंसा को पॉलिसी मानते हैं वे संघ में नहीं आ सकते। लेकिन हम कांग्रेस के 'क्रीड' को अपना भी धर्म मानते हैं तो हमारे लिअे कांग्रेस ही पर्याप्त है। संघ की क्या जरूरत है ?

आध्यात्मिक बल कैसे मिलेगा ?

प्यारेलालजी [हापुड]–जो कांग्रेस में आध्यात्मिक दृष्टि से जाते हैं और संघ में आध्यात्मिक बल तथा सत्संग के लिअे आते हैं, वे क्या करें ? अुनको आध्यात्मिक बल कहाँ से मिलेगा ?

गांधीजी–कांग्रेस में ही रहने से। आध्यात्मिकता अैसी कोअी चीज नहीं है कि गांधी की दूकान पर गये और अुसकी पुड़िया ले कर चले। आप संघ को सत्संग मानते हैं, लेकिन वह सत्संग नहीं रह जाता। हममें भावुकता आ जाती है और अेक तरह का पवित्रता का अभिमान भी आ जाता है। मैं विनयपूर्वक कहना चाहता हूं कि संघ में रह कर हमारी शक्ति बढ़ती है, अैसा नहीं है। शक्ति कांग्रेस में रह कर बढ़ेगी। मैं दृढ़ विश्वास से कहता हूं कि यदि आप संघ और कांग्रेस का मुकाबला करके देखें, तो आप पायेंगे कि संघ से आपको बल नहीं मिलेगा। वह तो आपका आश्रय-स्थान है। वहाँ से आपको गरमी मिलेगी; लेकिन वह आपकी शक्ति आजमाने

का क्षेत्र नहीं हो सकता। वह क्षेत्र तो कांग्रेस है। कांग्रेस अेक तूफानी समुद्र है। वहाँ जा कर अगर आप अपने रोषादि रोक सकते हैं, तो मान लीजिये कि आपका जहाज चल रहा है। संघ तो बंदरगाह है। यहां शक्ति के प्रयोग का कोअी अवसर ही नहीं। मेरी अपनी शक्ति तो कांग्रेस में ही बढी है। संघ से मैंने कोअी शक्ति नहीं पायी।

क्या गांधीवाद में माननेवाले राजनीति में रहें?

लाला जगन्नाथ–जो लोग संघ में नहीं हैं, लेकिन गांधीवाद में मानते हैं वे भी राजनीति में रहें या नहीं?

गांधीजी–वे अगर वहां कोअी असर नहीं कर सकते, या लोग अुनका वहां रहना पसन्द न करते हों, तो वे निकल जायें। यह 'गांधीवाद' शब्द राज्य-प्रकरण में से ही निकला है। अगर हम अुसे सुशोभित कर सकते हैं तो राज्य-प्रकरण में रहे, नहीं तो हट जायें।

लाला जगन्नाथजी–अिसी शर्त पर गांधी सेवा संघ के सदस्य भी राजकारण में रहें तो क्या हर्ज है?

गांधीजी–गांधीवादी व्यक्ति है, लेकिन संघ अेक समुदाय है। राज्यप्रकरण में पड़नेवाले व्यक्ति किसी समुदाय में रहते हैं तो नाहक जहर पैदा होता है। राज्य-प्रकरण के लिअे तो यह संघ बना नहीं है। जो अुसमें पड़ते हैं अुन्हें संघ की जरूरत भी नहीं है; न अुन्हें संघ से कोअी बल मिलता है। अगर अैसी कोअी दूसरी चीज हो, जिसके लिअे आप संघ चाहते हैं, तो बतलावें। अगर आप यह कहें कि संघ से आपको सहायता और आधार मिलता है अिसलिअे वह चाहिअे, तब तो मैं कहूंगा कि संघ को तोड़ ही देना चाहिअे।

शान्ति-सेना की बात

प्रभुदास गांधी–डेलाग में आपने जो शान्ति-सेना की बात कही थी अुससे आज की आपकी सलाह का कोअी मेल बैठ सकता है? अुस वक्त तो आपने यह कहा था कि गुंडाशाही का संगठितरूप से प्रतिकार करना हमारा विशेष कर्तव्य है। आज आप संगठन को तोड़ देने की सलाह दे रहे हैं।

गणेशशंकर विद्यार्थी की परंपरा

गांधीजी–शान्ति-सेना के बारे में मैंने कहा भी और लिखा भी है, यह बात सही है। कुछ लोगों ने अुस दिशा में प्रयत्न भी किया। हकीम अलवअी ने अैसी अेक शान्ति-सेना बनायी थी। मैंने अुन्हें धन्यवाद भी दिये थे। लेकिन अब अुसका नामोनिशान तक नहीं रहा। मैं देखता हूं कि वह चीज भी नहीं चल सकती। आप शान्ति-सेना बनायेंगे। आपकी प्रतिज्ञा पर कअी आदमी झूठ-मूठ दस्तखत कर देंगे और अुसका पालन नहीं करेंगे। आबोहवा में जब अितना मैल भरा हुआ है, तो अच्छी चीज भी गंदी हो जाने का डर है। अिसलिअे अुससे अस्पृष्ट (बचकर) ही रहना चाहिअे। मेरे पास अगर अेक लोटा भर गंगाजल हो तो अुसे अेक तलाब भर गंदे जल में मिला देने से वह गंदा जल शुद्ध हो जायगा, अैसा समझने की मूर्खता मैं नहीं करूंगा। आप अेक अेक आदमी अपना अपना अलग शांतिदल बना सकते हैं। लेकिन अैसे आदमी भी कहाँ हैं? शिकारपूर और सक्कर में क्या काँग्रेसवाले नहीं थे? फिर क्यों अेक भी आदमी अैसा नहीं निकला जो बिना रोष के दंगा शांत करने की कोशिश में मरा हो। कानपुर

में गणेशशंकर के पुजारी तो काफी भरे हैं; लेकिन अुसका संप्रदाय क्यों लुप्त हो गया ? तो भी मैं यह नहीं मानता कि गणेशशंकर की आत्माहुति व्यर्थ गयी। अुसकी आत्मा मेरे दिल पर काम करती रहती है। मुझे जब अुसकी याद आती है तो अुसकी अीर्ष्या होती है। जिस देश में दूसरा गणेशशंकर नहीं हुआ। अुसकी परम्परा समाप्त हो गयी; लेकिन वह अितिहास में अमर हो गया। अुसकी अहिंसा सिद्व अहिंसा थी। अुसीकी तरह कुल्हाडी के प्रहार सहते हुअे मैं शांतिपूर्वक मरूं तो मेरी अहिंसा भी सिद्ध होगी। मेरा भी यह सुख-स्वप्न है कि मैं अुसीकी तरह मरूं—अेक तरफ से अेक मनुष्य मुझपर कुल्हाडी चला रहा हो, दूसरा दूसरी तरफ से बरछी मार रहा हो, तीसरा लाठी मार रहा हो और चौथा लात और घूंसे बरसाता जाता हो, अैसी अवस्था में भी मैं खुद शान्त रहूं और लोगों से शान्त रहने को कहूं और खुद हंसता हुआ मरूं—अैसा भाग्य मैं चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि मुझे अैसा मौका मिले और आपको भी मिले।

डर कर हटना अहिंसा नहीं है

मूलचन्दजी अग्रवाल—जब कि हमारा अपना दिल साफ है तो केवल दूसरों की टीका-टिप्पणी से डर कर या अुनके विरोध के कारण हम मंच को क्यों बंद करें ? यह तो अहिंसा नहीं है।

गांधीजी—मैंने यह कब कहा कि हम टीका से डर कर बन्द करें। मैंने तो यह कहा कि शायद हम अुस टीका के पात्र भी रहे हैं। अिसके मेरे पास काफी सबूत पडे हैं। अगर हमारे अन्दर अहिंसक पुरुषार्थ के लक्षण दर असल होते, तो आज हम जैसे पडे हैं वैसे नहीं रहते और न आगे रहेंगे। हमारे में से अेक दूसरी ही शक्ति पैदा होगी। तब आपको न मेरी सलाह की दरकार रहेगी, न अिस संघ की। जो अपने हृदय को रोक कर मेरी सलाह पर चलते हैं या मेरे दबाव से काम करते हैं, वे सच्चे गांधीवादी नहीं हैं। मैंने तो अपने लडकों से भी सोलह वर्ष के बाद अैसी अपेक्षा नहीं रक्खी। वे सोलह वर्ष के होते ही अुनको अपना मित्र माना। अुनसे कह दिया कि वे जिसे अपना स्वधर्म समझते हैं अुसका पालन करें। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'। अगर वे मेरी बात मानें तब तो अुसे अुन्हें अपनाना होगा। अिसलिअे नहीं कि अुनका बाप कहता है; बल्कि अिसलिअे कि वही बात अुनकी बुद्धि में जम गयी है। गांधी सेवा संघ की अैसी बात नहीं है। आपको तो अपनी स्वतंत्र बुद्धि से विचार करना चाहिअे। अगर आपका दिल कहे कि संघ रहना चाहिअे तो पीछे अुसका यही मतलब है कि आप बडी कडी परीक्षा देना चाहते हैं।

जमनालालजी की मूल कल्पना

रामरतन शर्मा—संघ के बन्द हो जाने से रचनात्मक काम करनेवाले मुझ जैसे अपूर्ण लोगों को जो प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता है वह न मिलेगा। यह अेक बडी हानि होगी।

गांधीजी—मैंने तो कह दिया कि अगर आप अिसी कारण से संघ को समेट लेना पसंद नहीं करते, तो अुसमें से राज्य-प्रकरण को हटा दें, यह मेरी दूसरी सूचना है। संघ को बनाने में जमनालालजी की अैसी ही कल्पना थी कि जो लीडर नहीं हैं, प्लाटफार्म पर नहीं आते, वितंडा नहीं करना चाहते, अुनकी सुविधा और मार्गदर्शन के लिअे अेक संस्था हो। आप कॉंग्रेस के चवन्नी के मेंबर रहें; लेकिन अुसमें कोअी ओहदा न लें। ओहदा न ले कर भी अगर आप ठीक ठीक सेवा करेंगे तो आपकी नीति का असर पडेगा। मैंने कॉंग्रेस में कोअी ओहदा नहीं लिया, तो भी ओहदेदार बनाया गया। मतलब यह कि रचनात्मक काम ही गांधी सेवा संघ का प्रधान काम हो। अब अुस कार्य

का क्या स्वरूप हो, चरखा संघ वगैरा जो काम कर रहे हैं अुनमें और संघ के कार्य में क्या फर्क हो, यह तीसरा सवाल है। जो राज्य-प्रकरण में पड़े हैं अुनके निकल जाने के बाद जो पाँच-दस आदमी संघ में रह जायेंगे, अुनके सोचने की यह बात है। 'गांधी सेवा संघ क्यों रहना चाहिअे ?' —अिसके लिअे जो दलीलें दी गयी हैं अुनका अुत्तर मैं दे चुका हूं। अब अुन दलीलों को दोहराने की जरूरत नहीं है।

क्या संघ के मिटाने से राग-द्वेष मिट सकेगा ?

मूलचन्दजी अग्रवाल—आप संघ को तो मिटा देंगे। संघ को मिटाने का कारण हमारा राग-द्वेष है। क्या संघ के मिटने से हमारा राग-द्वेष भी मिट जायगा ?

गांधीजी—हमारा राग-द्वेष भले ही न मिटे। लेकिन अेक बड़ा भारी असत्य तो मिट जायगा। आज तो हमारे राग-द्वेष के लिअे संघ भी जवाबदार है। वह झमेला तो नहीं रहेगा। यह समझने की बात है। लोग समझते हैं कि गांधी सेवा संघ सत्य और अहिंसा का संगठन करता है; किशोरलाल जैसे आदमी के हाथ में अुसकी बागडोर है। लेकिन अगर हमारे आचरण में वह बात नहीं है तो अेक असत्य फैलाने में संघ कारणीभूत होता है। अगर हमारे अन्दर सचमुच सत्य और अहिंसा है, तो संघ के न रहते भी हम अपने कुटुंब में, अपने पड़ोसियों से, या कॉंग्रेस में, जो व्यवहार करेंगे अुससे लोगों के आदर के पात्र होंगे। अिसके लिअे संघ की जरूरत नहीं है। यह सच है कि हम सब अपूर्ण ही पैदा हुअे हैं। हमें प्रेरणा और मार्गदर्शन की जरूरत है। लेकिन हमें अिस संघ से अैसी प्रेरणा मिलती है या नहीं, अिसमें जबरदस्त सन्देह है। यह मैं टीका करने की बुद्धि से नहीं कहता। जब हम देखते हैं कि अितना जहर फैल रहा है तो हमें समझ लेना चाहिअे कि हमारा कोअी-न-कोअी दोष अवश्य है, और अपना आत्मनिरीक्षण करना चाहिअे। यह समझने लायक बात है। कम-से-कम हमें अपने कार्य का रूपान्तर कर लेना चाहिअे। मेरी राय में तो मिट जाना ही अच्छा है।

क्या संघ के सदस्यों का पतन हुआ है ?

हरिभाअू अुपाध्याय—क्या अध्यक्ष के पास अैसे कोअी सबूत हैं, जिनसे हम यह कह सकते हैं कि राजनैतिक कामों में भाग लेने के कारण हमारे सदस्य जैसे पहले थे, अुसकी अपेक्षा ज्यादा गिर गये हैं; और अिसलिअे हम संघ को बंद करने की जरूरत महसूस करते हैं ?

गांधीजी—यह सवाल तो किशोरलालभाअी के लिअे है। मुझे अितनी जानकारी नहीं है और अनुभव भी नहीं है। मेरी अैसी राय बनी है कि संघ के राजनीति में पड़ने से कुछ राग-द्वेष बढ़ा है। संघ के सदस्यों का पतन हुआ है या नहीं, यह मैं कैसे कह सकता हूं ? मैं किसीको नहीं जानता। किशोरलाल जानते हैं, आप अपना प्रश्न अुनके पास भेज दें। मैं तो मुल्क की आबोहवा देख कर यह सलाह दे रहा हूं कि आप संघ को बन्द कर दें। क्योंकि जब अितना जहर पैदा होता है तो अुसमें हमारा कुछ-न-कुछ दोष अवश्य है। अगर किशोरलाल की राय अिससे अुलटी हो तो वे संघ चलाते रहें। मैं रुकावट डालनेवाला कौन होता हूं ? आपको अुन्हीं के मार्गदर्शन में तो चलना है ? मैंने जितनी बातें सुनी हैं अुनपर से मेरी यह राय बन गयी है कि हमारी जवाबदारी काफी है।

रचनात्मक काम के लिअे संघ रहे

बालूभाओ–हम राज्य-प्रकरण से हट जावें, लेकिन रचनात्मक काम के लिअे संघ रहे तो क्या हर्ज है ? फिर संघ को तोड़ने की क्या जरूरत है ?

गांधीजी–तब तो यह देखना होगा कि अैसे कितने रह जाते हैं। रचनात्मक काम में दंश (स्टिंग) नहीं रहेगा। आज तो वातावरण असत्य और हिंसा से भरा हुआ है। अिसलिअे हम राजकारण में तो रह नहीं सकते। रचनात्मक काम के लिअे संघ कौन-से रूप में रक्खा जाय, यह सवाल तो बाद में आता है।

संघ से आश्वासन

ज्योतिप्रकाशजी–अगर हम गांधी सेवा संघ में बालकों की वृत्ति से रहें, बालक जैसे आश्वासन लेता है अुस तरह हम भी यहां से आश्वासन लें, तो क्या हानि है ? हम अपने आश्वासन के लिअे संघ को क्यों न रक्खें ? हम ठीक रास्ते पर चल रहे हैं या नहीं, अिसका अेक-दूसरे से विचार-विनिमय करने पर निर्णय हो सकेगा। क्या अिसके लिअे संघ की जरूरत नहीं है ?

गांधीजी–अिसका अुत्तर दिया जा चुका है। वर्तमान परिस्थिति में संघ से अैसा आश्वासन नहीं मिल सकता। अिस प्रकार की कल्पना हमें दुर्बल बनाती है।

साधकों का संगठन

वैद्यनाथ चौधरी–संघ अुन साधकों के लिअे है जो अेक रास्ते पर चलना चाहते हैं। हम कोअी सिद्ध नहीं हैं। अिसलिअे हममें त्रुटियां रहेंगी; गलतियां भी होंगी। लेकिन अुन त्रुटियों को दूर करने में और गलतियों को सुधारने में हमें अेक-दूसरे से सहायता और समर्थन मिलता है। संघ का यह बड़ा भारी अुपयोग है। अगर यह साबित हो गया हो कि हम अुस रास्ते पर चलने के लायक हैं ही नहीं तब तो संघ को बन्द कर दिया जाय; लेकिन हम अपूर्ण हैं और गलतियाँ करते हैं अिसलिअे अुसे बन्द करना अुचित नहीं होगा। हुदली के निर्णय के बारे में जो यह कहा गया है कि राजनैतिक काम में हम अपने सिद्धान्तों का पालन नहीं कर सके, अगर दर असल वैसा ही अनुभव हो तो यहां वैसा स्पष्ट निर्णय किया जाय। अिसका यही अर्थ होगा कि राजनैतिक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा निबाहने की शक्ति हममें नहीं है।

राजकारण और राजकारण में भेद

गोकुलभाओ–अखबारवाले और अन्य लोगों के दिल में यह भावना है कि ये गांधीवाले अैसा करते हैं और वैसा करते हैं। किसी किसी जगह गांधीजी के खिलाफ नारे भी सुने जाते हैं। अखबारवाले भी खिलाफ लिखते हैं। बापूजी कहते हैं कि हमें अिन नारों से नहीं डरना चाहिअे। मैं भी थोड़ा राजकारण करता हूं। अिसलिअे अिस संबंध में कुछ कहना चाहता हूं। मुझे माफ कीजिये, मुझे तो अिन नारों से घबड़ा कर संघ बंद करने में थोड़ी बुजदिली मालूम होती है।

आप विचार करें कि राजकारण से हट जाने का क्या मतलब होता है ? हमारे यहाँ कांग्रेस में राजकारण का वह अर्थ नहीं है, जो पाश्चात्य देशों में किया जाता है। यूरोप में राजकारण का अर्थ डिप्लोमसी (कूटनीति) है। कांग्रेस का राजकारण कूटनीति का नहीं, सेवा का है। अुसके कार्यक्रम में अैसी चीजें हैं जिन्हें लोग समाजकारण, नीतिकारण, आदि कहते हैं। राजकारणी लोग तो अुसका मजाक अुड़ाते हैं; कहते है, 'क्या यह राजकारण है ?' अैसे राजकारण से भी आप हमें हट जाने को कहते हैं, तो हम बडे खतरे का काम कर रहे हैं। मेरी नम्र राय में अिसमें गलती हो रही है। अैसे राजकारण से हट जाना तो मानो सेवा से ही हट जाना है।

लोग तो आक्षेप करते ही रहेंगे। आक्षेपकों का अेक वर्ग है। अुनके आक्षेपों का कोअी ठिकाना नहीं। पार साल हमने जब मजदूरों का संगठन शुरू किया तो वे लोग कहने लगे कि ये संघवाले अब अेक नया दांव खेल रहे है। तो क्या हम वहां से भी हट जायें ? अिस तरह तो हमें सेवा के सभी क्षेत्र छोड देने होंगे।

राजकारण टल ही नहीं सकता

आज जो यह प्रश्न अुठा है, अुसमें मुझे अेक प्रकार की घबडाहट नजर आती है। मेरी राय में राजकारण से हटने में हम अैसा कदम अुठाते है, जो बहुत ही गलत है। हिन्दुस्तान की आज की परिस्थिति में आप जो कुछ करेंगे अुसमें राजकारण तो आने ही वाला है। आप चाहे चरखे का काम लें, हिन्दू-मुसलिम अेकता का काम लें, या हरिजन सेवा का काम लें, राजकारण नही टाल सकते। हम राजकारण छोडना चाहेंगे तो भी वह हमें नहीं छोडेगा। जो अपनी न्यूनता या कमी राजकारण में अनुभव करेगा वह दूसेरे क्षेत्रो में भी अपनी कमी अनुभव करेगा। संघ के सदस्य अगर राजकारण के लायक नहीं हैं, तो वे रचनात्मक कार्य के लायक भी नहीं हैं।

केवल अिसलिअे कि हमारे राजकारण में पड़ने से संघ पर, या गांधीजी पर, आक्षेप आता है, हमें घबडाना नहीं चाहिअे। बदनसीबी से सदर साहब यहां नही हैं। अगर वे अपने अनुभव के आधार पर यह कह दें कि हम संघ के लायक नहीं हैं, तब तो संघ को मिटा देना चाहिअे। लेकिन केवल हम अपूर्ण हैं, अिसलिअे अुसे बन्द नहीं करना चाहिअे। खुद बापूजी भी फरमाते हैं कि वे अपूर्ण है और अपने आदर्श से कोसों दूर हैं। अुनके मुकाबिले में हम तो कहीं के नही हैं। लेकिन अिसीलिअे हमें संघ की जरूरत है। संघ से हमें अपने विचार परिपुष्ट करने में, परिचय घनिष्ठ करने में, अनुभवों का मिलान करने में, मदद होती है और दूसरी तरह से बल मिलता है।

'गांधी' शब्द संप्रदाय-वाचक नहीं है

हमारे अंदर अगर संप्रदाय की भावना आ गयी हो, या हम अपने को दूसरों से बडा समझने लगे हों, तो संघ को मिटा दें। हमने अपने संघ के साथ गांधीजी का नाम जोड़ दिया है। अिसमें हमारी संप्रदाय बनाने की भावना नहीं है। 'सत्यान्वेषी' या 'अहिंसानिष्ठ' संघ कहने में बडा आडंबरपूर्ण नाम मालूम होता है। गांधीजी अिन सिद्धान्तों के प्रतिनिधि है ; अिसलिअे अुसका गांधी सेवा संघ नाम रख लिया।

जीवन अेक और अखंड है

बापूजी का अेक वाक्य मुझे खटका। अुन्होंने कहा कि 'मैंने गांधी सेवा संघ से कुछ नहीं पाया; कांग्रेस से बहुत कुछ पाया।' मैं कहता हूं कि कांग्रेस में भी संघ के आदमी हैं। अुनके द्वारा आपने कांग्रेस से जो कुछ पाया वह संघ से ही पाया है।

अेक बात और। बापूजी ने हमें बार बार यह समझाया है कि जीवन अेक और समग्र है। अुसके टुकडे-टुकडे नहीं करने चाहिअें। जब अैसा है तो यह राजकारण, अर्थकारण और समाज-कारण का भेद आज क्यों किया जा रहा है? राजकारण से निवृत्त होने की बात बार बार क्यों सामने आती है?

गांधीजी—गोकुलभाअी ने जो कुछ कहा है, अुसका अुत्तर मैं दूं। अुन्होंने जो दो चीजें कही हैं, अुनमें गलतफहमी है। अुन गलतफहमियों को मैं दूर कर दूं, तो अुन बातों पर नाहक चर्चा नहीं होगी।

संघ में राजकारण न रहे

मैंने यह नहीं कहा कि गांधी सेवा संघ के सदस्य राजकारण से हट जायें। मैंने यह कहा कि संघ के सदस्यों की हैसियत से वे वहाँ न रहें। मैंने तो सबेरे ही कह दिया कि संघ का अेक भी सदस्य वहाँ से न हटे। मैंने सरदार और राजेन्द्रबाबू का अुदाहरण दे कर कहा कि मैं अुनसे राजकारण छोड़ने को नहीं कहूंगा। लेकिन मैंने यह कहा कि अुन्हें संघ से हट जाना चाहिअे। मैं यह चाहता हूं कि संघ में राजकारण को स्थान न रहे।

"राजकारण" शब्द की व्याख्या

तब गोकुलभाअी का दूसरा प्रश्न आ जाता है कि जब सारा जीवन अेक और अविभक्त है, तो हम किस चीज के विषय में अैसा कह सकते हैं कि यह राजकारण है और यह नहीं है। मैंने यह अवश्य कहा है कि हमको जीवन के विभाग नहीं करने चाहिअें; क्योंकि वे सब अेक-दूसरे से मिले हुअे हैं। अिसलिअे जीवन अेक है। लेकिन अेक दूसरी दृष्टि भी है। हमारा सारा शरीर अेक है। अुसके आँख, कान, नाक आदि कअी अंग हैं। जब हम सारे शरीर की दृष्टि से देखते हैं, तो अिन अवयवों का खयाल नहीं करते। लेकिन जब अिनमें से किसी अेक ही अवयव की चिकित्सा कराते हैं, तब अुनका पृथक् पृथक् विचार करते हैं। ये सब अेक ही शरीर के अंग हैं। लेकिन फिर भी, हम पृथक्करण करके ज्ञानेन्द्रियों में और कर्मेन्द्रियों में भेद करते हैं। आज अुस पृथक्करण की दृष्टि से हम देख रहे हैं। राजकारण तो हमारी सारी प्रवृत्तियों के साथ मिला हुआ है। लेकिन मैं अुस व्यापक अर्थ में राजकारण छोड़ने को नहीं कह रहा हूं। कांग्रेस के और दूसरे चुनावों आदि का जो राजकारण है, अुस राजकारण से और दलबन्दी से मेरा मतलब है। संघ में से यह सत्ता का राजकारण क्यों हटाना चाहिअे, यह मैंने समझा दिया। बुजदिली के कारण नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि के लिअे, यह हम कदम रख रहे हैं। अहिंसा अैसी ही चलती है। मैंने राजकारण-मात्र का निषेध नहीं किया। मैं जानता हूं कि अिस देश में सभी तरह का रचनात्मक काम राजनीति का ही अंग है। मेरी दृष्टि में तो वही सच्चा राजकारण है। अहिंसा का सत्ता के राजकारण से कोअी संबंध नहीं रह सकता।

अहिंसा का संघ

अहिंसा के लिओ संघ की हस्ती अपरिहार्य नहीं है। अिसका मतलब यह नहीं है कि अहिंसा का कोओ संघ ही नहीं बन सकता। लेकिन आज का हमारा संघ अुस प्रकार का नहीं है। हमने ओक संघ बना लिया। अुसका स्वाद हमने चख लिया। कम-से-कम मैंने तो चख लिया। हमने देख लिया कि अहिंसा का संघ दूसरे संघों की तरह नहीं चल सकता; और न अुसे अुस तरह चलाना ही चाहिओ। अहिंसा के संघ में कुछ विशेषतायें होनी चाहिओं। अिसलिओ मुझे संघ का जो अनुभव है, अुसके आधार पर मैं आपसे कहता हूं कि आप अिस राजकारण से बचें। और अगर नहीं बचेंगे, तो गांधीवाद का ध्वंस अवश्य होगा।

अनोखी नीति के अनोखे साधन

हमने ओक अनोखी नीति को लिया है। अुस नीति के प्रयोग के साधन भी अनोखे होंगे। वे क्या होंगे, अिसकी मैं खोज करता रहता हूं। मैं प्रयोग कर रहा हूं। बदलती हुअी परिस्थिति में मुझे अपने तरीके भी बदलने पड़ते हैं। लेकिन मेरे पास कोओ बना बनाया शास्त्र नहीं है। हमारा प्रयोग ओकदम नया है। अुसके कदमों का क्रम कहीं निश्चित नहीं है। मैं तो ओक जिज्ञासु हूं। सत्याग्रह के विज्ञान की खोज और विकास में धीरज के साथ कर रहा हूं। अिस खोज से नित नया ज्ञान और नित नया प्रकाश पा रहा हूं।

अिसी प्रयोग की वृत्ति से हुदली में मैंने कहा था कि हम राजकारण की रंगभूमि में अुतरें, शौक से अुसका अनुभव लें; अपनी सत्य और अहिंसा की शक्ति को आजमायें। हो सकता है कि अैसी सलाह देने में मैंने गलती की हो; लेकिन अुसका मुझे पश्चात्ताप नहीं है। अच्छा ही हुआ कि हम राजनीति की रंगभूमि में अुतरे। हमने बहुमोल अनुभव ले लिया। अगर हम यह अनुभव नहीं लेते, तो मैं दुविधा में रह जाता। मेरे दिल में यह बात रह जाती कि हमने राजकारण के क्षेत्र का अनुभव नहीं लिया। अब अुस अनुभव के बाद मैं आपको यह निश्चित सलाह दे सकता हूं कि संघ की हैसियत से हम राजकारण का त्याग कर दें।

संघ ने राजकारण अपना क्षेत्र नहीं माना

और ओक बात आप न भूलें। संघ ने राजनीति को अपना क्षेत्र कभी माना ही नहीं। आप याद कीजिये कि जब से संघ के अधिवेशन होते हैं, हमने कभी राजकारण की चर्चा भी की है? आप अुसकी रिपोर्टें देखें, प्रस्ताव देखें, अुनमें राजकारण नाम को भी नहीं है। संघ के जो सदस्य राजकारण में दिलचस्पी लेते हैं, अुनका वह विषय है। संघ का विषय नहीं है। सरदार अुसमें हैं, अुनका वह विषय है। संघ के दूसरे सदस्यों की भी वह संघ के बाहर की ओक प्रवृत्ति है। आप यहाँ अुसकी चर्चा कब करते हैं? क्या आप सरदार को कभी यह तकलीफ देते हैं कि वे पार्लमेंटरी बोर्ड का काम कैसे चलाते हैं, यह आपको बतावें। आप मुझसे कब पूछते हैं कि मैंने व्हाअिसराय से क्या कहा? हमें अिन बातों के विषय में जिज्ञासा तो होती है, लेकिन वह संघ के सदस्य के नाते नहीं; दूसरी ही हैसियत से। हुदली में हमने राजकारण में पड़ने का प्रस्ताव किया। लेकिन अुसके बाद भी हमनें अपने सम्मेलनों में राजनीति की चर्चा नहीं की। हम यहाँ दूसरी ही वृत्ति ले कर आते हैं। हमारा तो ओक जिज्ञासुओं का समूह है। यहाँ हम आत्मनिरीक्षण के लिओ और अपनी भूलें सुधारने के लिओ आते हैं। अिसलिओ हमारे

सम्मेलनों में अेक दूसरा ही वायुमण्डल होता है। राजकारण अेक बाहय व्यवहार है। असलअे हम यहां पर अुसकी चर्चा नहीं करते। संघ का वह विषय नहीं है।

हुदली के बाद भी संघ का भीतरी स्वरूप नहीं बदला। असपर से स्पष्ट है कि लोगों के दिल में यह गलतफहमी कि हम अेक राजनैतिक दल बना रहे हैं, नाहक पैदा हुअी। हम नाहक गढे में गिर रहे हैं। असलिये मैं कहता हूं कि हम संघ को बंद कर दें। मैं राजकारण को बंद नहीं करता। लेकिन संघ की हैसियत से अुसे बंद कर देता हूं, क्योंकि वह हमारा विषय नही है। हुदली में भी हमने संघ के असली रूप को नहीं बदला। सिर्फ अितना ही गुनाह किया कि संघ के सदस्यों को पार्लमेण्टरी काम करने की अिजाजत दी। लेकिन अुसके बाद भी मैंने पार्लमेण्टरी कार्य में प्रत्यक्ष दिलचस्पी बहुत कम ली। मैं तो अखबार भी बहुत कम पढता हूं। किशोरलाल भाअी से पूछो तो वे कहेंगे "असके बारे में मैं कुछ नहीं जानता, सरदार से पूछिये।" असका कारण स्पष्ट है। संघ ने अुसको अपना क्षेत्र ही नही माना। हमने संघ अुस काम के लिअे बनाया ही नहीं था। फिर हम अिस अंगार में नाहक क्यों पडें? हम अुसमें से हट जायें।

गोकुलभाअी ने अिस भेद को नही समझा। वे समझे कि मैं राजकारण का निषेध कर रहा हूं। अैसी बात नहीं है। मैं तो यही कहता हूं कि संघ अुस झंझट में न पडे।

असहयोग की व्याख्या

अब यह सवाल रह जाता है कि हम राजकारण में भी सत्य और अहिंसा दाखिल कराने का प्रयत्न क्यों न करें? संघ अुस क्षेत्र को अस्पृष्ट क्यों छोड दे? असका अुत्तर भी मैं दे चुका हूं। जब हममें बुराअी को दूर करने की शक्ति न हो, तो हमें अुससे दूर हो जाना चाहिअे, यही अहिंसा का तरीका है। असीका नाम असहयोग है। असहयोग का बडा भारी सिद्धान्त मैंने हिन्दुस्तान के सामने रक्खा है। अुसीको मैं यहाँ लागू कर रहा हूं।

अेक अुदाहरण ले लीजिअे। आपके सामने यहाँ विरोधी प्रदर्शन हो रहा है। तो क्या हम जबरदस्ती जा कर अुनके सामने खडे हो जायें; और अुनसे कहें कि 'यह लो, हम खडे हैं, तुम्हें हमारे साथ जो करना है सो करो'? यह तो मूर्खता है। असलिअे शास्त्रकार कहते हैं कि अगर कोअी तुम्हारी निन्दा करता है, तो अुसे सुनने के लिअे मत जाओ।

कोबे के तीन बंदर की मूर्ति का दृष्टान्त

मुझे पता नही, आपको जापान के कोबे नगर के तीन बन्दरों की मूर्ति का हाल मालूम है या नहीं। अुसी मूर्ति की अेक छोटी-सी प्रतिकृति—अेक खिलौना—कीसीने मुझे दे दिया था। अुसमें तीन बन्दर हैं। अेक अपना मुँह बन्द किये हुअे, दूसरा आँखें बन्द किये हुअे और तीसरा कान बन्द किये हुअे। वे संसार को यह अुपदेश दे रहे हैं कि मुँह से बुरे वचन न निकालो, आँखों से बुरी बातें न देखो और कानों से गन्दी बातें मत सुनो। असहयोग का यही रहस्य है। यहाँ यह विरोधी प्रदर्शन हो रहा है। अगर वे अिस मंडप में आ कर हमपर हमला करें, तो मैं आपसे कहूंगा कि आप बैठे रहें और अुनके प्रहार सहते रहें। लेकिन मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि वे लोग जहाँ प्रदर्शन कर रहे हैं, वहां जा कर आप अुनके प्रहार सहें। यह तो अुन्हें जानबूझ कर अुत्तेजित करना है। असमें अहिंसा नहीं है। असमें अहंकार की वृत्ति है।

अिस असहयोग की वृत्ति को मैं यहाँ लागू कर रहा हूं। हमारा राजकारण में जाना अुनकी वृत्ति को अुत्तेजन देना है। अुनके रोष को खुराक देना है। अिसलिअे अहिंसा कहती है कि हम वहाँ से हट जायँ। राजकारण से निकलने पर भी कोअी हमारी निन्दा करे, विरोध करे, हम पर हमला करे, तो हम सब कुछ बरदाश्त करेंगे। हमारे राजकारण से अलग हो जाने के बाद अगर किसीको हमारा ध्वंस करना है तो वह करे।

सरदार और मुझमें प्रकृति-भेद

लेकिन यह सब होते हुअे भी जिन्हें अपने राजनैतिक काम मे संघ से आसरा लेने की जरूरत नहीं है वे वहाँ रहें। जैसे वल्लभभाअी हैं। अुनको संघ की क्या दरकार है? संघ में रहने से अुनकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। संघ पैदा होने से पहले ही राजकारण में अुनकी प्रतिष्ठा थी। अिसलिअे अुनके रहने से संघ की प्रतिष्ठा बढ़ती है। दूसरी बात यह है कि वे तो जन्मजात राज-कारणी पुरुष हैं। राजकारण अुनके खून मे है। वे रचनात्मक काम के लिअे पैदा नहीं हुअे थे। अुन्होंने तो अेक तरह से विवश होकर रचनात्मक काम को स्वीकार कर लिया है। अुनकी प्रकृति का वह अविभाज्य अंग नहीं है, जैसा कि मेरा दावा है। वे रचनात्मक काम से भरे हुअे नही हैं, जैसा कि मैं हूं। मैं अिसके लिअे पैदा ही हुआ हूं। यह मेरी आत्मा का अंग है। राजकारण तो मेरे लिअे अेक अुपाधिरूप (झंझट) है। अुससे अगर पिंड छूटे, तो मैं खुशी के मारे नाचूंगा। सरदार शायद अैसा नहीं करेंगे। मुझमें और अुनमें यही बडा भारी भेद है। अगर मैं गलती कर रहा हूं तो वे अिसके साक्षी हैं। मेरी गलती सुधार सकते हैं।

हम किसी से स्पर्धा नहीं करना चाहते

लेकिन अगर दूसरे बहुत-से सदस्य अैसे हैं, जिन्हें संघ से प्रतिष्ठा मिलती है और अुस प्रतिष्ठा का अुन्हे राजनीति मे अुपयोग होता है, तो अिसका यही अिलाज है कि हम अुन्हें यह प्रतिष्ठा न दें। अिस तरह से दूसरे से मांगी हुअी प्रतिष्ठा अुन्हें भी छोड़ देनी चाहिअे। यदि हम अैसी प्रतिष्ठा अुन्हें देते है और वे लेते है, तो हम कांग्रेस-समाजवादी या साम्यवादियों के हरीफ बनने के आरोप के पात्र हो जाते हैं। जब दरअसल अैसी बात नही है, तो हम अैसे अिलजाम के लिअे गुंजाअिश क्यों रक्खें?

हम किसीका मुकाबिला नहीं करना चाहते। हमारा मार्ग तो यह है कि जो हमारा विरोध करते है, अुन्हें भी अपनावें। अगर वे विरोध करते है, तो अुनकी नासमझी है। लेकिन हम तो जानते हैं कि हम अुनके और वे हमारे हैं। अिसलिअे जबतक लोग हमें राजकारण में बुलाते नहीं हैं, हम राजकारण में निश्चेष्ट रहें। अपना रचनात्मक काम चुपचाप करते रहें। अिस प्रकार राज-कारण से हट कर अहिंसा को सुशोभित करें। यह अेक अनुभवी का वचन है। आप अुसके रहस्य को समझ लें और पकड़ लें और अुसमें जो भरा है, अुसपर ध्यान दें। अिस प्रकार आपका संघ को समेट लेना अहिंसा का पदार्थपाठ होगा। यह सीधी बात है। अिसमें कोअी हानि नहीं है।

गोकुलभाअी की गलतफहमी

अब मैंने जो यह कहा कि मैंने संघ से कुछ नहीं पाया, अुससे अुन्हें दुःख क्यों लगे? यहाँ तो मैं अपने घर में बैठा हूं। आप सब मुझसे प्रेम करते हैं। यह तो हमारा कुटुंब है। कुटुंब में हमसे बच्चे प्यार करते हैं, बीबी प्यार करती है, माँ-बाप, भाअी-बहन सब प्यार करते हैं। वहाँ हमें

अपनी अहिंसा का प्रयोग करने का मौका हो बहुत कम मिलता है। अुसी तरह अिस संघ में मेरी अहिंसा की परीक्षा नहीं होती। यहाँ आप मुझे क्या सिखा सकते हैं? कांग्रेस में मेरी अहिंसा की कसौटी होती है। वहाँ मेरा विरोध होता है, निन्दा होती है, टीका होती है। मेरी क्रोध-वृत्ति को खाद्य मिलता है, अुत्तेजना मिलती है। मैं सब अदब के साथ बरदाश्त करता हूं। मुझे अहिंसा और प्रेम के अभ्यास का मौका मिलता है। वहाँ मेरी वृद्धि (विकास) होती है। अिसलिअे मैं यह कहता हूं कि मुझे अपनी शक्ति बढाने के अवसर कांग्रेस में मिले। वहीं से मैंने सब कुछ पाया। संघ से बहुत कम पाया। मेरा मतलब यह नहीं है कि संघ कोअी निकम्मी या फेंक देने की चीज है। बात अैसी है कि मैंने तो आपकी स्तुति ही की है, निन्दा नहीं की। गोकुलभाअी भी जहाँ अुन्हें प्रेम ही प्रेम मिलता है, अैसे कुटुंब में क्या सीख सकते हैं? बाहर से अधिक सीख सकते हैं। परीक्षा का स्थान बाहर के जगत में है। वहाँ गालियां खा कर भी प्रसन्नचित्त रहना सीखना है। कितनी भी अुत्तेजना हो, तो भी हमारे चित्त में रोष नहीं आना चाहिअे। हमारी कसौटी का क्षेत्र बाहर है। यहाँ तो हमें अपनी बैटरी में मसाला भर लेना है। अब यह मसाला किस प्रकार भर सकते हैं, यह दूसरा सवाल है। अुसके लिअे संघ के रूप को बदलना पड़ेगा। अिस विषय में जिसको कुछ कहना हो, वह बाद में कहे। अभी तो हम संघ को राजकारण से अलग कर लेने के प्रश्न पर ही विचार कर रहे हैं। मैंने गोकुलभाअी की गलतफहमी दूर कर दी है। सारी बातें स्पष्ट कर दी हैं। अब वे चाहें तो अपनी गलती के लिअे अपना कान पकड़ सकते हैं और अधिक कुछ पूछना हो तो पूछ भी सकते हैं।

सरदार वल्लभभाअी का भाषण

भाअियो और बहनो,

अेक भाअी ने कहा कि अिस सारे पाप का मूल मैं ही हूं; अिसलिअे मुझे कुछ कहना ही चाहिअे। अब अिस सवाल की काफी बहस हो चुकी है। जिनको कुछ कहना था, वे कह चुके हैं। मुझे भी कुछ कहना था; मगर दूसरे ढंग से।

गलतफहमी कैसे हुअी?

मैंने कअी दिनों से संघ से अिस्तीफा दे दिया था। अुसको ले कर अखबारों में गलत बातें चलीं। मुझे पढ कर आश्चर्य हुआ। मैंने अिस्तीफा दूसरे कारणों से दिया था। अखबारों में दूसरे ही कारणों की कल्पना की गयी। हुदली में जब राजकारण में भाग लेने का प्रस्ताव आया, तो जो राजकारण में प्रत्यक्ष भाग लेते हैं, वे संघ में रहें या नहीं अिसके विषय में मतभेद हुआ। अुसी वक्त हमने संघ से हट जाने की अिजाजत चाही। किशोरलालभाअी और दूसरों ने कहा कि 'अगर आप, राजेंद्रबाबू, गंगाधरराव, शंकरराव हट जायेंगे, तो अनर्थ होगा। आप लोगों के संघ छोड़ने का असर अच्छा नहीं होगा'। लेकिन अनुभव से मुझे लगता है कि हम लोगों का छोड़ जाना ही अच्छा होता। हमारे संघ में रहने से कअी मुसीबतें खड़ी हुअीं। हम संघ के सदस्यों की हैसियत से अुसका कोअी काम आगे नहीं बढ़ा सके। अुस दृष्टि से हमने संघ को कोअी फ़ायदा नहीं पहुंचाया।

हम रचनात्मक संस्थाओं के सदस्य शुरू से हैं। जब से चरखा संघ निकला तब से मैं अुसके कार्यकारी मण्डल का सदस्य रहा। लेकिन अुससे कोअी जहर पैदा नहीं हुआ। राजेन्द्रबाबू भी शुरू से चरखा संघ में हैं। लेकिन राजकीय क्षेत्र में अुससे किसी प्रकार का विरोध या अीर्ष्या पैदा नहीं हुअी। हरिजन सेवक संघ और ग्राम अुद्योग संघ में रहने से भी किसीके दिल में रोष की भावना पैदा नहीं होती। तो फिर गांधी सेवा संघ में रहने से ही झमेला क्यों होता है। अिसका कारण यह है कि लोग समझते हैं कि "गांधी सेवा संघ दरअसल अेक राजनैतिक दल है? लेकिन ये लोग अिस बात को छिपाने के लिअे रचनात्मक कार्य की ओट लेते हैं। ये लोग कॉंग्रेस की सारी सत्ता अपने हाथ में रखने के लिअे अिस तरह की चाल चलते हैं। असल में ये अेक राजकीय दल का संगठन कर रहे हैं।"

जबतक किसी जवाबदार व्यक्ति ने अैसी कोअी बात नहीं कही थी तबतक मुझे कुछ नहीं लगा। लेकिन जब पं० जवाहरलालजी के दिल पर भी यह असर हुआ कि यह अेक राजकीय पक्ष है जो कांग्रेस पर काबू करना चाहता है, तो मुझे बुरा लगा। जवाहरलालजी ने अपने अेक वक्तव्य में संघ के विषय में यह बात कही कि गांधी सेवा संघ भी समाजवादी पक्ष या दूसरे राजनैतिक पक्षों जैसा अेक पक्ष है। अुनकी मनशा संघ की निन्दा करने की नहीं थी। अैसा राजकीय पक्ष बनाना कोअी अनुचित बात भी नहीं है। लेकिन संघ कभी अुस अिरादे से बनाया ही नहीं गया था। अुसका काम भी अुस पद्धति से नहीं चलता था। अिसलिअे हमारे सदर श्री किशोरलालभाअी को परिस्थिति समझानी पडी और संघ की नीति का स्पष्टीकरण करना पडा। अुससे जवाहरलालजी की गलतफहमी दूर हुअी। लेकिन अिसपर से अिस बात का पता चलता है कि जवाबदार लोग भी संघ की तरफ किस नजर से देखते हैं। यह अैसी तुच्छ बात नहीं है कि हम अुसकी अुपेक्षा करें और आगे बढें; क्योंकि अुसका असर सिर्फ बाहर के लोगोंपर ही नहीं हुआ, संघ में भी कुछ लोगोंपर यही छाप पडी। पिछले साल वृन्दावन-सम्मेलन में भाअी मंजर अली सोख्ता ने यह तजवीज़ पेश की थी कि हम गांधीवाले भी अेक राजकीय पक्ष बनावें। दूसरी जगह भी अुन्होने यही कहा था। दूसरे भी कअी सदस्यों की अैसी ही राय रही। वे कहते थे कि हम गांधी सेवा संघ की प्रान्तीय शाखाअें बना कर राजकीय क्षेत्र में प्रवेश करें। अुनकी दलील यह थी कि अगर किसानवाले, मजदूरवाले, समाजवादी और दूसरे लोग अपना अपना संगठन कर सकते हैं, तो हम भी क्यों न करें?

संघ क्यों और कैसे बना?

गांधी सेवा संघ के विरुद्ध जो भाव पैदा हो गये, वातावरण में जो अीर्ष्या और जहर पैदा हो गया, अुसका अेक कारण यह भी है। अुसके लिअे केवल बाहर के लोग जवाबदार नही हैं। हमने भी संघ के अुद्देश्य और नीति को ठीक ठीक नहीं समझा। अुसकी मर्यादाओं का पालन नहीं किया। यह कोअी राजकीय संगठन नही है। जमनालालजी ने जब अिसे बनाया तभी से मैं अिसका ट्रस्टी हूं। अुनकी क्या मनशा थी, में अच्छी तरह जानता हूं। जब स्वराज्यपक्ष बना तो जमनालालजी ने सोचा कि "यह स्वराज्यपक्ष राजनैतिक काम करेगा और हम रचनात्मक काम करेंगे। रचनात्मक काम करनेवालों को मार्गदर्शन और सहायता चाहिअे, वह देने का हम अिन्तजाम करें। अिसमें थोडा-सा पैसा डालें। रचनात्मक काम करनेवालों को अेक सूत्र में बॉंधने के लिअे अेक छोटा-सा संगठन बनावें।" मैंने कहा, 'ठीक है।' राजकीय क्षेत्र में प्रवेश भी हमने अिसी खयाल से किया था कि अुससे रचनात्मक कार्य में मदद मिलेगी।

जमनालालजी और हमारे सदर अिसके खिलाफ थे। अनुभव भी वही आया। रचनात्मक कार्य को कोअी फायदा तो नहीं पहुँचा, अुलटे अीर्ष्या का जहर पैदा हुआ।

अुसका रूप क्यों बदला गया ?

पहले संघ केवल रचनात्मक काम करनेवालों को मदद करनेवाली अेक छोटी-सी संस्था थी। जब से किशोरलालभाअी अुसके सदर हुअे, तब से अुसका रूप बदला और व्यापक हुआ। जमनालालजी अुस वक्त भी अुसका रूप बदलना नहीं चाहते थे। लेकिन हम सबने समझा कि अिसमें हमारी आध्यात्मिक अुन्नति होगी। राजकारण में मार्गदर्शन मिलेगा, अैसा अुस वक्त भी किसीका खयाल नहीं था; क्योंकि हम तो अुसकी बागडोर किशोरलालभाअी के हाथ में दे रहे थे। वे हमें राजकीय मार्गदर्शन करा भी नहीं सकते थे। राजकारण अुनका विषय नहीं है।

हमारे दोष प्रकट हो गये

लेकिन जिस आध्यात्मिक अुन्नति के विचार से हमने संघ को नया रूप दिया था, अुस दृष्टि से भी कोअी फायदा नहीं हुआ। अगर हम यह मानें कि हम आध्यात्मिक दृष्टि से कुछ आगे बढे हैं, दूसरों से कुछ अूंचे हैं, तो वह दंभ होगा। हम दूसरों से आगे नहीं हैं, अिसका सबूत हमारे राजकारण में पड़ने से मिल गया है। मैं यह नहीं कहता कि राजकारण में पड़ने से हम बिगड़ गये हैं। बिगड़ने का सवाल तो तब आता जब हम पहले अच्छे होते। ये खराबियाँ पहले छिपी हुअी थीं। राजकारण में पड़ने से अुनपर से पर्दा हट गया। हम जैसे थे, वैसे लोगों के सामने आ गये।

नतीजा यह हुआ कि संघ के सदस्य राजकीय क्षेत्र में अेक-दूसरे से लडे। अध्यक्ष के समझाने और कहने का कोअी असर नहीं पडा। अैसी हालत में अगर हमलोगों के दिल में संघ के कारण कोअी अैसा खयाल पैदा होता हो कि हम दूसरों से अूंचे हैं, तो अुससे हमारा पतन होगा। लोगों के दिल में यह ख्याल पैदा करना कि हम अेक अैसी जमात हैं, जिससे कुछ अधिक अुम्मीद की जा सकती है, न हमारे लिअे अच्छा है, न देश के लिअे। क्योंकि अैसी कोअी अपेक्षा पूरी करने की योग्यता हममें नहीं है, यह हम सिद्ध कर चुके हैं। अिसलिअे जो लोग राजकारण में पड़ना चाहते हैं, वे संघ से हट जावें। या जो संघ में रहना चाहते हैं, वे राजकारण से हट जावें।

मौजूदा युद्ध के प्रति रुख

मैंने जिन कारणों से अिस्तीफा दिया था, अुनमें से यह भी अेक था। लेकिन मुख्य कारण अिस कारण से भी बढ़कर था। जब यूरोप में यह लडाअी छिडी, तो हमारे सामने यह सवाल आया कि कौन-सा रुख लें। वर्किंग कमेटी में बडी लंबी बहस हुअी। बारह दिन तक बहस चलती रही। किसी भी अेक ही सवाल पर अितनी लंबी बहस वर्किंग कमेटी में पहले कभी नहीं हुअी थी। हमारे सामने यह सवाल था कि हम अपनी आत्मा के प्रति और अपने सिद्धान्तों के प्रति अीमानदार रह कर कौन-सा निर्णय करें। हमारे दिल में यह डर रहा कि अगर हम गांधीजी को छोड़ दें, तो स्वतंत्ररूप से नैतिक मदद करने की बात हमारे मुँह से कहाँ तक शोभा देगी। क्या हमारी वह शक्ति है, जो गांधीजी की है ? १९१४ की लडाअी में गांधीजी ने जो रुख अखत्यार किया था, वहाँ तक तो हम अपनी हिम्मत पर जा सकते थे। अगर सरकार से हमारा समझौता हो जाता, तो हम अुसकी पैसा, आदमी वगैरा से मदद करते। हमारी मदद का दूसरा क्या अर्थ हो सकता था ? हमारी नैतिक मदद की सरकार को क्या कीमत थी ?

हमारे दिल में अुथल-पुथल मची। हमारे सामने अेक रास्ता था। अगर हम अपने जहाज की पतवार गांधीजी के हाथ में दे देते, तो केवल अुनके हुक्म पर चलना आसान था। लेकिन हम खुद वह नहीं कह सकते थे, जो गांधीजी कह सकते हैं। नैतिक सहायता देने की शक्ति अकेले अुन्हींकी है। अुन्हींकी नैतिक सहायता की दुनिया में कद्र भी होगी।

अिसलिअे हमने अपनी शक्ति के अनुसार प्रस्ताव किया। अुससे किशोरलालभाअी को कष्ट हुआ। लेकिन हमारी अुस वक्त यह हिम्मत नहीं थी, और आज भी नहीं है, कि हम नैतिक मदद की भाषा बोलें। वैसा कहने में हमारी आत्मा के साथ दगाबाजी होती और सत्य का खून होता। वह प्रस्ताव करने में दर्द तो हमें भी हुआ ; लेकिन हम तो अपनी अपनी शक्ति के अनुसार ही काम कर सकते थे न ? लड़ाअी तो बिजली की तरह आ पड़ी। हमें यह देखने का भी अवसर नहीं मिला कि हमारी तैयारी कहाँ तक है। अुसके बाद बापू ने अपने हाथ में बागडोर ले ली। हमने कहा कि अब तो आप ही रास्ता दिखावें। अब जैसा वे कहेंगे, वैसा ही करेंगे। अुनके सिवा हम दूसरे का मुँह नहीं ताक सकते। मुसीबत में वे भी हमारी मदद के लिअे दौड़ कर आते हैं; अुनका रक्षण मिल जाता है। अुनके पीछे जाने में हमारी जवाबदारी कम हो जाती है।

हमारे कारण संघ पर आरोप

लेकिन संघ के बारे में कोअी गलतफहमी होना ठीक नहीं है। अिसलिअे मैंने सोचा कि हमलोगों को संघ छोड़ देना चाहिअे। हमारी वजह से संघ के बारे में यह गलत खयाल पैदा होने लगा था कि वह संस्था राजकीय सत्ता पर कब्जा करने के लिअे है। अिसलिअे जो संघ में रहें, वे राजकारण में न रहें, और जो राजकारण में रहें, वे संघ में न रहें, यही नीति सही है। जो रचनात्मक काम करते है, अुन्हींको संघ में रहना चाहिअे। संघ के कअी लोग राजकारण में पड़े, खास कर हम आगेवाले पड़े, अिसका यह नतीजा हुआ है कि संघ अेक राजकीय पक्ष माना जाने लगा। मै अगर अिस संघ मे नही होता, तो संघ अितना बदनाम न होता। मैंने पार साल ही आप लोगों से कह दिया कि मैंने बदनाम होने लायक कोअी काम नहीं किया। अगर अैसा होता तो मैं राजकारण छोड़ देता। मैंने कोअी बुरा काम नहीं किया, अिसलिअे मै राजकारण में कायम रहा। मेरे वहाँ रहने ही से किसीको बुरा लगे और वे मेरा विरोध करें, तो मुझे अुसे अेक धर्मसंकट मान कर अुसका सामना करना पड़ेगा। जब तक सारी वर्किंग कमेटी मेरे साथ है और कॉंग्रेस मेरी सेवाअें चाहती है, तब तक मै वहाँ मे कैसे हट सकता हूं ? सेवा से मुँह कैसे मोड़ सकता हूं ? लेकिन मुझे संघ को बदनामी से बचाना चाहिअे। नाहक अुसे बदनाम करने में मैं कारणीभूत क्यों होअूं ? अिसलिअे मैंने अिस्तीफा दे दिया।

संघ राजनीति से अलग रहे

अगर हम राजकीय पक्ष बनाना है, तो हम खुल्लमखुल्ला सीधे अेक पक्ष बनावें। संघ का तो वह क्षेत्र नहीं है। हमें पक्ष बनाना होता, तो हम खुले तौर पर अेक पक्ष बना लेते। वह तो हमारा अधिकार है। लेकिन कुछ लोग अैसा समझते हैं कि हम अिस संघ का अुपयोग राजकीय पक्ष के तौर पर कर रहे हैं। अैसा समझने के लिअे कुछ संयोग भी हुअे। हमारे संघ के सम्मेलन और पार्लमेण्टरी राजकारण करीब करीब साथ साथ शुरू हुअे। अिसलिअे अेक अैसी आबोहवा

बनी कि ये लोग राजकारण के अुद्देश्य से ही सम्मेलन करते हैं। हमें अिस आबोहवा को हटा देना चाहिये। अिसके लिअे मेरे खयाल में अिस संघ के रूप में परिवर्तन करके अुसे रचनात्मक काम करनेवालों के अेक छोटे-से संगठन का रूप दे देना चाहिअे। अुसमें वे ही लोग रहें जिनका राजकारण से कोअी वास्ता नहीं—जैसे जाजूजी हैं। तब हमारे विरुद्ध जो लोग नारे लगायेंगे, अुसमें अुनका नाम कोअी नहीं लेगा। संघ के किसी सदस्य के खिलाफ नारे नहीं लगेंगे। जाजूजी जैसे जो जो लोग चौबीस घंटे रचनात्मक काम करते हैं, वे ही संघ में रहें। आज देश का वायुमंडल कुछ अैसा बन गया है कि कुछ लोगों ने मानो हम जो कुछ करेंगे अुसका विरोध करने की प्रतिज्ञा ही की है। अिसलिअे हम देश की आबोहवा को साफ कर दें। हम डर गये हैं, या घबरा गये हैं, अिसलिअे नहीं, बल्कि अिसलिअे कि हमारी कमजोरियाँ दूर हो जायँ, लोगों पर हमारी सेवा का प्रभाव पड़े और नाहक अीर्ष्या और द्वेष पैदा न हो।

संघ का यह रूप खतम कर देना चाहिअे

हाँ, अेक बात का दुःख जरूर मुझे भी रहेगा। अिस सम्मेलन में हम अेक-दूसरे से मिलते हैं, साथ रहते हैं, वह न हो सकेगा। लेकिन हम दूसरे मौकों पर मिल सकते हैं। अभी रामगढ़ में मिलेंगे। अुसी तरह प्रान्तों में भी मिलने के मौके आ सकते हैं।

लोग गांधीवाद के खिलाफ नारे लगा सकें अिसीके लिअे अेक संघ कायम रखने की जरूरत नहीं मालूम होती। हम यह बोझ नहीं अुठा सकते। गांधीजी के बिना संगठित रूप में किसी संघ के द्वारा अुनके सिद्धान्तों का आचरण करने की शक्ति और तैयारी हमारी नहीं है। हम अपनी अिस कमजोरी को महसूस करके संघ को समेट रहे हैं। विरोध के डर से नहीं, वस्तुस्थिति देख कर हमें संघ का परिवर्तन करना चाहिअे। जो रचनात्मक काम में लगे हुअे हैं, अुनका अेक छोटा-सा संघ भले ही रहे। लेकिन अिसे अिस रूप में तो हरगिज नहीं रखना चाहिअे।

गांधी सेवा संघ, छठा सम्मेलन
मालिकान्दा, ता० २१-२-४०

गांधीजी का भाषण

—२—

भाअियो और बहनो,

आखिर में जो लोग बैठे हैं, क्या अुन तक मेरी आवाज पहुँचती है ? अगर न पहुँचती हो, तो बता दें।

आज प्रातः ३ बजे ही मैं अुठ गया। संघ की बात सोचना शुरू कर दिया। अुसका नतीजा आपके सामने रखता हूं। आप अपनी राय अुसके बाद आज ही बताना चाहें तो बतावें। कल अेक अधूरा-सा प्रस्ताव आपके सामने रखा गया। सोचता हूं कि अुसपर कुछ कहूं और अुसके बाहर भी कुछ कहूं।

राजनैतिक दल बनाने की सामग्री नहीं है

राजकारण के बारे में मैंने जो कहा, अुसपर मैं और भी दृढ़ हो गया हूं। विचार करने पर मुझे मालूम हुआ कि हमने अनजान में असत्याचरण भी कर लिया है। कल रात को मैं जो बता रहा था वह अिस बात का सूचक था। अिसलिअे हमने सत्ता के राजकारण का तो जानबूझ कर त्याग कर दिया। अगर हम संघ के नाते सत्ता के राजकारण में पड़ना चाहते थे, तो हमें खुले तौर पर पड़ना चाहिअे था। अुसके लिअे संघ का स्वरूप भी बदलना चाहिअे था। लेकिन राजकारण में पड़ने के लिअे हमारे पास तो कोअी सामग्री ही नहीं है। राजकारण के लिअे यह भी जान लेना जरूरी है कि दूसरे क्या करते हैं और क्या करना चाहते हैं। समाजवादियों की क्या विचारसरणि और नीति है, यह भी जान लेना चाहिअे था। हमारे पास तो राजकीय पुस्तकों की लायब्ररी तक नहीं है।

जयप्रकाश, मसानी और संपूर्णानंद की पुस्तकें

मैंने तो समाजवाद का कुछ भी अध्ययन नहीं किया। अुस विषय की पुस्तकें नहीं पढ़ी। जयप्रकाश की अेक पुस्तक पढ़ी। मसानी ने अेक पुस्तक दी, वह भी पढ़ ली। संपूर्णानंदजी ने अेक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी है। बड़े प्रेम से भेज दी; अिसलिअे अुसे भी पढ़ा। बस; अितना ही मेरा समाजवाद का अभ्यास है। वे लोग बताते हैं कि समाजवाद और साम्यवाद पर कितनी ही पुस्तकें लिखी गयी हैं। साम्यवाद का तो मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा। आपमें से कितनों ने पढ़ा होगा, मैं नहीं जानता।

"मैं सबका हूं और किसीका नहीं हूं"

वह चीज मेरी प्रवृत्ति में नहीं आती। मेरे दिमाग की रचना ही दूसरी है। मेरा बुद्धिमत्ता का दावा तो वे कबूल भी नहीं करते। राजकारण में मेरी बुद्धि की कोअी प्रतिष्ठा नहीं है। जो राजकारण में पड़े हैं, वे तो मुझपर हँसते हैं। वे कहते हैं, 'क्या यह राजकारण है'? मैं अेक लड़वैया था अिस कारण मेरी राजकारण में प्रतिष्ठा बढ़ी; मेरी बुद्धि के कारण नहीं। मेरी बुद्धि की अैसी प्रतिष्ठा कोअी नहीं मानता कि अुसीसे मैं किसीको परास्त कर सकूं। मैं समाजवाद को मानता हूं और साम्यवाद का भी माननेवाला हूं। मैं सबको मानता हूं, लेकिन अपनी दृष्टि से मानता हूं। मैं सबका हूं और किसीका नहीं हूं। अहिंसा में माननेवाला किसीका विरोधी नहीं हो सकता। वह तो सबकी मदद से अहिंसा का विज्ञान बनाना चाहता है। किसीका विरोध करने का या किसीको परास्त करने का राजकारण अुसका है ही नहीं।

जिसे राजनीति कहा जाता है, अुसके लिअे न तो मैं खुद लायक बनना चाहता हूं और न दूसरों को बनाना चाहता हूं। हुदली में मैंने राजनीति में प्रवेश करने के लिअे कहा। अनजान में मैंने वह भूल की। यह भी कह सकते हैं कि अनजान में हमने असत्याचरण किया। जिस काम के लिअे हम पैदा हुअे हैं अुसीको अच्छी तरह करने के बदले हमने दूसरे काम में हाथ डाला। जो हुआ सो ठीक ही हुआ। हमने अनुभव ले लिया। पाया कि हमारी वह ताकत नहीं है। हमें अपनी अयोग्यता का पता लग गया है। अब हम अपना हाथ खींच लेते हैं। हमने गलती तो की, लेकिन अपने दोषों का पता लगते ही हम सम्हल रहे हैं। गलती जब सुधार ली जाती है, तब वह गलती नहीं रहती। अपनी भूल कबूल कर लेने से हमारी शक्ति बढ़ती है। मैं आपसे कहता हूं कि आप अपनी मर्यादाओं को पहचान लीजिये, और जिस काम के लिअे यह संघ बना था अुसीको अच्छी तरह कीजिये।

अपने अज्ञान का ज्ञान

आज मेरे पास नोआखाली से कुछ मित्र आ गये थे। वे कहते थे—"हम तुम्हारी सब बातें स्वीकार करते हैं; लेकिन तुम्हारे अनुयायी जो यहाँ बैठे हैं, अुनकी बात नहीं समझ सकते। हम तुम्हारी बात मान सकते हैं। तुम अुसे गांधीवाद कहो, चरखा चलाना कहो, ग्राम-अुद्योग कहो, हम अुसको स्वीकार करते हैं। हम तुम्हारे अनुयायी हैं। लेकिन तुम्हारे अनुयायियों के अनुयायी नहीं हैं। तुम्हारे अनुयायियों के पास कुछ भी नहीं है।" अुन्होंने जो कुछ कहा, बड़े प्रेम से कहा। हमारे लिअे वह समझने की बात है। हम राजकारण में पड़े, जिससे न तो वहाँ कुछ कर सके, न हमारा अपना ही काम कर सके। न अिधर के रहे, न अुधर के। अब हमें अपने अज्ञान का ज्ञान हो गया है। हम अुसे दूर करने के लिअे प्रयत्नशील बनें।

हमने अपने सिद्धान्तों के प्रयोग के लिअे राजकारण का अुपयोग किया। आज अनुभव के बाद अुसका त्याग कर रहे हैं। हम जिस राजकारण का त्याग कर रहे हैं, वह है कांग्रेस में सत्ता हस्तगत करने का राजकारण। हम कभी अुसमें हिस्सा नहीं ले सकते। मैं व्यक्ति की बात नहीं करता; संघ की बात करता हूं। संघ में सत्ता की राजनीति के लिअे कोअी स्थान नहीं है। जिस व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति और योग्यता हो वह अुसमें रहे। लेकिन यह सत्ता का राजकारण अैसा भयंकर जाल है कि अिसमें से शायद व्यक्तियों को भी निकल जाना पड़े। वहाँ अुनकी अहिंसा की कड़ी-से-कड़ी परीक्षा होगी। अुन्हें कटु अनुभव आयेगा, तब वे भी निकल आयेंगे। लेकिन आज तो मैं संघ के लिअे ही कह रहा हूं। संघ को कांग्रेस कमेटियों का, यानी चुनाव और सत्ता के राजकारण का, त्याग ही करना चाहिअे। अिस राय में मैं और ही दृढ़ हो गया हूं। अुस राजकारण के योग्य यह संघ नहीं है। मैं खुद अुसके लायक नहीं हूं। आपके अध्यक्ष तो अुसके लिअे और भी कम लायक हैं। वे तो अेक तत्ववेत्ता, नीतिशास्त्रज्ञ और लेखक हैं।

'गांधीवाद' को छोड़ दीजिये

तीसरी बात अेक वाक्य में कह दूं। सच बात तो यह है कि आपको 'गांधीवाद' नाम को ही छोड़ देना चाहिअे; नहीं तो आप अंधकूप में जा कर गिरेंगे। गांधीवाद का तो ध्वंस होना ही है। 'गांधीवाद का ध्वंस हो' की आवाज मुझे प्यारी लगती है। 'वाद' का तो नाश ही होना अुचित है। वाद तो निकम्मी चीज है। असली चीज अहिंसा है। वह अमर है। वह जिन्दा रहे; अितना मेरे लिअे काफी है। गांधीवाद का ध्वंस तो मैं शीघ्र ही देखना चाहता हूं।

आप साम्प्रदायिक न बनें। मैं तो किसीका साम्प्रदायिक नहीं बना। कोओी सम्प्रदाय कायम करना कभी मेरे ख्वाब में हो नहीं आया। मेरे मरने के बाद मेरे नाम पर अगर कोओी सम्प्रदाय निकला, तो मेरी आत्मा रुदन करेगी। अितने बरसों तक हमने जो चीज चलायी, वह कोओी 'वाद' नहीं है। हमे किसी 'वाद' में नहीं पड़ना है; मौन धारण करके अपने सिद्धान्तों के अनुसार सेवा करते रहना है।

मेरा अनुयायी कोओी नहीं

लोग चाहे जो कहें; सेवा का कोओी संप्रदाय नहीं बन सकता। वह तो सबके लिअे है। हम सबको स्वीकार करेंगे। सबके साथ चलने की कोशिश करेंगे। यही अहिंसा का रास्ता है। अगर हमारा कोओी 'वाद' है, तो वह यही है। गांधीवाद कोओी चीज नहीं। मेरे पास कोओी अनुयायी नहीं है। मैं ही अपना अनुयायी हूं। नहीं, नहीं, मै भी अपना पूरा पूरा अनुयायी कहाँ बन पाया हूं? अपने विचारों पर मैं भी कहाँ अमल कर करता हूं। तब दूसरे मेरे अनुयायी कैसे हो सकते है? दूसरे मेरे साथ चलें, मेरे सहयात्री रहें, यह तो मुझे प्रिय है। लेकिन कौन आगे चले और कौन पीछे चले, अिसका मुझे कहाँ पता है? आप सब मेरे सहाध्यायी, सहकर्मी, सहसेवक, सह-संशोधक हैं। अनुयायी होने की बात आप छोड़ दें। कोओी आगे नहीं, कोओी पीछे नहीं। कोओी नेता नहीं, कोओी अनुयायी नहीं। हम सब साथ-साथ हारबन्द (अेक कतार में) चल रहे हैं। यह बात कओी बार कह चुका हूं; लेकिन आप लोगों को याद दिलाने के लिअे फिर से दोहरा दी है।

मिथ्या राजकारण

हमें कांग्रेस में सत्ता का त्याग करना है। अिसके विषय में आप अपना दिमाग बिलकुल साफ कर लें, तो आगे की बात आपकी समझ में आ सकेगी। मुझसे पूछा गया है कि 'क्या हम म्युनिसिपालिटी आदि संस्थाओं से भी हट जायं?' मैं यही कहूंगा कि म्युनिसिपालिटी को भी छोड़ना चाहिअे। नागपुर की म्युनिसिपालिटी का किस्सा मै जानता हूं। वहाँ की कांग्रेस म्युनिसिपल पार्टी में कितना वैमनस्य, कितना वैरभाव पैदा हो गया है, यह देख कर मैं चकित हो गया। अुसके बारे में मैं बहुत थोड़ा जानता हूं। गोपाळराव अुसका अितिहास भीतर से जानते हैं। वहाँ की कॉंग्रेस म्युनिसिपल पार्टी में तीन पक्ष हो गये हैं। तीनों आपस में लड़ते हैं। तीनों पक्षों के आदमी मेरे पास चले आये और अपनी अपनी बात कह गये। मेरे दिल पर बहुत बुरा असर हुआ। वहाँ की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में भी काफी वैरभाव है। मैंने अुनसे कहा कि 'प्रान्तिक कांग्रेस कमेटी पर अे. आओी. सी. सी. का अंकुश है। आप सरदार या राजेन्द्रबाबू के पास जाअिये।' अैसी किसी संस्था में यदि गांधी सेवा संघ का सदस्य चला जावे, तो मुझे बहुत बुरा लगेगा। वह वहाँ जा कर क्या कर सकता है? हम तो तीस कोटि के साथ अद्वैत सिद्ध करना चाहते हैं। यह तभी होगा जब कि हम शून्यवत् बनेंगे। हमें अधिकार से क्या काम? सत्ता का राजकारण मिथ्या है। हमें लोगों को सच्चा राजकारण बताना चाहिअे। जो काम दूसरे लोग नहीं करते, बलिक जिसे वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वही रचनात्मक काम हम करेंगे। गांधी सेवा संघ रचनात्मक कार्य करते रहने में अपना जीवन सफल मानेगा। संघ के सदस्यों में से राजकारण में प्रत्यक्ष हिस्सा लेनेवाले चौरासी आदमी हैं। वे तो हट जायेंगे। लेकिन अुसके बाद संघ का क्या स्वरूप रहेगा, यह मैं अभी समझाता हूं।

गांधी सेवा संघ की हस्ती रचनात्मक कार्यक्रम के लिअे है। वही सच्चा राजकारण है। अधिकार का त्याग करके हमें अुस सच्चे राजकारण को सुशोभित करना है। कोअी अुसे राजकारण न कहे, तो हमें अुसकी क्या परवाह है? हम कॉंग्रेस की मर्यादा में रहेंगे; लेकिन सत्ता और चुनाव से हट जायेंगे।

स्नातकों के लिये अध्ययन और खोज की संस्था

सत्य और अहिंसा में जो लोग मेरी तरह मानते हैं, अुनकी फेहरिस्त का रजिस्टर रखने के लिअे गांधी सेवा संघ की जरूरत नहीं है। अैसी किसी फेहरिस्त की मैं कोअी आवश्यकता नहीं देखता। 'तब भविष्य में संघ का क्या स्वरूप और क्या कार्य हो सकता है,' अिसका विचार मैं कल कर रहा था। मैं जिस नतीजे पर आया हूं, वह अब आपके सामने रखता हूं। मेरे नजदीक अब गांधी सेवा संघ अेक 'पोस्ट ग्रैज्युअेट स्टडी' जैसी संस्था बन जाती है। हमारे यहाँ जितनी संस्थाअें मेरे नाम से, यानी मेरी देखभाल—या मार्गदर्शन में चल रही हैं, वे सब रचनात्मक कार्य के लिअे ही हैं। चरखा संघ, ग्राम अुद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ, तालीमी संघ—अिन सबका मार्गदर्शक मैं ही हूं। दक्षिण भारत के हिन्दी-प्रचार में मेरा हाथ रहा है। सारे भारत के हिन्दी-प्रचार की नीति पर मेरा अंकुश चलता है। मेरे नजदीक ये सब सच्चे राजकारण के अविभाज्य अंग हैं। अहमदाबाद में जो मजदूर संघ चलता है, अुसपर भी मेरा अंकुश है। अिन सब संस्थाओं के लिअे गांधी सेवा संघ पोस्ट ग्रैज्युअेट अध्ययन और संशोधन का काफी काम कर सकता है। ये सारी संस्थाअें यह कार्य पर्याप्त मात्रा में नहीं कर सकतीं; क्योंकि अुनका कार्यक्षेत्र मर्यादित है। अुदाहरणार्थ चरखा संघ को लीजिये। अुसकी नीति तो मैंने बना दी है। वह नीति यह है कि जो लोग भूखे और गरीब हैं, जिनके पास साल में करीब करीब छह महीने का वक्त खाली रह जाता है, अुनके हाथ में जितना पैसा दे सके, दे; और दूसरों को समझा-बुझा कर, अुनकी पारमार्थिक बुद्धि को जाग्रत कर, अिन गरीबों की बनायी हुअी खादी खरीदने को अुन्हें प्रेरित करें। चरखा संघ के कार्यक्षेत्र में स्वावलंबन भी आता है, लेकिन अिसी प्रधान कार्य की मदद करने के अुद्देश्य से। अुसमें स्वावलंबन का वह पहलू नहीं आता, जो प्रफुल्लबाबू ने आप लोगों के सामने रक्खा था। प्रफुल्लबाबू ने तो अुसका अहिंसा से और स्वराज्य से अनुसंधान करके कहा था। अुस प्रकार का स्वावलंबन चरखा संघ के क्षेत्र में नहीं आता। मैं शंकरलाल से यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि वह कातनेवाली गरीब औरतों को चरखे में भरी हुअी सारी बातें समझावें।

प्रफुल्लबाबू की योजना का स्पष्टीकरण

वह तो आपका काम होगा। प्रफुल्लबाबू ने अुस दिन कहा कि आप लोगों को साल में कम-से-कम अेक लाख गज सूत कातना चाहिअे। अुसका मैंने हिसाब किया तो मालूम हुआ कि करीब तीन सौ गज रोज कातना चाहिअे; तब साल में अेक लाख होगा। बात यह है कि तीन सौ गज निकालना, अच्छे चरखे और अच्छी पूनियाँ हों, तो पौन घण्टे का काम है। आध घण्टे में करनेवाले भी पड़े हैं। आप लोगों से तो मेरी अपेक्षा अधिक-से-अधक होगी। आप लोगों के लिअे तो कातने की कला हस्तामलकवत् होनी चाहिअे, क्योंकि आप तो पोस्ट ग्रैज्युअेट ठहरे। आप सच्चे दिल से ध्यानावस्थित हो कर कातेंगे। तीन सौ गज आध घण्टे में कातनेवाले कुशल कारीगर भी हैं। लेकिन आप केवल कुशल कारीगर ही नहीं होंगे; आप तो चरखे के जरिये अीश्वर-दर्शन करने की चेष्टा करेंगे जैसा कि मैं कर रहा हूं। तभी मेरी परीक्षा में अुत्तीर्ण होंगे। यह प्रफुल्लबाबू की योजना का मेरा स्पष्टीकरण है।

अेक अेक विशेष अंग के विशेषज्ञ

चरखा संघ वाले, ग्राम अुद्योग संघ वाले, अपने अपने क्षेत्र के संबंध मे विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिअे आपके पास आयेंगे। आपको अैसे कामों में संपूर्णता और विशेषता प्राप्त करनी होगी। हरअेक आदमी सभी बातों का विशेषज्ञ नही हो सकता। लेकिन अेक अेक आदमी अेक अेक काम का विशेषज्ञ बन सकता है। डॉक्टरों में भी कोअी डॉक्टर फिजिशियन होते हैं, तो कोअी सर्जन होते है। सर्जरी में भी कोअी आँख के, कोअी नाक के, कोअी गले के विशेषज्ञ होते है। अिसी तरह हम अेक अेक विभाग सम्हाल लें। यह पैसा कमाने की बात नहीं है। दूसरे विशेषज्ञ पैसा कमाने के लिअे आविष्कार और संशोधन करते है। हमें गरीबों की सेवा और अुन्नति के लिअे विशेषज्ञ बनना है। भविष्य में गांधी सेवा संघ यह कार्य करेगा तभी अुसका अस्तित्व सार्थक होगा। अगर आप संघ को रखना ही चाहें, तो अिस रूप में रखें; या अुसे बन्द कर दें; नहीं तो सारे जगत में हमारी हँसी होनेवाली है और हमारे ही हाथों से गांधीवाद का ध्वंस होनेवाला है। हम अपने दिल को धोखा न दे।

खोज का दूसरा विषय

दूसरा भी अेक हमारा कार्यक्रम रहेगा। मैंने मजदूर संघवालों से कह दिया है कि वे राजकारण में पडेंगे तो मरेंगे। चरखा संघवालों से कह दिया है कि तुम्हें राजकारण से कोअी मतलब नही है। अगर तुम स्वराज्य के राजकारण में पडोगे तो तुम्हारा सूत कच्चा निकलेगा, क्योंकि ध्यान बँट जायगा। अपना काम भी ठीक नही कर सकोगे, निकम्मे ठहरोगे। हरिजन सेवक संघ से कहा कि स्वराज्य से तुम्हारा कोअी संबंध नहीं है। वे अपना काम करते जावें तो अुसीमें से स्वराज्य अपने आप पैदा हो जायगा।

लेकिन आपके लिअे क्या है? आपको देखना होगा कि गाधी कहता है कि मै चरखे में अीश्वर का दर्शन करता हूं। अुसका क्या मतलब हो सकता है? हम अुसका अक्षरार्थ लें, या अुसका रहस्य लें, या दोनों? मै तो कहूंगा कि आप दोनों ले। भावार्थ यह है कि चरखे के प्रत्येक धागे में आप अीश्वर का दर्शन करें। चरखे जैसी सेवा की प्रवृत्तियाँ हमें अीश्वर के नजदीक ले जाती है, यह अुसका रहस्य है। आप देखेंगे कि अिस प्रकार हमारी अिन प्रवृत्तियों में बडी व्यापक भावना भरी हुअी है।

अक्षरार्थ

अुसका अक्षरार्थ भी व्यापक-सा ही है। आप तो पोस्ट-ग्रैज्युअेट की लेबॉरेटरी में (प्रयोग-शाला) में शोध और अविष्कार करेंगे। अिसके लिअे आपको चरखा-शास्त्र में ही नहीं, बल्कि कातने की कला में भी निपुण होना चाहिअे। गांधी सेवा संघ से विशेष ज्ञान और विशेष कौशल्य की अपेक्षा रक्खी जायगी। आपका चरखा संघ के चरखे से अच्छा चले। आपका धागा महीन मजबूत और अटूट होगा। तार टूटना आपके लिअे शर्म की बात होगी। जो शास्त्री है अुसके शस्त्र भी अच्छे-से-अच्छे होने चाहिअे। आपकी पूनियाँ, आपके औजार, सभी में विशेषता होगी। मै आपको केवल कुशल मजदूर नही बनाना चाहता। मैं तो आपको कुशल कलाकार और वैज्ञानिक शोधक बनाना चाहता हूं। आपसे अनोखी चीज चाहता हूं। आपके चरखे में और चरखा संघ के चरखे में अुतना ही अंतर होगा, जितना कि मेरे अुस्तरे में और अेक हजाम के अुस्तरे में होगा। आपके साधन अनोखे होंगे।

यहाँ आप दूसरों की बनाओी हुयी पूनियों से कातते हैं। लेकिन अुस स्थिति में जिन पूनियों से कातेंगे वे साधारण नहीं होंगी। पूनियाँ बनाने के तरीके में आप सुधार करेंगे। अच्छी-से-अच्छी पूनियाँ खुद बनायेंगे और बनवायेंगे। अिस तरह हर अेक छोटी-छोटी तफसील की बात का अध्ययन करेंगें; जैसा कि विनोबा ने किया है। अुन्होंनें तो प्रयोग कर कर के हर अेक चीज का अेक शास्त्र ही बना दिया है। पूनियाँ बनाने की नयी तरकीब निकाली है। आंध्र में मछली के दाँतों का अुपयोग करते है। विनोबा की पद्धति में आन्ध्र-पद्धति का अनुवाद है। लेकिन अुन पूनियों से कता हुआ सूत आन्ध्र का मुकाबिला कर सकता है। अुन्होंने व्हेरम कपास के चालीस अंक के सूत का कपडा बनवा कर मेरे पास भेजा है। वह चीज प्रदर्शनी के लायक है। अेक मुसलमान लडके के हाथ से बनवाया हुआ है। आपके धुनकने के तरीके भी अैसे होंगे, जिससे किसीको कष्ट नहीं होगा। आपकी धुनकी में से कपास के तंतु नहीं अुडेंगे। खाँसीवाला आदमी भी बे-खटके धुनक सकेगा। आपके कपास पसन्द करने में भी कुछ विशेषता होगी। बेल (जिनिंग प्रेस की गठान) का कपास तो आप ले ही कैसे सकेंगे? आपकी ओटने की खास पद्धति होगी। अिसके लिअे धैर्य और शोधक बुद्धि चाहिअे, लगन चाहिअे। अगर यह सब आपने कर लिया, तो मेरे अक्षरार्थ का पालन कर लिया।

आपका विशिष्ट क्षेत्र

अिसके बाद आपको यह देखना होगा कि क्या चरखा आपकी अहिंसक शक्ति बढाता है? विनोबा ने अेकादश व्रतों का अेक श्लोक बनाया है। हर रोज आप अुसका अुच्चारण करते हैं। आपको देखना होगा कि क्या 'अुन ग्यारह व्रतो के पालन में चरखे से आपको मदद मिलती है'? चरखा संघ के चरखे में राजकारण भले ही न हो; लेकिन आपको देखना होगा कि 'आपके चरखे में राजकारण है या नहीं'? मतलब यह कि 'अुससे लोगों की शक्ति बढती है या नहीं? आजाद हिन्दुस्तान में स्वराज्य की जो अर्थव्यवस्था होगी, वह चरखे के आधार पर हो सकती है या नहीं? वह लोगों को केवल मजदूरी करनेवाले यंत्र बना देगा; या अहिंसक स्वराज्य के सिपाही बनायेगा'? यह सब आपको देखना है। चरखा संघ के क्षेत्र में ये बातें नहीं आतीं। अुसके क्षेत्र से परे जो विशेष कार्य रह जाता है, वह आपका क्षेत्र होगा।

आपको सोचना होगा कि क्या दरअसल चरखे से स्वराज्य मिलेगा? क्या दरअसल यह बात आपको जँचती है? या केवल गांधी कहता है, अिसलिअे आप अुसे मानते हैं। गांधी चरखे के द्वारा अीश्वर का दर्शन कर सकता है, या अुसमें से स्वराज्य पाने की आशा रखता है, यह अुसकी व्यक्तिगत बात भी हो सकती है। आपको अिस बात की खोज करनी होगी कि क्या यह सिद्धान्त सार्वत्रिक हो सकता है। जैसे जगदीशचंद्र बसु अपने क्षेत्र में संशोधक थे, वैसे आपको भी बनना होगा। अुन्होंने अेक पोस्ट-ग्रेज्युअेट कोर्स भी बनाया। मैंने देखा है कि वे कैसे अुसीमें जुटे रहते थे। अुनके जीवन का वही अेक विषय हो गया था। मैं तो अुनके साथ बैठनेवाला था। रातदिन कुछ दिनों तक अुनके घर में रहा। अुनके पास दस-बीस चुने हुअे आदमी थे। लेकिन दस-बीस चुने हुअे आदमी अगर अपनी धुन के पक्के हों, तो करोडों का काम कर लेते हैं। विशारदों का काम तो अैसा ही होता है। चरखा संघ, ग्राम अुद्योग संघ यह काम नहीं कर सकते। वहाँ भी विशारद हैं, संशोधन भी करते हैं, लेकिन आपका क्षेत्र अुनसे भी व्यापक और विशिष्ट होगा। मैं तो अुनके द्वारा खासकर दरिद्र-नारायण की सेवा करने की कोशिश कर रहा हूं। अुनका विकास अुसी दिशा में होगा। लेकिन आपका काम तो अनोखा

होगा। आप केवल औजार और अुपकरणों में सुधार ही नहीं करेंगे, बल्कि हमारे सिद्धान्तों से अुन चीजों का-संबंध भी देखेंगे। मेरी बुद्धि अेक सहाध्यायी की बुद्धि के तौर पर आपकी सहायता करेगी, लेकिन विशेष काम तो आप ही से कराना है।

हिंसक शोधकों का दृष्टान्त

अिसी तरह से संशोधन और आविष्कार सब जगह होता है। जर्मनी में देखिये कितने विशारद हैं। वहाँ अुन्हें हिंसा के शास्त्र के विशारदों की दरकार है। हमारे पास अेक छोटा-सा केन्द्र हो, तो हम भी अहिंसा के शास्त्र में खोज और विकास करेंगे। हमें चरखा और अुसके अिर्द-गिर्द की प्रवृत्तियों का अनुसंधान अहिंसा से करना है और आखिर अनजाम में अीश्वर से करना है।

आपको सोचना होगा कि क्या ये सब चीजें हो सकती हैं? आप देखते हैं कि हिंसा के आधार पर बना हुआ समाज भी विशारदों द्वारा ही चलता है। हम अेक नये समाज का निर्माण सत्य और अहिंसा के आधार पर करना चाहते हैं। अुसका शास्त्र बनाने के लिअे हमें विशारदों की जरूरत है। जिस तरह से आज जगत चल रहा है, वह हिंसा और अहिंसा का मिश्रण है। जगत का बाह्य रूप अुसकी भीतरी हालत का प्रतीक है। जर्मनी जैसा मुल्क जो हिंसा को ही अीश्वर मानता है, रात-दिन अुसीके विकास में लगा है; अुसीको सुशोभित करने की कोशिश में लगा हुआ है। हिंसा के पुजारी जो जो अुद्योग कर रहे हैं, हम देख रहे हैं। हमें भी यह समझ लेना चाहिअे कि हिंसावाले हमारी प्रवृत्तियाँ देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि हम अपने शास्त्र के विकास के लिअे क्या कर रहे हैं।

लेकिन हिंसा का मार्ग पुराना और रूढ़ है। अुसमें खोज करना अुतना कठिन नहीं है। अहिंसा का रास्ता नया है। अहिंसा का शास्त्र अभी बन रहा है। हम अुसके सारे अंग नहीं जानते। अिसमें खोज और प्रयोग का विशाल क्षेत्र पड़ा है। आप अपनी सारी बुद्धि लगा सकते हैं।

मेरे जीवन का अुद्देश्य

अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिअे त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो अुनका सेवक हूं। जो चीज करोड़ों की नहीं हो सकती, वह मेरे लिअे त्याज्य है; और मेरे साथियों के लिअे भी त्याज्य ही होनी चाहिअे। हम तो यह सिद्ध करने के लिअे पैदा हुअे हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। वह समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति हो सकती है। अभी हमने यह सिद्ध नहीं कर दिया है; लेकिन यही हमारे जीवन का अुद्देश्य हो सकता है। जिनका यह विश्वास न हो, या जिनसे यह न बन सके, वे कृपा करके हट जायँ। लेकिन मेरा तो यही स्वप्न है। अिसीको मैंने अपना कर्तव्य माना है। चाहे सारा जगत मुझे छोड़ दे, तो भी मैं अिसे नहीं छोड़ूंगा। मेरी श्रद्धा अितनी गहरी है। अिसे सिद्ध करने के लिअे ही मैं जिअूंगा और अुसी प्रयत्न में मरूंगा। मेरी श्रद्धा मुझे नित्य नया नया दर्शन कराती है। मेरी अुत्तर अवस्था में अब मुझसे अिसके सिवा दूसरा कुछ होनेवाला नहीं है। हाँ अगर मेरी बुद्धि ही कलुषित हो जाय, या मैं दूसरा कोअी नया दर्शन कर लूं, तो बात दूसरी है। लेकिन आज तो अहिंसा के नित्य नये नये चमत्कार मैं देखता हूं। रोज नया दर्शन और नया आनंद

मुझे मिलता है। मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिअे है। वह आत्मा का गुण है; अिसलिअे वह व्यापक है; क्योंकि आत्मा तो सभीके होती है। अहिंसा सबके लिअे है, सब जगहों के लिअे है, सब समय के लिअे है। अगर वह दरअसल आत्मा का गुण है, तो हमारे लिअे वह सहज हो जाना चाहिअे। आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार में नहीं चलता, राजकारण में नहीं चलता। तो फिर वह कहां चलता है? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी व्यवहारों में नहीं चल सकता, तो वह कोडी कीमत की चीज नहीं है। जीवन में अुसका अुपयोग ही क्या रहा? मैं तो जीवन के हर अेक व्यवहार मे अुसके अुपयोग का नित्य नया दर्शन पाता हूं। पचास वर्ष से अधिक साधना कर रहा हूं। अुस साधना का अनुभव अंशतः आप लोगों के सामने रखता आता हूं। आप भी अुसका दर्शन कर सकते हैं।

अगर संघ को रहना है, तो अिस काम के लिअे रहना चाहिअे। अगर आपमें अितनी अिच्छा, अुत्साह या शक्ति नहीं है, तो संघ को बंद करना ही सत्य और अहिंसा की साधना है। क्योंकि अैसा न करेंगे, तो हम अपराधी साबित होंगे; अप्रामाणिकता का पाप करेंगे। दूसराभी अेक पाप करेंगे। किशोरलालभाअी जैसा सेवक हमारे पास है। वह शुद्ध आदमी है, अविच्छिन्न अुद्यम करनेवाला है, अीश्वर ने अुसे सूक्ष्म बुद्धि दी है। अैसे सेवक का हम दुरुपयोग करेंगे। अगर वह राजी भी हो जाय, तो क्या हम अुसकी जान ले लेंगे? लेकिन मैं अुन्हे आग्रह क्यों करूंगा? आज हमारे पास अैसा कौन-सा अैसा काम है? हमें अुन्हें आज ही अिस बोझ से मुक्त कर देना चाहिअे।

सत्य और अहिंसा केवल सिद्धान्त नहीं है

अुस दिन मैंने आपसे कहा कि किस परिस्थिति में गांधीवाद का ध्वंस होना चाहिअे। आज फिर मैं आपसे कहता हूं कि अगर गांधीवाद गलती का समर्थन करता हो, तो अुसका ध्वंस होना चाहिअे। सत्य और अहिंसा कोअी आकाश-पुष्प नहीं है। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म से प्रकट होने चाहिअे। अिस संघ में किशोरलाल को जो कटु अनुभव हुअे हैं, अुन्हें वह कहना नहीं चाहता। वह मौन रह जाता है, क्योंकि वह सहनशील है। जब बात बहुत बढ़ जाती है, तभी मुझसे थोडा-सा कह देता है। वस्तुस्थिति का कुछ दर्शन मैं कर लेता हूं। हममें भी जो यह विखवाद (जहरीला मनमुटाव) पैदा हो गया है, वह क्यों? हम तो अेक कुटुंब के हैं। सत्य और अहिंसा को धारण कर बैठे हैं, हमारे में भी भेदबुद्धि है, वादबुद्धि है, द्वेषबुद्धि है, तो क्या सत्य और अहिंसा अिस जमीन की चीजें नहीं हैं? क्या वे आस्मान में ही रहने लायक हैं? हमने राजप्रकरण में जा कर अनुभव लिआ। हमारे संघ में भी अच्छे अच्छे आदमियों में वैमनस्य पैदा हो गया। (**घोत्रेजी**—किशोरलालभाअी ने राम और भरत शीर्षक दे कर सर्वोदय में अैसे झगडों की चर्चा की थी।) अरे, कहाँ राम और कहाँ भरत? किशोरलाल तो कवि भी हैं। अुन्होंने राम और भरत का काव्य बना दिया। यहाँ न तो कोअी राम है और न कोअी भरत। राम और भरत होते तो अैसी बात ही क्यों होती? कहाँ अुनका प्रेम और कहाँ अिनका झगडा। राम और भरत से तो ये करोडों कोस दूर हैं।

जब हम अेक ही संघ में हैं और सेवा के ही अुद्देश्य को ले कर आये हैं, तो हममें अैसा भेदभाव क्यों होना चाहिअे? हमें तो अेक-दूसरे से प्रेम ही करना चाहिअे। क्या आप जितने आदमी यहाँ आये हैं, वे अिस प्रकार के हैं? क्या वे अेक-दूसरे से प्रेम का व्यवहार करते हैं?

अगर जवाब में आप 'हाँ' कहें, तो मुझे आपकी बड़ी सख्त परीक्षा लेनी होगी। मुझे डर है कि हम अुस परीक्षा में अुत्तीर्ण नहीं होंगे। आप आपस में अपने विषय में अेक-दूसरे की सच्ची राय पूछें। अपने हृदय से पूछें, तब आपको पता चलेगा कि हम अभी अहिंसा से कोसों दूर हैं। जब हम अितने दुर्बल हैं तो कॉंग्रेस में क्यों पड़ें? वहाँ हम क्या सेवा कर सकते है? हमारे सामने जब कोअी हरीफ (प्रतिस्पर्धी) आ जाता है, तब हम बैठ क्यों नहीं जाते? कांग्रेस के अधिकार से हमारा क्या वास्ता है? हम चुनाव में किसीको परास्त करने की बात क्यों सोचें?

स्पर्धा छोड़ दीजिये

अगर हमारे अन्दर अधिकार की लालसा या अीर्ष्या का भाव नहीं है, तो बाहर अितनी कटुता क्यों पैदा हुअी? मालिकान्दा में ये आदमी आ कर ध्वंस के नारे क्यों लगाते हैं? क्यों अितना गोलमाल करते हैं? यहाँ पर जो बंगाली कार्यकर्ता हैं, अुनसे मै पूछता हूं। यह कटुता कैसे पैदा हुअी? आप अुनको प्रेम से वश करने की चेष्टा क्यों नहीं करते? आपमें से जो प्रमुख कार्यकर्ता हैं, वे अुनके पास जा कर प्रेम से अुनसे क्यों नहीं पूछते? प्रफुल्लबाबू हैं, सतीशबाबू हैं, वे नारे लगानेवालों के पास जायँ, अुनकी मण्डली में बैठें, प्रेम से अुनसे बात करें। मैं खुद यह कर चुका हूं। मेरे लिअे यह नयी बात नही है। मैं अुनका हरीफ थोड़े ही हूं। जो वे चाहते हैं, वह मैं नही चाहता। वे अधिकार चाहते हैं, मै अधिकार चाहता ही नहीं। स्पर्धा तो तभी होती है, जब दोनों अेक ही चीज चाहते हैं। हमे तो अुनके प्रेम का पात्र बनना है। अिसलिअे हम राजकारण को छोड़ दें। मैदान अुनके लिअे खुला छोड़ दें। अहिंसा अिसी तरह काम करती है। अिसीलिअे हमको सत्ता का राजकारण छोड़ देना है।

अनोखा पुस्तकालय

लेकिन हम बेकार और निकम्मे थोड़े ही बैठ रहेंगे? हम चरखा चलायेंगे और साथ साथ यह भी देखेंगे कि चरखे मे हमारी बुद्धि कुंठित होती जाती है, या तेजस्वी बनती जाती है। हम चरखे का अध्ययन करेंगे। 'चरखा क्या है, वह क्यों आया, कैसे आया, क्यों गया, हमे अुसका क्या अुपयोग है, अुसका क्या अितिहास है, क्या भविष्य है'—अिन सब बातों का अध्ययन हमें करना है। अिसके लिअे हमें अेक खास तरह की लायब्रेरी रखनी होगी। गांधी सेवा संघ के पास जैसी अनोखी लायब्रेरी होगी, वैसी जगत में और कहीं नहीं होगी। जब हम अिस प्रकार से काम करने लगेंगे तभी हम गांधीवाद की झंझट मे से निपटनेवाले हैं। यह अैसा कार्यक्रम होगा, जिसके लिअे हमारे आज के विरोधक हमारी स्तुति करेंगे। आज जो हमें कोसते है, वे ही हमें आशीर्वाद देंगे। यह बात अगर आपकी बुद्धि, शक्ति और अिच्छा मे अतीत है, तो आप वैसा कह दें। अुमसे यही सिद्ध होगा कि आज अैसा संघ बनाने की योग्यता हममें नहीं है। लेकिन अिससे जो बात मैंने आपके सामने पेश की है, वह थोड़े ही गलत साबित होगी?

संघ की जन्म-कथा

जब यह संघ बना था, अुस वक्त भी यह कल्पना नहीं थी। मैं जब जेल में था, तब जमनालालजी ने अिसे बनाया (१९२२-२३)। जमनालालजी तो अेक शुद्धहृदय के सेवक हैं। मैंने जब असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो अुन्होंने अपनी थैली का मुंह खोला। मैंने वकीलों से वकालत छोड़ने के लिअे कहा था। जमनालालजी ने वकालत छोड़ कर देश-कार्य में लग जानेवाले सो वकीलों के परिवार्य की तजवीज करना चाहा। अिसलिअे नहीं कि वे खुद कांग्रेस पर राज करना चाहते

थे, बल्कि जनता में सत्याग्रह की शक्ति जाग्रत करने के लिअे। अिन आदमियों को कांग्रेस में भेजने की अुनकी कल्पना नहीं थी। वे जब जब मेरे साथ बात करते थे, तब-तब यही कहते थे कि अिन आदमियों को राजकारण से अलग रक्खा जाय। पीछे असहयोगी वकीलों को निर्वाह के लिअे पैसा देने की बात के बदले रचनात्मक कार्य करनेवालों को देने का निश्चय हुआ। अिसीमें से अिस संघ का जन्म हुआ। जमनालालजी ने संघ के द्वारा राजकारण करने की बात कभी सोची ही नहीं थी। १९३४ में जब मैंने संघ को कुछ बड़ा रूप दिया, तब भी वे अनुकूल नहीं थे। बाद में हुदली में भी वे मेरे प्रस्ताव के खिलाफ थे। संघ को राजकारण में आने का आरोप अगर आप मुझपर करें तो अुसे मैं कबूल कर लूंगा। जमनालालजी पर यह आरोप करें, तो ठीक नहीं है।

अत्यंत अुत्कृष्ट ध्येय

आज मैंने फिर अेकाग्र हो कर संघ की नीति का विचार किया। अब तक अितनी आस्था से नहीं कर सका था। अुम्र के कारण मेरी शारीरिक शक्ति का ह्रास हो गया है। मेरी नजर सभी तरफ नहीं जा सकती। सभी बातों से मैं हमेशा ओत-प्रोत नहीं रह सकता। मेरा शरीर क्षीण हो गया है। किसी तरह आज तक अपनी जिम्मेवारियों का वहन किया है। मैं तो सम्मेलन में आने से भी बचना चाहता था; लेकिन प्रफुल्लबाबू ने आग्रह किया, अिसलिअे चला आया। आने पर अेकाग्र हो कर संघ की स्थिति पर विचार करने लगा। जो नतीजा निकला वह आपके सामने रक्खा है। आज तो मैं अिसी विचार से ओत-प्रोत हो गया हूं। किशोरलाल ने अितने वर्षों तक अिस अिस बोझ को अुठाया। अुसे संघ में लानेवाला तो मैं ही हूं। आज अुसकी क्या स्थिति हो गयी है? अुसका शरीर क्षीण हो गया है। मैंने अुसका भाषण पढ़ा। किशोरलाल आज यहां काम नहीं कर सकता, अिसलिअे मैं अितनी दिलचस्पी से यह विषय आपके सामने रख रहा हूं।

अेक तरह से अनायास अिस बात को मैं यहाँ कर रहा हूं। अगर आप संघ में राजकारण में सीधा हिस्सा लेनेवाले सदस्यों को नहीं रखते हैं, तो संघ को अेक छोटा-सा रूप प्राप्त हो जाता है। अगर यह सच्चा होगा, तो अुसीमें से बड़ा व्यापक वृक्ष बनेगा; नहीं तो वह मिट जायगा।

राजकारण के कारण २४३ सदस्यों में से ८४ निकल जाते हैं। अिसलिअे नहीं कि वे निकम्मे हैं, बल्कि अिसलिअे कि अुनका अुस क्षेत्र में अुपयोग है और वे अुसके लायक हैं। बाकी के जो रह जाते हैं अुनमें से अैसे कितने हैं, जो अिस बात को अनजाम दे सकते हैं? अिसके लिअे आप दो-चार आदमियों की कमेटी बनावें। वह अीश्वर को साक्षी रख कर अैसे आदमियों की फेहरिस्त बनावें जो अिस नये काम के योग्य हों। अुस कमेटी को यह भी निर्णय करने का अधिकार दे दें कि आगे अिस संघ को क्या रूप देना है। अिस विषय में अुस कमेटी के सामने आप भी अपनी अपनी राय संक्षेप में रक्खें, व्याख्यान न दें। लेकिन हर हालत में जिस तरह से संघ आज चल रहा है, अुसे तो समाप्त ही करना है। आगे वह चलाया जाय या नहीं, अगर चलाया जाय तो किस रूप में, यह सोचने की बात है। जिस रूप में वह चल सकता है, अुसकी कुछ रूपरेखा मैंने आज रक्खी है।

अब जो करीब करीब तीस वैतनिक सदस्य हैं, अुनका क्या होगा, क्या न होगा, यह सवाल रह जाता है। वह तो हिसाब-किताब की बात होगी। गांधी सेवा संघ की हस्ती वेतन चुकाने के लिअे थोड़ी ही है? वह तो जमनालालजी का अेक ट्रस्ट है, वह अेक छोटी-सी बात है।

भोजे और जमनालालजी कर सकते हैं। दूसरे किसीके सोचने की बात नहीं है। जमनालालजी और अुनसे जो संबंध रखनेवाले हैं, वे सोचें। अिसपर यह बात छूट जाती है।

बाकी के जो हैं अुनसे में पूछता हूं कि क्या आपकी राय में गांधी सेवा संघ का कायम रहना अच्छा है ? अगर आप अुसे रखना चाहें, तो अुस रूप में रखना होगा जो मैंने बतलाया है। आपको अभ्यास करना होगा, शोध करनी होगी, प्रयोग करने होंगे। तब तो बड़ा अुज्ज्वल जीवन होगा। अुसके लिअे बौद्धिक, शारीरिक और आत्मिक--तीनों प्रकार की शक्तियों को अेकाग्र करना होगा। वह देश के लिअे और जगत के लिअे अेक अनोखी बात होगी, जिसका कोअी द्वेष ही नहीं कर सकेगा। शरीर, आत्मा और बुद्धि का अेकीकरण करके आप मुल्क और जगत के सामने अेक नयी संस्कृति का आदर्श रखेंगे। अिससे भी बढ़कर कोअी ध्येय हो सकता है ?

यह अेक प्रौढ़ बात मैंने आपके सामने रख दी है। अगर वह आपकी शक्ति से बाहर हो, तो आज संघ को बिलकुल खतम करना ही अच्छा है। जो सत्य और अहिंसा की कसौटी पर अुतर सकते हैं, अैसे सर्वांगीण बुद्धि की भावना से काम करनेवाले विशारद ही अिसे बदले हुअे रूप में चला सकेंगे।

मैंने अपनी बात आपको विस्तार से समझा दी है। अब आप अपनी अपनी राय बतावें।

रचनात्मक कार्यकर्ताओं से निवेदन

अब पूज्य गांधीजी गांधी सेवा संघ से किस प्रकार का काम चाहते हैं, अिसका कुछ अंश में पता अिस अंक के ४४५–४४७ में छपे हुअे अुनके भाषण से चलेगा। जो कार्यकर्ता रचनात्मक कार्यों में काम कर रहे हैं, अुनको अब अिस विषय पर गंभीरता से खयाल देना चाहिअे और अुनको सोचना चाहिअे कि वे स्वयं अुसके बारे में क्या कर सकते हैं। गांधीजी से पूछनेपर कि वे संघकी ओर से अभी किन बातों का शोध चाहेंगे, अुन्होंने निम्न बातें सुझायी हैं। —

(१) खादी आदि का व्यापक प्रचार कैसे हो सकता है ?

(२) कताअी आदि ग्रामोद्योगों का अहिंसा से अनिवार्य संबंध है क्या ? यदि है तो किस प्रकार ?

(३) वे अुद्योग कौन-से हैं जो कि अहिंसा के बिना चल ही नहीं सकते ? और वे कौन-से हैं, जिनमें कि हिंसा अनिवार्य है ? वे कौन-से कि जिनमें हिंसा-अहिंसा, दोनों का मिश्रण है ? या अैसा भेद करना ही गलत है ?

(४) क्या अहिंसा की दृष्टि से हिन्दुस्तान में कुछ विशेषता है ?

जो सज्जन अिस विषय में दिलचस्पी रखते हों, चाहे वे संघ केसदस्य हों, या पहले कभी सदस्य रहे हों, या न भी रहे हों, अुन सबसे निवेदन है कि वे अुन बातों का अध्ययन कर अुन्हें कुछ विशेष सुझाना हो, तो सुझाने की कृपा करें।

श्रीकृष्णदास जाजू
अध्यक्ष, गांधी सेवा संघ.

वर्धा, ता० २१–३–४०

संघ का परिवर्तन

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

मालिकान्दा में संघ का जो रूपान्तर हुआ, अुसपर बाहरी जगत को आश्चर्य होना स्वाभाविक है। जिन पाठकों ने 'सर्वोदय' की टिप्पणियाँ ध्यान से पढी होंगी, अुन्हें अिस संभावना की कुछ कल्पना हो गयी होगी। फिर भी न सिर्फ अुन्हींको बल्कि संघ के और कार्यवाहक समिति के सदस्यों को भी मालिकान्दा में अिकट्ठा होने के पहिले जिस रूप में संघ का परिवर्तन हुआ, अुसकी कुछ भी आगाही न थी।

मालिकान्दा में मैं तो बीमार ही रहा और, सिवा दूसरे दिन के गांधीजी और सरदार वल्लभभाअी के प्रारंभिक भाषण के समय, सम्मेलन में हाजिर भी न रह सका, और चर्चाअें भी नही के बराबर सुनीं। अिसलिअे मेरा भी ज्ञान अखबारों और मित्रों के बयान और 'हरिजन' में आये हुअे लेखों तक ही मर्यादित है। हाँ, कार्यवाहक समिति में आखिरी निर्णय का मसौदा बनाने में मैंने पूरा हिस्सा लिया और जो निर्णय हुआ, अुसकी ओर से मैंने अपना सन्तोष प्रकट किया।

मैं जानता हूं कि अिस निर्णय से संघ के कुछ अुपस्थित सदस्यों को कष्ट हुआ है। जो सदस्य हाजिर नहीं रह सके थे, उन्हें समाचारपत्रों में संघ के रूपान्तर की बात पढ़ कर क्या मालूम हुआ होगा, अिसकी मुझे अभी तक कल्पना नहीं है। कुछ सदस्यों को जरूर कष्ट हुआ होगा। जिन्हें कष्ट नहीं हुआ, अुनकी अपेक्षा जिन्हें हुआ, अुनकी स्थिति विशेष स्वाभाविक है। पर संघ के सदस्यों का गांधीजी पर जो अटल विश्वास है, अुसके बल पर अुन्होंने अपने दिल का समाधान कर लिया होगा।

संघ के लिअे जो अुद्देश्य नयी कार्यवाहक समिति के सामने रक्खा गया है, अुसका अभी पूरा पूरा दर्शन मैं भी नहीं कर सका हूं। पर कल्पना का जितना विस्तार कर सकता हूं, अुसपर से देखता हूं कि संघ का यह नया स्वरूप अुसके समेटे हुअे स्वरूप से किसी प्रकार संकीर्ण या आसान नहीं, बल्कि अधिक विशाल और कष्टसाध्य है। समेटे हुअे संघ की सदस्यता के लिअे योग्यता का जो नाप आवश्यक माना जाता था, अुससे कअी गुनी अधिक योग्यता अिस नये सघ का काम करने के लिअे जरूरी होगी। नये स्वरूप के संघ का प्रस्ताव बनाते समय पू० गांधीजी तथा कार्यवाहक समिति के सदस्यों की भी यह अिच्छा अवश्य हुअी कि संघ को कायम रखने के लिअे सदस्यों की कम-से-कम जो संख्या कानूनन जरूरी होती है, अुससे कुछ तो अधिक सदस्य पहले ही से मुकर्रर कर दे। पर, कुछ दुःख के साथ यह महसूस किया गया कि दृढ विश्वास से ज्यादा नाम तुरन्त ही नहीं खोजे जा सकते। कअी नाम खयाल में आये। लेकिन, अुनके अनेक व्यवसाय, अनुपस्थिति, या दूसरी अड़चनों के कारण अुन्हें अुस समय के लिअे छोड़ देना पड़ा। जिनके नाम दर्ज किये गये, अुनकी नियुक्ति भी अिस अहंकार से नहीं हुअी कि वे अिस काम के लिअे सब तरह से योग्य ही है। पर काम शुरू करने के लिअे, या यों कहिये कि कम-से-कम बीज को सुरक्षित रखने के लिअे, जिनकी नियुक्ति में कोअी अड़चन पैदा होना संभव न था, और जिनकी अैसे काम में श्रद्धा मानी जा सकती थी, अुतने ही नाम दर्ज कर दिये गये।

अिसके मानी यह नहीं हैं कि संघ के कल तक के सदस्यों में, या देश में, संघ के नये अुद्देश्य को सिद्ध करने के लिअे योग्य पुरुष ही नहीं हैं। पर यह मंजूर करना होगा कि वे बहुत बडी संख्या में नहीं हैं।

अहिंसा की शक्ति और चरखा, ग्रामअुद्योग आदि योजनाओं का वैज्ञानिक ढंग से समर्थन श्री रिचर्ड ग्रेग जैसे अेक अमेरिकन विद्वान ने जिस तरह किया है, वैसा किसी भी भारतीय विद्वान या नेता ने नहीं किया। अुस तरह से गांधीजी के सिद्धान्तों का अध्ययन नहीं के बराबर ही हुआ है। यह हमारे लिअे अेक दुःखप्रद सत्य है। पर शायद, अिसे दुःख कहने में मेरी अधीरता ही कारणभूत हो। मुमकिन है कि गांधी-विचार और योजनाओं का शास्त्रीय और वैज्ञानिक अध्ययन करने का अब तक समय ही नहीं आया था। अिसलिअे गांधीजी को भी शास्त्रीयता और वैज्ञानिकता के प्रति अब तक कुछ अरुचि ही थी। लेकिन, अब वे महसूस करते हैं कि अुनके विचार और योजनाओं की अध्यात्म-शास्त्र, मानस-शास्त्र, समाज-शास्त्र तथा विविध वैज्ञानिक विद्याओं की दृष्टि से सत्यासत्यता, व्यवहार्य-अव्यहार्यता, हिताहितकरता आदि की खोज करनी चाहिअे, और 'गांधीजी को क्या प्रिय होगा ?'—अिस दृष्टि से ही नहीं, बल्कि 'किस विषय में क्या सत्य, व्यवहार्य और योग्य है ?'—अिस दृष्टि से अुनके विचार और योजनाओं के हरेक अंगप्रत्यंग का परीक्षण करना चाहिअे।

पाठक देखेंगे कि संघ के स्वरूप में यह अेक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। अब तक संघ का अुद्देश्य—"गांधीजी के सिखाये हुअे सत्याग्रह के सिद्धान्तों के अनुसार जनता की सेवा करना"—रहा। अिसके मानी होते हैं कि संघ के सदस्य गांधीजी के सिद्धान्तों को प्रमाणभूत मान कर ही चल सकते थे। यह कहा जा सकता है कि अेक दृष्टि से अिसमें साम्प्रदायिकता का पूरा लक्षण था। अब संघ गांधीजी की शिक्षाओं की भी परख करने की हिम्मत कर सकता है। और गौरव की बात यह है कि यह क्रांति स्वयं गांधीजी की ही प्रेरणा से की गयी है।

अहिंसा के द्वारा किसी संस्था में आमूल क्रांति किस तरह हो सकती है, अिसका भी अिसमें से अेक अनुपम अुदाहरण हमें मिलता है। अगर गांधीजी के प्रति सदस्यों का अंशमात्र भी अविश्वास होता, तो श्री वल्लभभाअी, श्री राजेन्द्र-बाबू, श्री गंगाधरराव देशपांडे, श्री शंकरराव देव आदि अखिल भारतीय और अनेक छोटे-मोटे प्रान्तीय नेताओं की बनी हुअी अिस संस्था के लिअे अपने आपको मिटा देना आसान बात न होती। अिस संस्था को चाहे जैसा स्वरूप दिया जा सकता था। अिसके लिअे अुसके पास संपत्ति थी। अुसके द्वारा अेक बड़ा राजकीय दल का निर्माण किया जा सकता था। गांधीजी को अेक नया अवतार या पैगंबर बना कर अेक नया धर्म-संप्रदाय बनाना भी संभवनीय था। लेकिन, मानो बिजली के वेग से, गांधीजी ने संघ की अेक राजकीय दल या धर्म-संप्रदाय बनने की संभावना को तोड़ दिया। अिसमें जितनी बधाअी गांधीजी को दी जा सकती है, अुतनी ही अुनके निर्णय को मान लेनेवाले संघ के सारे सदस्यों को भी देनी चाहिअे।

श्रीकृष्णदासजी जाजू पर परिवर्तित संघ की अध्यक्षता का भार आ गया है। संघ का पुराना स्वरूप रहता तो भी कार्यवाहक समिति के सदस्यों की अिच्छा यही थी कि वे ही मेरे स्थान पर अध्यक्ष होना स्वीकार करें। लेकिन पुराने स्वरूप के संघ के अध्यक्ष बनने के लिअे हम अुन्हें राजी नहीं कर सके और परिवर्तित संघ की जिम्मेदारी अुठाने का जब

अुन्होंने स्वीकार किया, अुस वक्त परिवर्तन के स्वरूप का अुनका खयाल कुछ अलग ही था। अुसमें अेक नया अुद्देश्य जोड़ दिया जायगा, अैसी कल्पना नहीं हुअी थी। पर अेक बार कंधा देना मंजूर कर लेने के बाद 'धुरंधरों' का यह कुल-धर्म ही हो जाता है कि अुसपर जो बोझ रक्खा जाय, अुसे सह लें। अिस कुल-धर्म का अुन्होंने भंग नहीं किया, और हमारा प्रस्ताव बनाने का काम आसान हुआ। फिर, यह नया काम भी अिस प्रकार का है कि जिसमें अुनकी स्वाभाविक रुचि है, और अुसको व्यवस्थित स्वरूप देने का वे आत्मविश्वास भी रख सकते हैं। अलबत्ता, यह काम अैसा नहीं है कि जो केवल अुन्हीं पर सारा बोझ पड़े तो सफल हो सके। अिस दृष्टि से पुराने संघ से भी अिसका काम ज्यादा मुश्किल है। पर समान रुचि और शील रखनेवाले विचारक, अध्यापक, कार्यकर्ता आदि के सहयोग से अुसे बढ़ाने की वे आशा कर सकते हैं। मैं आशा करता हूं कि संघ के सारे पुराने सदस्य, और सदस्य न होते हुअे भी जो संघ के हित-चिंतक, प्रशंसक और गांधीजी के विचारों के समर्थक रहे हैं, वे सब अुन्हें पूरी-पूरी सहायता देंगे। परमात्मा चाहेगा, तो अुनके द्वारा संघ और भी अधिक तेज और बल प्राप्त करेगा।

संघ का अहसान

गांधी सेवा संघ के जिस स्वरूप का हमने मालिकान्दा में विसर्जन कर दिया, अुससे संघ के सदस्यों को कितनी लाभ-हानि हुअी यह तो वे ही कह सकते हैं। मैं जानता हूं कि विसर्जन से कुछ सदस्यों के दिल को कष्ट जरूर पहुंचा। अिसपर से यह अनुमान करने में हर्ज नहीं कि वे संघ से कुछ फायदा महसूस करते थे।

पर, मुझे तो संघ से सब तरह का लाभ ही हुआ है। अेक तरह से देखें तो मालूम होता है कि मानों संघ का १९३४ का रूपान्तर मेरे वास्ते ही किया गया था और जब अधिक फायदा अुठाने की मेरी ताकत नहीं रही, तब अुसका विसर्जन भी कर दिया गया। अिसकी आध्यात्मिक समालोचना करने का मौका कभी मिला, तो करने का विचार है। अिस वक्त स्थूल प्रमाण ही देता हूं।

संघ के १९३४ के रूपान्तर को स्वयं श्री जमनालालजी से ले कर करीब-करीब सब सदस्यों ने अुसी आश्चर्य की दृष्टि से देखा था, जिससे मालिकान्दा में हुअे रूपान्तर को देखा। अैसा कोअी रूपान्तर गांधीजी सुझायेंगे, यह कल्पना १९३४ के सम्मेलन को बुलाने के समय संघ के नेताओं को न हुअी थी। पर, मानो, गांधीजी मुझे अपने छोटे-से कमरे और अुसमें आ कर बैठ सकनेवाले चंद मित्रों के ही समाज से निकाल कर अेक विस्तीर्ण प्रदेश और विशाल समाज में घुमाना चाहते थे। केवल जी में घूमने की लहर ला कर मैं देश-यात्रा करूं और अनेक लोगों से परिचय बढ़ाअूं यह मेरे स्वभाव के कारण मुमकिन नहीं था। लेकिन माना जा सकता है कि फिर भी अैसा मौका मुझे दिलाने के लिअे ही १९३४ में गांधीजी को यह सूझा कि संघ के जरिये यह काम किया जाय। अिसलिअे, यद्यपि संघ की अध्यक्षता के लिअे दूसरे अधिक योग्य पुरुष बहुमति से सुझाये भी गये थे और नजर में भी थे, तो भी मेरी नियुक्ति की गांधीजी ने सलाह दी, और सबने अुसे स्वीकार कर लिया।

अगर यह निमित्त न होता तो देश के अनेक प्रान्तों की यात्रा करने, अनेक तरह के कार्यकर्ता, छोटे-बड़े नेता, विद्वान साहित्यकार, विचारक तथा दूसरे आतिथ्यप्रेमी सज्जनों और सन्नारियों से परिचय करने, अनेकों से कायम की मित्रता

करने, अनेक संस्थाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन करने आदि के मौकों से मैं कैसे लाभ अुठाता ? जहाँ जहाँ मेरी पत्नी और मैं गया, हमें प्रेम का ही अनुभव हुआ। मैं कैसे मानूं कि परोपकार और अहिंसा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति नहीं हैं, वे केवल संस्कार-जन्य ही है, और स्वभाव से तो वह स्वार्थी और हिंसक ही होता है? मैंने कभी नेता की हैसियत प्राप्त ही नही की; न मेरे शरीर में कोअी आकर्षकता है। मैं कोअी अस्खलित वाणी से बोलनेवाला वक्ता भी नहीं हूं। मेरी आवाज़ कर्कश है। योग्य शब्द न सूझने से कभी-कभी बोलने में अैसा औचित्य-भंग कर देता हूं कि काका साहेब ने अेक बार विनोद में कहा था कि जिसकी घ्राणेंद्रिय तीव्र है, अुसे मैं व्याघ्र कहूं तो आश्चर्य नहीं। ('विशेषेण जिघ्रतीति व्याघ्रः'।) अध्यक्ष के नाते मेरे पास कोअी अैसी शक्ति तो नही थी, जिससे मैं किसीको कोअी बडा आर्थिक लाभ पहुँचा सकता। मुझसे किसीका नुकसान होने का डर नही था, अितनी ही अेक योग्यता (?) मैं बता सकता था। बाकी तो सारा—अगर अुसे 'सेवा' कहें तो—शब्दों का ही व्यवहार था। फिर भी मेरे प्रति अितना प्यार क्यों बताया गया ? मैं क्यों यह अनुमान न करूं कि मनुष्य लाभ की अिच्छा से प्रेम नही करता, लेकिन सिर्फ नुकसान के भय से ही द्वेष करता है? निःस्वार्थ में द्वेष नही किया जा सकता। स्वार्थ मे राग और द्वेष दोनों हो सकते हैं। लेकिन, मैं फिर आध्यात्मिक आलोचना में उतर गया। मेरा तात्पर्य यह है कि संघ से दूसरों को जो कुछ लाभ हुआ हो सो हुआ हो, मुझे तो सब तरह से लाभ ही लाभ हुआ। संघ के नेता और सदस्यों का मुझ पर जो अहसान हुआ है, अुसे ठीक तरह प्रकट करने की कला भी मैं नहीं जानता।

व्यक्तिगत

गांधी सेवा संघ के अध्यक्षपद से हट जाने के साथ ही मैंने अपने जीवन में कुछ परिवर्तन करना तय कर लिया है। वैसे तो मैं हमेशा अेक मंदगति कार्यकर्ता या लेखक रहा हूं। जितना काम श्री काका साहब या महादेवभाअी जैसे आधे घण्टे में पूरा कर देते अुतने के लिअे मैं ३–४ घण्टे लेता था। दो-अेक साल से यह मन्दता और भी बढ़ गयी है। अब अुतना ही काम मैं ७–८ घण्टे में भी पूरा कर नहीं पाता। फिर, अिसके साथ शारीरिक निर्बलता भी बढ़ रही है। जब संघ के अध्यक्षपद पर मेरी नियुक्ति हुअी, तब रोज़ाना ८–१० घण्टे मानसिक काम करना मेरे लिअे कठिन बात नही थी। बीमारी में भी मानसिक काम निभा सकता था। अब अिसमें भी थकावट मालूम होती है। और मैं पिछले दो साल के अनुभव से अैसा पाता हूं कि वह शक्ति कम होते-होते अब मुश्किल से ३–४ घंटे काम करने की रही है। और जब ज्वर आदि का दौरा हो, तो और भी कम हो जाती है। मैं केवल मानसिक थकावट ही नही पाता हूं, सार्वजनिक कामों मे भी मैं अुतना अुत्साह अब अनुभव नहीं कर सकता। बहुत छोटी अुम्र में जब मैंने सार्वजनिक कामों में हिस्सा लेना शुरू किया, तब जिन नेता के मातहत काम करता था, अुन्होंने मुझसे पूछा था, कि तुम्हारे अुत्साह के पीछे कौनसी मनोवृत्ति काम कर रही है ? मैंने कहा था कि "अेक खुजलीवाले बालक की। वह जिस तरह बिना खुजाये रह नहीं सकता, अुसी तरह मैं अिन कामों से अपने को रोक नहीं सकता।" छोटे या बडे जिन कामों में मैंने आज तक हिस्सा लिया है, अुनमें अैसी खुजली का ही अधिकांश में जोर रहता था। अिसीमें मेरा गुण और कमजोरी दोनों रहे-हैं।

मै अनुभव कर रहा हूं कि यह खुजली अब कुछ अंश में कम हो गयी है, अथवा मेरी खुजाने की शक्ति ही कम हो गयी है। जो भी हो, मेरा अब खुजाते रहने का अुत्साह काफी मंद हो गया है अैसा मालूम होता है।

अैसी हालत में मैंने धीरे-धीरे सब सार्वजनिक संस्थाओं और प्रदर्शनों से हट जाने का निर्णय किया है। जहाँ से हटने से साथियों को कुछ मुश्किल पैदा होना सभव हो, वहाँ अनुकूल समय की राह देखनी पड़ेगी। जहाँ से आसानी से हट सकता हूं, वहाँ से निवृत्त होने की अिजाजत माँगूंगा। सद्भाग्य से मैंने खुद को बहुत संस्थाओं में फँसा ही नहीं रखा है।

अिसी तरह किसी सभा, परिषद्, आदि के अध्यक्ष होने या व्याख्यान देने, या पढ़ने आदि सार्वजनिक जीवन के कामो से भी मैं अब दूर रहना चाहता हू और अुम्मीद करता हूं कि मेरे मित्रगण मुझे अिन कार्यक्रमों में खींचने का प्रयास न करेंगे।

व्यक्तिगतरूप से अथवा संघ के अध्यक्ष के नाते किसी पत्र के विशेषांक के लिअे अथवा सार्वजनिक प्रसंगों पर 'संदेश' या 'आशीर्वाद' आदि की माँगें मुझे आया करती थीं। यों भी अैसे औपचारिक 'संदेश' या 'आशीर्वादों' में मेरी कभी रुचि नहीं रही। मुझे अिन 'प्रचार-साधनो' में कुछ अश्रद्धा ही है। मेरी यह मान्यता है कि संदेश, फोटोग्राफ, ऑटोग्राफ आदि के पीछे जितना धनव्यय होता है, अुसके मुकाबिले में अिनसे होते हुअे प्रचार की कीमत बहुत ही कम है, और नेतागण अिन फैशनों को प्रोत्साहन दे कर देश को, अथवा अपने काम को, शंकास्पद लाभ ही पहुँचाते हैं। मेरी राय में अहिंसक संस्कृति और अिन रूढियों में विसंगति भी है। खैर। जहां तक मेरी चली, मैंने अिन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया। फिर भी, अध्यक्षता के कारण कभी कभी मुझे अिन रूढियों के वश होना ही पड़ा। आशा करता हूं कि अब मैं अिन विज्ञप्तियों से छुटकारा पाअूंगा।

अिस तरह भविष्य के लिअे मेरी अिच्छा जहाँ तक हो सके, निवृत्ति-प्रधान जीवन बिताते हुअे, लेखनादि द्वारा जो कुछ जन-सेवा बन पड़े अुतने ही से संतोष मानने की है। संभव है कि, अिस तरह, विचार के जिस क्षेत्र में मेरा विशेष प्रवेश है, अुसका कुछ लाभ मैं जनता को दे सकूं और कुछ अधूरे पड़े हुअे लेख, ग्रंथ आदि को पूरा या रद्द कर सकूं। मैं आशा पूर्वक अनुरोध करता हूं कि सार्वजनिक कार्यकर्ता, पत्रों के संपादक तथा सब मित्र अिसमें मेरी मदद करेंगे और मुझसे लेखादि की अधिक आशा न करेंगे। जब मेरे ही दिल में कुछ लिखने या सार्वजनिक काम करने की 'खुजली' पैदा होगी, तब की बात अलग है।

कुछ मासिक पत्र आदि मुझे नियम से मिलते हैं। अिनमें से जो मेरी अध्यक्षता के कारण भेजते थे, अुनसे मेरा अनुरोध है कि वे अब मेरा नाम हटा कर संघ के अध्यक्ष या मंत्री के नाम ही भेजने की कृपा करें।

वर्धा, १८-३-४०

संस्था या संघ ?

[काका कालेलकर]

१

श्री जमनालालजी जब गांधी सेवा संघ की स्थापना का संकल्प कर रहे थे, तब मैं साबरमती आश्रम में था। अुन्होंने गांधी सेवा संघ के आदर्श क्या हों, अिसका मसविदा मुझसे माँगा। मैंने अुस वक्त अुनको क्या क्या लिख दिया सो तो आज याद नहीं आता। लेकिन अेक बात की याद स्पष्ट रही है। अुसे आज फिर से दोहराना अुपयोगी है। अुन दिनों मैंने कहा था कि "आप अुसे 'मंडल' न कहियेगा। अुसे 'संघ' कहिये। आप अुसे 'संस्था' न बनाअिये। अुसे 'संघ' बनने दीजिये।"

जमनालालजी के मुझसे अिस भेद को स्पष्ट करने को कहने पर मैंने अपनी कल्पना अिस प्रकार स्पष्ट की थी:—

'संस्था' का अर्थ अेक अिंस्टीट्यूशन (संगठन) है और संघ है अेक ब्रदरहुड (बिरादरी)। संस्था में कोअी अध्यक्ष होता है, कोअी सेक्रेटरी और खजानची होते हैं और बाकी के सदस्य बनते हैं। वे अपनी नियमावली से बँधे रहते हैं। सदस्य बनाना और नियमों के अुल्लंघन के लिअे सदस्यता से पृथक करना आदि बातें अुसमें होती हैं। संस्था को अपने खर्च के लिये पैसे अिकट्ठे करके अुसका मालिक बनना पड़ता है। संस्था अिस युग की चीज है।

संघ की बात अिसके विपरीत है। संघ में कोअी किसीको सदस्य नहीं बनाता। मनुष्य की वृत्ति और अुसका जीवन देख कर अुसे 'सहधर्मी' माना जाता है। ('सहधर्मी' शब्द न मेरा है, न अुस समय का। श्री अप्पासाहेब पटवर्धन ने वर्षों बाद अिस शब्द को गढ़ा और चलाया किया।) संघ में अगर कोअी भूल करता है, तो कोअी भी संघी अुसे नसीहत दे सकता है; सच्चे राह पर आने के लिअे मदद भी कर सकता है। लेकिन जहाँ बाकायदा सदस्यता ही नहीं है, वहाँ अुसे छीन लेने का सवाल ही नहीं आता। अेक पिता के अनेक पुत्र जिस तरह अेकत्र रहते हैं, अथवा विभक्त रहते हुअे भी अेक-दूसरे को अपना समझते हैं, अेक-दूसरे के पुरुषार्थ से प्रसन्न होते हैं, दूसरे की गलती अपनी ही गलती समझकर दुःखी होते हैं, अुसी तरह का स्वरूप संघ के संबंध का भी है।

आज हमारे देश में अेक संगीताचार्य के पास अुस विद्या को ग्रहण करनेवाले सब व्यक्ति आपस में अेक-दूसरे को अपना गुरुभाअी मानते हैं, परस्पर आत्मीयता अनुभव करते हैं और अुस्तादजी की परम्परा शुद्ध रखने की अपने अूपर पूरी जिम्मेवारी मानते हैं, अुसी तरह संघ के संगठन की बात है।

संघ का संबंध निधि से न रहना चाहिअे। अगर आपके मन में संघ के प्रति आत्मीयता या आदर है, तो आप अपने पास ही चाहे जितनी रकम अलग रख दीजिये और अुसमें से जिसे आप चाहें, अुसे जितनी आप ठीक समझें अुतनी मदद दे दीजिये। अगर आप यह न तय करें अथवा अिस झंझट को अपने सिर पर न लेना चाहें, तो आप अेक सहायक मंडल स्वतंत्र-रूप से बना लीजिये और अुसके पास सहायता के लिअे निधि रख दीजिये।

सहायता लेनेवाला अगर अपरिग्रह को मानता है, तो अुसे कम-से-कम जितना चाहिअे, अुससे

अधिक वह लेगा ही नहीं। अुतना भी देना या न देना सहायक मंडल पर निर्भर रहेगा। किन्तु सहायता लेनेवाला अपने आपको 'आश्रित' या बद्ध माने तो वह "संघीपन" से अुस अंश में च्युत हो जायगा।

संन्यासी जहाँ तक हो सके किसीसे कुछ लेते ही नहीं, अगर लिया भी तो भी अुसपर आधार रख कर नहीं बैठते। अेक ही व्यक्ति से हमेशा मदद लेने मे आश्रितभाव आ ही जाता है। अिसलिअे संन्यासी के लिअे यह नियम है कि

'न अेकान्नादी भवेत् क्वचित्'

'कभी अेक का ही अन्न खाते न रहना चाहिअे'।

यह बात तो हुअी निवृत्तिमार्गी संन्यासियों की। गांधी सेवा मे माननेवाले अपने जीवन को सेवा-मय बनाना चाहते हैं, अिसलिअे किसी-न-किसी सेवा-संस्था का कारोबार भी अपने हाथ में रखते है। संस्था के लिअे वे जनता से निधि लेते रहेंगे। अथवा हम यों कह सकते हैं, जनता को जिस किसम की संघटित सेवा चाहिअे, अुसके अनुसार अेक संस्था बना देते हैं और संन्यासी के जैसे किसी प्रवृत्तिशील विरक्त से सेवा की मदद ले लेते हैं। पुराना शब्द 'निःस्पृह' था। अिससे भी पुराना शब्द 'अपरिग्रही' है।

गांधी सेवा संघ के बनाने में आपका अुद्देश्य कोअी खास वृत्ति चलाने के लिअे फंड अिकट्ठा करना तो है नहीं। संघियों को आजीविका देना ही आपका अुद्देश्य है। अिसके लिअे अेक स्वतंत्र संस्था स्थापित न कीजिये।

जब-कभी मुझसे संघ का सदस्य या पदाधिकारी बनने को कहा गया, तब मैंने अिनकार ही किया। जब श्री किशोरलालभाअी अध्यक्ष हो गये, तब भी मैंने सदस्य बनने से अिनकार ही किया। अुस वक्त अिन्कार करने के कारण दो थे— पहला तात्त्विक जो मैंने अूपर बताया है; और दूसरा व्यक्तिगत—क्योंकि मैं यह अनुभव कर चुका था कि मुझमें वह योग्यता नहीं है, जो सदस्य बनने के लिअे चाहिअे।

मेरी अूपर बतायी हुअी प्रथम कल्पना के कारण श्री किशोरलालभाअी मुझे संघ का सदस्य मानते थे और मेरे बाकायदा सदस्य न बनने के कारण सदस्य मान भी नहीं सकते थे। अिस-लिअे अुन्होंने मेरे जैसों का नाम रक्खा था 'असभ्य-सभ्य'। मेरे ख्याल से मेरी संघ की कल्पना अुनके शब्द से स्पष्ट हो जाती है।

श्री किशोरलालभाअी की अिच्छा के वश हो कर बाद में मैं सदस्य तो बना। मन में सोच लिया कि सदस्य बनने से यदि अपनी त्रुटियों को हटाने का बल मिले तो देख लूं। बल तो पाने का अनुभव न हुआ अिसलिअे फिर से अस्वस्थ हो गया। 'मालिकान्दा में अगर किशोर-लालभाअी अध्यक्ष-स्थान छोड़ देंगे तो मैं भी सदस्यता से मुक्त हो जाअूंगा', अैसा निश्चय करके ही वहाँ गया था। अिसी कारण वहाँ की चर्चा में मैं शरीक न हुआ। मेरा संकल्प कुछ दूसरे ही ढंग से सिद्ध हुआ।

मैं मानता हूं कि मेरी कल्पना के गांधी सेवा संघ का जन्म पद्मा के किनारे या मालिकान्दा मे हुआ। संघ की संस्थागत अुपयोगिता जितनी थी अुतनी दस व्यक्तियों के व्यवस्थापक मंडल में जीवित है। मेरी कल्पना का संघ अुससे अलिप्त है। यहाँ तक कि अुसने अपना नाम भी नअी संस्था को दे दिया है। और अब वह नामरूप छोड़कर केवल आत्मिकरूप से ही रहा है।

*   *   *   *

२

मालिकान्दा में जितने लोग अिकट्ठें हुअे, अुनमें से शायद ही किसीको यह ख्याल होगा

कि हम वहाँ जा कर पद्मा के पवित्र जल में अपने प्रियतम संघ का विसर्जन करेंगे। जब संघ का सचमुच विसर्जन हुआ, तो चंद लोगों को बड़ा दुःख हुआ। चंद लोगों ने संघ के पीछे कुछ आँसू भी बहाये। यह सब स्वाभाविक ही था। किन्तु आश्चर्य की और हर्ष की बात यह थी कि बहुत-से लोगों के ध्यान में यह बात तुरंत आ गयी कि हम क्या कर रहे हैं और वे अपनी प्रसन्नता कायम रख सके। स्वागताध्यक्ष श्री प्रफुल्लबाबू के मन पर गहरी चोट लगती तो कोअी आश्चर्य नहीं था; किन्तु वे शुरू से आखिर तक 'प्रफुल्ल' ही रहे। संघ के लिअे यह सचमुच शुभ लक्षण है।

मन में यह सवाल अुठता है कि, जिनका अुद्देश्य आध्यात्मिक प्रगति है। वे क्या कभी संस्था के रूप में संगठित हो सकते हैं? संस्था व्यवहार के लिये है। संस्था चीज ही अैसी है कि जिसके साथ कुछ लाभ-हानियाँ आ ही जाती है। आदर्श प्राणस्वरूप है; संस्था शरीर के स्थान पर है। शरीर के बिना प्राण रह सकते है। प्राणों के बिना शरीर टिक ही नहीं सकता। अनुभव यह है कि शरीर और प्राण साथ रह कर ही कुछ पुरुषार्थ कर सकते हैं। लेकिन यह भी अनुभव हुआ है कि शरीर और प्राण दोनों भिन्न-धर्मीय होने के कारण अुनमें आज तक कभी भी सुसंगति कायम ही नहीं हुअी, अिनका गार्हस्थ्य जीवन बे-मेल-सा ही रहा है। प्राणों की आज तक यही अेक परिपाटी रही है कि अेक शरीर धारण किया, अुससे न बना तो अुसे छोड़ दिया और दूसरा ले लिया, अुसे निभाने की काफी कोशिश की; फिर अुसे भी छोड़ दिया। यह सनातन प्रयोग-परंपरा चलती ही आयी है।

* * *

मालिकान्दा में अेक मित्र ने पूछा कि, "क्या अितिहास में अैसा कोअी अुदाहरण है जब किसी समर्थ पुरुष ने अपने ही हाथों से अपनी संस्था तोड़ दी हो? सचमुच यह गांधीजी का त्याग अपूर्व है।" मैंने जवाब दिया "पूर्व में तो अैसे अुदाहरण मिल सकते हैं, पश्चिम की बात मैं नहीं जानता।"

सिक्खों के दसवें बादशाह श्री गुरु गोविंदसिंह ने बिलकुल शान्त, अक्षुब्ध वृत्ति से यह नियम बना दिया कि दसवें गुरु के बाद गुरु की गद्दी पर कोअी नया गुरु नहीं बैठेगा। ग्रंथसाहब ही सिक्खों के लिअे गुरुस्थान में रहेगा।

और हमें यह भी न भूलना चाहिअे कि दुनिया के अनेक देशों में फैली हुअी 'स्टार ऑफ दी ओस्ट' संस्था श्री कृष्णमूर्ति ने अेक क्षण में तोड़ दी। बुद्ध भगवान ने अपने कार्यकाल के प्रारम्भ में और सम्राट अशोक ने अपने राज्य-काल के अंत में अपना अपना वैभवशाली राज्य और साम्राज्य छोड़ ही दिया था। जिन्हें आत्मा की अुपासना करनी है वे संस्था को अेक बहुत ही गौण साधन समझते हैं। जब तक वह अुपयोगी मालूम हुअी रख ली, विकास में बाधक हुअी तो तोड़ दी।

* * *

मालिकान्दा में गांधीजी ने जो कहा वह वे हमेशा कहते आये हैं कि "मेरे पीछे मैं कोअी पंथ या सम्प्रदाय, या फिरका छोड़ नहीं जाना चाहता। सत्य और अहिंसा सनातन तत्त्व हैं। अुनकी विभूतियाँ भी अनन्त हैं। अुन्हें अेक ही कल्पना, योजना या संस्था में कैद करना ठीक न होगा।"

किसी अेक महात्मा ने कहा है कि The 'formed' and the 'dead' are synonymous। आत्मतत्त्व कोअी शक्ति प्राप्त करने के लिये मूर्त बनता है और स्वतंत्र और

जीवित रहने के लिअे अमूर्त बन जाता है। ये आन्दोलन चलते ही रहेंगे।

३

गांधी सेवा संघ की स्थापना राष्ट्र-संगठन के कार्य को बढ़ाने और स्थिर करने के लिअे हुअी थी। राजनैतिक आन्दोलन के साथ अुसका सम्बन्ध पहले नहीं था। अुसके सदस्य रचनात्मक कार्यक्रम में मशगूल रहते थे। केवल अुसके मुरब्बी और ट्रस्टी राजनीति के साथ वास्ता रखते थे। राष्ट्र-संगठन और स्वराज्य-युद्ध—दोनों बातें संघ के सदस्यों के लिअे थीं; लेकिन संघ केवल राष्ट्र-संगठन को ही जानता था। जिसे युद्ध में जाना हो, अुसे जाने की पूरी अिजाजत थी। युद्ध और राष्ट्र-संगठन दोनों 'पावनानि मनीषिणां' होते हैं।

किन्तु बाद में अधिकार-ग्रहण आ गया। जो लोग हमें राजनीति से दूर रखना चाहते थे, वे ही हमारी सेवाअें राजनीति में चाहने लगे। हुदली के सम्मेलन में अिसकी काफी चर्चा हुअी। श्री राजगोपालाचार्य जिस चीज को नहीं कर सके थे, वही चीज संघ ने हुदली-सम्मेलन में की। संघ के संस्थापक श्री जमनालालजी और संघ के अध्यक्ष श्री किशोरलालभाअी दोनों के मन में बहुत-सी शंकाअें पैदा हुअी थीं। किन्तु दोनों अंत में बहुमत के साथ और गांधीजी के साथ सहमत हुअे, और तब से गांधी सेवा संघ का स्वरूप बदल गया। राजनैतिक लोग भी संघ की ओर आशा, आकांक्षा और शंका की नजर से देखने लगे। अुस वक्त हुदली में मैंने कहा था कि, "संघ में दो प्रकार के सदस्य हैं। अेक वर्ग राजनीति को प्रधानता देनेवाला है और दूसरा देश का आध्यात्मिक वायुमण्डल शुद्ध और समृद्ध बनाने की दृष्टि से राष्ट्र-संगठन करनेवाला है। दोनों की संघ की ओर देखने की अलग अलग दृष्टि हो सकती है। अिन दोनों में से राजनैतिक दृष्टिवालों को संघ की आवश्यकता अधिक है। दूसरे पक्ष का काम संघ में रहे बिना भी चल सकता है"। मेरे कहने का तात्पर्य यह हरगिज नहीं था कि राष्ट्र-संगठन वाले आध्यात्मिक हैं और राजनैतिक दृष्टिवाले आध्यात्मिक नहीं हैं। जहाँ दोनों गांधीजी की प्रेरणा से काम करते हैं, वहाँ अैसा भेद हो ही नहीं सकता। मैंने केवल दृष्टि-भेद या आग्रह-भेद की ओर संकेत किया था, और यह सूचित किया था कि संघ का केवल राजनैतिक स्वरूप भले संगठित हो जाय; किन्तु राष्ट्र-संगठन का काम करनेवाले पक्ष प्रधानतः राजनीति से अलिप्त रहें, यह जरूरी है।

हुदली के बाद डेलांग और डेलांग के बाद वृन्दावन में हम देख चुके कि संघ का स्वभाव अथवा स्वधर्म राष्ट्र-संगठन ही है। पक्ष-विपक्ष की राजनीति की ओर अुसका झुकाव बहुत कम है और वह राजनीति अुसे सधेगी भी नहीं। पक्ष-विपक्ष की राजनीति काजल के कमरे के जैसी है। अुसके अंदर घुसना और बेदाग वापिस बाहर आना आसान नहीं है।

मैं समझता हूं कि संघ ने कुछ भी निश्चय किया हो, अुसके सदस्यों ने कहीं कहीं चाहे जितनी गलतियां की हों, अधिकार-ग्रहण में सदस्य आपस में लड़े भी हों, तो भी संघ का स्वभाव प्रधानतया राजनीति-विमुख ही रहा है। श्री किशोरलालभाअी की प्रेरणा से संघ के सदस्यों को बहुत ही लाभ हुआ और हर स्थान पर काम आगे भी बढ़ा। श्री किशोरलालभाअी अध्यक्ष नहीं बनते, तो सदस्य अुन्हें न तो पहचान सकते और न अुनसे लाभ ही अुठा सकते। वे अध्यक्ष हुअे, यह संघ के लिअे बहुत ही अच्छा हुआ। अब वे अध्यक्ष नहीं हैं, संघ भी अपने पूर्व रूप

में नहीं है; किन्तु अिससे सदस्य अुनकी सलाह से वंचित रहें, अिसके लिअे कोअी कारण नहीं है। वह आध्यात्मिक संबंध आज भी जैसा-का-तैसा ही रहेगा और किशोरलालभाअी के अध्यक्ष न रहने से वह संबंध अधिक विशुद्ध, अधिक आध्यात्मिक, हो जायगा।

* * *

संघ के विसर्जन के कारण क्या कोअी व्यक्ति राजनीति से हट गया है? जिनके लिअे राजनीति का क्षेत्र स्वधर्मक्षेत्र था वे राजनीति मे अब भी मौजूद हैं। अगर कुछ फर्क हुआ है तो अितना ही कि अगर पहले राजनैतिक लोग संघ के नाम से बोल सकते थे तो अब नहीं बोल सकेंगे और राष्ट्र-संगठन का रचनात्मक कार्य करनेवालों को कोअी आदेश दे सकते थे तो वह शक्ति आज अुनके पास संघ की हैसियत से नहीं रही है।

जो लोग रचनात्मक कार्य करते थे, अुनकी दृष्टि से क्या फर्क हुआ, यह भी देखना चाहिअे। आज्ञा होने पर भी वे राजनीति में बहुत-कुछ कर सके हैं, अैसा अनुभव नहीं है। जिनके मन में थोड़ा मोह था, अुन्होंने वहाँ जा कर देखा और अनुभव किया कि राजनैतिक कार्य का आनन्द तो मन के लड्डू के जैसा है। जिनका वह स्वधर्म है अुनके लिअे वह ठीक है।

अिन दोनों दलों के बीच जो सहयोग अत्यावश्यक है, वह तो रहना ही चाहिअे। किन्तु अुसके लिअे संघ की आवश्यकता नहीं है।

राष्ट्र-संगठन के पहलू चाहे अनेक हों, किन्तु चीज तो अेक ही है। अिसलिअे भिन्न भिन्न पहलुओं के कार्यकर्ताओं के लिअे अेक-दूसरे के कार्यक्षेत्र का ज्ञान आवश्यक है ही। सहयोग भी पूरा पूरा चाहिअे। अेक की कमजोरी दूसरे सब पहलुओं को कमजोर कर ही देती है।

अब जो छोटा-सा मंडल बनाया गया है, वह ब्राह्मण का काम करेगा। ब्राह्मण सब वर्णों के गुरु थे। क्षत्रिय, कारीगर, वणिक् आदि सब लोग ब्राह्मणों के पास आ कर अपनी अपनी कठिनाअियाँ पेश करते थे और ब्राह्मण प्रयोग-पद्धति से या योग-पद्धति से अन्तर्मुख हो कर नये नये आविष्कार करते थे, और चिन्तन के फल-स्वरूप जो ज्ञान अुन्हें हासिल होता था, वह सब वर्णों की सेवा में अुपस्थित कर देते थे। नये मण्डल को यही काम करना होगा। गांधीजी से प्रेरणा पा कर अुन्हें 'गांधी-दर्शन' तैयार करना होगा। गांधी-दर्शन केवल अेक 'तत्त्व-दर्शन' नहीं है; 'जीवन-दर्शन' है। अिसलिअे नये मण्डल को केवल तत्त्वचर्चा के साहित्य के निर्माण से संतुष्ट न रह कर शोध-खोज द्वारा नये नये रास्ते दिखाने होंगे, नयी नयी योजनायें देश के सामने रखनी होंगी और नये नये पहलू दिखाने होंगे।

आकाश-दर्शन

[काका कालेलकर]

आज तक जो आकाश-दर्शन हमने किया, अुस-पर से अब चन्द बातें हमें तय करनी हैं। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती जाती है, अिसलिअे सारा आकाश और अुसमें प्रकाशित होनेवाले ग्रह, ज्योतियां आदि पूर्व से पश्चिम की तरफ जाती हैं। आकाश चौबीस घण्टे में यह जो अेक आवर्तन पूरा करता है, अुसकी काल्पनिक 'धुरी' (कील) अुत्तर ध्रुव से निकल कर पृथ्वी के पेट में से होकर मध्यबिन्दु को छेदती हुअी दक्षिण ध्रुव को जाती है। हम हिन्दुस्तान के लोग दक्षिण ध्रुव और अुसके आसपास का आकाश-प्रदेश देख नहीं सकते और अुत्तर ध्रुव और अुसके आसपास का प्रदेश हमारी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता। अिसी कारण शायद हम लोग अुत्तर दिशा को शुभ मानते हैं और दक्षिण दिशा को यमराज की अशुभ दिशा मानते हैं।

दक्षिण दिशा में अगस्ति, अुसकी झोंपडी, अुसके नीचे की ओर कॅरिना, अुसके बाद त्रिशंकु और जय-विजय, अित्यादि तारे हमने देख लिये हैं। आकाश का बड़ा बिच्छू भी दक्षिण का ही निवासी है।

अुत्तर की ओर ध्रुव, ध्रुवमत्स्य, सप्तर्षि और अुनके बीच का कालीय अित्यादि नक्षत्र-पुंज ध्यान में रखने लायक हैं ही। ध्रुव की अेक तरफ सप्तर्षि और दूसरी तरफ देवयानी (कॅसा-सोपिया) मुख्य हैं।

अिस तरह अुत्तर का और दक्षिण का आकाश देख कर जब हम बीच में आते हैं, तो आकाश में टेढ़े चक्र के जैसा अेक रास्ता दिखायी देता है, जिसपर सूर्य, चन्द्र और बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, वरुण, हर्शल, और प्रान्तक ये सब ग्रह घूमते हुअे नजर आते हैं। यह जो सूर्य चन्द्र और ग्रहों का आकाशी रास्ता है, अुसीको राशिचक्र कहते हैं। अिस रास्ते के बारह विभाग बना कर हर अेक विभाग में जो प्रधान प्रधान नक्षत्र दीख पड़ते हैं, अुनकी आकृति के अनुसार अुनको राशि के नाम दिये हैं।

अिन राशियों में वृषभ, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और मीन—अितनी राशियों की आकृतियां ध्यान में आ सकती हैं। भविष्य में हम अितनी ही राशियों की आकृतियाँ कैसे बन सकती हैं अिसके नक्शे देंगे। बाकी की राशियों की आकृतियाँ जबरदस्ती मानी गयी हैं। अुनके न जानने से हमारा कोअी नुकसान होनेवाला नहीं है।

अूपर जिस आकाशी रास्ते का जिक्र आया है, अुस रास्ते पर से चन्द्रमा भी जाता है। लेकिन अुसे रास्ते के बराबर बीच में से चलने की आदत नहीं है। कभी रास्ते के अेक सिरे से चलेगा, तो कभी दूसरे सिरे तक पहुँच जायगा। चंद्रमा यह आकाशी चक्र सत्ताअीस दिन में पूरा करता है, अिसलिअे हमारे वैदिक पुरखाओं ने राशियों का खयाल छोड़ कर आकाशी रास्ते के सत्ताअीस विभाग बनाये और अेक अेक विभाग को नक्षत्र का नाम दिया। बच्चों की शिक्षा में ज्योतिष-विद्या का प्रारंभ अिन सत्ताअीस नक्षत्रों के नाम कंठस्थ करने से ही होता था। भूगोलविद्या में अिंग्लैंड की कौण्टियां हमें कंठ करनी पड़ती थीं। अिससे बेहतर था कि हम भी खगोल-विद्या में अिन सत्ताअीस नक्षत्रों के नाम कंठ करते। अेक समय था जब भारत के सभी अुच्चवर्णीय लोगों को सत्ताअीस नक्षत्रों के नाम नंबरवार कंठ थे। पहले रविवार, सोमवार आदि वार

वारों के नाम कंठ किये, अुनके बाद चैत्र, वैशाख आदि बारह महीनों के नाम कंठ कर लिअे और फिर तुरंत सत्ताअीस नक्षत्रों की बारी आती थी। अुसके बाद ब्राह्मणों के लड़के साठ संवत्सरों के साठ नाम भी याद कर डालते थे।

बड़े दुःख की बात है कि हमारे देश के बड़े बड़े ज्योतिषी भी आकाश में ये सत्ताअीस नक्षत्र दिखाने में असमर्थ पाये जाते थे। जब अंग्रेजों का राज यहां पर कायम हुआ, तब चन्द गोरे विद्वानों ने हमारा ज्योतिषशास्त्र सीखना चाहा। तलाश करने पर अुन्हें पता चला कि जो आकाश में सत्ताअीस नक्षत्र बता सकें, अैसे ज्योतिषी भी अिस देश में बहुत कम हैं।

अिन सत्ताअीस नक्षत्रों में नीचे के नक्षत्र आसानी से पहचाने जाते हैं और ध्यान में भी आते हैं:– कृत्तिका, रोहिणी, मृग, पुनर्वसु, मघा, फाल्गुणी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, भाद्रपदा। अिन पंद्रह नक्षत्रों की आकृतियाँ भी हम बाद में देंगे।

नक्षत्र की पहचान अिसलिअे आवश्यक है कि 'चन्द्र और ग्रह अिस वक्त कहाँ हैं' यह आकाश में बताने के लिअे अिन नक्षत्रों के स्थान बड़े ही अुपयोगी होते हैं। स्थान-निर्देश की दृष्टि से अश्विनी, भरणी, आर्द्रा ये नक्षत्र भी बड़े काम के हैं।

श्रवण नक्षत्र के साथ अभिजित् भी देने का रिवाज कहीं कहीं है। अिस अभिजित् को ही हमने 'दशरथ' नाम दिया है।

पाठक कृपया दो-चार आने खर्च करके नये साल का पंचांग (पत्रा) खरीदें और अुसमें दिये हुअे नक्षत्र और राशियों के नाम कंठ करें। हर अेक पंचांग में ८ या १६ दिन की आकाश की स्थिति बताने के लिअे जो कुण्डलियाँ दी जाती हैं, अुन्हें भी समझने की कोशिश करें। अगले महीनों में अिन सब बातों की चर्चा क्रमशः की जायगी।

पौरुष का गौरव

यह नहीं कहा गया है कि विधाता नादान दुर्बलों को अपनी गोद में खिलाता है। वह हमें बुद्धि देता है, अिसका यह अर्थ है कि हम अपने ही अूपर निर्भर रहें। अुसने हमे यह आदेश दिया है कि हम रोते हुअे जा कर अुसका दरवाजा न खटखटायें। अुसने अपने-आपको हमारे क्षेत्र से अलग रक्खा है और वह निरंतर चिंताशील माता के समान बार बार प्रकट नहीं होता। अिसके लिअे मैं अुसे वन्दन करता हूं। मुझे पूरी पूरी जिम्मेवारी का अधिकार बख्श कर अुसने मेरे पौरुष को सम्मानित किया है। वह कायरों को अपने हाथ का सहारा दे कर नहीं चलाता; वरन् अुन्हें मृत्यु के अनुभव में से भी अकेले चलाने को मजबूर करता है ताकि वे निर्भयता से जी सकें।

मॉडर्न रिव्यू,
जनवरी, १९४०

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उपसंहार

१. गांधीजी का अन्तिम भाषण

गांधीजी—यह जो परिवर्तन आज हमने किया है, वह संपूर्ण तो नहीं हुआ। हम संघ को जो नया रूप दे देना चाहते थे, वह नहीं दे सके। जो समिति आपने बनायी अुसने सोचा कि संघ के भावी रूप का कुछ चित्र खींच कर रक्खें, लेकिन जब हम विचार करने के लिअे बैठे, तो हमें हमारी कंगाली का अनुभव हुआ। हमारे पास अैसे आदमी कहाँ हैं, जो अिस नये संघ के अुपयोगी हों। नयी कार्यवाहक समिति के लिअे भी बडी मुश्किल से कुछ नाम हम सोच सके। साथ-साथ यह भी विचार आया कि अगर काबिल आदमी मिल भी जाँय, तो वे सभी हिलमिल कर काम करेंगे, अिसका क्या भरोसा? यह हमारे लिअे लज्जा की बात है। जो अहिंसा में मानते हैं, अुनके बीच वैमनस्य की आशंका क्यों रहे? अगर अैसी स्थिति है, तब तो गांधीवाद की कोअी अैसी हस्ती नहीं है, जिसपर हम अभिमान कर सकें। यह अेक ही कारण संघ को बंद करने के लिअे काफी है, अिसलिअे हमने अेक कामचलाअू प्रस्ताव कर लिया है। आज अपने दिवालियेपन के अनुभव के बाद हम यह नहीं कह सकते कि गांधीवाद कोअी कर्णमधुर नाम है। वह कोअी अैसा शब्द नहीं है, जिससे हम लोगों के दिल पर असर डाल सकें। संघ को बन्द करने का यह अेक प्रबल कारण हो जाता है। अगर आप मेरे मजबूर बनने पर संघ को बन्द करें, तो वह मेरे लिअे भी शर्म की बात होगी और आपके लिअे भी। संघ की अुपाधि से मुक्त हो कर हमें अुज्ज्वल बनना चाहिअे, कुछ करके दिखाना चाहिअे। कम-से-कम हिन्दुस्तान के सामने तो अहिंसा की शक्ति की श्रेष्ठता का सबूत पेश करना चाहिअे। जब हम अैसा नहीं कर सकते, तो क्यों नाहक अेक संघ बना कर अुसे बदनाम करें? जब मैं आत्मनिरीक्षण करके देखता हूं, तो पता चलता है कि हमारे पास लोगों को बताने लायक चीज नहीं है। अुस दशा में संघ तो अेक बोझ हो जाता है। किशोरलाल को अुस बोझ ने दबा दिया है। धोत्रे काम करते-करते पिस गया है। अहिंसा में यह दोष नहीं होना चाहिअे। अहिंसा की साधना करनेवाले आनन्द में वृद्धि होनी चाहिअे। हम अपने आपको देखें और पूछें कि क्या हम परीक्षा में अुत्तीर्ण होते हैं क्या? नहीं। यहाँ की चर्चा का मुझपर यही असर पडा। जो कार्य हम कर रहे हैं, क्या वह अपना स्वधर्म समझ कर बुद्धिपूर्वक कर रहे हैं? नहीं। गांधी कहता है, अिसलिअे हम कअी बातें कर लेते हैं।

अिसलिअे मैं यह कहता हूं कि आज संघ बन्द होता है अिसमें आप लोगों की भलाअी है। आप समझते थे कि आपको संघ आश्रय और प्रेरणा देता था। लेकिन वस्तुस्थिति अैसी नहीं थी। वह तो अेक भ्रमजाल था। आप आज अुस भ्रमजाल को तोड कर स्वावलंबी और स्वतंत्र हो जाते हैं। जब आप स्वतन्त्ररूप से अहिंसा को चला सकेंगे, तभी सच्चा गांधी सेवा संघ पैदा होगा। संघ के बन्द होने पर आप अपने बल पर अहिंसा कहाँ तक निबाह सकते हो, अिसका पता चलेगा। अिसलिअे संघ का विसर्जन हमारे कल्याण की भी बात है।

मैंने जब सत्याग्रह-आश्रम बन्द किया, अुस वक्त भी मेरे सामने यही दृश्य था। अैसे ही सवाल और अिसी तरह की चर्चा थी। पहले कोअी कोअी आश्रमवासी आपस में जरा-जरा-सी बात पर लड पडते थे। सत्याग्रह-आश्रम के नाम को कलंकित करते थे। मैंने सोचा, मनुष्य को यदि सच्ची अुपासना करनी है, तो कम-से-कम अपनी कमजोरियों को समझ ही लेना चाहिअे। अीमानदारी पहला कदम है। मैंने देखा कि हम अेक कुटुंब-जैसे नहीं रहते हैं, झगडे-झमेले चलते रहते हैं। हमें

तो सत्याग्रह-आश्रम में हिलमिल कर रहना चाहिअे था। स्वभाव से ही, न कि जोर जबरदस्ती या बलात्कार से। जब मैंने देखा कि हम अपने स्वभाव को नहीं जीत सके हैं, तो आश्रम नाम छोड़ कर अुद्योग-मंदिर नाम दिया और अुसका रूप बदल दिया। लेकिन अुससे भी मुझे संतोष नहीं हुआ। अुद्योग-मंदिर के लिअे कुछ दूसरे प्रकार की योग्यता चाहिअे। अुद्योग-मंदिर भी नहीं चला तो आगे चल कर बाद में हरिजन-आश्रम बन गया। जो सबसे पतित समझे जाते हैं, अुनकी सेवा का पवित्र स्थान अब वह बन गया।

लेकिन मैं जिक्र अुस वक्त का कर रहा था कि जिस वक्त मैंने सत्याग्रह-आश्रम को तोड़ दिया। अुस वक्त मैंने कहा कि जिस वक्त आश्रम का जो रूपांतर हो रहा है वह भव्य है। आप लोग सब सत्याग्रह-आश्रम अपने अपने साथ ले कर जाते हैं। अेक अेक आश्रमवासी अेक अेक जंगम आश्रम हो जाता है। जिससे विलक्षण और भव्य परिवर्तन और क्या हो सकता है? मेरी अिस कसौटी पर सभी आश्रमवाले खरे नहीं निकले, लेकिन अिससे मुझे क्या मतलब? अुसमें से कम-से-कम यह तो निकला कि सबने अपना अपना रास्ता ढूंढ़ लिया। जो लोग वृत्ति और स्वभाव से आश्रमधर्मीय हो गये थे वे आज भी अेक अेक जंगम आश्रम हैं। जो लोग भिन्न रुचि और भिन्न प्रकृति के थे, वे अेक कैदखाने से छूट गये। दोनों का कल्याण ही हुआ।

जिस तरह सत्याग्रह में श्रद्धा रखनेवाले आश्रमवासी अेक अेक जंगम आश्रम बन गये, अुसी तरह आप सब सदस्यों को अेक अेक जंगम गांधी सेवा संघ बन जाता है। आप सब गांधी सेवा संघ को अपने साथ ले कर जाते हैं। आपका बोझ हलका भी होता है और बढ़ भी जाता है। अब आप स्वयं अपने को चलायेंगे। जिस तरह मैं अपना ही अनुयायी हूं, लेकिन अेक अशक्त और अपूर्ण अनुयायी हूं, अुसी तरह आप भी अपने अनुयायी बनें। मैं अपूर्ण हूं, किसीकी कैद में रहना पसंद नहीं करता; लेकिन परिश्रम से नहीं भागता। अेक अेक कदम हल्के हलके बढ़ाने की कोशिश करता हूं। आप भी यही करें। अिसमें आपको किसीकी मदद की दरकार नहीं। अीश्वर की मदद काफी है।

हर सदस्य, अुसने अपने सामने जो काम रक्खा है अुसे पूरा करने की तैयारी रक्खे। परमात्मा से मदद मांगे। हिन्दुस्तान के लड़अियों में हम अग्रगामी रहें। जीवन को मृत्यु की शय्या समझ कर चलें। अिस मौत के बिछौने में अकेले न सोयें। हमेशा यमदूत को साथ लेकर सोयें। मृत्यु (देवता) से कहें कि अगर तू मुझे ले जाना चाहता है, तो ले जा। मैं तो तेरे मुख में नाच रहा हूं। जब तक नाचने देगा नाचूंगा; नहीं तो तेरी ही गोद में सो जाअूंगा। अगर आपने अिस तरह मृत्यु का भय जो जीत लिया, तो यह संघ अमर हो जायगा। अगर आप अिस तरह के हैं, तो किसी संघ की क्या जरूरत है? तब तो आप खुद ही अेक संघ हैं।

हम अेक भ्रमजाल से छुटकारा पा कर अपनी ताकत बढ़ाते हैं। अगर आप यह कदम ज्ञान पूर्वक रखते हैं, तो नया बल प्राप्त करते हैं। आप मूर्च्छित अवस्था में रहना नहीं चाहते, यह मुझे प्रिय है। आपने सभी सदस्यों की सदस्यता खतम कर दी यह बात मुझे पसन्द है। आज आपने संघ के मौजूदा रूप का अन्त कर दिया है। अगर आपने यह काम आवेश में आ कर किया हो तो अुसका नतीजा अच्छा नहीं आनेवाला है। क्योंकि वह आपने अहिंसा का काम नहीं किया है, सत्यवादी का काम नहीं किया है। परंतु यदि आपने शान्त चित्त से सोच-समझ कर यह कदम अुठाया है, तो हम सत्य के शोध में अवश्य आगे बढ़नेवाले हैं।

आपने समिति को सारे अधिकार तो दे दिये थे; लेकिन अुन अधिकारों पर अमल करने के लिअे हमारे पास कोअी सामान नहीं था। बडी मुश्किल से पाच सात आदमी ढूंढ सके। अब बोझ अुनपर रहेगा। लेकिन आप भी जिम्मेवारी से मुक्त नहीं होते। आपको अिस नये संघ के लिअे सामग्री देने की जिम्मेवारी अुठानी चाहिअे। आप संघ में से चले तो जाते हैं; लेकिन अपने साथ यह ज्ञान ले कर जाते हैं कि हमने अिस संघ में रह कर कुछ भी तो नहीं किया। अेक नये संघ के लिअे सामान भी तो तैयार नहीं कर सके। तब अिस संघ ने क्या कमाया? आप के लिअे यह गंभीर विचार का विषय होना चाहिअे। अैसे संघ में हम क्यों पडे रहें? कमजोरों का संघ थोडे ही बनाना है। हम अपने अन्दर जितनी अपूर्णता है, अुसे देखें। अपनी अपूर्णता और संघ की अपूर्णता महसूस करके जाते है, तो आप पूर्णता की तरफ कदम बढायेंगे। संसार में जन्म से ही सिद्ध कोअी नहीं है। हमको अपने दोष देखना चाहिअे। हमारे दोष दूसरा क्या बतावे? हमारी अपूर्णता हम जितनी जानते हैं, दूसरा क्या जाने? अिसलिअे दूसरे जब मेरी स्तुति करने लगते हैं, तब मैं परेशान हो जाता हूं। संघ की अपूर्णता हमारी सबकी अपूर्णता का जोड है। हमें हैरान होना चाहिअे कि हम अैसे कंगाल क्यों रहे। नयी शक्ति हासिल करनी चाहिअे। अपनी अपूर्णता महसूस करना प्रगति का पहला कदम है। जो यह भी नहीं जानता कि वह कुछ नहीं जानता, सबसे बडा मूर्ख-शिरोमणि है।

आप संघ के नये प्रमुख (अध्यक्ष) को लिखें कि आप हमें विशेषज्ञ मानें। अुनसे कहें कि हम खोज करना चाहते हैं। सालभर जाजूजी से अनुसंधान करके या वर्धा में रह कर खोज का काम करें। गुप्त (अज्ञात) वास में रह कर मूक सेवा करते रहें। अुसमें यह आशा की जा सकती है कि जो शक्ति हम चाहते है, वह हमें मिलेगी। यह भी आशा है कि अपनी अुम्र भर संशोधन के कार्य में अेकाग्र हो कर लग जानेवाले रिसर्च-स्कालर्स (विद्वान संशोधक) निकलेंगे। वे मेरे पास अपनी खोज के परिणाम ले कर आयेंगे। जब मैं देखूंगा कि ये लोग वह चीज खोज कर लाये है, जो मैं चाहता था, लेकिन जिसे लाने की मेरी शक्ति नहीं थी, तो मैं नाचूंगा। तब संघ का काम बढेगा। तब अहिंसा का कदम आगे बढेगा।

अगर अिस तरह हमारा काम न बढा तो हम गांधीवादी क्यों रहे? आप अगर अपने-आपको गांधीवादी मानते हैं, तो आपकी परीक्षा क्या है? आप केवल कातने का शास्त्र जानते हैं, अितना काफी नहीं है। यहाँ प्रदर्शनी में जो आदमी हैं, वे आपसे बढिया कातनेवाले है। लेकिन आठ आना रोजाना ले कर नाचते हैं। वे कातने का शास्त्र नहीं जानते। केवल अच्छा कातना काफी नहीं है। अुसका विज्ञान होना चाहिअे यानी अहिंसा के साथ अनुसंधान होना चाहिअे।

अिस तरह संघ आज अेक छोटी-सी चीज रह जाती है। आप अुसमें से बुलंद शक्ति पैदा कर सकते हैं। यह शक्ति पैदा करने के लिअे हम अुसके स्थूल रूप का निवारण करते हैं। संघ को पाताल में भेज देते हैं। अुसे लुप्त कर देते हैं। अब अुसका न तो जाजूजी पर कोअी बोझ है, न आप पर। अगर संघ में कोअी बल था, तो आप मुझे अपने साथ ले कर जाते हैं। हिन्दुस्तान में जो जहर फैल रहा है, अुसे मिटाने के लिअे आप अुस बल का अुपयोग करेंगे, जिससे आपकी शक्ति बढेगी और संघ की भी। अगर अिस चीज को आप समझ गये हैं, तो संघ को लुप्त कर देने में हमने कोअी जल्दबाजी का या विनोद का काम नहीं किया है। जो कुछ किया वह जानबूझ कर और विचार-पूर्वक किया है। संघ का जो विधान है, अुसके बनाने में मेरा हाथ रहा है। किशोरलाल को जबरदस्ती अध्यक्ष की गद्दी पर खींचने की जिम्मेदारी मेरी ही रही है। मैं जानता हूं

कि किशोरलाल ने अुस विधान को बनाने में कितना परिश्रम किया। अैसा विधान जो दूसरे संघों के लिअे आदर्श हो सकता है, अुस विधान को आज में अपने हाथों जमींदोज़ कर रहा हूं। यह कोअी विनोद का काम नहीं है।

अगर आप यह महसूस करते हैं कि मैं बूढ़ा और मूर्ख बन गया हूं, अिसलिअे मनमानी बकवास करता हूं, तब तो बात दूसरी है। लेकिन अगर आप यह मानते हों कि मेरा दिमाग अब तक ठीक ठीक काम करता है, और मैंने अपने अनुभव से कुछ शिक्षण लिया है, तो मैं आपसे कहता हू कि अिसमें से आपको सत्य-अहिंसा का अधिक ज्ञान होगा। जब यह संघ मेरी प्रेरणा से टूटा है, तो आप निश्चय जानें कि जरूर अिसमें कुछ-न-कुछ है। आप अंतर्मुख हो कर सोचेंगे, तो आपकी बुद्धि खुल जायगी और आप समझ जायेंगे कि आज की परिस्थिति में यही सबसे भारी, अच्छा और सही कदम अुठाया गया है।

बस, अब मैं आपसे मुक्ति चाहता हूं। प्रफुल्लबाबू कहते है कि मुझे अितवार तक यहाँ रहना है। बंगाल में आया हूं, लेकिन बंगालियों का अभी कुछ काम नहीं किया है। मालिकान्दा फिर से आने की आशा नही है। अिसलिअे चाहता हूं कि बंगाल को कुछ वक्त दे दू। दूसरे भी कअी काम पड़े हैं। थोड़ा-बहुत समय अुन्हें भी देना ही पड़ेगा। अिसलिअे आपसे छुट्टी चाहता हूं। सिर्फ सूत्रयज्ञ में शामिल हो जाअूंगा।

२ श्री किशोरलालभाअी का भाषण

बहनो और भाअियो,

अिस सम्मेलन की कार्यवाही में मैंने तो कुछ भी भाग नहीं लिया। मुझे बुखार का अेक अच्छा बहाना भी मिल गया। अिसलिअे जिस बोझ से मैं बचना चाहता था, वह पू० बापूजी और जाजूजी ने अुठा लिया। यहाँ जो बातें हुअीं, वे सब मैं नहीं सुन पाया। आखिर की कुछ बातें सुनीं।

कुछ सदस्यों को अिस बात का खेद है कि संघ के बंद होने से हमारा सहारा चला जायगा। लेकिन हमारा सहारा कहाँ गया है? हमारा मुख्य सहारा तो गांधीजी ही हैं। संघ बन्द हो गया तो भी गांधीजी जब तक हरिजन के द्वारा मार्गदर्शन कराते रहेंगे तब तक सहारा मिलता ही रहेगा। गये पांच वर्षों में संघ को यह जो व्यापक स्वरूप मिला, वह आज समेट लिया गया है। वेदान्ती भाषा में वह अेक पंचांकी नाटक हो गया। पाँच साल पहले संघ का जो विस्तार हुआ, अुससे लाभ ही हुआ था। आज भी अुसका संकोच कर लेने से फायदा ही हुआ है।

मेरी यह श्रद्धा है कि भारत-भाग्य-विधाता बापू के रूप में हमें कठपुतली की तरह चलाता है। जब साबरमती आश्रम समाप्त हुआ, तो अुसने संघ का व्यापक स्वरूप ले लिया। जब साबरमती आश्रम बन्द हुआ, तो अुसके बाद सैकड़ों आश्रम बन गये। जब राष्ट्रीय विद्यापीठों का संकोच किया, तो अुसकी जगह वर्धा-योजना के रूप में जंगम विद्यापीठ आ गये। सन् १९३४ में बापूजी ने ही संघ को व्यापक बनाने की बात रक्खी और अुसपर जोर दिया, अुस वक्त जमनालालजी, धोत्रेजी तथा अन्य बहुत-से सदस्यों को भी यह सूचना जँची नहीं थी। जब मत लिये गये तो मैं अकेला अनुकूल था। दूसरे दिन बापू ने फिर अपनी बात समझायी और सदस्यों को अनुकूल कर लिया। बाद में दिवाकरजी ने बड़ी मिहनत से अुसके विधान की भाषा-रचना की और बापूजी ने

स्वयं अुसमें संशोधन करके ठीक कर दी। जब बापूजी ने देखा कि अुनके बनाये हुअे संघ से अुनके काम में बाधा होती है, तो अुन्होंने अुसे बन्द कर देने की सलाह दी। अैसी अवस्था में हमें समझना चाहिये कि संघ के बंद होने में कल्याण ही है। बापू अिस संघ को बंद करके अुसका विकास ही करेंगे। कुछ दिनों के बाद आपको भी मानना पड़ेगा कि बापू ने जो किया वही ठीक है। हम यही श्रद्धा रक्खें कि अिसीमें से अहिंसा का संगठन सिद्ध होगा। अहिंसक संस्कृति का निर्माण ही तो बापूजी का ध्येय है। अुन्हींके जरिये हमने अुसे अपनाया। अुस ध्येय के खिलाफ वे कैसे जायेंगे? वे तो गांधी सेवा संघ के ही नहीं, बल्कि कांग्रेस और ब्रिटिश सल्तनत के भी दिल में यह श्रद्धा पैदा करना चाहते हैं कि अहिंसा से ही सारे संसार का कल्याण होगा। वे तो यह आशा रखते हैं, जैसा कि सरदार ने कहा, कि हम अहिंसा के द्वारा दुनिया का सारा कारोबार चला सकते हैं।

अिन पाँच वर्षों में आपके प्रेम का खुराक मुझे मिला है। मेरे संकल्प को पूरा करने के लिअे ही परमात्मा ने अिस तरह आपसे मेरा संबंध जोड़ दिया था। और शायद अब अुसका कार्य पूरा होने पर वही अुस संबंध के निमित्त को हटा लेता है। हम विश्वास रक्खें कि अिसमें से पहले की भी अपेक्षा ज्यादा बड़ी और कल्याण की चीज निर्माण होगी।

३. श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू का भाषण

संघ के नये अध्यक्ष श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू ने निम्न आशय का भाषण दिया :—

आप अैसा न मानें कि किशोरलालभाअी आज तक संघ के अध्यक्ष थे और अब अुनकी जगह मैं आ गया हूं। अुन्होंने यह गद्दी बिछायी, अुसे फैलाया और अब समेट लिया। मैं दूर ही से खड़े खड़े देख रहा हूं।

दादा ने कहा कि संघ मूर्च्छित अवस्था में है। मैं देखता हूं कि यह मूर्च्छा नहीं है। आप यह कह सकते हैं कि संघ विश्राम ले रहा है। किशोरलालभाअी ने अुससे बहुत परिश्रम करा लिया। यहाँ तक कि वे खुद भी थक गये। अिसलिअे संघ कुछ देर के लिअे अब सोयेगा। मुझे तो आशा है, वह जागेगा भी। अुसे फिर से जाग्रत करना आप लोगों पर निर्भर रहेगा।

सत्य और अहिंसा को हमें जीवन के सभी क्षेत्रों में दाखिल करना है। राजनीति से आज हम हट रहे हैं, लेकिन अुस क्षेत्र को सदा के लिअे नहीं छोड़ रहे हैं। राजनैतिक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा को निबाहने के लिअे हमें अपनी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ानी होगी। वह अभी हम प्राप्त नहीं कर सके हैं; अिसलिअे अुस क्षेत्र से निवृत्त हो रहे हैं। रचनात्मक संस्थाओं द्वारा जो आध्यात्मिक कार्य नहीं हो सकता, वह बापू अिस संघ द्वारा कराना चाहते हैं। अिसका रूपान्तर कराने में अुनका यही अभिप्राय है। अिसलिअे जो रूप बापू अिस संघ को देना चाहते हैं, वह जल्दी ही आयेगा। वह स्वरूप लाने की जिम्मेवारी हमारी है। आज भी कअी नवयुवक भिन्न भिन्न रचनात्मक संस्थाओं में खोज-बीन का काम कर रहे हैं। अिन्हींमें से आगे जिस प्रकार के विशारद हमें चाहिअें, वे तैयार होंगे। संघ के जो नवयुवक सदस्य हैं, वे भी अेक अेक क्षेत्र के अेक अेक अंग में निष्णात बनने का निश्चय करें। वे आज ही से जुट जायँ। शायद प्रारंभ में पाँच-सात ही आदमी मिलें, लेकिन आगे काम बढ़ता जायगा। गांधी सेवा संघ का अुद्देश्य गांधीजी के सिद्धान्तों पर चलना है। आज गांधीजी हमारे बीच मौजूद हैं, और हमें अपने सिद्धान्त खुद समझा सकते हैं। अुनके बाद हमें स्वतंत्ररूप से विचार करना होगा। जब वे खुद ही आज अेक सलाह दे रहे हैं, तो हमें कोअी शंका या असंतोष क्यों हो? अुन सिद्धान्तों को वे हमसे अधिक जानते हैं। अुन्हींकी सलाह से संघ का विस्तार हुआ, अुन्हींकी सलाह से आज अुसका संकोच हो रहा है। हमें किसी प्रकार की निराशा या असंतोष होने का प्रयोजन नहीं है।

प्रेम और मोह

[हरिभाऊ उपाध्याय]

अेक आदरणीय व्यक्ति ने प्रसंगवश प्रश्न पूछ लिया—'प्रेम और मोह की क्या मर्यादा है' ? शायद वे मेरे विचार जानना चाहते होंगे। प्रश्न वास्तव में महत्त्व का है, और हम अहिंसामार्गी सार्वजनिक सेवकों के लिअे तो और भी अधिक महत्त्व का। क्योंकि हमारे सारे तत्वज्ञान का, जीवन-नीति का, आधार प्रेम ही है। लेकिन यह प्रेम बड़े चुपके चुपके और हमारे अनजान में कअी बार मोह का रूप धारण कर लेता है, जिसे हम सहसा पहचान और पकड़ नहीं पाते। जब हम किसी संकट को अपने सामने खड़ा पाते हैं, या अेक हद तक संकट में फँस जाते हैं, तब चौंकने और विचार करने लगते हैं कि यह भूल कहाँ हुअी। स्त्री और पुरुष जहाँ खुल कर अेक-दूसरे से मिलते और साथ साथ काम करते हैं, वहाँ अैसे अनुभव अक्सर होते हैं। खासकर अैसे समाज में, जहाँ स्त्री-पुरुष अब तक अेक-दूसरे से काफी परदा रखते रहे हैं, और अब अुन्हें साहस करके अेक-दूसरे के साथ और अकेले में भी रहने के प्रसंग आते हैं, अैसे अनुभवों के लिअे काफी स्थान रह सकता है। अिसलिअे मैंने सोचा कि मैं अपने विचार लिपिबद्ध ही कर दूं, जिससे कअी मित्रों, साथियों और कार्यकर्ताओं को लाभ पहुँचे।

प्रेम आत्मिक और मोह शारीरिक है; अर्थात् जब तक आत्मिक गुणों के प्रति आकर्षण है तब तक वह प्रेम का आकर्षण है, जब शारीरिक सौन्दर्य या शारीरिक भोग की ओर आकर्षण होने लगे, तो समझो कि यह मोह का आकर्षण है और अपने को संभालो। अेक सुन्दर पुष्प को हम देखते हैं, अुसके दैवी सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं, अुसमें अीश्वरी छटा के दर्शन करते हैं, यह प्रेम हुआ; जब अुसे तोड़ कर सूंघने, या माला बना कर धारण करने का मन हुआ तो समझो मोह के शिकार हो रहे हैं।

दूसरे, प्रेम में जिसे हम प्रेम करते हैं, अुसके प्रति त्याग, अुत्कर्ष, सेवा करने का भाव होता है, मोह में भोग, सुख, सेवा लेने की चाह रहती है। प्रेमी स्वयं कष्ट अुठाता है, प्रेमपात्र को कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता; अुसकी अुन्नति चाहता है, अधोगति नहीं, मोहित व्यक्ति अपने सुख-भोग की अनियंत्रित अिच्छा के आगे प्रेम-पात्र के कष्ट और दुःख की परवा नहीं करता। अुसकी रुचि अच्छे खान-पान, साज-शृंगार, नृत्य-नाटक-सिनेमा, आमोद-प्रमोद, मे होगी-जहाँ कि अेक प्रेमी अुसके मानसिक, नैतिक और आत्मिक गुणों तथा शक्तियों के विकास में, अुसकी योजनाओं और कार्यक्रम में मग्न रहेगा।

हमारे हृदय में प्रेम है या मोह, अिसकी सच्ची जानकारी तो हम अपने मनोभावों पर निगाह रख के ही कर सकते हैं—बाह्य विधि-विधान से नहीं। बाह्य नियम, मर्यादायें हमें अेक हद तक नियंत्रण में रख सकते हे और अिस दृष्टि से बहुत अुपयोगी भी हैं; परन्तु वे प्रेम या मोह की परीक्षा के अचूक अुपाय नहीं हैं। दुनिया अक्सर बहिर्दृष्टि होती है — बाहरी आचार-विचार से ही वह अक्सर मनुष्य की नाप-तौल करती है। हमारे मानसिक और आन्तरिक भावों के दूर से जानने और समझने का अुसके पास दूसरा साधन भी तो नहीं है। मार्मिक-दृष्टि व्यक्ति तो बिरले ही होते हैं,

जो अूपरी हाव-भाव या आचार-विचार में से भीतरी भाव को ताड़ लें। अतअेव लोक-दृष्टि से भी बाह्य मर्यादाओं का बड़ा महत्त्व है। फिर भी मुख्य और मूल्यवान् वस्तु तो हमारे हृदय का असली भाव ही है। हम आप ही अपने परीक्षक, निरीक्षक, पहरेदार और, मैं तो कहूंगा पथदर्शक भी, बनें। हां, सहारा हम भले ही दूसरों का,--मित्रों का, गुरुजनों का, ले लें; पर अन्त में जब हमीं अपने पहरेदार और पथदर्शक बनेंगे, तभी सुरक्षितता से हम अपने ध्येय को पहुंच सकेंगे--अपनी जीवन-यात्रा अच्छी तरह कर सकेंगे। मैं जितना ही विचार और अनुभव करता हूं, अुतना ही अिस विश्वास पर दृढ़ होता जाता हूं।

प्रेम से मोह, मोह से भोग, भोग से पतन--यह अधोमुख जीवन का अुत्तरोत्तर क्रम है; प्रेम से सेवा, सेवा से आत्मशुद्धि, आत्मशुद्धि से आत्मोन्नति यह अूर्ध्वगति जीवन का। प्रेम से हम मोह की तरफ बढ़ रहे हैं या सेवा की तरफ--यही हमारे आत्म-परीक्षण की पहली सीढ़ी है।

संघवृत्त

मालिकान्दा सम्मेलन में संघ को नया रूप देने के विषय में ता. २२-२-१९४० को निम्न-प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।--

प्रस्ताव

"पिछले कुछ समय के अनुभव से अैसा दीख पड़ा है कि संघ के सदस्यों का राजनैतिक संस्थाओं में भाग लेना वांछनीय नहीं है। अिसलिअे मौजूदा हालत में अिस संघ का यह मत है कि आज जो सदस्य राजनैतिक संस्थाओं में हैं, तथा रहना चाहते हों, वे संघ के सदस्य न रहें।

"अिस निर्णय का यह अर्थ हरगिज़ नहीं है, कि जो व्यक्ति राजनैतिक संस्थाओं में काम कर रहे हैं वे संघ के सदस्य रहने के लायक नहीं हैं, या राजनैतिक कार्य किसी दूसरे कार्य की बनिस्बत निचले दर्जे का है। अुक्त निर्णय पर आने का अेक विशेष कारण यह हुआ है कि संघ के कुछ सदस्यों का राजनैतिक संस्थाओं में भाग लेना वैमनस्य का निमित्त बना है। अिससे यह साबित होता है कि हमारा अहिंसा का आचरण अपूर्ण और दूषित रहा। अहिंसा का स्वरूप ही अैसा है कि अुसे हिंसा को बढ़ाने का निमित्त कदापि नहीं बनना चाहिअे।

"संघ की सदा यह मान्यता रही है कि हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों की अुन्नति रचनात्मक कार्य से ही हो सकती है। रचनात्मक कार्य ही अेक अैसा कार्य है, जिसमें जनता सीधे हिस्सा ले सकती है। अिसलिअे भविष्य में संघ की प्रवृत्ति रचनात्मक कार्य तक ही सीमित रहेगी। रचनात्मक कार्य का वह हिस्सा, जो कि चरखा संघ आदि रचनात्मक संस्थाओं में नहीं आता, संघ के कार्य का क्षेत्र होगा--जैसे कि रचनात्मक कार्य के साथ अहिंसा का क्या संबंध है, अिसका अवलोकन, अध्ययन और संशोधन करना और रचनात्मक कार्य का हमारे अपने तथा समाज के जीवन पर क्या असर पड़ता है, अिसका निरीक्षण करना।

"संघ की यह भी राय है कि रचनात्मक कार्य के अुस हिस्से का जो कि चरखा संघ आदि रचनात्मक संस्थाओं के क्षेत्र से परे है, भलीभांति अध्ययन और शोध करने के लिअे काफी आदमी आज गांधी सेवा संघ के पास नहीं हैं। अिसलिअे जब तक अिस प्रकार के अध्ययन और शोध के पर्याप्त साधन प्राप्त न हो जायँ, तब तक संघ के आर्थिक व्यवहार और 'सर्वोदय' मासिक के अलावा गांधी सेवा संघ की अन्य सारी प्रवृत्तियाँ स्थगित की जायें और निम्न-लिखित सज्जनों के अलावा अन्य सदस्य संघ के सदस्य न रहें, और कार्यवाहक समिति निम्न-लिखितों की ही रहे:—

१.	श्री. श्रीकृष्णदास जाजू,	अध्यक्ष और ट्रस्टी
२.	,, रघुनाथ श्रीधर धोत्रे,	मन्त्री ,, ,,
३.	,, किशोरलाल घ. मशरूवाला,	सदस्य और ट्रस्टी
४.	,, गोपबन्धु चौधरी,	सदस्य
५.	,, अभयदेवजी,	,,
६.	,, सतीशचन्द्रदास गुप्त,	,,
७.	,, दिलखुश दीवानजी,	,,
८.	,, सीताराम पुरुषोत्तम पटवर्धन	,,
९.	,, कृष्णदास छगनलाल गांधी,	,,
१०.	(फिलहाल रिक्त)	,,

यह भी निश्चय हुआ कि संघ के विधान में परिवर्तन करने का अधिकार तथा संघ के सम्पूर्ण अधिकार अुक्त कार्यवाहक समिति को रहें।

अिस प्रस्ताव से अुपर्युक्त नौ सदस्यों के अलावा शेष सदस्यों का संघ के साथ जो वैधानिक सम्बन्ध था, वह समाप्त हो गया है। परन्तु पू० बापूजी के शब्दों में, "अधिक पवित्र और अटूट सम्बन्ध तो अब शुरू हुआ है।" अतः बापूजी के ही आगे दिये हुये वचनों का स्मरण दिलाना अुचित समझता हूँ—

"संघ को बीजरूप में अिस आशा के साथ जीवित रखा गया है कि योग्य पुरुष, स्त्रियाँ भी, संघ के अिस नये मिशन को ग्रहण करने के लिअे आगे आयेंगी। अिससे बढ़ कर अुदात्त कार्य और क्या हो सकता है? मुक्त होनेवाले सदस्यों को भी जान लेना चाहिअे कि अुनके लिअे भी काम की शुरुआत तो अब हुआी है। अुनको शोध-सम्बन्धी अिस प्रयोगशाला के अदृश्य और मूक कार्य-कर्ता बन जाना चाहिअे और संघ के पास अपने परिणामों की सूचना भेजनी चाहिअे।"

('हरिजन,' ता० २ मार्च, १९४०)

कार्यवाहक समिति के रिक्त स्थान के लिअे श्री विनोबाजी से अनुरोध किया गया था। हर्ष की बात है कि अुन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी है।

वर्धा,
ता. १५ मार्च १९४०

र. श्री. धोत्रे
मन्त्री.

सर्वोदय की दृष्टि

अद्भुत अनासक्ति

अितिहास में दो अद्वितीय अुदाहरण हैं—या अनृतीय कह लीजिये—अेक नीरो का और दूसरा जनक का। अेक अनास्था का अुदाहरण है और दूसरा अनासक्ति का। "रोम सुलग रहा है, लेकिन नीरो फिडल बजाने में मशगूल है," यह कहावत बेदर्दी, बेहयाअी और बेपर्वाही की द्योतक है। 'मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किंचन दह्यति,' यह वाक्य अनासक्ति के दृष्टान्त के रूप में अुपस्थित किया जाता है। रोम के प्रति नीरो का जो भाव था अुसमें, और मिथिला के प्रति जनक का जो भाव था अुसमें, जमीन-आसमान का फर्क है।

संस्थाओं के विधान और संगठन को तोड़नेवाले भी दो प्रकार के होते हैं। अेक वे, जो अपनी महत्त्वाकांक्षा और व्यक्तिगत हित के लिअे संस्थाओं का नाश करते हैं, और दूसरे वे, जो अपने सिद्धान्त और नीति की रक्षा के लिअे संस्थाओं के मोह का त्याग कर देते हैं। पहला अुदाहरण निर्ममता का है और दूसरा निर्मोह, वैराग्य तथा मुमुक्षा का। गांधीजी अेक अुत्कट साधक और मुमुक्षु हैं। अिसलिअे मालिकान्दा में अुन्होंने जो कदम अुठाया, वह जनक की श्रेणी में आता है और अुनकी अद्भुत अनासक्ति का प्रमाण है।

संस्था-परायणता बनाम प्रगति

हमारा यह अनुभव है कि संस्था के मोहवश बड़े बड़े बुद्धिमान भी प्रगति-विरोधक हो जाते हैं। राज्य-लोभ, धन-लोभ या सत्ता-लोभ से संस्था-लोभ या संप्रदाय-लोभ किसी कदर कम नहीं होता। अिसलिअे अक्सर अैसा पाया जाता है कि संस्था-परायण लोग प्रगति-विरोधी होते हैं। मनुष्य के विकास को नियमित और सुनियंत्रित करना संस्थाओं का अुद्देश्य है। जब कोअी संस्था अपने अंगीकृत अुद्देश्य के अनुसार निर्दिष्ट मार्ग पर प्रगति कराने की शक्ति गवाँ देती है तब अुसका विसर्जन करना प्रगति का ही लक्षण है। टेनिसन ने जो यह कहा है Lest one good custom should corrupt the world ('कहीं कोअी अच्छी रूढ़ि ही ससार को बिगाड़ न दे') अुसका भी यही अभिप्राय है।

सघ का आवरण करते हुअे गांधीजी ने कहा कि 'न तो मैं किसी संप्रदाय का हूं और न कोअी संप्रदाय बनाना चाहता हूं'। पहली बात तो स्पष्ट है। जो स्वयं संप्रदाय-प्रवर्तक होता है, वह भला कैसे किसी संप्रदाय का हो सकता है? वह तो अेक नया अुपक्रम करता है। परंतु गांधीजी दूसरों को भी किसी संप्रदाय के अनुयायी नहीं बनाना चाहते। वे तो कहते हैं कि सदाचार के सनातन सिद्धान्तों के आधार पर हर अेक को अपना अपना स्वधर्म पहचान लेना चाहिअे और अपने रास्ते पर चलना चाहिअे। कुछ लोग यह कहते थे कि गांधीजी के आश्रमों में और संघों में 'गांधीवाद' का निर्जीव कलेवर रह जायगा और बौद्ध भिक्षु तथा भिक्षुणियों के दांभिक जीवन के अितिहास की पुनरावृत्ति होगी। अुनको गांधीजी ने सत्याग्रह-आश्रम और गांधी सेवा संघ का अुपसंहार करके बड़ा नम्रतापूर्ण लेकिन माकूल जवाब दे दिया है।

'पूर्णमेवावशिष्यते'

गांधी सेवा संघ का शरीर अब नहीं रहा,

लेकिन यह कौन कह सकता है कि गांधी-विचार में विश्वास करनेवालों का परस्पर प्रेम-बंधन टूट गया ? जो समाप्त हुआ वह भी पूर्ण था, जो शेष रह गया है वही भी पूर्ण है ।

दा० ध०

विधायक और व्यावर्तक राष्ट्रीयता

दुनिया के विचारकों में दो पक्ष हैं,—अेक वह जो प्रत्येक वस्तु का विचार स्वतंत्ररूप से करता हुआ भी यह नही भूलता कि प्रत्येक चीज़ अीश्वर की सृष्टि का अेक घटक है और दूसरे घटकों से अुसका अनिवार्य संबंध है । यह विधायक दृष्टि है । दूसरा पक्ष प्रत्येक वस्तु को दूसरी सारी वस्तुओं से भिन्न देख कर अुनके भेद की महिमा का वर्णन करना ही अपना परम कर्तव्य मानता है । अिस भेदवादी दृष्टि को व्यावर्तक दृष्टि कहते हैं ।

लक्षण भी दो प्रकार के होते हैं । विधायक और व्यावर्तक । 'मनुष्य बुद्धिशील जीव है', मनुष्य की विधायक परिभाषा है । लेकिन 'मनुष्य अैसा कुछ है, जो दूसरी सारी वस्तुओं से भिन्न है'–यह मनुष्य की व्यावर्तक परिभाषा है ।

हमारी राष्ट्रीयता की भी दो प्रकार की व्याख्यायें की जाती हैं—अेक कहते हैं कि 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है'; और दूसरे कहते हैं कि 'भारतीयत्व या हिन्दुस्तानीपन राष्ट्रीयत्व है' । 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है' यह आपाततः राष्ट्रीयता की विधायक व्याख्या प्रतीत होती है । परंतु वस्तुतः वह व्यावर्तक और व्यवच्छेदक है । हर अेक हिन्दू की यह जन्मभूमि और धर्मभूमि भी है; अिसलिअे अुसकी राष्ट्रभावना दुहरी और दुगुनी है । अतः यह स्वीकार है कि 'हिन्दुत्व राष्ट्रीयत्व है' । लेकिन अिसके विपरीत यह नहीं कहा जा सकता कि 'राष्ट्रीयत्व हिन्दुत्व है' । 'सभी कौअे पक्षी हैं,' लेकिन 'सभी पक्षी कौअे नहीं हैं,' । सारांश, हिन्दुत्व की अपेक्षा राष्ट्रीयत्व अधिक व्यापक संज्ञा है । राष्ट्रीयत्व में हिन्दुत्व भी है, अिस्लामीत्व भी है, क्रिस्तीत्व भी है और पारसीकत्व भी है । कम-से-कम अिन सारे भावों में और राष्ट्रीयत्व में अविरोध तो है ही । अिसलिअे 'हिन्दुत्व राष्ट्रीयत्व है', अितना कहना स्वीकार है । परंतु 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है," यह कहना न तो युक्तिसंगत है और न वस्तु-स्थिति का निदर्शक । अिस विषय की अिससे अधिक मीमांसा अेक छोटी-सी टिप्पणी में नहीं की जा सकती ।

'हिन्दुस्थान हिन्दुस्थानियों का'

"हिन्दुस्थान हिन्दुओं का, नही किसी के बाप का," के नारे आजकल बहुत जोरों से लगाये जाते हैं । अिसके पूर्वार्ध से किसीका कोअी मतभेद नहीं हो सकता । लेकिन अिस वाक्य के दो प्रकार के अर्थ हो सकते हैं : अेक विधायक या संग्राहक और दूसरा व्यावर्तक या व्यवच्छेदक । 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है,'—यह हुआ विधायक अर्थ । लेकिन यह कहना कि 'हिन्दुस्थान अकेले हिन्दुओं का ही है'—अिस वाक्य का व्यावर्तक अर्थ है । अुसके अुत्तरार्ध में यही अर्थ व्यक्त किया गया है । यह व्यवच्छेदक राष्ट्रवाद न तो आज के राजनैतिक विचारों के अनुकूल है और न हमारी राष्ट्रीय संस्कृति तथा परंपरा के । "मेरी माँ मेरी अपनी है"—अिस वाक्य में मेरी ममता और श्रद्धा लबालब भरी है । परन्तु "मेरी माँ मेरी ही है, न कि मेरे भाअियों की"—अिस वाक्य में ममता और श्रद्धा की अपेक्षा स्वामित्व और बंधुद्वेष की भावना ही अधिक है । मेरी माँ अुन सब भाअियों की भी है, जो अुसकी गोद को अपना आश्रयस्थान, अुसके अंचल को अपना

कवच तथा अुसके दुलार को अपने जीवन का पाथेय मानने को तैयार हों। मेरी माँ जगत् की सम्राज्ञी नहीं है। वह तो जगन्माता है। वह अपनी गोद में बडे प्रेम से सभी को खिलाती है।

जो यह कहें कि " हिन्दू गुलाम हैं, गुलाम रहने के ही काबिल हैं, न अुनका कोअी देश है न वतन "। अुनसे हम आत्मविश्वास के हुंकार से यह कहें कि " हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है "। लेकिन अुसमें व्यावर्तक अुत्तरार्ध जोड़ देने में न तो संस्कृति है, न वीरता है और न स्वाभिमान ही है। वह तो अेक बालिश प्रलाप है, जो न तो वैज्ञानिक है और न युक्तिसंगत। हमारी राष्ट्रभावना का सूत्र व्यापक, सर्व-संग्राहक और प्रगति-सूचक होना चाहिअे। वह तो यही हो सकता है कि " हिन्दुस्थान हिन्दुस्थानियों का है "।

राष्ट्रीय सप्ताह की विशेषता

ता० ६ से ता० १३ अप्रैल तक का सप्ताह राष्ट्रीय सप्ताह के नाम से मशहूर है। अिसी अेक सप्ताह को ' राष्ट्रीय सप्ताह ' का अभिधान क्यों दिया गया ? भेदवादी राष्ट्रवाद के अिस जमाने में हमें अिस बात की याद दिलाना जरूरी है कि यही अेक सप्ताह 'राष्ट्रीय सप्ताह' क्यों कहलाया ?

अिस सप्ताह की दो विशेषतायें है। तारीख ६ अप्रैल १९१९ को सारे भारतवर्ष के सभी धर्मों और जातियों के बाशिन्दों ने क्रियात्मक राष्ट्रधर्म का अुपक्रम किया। अिससे पहले १९०८ की १६ अक्टूबर को सारे बंगाल ने 'बहिष्कार-दिन' क्रियात्मकरूप से मनाया था। लेकिन १९१९ की ६ अप्रैल को सारे भारतवर्ष ने अेकदिल हो कर ' सत्याग्रह-दिन ' मनाया। अुसी दिन **' शाब्दिक राष्ट्रवाद '** का अन्त हो कर **' आचारात्मक राष्ट्रधर्म '** का श्रीगणेश हुआ। यह हुअी अेक विशेषता।

अिस सप्ताह की दूसरी विशेषता अद्वितीय है। ता. १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर के जलियानवाला बाग में विभिन्न धर्मों के और जातियों के हिन्दुस्तानियों के खून से अिस देश की पवित्र भूमि सींची गयी और अुसमें हिन्दुस्तान की ' अविभाज्य संयुक्त राष्ट्रीयता ' (नाकाबिले तकसीम मुत्तहिदा कौमियत) के बीज बोये गये। कहते हैं कि 'पानी से खून गाढ़ा होता है'। निरपराधियों का खून तो सिर्फ गाढ़ा ही नहीं, पाक भी होता है। ता. १३ अप्रैल १९१९ को भारत की विभिन्न धर्म और जातियों में बँटी हुअी वीरात्माओं ने यह खून का रिश्ता पक्का किया। अब हिन्दुस्तान के दो टुकडे करने का अरमान रखनेवाले, या पाकिस्तान के सपने देखनेवाले लोग अिस कौमियत को तोड़ना चाहते है। अिसलिअे हमें खास तौर पर अिस राष्ट्रीय सप्ताह की मौलिक भावना का स्मरण करना चाहिअे और अुसे जीवित रखने की भरसक कोशिश करनी चाहिअे।

दा० ध०

संघ के भूतपूर्व सदस्य अपने दिल के भाव लिखें

गांधी सेवा संघ भारतवर्ष का अेक अनोखा आध्यात्मिक प्रयोग है। हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता आज तक प्रधानतया निवृत्ति-परायण ही रही है। हिन्दू, जैन और बौद्ध तीनों संप्रदायों ने प्रवृत्तिशील गृहस्थधर्मीय और निवृत्तिशील यतिधर्मीय लोगों के बीच भेद की दीवार खड़ी कर के जीवन के दो हिस्से कर दिये। गीता में अैसे भेद नहीं पाये जाते। गीता में वर्णव्यवस्था का पुरस्कार किया गया है; किन्तु स्मृतियों में बतायी हुअी आश्रम-व्यवस्था का

पुरस्कार अुसमें नहीं पाया जाता। प्रवृत्ति-निवृत्ति का भेद गीता को मान्य नहीं था।

गांधी सेवा संघ ने सेवा को ही आध्यात्मिक साधना बना दिया। भारतवर्ष के बहुत-से साधक जीवन-व्यवहार से विमुख थे और राजनीति में दिलचस्पी लेनेवाले साधक तो दुनिया-भर में बहुत ही कम हुअे हैं। जिन्होंने राजनीति में विशेष भाग लिया, अुन्होंने साधकता तो क्या, धार्मिकता को भी गौण स्थान दिया था। गांधी सेवा संघ ने स्वराज्य, स्वातंत्र्य, सर्वधर्म-समभाव, दरिद्रनारायण की सेवा, स्त्रीजाति का अुद्धार अस्पृश्यता-निवारण, ग्राम अुद्योगों का पुनरुज्जीवन, देशी भाषाओं का संगठन, अित्यादि जीवनव्यापी प्रवृत्तियों को सत्य और अहिंसा की आध्यात्मिक बुनियाद पर विकसित करने का बीड़ा अुठाया।

अिस संघ के विकास में हम प्रगति देखते हैं। अिसकी स्थापना से ले कर सन् १९३४ तक अिस संघ का अुद्देश्य साधकों के भरण-पोषण तक ही सीमित था। '३४ से '४० तक के पाँच वर्षों में अिस संघ ने यथार्थरूप में आदर्श-परायण और संगठित बनने की कोशिश की। अिन पाँच वर्षों के अधिवेशनों में जो चर्चायें हुअीं, अुनकी रिपोर्ट पढ़ने से अिसकी आध्यात्मिक दृष्टि आप-ही-आप स्पष्ट हो जाती है। मालिकान्दा में हमने संघ के अिस रूप का विसर्जन किया और अुसके तीसरे युग का प्रारंभ किया। प्रथम युग में जो भरण-पोषण का हिस्सा था, वह अब भी मौजूद है। लेकिन वह गौण हो गया है। द्वितीय युग की प्रधानता अुसके विशाल संगठन में थी। अुसका हमने बुद्धिपुरःसर त्याग किया है और आजकल के राजनैतिक भारत को संघ की ओर से अभयदान दिया है।

अिस युग-परिवर्तन के समय यह अत्यन्त हितकर होगा कि हमारे संघ के आज तक के सदस्य अपना अपना अनुभव संक्षेप में लिख कर 'सर्वोदय' को भेज दें। खासकर मालिकान्दा में सर्वानुमति से संघ का जो विसर्जन किया गया, अुसका संघ के सदस्यों के दिल पर जो असर हुआ है और अिस बड़े निर्णय को अुन्होंने जिस दृष्टि से देखा है अुसका अेक संग्रह 'सर्वोदय' के पास रहना चाहिअे। आज के भारत में यह जो अनोखा प्रयोग हमने किया, अुसकी आध्यात्मिकता किस कोटि की थी, यह हम अपने लिअे देख सकेंगे और भविष्य की जनता भी अिसपर से गांधी-युग के प्रारंभ का वायुमण्डल किस प्रकार का था, यह समझ सकेगी।

गांधी सेवा संघ के आज तक जो सदस्य रह चुके हैं, अुनसे प्रार्थना है कि वे अपने अपने विचार और 'प्रतिक्रियाअें' संक्षेप में शब्दबद्ध करके अिस महीने की १५ या २० तारीख तक हमारे पास भेज दें।

का० का०

दीपक

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी सम्पत्ति तथा पंजाब में राष्ट्रभाषा-प्रचारार्थ स्थापित साहित्य-सदन, अबोहर का मासिक मुख-पत्र]

यह क्या है?

जनहितपोषक, नवीन विचारधारा-द्योतक, सच्ची राष्ट्रीयता का समर्थक और मानसिक क्रान्ति का सन्देश-वाहक। पंजाब प्रान्त में यही हिन्दी का पहला पत्र है, जो अनेक कठिनाअियों के बावजूद भी अितने वर्षों तक अपना अस्तित्व कायम रख सका है।

अिसमें क्या पढ़ोगे?

स्फूर्तिदायक जीवनियाँ, दिलचस्प व अुद्बोधक कवितायें, कहानियाँ, बालोपयोगी व स्त्रियोपयोगी सामग्री अेवं जीवन-चर्चा, नयी तालीम, स्वास्थ्य-रक्षा, आहारविज्ञान, ग्रामोद्धार, राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रीय-आन्तर-राष्ट्रीय समस्याओं पर चुने हुअे लेख।

दीपक—लगभग सभी हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों तथा कअी राज्यों के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूल-कॉलेज आदि के लिये स्वीकृत है।

नमूना-अंक; ४ आना : वार्षिक मूल्य रु० २-८-० है।

प्रबन्धक—'**दीपक**'

साहित्य-सदन, अबोहर (पंजाब)

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिअे रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, '**सर्वोदय**', वर्धा।

Reg. No. N. 741

हिंसा में घिरी हुई असहाय जनता

हम जिस मुकाम पर खड़े हैं: हमारी अेक तरफ़ अपने किले में दमन के सारे साज-सरंजाम से लैस, कठोर कानूनों और लाल पगड़ी-वाले दलों द्वारा रक्षित, राजसत्ता है। अुसकी यह श्रद्धा है कि यह देश अिसी तरह आधीन रक्खा जा सकता है। दूसरी तरफ़ खाली हाथ और खाली गाँठवाली असहाय जनता की भीड़ लगी हुअी है। जब अुनसे कहा जाता है कि "अहिंसा ही मुक्ति की ओर स्थायी सुरक्षितता की अचूक दवा है, अुसको स्वीकार करो," तो अुसमें पूरा विश्वास करने की अुनकी हिम्मत नहीं होती। क्योंकि संसार में कहीं भी किसी भले या बुरे अुद्देश्य के लिअे अिस सिद्धान्त का अमल नहीं होता पाया जाता। "मनुष्य को मनुष्य जैसे हिंस्र पशु से बचाने के लिअे हिंसक साधनों की जरूरत है": अिसी अुपदेश का अनुसरण भरपूर तैयारी और साधन-सामग्री जुटा कर सब कोअी कर रहे हैं। जहाँ मनुष्यों को सभी प्रकार की शिक्षा से वंचित रक्खा जाता है, वहाँ अुनको अिस विशेष प्रकार की शिक्षा से भी वंचित रक्खा जाता है। अैसे लोग सदा के लिअे मनुष्य-व्याधों के आखेट के शिकार माने जाने चाहिअें। सब तरफ़ से काँटों की बागड़ से घिरे हुअे, राजा के शिकारियों की सम्पत्ति बन कर वे बेचारे वहाँ रहते हैं; अुन्हें भाग जाने का भी अधिकार नहीं दिया गया है।

'मॉडर्न रिव्यू'
दिसंबर, १९३९

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा मअी

अेक अंक...	... रु०	०—६—०
वार्षिक ...	... रु०	३—०—०
बर्मा में ...	... रु०	३—८—०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.

(सब डाक-सहित)

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है :—

(१) शिष्ट साहित्य-भण्डार, आनंद-भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(२) वोरा अँण्ड कंपनी, ८, राअुण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(३) नवजीवन-कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(४) नवजीवन-कार्यालय, अहमदाबाद

(५) खादी-भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता

(६) सस्ता साहित्य-मण्डल, कॅनाट सर्कस, न्यू देहली

(७) सस्ता साहित्य-मण्डल, लखनअू

(८) गांधी-आश्रम, गोरखपुर

(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअुस, नाणावट, सूरत

(१०) सस्ता साहित्य-मंडल, अिन्दौर

(११) सी. सी. पटेल अँण्ड कं., नडियाद

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

मअी, १९४०
वर्धा

दीनबन्धु से प्रथम परिचय

[काका कालेलकर]

जब दीनबन्धु अँड्रयूज के प्रथम परिचय का स्मरण करता हूं तो मन मे लज्जा छा जाती है।

हम शान्ति-निकेतन में थे। श्री गुरुदेव (रवीन्द्रनाथ) के साहित्य से और स्वभाव से आकृष्ट हो कर दीनबन्धु, शान्ति-निकेतन को ही अपना पार्थिव अेवं आध्यात्मिक घर बनाने की तैयारी कर रहे थे; अथवा कर चुके थे। १९१८ के दिन थे वे।

हमने देखा कि रवि ठाकुर श्री अँड्रयूज की बहुत ही अिज्जत करते थे और अँड्रयूज तो गुरुदेव से पागल भक्त के जैसे पेश आते थे। अिन दोनों के ये प्रेम-प्रसंग देख कर हृदय हर्षोत्फुल्ल हो जाता था। श्री अँड्रयूज के साथ अनके मित्र पियरसन भी रहते थे। दोनों के स्नेह की घनिष्ठता भी हमारे आदर का विषय थी। श्री पियरसन तो श्री अँड्रयूज से भी अधिक पारदर्शक थे, और विद्यार्थियों के मानो कंठमणि ही थे। अँड्रयूज पियरसन से अधिक प्रभावशाली थे, किन्तु पियरसन की तरह विद्यार्थियों के साथ घुल-मिल नहीं जाते थे।

शान्ति-निकेतन की व्यवस्था-चर्चा में श्री अँड्रयूज और पियरसन पूरे दिल से शरीक होते थे। श्री अँड्रयूज की यह आदत थी कि वे चर्चा में बार-बार गुरुदेव के वचनों का हवाला दिया करते। हमलोगों को यह बुरा लगता। क्या हमलोग गुरुदेव को कम पहचानते है? और, अगर गुरुदेव के वचन से ही फैसला करना हो, तो फिर हमलोगों की प्रबंध-समिति की जरूरत ही क्या रहा? हमलोगों की निजी बातचीत में श्री अँड्रयूज की अनेक विचित्रताओं की भी चर्चा होती थी। हमलोगों ने निश्चय किया कि ये अेक बड़े प्रच्छन्न साम्राज्यवादी है। "हिन्दुस्तान के हित की बातें तो बहुत करते है; लेकिन दिल से तो केवल अिंग्लैंड का ही हित चाहते हैं। हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ लोगों के पास अैसे धूर्त लोगों को रख कर अंग्रेज-सरकार अपना राज्य मजबूत करना चाहती है।" अंग्रेज-सरकार और अंग्रेज व्यक्ति को शक की निगाह से देखना हमारी राष्ट्रीयता का सर्वप्रथम सिद्धान्त था।

श्री अँड्रयूज की मूर्ति सामने आते ही हमारे दिल की भलमनसाहत जाग्रत् हो जाती थी; किन्तु अनके पीछे हम अनपर शंका ही करते थे। जो

शिक्षक श्री अेंड्रयूज के साथ बहुत मीठी मीठी बातें करते थे और पीछे अुनके बारे में सब किस्म की शंकायें प्रकट करते थे, अुनकी वृत्ति देख कर मैं हैरान हो जाता था। किन्तु मन में अुनके प्रति प्रशंसा ही रहती थी, क्योंकि हम मानते थे कि मायावी के साथ मायावी बनना ही अुत्तम नीति है। श्री गुरुदेव से ये सब बातें कहने की किसीकी हिम्मत नहीं थी। गुरुदेव चाहे जितने मिलनसार हों, तो भी अंत में जा कर 'अॅरिस्टोक्रैट' (अुच्चवर्गीय) ही तो ठहरे! हम अुनसे कुछ कहने गये और कहीं अुन्होंने डांट दिया तो?

१९१५ के जनवरी या फरवरी के दिन होंगे। कर्मवीर मोहनदास करमचंद गांधी दक्षिण अफ्रिका से स्वदेश लौटे हुअे थे। वे शान्ति-निकेतन आनेवाले थे। गांधीजी की फिनिक्स पार्टी कब की शान्ति-निकेतन में बस चुकी थी। चार्ली अेंड्रयूज अपने प्यारे 'मोहन' के भाओ बन चुके थे और अिसलिअे फिनिक्स पार्टी के वे दादा थे।

जब गांधीजी शान्ति-निकेतन आये तब शान्ति-निकेतन का अुत्साह तो अक्षय तृतीया के सागर के जैसा अुमड़ रहा था। श्री बिपनिमोहन सेन ने अुस दिन अुपवास रक्खा था। अुनकी यह प्रतिज्ञा थी कि भारतमाता के अिस महान पुत्र के स्वागतोत्सव पूर्णतया सपन्न होने के बाद ही मैं खाअूंगा। गांधीजी शाम को या रात को आये और दूसरे दिन की प्रभात होने के पहले ही वे शान्ति-निकेतन के घर के हो गये। अुनसे बातें करने में हमें तनिक भी संकोच नहीं होता था। दुनिया-भर के अनेक सवालों की चर्चा करने के बाद श्री अेंड्रयूज की चर्चा भी हमने कर ली। प्रतिनिधि मैं ही था। मैंने गांधीजी से कहा कि आप श्री अेंड्रयूज को अपना भाओ समझते हैं। परन्तु अुनके बारे में हमारी राय कुछ अलग है। हमें यह अनुभव हो चुका है कि श्री अेंड्रयूज अिंग्लैंड का भला चाहते हैं। गांधीजी ने तुरन्त पूछा कि अुसमें क्या बुराओ है? वे अंग्रेज तो हैं ही। फिर, भला वे अिंग्लैंड का हित क्यों न चाहें?

मैं कुछ शर्मिन्दा-सा हो गया। फिर मैंने कहा, 'वे जैसे अपने को भारतहितैषी बताते हैं वैसे वे नहीं हैं। शायद जाली आदमी हैं।'

गांधीजी ने कहा, 'मेरा अनुभव अैसा नहीं है। अेंड्रयूज अेक नेक आदमी हैं और नेकी-परस्त भी हैं।'

अब तो मुझे दिल की पूरी पूरी बात कहनी ही पड़ी। 'देखिये बापूजी, आप तो बड़े आदमी हैं। जो लोग आपके पास आते हैं, वे अपनी ढाल की अुजली बाजू ही आपकी तरफ रखते हैं। हम छोटे लोग ही अुसे सब तरफ से देख सकते हैं। ढाल की दूसरी बाजू कितनी काली और मैली है, यह हम ही देख सकते हैं। अिस-लिअे आपको हमारे जैसों की राय पर भी ध्यान देना चाहिअे।'

गांधीजी ने तुरन्त कहा, 'यह तो हो सकता है। किन्तु मैं भी आदमियों को पहचानने का दावा कर सकता हूं। कोओ आदमी मुझे आसानी से धोखा नहीं दे सकता। और अेंड्रयूज तो मेरे अितने नजदीक आ गये हैं कि मैं अुन्हें नहीं पहचानूं, यह तो नामुमकिन है। हां, श्री अेंड्रयूज हैं तो अंग्रेज। अंग्रेज जहां जायगा, अपना प्रभुत्व जमाये बिना नहीं रहेगा। अुनके स्वभाव की यह खूबी समझ कर आपको अुसे बरदाश्त करना चाहिअे। वे निर्मल हैं और पुण्यपुरुष हैं। श्री अेंड्रयूज को हिन्दुस्तान की सेवा द्वारा अिंग्लैंड की सच्ची सेवा करनी है। वे अिंग्लैंड को सच्चे हृदय से चाहते हैं अिस-

लिअे अिंग्लैंड के हाथों होनेवाला हिन्दुस्तान के प्रति अन्याय अुनके लिअे असह्य हो जाता है। अगर वे अिंग्लैंड को नहीं चाहते तो अिस प्रकार हिन्दुस्तान की सेवा करने के लिअे अुद्यत नहीं होते।

"तुम जो अुनपर अिलज़ाम लगा रहे हो, अुसके लिअे तुम्हें सबूत देना होगा"।

मैंने कुछ सोच-विचार कर दो अेक टूटे-फूटे सबूत पेश कर दिये। किन्तु गांधीजी के दिल पर अुनका कुछ भी असर नहीं हुआ।

अुस दिन मैं बड़ा अस्वस्थ हो कर अपने कमरे को लौटा। गांधीजी ने जो दृष्टि बतायी वह अुन दिनों हमारे पास थी ही नहीं। हम रावण और विभीषण को ही पहचानते थे। यहाँ तो शुद्ध मानवता को पहचानना था। मैंने गांधीजी से अितना ही कहा कि "आपने अेक नयी दृष्टि बतायी है। अुस दृष्टि से श्री अँड्रूज की तरफ देखने की कोशिश करूंगा और अपने मत को बार बार परखता रहूंगा। अिस वक्त अितना ही कह सकता हूं।"

मैंने मन में बहुत-कुछ सोचा। श्री अँड्रूज से बहुत परिचय बढ़ाया। किन्तु अुनसे कभी यह नहीं कहा कि किसी समय आपके प्रति मेरे मन में घोर शंकाअें रह चुकी हैं।

अेक दिन अैसी ही कुछ बातें हो रही थी। बातचीत के सिलसिले में बिलकुल स्वाभाविकतया श्री अँड्रूज ने कहा, "मुझे हिन्दुस्तान का नेता या गुरु नहीं बनना है। मैं अंग्रेज हूं, नम्र सेवक बन कर ही मैं हिन्दुस्तान की सच्ची सेवा कर सकता हूं। मैं अैसे अंग्रेजों को जानता हूं जो हिन्दुस्तान में आ कर गुरु, नेता या मालिक बन कर हिन्दुस्तान के लोगों को अुपदेश देने लगते हैं। मुझे वैसा काम नहीं करना है। हिन्दुस्तान के लोगों का अुद्धार हिन्दुस्तान के लोगों द्वारा ही होगा। अुद्धार का रास्ता वे ही ढूंढेंगे और तय करेंगे। हिन्दुस्तान के लोगों की जो कुछ सेवा मुझसे बन सके, वह करना मेरा काम है। वह सेवा भी हिन्दुस्तान के लोग जिस तरह मुझसे लें, अुसी तरह मुझे करनी है।"

अितनी बातें सुनने के बाद मेरा दिल साफ हो गया और मैं श्री अँड्रूज को दुनिया के श्रेष्ठ पुरुषों में गिनने लगा। जैसे जैसे अुनकी मानवता से मेरा परिचय बढ़ता गया, वैसे वैसे अुनके प्रति मेरा आदर भी बढ़ता गया।

आज दर्द अिसी बात का है कि अुनकी तरफ से सब तरह का प्रोत्साहन होते हुअे भी मैंने अुनके सत्संग का लाभ अधिक क्यों नहीं अुठाया? कभी कभी वर्धा में अुनसे मिलना था और अनेक विषयों पर हमारी चर्चाअें होती थी; लेकिन मुझे अुनके समय का हमेशा खयाल रहता था और मेरा काम भी मुझे ज्यादा बैठने नहीं देता था। आज जब अुनका सत्संग अलभ्य हो गया है, अुनकी दी हुअी अेक किताब— 'दी मीड ऑफ् क्राअिस्ट '—पढ़ रहा हूं और अिस तरह अुस महान् आत्मा का सत्संग प्राप्त कर रहा हूं।

श्री अँड्रूज के बारे में लिखने लायक बहुत कुछ है। यहाँ तो केवल अुनसे प्रथम परिचय का संस्मरण ही शब्दबद्ध करना था।

सरदार वल्लभभाओी का भाषण

भाअियो और बहनो,

प्रास्ताविक

अेक बात का मुझे अफसोस है और आपको भी होगा कि अिस सम्मेलन में हमारे पूज्य नेता राजेन्द्रबाबू, जमनालालजी और कृपालानीजी नहीं आ सके। अगर वे आते, तो अुनके अुपदेश से हम लाभ अुठा सकते। आज की नाजुक हालत में अुनके अनुभव की कअी समझने लायक बातें सुनते; सो नहीं सुन पाये। लेकिन यह त्रुटि बहुत बडी हद तक दूसरी तरह से पूरी हो गयी है। पूज्य बापू ने जितना हिस्सा अिस सम्मेलन में लिया, अुतना पिछले किसी सम्मेलन में नहीं लिया।

यहाँ हम अेक विचार के आदमी मिलते हैं, अैसा माना जाता है। अिसलिअे वर्तमान परिस्थिति के बारे में कुछ खास बात कहने की जरूरत नहीं रह जाती। 'हरिजन' से हर हफ्ते जो मार्गदर्शन मिल जाता है, अुसमें संतोष मानना चाहिअे। लेकिन शायद आप मुझसे मेरी अपनी स्थिति के बारे में सुनना चाहते हों। संघ को कल जो नया रूप दिया गया, अुसके कारण हम सब अुसमें से हट गये। अुसका आपके दिलों पर गहरा असर हुआ है। शायद कुछ चोट भी लगी है। अिसलिअे आज आप मुझसे बोलने को न भी कहते, तो भी आज मैं बोलनेवाला था। बापू ने तो आपको आश्वासन दिलाने तथा आपका धर्म समझाने के लिअे काफी परिश्रम किया। लेकिन मैं तो आप लोगों के साथ बैठनेवाला हूं। अिसलिअे अगर मैं बराबरी के नाते कुछ कहूं, तो अुसका असर आपपर कुछ दूसरा ही होगा।

अेक परिवार की भावना

हमें अिसका दुःख नहीं होना चाहिअे कि संघ समेट लिया गया। बल्कि अेक नाहक का बोझ अुतर गया, अिसलिअे दिल हलका हो जाना चाहिअे। हां, अेक त्रुटि हम सब महसूस करेंगे। पाँच सात दिनों तक साल में अेक दफा हम सब मिलते थे, अेक कुटुंब जैसे रहते थे; वह अब नहीं होगा। हम कोअी संप्रदाय तो बनाना नहीं चाहते थे। अेक सिद्धान्त को माननेवाले, अेक छत्र में रहनेवाले, अेक-से विचारवाले, लोग सात दिन तक अेकत्र रहते थे। हम राजनीति में काम करने-वालों के लिअे यह सप्ताह बहुत ही आनन्ददायी होता था। हमारे लिअे सात दिन का आराम जरूरी है। अैसी राजकारण से मुक्त हवा में श्वास लेना भी बडा लाभदायी है। यहाँ संप्रदाय की भावना पैदा नहीं होती थी, अेक कुटुंब की भावना बढ़ती थी और दिल को शान्ति मिलती थी।

संघ की विशेषता

परंतु जिस तरह यह संघ शुरू में बना था, अुसी रूप में वह नहीं रहा। अुसकी शुरू की अवस्था में अुसके सदस्यों पर कोअी बोझ नहीं था। चरखा संघ, ग्राम अुद्योग संघ, तालीमी संघ, हरिजन सेवक संघ, आदि का अुनके सदस्यों पर कोअी खास बोझ नहीं है। अिन सबसे गांधी सेवा संघ की जिम्मेवारी कुछ अलग है। पाँच साल हुअे, जब से किशोरलालभाअी संघ के अध्यक्ष हुअे, तब से संघ की जिम्मेवारियाँ और भी बढ़ गयीं। जब यूरोप में युद्ध छिड़ा, तब यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गयी। चरखा संघ आदि केवल रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाअें चुपचाप अपना अपना काम करती रहीं। लेकिन गांधी सेवा संघ के सदस्य यह सोचने लगे कि संघ की हैसियत

से लड़ाओी की तरफ़ से हमारा क्या रुख़ हो ? हम महसूस करने लगे कि अगर हमने गांधी सेवा संघ का बड़ा नाम और बड़ा ध्येय रक्खा है, तो अुसके पीछे अिस मौके पर किस तरह जायें ? यह मौका हमारे लिअे परीक्षा का मौका था। "हम सिर्फ़ यंत्र की तरह चरखा चलाते जावें, या मेले की तरह सम्मेलन कराते जावें और तोते की तरह सत्य और अहिंसा की बातें करते रहें, तो अिस मौके पर हमारी हँसी होगी"—यह विचार हमें सताने लगा। हम अेक संघ बना कर बैठ गये हैं। चरखा संघ, ग्राम अुद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ, तालीमी संघ और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, आदि के अलावा राजकीय काम के लिअे कांग्रेस भी थी। लेकिन अिन सबसे अलग हमने अेक संघ बनाया। तब तो अुसका कोअी खास ध्येय और खास कार्यक्रम होना ज़रूरी हो जाता है। अैसे संघ की कल्पना से ही जिम्मेवारी का बोझ पैदा हो जाता है। अुसे सहने की ताक़त हमारे अन्दर कहाँ तक है, यह विचार बार बार आता था। लड़ाओी छिड़ने के बाद वह और भी जोरों से आने लगा।

हममें कोअी विशेषता नहीं है

किशोरलालभाओी भी कोअी दो-तीन साल से कहते रहे कि 'मुझमें यह बोझ अुठाने की ताक़त नहीं है। शारीरिक कमजोरी है, मुझे मुक्त कीजिये'। हुदली के बाद और पहले भी संघ के जो सदस्य राजनीति में भाग लेते थे, वे कमजोरी बताते थे। रोज़ नये संकट खड़े होते थे। कुछ सदस्य आपस में लड़ते रहते थे। तब यह विचार आने लगा कि हम क्यों अेक अलग संगठन बना कर बैठें ? दूसरे लोगों की अपेक्षा हमारे पास अधिक क्या है ? कांग्रेस में भी सत्य और अहिंसा की प्रतिज्ञा तो है ही।

संघ का मूल उद्देश्य

शुरू में संघ जैसा था वैसा ही रहता, तो हमपर कोअी बोझ नहीं पड़ता। असहयोग के आन्दोलन में चन्द आदमियों ने कुछ प्रतिज्ञाअें लीं और चौबीस घण्टे सेवा करने का निश्चय किया। "अुनके निर्वाह का कुछ प्रबंध हो जाय तो वे आसानी से और स्वस्थता से रातदिन सेवा कर सकेंगे; जिस प्रान्त में जैसी सुविधा हो, अुसके अनुसार अुन्हें रचनात्मक कार्य में लगा दिया जाय"— अैसी कल्पना थी। लेकिन जब किशोरलालभाओी प्रमुख हुअे, तब अुसका यह रूप मिट गया। अुसके बाद पार्लमेंटरी कार्यक्रम आया और मन्त्रिपदों का स्वीकार किया गया। अुस वक्त भी हमारा अुद्देश्य तो यही था कि रचनात्मक कार्यक्रम को मदद पहुँचावें। लेकिन तभी से हमारी कठिनाअियाँ बढ़ती गयीं। संघ पर काफी बोझ पड़ने लगा।

संघ प्रसिद्ध कैसे हुआ ?

पहले तो कोअी जानता भी नहीं था कि गांधी सेवा संघ जैसी कोअी संस्था है। जब से किशोरलाल-भाओी आये, तब से लोगों को संघ का पता चला। और जब अधिकार-ग्रहण के बाद में, राजेंद्र-बाबू और आप लोगों में से कुछ सदस्य राजकारण में हिस्सा ले कर भी संघ में रहे, तब तो संघ की बड़ी ज़ाहिरात हो गयी। दरअसल हमने संघ की तरफ़ से राजनीति में तो कोअी हिस्सा लिया ही नहीं। संघ में राजनैतिक मामलों के विषय में प्रस्ताव या चर्चा नहीं होती थी। लेकिन फिर भी, संघ की जाहिरात हुअी और अुसके साथ-साथ काफी ग़लतफ़हमी भी हुअी।

विचारों का संघर्ष

अब तो आअिडिऑलाजी (विचार-प्रणाली) का भी काफी घर्षण होने लगा है। लखनअू कॉंग्रेस के पहले अैसा कोअी विचार-संघर्ष नहीं था। राष्ट्रीय भावना से काम करनेवाले सभी व्यक्ति बापू के सिद्धान्तों को मानते थे। लखनअू कांग्रेस के बाद संघर्ष दिखायी दिया। सारी दुनियाँ में पूंजीवादी और मजदूर-वर्ग के बीच भारी संघर्ष छिड़ गया था। अुसके असर से हिन्दुस्तान कितने दिन बच सकता था? असल में कॉंग्रेस की जो विचारधारा थी, वह गांधी-विचार के अविरुद्ध ही थी। लेकिन कॉंग्रेस के कुछ नेताओं को अिस बाहर से आयी हुअी विचारधारा का अधिक आकर्षण हुआ। अिसमें से कुछ घर्षण पैदा होना स्वाभाविक था। समाजवाद के आन्दोलन ने जोर पकड़ा। घर्षण के बाद काफी वैमनस्य भी पैदा होने लगा। वैमनस्य हटाने की काफी कोशिश की गयी; लेकिन कामयाबी नहीं मिली।

क्या गांधी सेवा संघ अेक पक्ष है?

अैसी हालत में गलफ़हमी होना अनिवार्य ही था। विचारों के संघर्ष में अैसा माना जाना स्वाभाविक था कि गांधी सेवा संघ भी अेक विचारधारा का प्रतिनिधि दल है। परन्तु जब अेक दिन मैंने पंडित जवाहरलालजी का भी वक्तव्य देखा तो मुझे चोट लगी। अुन्होंने कह दिया कि समाजवादी पक्ष के समान गांधी सेवा संघ भी अेक पक्ष है। अुस वक्तव्य से किशोरलालभाअी को भी दुःख हुआ। अुन्होंने हकीकत समझाने के लिअे अेक वक्तव्य निकाला। मुझे पता नहीं कि अुससे जवाहरलालजी को संतोष हुआ या नहीं। लेकिन मुझे आशा है कि अुन्हें संतोष हो गया होगा, क्योंकि वे हमारी बात में विश्वास करते हैं। लेकिन दूसरे कअी लोग अैसे है, जिन्हें संतोष नहीं हुआ होगा। वे समझते हैं कि हम अिस तरह छिप छिप कर काम करना चाहते हैं। शायद अुनकी राय में अैसा करना अुचित भी हो, लेकिन संघ के विषय में तो यह बात गलत है। फिर भी, अुनके दिल से यह गलतफ़हमी हटी नहीं। वे तो यही समझते है कि हम अिस सम्मेलन में अपना संगठन मजबूत करते है और कॉंग्रेस पर अपना कब्जा साल भर जमाये रखने का अिरादा पक्का करते हैं।

मुझे अिस बात का दुःख है कि हमें यहाँ ले आने में प्रफुल्लबाबू को अितनी तकलीफ अुठानी पड़ रही है। यहाँ यह विरोधी प्रदर्शन हुआ। अैसी हालत में संघ को बंद करने से गलतफहमी होगी। लोग कहेंगे, ये तो डर कर मैदान से भागते है। लेकिन जब हमारा मन शुद्ध है और हमारे दिल में डर नहीं है, तो हम अैसी गलतफहमी से डर कर सही काम से क्यों रुकें? हम अुस गलतफ़हमी को सह लेंगे।

संघ को बन्द करने की सलाह

संघ को खतम करने की बात कोअी आज ही तो नहीं आयी। कअी दिन से किशोरलाल-भाअी कह रहे थे कि यह बोझ अब मैं नहीं सम्हाल सकता। कोअी दूसरा आदमी जो हमको कुछ आगे ले जाय अैसा दिखायी नहीं देता। बापू हैं, लेकिन वे तो अुलटी ही (बन्द करने की) सलाह दे रहे हैं। किशोरलालभाअी पर बोझ लादने में तो हिंसा है। अिसलिअे कोअी छह महीने पहले ही मैंने यह सलाह दी थी कि हम अिस संघ को बंद कर दें। आज बापू भी वही सलाह दे रहे हैं। जब किशोरलालभाअी जैसा दूसरा कोअी समर्थ व्यक्ति आगे आ कर यह कहने को तैयार नहीं है कि मैं अिस बोझ को अुठाअूंगा और आगे कदम बढ़ाअूंगा, तब हमें अपनी कमजोरी का पता चलता है।

हम सभी असभ्य-सभ्य हो गये

हमारे दिल में कओी बार यह आता है कि हमारा अेक सत्संग है। हम दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक सत्यवादी और पवित्र हैं। हकीकत अैसी नही है। हमसे ज्यादा काम करनेवाले, सत्यवादी और सच्चरित्र लोग संघ के बाहर कओी पड़े है। काका कओी दिन सदस्य नहीं थे। महादेवभाओी आज भी असभ्य-सभ्य हैं। फिर हम अितनी धृष्टता क्यों करें कि हम अपनी अेक अलग संस्था खड़ी करें? हमसे अच्छे कओी गांधीवादी संघ के बाहर पड़े हैं। हम भी अुन्हीमें जा कर क्यों न मिल जायँ? तब नतीजा यह होता है कि हम सभी असभ्य-सभ्य हो जाते हैं। हम अैसा अच्छा संगठन भी तो नहीं कर सके कि कोओी गांधीवादी संघ से बाहर रहने ही न पावे। हम कमजोर हैं अिसलअे हमें आश्रय लेने का अधिकार तो है। लेकिन हमें यह सावधानी रखनी चाहिअे कि कहीं हमारे बोझ से संस्था ही न टूट जाय। आज हमारी कमजोरियों का बोझ अितना बढ़ गया है कि संघ अुसे सम्हाल नहीं सकता। अिसलिअे अिस संघ के खतम होने से आपके दिल को चोट नहीं लगनी चाहिअे। यह संगठन खतम हुआ, अिसका मतलब यह नहीं है कि आज तक जो गांधी-वादी थे वे कुछ और हो बन जायँगे, या दूसरे किसी संगठन में चले जायँगे। वे तो पड़े ही हैं। जो राजनीति में हैं, वे तो अेक तार से बँधे ही हुअे हैं। अगर अुनका अपनी क्रीड पर पक्का विश्वास हो तो अुनके परस्पर-संबंध में संघ के खतम हो जाने से कोओी फर्क नहीं आयेगा। कॉंग्रेस की राजनीति तो चलती ही रहती है। अे. आओी. सी. सी. की सभा होती है, कॉंग्रेस के अधिवेशन होते हैं, अेक-दूसरे से मिलने के कओी मौके मिलेंगे। और न मिले तो भी क्या? नेता लोग तो हर प्रान्त में घूमते रहते हैं। जो गांधीजी के सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं, वे अिस तरह कहीं-न-कहीं मिलते रहेंगे। और न मिलें तो भी क्या बिगड़ता है? हमें तो अपनी अपनी जगह रह कर सेवा करनी है। कोओी दलबन्दी का संगठन नहीं करना है। दूसरे पक्ष अपना अपना संगठन करें तो भी हम शेष रह जाते हैं। यह शेष ही सबसे बड़ा है। अिसलिअे हमारा संगठन अपने आप हो जाता है। संघ के टूटने से आपके दिलों को चोट लगने की कोओी वजह नहीं है। अेक चीज हमने छोड़ दी। हम जैसे थे वैसे अपने आपको मानते नहीं थे। संघ के न रहने से यह भ्रम दूर हो जायगा। हमारा बोझ अुतर जायगा।

राजनीति के कारण संघर्ष

आज हमारी राजनीति का बोझ नाहक आपपर पड़ता है। हम राजनैतिक क्षेत्र में शुद्ध साधनों से काम करने की कितनी ही कोशिश करें तो भी संघर्ष और अीर्ष्या पैदा हो ही जाती है। हम यह कबूल करते हैं, कि बापू जिस अहिंसा की वृत्ति से काम करते हैं और जिन शुद्ध हथियारों से काम लेते हैं अुतनी हमारी शक्ति नही है। मेरी जबान में भी कड़वापन है। अुसे हटाने की कोशिश तो करता हूँ, लेकिन आज अुसको निकालने की बात आसान नही है। जो आदत बचपन से पड़ जाती है, अुसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। बापू जिस भाषा और पद्धति से काम लेते हैं, अुससे अगर हम लें सकते, तो हमारी शक्ति खूब बढ़ जाती। लेकिन हम अपनी आदत से लाचार हैं। अिसलिअे हमारा विरोध होता है। हम तो अैसा बहुत-सा विरोध हजम कर गये। अिससे भी कठोर विरोध हजम कर जायेंगे। लेकिन अुस विरोध का बोझ संघ क्यों अुठावे? लोग समझते हैं कि आप हमारे औजार हैं। यह असत्य बात है। अिसलिअे जो हुआ, वह बहुत ठीक हुआ। अपने पैरों पर खड़े रहने से हममें ताकत आयेगी। यहाँ आने से पहले ही हमने यह सोचा था कि संघ अिस रूप में खतम कर दिया जाय।

आध्यात्मिक बल

यहाँ आध्यात्मिक बल की बात भी कही गयी। आध्यात्मिक बल संघ में रहने से नहीं मिलेगा। वह दूसरों के भरोसे कभी नहीं मिलता। अपने पैरों पर खडे रहने से हमें वह मिलेगा। जब आबोहवा साफ हो जायगी तब अुस बल को ले कर फिर संगठन कर सकते हैं। हममें आज कौन-सी आध्यात्मिकता है? हिन्दुस्तान में बहुत-से साधु हैं। लोग अुन्हें मानते भी हैं। अुन्हें आध्यात्मिक बल के लिअे कोअी संस्था नहीं बनानी पड़ती। यह आध्यात्मिक बल की बात मिथ्यावाद है। किशोरलाल जब से संघ में आये, तबसे अुसमें जो अधिक चीज आयी वह थी आध्यात्मिक लाभ। जब वही नहीं मिल सकता तब संघ को क्यों रखें? दुनिया मानती है वैसे हम नहीं हैं, यह चीज हमको अपने आपसे और दुनिया से कहनी थी; वह हमने संघ को समेट कर कह दी है।

वर्तमान परिस्थिति

दूसरी बात है वर्तमान परिस्थिति, जिसके विषय में अपने विचार पेश करने के लिअे मुझसे खास तौर पर कहा गया है। बापू तो अिसके विषय में हर सप्ताह लिखते ही रहते हैं। आप भी काफी जानते हैं। अखबारों में भी काफी चर्चा होती रहती है। दुनिया की आज की स्थिति अैसी विचित्र है कि यह कोअी नहीं कह सकता कि कल क्या होगा? जो अैसा कहता है कि वह आगे की कह सकता है, वह मिथ्यावादी है। जो दो पक्ष लड़ रहे हैं, अुनमें से हर अेक कहता है कि हम जीतेंगे। दोनों अैसा मानते भी होंगे। क्योंकि दुनिया में अैसा बेवकूफ कौन है, जो यह मान कर कि मैं हारूँगा, लड़ेगा? आज जो देश लड़ाअी में शामिल नहीं हैं, वे भी नहीं जानते कि वे कब शामिल होंगे? वे अलग ही रहेंगे, अिसका कोअी भरोसा नहीं है।

हमारे मुल्क की अजीब हालत

हमारे मुल्क की सारी दुनिया में अजीब हालत है। हम जानते भी नहीं तो भी लड़ाअी में शामिल हैं। हमसे पूछने की किसीको कोअी जरूरत नहीं है। बिना देश को खबर दिये ही जाहिर किया गया कि हम लड़ाअी में शामिल हो गये हैं। बाद में देश को पता चला कि वह लड़ाअी में शरीक हो गया है। हम लखनअू से कहते और मानते आये हैं कि हम नाजीजम और फैसीजम की जीत तो नहीं चाहते। जिन दो शक्तियों के बीच लड़ाअी हो रही है अुनमें से हम किसकी जीत चाहें? हम तो साम्राज्यशाही का भी नाश चाहते हैं; ब्रिटिश साम्राज्यशाही को नष्ट करना चाहते हैं। अिसलिअे अुसकी भी जीत हम नहीं चाहते। नाजीवाद के जन्म के पहले से ही हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश चाहते आये हैं। हमारी दोनों तरफ बुराअियाँ हैं। दोनों तरफ खाइयाँ हैं। बड़ी नाजुक स्थिति है। कोअी कहे कि 'लड़ाअी का मौका आया है; लड़ाअी के मैदान में कूद पड़ो' तो वह अन्धे हो कर खड्डे में कूदना है।

हमारी समस्या

जब यह लड़ाअी छिड़ी तो दो बातें हमारे सामने थीं। अेक तो यह कि हम सरकार से कहें "हम सत्याग्रही हैं। आप मुसीबत में पड़े हैं, अैसे मौके पर हम आपसे लड़ाअी करना नहीं चाहते। अिसलिअे नाजीवाद को हराने में हम बिनाशर्त आपकी मदद करेंगे। लेकिन हम अहिंसावादी हैं; अिसलिअे हम सिर्फ आपका नैतिक समर्थन करेंगे। जब तक लड़ाअी जारी है, आपकी सल्तनत से नहीं लड़ेंगे।"

बापू की ही विशेष शक्ति

परंतु यह तो बापू ही कह सकते थे। यह सामर्थ्य अुन्हींकी है। अुनके दिल में यह विश्वास होता है कि मैं सामनेवाले का हृदय-परिवर्तन करा लूंगा। हमारी यह ताकत नहीं है। अुनके आशीर्वाद की भी दुनिया के पास कद्र है। हमारी नैतिक सहानुभूति को कौन पूछता है? बापू को अितना आत्मविश्वास है कि वे सरकार पर अितना बोझ डाल सकते हैं कि अुसे सुनना ही पड़ेगा। हम अपने विषय में यह नहीं कह सकते। बापू ने भी व्हाॅअिसराय से कहा कि मैं अपनी खुद की राय दे रहा हूं। मुल्क की राय प्रकट नहीं कर रहा हूं। वर्किंग कमेटी में हमारे सामने बड़ी विकट समस्या पेश हुअी। यह पहला ही मौका था जब वर्किंग कमेटी में अेक ही सवाल पर बारह-तेरह दिन तक लगातार बहस हुअी। बापू ने हमपर छोड़ दिया कि आप अपनी राय पर चलें।

कार्य-समिति का वक्तव्य

हमने सोचा कि बापू जो नीति बरत सकते हैं, वह हम नहीं बरत सकते। अधिकार-ग्रहण के बाद कॉंग्रेसी मंत्रियों ने जो बल-प्रयोग किया, अुसको हमने मंजूरी दी थी। क्योंकि हमने देखा कि अुसके बिना काम नहीं चल सकता था। हमने सोचा कि हम अैसा नहीं कर सकते जिससे कि देश में अराजकता हो। अुस हालत में तो न हिंसा चल सकती है, और न अहिंसा। बिना-शर्त नैतिक सहायता देने की हमारी ताकत नहीं थी। अिसलिअे हमने सल्तनत से सफाअी चाही। हमने कहा कि पहले सरकार अपने लड़ाअी में पड़ने के कारण जाहिर करे और हिन्दुस्तान के साथ वह क्या करनेवाली है, यह साफ साफ बता दे, तो हम कुछ मदद करने की बात सोच सकते हैं।

तभी से हमारी मुसीबतें शुरू हो गयीं। अिस तरह मदद करने का प्रस्ताव करने के बाद हमारे लिअे संघ में रहना कठिन हो गया। तभी से हमने सोच लिया था कि हमें संघ में से हट जाना चाहिअे। बापू की निजी राय तो यह थी कि हम किसी तरह का सौदा न करें। हमारा प्रस्ताव संघ की नीति में ठीक ठीक नहीं बैठता था।

व्हाअिसराय से मिलने का नतीजा

अुसके बाद जो कुछ हुआ, आप जानते हैं। व्हाअिसराय से बातचीत के बाद हमारे दिल पर यही असर हुआ कि यह सल्तनत कुछ देना नहीं चाहती। लेकिन अैसा कहना दुनिया को अच्छा नहीं लगेगा, यह समझ कर अुसने अेक रास्ता निकाला। अुसने कहा कि हम तो देने को तैयार हैं; लेकिन आप तैयार नहीं हैं। "हिन्दू-मुसलमानों को मिलाओ। राजाओं के, पूंजीपतियों के और ब्रिटिश लोगों के स्वार्थों का विचार करो। तुम्हारे पास अपनी रक्षा के लिअे फौज कहाँ है"? हिन्दू-मुसलमानों का सवाल फिर से अुठाया गया। दुनिया के सामने मुँह दिखाने के लिअे सरकार ने फिर वही पुरानी चाल चली। अेक कौम को दूसरी कौम से लड़ाने की पुरानी नीति से सरकार काम लेने लगी। हमें निश्चय हो गया कि अब सरकार से बात करने में कोअी फायदा नहीं है। अिससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। बापू को भी अैसा ही लगा। 'हरिजन' में अुन्होंने अिसी तरह की बात लिखी है। लेकिन बापू की यही नीति रही है कि अगर लड़ाअी करना हो, तो कोअी अैसी बात बाकी नहीं रहने देते, जिसमें समझौते की ज़रा भी गुंजाअिश हो।

अैसी हालत में हमारा क्या कर्तव्य है? हमें हमेशा तैयार रहना चाहिअे। सरकार से बिना लड़े अगर काम हो जाय तो ठीक ही है; नहीं तो हमें लड़ाअी के लिअे भी तैयार रहना

चाहिये। हमारे पास ओक ही शक्ति है जो हमने अिन बीस सालों में बापू के नेतृत्व में पायी है। अगर लडाओी करनी पडे, तो अुसके लिओ ताकत चाहिये। और अगर बिना लडाओी के ही कुछ मिल जाय तो अुसे हजम करने के लिओ भी ताकत चाहिये।

हमारी ओकमात्र शक्ति

हमारे पास ओक ही शक्ति है; वह है नैतिक शक्ति। दूसरे मुल्कों ने तलवार और बन्दूक के जोर पर अपनी आजादी पायी; हिन्दुस्तान के पास न तो वह सामान है और न हम अुसे चाहते हैं। तो हम दूसरी बात क्यों सोचें? समझौते की बातें चलने से अगर हमारी ताकत कम होती हो तो वह शक्ति ही नहीं है। जो शक्ति समझौते की राह देखने से गायब हो जाती है वह दुर्बलता ही है। हम अशक्ति को ही शक्ति समझते हैं। कुछ लोग चाहते हैं कि धौंस-धुड़की से ही कुछ मिल जाय तो अच्छा है। यह सल्तनत अैसी नहीं है। वह धौंस-धमकी से डरनेवाली नहीं है। और अगर धौंस-धमकी से कुछ मिला भी तो हम अुसे सम्हाल नहीं सकेंगे। अिसलिओ जो हम लेंगे, वह अपनी पूरी ताकत लगा कर लेंगे। अगर समझौते से काम हो जाय तो अच्छा ही है। हमारी शक्ति आगे काम आयेगी। जो तैयार होते हैं वे "हम आज तैयार हैं और कल नहीं हैं", अैसा नहीं कहते।

हिन्दुस्तान का प्रश्न

'सरकार लडाओी में अुलझी हुओ है'; अिसलिये यह अच्छा मौका है, यह समझना ही कमजोरी का लक्षण है। अंग्रेज अिस लडाओी में हार गये तो भी साम्राज्य नहीं टिकेगा और जीते तो भी नहीं टिकेगा। अिसलिओ अुन्हें हिन्दुस्तान से फैसला कर लेना चाहिये। हिन्दुस्तान जैसे देशों को गुलामी में रखना लडाओी का मूल है। सरकार कहती है कि हम लोकसत्ता के लिओ लड रहे हैं। लेकिन जब तक हिन्दुस्तान आजाद नहीं है तब तक अुसका यह कहना झूठ है। अगर सरकार यह बात मंजूर करती हो तो अुसे हमारे साथ तसफिया कर लेना चाहिये। फिर वह यह नहीं कह सकती कि देश में अराजकता फैलने का डर है। अगर अुसका दिली विश्वास हो तो अैसी बात अुसके मुँह से नहीं निकल सकती। हिटलर की जो शक्ति काम करती है, अुसका मूल भी हिन्दुस्तान ही है। अगर हिन्दुस्तान आजाद हो जायगा, तो हिटलर गैरों पड़ेगा। आज तो सभी हमपर दया करते हैं। हिटलर भी कहता है कि मैं हिन्दुस्तान को छुडाअूंगा।

हिन्दुस्तान अेक बडा भारी चाय का बगीचा है। आसाम में चाय के बगीचों में लोग मजदूरी करते हैं और बाग का मालिक नफा खाता है। आसपास के जंगलों में शिकार करता रहता है। हमारा देश भी अेक बडा-सा शिकारखाना है।

हमारा नेता

अिस हालत में हम पडे हुओ हैं। यह हमारा सद्भाग्य है कि हमारे पास अेक अैसा नेता है, जिसकी नैतिक शक्ति दुनिया के किसी भी दूसरे आदमी से अधिक है। पहले जब हमने वर्किंग कमेटी में फैसला किया तब अुनसे अलग किया। बाद में बडी आजिजी से अुनसे कहा कि अब दूसरा कदम आपके बिना नहीं अुठा सकते। अुन्होंने हमारी बात को मान लिया। अब लडाओी कब होगी, कैसे होगी—अिसका बोझ वर्किंग कमेटी पर नहीं है। हमारे सिपाही और हथियार तैयार हैं या नहीं, यह हमें देखना है। अगर फौज और हथियार जैसे चाहिये वैसे न हों, तो सेनापति हुक्म कैसे दे सकते हैं? अुसमें अुनका क्या कसूर है? हम अुन्हें दोष भी कैसे दे सकते हैं?

आत्मशुद्धि की आवश्यकता

गांधी सेवा संघ न रहा तो भी हम गांधीजी के सिद्धान्तों पर श्रद्धा रखनेवाले तो हैं। हमें कॉंग्रेस का संगठन ठीक कर लेना चाहिये। आप सब जानते हैं कि हम कितने कमजोर हैं। पंजाब से केरल तक नज़र डाल कर देख लीजिये। सभी प्रान्तों की परिस्थिति देखने पर आप मानेंगे कि हमने जल्दी नहीं की, यह अच्छा ही किया। अब की लडाओी बडी ज़बरदस्त होगी, क्योंकि यह आखिरी लडाओी होगी।

हमारे शस्त्र की श्रेष्ठता

आगे किसी गलतफहमी की गुंजाअिश न रहे, अिसलिये पहले वायुमंडल साफ कर लेना चाहिये। सल्तनत क्या चाहती है और हम क्या चाहते हैं, यह साफ हो जाना चाहिये। रियासतों का और कौमी झगडों का मामला बिना सल्तनत की मदद के क्यों नहीं तय हो सकता, आदि सारी बातें दुनिया के सामने रखनी चाहियें। दुनिया में जो शक्ति काम कर रही है वह तलवार की शक्ति है। हमारा रास्ता दूसरा है। हमें दुनिया का आशीर्वाद चाहिये। हिटलर को अुसकी परवाह नहीं है। हमें यह अेक अैसा मौका मिला है, जब हम दुनिया को बता सकते हैं कि हमारा शस्त्र हिटलर के शस्त्र से श्रेष्ठ है। हिटलर से भी हम सीख सकते हैं। पिछली लडाओी में हारने के बाद जर्मनी ने अपना संगठन किया। अेक सेनापति की आज्ञा मानी। हिटलर दूसरों के लिये बुरा है, लेकिन जर्मनी तो अुसे अपना देवता मानता है। अैसा अनुशासन हममें कहाँ है? जो हमारा नेता है, अुसके पीछे चलने के लिये हम कहाँ तक तैयार हैं? हम अिस तरह तो काम नहीं कर सकते कि हम कहें, और हमारा सेनापति लडे।

ज़रा अपनी ओर देखिये

ज़रा अपनी ओर देखिये! हर प्रान्त में यही झगडा चल रहा है कि कांग्रेस पर कैसे कब्जा करें? अिसने हमें कमजोर कर दिया है। नीचे से ले कर ठेठ अूपर तक यही हालत है। जब से हमने अैलान किया कि सल्तनत से कुछ-न-कुछ करा लेना चाहिये, नहीं तो लडाओी करनी होगी, तब से आबोहवा कुछ साफ हो रही है। आपस की कटुता कुछ कम हो रही है। परंतु फिर भी बडा कठिन काम है। जब तक हवा साफ न होगी, सत्याग्रहवाले क्या कर सकते हैं? अभी हमें समय मिल रहा है, यह हमारी भलाओी की बात है। अिस वक्त हम आपस के लडाओी-झगडे मिटा सकें, तो बडा भारी फायदा होनेवाला है।

अहिंसा ही अेकमात्र मार्ग है

कोओी कहते हैं कि लडाओी बन्द हो जायगी तो हाथलगा मौका चला जायगा। हमने गांधी सेवा संघ को जैसे चट-से समेट लिया, अुस तरह यह लडाओी बन्द होनेवाली नहीं है। अुसकी जडें गहरी चली गयी हैं। आज भी जो मौका मिला है वह तो मरने का ही मौका है। सरकार से लड़ने के बदले हम आपस में लड़ मरेंगे। अगर हम आपस में न लडें, तो हमारा मौका हमेशा बना रहेगा। दुनिया में हिंसा की बदौलत जो व्यापक संहार हो रहा है, अुससे आखिर दुनिया को अिसी नतीजे पर आना होगा कि हिंसा लाभदायी नहीं हो सकती। अुसे अहिंसा का शस्त्र ही लेना होगा। लेकिन यह बात गांधीजी की है। हिन्दुस्तान की नहीं है। अगर सत्याग्रह पर हमारी गांधीजी जैसी श्रद्धा होती, तो सारी दुनिया हमारी बात मानती। आज हम अिस चीज़

के लिअे तैयार नहीं हैं। हम तैयार हैं कमजोरों की अहिंसा दिखाने के लिअे। अगर हमारे पास हिंसा की कोअी व्यवहार्य योजना होती तो अहिंसा के दल में कितने लोग आते ?

लड़ाअी के बाद की दुनिया

दुनिया में हिंसा का जो आन्दोलन चल रहा है, अुसके कारण लडाअी के बाद दुनिया पहले जैसी नहीं रहेगी। नयी दुनिया की नयी रचना करने की कोशिश दूसरे कर रहे हैं। आज की सरकारें कुछ नहीं करतीं। 'लीग ऑफ नेशन्स' गांधी सेवा संघ के समान मूर्च्छित अवस्था में पडा है। अुसका काम स्थगित है। दूसरा कोअी नया संगठन तो वे भी करना चाहते हैं। विचारी लोग सोच रहे हैं कि लडाअी के बाद दुनिया का काम किस सिद्धान्त पर चलेगा। बडी बडी शक्तियों में संघर्ष हो चुकने के बाद अिस बात का फैसला होगा। वे सारी शक्तियाँ आपस में लड़ लड़ कर कमजोर हो जायेंगी। समय जाने में हिन्दुस्तान का फायदा ही होगा।

सल्तनत क्या चाहती है ?

कोअी कहते हैं कि यह तो सल्तनत की अेक चाल है। वह समझौते की बात करती रहेगी। अुसे जो चाहिअे वह मिलता ही है। लेकिन अिसमें दोष है। वह जो चाहती है वह अुसे नहीं मिलता। पैसा मिलता है और आदमी मिलते हैं। हम मदद करेंगे तो भी अितने ही आदमी और पैसा मिलेगा। लेकिन वह तो हमारा आशीर्वाद चाहती है। वह अुसे नहीं मिल रहा है। हम अुसके चकमे में आ कर चुप नहीं हैं। हमारा सेनापति जब तक आज्ञा नहीं देता तब तक हम बैठे हैं। जो लोग आगे बढ़ना चाहते हैं, अुन्हें कोअी नहीं रोक सकता। रोज़ रोज़ धमकियाँ देने से काम नहीं चलेगा। जो लड़ना चाहते हैं अुन्हें न तो कॉंग्रेस रोक सकती है, न गांधी।

हम कब लड़ेंगे ?

हम तो तभी लड़ेंगे जब हम तैयार हो जायेंगे; जिसमें फिर हमें पीछे न हटना पड़े और देश का नुकसान न हो। आज हमको अपनी संस्था ठीक करनी है। हर अेक प्रान्त को देखिये। पंजाब की बात लीजिये। कितना वैमनस्य है ? अेक ही नीयत से चलनेवालों में कैसी लडाअी है ? बंगाल की बात लीजिये। क्यों यहाँ यह विरोधी प्रदर्शन हो रहा है ? हम तो यहाँ राजनीति की बात भी नहीं करने आये हैं। करीब करीब सभी प्रान्तों में यही हाल है। हमें आँखें खोल कर सारा नक्शा अपने सामने रखना चाहिअे। लडाअी से तो हम बचनेवाले नहीं हैं। लडाअी तो होने ही वाली है। लेकिन समझौते की पूरी पूरी कोशिश करने के बाद। हम तैयार रहें, लेकिन लडाअी जब हम पर आ ही पडेगी तब लडें। सल्तनत संकट में है, अिसलिअे अुसे हैरान करने के लिअे लडाअी करेंगे तो हमारी हार होगी।

कॉंग्रेस-विरोधी शक्तियाँ

देश में कॉंग्रेस के खिलाफ़ जो दूसरी शक्तियाँ हैं, अुनका भी सामना हमें अिसी अहिंसक हथियार से करना होगा। कौमी ज़हर जितना आज है अुतना पहले कभी नहीं था। वह देहातों तक फैल रहा है। यहाँ विरोधी प्रदर्शन करनेवाले कल कुछ मुसलमानों को ले आये। अुन्होंने प्रदर्शनी में ज़बरदस्ती घुसना चाहा। कहने लगे, 'गरीबों के लिअे प्रदर्शनी है तो दो पैसे का टिकट क्यों'? अिस तरह अेक पक्ष दूसरे पक्ष को गिराने के लिअे कौमी झगडों से लाभ अुठाना

चाहता है। हिन्दुस्तान में सत्याग्रह का आन्दोलन चलाने के लिअे तो बहुत-से आदमियों की मदद की जरूरत होगी। लेकिन बिगाड़ने के लिअे तो चन्द आदमी ही काफी हैं। लडाअी तो थोड़े ही आदमी करेंगे, लेकिन सहानुभूति सबकी होनी चाहिअे।

देशी राजा

दूसरी ताकत जो हमारे विरोध में खड़ी है, वह है देशी राजाओं की। वे कहते हैं कि अंग्रेजों के आने से पहले जिस तरह हम स्वतंत्र राजा थे वैसे ही फिर हो जायँ। फिर से हम 'हिज मॅजिस्टी' कहलायें। अपने बल पर स्वतंत्र होने की हिम्मत अुनमें नहीं है। सार्वभौम सत्ता की मदद है, अिसलिअे कांग्रेस के खिलाफ घुड़कियाँ देते रहते हैं। १९२५–२६ में अुस वक्त के व्हाअिसराय ने अुनको दिखा दिया कि सार्वभौम सत्ता क्या चीज़ है। बड़े बड़े राजाओं की क्या स्थिति है, अिसका फैसला अुसी वक्त हो गया। किसी राजा ने चूं तक नहीं की। आज भी वही बात है। कुछ राजा लोग कांग्रेस के खिलाफ संगठन करना और गुंडेबाजी करना ही अपना काम समझते हैं। राजकोट में आपने देखा होगा। न्यायाधीश का फैसला हो गया। राज की ओर से दस्तखत भी किये गये। अुसे भी छोड़ना पड़ा। गुंडेबाजी चली। लिमडी और जयपुर में यही हुआ। ये राजा-महाराजा भी ब्रिटिश सल्तनत जितना चाहती है, अुतना ही कर सकते हैं। कअी राजा अपना दीवान भी नियुक्त नहीं कर सकते। जब अुनके आदमी भी अैसा कहते हैं कि हमारे राजा साहब 'हिज़ मैजिस्टी' है, तब हमें समझ लेना चाहिअे कि हमारे सामने कौन-सी ताकतें खड़ी हैं।

ब्रिटिश स्वार्थ

सबके आखिर में ब्रिटिशों के स्वार्थ का सवाल हमारे सामने पेश किया जाता है। यह सरकार की सबसे कमजोर बाजू है। लेकिन यही सब कुछ है। दूसरी सारी बातें अिसीके लिअे हैं।

लड़ाअी की भूमिका तैयार कीजिये

यह आज की परिस्थिति है। अैसी नाजुक स्थिति हिन्दुस्तान की पहले कभी नहीं थी। हिन्दुस्तान की आजादी चाहनेवालों पर अितनी जिम्मेवारी पहले कभी नहीं आयी थी। सबसे पहली चीज़ यह है कि हम अपने दिलों को शुद्ध कर लें। हमारी परीक्षा का दिन नज़दीक आया है। हम जहाँ हों वहाँ लड़ाअी की भूमिका तैयार करें, जिससे हमारे सेनापति का रास्ता साफ़ हो और वह लडाअी जल्दी कर सके। कौमी झगड़े, हरिजनों का सवाल, आदि हल करके सेनापति के हुक्म का अिन्तजार करें। अेक बार आगे कदम अुठाने पर फिर पीछे न हटना पड़े। गांधीजी का हथियार कब रुकेगा, अिसका डर हमेशा रहना चाहिअे। अुसे रोकनेवाले तो हम ही हैं। आपको चौरीचौरा तो याद ही होगा। फिर गांधीजी किसीसे पूछते नहीं। सबकी गलती अपने अूपर ओढ़ लेते हैं और आन्दोलन बन्द कर देते हैं। हमें सावधान रहना चाहिअे कि कहीं फिर अैसा मौका न आवे। यह मुल्क की परिस्थिति है। हम अुसे सोचें, समझें और अपना काम करें।

गांधी सेवा संघ सम्मेलन }
मालिकान्दा, ता. २३-२-'४० }

साहित्य-सम्मेलन की विज्ञान-परिषद

[काका कालेलकर]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ हर साल दो-चार परिषदें भी होती हैं। अब पिछले साल से अुनमें अेक और परिषद बढ़ा दी गयी है। यह बार बार पूछा जाता है कि अिन पंच-परिषदों की फलश्रुति क्या है? गुजरात की साहित्य-परिषद के साथ भी अैसी ही परिषदें हुआ करती हैं। वहाँ पर भी यही सवाल पूछा जाता है कि अिन परिषदों का प्रयोजन क्या है? ये परिषदें अक्सर किसी सुयोग्य अथवा अल्प-योग्य व्यक्ति से अेकाध सुदीर्घ निबंध पाने का अेक तरीका होती है। कभी कभी तो ये निबंध सुदीर्घ भी नहीं होते।

अगर ये निबंध ध्यान से पढ़े जायँ, तो अैसा प्रतीत नहीं होता कि ये परिषदें प्रति वर्ष कुछ प्रगति कर रही हैं। पिछले साल किसने क्या सोचा और अगले साल क्या करना है, अिसका तो कोअी विचार ही नहीं होता। विद्वानों की कार्य-शक्ति परिमित होती है और सहयोग-शक्ति अुससे भी कम होती है। अैसी हालत में अिन परिषदों से हम बहुत आशा तो नहीं रख सकते। तो भी अेक छोटी-सी सूचना मैंने शिमला के अधिवेशन में पेश की थी जो सबको पसन्द आयी। लेकिन अुसपर कुछ कारंवाअी नहीं हुअी।

अक्सर यह भी पाया जाता है कि विद्वानों को अिन परिषदों के अुद्देश्य का खयाल भी स्पष्ट नहीं ˚। मुझे दर्शन-परिषद का अध्यक्ष आखिरी घडी में बना दिया। मैंने दर्शन के बारे में अपने विचार अेक निबंध में अिकट्ठा करके छाप दिये। परिवर्तन में लोगों ने प्रोत्साहन के कुछ शब्द मुझे दे दिये। अखबारों ने अुसमें से थोडी या अधिक कंडिकाअें छाप दीं; और अेक साल का काम खतम हुआ। यह स्थिति शोभादायक तो है ही नहीं; बल्कि दयाजनक है।

साहित्य-सम्मेलन की दर्शन-परिषद और स्वतंत्र दर्शन-परिषद के बीच कुछ अुद्देश्य-भेद तो रहना ही चाहिअे। दर्शन-परिषद में देश के बडे-बडे अथवा ताजे-ताजे दार्शनिक अिकट्ठा हो कर सब विद्याओं में श्रेष्ठ जो दर्शन-विद्या, अुसका विकास करने में जुटे रहते हैं।

साहित्य-सम्मेलन की दर्शन-परिषद दर्शन-विद्या के **साहित्य** के विकास और अभिवृद्धि के लिअे बुलायी जाती है।

हमारी भाषा में दार्शनिक साहित्य कितना है, अुसकी योग्यता कितनी है, भिन्न किन बातों में अिसकी कमी है, कौन कौन-से विभाग अस्पृष्ट रहे हैं, दार्शनिक साहित्य के विकास के लिअे क्या क्या करना आवश्यक है, अिन सब बातों की चिन्ता, खोज और योजना का प्रबन्ध अुसमें होना चाहिअे।

ये सब प्रास्ताविक विचार मैंने प्रधानतया दर्शन-परिषद को नजर के सामने रख कर नहीं किये है। शिमला-अधिवेशन की विज्ञान-परिषद के सामने मैंने जो अेक सूचना पेश की थी, अुसी को आगे बढ़ाने के लिअे मैं यह लेख लिख रहा हूं।

विज्ञान-परिषद में अक्सर विज्ञान का कोअी प्रोफेसर अपने शास्त्र के बारे में शुद्ध हिन्दी में अेक निबंध लिखने का प्रयास करता है और जिस विषय का विस्तार अंग्रेजी में ही हुआ है, अुस विषय पर हम कुछ-न-कुछ हिन्दी में भी बोल सकते हैं, अितना अनुभव कर वक्ता संतुष्ट हो जाते है।

अिस बहाने हमारी भाषा में विज्ञान-विषयक और अेक-दो निबंध बढ़ जाते हैं। यह वाञ्छनीय अवश्य है। स्वभाषा में विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिअे किन किन महाशयों से प्रार्थना की जा सकती है, यह देखने के लिअे भी ये विज्ञान-

परिषदें काम आती हैं। किन्तु विज्ञान-परिषद का अुद्देश्य अितने से सफल नहीं हो सकता।

हमारे देश में विज्ञान का प्रचार कितना हुआ है, यह अगर देखना हो तो स्कूल और कॉलेजों में अिस विषय के जो अध्यापक रक्खे जाते हैं-- अुनकी तैयारी से अिस बात का नाप नहीं लिया जा सकता। किन्तु देश के करोड़ों लोग जिनको न अंग्रेजी आती है, न संस्कृत; जिन्होंने मामूली पढ़ाअी से बढ़कर किसी किस्म का अध्ययन नहीं किया है, स्वभाषा को छोड़ कर ज्ञान-यात्रा का अन्य कोअी वाहन जिन्हें प्राप्त ही नहीं है— अुनकी जो स्थिति होगी वही देश की तैयारी है।

हमारी विज्ञान-परिषद का यह प्रथम कर्तव्य होगा कि अुपर्युक्त व्याख्या के अनुसार देश ने विज्ञान के क्षेत्र में कहाँ तक विकास किया है, अिसकी वह सर्वे (पैमाअिश) करे और अुस भूमिका से देश को आगे ले जाने के लिअे स्वभाषा में वैज्ञानिक साहित्य बढ़ाने की कोअी योजना अमल में लावे। दूसरे लोग विमान (वायुयान) में बैठ कर सैर करते होंगे, हमारी गरीब भाषा को अपने पैर मजबूत कर के पैदल ही आगे बढ़ना होगा।

और अेक बात हमारी विज्ञान-परिषदें कर सकती हैं। साहित्य-सम्मेलन की विज्ञान-परिषद विज्ञान-संबंधी भाषा और परिभाषा को विकसित करने में ही अपनी पूरी शक्ति लगा सकती है। हम चाहे जितने अशक्त हों, चाहे जितने अकर्मण्य हों, अिस अेक क्षेत्र को ले कर अगर हम हर साल कुछ न-कुछ प्रयत्न करेंगे, तो दस साल के अन्दर हम देखेंगे कि हमने कम प्रगति नहीं की है।

हमारी भाषा में विज्ञान के बारे में जितना अराजक है, अुतना शायद ही और किसी विषय में होगा। जो कोअी लिखने लगता है वह अपनी ही भली-बुरी परिभाषा बना लेता है। यह है तो अिष्ट, लेकिन हमारी परिभाषा निश्चित और अेकरूप हो, यह सबसे अधिक महत्त्व की बात है। आज अेक ने जो परिभाषा चलाअी, अुसका पता तक दूसरे को नहीं होता। अिसलिअे विज्ञान से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध रखनेवाले ग्रंथों का संग्रह करना चाहिअे और अुनमें जो परिभाषा व्यवहृत की है, अुसको अिकट्ठा कर के अुसकी चर्चा करनी चाहिअे।

पिछले पाँच-दस बरस के अंदर अंग्रेजी में अैसे बहुत-से ग्रंथ लिखे गये हैं, जिनका अेकमात्र अुद्देश्य विज्ञान को लोक-सुलभ बनाना है। विलायत की जनता की योग्यता ध्यान में रखकर ही ये ग्रंथ लिखे गये हैं। अिन ग्रंथों के अनुवाद चाहे जितनी सरल भाषा में किये जायँ, तो भी हमारी जनता अुनसे लाभ नहीं अुठा सकेगी। जिन विद्वानों को प्रौढ़ शिक्षा का कुछ अनुभव है, अुन्हींसे विज्ञान के प्राथमिक ग्रंथ लिखाने चाहिअें और अैसे ग्रंथों की पांडु-लिपि ले कर अुसे गाँवों में पढ़ाने के बाद जब वह सफल प्रतीत हो, तभी अुसे छापना चाहिअे।

हमारे देश में अंग्रेजों का साम्राज्य जितना फैला हुआ है, अुससे भी अधिक साम्राज्य फैला हुआ है वहमों का। अिस भ्रम-राज्य को तोड़ने के लिअे केवल तर्क पर्याप्त नहीं है। विज्ञान-सूर्य ही वहम-तिमिर का ध्वंस कर सकता है। यह शक्ति और यह अुपयोगिता ध्यान में रख कर देश के—गांव के तथा शहर के— तमाम वहमों को अिकट्ठा करके अुनका वैज्ञानिक विवेचन करना चाहिअे और अिस तरह विज्ञान का सामाजिक अुपयोग जनता पर प्रकट करना चाहिअे।

चन्द थिऑसॉफिस्ट लोगों ने विज्ञान का सहारा ले कर लोगों के वहमों का समर्थन कर दिखाया है। जिस ढंग से अुन्होंने यह काम

किया है, वह तो पूर्णतया अवैज्ञानिक ही है। अगर किसी विचार या मान्यता को विज्ञान का सच्चा समर्थन मिल जाय तो वह मान्यता वहम न रह कर वैज्ञानिक सिद्धान्त बन जाती है।

अिस साल विज्ञान-परिषद के सभापति कौन होंगे, यह मैं नहीं जानता। लेकिन जो होंगे अुनसे मेरी प्रार्थना है कि अूपर बतायी हुअी दृष्टि से भी वे कुछ-न-कुछ विवेचन करें। साहित्य सम्मेलन की विज्ञान-परिषद को विज्ञान की खोज नहीं करनी है किन्तु प्रधानतया साहित्य-सेवा करनी है। सामान्य साहित्य की नहीं, वैज्ञानिक साहित्य की। किन्तु आखिर सेवा करनी है साहित्य ही की।

१५:४:४०

ध्वजवाद और धर्मध्वजित्व

[विनोबा के अेक पत्र से]

आपने झंडे के विषय में प्रश्न पूछा है। सबसे पहले आप यह बात ध्यान में रखें कि मेरा अुत्तर मेरे व्यक्तिगत विचारों का द्योतक रहेगा; वह कांग्रेस या दूसरे किसी पक्ष के विचारों का निदर्शक नहीं माना जा सकता।

आपके प्रश्न का भावार्थ यह है, "गणपति अुत्सव के या तत्सम (अुसी तरह के दूसरे) जुलूसों में कौन-से झंडे काम में लाये जायें? राष्ट्रीय झंडा हो या भगुवा (गेरुआ) झंडा हो अिसके विषय में विवाद है।"

अिस विषय में मेरी दृष्टि यह है.—

राष्ट्रीय झंडा—तिरंगा, चरखा मुद्रांकित—राष्ट्रीय अवसरों पर काम में लाना अुचित है। यहाँ "राष्ट्रीय अवसर" का अर्थ है "अखिल भारत-निदर्शक," या दूसरे शब्दों में, "जिसमें किसी विशेष जाति या धर्म का अन्य-व्यावर्तक सूचन न हो अैसे" अवसर। भगुवा झंडा पांथिक झंडा है। वह हिन्दू-सभा या तत्सम समारम्भों के लिअे ही अुपयुक्त है। 'राष्ट्रीय' और 'पांथिक' से भी 'धार्मिक' अेक बिलकुल भिन्न वस्तु है। गणपति अुत्सव अेक धार्मिक अुत्सव माना जाता है। वह न तो हिन्दू-महासभा का पांथिक है और न राष्ट्रीय। अिसलिये अच्छा तो यह है कि अुसमें—भगुवा या तिरंगा—कोअी भी झंडा न हो।

हिन्दूधर्म विश्वधर्म है। कोअी भी सच्चा धर्म विश्वव्यापक ही हो सकता है। अिसलिअे मुझे यही पसन्द नहीं है कि धर्म का कोअी झंडा हो। हिन्दूधर्म ने अपना कोअी अलग झंडा बनाया भी नहीं है।

लेकिन जहाँ किसी तत्त्व-विशेष का सूचन या भेद-निदर्शन करने की दृष्टि नहीं होती, बल्कि केवल शौक के लिअे जुलूस में झंडा रखा जाता है; वहाँ जिसे जिस झंडे से प्रेम हो, वह अुस झंडे का अुपयोग करे। अिस तरह के बीस-पच्चीस झंडे बड़ी खुशी से और शौक से—यानी अविरोध-पूर्वक—अेक ही गणपति-अुत्सव के जुलूस में रखे जा सकते हैं। हर अेक की अलग अलग पोशाक तो होती ही है। वैसे ही यह भी होगा।

सारांश, मेरे मत से गणपति-अुत्सव में कोअी भी झंडा न हो। या फिर हर अेक की रुचि के अनुसार पचास या सौ झंडों के होने में भी हर्ज नहीं है।

अन्त में मेरी यही प्रार्थना है कि हम "दंभो धर्म-ध्वजित्वम्" (दंभ यानी धर्म का झंडा फहराना) यह शंकराचार्य-कृत व्याख्या कभी न भूलें और "अविभक्तं विभक्तेषु" वाला गीता-सूत्र कभी न गँवायें।

(मराठी 'ग्राम-सेवा-वृत्त' से अनूदित)

गांधीजी से परिप्रश्न

स्वामी आनंद—संघ की भावी प्रवृत्तियों में आपने मजदूर-संघ का भी अुल्लेख किया है। क्या साम्प्रदायिक अेकता को भी संघ में स्थान रहेगा? या अुसे बाद (तर्क) कर दिया है?

गांधीजी—अुसे तो बाद (तर्क) नहीं किया है। वह तो है ही। अुसके बिना अहिंसा कोअी चीज़ ही नहीं रह जाती। अुसके लिअे हमारे पास आज कोअी कार्यक्रम नहीं है। अिसलिअे मैंने जानबूझ कर अुसका ज़िक्र नहीं किया।

स्वामी—मुझे आशंका है कि अगर हम मजदूर-संगठन और साम्प्रदायिक अेकता के काम में पड़ेंगे तो अुसमें से भी दूसरे लोगों के दिलों में अीर्ष्या और रोष का ज़हर पैदा हो जायगा। वहाँ भी अुनसे संघर्ष आ पड़ेगा। फिर वहाँ से भी हमको हटना होगा।

गांधीजी—अगर अीर्ष्या और हिंसा के भाव पैदा होंगे तो हटना होगा। तब तो शायद यह सिद्ध होगा कि हम जो अहिंसा का प्रयोग करनेवाले लोग हैं, वे निकम्मे हैं। कुछ लोग यह भी कहेंगे कि अहिंसा ही निकम्मी है। अुनकी दृष्टि से अहिंसा परम धर्म के बदले परम अधर्म सिद्ध होगा। क्योंकि वे तो कहते हैं कि "हिंसा और अहिंसा के मिश्रण से ही यह जगत बना है। दोनों का साथ साथ चलना आवश्यक है; नहीं तो संसार का व्यवहार ही कुंठित हो जायगा। मजदूर बुजदिल हो गये हैं; अुनमें आत्मविश्वास पैदा करने के लिअे अुन्हें हिंसात्मक प्रतीकार सिखाना चाहिअे। हिन्दू भी डरपोक हैं। अुनके लिअे अहिंसा परम धर्म नहीं है"—अैसे खत आज भी मेरे पास आते रहते हैं। हमें तो यह सिद्ध करना है कि हम मजदूर और साम्प्रदायिक प्रश्न का समाधान अहिंसा से कर सकते हैं।

सुधाकर—हम राजकारण का परित्याग सदा के लिअे कर रहे हैं या कुछ समय के लिअे?

गांधीजी—हमेशा के लिअे कौन कह सकता है? हम भगवान थोड़े ही हैं? हम तो आज की बात कह रहे हैं।

कृष्ण नायर—आपकी योजना, जहाँ तक मैं समझ सका हूं, अैसी है कि रचनात्मक कार्य करनेवाली जो चार पाँच संस्थायें है, अुनके लिअे गांधी सेवा संघ अेक 'सेण्ट्रल रीसर्च अिन्स्टिट्यूट' (केन्द्रीय संशोधन-प्रयोगशाला) जैसा रहेगा। लेकिन आपके सिद्धान्तों के अनुसार अिस देश में जो लोग भिन्न भिन्न कार्य करते हैं, अुनका संगठन कैसे हो? जो लोग चरखा संघ, ग्राम अुद्योग संघ, आदि संस्थाओं में काम करते है, अुनके लिअे तो वे संस्थायें हैं। लेकिन जो लोग अिन पाँच संस्थाओं में नहीं हैं, अुनका संगठन किस प्रकार हो? क्या अुनके लिअे भी अेक 'ओल्ड स्टूडेण्ट्स अॅसोसिअेशन' (पुराने विद्यार्थियों के संघ) जैसी कोअी संस्था आवश्यक नहीं है? क्या हमारे सब सदस्य अिन पाँच संस्थाओं में आ जाते है? कोअी बाकी नहीं रहते?

गांधीजी—अगर तुमने विवरण ध्यान से पढ़ा है, तो तुम्हें यह मालूम हो जाना चाहिअे कि हमारे कितने सदस्य रचनात्मक संस्थाओं में काम कर रहे हैं। यह विवरण अेक पढ़ने लायक चीज़ है। यह कोअी मामूली विवरण नहीं है। अुसमें सदस्यों की संख्या कअी प्रकार की दी गयी है। अुनका प्रान्तवार, कार्यानुसार, संस्थानुसार वर्गीकरण अिसमें है। मैं तो विवरण पढ़ कर मुग्ध हो गया। अुसका परिशिष्ट देखिये। सारी चीजों का अुत्तर अिस विवरण में से मिल जाता है। विवरण पढ़ने से मालूम होगा कि गांधी सेवा संघ जैसी अेक स्वतंत्र संस्था रख कर हम कोअी बड़ा काम

नहीं कर लेंगे। जो लोग सर्वार्पण बुद्धि से काम करेंगे, अुनके लिअे बार बार पूछने की या मार्ग-दर्शन की जरूरत नहीं रह जाती है। आजादी पाना कोअी मामूली काम नहीं है। अुसके लिअे हमें अैसे ही कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी, जो सर्वार्पण बुद्धि से और अपनी स्वतंत्र बुद्धि से काम करते रहेंगे। जिन्हें देखभाल की जरूरत है, वे किसी-न-किसी रचनात्मक संस्था की देखभाल में काम कर सकते हैं। अुसके लिअे संघ की जरूरत नहीं है। हमारे पास रचनात्मक काम करनेवाली पाँच संस्थायें हैं। बहुत-से सदस्य अुनके क्षेत्र में आ जाते हैं। फिर अुन्हें गांधी सेवा संघ में रख कर हम अधिक क्या दे सकते हैं? संघ अेक छठी अुंगली बन कर रह जाता है। और देखभाल या निरीक्षण करें भी कैसे? हमारे पास अिसका कोअी सामान नहीं है।

कृष्ण नायर—तो मतलब यह है कि आज हमारा स्थूल रूप समाप्त हो जाता है।

गांधीजी—हाँ, वह तो होता ही है। आज हम सीता को पाताल में भेज देते हैं।

प्रेमाबहन—आपने 'दांडी कूच' के वक्त भी अैसा ही कहा था कि सब नालायक हैं और यह कह कर आश्रम तोड़ दिया था। क्या वैसा ही कुछ प्रसंग आज भी है? क्या यह भी किसी संग्राम की पूर्व-तैयारी है? या केवल शुद्धिकरण का प्रयास है?

गांधीजी—मैंने किसीको नालायक नहीं कहा। और कहता भी कैसे?—जब तक आप जैसे लायक व्यक्ति मौजूद हैं! लेकिन यह तो विनोद हुआ। दरअसल बात अैसी है कि हम अधिक शुद्ध होना चाहते हैं। मैं किसीको नालायक नहीं मानता या कहता। मैंने साबरमती आश्रम के भी किसी व्यक्ति को नालायक नहीं ठहराया। अगर आप मेरे भाषणों का अैसा अर्थ करेंगे, तो मेरे साथ अन्याय करेंगे। मैं तो अितना ही कहता हूं कि हम जिस गज को ले कर बैठे हैं अुससे नापने पर हम परीक्षा में अुत्तीर्ण नहीं हुअे। अगर हमने दरअसल सत्य और अहिंसा की नीति से काम लिया है, तो ये लोग यहाँ पर आ कर 'गांधीवाद का ध्वंस हो' के नारे क्यों लगाते हैं? वे हमें शिक्षा देते हैं कि हम अभी तक अशुद्ध हैं। नहीं तो वे अिस तरह के नारे क्यों लगाते? (अेक आवाज—कुछ लोगों का कहना है कि अुन्हें अिसके लिअे पैसे मिले हैं)। अुन्हें पैसा दिया जाता है या नहीं, यह तो न आप जानते हैं, न मैं। लेकिन अगर यह सच भी हो, तो भी हमारे लिअे सोचने की बात है। जो लोग अुन्हें पैसा दे कर अिस तरह के नारे लगवाते हैं, वे अैसा क्यों करते हैं? अुनके दिल में अितनी कटुता क्यों पैदा हुअी? हमें तो अिसका सार लेना चाहिअे। मुझे आपके दर्शनों से जो शिक्षा नहीं मिली, वह अुनके विरोधी प्रदर्शन से मिली। अुन्होंने मेरी बुद्धि को गति दी। आपमें से बहुत कम लोगों ने अहिंसा का प्रयोग किया होगा। अिस संबंध में हमें अितिहास से भी कोअी मार्गदर्शन नहीं मिलता; क्योंकि अितिहास में हमें अिसके प्रयोगों के कोअी नमूने नहीं मिलते। लेकिन अगर आप मेरी जैसी सूक्ष्म बुद्धि रक्खेंगे, तो आपको अिस सृष्टि में सर्वत्र अहिंसा का दर्शन होगा। यह जगत प्रतिक्षण बदलता है। अिसमें संहार की अितनी शक्तियाँ हैं, कोअी स्थिर नहीं रह सकता। लेकिन फिर भी मनुष्य-जाति का संहार नहीं हुआ; अिसका यही अर्थ है कि सब जगह अहिंसा ओतप्रोत है। मैं अुसका दर्शन करता हूं। गुरुत्वाकर्षण शक्ति के समान अहिंसा संसार की सारी चीजों को अपनी तरफ खींचती है। प्रेम में यह शक्ति भरी हुअी है। मैं तो अपने को अहिंसा का सायन्टिस्ट (वैज्ञानिक) मानता हूं न? अिसलिअे मैं अुसके नियमों को जानता हूं और देखता हूं। हमारे दिल में सबके प्रति समभाव न हो, तो हम अहिंसा के पुजारी नहीं हैं। अगर आपके पास अैसा

समभाव है तो कोओी आपका ध्वंस हो की आवाज लगाने आवे तब आप प्रतीकार या हिंसा का आश्रय न करें। जिस व्यवहार के कारण दूसरों के दिल में हिंसा के भाव पैदा होते हैं, अैसा व्यवहार छोड़ दें। हम अिसी दृष्टि से संघ का रूपांतर कर रहे हैं। ये अितने आदमी यहाँ मुझे देखने के लिअे चले आते हैं। वे समझते हैं कि मैं अीश्वर का अवतार हूं। अीश्वर का अवतार कोओी नहीं है। और है तो सभी हैं। मैं हूं तो वे भी हैं। फिर वे अिस तरह मेरी तरफ क्यों खिंच रहे हैं ? यह तो अहिंसा का नियम काम कर रहा है। मुझमें अनासक्ति भी तो है। अिसलिअे मैं तटस्थ हो कर देख सकता हूं कि यह मेरी शक्ति नहीं है; अहिंसा की शक्ति है। मुझमें क्या धरा है ? हजार दोषों का पुतला हूं। आत्मनिरीक्षण करता हूं तो दोष-ही-दोष नजर आते हैं। अगर आप मेरे जैसा आत्मनिरीक्षण करें, तो आप भी पागल हो जायेंगे। हमें अपने हर अेक विचार पर अंकुश रखने की कोशिश करनी चाहिअे। मैं अैसी कोशिश करता हूं। अपने विरोधियों में भी अीश्वर का दर्शन करता हूं। वह दर्शन आप भी करें।

प्रभुदास—तो क्या अिसका यह मतलब है कि अपूर्ण अहिंसावादियों का संगठन हो ही नहीं सकता ? किशोरलालभाअी ने 'सर्वोदय' में कहा है कि अपूर्ण अहिंसावादियों को भी संगठन की जरूरत है। अुनमें भी अेक प्रकार की संघ-शक्ति आनी चाहिअे। लेकिन आपके भाषणों पर से तो अैसा ही प्रतीत होता है कि अपूर्ण अहिंसावादियों का कोओी संगठन ही नहीं हो सकता।

गांधीजी—तुम्हारी बात मैं तुम्हारे शब्दों में ही कबूल नहीं करता। मौजूदा गांधी सेवा संघ जैसी संस्था अहिंसावादियों का संगठन नहीं हो सकती। यह संघ तो अेक विशेष परिस्थिति में बना। पाँच-दस, बीस-तीस आदमियों को आर्थिक सहायता दे कर अुनके काम पर देखभाल करने की कल्पना में से यह संघ बना। फिर बढ़ता ही गया। अुसमें सुधारणा करने की आवश्यकता रही। लेकिन अब अुसका कोओी खास प्रयोजन नहीं रहा। अपूर्ण अहिंसावादियों की अुन्नति के लिअे अिस तरह के संघ की जरूरत नहीं है। संस्था तो अपूर्ण मनुष्यों की ही बनती हैं। मनुष्य पूर्ण हो तो संस्था की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। चरखा संघ, हरिजन सेवक संघ में भी अहिंसा तो है ही। वे भी शान्ति के मार्ग पर चलना चाहते हैं। गांधी सेवा संघ के पास कोओी विशेष कार्यक्रम हो तभी तो वह अहिंसा-धर्मियों का संघ बन सकता है। लेकिन केवल अहिंसा-धर्मियों का संघ क्या मानी रखता है ? अहिंसा-धर्म तो अव्यक्त है। जब हम अमुक साधन द्वारा अहिंसा सिद्ध करना चाहते हैं तब संघ बन जाता है। अिस तरह का कोओी विशेष साधन गांधी सेवा संघ ने अपनाया नहीं है। अेक अेक विशिष्ट विभाग के लिअे हमारे पास संस्थायें हैं। अुनके द्वारा वे रचनात्मक कार्य नियमित हो गये। लेकिन अुन कामों में से कितनी अहिंसा निकली, यह देखना अुन संस्थाओं का काम नहीं है। मैं शंकरलाल से यह पूछूंगा कि कितने आदमियों को मजदूरी दी ? यह नहीं पूछूंगा कि तुमने अहिंसा का कितना विकास किया। मजदूर संघ से यह पूछूंगा कि तुमने शान्तिमय अुपायों से मजदूरों की क्या अुन्नति की ? यह नहीं पूछूंगा कि मजदूर-आन्दोलन का अहिंसा के साथ कैसा अनुसंधान है। ग्राम अुद्योग संघ की भी वही बात है। सतीशबाबू की भी वही बात है। खादी-प्रतिष्ठान में अहिंसा का कितना विकास हुआ, अिसकी परीक्षा थोड़े ही अुन्हें देनी है ? अुनसे तो यही पूछना होगा कि अुन्होंने कितना अच्छा तेल, कागज़, खादी या चमड़ा बनाया है। अिन सबके बाद जो बात शेष रह जाती है, वह यह है कि अिनके द्वारा हम अहिंसक संस्कृति का निर्माण किस तरह कर सकते हैं अिसकी खोज करें। अिसके लिअे तो अेक संस्था रह सकती है। लेकिन केवल अहिंसा-धर्म को माननेवालों के लिअे

संघ की क्या जरूरत है ? अुन्हें जो बल या मार्गदर्शन चाहिअे, वह मेरे कामों से अपने आप मिल जायगा। अीश्वर ही अुन्हें प्रेरणा देगा। अुनका, बिना किसी संस्था के ही संगठन हो जायगा।

आजूजी—जो लोग राजकारण मे हैं, वे संघ के सदस्य नही रहेंगे, यह तो तयशुदा समझना चाहिअे। अब संघ का आगे क्या हो, अिसका विचार करना है।

दादा धर्माधिकारी—हम अिस संघ को आज बन्द कर दें। आगे फिर यह जो कमेटी बननेवाली है, वह आवश्यक समझे तो अेक नया संघ बना ले।

शंकरराव देव—मैं दादा की सूचना का समर्थन करता हूं। जो राजकारण में पडे हैं वे संघ के सदस्य न रहें, और बाकी के सदस्यो का संघ कायम रहे, अैसा पंक्तिप्रपंच करना ठीक नहीं है।

गांधीजी—हम अिस बात को न भूलें कि जो लोग राजकारण मे पडे हैं, अुनको संघ में न रखने में हम कोअी पंक्तिभेद नही कर रहे हैं। हम तो संघ के नाते राजकारण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। अगर हम राजकारण में पडनेवालों को दूसरो की अपेक्षा कम दर्जे के समझते, तो अुनको भी राजकारण में नही रहने देते। लेकिन हम तो अुन्हे राजकारण से हटने को नहीं कह रहे हैं।

शंकरराव—यह सारा धर्मसंकट अिसलिअे पैदा होता है कि हम संघ के सदस्य रहते हुअे राजकारण मे भाग लेते हैं। अिसलिअे बापूजी ने संघ का वर्तमान रूप बदल देने की कल्पना पेश की है। संघ का आज का जो रूप है, वह अुसका मौलिक रूप नही है। अिसलिअे मै कहता हूं कि अिसका आज का रूप समेट कर अुसे फिर अुसके मौलिक रूप में रक्खें।

गांधीजी—वैसा कीजिये।

शंकरराव—हम राजकारण में संघ के सदस्य रह कर हिस्सा लेते है, अिससे संघ के खिलाफ वातावरण पैदा होता है। अिसलिअे हमें संघ मे नही रहना चाहिअे। राजकारण ही छोड़ देने के लिअे पर्याप्त कारण नही है। जो लोग यह महसूस करेंगे कि वे सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को राजकारण मे रह कर नही निबाह सकते, वे राजकारण को छोड़ देंगे।

दादा धर्माधिकारी—जो राजकारण मे भाग लेते है, वे तो संघ से निकल जायेंगे, परंतु क्या फिर संघ अुनका रह जायगा, जो राजकारण में भाग नही लेते ? मौजूदा सदस्यों में से आज जो राजकारण में नही हैं, वे किन कारणों से वहां नहीं है, यह हम नही जानते। आज यह कहना मुश्किल है कि अुनकी रचनात्मक कार्य मे ही अधिक श्रद्धा है, अिसलिअे वे राजकारण में नहीं हैं। सिर्फ जो लोग राजकारण मे हैं, वे संघ से अलग हो जायें और शेष अुसमें बने रहें, यह बात मैं अुचित नहीं समझता। तब तो सघ ज्यों-का-त्यों बना रहता है; केवल राजकारण में हिस्सा लेनेवाले लोग अुसमें से निकल जाते है। संघ के स्वतंत्र कार्यक्षेत्र की बापूजी की जो कल्पना है, वह अिससे सिद्ध नहीं होती। अिसलिअे मेरा निवेदन है कि अिस संघ का ही अुपसंहार कर दिया जाय और फिर अेक नये संघ का अुपक्रम किया जाय।

शंकरराव—मैं समझता हूं कि हम संघ में राजनैतिक कार्यकर्ताओं को क्यों नहीं रखना चाहते, आदि गौण बातों को छोड़ दें। ये सब दीगर कारण है। संघ के अुपसंहार का बापूजी का अन्तिम और सबसे बडा कारण तो यह है कि अिस संघ के द्वारा संगठित रूप से अहिंसा

का प्रयोग करके देखने पर अब हमें यह अनुभव हुआ है कि संघ को अिस रूप में रख कर हम संगठित प्रयोग नहीं कर सकते। अिसलिअे हम व्यक्तियों को राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिअे स्वतंत्र कर देते हैं। मैं समझता हूं हम अिस चीज को अिस प्रकार रक्खें तो अधिक अच्छा होगा।

मगनभाअी—राजकारण मे सत्ता के लिअे स्पर्धा होती है और अुसमें से अीर्ष्या पैदा होती है; अिसलिअे आप संघ के सदस्यों को राजकारण से हट जाने के लिअे, या जो राजकारण में है अुन्हें संघ से हट जाने के लिअे, कहते हैं। लेकिन जिन्हें सत्ता के लिअे ही स्पर्धा करनी है, वे रचनात्मक कार्य मे भी वही करेंगे। रचनात्मक कार्य में सत्ता के लिअे स्पर्धा और अीर्ष्या या द्वेष न हो अैसी बात तो आज भी नहीं है। केवल रचनात्मक कार्य करनेवालों के लिअे किसी खास संशोधक (खोज करनेवाली) संस्था की भी आवश्यकता मैं नही देखता। भिन्न भिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले लोग अपनी अपनी संस्था में रह कर खोजबीन करते रहेंगे। अुन्हें अगर कोअी कठिनाअी होगी, तो वे अुस विभाग के प्रमुख व्यक्ति से, यानी अपने मंडलेश्वर से, पूछ लेंगे। या जिस व्यक्ति पर अुनकी विशेष श्रद्धा होगी, अुससे मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे। अुदाहरणार्थ, मैं विद्यापीठ मे काम करता हूं। राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र मे संशोधन करने की आवश्यकता तो मुझे अपना कार्य करते हुअे ही प्रतीत होगी। अुसीमें से वह शक्ति पैदा होगी। मुझे किसी विषय में मार्गदर्शन की आवश्यकता हो, तो मैं अपनी संस्था के प्रमुख से प्राप्त करूंगा, या अगर अुनमे वह शक्ति न हो तो जिनके प्रति मेरी श्रद्धा होगी, जैसे किशोरलालभाअी है, बापूजी हैं, या फिर धोत्रे, दादा है, अुनसे पूछूंगा। अिसके लिअे किसी संस्था की जरूरत नहीं है। संशोधन करनेवाली अेक संस्था अगर आप बना लेंगे, तो वह छोटे-बड़े संशोधन करती रहेगी और दूसरी संस्थाओं पर नाहक हुकूमत करेगी। संशोधन के अलावा सत्य और अहिंसा से अनुसंधान करना भी अुसका काम होगा। तो वह अेक वरिष्ठ नैतिक सत्ता (सुपीरियर मॉरल अथॉरिटी) हो जायगी। अैसी वरिष्ठ सत्ता के लिअे मैं कोअी गुंजाअिश नहीं देखता। मेरी राय में १९३८ के साल में आपने संघ को जो नया रूप दिया अुसीको आप आज रद्द कर रहे हैं। और जब हम यह साफ देख रहे हैं कि अुस हालत में अुसके लिअे कोअी खास काम नहीं रह जाता, तो अुसका विसर्जन ही क्यों न कर दें?

गांधीजी—मगनभाअी, मैं तुम्हारा कहना समझ गया हूं। यहाँ तुम्हारी बात कुछ अप्रस्तुत-सी हो जाती है। कृष्णन् नायर ने अुस दिन ठीक ही कहा कि यह तो केवल अेक संशोधन करने-वाली संस्था रहेगी। वह अपने संशोधनों का नतीजा लोगो के सामने पेश करेगी। जो अुससे फायदा अुठाना चाहें वे अुठावें। जो अुसे अुपयोगी न समझें वे अुसे न लें। यहाँ किसी पर हुकूमत करने का सवाल ही नही आता। 'सुपीरियर मॉरल अथॉरिटी' जैसी कोअी बात अिसके पीछे है ही नहीं। जब हुक्म करने की कोअी बात ही नहीं तो अुसमें से झगड़ा पैदा ही कैसे हो सकता है?

चरखा संघ आदि रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओं मे थोड़ा-बहुत वैमनस्य, या अधिकार का दुरुपयोग, अथवा सत्ता का अभिमान, हो सकता है। लेकिन जिसे हम सत्ता का राजकारण कहते है, वह वहाँ कहाँ है? वह कोअी चुनाव से बनी हुअी प्रातिनिधिक संस्था नहीं है। जैसे बैंक होती है, वैसी ही वह अेक संस्था है। अुसमें सत्ता का राजकारण कहाँ से आया? कॉंग्रेस व्यापक संस्था है, वह करोड़ों की संस्था है। वह अेक प्रातिनिधिक संगठन है। वहाँ सत्ता के राजकारण के लिअे पूरी पूरी गुंजाअिश है। आज गांधी सेवा संघ के पास अितनी शक्ति या सामग्री नहीं है कि वह सत्ता के राजकारण में भी संघ की हैसियत से प्रवेश करे। अिसलिअे हम

कहते हैं कि राजकारण में प्रत्यक्ष भाग लेनेवाले व्यक्ति संघ में न रहें। हम यह कब कहते हैं कि वे राजकारण छोड़ दें ? अगर वे देखें कि अुनके वहाँ रहने से कोअी सेवा तो नहीं होती, बल्कि जहर-ही-जहर फैलता है, तो अुन्हें वहाँ से हट जाना होगा। लेकिन आज तो हम अुनसे अितना ही कहते हैं कि संघ के नाते वे वहाँ न जायँ। अितना अिकरार तो हमें करना ही है।

तब यह सवाल होता है कि फिर संघ कौन-से रूप में रहे ? वह रूप मैंने आपके सामने रख दिया है। दूसरा कोअी तरीका मेरे खयाल में नहीं आता। जो दूसरी प्रवृत्तियां करना चाहते हैं वे अलग रह कर सकते हैं; जैसे राजकारण का अध्ययन है। वह मेरे क्षेत्र में नहीं आता। मेरे नजदीक तो रचनात्मक कार्य का स्वराज्य से अनुसंधान करना ही सच्चा राजकारण है। जिसे लोग राजकारण कहते हैं, अुसका अभ्यास तो मैंने कभी नहीं किया। दक्षिण आफ्रिका में भी मैंने आन्दोलन चलाया, लेकिन राजकारण का अभ्यास नहीं किया। जो मैंने किया वही मेरा राजकारण था। मैं यह तो नहीं कहता कि मैंने राजकारण में हिस्सा ही नहीं लिया। हिन्दुस्तान में आया, तो नसीब से कॉंग्रेस की बागडोर ही मेरे हाथ में आ गयी। अुसके द्वारा जब तक सेवा कर सका तब तक वहाँ रहा। बाद में वहाँ से हट गया। मैं समझता हूं कि मैंने कॉंग्रेस से हट कर बडी भारी सेवा की। यह मेरी अहिंसावृत्ति थी। मेरी अहिंसावृत्ति ने काफी काम कर लिया। मेरे हट जाने पर भी कॉंग्रेस में अहिंसा का स्थान रहा। अब कॉंग्रेस का जितना राजकारण है, वह राजेन्द्रबाबू, वल्लभभाअी, पर छोड़ देता हूं। अगर वे देखें कि अुनके वहाँ रहने से जहर पैदा होता है, तो वे भी हट जायें। लेकिन हटना आसान बात नहीं है। लोग अुनसे कहें कि तुम्हें तो रहना है, कॉंग्रेस और अुसके अध्यक्ष अुनका वहाँ रहना जरूरी समझें, तो अुनके लिअे वहाँ से हटना मुश्किल हो जाता है। लेकिन अुस हालत में अुन्हें संघ में न रहना चाहिअे।

हमें संघ को सत्ता के राजकारण से और दलबन्दी से अस्पृष्ट (अलिप्त) रखना है। हमें तो मुनि (मौनी) बन कर काम करना है। तब सच्चा राजकारण शुरू होगा। रचनात्मक काम अितना व्यापक है, अुसके अभ्यासी बनें। अुस क्षेत्र में संशोधन (गवेषणा) और आविष्कार करें। यह बोझ शंकरलाल नहीं अुठा सकता। संघ के लिअे यही कार्यक्रम मेरे पास है। जो कुछ मेरे पास है, वही तो मैं कह सकता हूं। अहिंसा के प्रयोग का अेक नया क्षेत्र आपके सामने खुल जाता है। अुसे आप चाहे जितना बढा सकते हैं। न बढा सकें तो अितना ही काफी है। आपके कार्य से दूसरों को भी संशोधन की प्रेरणा मिलेगी। मैं मामूली शोध (आविष्कार) की बात नहीं कह रहा हूं। चाहे जैसे शोधों से थोडे ही मुझे संतोष होनेवाला है ? जिसके पास कोअी बडी भारी वस्तु होगी, वही अुसे जगत के सामने रक्खे। वह चीज अैसी अनोखी हो कि जगत देख कर आश्चर्यचकित हो जाय। अैसा संघ बनाने के लिअे आदमी भी अैसे ही चाहिअें, जो अिसी कार्य के पीछे पागल हो जायँ।

मैंने सीधी-सादी भाषा में सारी बात आपके सामने रख दी। हमें जो कुछ करना है वह सत्ता के और दलबन्दी के राजकारण से अलिप्त रह कर करना है। सारे देश का राजकारण कॉंग्रेस चलाती है। हममें से जो अुसकी कमेटियों में रह कर सेवा करना चाहते हैं, वे अब से संघ में नहीं रहेंगे। सविनय भंग की तैयारी कॉंग्रेस के बाहर रह कर भी हो सकती है। कॉंग्रेस सारे देश का प्रतिनिधित्व करती है, अिसलिअे अुसे अपने कार्यक्रम और प्रस्तावों में देश का मत प्रतिबिंबित करना पड़ता है। हमें तो अपने स्वतंत्र क्षेत्र में मूकभाव से सेवा और खोज करनी है।

कृष्ण नायर—संघ के रहने से अेक डर यह भी है कि कहीं आपका अेक संप्रदाय न बन जाय। जिस प्रकार दलबन्दी के राजकारण से हम घबड़ाते हैं, अुसी तरह किसी संघ के रूप में आपके नाम से कोअी संप्रदाय बनाने से भी घबड़ाना चाहिअे। आपकी जिन्दगी में ही आपके नाम से चलनेवाले अिस संघ ने कोअी विशिष्ट कार्य नहीं कर दिखाया है। तो आपके बाद क्या होगा, कौन जानता है? अिसलिअे संघ को तोड़ देना ही अच्छा है।

गांधीजी—संप्रदाय बन जाने का डर तो है ही। अिस विषय में मुझसे जितनी हो सकती है, अुतनी सावधानी ले लेता हूं।

पुंडलीकजी—संघ की हैसियत से सत्ता के राजकारण में प्रवेश न करने के मानी क्या यह हैं कि सत्ता का राजकारण ही बुरी चीज है? संघ के बाहर रह कर हम शुद्ध साधनों से सत्ता का राजकारण क्यों न करें? दुनिया को यह क्यों न दिखा दें कि अच्छे-से-अच्छे साधनों से भी सत्ता का राजकारण किया जा सकता है?

गांधीजी—संघ में रहते हुअे हम सत्ता के राजकारण में न पड़ें। व्यक्ति भी करें, या न करें, अिसके विषय में आज मैं अपना मत नहीं दे सकता। अुसके लिअे मेरे पास काफी सामग्री नहीं है। मैं नहीं जानता कि जो सत्ता ग्रहण करते हैं, वे अहिंसा को कहां तक निबाहते हैं? सत्य की कहां तक रक्षा करते हैं? सत्ता के राजकारण में आप हिस्सा लेंगे, तो वहां आपकी परीक्षा होगी। आप कहां तक अुत्तीर्ण होते हैं, यह मैं नहीं कह सकता। वल्लभभाअी राजकारण में रह कर प्रयोग कर रहे हैं। जब अुनको अैसा लगेगा कि अुनका वहां रहना अुचित नहीं है, तो वे छोड़ देंगे। अिस विषय में संघ कोअी जवाबदारी नहीं लेना चाहता। हर अेक व्यक्ति के दिल पर छोड़ दिया जाता है। हर अेक अपने हृदय को प्रमाण माने। अुस विषय में दूसरा कोअी शख्स निर्णय नहीं दे सकता। अुदाहरणार्थ, वल्लभभाअी काम करते हैं; अुनके दिल का हाल मैं नहीं जानता। मैं न वल्लभभाअी के हृदय को जानता हूं, न आपके। मैं अीश्वर थोड़े ही हूं?

स्वामी आनंद—रूरल रीकन्स्ट्रक्शन बोर्ड (ग्रामसुधार मंडल) सरकार ने बनाये हैं। क्या अुनमें से भी हट जायें? दो साल के बाद ये बोर्ड चुनाव से बनेंगे। बम्बअी के बोर्ड का चुनाव छह महीने के बाद होगा।

गांधीजी—जब तक वहां सत्ता का राजकारण नहीं है, तब तक रहें। अगर सत्ता का राजकारण आ जाय तो छोड़ दें। यह अपने अपने लिअे स्वतंत्र रीति से निर्णय करने की बात है।

गांधी सेवा संघ सम्मेलन,
मालिकान्दा, ता० २२-२-४०

काश हम अपने विशिष्ट ग्रह भुला सकते !

[हणमन्तराव कौजलगी]

अुसने अपने घर से आया हुआ अेक तार मुझे दिखाया। घर अुसका मैसूर-राज्य में था। तार में अुसकी औरत के सख्त बीमार होने की खबर थी और अुससे फौरन् घर आने के लिअे कहा गया था। मैंने अुसे तार का मजमून समझाया और कहा कि अुसमें और कोअी बात नहीं है। अुसे मानवीय सहानुभूति की जरूरत मालूम होती थी। अुसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिअे मैंने सहजभाव से अितना ही कहा कि शायद आपके घरवाले नाहक घबरा गये होंगे; बीमारी बहुत सख्त न होगी। अिस तरह हममें दोस्ती हो गयी और हम अेक-दूसरे के साथ दोस्तों-सा व्यवहार करने लगे।

यह घटना बंबअी और पूना के बीच रेलगाड़ी में हुअी। कल्याण के स्टेशन पर वह चाय पीने के लिअे अुतरा था। दूसरा अेक मुसाफिर आ कर अुसकी जगह पर बैठ गया और जगह खाली करने से अिनकार करने लगा। मैंने जबरदस्ती जगह पर कब्ज़ा करनेवाले व्यक्ति को समझा-बुझा कर जगह खाली करवा ली। अिससे हम दोनों में घनिष्ठता बढ़ी और हम अेक-दूसरे की मदद करने के मौके खोजने लगे।

पूना स्टेशन पर रामन्ना ने—मेरे सफ़र के साथी का यही नाम था—मुझे अपना ट्रंक और बिस्तर हुबली की गाड़ी में रखने में सहायता दी। गाड़ी में हमने साथ साथ भोजन किया और अपना असबाब अिस तरह रखा कि हम दोनों को दोपहर की झपकी लेने के लिअे काफी जगह मिली।

मिरज के स्टेशन पर दूसरे मुसाफिर आये और हमारे कमरे की खाली जगह पर बैठ गये। मैंने अपना बिस्तर खोल कर अेक पूरे बेंच पर कब्ज़ा जमा लिया था। नये मुसाफिरों ने मुझसे बड़े प्रेम से कहा कि अुनके लिअे मैं तकलीफ़ न करूं। वे और रामन्ना दूसरी बेंच पर बैठ गये। अेक पूरी की पूरी बेंच पर कब्ज़ा करने के लिअे मैंने अुनसे माफी चाही और कहा कि मैं कलकत्ते से आ रहा हूं, अिसलिअे दो-तीन रात मुझे आराम नहीं मिला। नये आये हुअे मुसाफिरों में अेक मुसलमान युवक था। वह हुबली जा रहा था। अुसने मुझसे कहा कि मैं रेल में सो ही नहीं सकता; अिसलिअे अगर बैठे बैठे ही सफ़र पूरी करनी पड़े तो भी कोअी मुज़ायका नहीं। जब अुसने देखा कि हमारे कमरे की आबहवा मुवाफ़िक है तो वह अपनी बीबी को जनाना-डिब्बे में से हमारे डिब्बे में ले आया। अुसकी बीबी अभी क़रीब क़रीब लड़की ही थी। मैंने यह भी जान लिया कि वह गर्भिणी है और अिसलिअे अुसका पति अुसे ज्यादा से ज्यादा आराम देना चाहता है। अुन्हें अेक-दूसरे के आराम की जो फ़िक्र थी वह दिल को आनन्द देनेवाली थी, और, जाने क्यों, अुसने मुझे भवभूति के अुत्तररामचरित्र के पहले अंक की याद दिलायी। अुनके लिअे मेरे दिल में सहानुभूति पैदा हुअी और जी चाहने लगा कि अुनकी कुछ सेवा करूं।

अिसी बीच में रामन्ना अेक दूसरे मुसाफ़िर की आलोचना कर रहा था, जिसने प्लैटफॉर्म पर खड़े अेक पुलीस सब-अिन्स्पेक्टर को सलाम कर लिया था। रामन्ना कह रहा था 'ये पुलीसवाले कुछ अजीब होते है। अिस बेरहम दुनिया में हमारे सलामों का भी गलत

अर्थ लगाया जाता है। ये पुलीसवाले समझते हैं कि जो अुन्हें बिना किसी वजह के सलाम करता है, अुसके साथ ज़रूर कुछ-न-कुछ दाल में काला है। अिसलिअे हमें अपने सलामों की खैरात नहीं करनी चाहिअे'। मैने रामन्ना को मुसकराकर अुत्तेजन दिया। वह कहने लगा, "बोरीबंदर स्टेशन पर अेक कान्स्टेबिल मेरे पास आया और दोपहर की चाय के लिअे दो आने माँगने लगा। महज़ शराफ़त के खातिर मैंने अुसे दो आने दे दिये। दूसरे दिन वे हज़रत फिर मेरे पास आये और मेरे नंबर, लाअिसेन्स, लाअिसेन्स की तारीख़ वग़ैरा की जाँच-पड़ताल करने लगे। अुन्होंने जो पूछा मैंने दिखा दिया और कह दिया कि मुझे किसी पुलीस के सिपाही या अफ़सर से डरने की कोअी वजह नहीं है। तबसे मैंने अपने दिल में पक्की ठान ली है कि पुलीसवालों को दूर से ही नमस्कार है"। रामन्ना की बात पर सब कोअी हँसे और वह सभी को भायी। तभी मुझे मालूम हुआ कि रामन्ना बंबअी में अेक विक्टोरियावाला है। बातों बातों में मुझे यह भी पता चला कि मुसलमान नवयुवक की हुबली में अेक चाय की दूकान है।

अुसकी बीबी को प्यास लग आयी; पर वह मिरज स्टेशन पर पानी भर लाना भूल गया था। खुशकिस्मती से मैं अपने लोटे में थोड़ा-सा पानी लाया था और अुस युवक से अुसे लेने को कहा। मुझे अिसकी बड़ी खुशी हुअी कि मैं अुन विवाहित प्रेमिकों की कुछ थोड़ी सेवा कर सका।

मैं देख रहा था कि अब्दुल (मैंने अुसका यही नाम रख लिया है) चाहता था कि अुसकी बीबी ज़रा देर लेट सके। लेकिन जगह की तंगी से वह मजबूर थी। मैंने अपनी बेंच पर थोड़ी-सी जगह कर दी और अब्दुल से अपने पास बैठने को कहा। लेकिन मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि अुस युवती ने अुसे लेटने पर मजबूर किया और आप बिना-हिचकिचाहट मेरी बेंच पर आ कर बैठ गयी। प्रेम की लीला अैसी है!

अिस सफ़र में मेरे दिल पर सबसे गहरी छाप अिस बात की पड़ी कि हमारी जातियाँ, धर्म और रुतबे में फ़र्क होते हुअे भी अिन बातों ने हमारी मित्रता होने में रुकावट नहीं डाली। सच तो यह है कि अिस भावना के सिवाय कि "हम सभ्य मनुष्य हैं," दूसरी किसी चीज़ का हमें होश ही नहीं था।

विघ्नरूप धर्म

पाश्चात्य देशों के आपसी झगड़ों की ये मिसालें अेक हद तक हमारी राष्ट्रीय कमजोरियों को समझने में मददगार हो सकती हैं, लेकिन अुनका पूर्णरूप से समर्थन कभी नहीं कर सकतीं। क्योंकि यह तो मानना ही पड़ेगा कि हमारे देश में हिन्दू और मुसलमानों को अेक दूसरे से अलग करनेवाली रेखा बहुत ही कठोर है। जहाँ सत्य का परित्याग होता है, वहाँ पाप और अुसके साथ दण्ड आ ही जाता है। धर्म हृदय में रहने के बदले, कंठ किये हुअे वाक्यों और बाहरी कर्मकांड पर ही जब अधिक जोर देने लगता है, तो वह शान्ति के रास्ते में सबसे बड़ा विघ्न हो जाता है।

मॉडर्न रिव्यू,
जनवरी, १९४०

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सेवाग्राम की खादी-यात्रा

वर्धा तहसील की खादी-यात्रा प्रति वर्ष किसी-न-किसी देहात में होती है। अिस साल सेवाग्राम में हुअी। यात्रा के सभापति श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू थे। सभापति के नाते भाषण देते हुअे **श्री जाजूजी** ने चरखा, खादी और कातने का स्वराज्य से संबंध समझाया। अिस सिलसिले में अुन्होंने कहा कि "जड़वत् सूत कातने से या केवल खादी पहनने से लाभ नहीं होगा। ये चीजें जिन सिद्धान्तों की ओर गुणों की प्रतीक हैं, अुन गुणों का हम अपनेमें विकास करने का यत्न करेंगे तभी खादी आदि के लिअे जो दावा किया जाता है वह सार्थक होगा।

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुँह माहीं।
मनुवा तो दहुदिस फिरे, यह तो सुमिरन नाहीं।

अिस प्रकार के नामस्मरण से मोक्ष नहीं मिलता। अुसी प्रकार जड़वत् कातने से या खादी बरतने से स्वराज्य नहीं मिलेगा। चरखा और खादी दो मुख्य गुणों के प्रतीक हैं— (१) शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा, (२) गरीबों से प्रेम।

१. **शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा**—यह शब्द-समूह 'डिग्निटी ऑफ् लेबर' का अनुवाद है। लेकिन मेरे मत से 'श्रम की प्रतिष्ठा' के बदले 'श्रम के प्रति प्रेम' पैदा होना जरूरी है। आज जहाँतहाँ श्रम टालने की कोशिशें हो रही हैं।

२. **गरीबों से प्रेम**—हिन्दुस्तान करोडों दरिद्र लोगों का देश है। अुनसे अनुसन्धान और बन्धुत्व कायम करने के लिअे हमें भी अुन्हींके समान परिश्रम करना चाहिअे। यदि हम अुनसे बन्धु-भाव कायम नहीं करेंगे, तो याद रहे, आगे बड़े बिकट दिन आनेवाले हैं। जो अुनसे सीधी तरह पेश नहीं आयेंगे वे सीधे कर दिये जायेंगे। अुनसे बन्धुत्व कायम करने का अेकमात्र मार्ग है चरखा कातना। बनावटी प्रेम टिक नहीं सकता। प्रेम में सच्चाअी होनी चाहिअे। चरखा गरीबों के प्रति हमारे प्रेम का सबूत है। अिसलिअे वह अहिंसा और सत्य का प्रतीक है।

हिन्दुस्तान में असंख्य भेद हैं। अुसके कल्याण का अहिंसा के सिवा दूसरा कोअी समर्थ मार्ग ही नहीं है। चरखा अविरोध की नींव पर आधार रखनेवाली अर्थ-व्यवस्था का प्रतिनिधि है। अिसलिअे वह अहिंसा का भी प्रतीक है"।

* * * *

श्री काका साहब कालेलकर ने निम्न-आशय का भाषण दिया:—

"भाषण देना मेरी प्रकृति में नहीं है। लेकिन फिर भी मुझे भाषण देने पड़ते हैं। सम्भाषण मुझे कुछ कुछ आता है, अिसीलिअे मुझे सम्भाषण करते देख कर लोग कअी बार भाषण देने के लिअे भी पकड़ कर ले जाते हैं। मैं भी निःसंकोच चला जाता हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि वे मुझे दुबारा नहीं बुलाते। परंतु, यहाँ आने में मुझे कुछ संकोच हुआ। कारण, यहाँ बिना बहम किये अुपासना करनेवाले अेकत्र होते हैं। यह अुपासना-भूमि है। विनोबा की तरह जिन्होंने खादी की अुपासना की हो, अुन्हींका यहाँ अधिकार है। मैं अुनमें से नहीं हूं। अिस-लिअे यहाँ कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। लेकिन, फिर भी, शायद आप यह सुनाना चाहते थे कि अेक साधारण मनुष्य के दिल पर खादी का क्या असर हुआ है, अिसीलिअे मुझे यहाँ बुलाया गया है। साबरमती आश्रम में विनोबा और मैं साथ-ही-साथ भरती हुअे। दोनों साथ-ही-साथ गांधीजी का तत्त्वज्ञान सीखे। वे सेवा करते हैं, मैं सेवा का दंभ करता हूं। अेक बार बात-

चीत के सिलसिले में अुन्होंने सहज ही अेक मजेदार कहावत सुनायी—'अिक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।'

अिस कहावत के पूर्वार्ध की साधना विनोबा ने की; और अुत्तरार्ध मुझे नसीब हुआ है। अुन्होने अेक खादी को अपनाया और अुसके द्वारा दूसरी सारी बातें आत्मसात् कीं। मैंने सभी चीजों से प्रेम किया; लेकिन मुझे अेक भी प्राप्त नहीं हुअी। मै चाहता हूं कि मेरा यह अनुभव आपलोगों को मार्गदर्शक हो।

खादी का विचार दो पहलुओं से किया जा सकता है—(१) आत्म-शुद्धि, (२) संसार में न्याय का साम्राज्य। दोनों रीतियों से हम अेक ही परिणाम पर पहुँचते हैं—स्वावलंबन।

पुराने जमाने में युद्ध अिसलिअे होते थे कि कोअी राजा किसी राजकन्या को हर लेना था, या किसीको जमीन की अभिलाषा होती थी। आगे चल कर कोयला, तेल, गेहूं, आदि वस्तुओं के लिअे, या जन-संख्या की सुविधा के लिअ, युद्ध होने लगे। आज तो कल्पनाओं के लिअे भी युद्ध होते पाये जाते हैं।

संसार की राजव्यवस्था कैसी हो अिसके लिअे युद्ध होते हैं। परंतु स्वार्थ की भावना प्रबल होने से वे निरर्थक सिद्ध होते है। अभी अभी तक जर्मनी रूस का कट्टर दुश्मन था; लेकिन आज वही स्वार्थवश मित्र हो गया है।

संसार में अिस समय दो 'वाद' पाये जाते हैं—अेक साम्राज्यवाद और दूसरा साम्यवाद। फॅसिजम और नाजीजम तो सरासर साम्राज्यवाद ही हैं। अिग्लैंड भी बडी धूर्ततापूर्वक अुसी रास्ते जा रहा है। ये सब अक ही से हैं। सिर्फ रूस साम्यवादी है। वह धनी-गरीब, मालिक-मजदूर, आदि भेद मिटाने का यत्न कर रहा है। अपना विचार करते करते अुसे सारी दुनिया का विचार करना पडा और अिसलिअे वह सारे संसार में साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है। लेकिन अुसने भी अेक पाप बाकी रक्खा है। अुसकी समता केवल साम्यवादी राष्ट्रों तक ही सीमित है। दूसरों पर अत्याचार करने में अुसे कोअी हिचकिचाहट नहीं होती। अिस प्रकार संसार में राष्ट्रवाद अथवा साम्राज्यवाद और आन्तर-राष्ट्रीय साम्यवाद पाये जाते हैं। लेकिन अिन दोनों से भिन्न और विलक्षण है गांधीजी का सर्वोदयवाद। हिन्दुस्तान ने अहिंसा का स्वीकार 'असमर्थः भवेत्साधु' वाले न्याय के अनुसार नहीं किया है। अहिंसा हिन्दुस्तान की जनता के खून ही में है। अिसीलिअे अुसे गांधीजी की नीति भाती है। वह अुसे समझा भले ही न सके; लेकिन अुसकी बुद्धि में वह नीति बैठ गयी है। वह नीति गांधीजी की नहीं है; हिन्दुस्तान की है। लेकिन ये बीचवाले जो दलाल है, यानी नेता लोग, अुन्हें वह नहीं जँचती। हिन्दुस्तान के आदमी डरपोक नही हैं। अगर नेता न हो, तो वे असमंजस में पड़ जाते है। लेकिन संगठन-कुशल नेता मिलते ही वे प्रतीकार-समर्थ हो जाते है। हम बीच-वाले मगर अंग्रेजों के दास हो गये हैं। हमें अहिंसा मे विश्वास नहीं है। और यही गांधीजी की असली कठिनाअी है। अिसीलिअे गांधीजी अिस बीचवाले वर्ग की मिन्नतें करते है। अुनको मनाना मानो काँटों से फूल बनाने जैसा काम है।

पिछले दिनों मैसूर मे जागतिक विद्यार्थी-परिषद हुअी थी। अुसके लिअे मॉट नामक अेक अमेरिकन सज्जन सभापति हो कर आये थे। अुन्होंने गांधीजी से मिलना चाहा। गांधीजी ने जवाब दिया कि 'रात के वक्त दस मिनिट के लिअे मिल सकते हैं'। मैं विद्यापी में था।

दस मिनिट में यह साहब क्या पूछते हैं और गांधीजी अुन्हें क्या जवाब देते हैं, यह सुनने के लिअे में भी गया। शुरू में अुक्त सज्जन ने मिशनरियों के मामूली प्रश्न—यथा अस्पृश्यों का धर्मान्तर आदि—पूछे। बाद में अुन्होंने अपने हृदय के दो खास सवाल पूछे। पहला प्रश्न था—'नितान्त निराशा में भी आशा देनेवाली, चैतन्य देनेवाली, चीज क्या है'? जवाब मिला 'हिन्दुस्तान की जनता के साथ अितनी ज्यादतियाँ हो रही हैं; फिर भी वह अहिंसा को नहीं छोड़ती, यह देख कर मुझे अीश्वर के अस्तित्व का विश्वास हो जाता है। अिसलिअे मैं निराशा में से भी रास्ता निकाल लेता हूं'। दूसरा प्रश्न यह पूछा गया—'आपके दिल को बेचैन कर देनेवाली वस्तु कौन-सी है?' अुत्तर में गांधीजी ने कहा—'भारत और संसार के शिक्षित लोगों के दिल पथरा गये हैं, यह'।

अशोक-वन में रहनेवाली सीताजी के समान गांधी का तत्त्वज्ञान संसार के आसुरी वातावरण से घिरा हुआ है। संसार का विनाश होनेवाला नहीं है। अन्त में वह कल्याण के अेकमात्र मार्ग अहिंसा की ओर ही मुड़ेगा। अगर आप अिसका सबूत चाहते हों तो सेवाग्राम के रास्ते पर झोपड़ी बना कर रहिये। संसार के विचारशील लोगों को नित्य गांधीजी के पास आते-जाते आप देखेंगे। अुन्हें गांधीजी के स्वराज्य से कोअी सरोकार नहीं। लेकिन सभी राष्ट्रों के विचारवन्तों को यह आभास मिल गया है कि दुःख और निराशा का अिलाज गांधीजी को प्राप्त हो गया है। वे गांधीजी से पूछने आते हैं। जवाब में गांधीजी कहते हैं कि मेरे कार्यों का अध्ययन कीजिये। अिस अुत्तर में नम्रता है और आत्मविश्वास भी है।

आज साम्राज्यवाद, साम्यवाद और गांधी के सर्वोदयवाद या अहिंसावाद में अहमहमिका हो रही है। युरोप की पद्धति तो सीधी विनाश की ओर ले जा रही है। अब 'साम्यवाद हो, या अहिंसावाद?' यही सवाल है। गांधीजी कहते हैं कि जब तक शोषण बंद नहीं होगा तब तक लड़ाअियाँ भी बन्द नहीं होंगी। शोषण को रोकिये; अन्यथा जीना दूभर हो जायगा। शोषण को रोकने का अुपाय है चरखा। हिन्दुस्तान के जैनी लोग और अमेरिका के क्वेकर अहिंसा को बहुत कम समझ पाये हैं। जैनों के लिअे सूर्यास्त के बाद भोजन न करना और क्वेकरों के लिअे फौज में भर्ती न होना ही अहिंसा है। ये अिसका विचार नहीं करते कि हम अितने धनवान कैसे हुअे? बिना हिंसा के, बिना शोषण के, कोअी श्रीमान् नहीं हो सकता। दीगर छोटी-मोटी बातें भले ही टल गयी हों; लेकिन यह मुख्य रोग ज्यों-का-त्यों कायम है। हिन्दुस्तान के कुछ लोगों में धर्म का अुदय हुआ है, लेकिन सिर्फ विचारों में; आचार में नहीं। मजदूरों से और संसार के सभी लोगों से समानता का व्यवहार करना ही गांधीजी का मार्ग है। अिसीका नाम जीवन-वेतन है। लेकिन लोगों को शिकायत है कि खादी महँगी है। 'कताअी महँगी हो लेकिन खादी सस्ती हो; गाय महँगी हो लेकिन दूध सस्ता हो'—यह चमत्कार कैसे किया जाय? अिसके अिलाज के लिअे गांधीजी ने यज्ञ का बीच का रास्ता अीजाद किया है। यज्ञ की बदौलत ही अधर्म बन्द होता है। अगर यह यज्ञ हमारे दिमाग में बैठता हो, तब तो हम गांधीवादी हैं, वरना हिटलरवादी या स्टॅलिनवादी हैं। अिस यज्ञ के अुत्सव के लिअे, अेक-दूसरे की श्रद्धा दृढ करने के लिअे, हम अिस यात्रा में आते हैं। अिसीलिअे खादी-यात्रा स्वराज्य-यात्रा है।

(ग्राम-सेवा-वृत्त से अनुवादित)

कबूतर का गटरगूँ

छाया-सीता : छाया-संघ

आदरणीय सम्पादक भाओी,

सविनय पालागन ।

हाल ही में मैं अपने पिछले पत्र में साबरमती के तटवर्ती 'हृदयकुंज' के वीरान हो जाने पर आँसू बहा चुका हूं । अुस वक्त मुझे क्या पता था कि अितनी जल्दी में आपके सर्वोदय में ही सूनापन पाअूंगा । आश्रम की सारी स्थावर संपत्ति को तिलाञ्जलि दे कर सारे आश्रमवासी सत्याग्रह के मैदान में कूद पड़े थे । आज आप लोग भी सर्वोदय और संघ की तंत्र-यष्टि कायम रख कर अिधर-अुधर बिखर गये हैं । सुनता हूं कि अब अेक अमूर्त और अव्यक्त संघ रह गया है । हर नये मौके पर अगर कोओी अनोखी बात न कहें, तो बापूजी का नाम दूसरा । साहित्य के क्षेत्र में तो छायावाद और हालावाद का विवाद सुन सुन कर तबीयत अघा गयी है। रवि-बाबू के प्रति मुझे कुछ श्रद्धा रही, लेकिन अुन्हें भी बड़े बड़े लोग गूढ़वादी और छायावादी कहते हैं । बापूजी शान्ति-निकेतन में बहुत ही थोडे दिन रहे, अिसलिअे मुझे यह डर नहीं था कि अिस छायावाद का संसर्ग अुन्हें भी लग जायगा । लेकिन मालिकान्दा में तो छाया की सीता और छाया के संघ की तारीफ के पुल बाँध दिये अुहोने । तो क्या सर्वोदय अब अिस छायामय संघ के छायामय सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता रहेगा ? धन्य है सर्वोदय के संपादक-युगल को ! मेरा मित्र कंबुग्रीव आपकी भूरि भूरि प्रशंसा कर रहा था । जब अुसने देखा कि अब की बार नरहरिभाओी भी यहाँ से मालिकान्दा के लिअे रवाना हो रहे हैं, तो अुसने भी देश की लंबाओी नापने की ठान ली । मालिकान्दा से लौटते ही कम्बुग्रीव बोला ।

कम्बुग्रीव—मालिकान्दा का हाल तो तुम अखबारों में और महादेवभाओी के अुन रोचक पत्रों में पढ़ ही लिया होगा । लेकिन शायद तुम्हें अखबारों से सर्वोदय के सम्पादकों की अपरंपार महिमा का पता नहीं चला होगा ।

मैं—गद्दी से अुतरनेवाले या गद्दी पर आरूढ़ होनेवाले पुराने और नये अध्यक्ष, नये पुराने ट्रस्टी, संघ के अथक मंत्री श्रोत्रेजी, प्रफुल्लबाबू और अुनके सहयोगी, बापू के अुपदेशों का नयापन, आदि की तारीफ करने के बदले तुम सर्वोदय के सम्पादकों का जिक्र क्यों करने लगे ? अुन्होंने क्या करतब दिखाये ? क्या तुम्हारा यह मतलब है कि अिन्हीं महानुभावों ने पर्दे के पीछे से संघ का संकोच करने का षड्यंत्र रचा था ?

कम्बुग्रीव—अैसी बात तो नहीं है। यह सूझ तो सोलह आने बापूजी की ही अपनी दीखती है । अुनके सिवा दूसरा कोओी अैसी बात कहने की हिम्मत भी करे तो अुसकी सुनेगा कौन ? कुछ लोग बापूजी की नकल तो कर सकते हैं; लेकिन अुतने ही से वे बापूजी तो नहीं बन जाते ? मैंने तो यहाँ तक सुना है कि पिछले आन्दोलन के दिनों में कुछ लोगों ने बापूजी की तरह लँगोटी लगा कर अुनकी चाल-ढाल, खानपान, रहन-सहन की नकल अुतारना शुरू कर दिया था । यहाँ तक कि अेकाध ने अपने सामनेवाले दो दाँत भी निकलवा दिये थे । यह तो मैं भी मानता हूं कि आखिर मनुष्य के शरीर का अुसके मन पर कुछ-न-कुछ परिणाम होता ही है ! कुछ लोगों की बुद्धि भी बापू के विचारों का अनुसरण करती है । लेकिन अितने से अुनका दिल बापू का दिल नहीं बन जाता ।

घटनाओं की जो प्रतिक्रियायें बापू के दिल पर होती हैं, वे तो अुनकी अपनी व्यक्तिगत ही होती हैं। मतलब यह कि यह सूझ तो बापूजी की ही थी; लेकिन अुसको शब्दबद्ध करने के लिअे जो प्रस्ताव बनाया गया, अुसे बार बार काका और दादा के हाथों में जाना पड़ता था। संघ का अंगुष्ठमात्र सूक्ष्म देह कायम रख कर अुसकी स्थूल देह को छीलने और तराशने की वाक्यावली बनाने का कौशल अिन्हीं संपादक द्वयों का था। लेकिन, मैं तो अुनकी दूसरी ही महत्ता से घबड़ा रहा हूं।

मैं—वह क्या ?

कंबुग्रीव—सचाअी भुशुंडी को जिस सिफत से अुन्होंने घुग्गूकाका के गले के नीचे अुतरवा दिया वह तुम भूले तो नहीं हो ? अगर आज सचाअी जिन्दा होता, तो अिन सयानों को वह खरीखरी सुनाता कि होश ठंडे हो जाते अुनके। अितनी बड़ी संस्था को तहस-नहस कर दिया। मुझे भी यही डर है कि कहीं तुम्हारी-मेरी गटरगू अिसी तरह चलती रही तो मुझे भी सचाअी के रास्ते न जाना पड़े। लेकिन बिना सचाओ को प्रकट किये भी तो रहा नहीं जाता! और नहीं तो अिस आश्रम के निकट रहकर बाहर व्रतों में से कम-से-कम सचाअी का पहला व्रत निबाहना तो सीख ही लिया है। अब बताओ कि क्या यह कम तौहीन की बात है कि किशोरलालभाअी की गद्दी सम्हालनेवाला अेक भी व्यक्ति सारे संघ में नहीं मिला ? जिन किशोरलालभाअी को सचाअी महज अेक तोता समझता था और अुनके दिमाग पर व्यंग करता था, अुनकी भी बराबरी करनेवाला अेक नहीं निकला।

मैं—खैर, अिस बात को जाने दो। अुन डेढ़-दो सौ कम-अक्ल संघवालों की तारीफ तुमसे फिर कभी सुनूंगा। अभी तो यह बताओ कि संघ का प्रकट स्वरूप लीन कर देने में बापूजी की असली मनशा क्या है ?

कम्बुग्रीव—बापूजी की भाषा की यह विशेषता है कि वह जितनी स्पष्ट होती, है अुतनी ही अस्पष्ट भी होती है। जब अुनके हृदय में अुमंगों का वेग बहुत बढ़ जाता है, तो वे अैसी भाषा बोलते हैं, जिसे समझना दुश्वार हो जाता है। अपने दिल के किसी भेद को छिपाने की अुनकी ज़रा भी अिच्छा नहीं होती। फिर भी, न मालूम क्यों, सुननेवाले अुनके शब्दों में रहस्य खोजने लगते हैं और यहां-वहां से कुछ वाक्य चुन चुन कर बाल की खाल निकालने में व्यस्त हो जाते हैं।

मैं—मैं भी अैसी ही अुलझन में पड़ा हूं। सीताजी जब गुप्त हुअी, अुस प्रसंग का वर्णन तुलसीदासजी ने अिन शब्दों में किया है :—

सुनहु प्रिया-व्रत रुचिर सुशीला।
मैं कछु करब ललित नरलीला॥
तुम पावक महँ करहु निवासा।
जब लगि करअुँ निसाचरनासा॥
जबहिं राम सब कहेअु बखानी।
प्रभु पद धरि हिय अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता।
तैसअि सील स्वरूप विनीता॥
लक्ष्मण हू यह मर्म्म न जाना।
जो कछु चरित रचेअु भगवाना॥

यहाँ गुसाअींजी ने 'मर्म' शब्द का प्रयोग किया है। बापूजी ने अिसी प्रसंग की अुपमा दी है। अिसलिअे राज्य-शास्त्र-कोविदों को यह शंका हो रही है कि हो-न-हो छाया-सीता की तरह छाया-संघ में भी कोअी गहरा 'मर्म' अवश्य है। ताज्जुब नहीं कि अगर कोअी सनातनी यह भी कह बैठे कि अिसमें बापू का अिरादा किशोरलालभाअी को खुश करने के लिअे सगुण अुपासना को नष्ट कर निर्गुण अुपासना जारी करने का है;

और अिसलिअे वह अुन्हें नास्तिक, मूर्ति-भंजक आदि अुपाधियाँ देने लगे।

कम्बुग्रीव—पंडितों के दिमाग मूल-भुलैयाँ के नमूने पर बने हुअे होते हैं। वे किसी बात का सीधी तरह विचार ही नहीं कर सकते। अुनकी बुद्धि साँप की तरह बल खाती हुअी चलती है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि अिस दृष्टान्त में बापूजी का कोअी गूढ़ अर्थ नहीं है। अुनकी यह आदत है कि वे बात बात में तुलसी-रामायण और गीता का प्रमाण दिया करते हैं। सुनता हूं कि वाल्मीकि-रामायण में तो छाया-सीता का पता तक नहीं है। लेकिन गुसाअींजी की मातृभक्ति यह सह नहीं सकी कि 'अखिल लोक ब्रह्माण्ड की माता'। जानकीजी को भी स्पर्श करने के बाद रावण जल कर खाक न हो जाय; अिसलिअे अुन्होंने यह छाया-सीता का प्रमाण अुठाया है। अुनकी कथा सार-गर्भित और रोचक भी है। लेकिन बापूजी को सारी बातें ज्यों-की-त्यों थोड़े ही याद रहती हैं? वे तो अुसके हृदय को ले लेते हैं। अुन्हें तो यह भी याद नहीं कि सीताजी ने पाताल में प्रवेश नहीं किया। अुनसे तो रामचन्द्रजी ने 'तुम पावक महँ करअु निवासा' कहा है। तुम्हारे सर्वोदय के सम्पादक काका साहब ही तो कअी बार कहा करते हैं कि बापूजी को अिसकी भी याद नहीं रहती की गंगाजी गंगोत्री से निकलती हैं या मान-सरोवर से। मेरा मतलब यह है कि जो राज-नीतिज्ञ बापूजी को अपने समान पण्डित समझते हैं, वे अुनकी बातों का ठीक ठीक अर्थ कभी कर ही नहीं सकते। वे तो बापूजी के सीधे-सादे और सरल व्यवहार में भी धूर्तता और कूटनीति खोजते फिरते हैं।

मैं—कोअी भी अुपमा या दृष्टान्त पूरा-का-पूरा लागू नहीं होता यह मैं भी मानता हूं। लेकिन छाया-संघ और छाया-सीता में किस अंश में समानता है सो तो समझाओ।

कम्बुग्रीव—हाँ, यह पूछो। सुनो, राम की आज्ञा से सीता अग्नि में समा गयी और राम के अुपयोग के लिअे अपना प्रतिबिम्ब छोड़ गयी। बापू की आज्ञा से संघ भी पद्मा के विशाल अुदर में समा गया और अुनके प्रयोगों के लिअे अपना विधान तथा कार्यवाहक समिति छोड़ गया। सीताजी अग्नि में समा गयीं, अर्थात् पंचतत्त्व में घुलमिल गयीं; तिरोहित हो कर भी रामजी के संन्निध ही रहीं। संघ भी सदस्य न रहनेवाले अनेक व्यक्तियों में गायब हो गया। लेकिन सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के साथ अेकरूप हो गया। बापूजी ने संघ का विसर्जन कर दिया; लेकिन अब वह सर्वत्र अुनके साथ रहेगा। रावण के अपवित्र स्पर्श के बाद भी सीता अकलंकित ही रही। सत्ता और सम्मान के राजकारण के स्पर्श के बाद भी संघ को बेदाग रखने की व्यवस्था हो गयी। छाया-सीता ने लक्ष्मण को युद्ध के लिअे प्रेरित किया; हनुमान से अलौकिक पराक्रम कराया। अिसी तरह जब तक रचनात्मक कार्य चलता रहेगा, संघ भी कॉंग्रेस को पराक्रम की स्फूर्ति देगा और देशभक्तों से अहिंसक वीरता के चमत्कार करायेगा। अशोक-वनवासी सीता तपस्विनी रही अिसलिअे असुरों की सेना का पराजय हुआ। जब तक बारह व्रतों के साथ हमारे आन्दोलन का अनुसंधान रहेगा, हमारी आसुरी वृत्तियों का भी नाश होगा। हनूमान की बताअी हुअी रामनामाङ्कित मुद्रिका देख कर सीता ने आत्म-हत्या का ख़याल छोड़ दिया और अपना असली रूप धारण करने के लिअे अुद्यत हो गयी। संघ भी किसी दिन सर्वोदय के मुद्रण से जाग्रत् हो कर अपना असली रूप प्रकट करेगा। छाया-

सीता राम-रावण-युद्ध के बाद अग्नि में समा गयी और सच्ची सीता प्रकट हुअी, जिसका रामचन्द्रजी ने स्वागत किया। परस्पर वैमनस्य और अंतःकलह की आग में समाया हुआ संघ भी किसी दिन अिस अग्नि-परीक्षा में अुत्तीर्ण हो कर बापूजी की बधाअी का पात्र होगा।

मैं---यह तो सारी तुम्हारे दिमाग की कलाबाजी है। सर्वोदय के संपादक ठीक ही कहते हैं कि तुम्हारे दिमाग की बनावट पण्डितों के ढांचे की है। पता नहीं, बापूजी ने दरअसल ये सारी बातें सोची थीं; या यह केवल तुम्हारे दिमाग की सरकस है।

कम्बुग्रीव---ये सारी बातें भविष्य ही सिद्ध करेगा। आश्रम में रह कर अनुभव से मेरी यह राय बन गयी है कि बापूजी कोअी धूर्त राजनीतिज्ञ नहीं हैं। वे तो सत्य की राह पर चलने की कोशिश करनेवाले अेक सीधे-सादे लेकिन सयाने आदमी हैं।

संपादक भाअी, कम्बुग्रीव की कुछ निरर्थक-सी लम्बी-चौडी गटरगू सेवा में भेज रहा हूं। पता नहीं, वह क्या क्या कह गया। अुसकी कअी बातें मेरी समझ से परे हैं। आपलोग तो पण्डित ठहरे! आप ही अुसके शब्दों का अर्थ लगाअिये।

आपका आज्ञाकारी

'**कलबलराम**'

संघ-वृत्त

हमारे सम्मेलन

मालिकान्दा में गांधी सेवा संघ का रूप बदल दिया गया। अुसके फल-स्वरूप मालिकान्दा में जिस प्रकार का सम्मेलन हुआ था, या गांधी सेवा संघ के जिस प्रकार के सम्मेलन अिन चार-पाँच वर्षों से होते आये थे, अुस तरह के सम्मेलन भविष्य में होना संभव नहीं रहा। तथापि मालिकान्दा में आये हुअे बहुतेरे व्यक्तियों की यह राय रही कि किसी-न-किसी रूप में सम्मेलन होना आवश्यक है। चार प्रान्तों की ओर से सम्मेलन के लिअे आग्रहपूर्वक आमंत्रण भी आये। अिस विषय का श्री किशोरलालभाअी, धोत्रेजी और मैंने विचार किया तथा भविष्य के सम्मेलनों की कुछ रूपरेखा भी बनायी। पूज्य गांधीजी की सलाह भी ली गयी। बाद में वह योजना संघ के वर्तमान सदस्यों के पास अुनकी सम्मति के लिअे भेजी गयी। अुनमें से अधिकांश के अुत्तर आये। अिन सबका विचार करके सम्मेलन के विषय में निम्न-लिखित सूचनाअें प्रकाशित की जाती हैं:--

१. फिलहाल गांधी सेवा संघ के नाम से कोअी सम्मेलन न किया जाय।

२. सम्मेलन का स्वरूप अखिल भारतीय की जगह प्रान्तीय होना अिष्ट है। अिससे खर्च कम होगा और कार्यकर्ताओं को काम की प्रेरणा मिलने में, अपना संगठन करने में, या अुसे मजबूत बनाने में अधिक सहायता मिलेगी। सम्मेलन में दूसरे प्रान्तों से कुछ गिने-चुने लोग भी बुलाये जा सकते हैं। परन्तु सम्मेलन का रूप प्रधानतया अैसा हो कि खुद अुस प्रान्त के सब रचनात्मक कार्यकर्ता अुसमें अुपस्थित रह सकें; चाहे फिर पहले कभी अुनका गांधी सेवा संघ से संबंध भले ही न रहा हो।

३. सम्मेलन के अिस स्वरूप के अनुसार अुसका नाम 'रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन' रखना अुचित जान पड़ता है। अुसका प्रान्तीय स्वरूप दर्शाने के लिअे जिस प्रान्त का सम्मेलन हो अुस प्रान्त का नाम भी जोड़ दिया जाना

चाहिये। प्रान्तीय भाषा के अनुसार सम्मेलन के नाम में 'रचनात्मक कार्यकर्ता' की जगह अुसी अर्थ के दूसरे शब्द रखने में बाधा नहीं है।

४. जो कार्यकर्ता सम्मेलन में शामिल होना चाहें अुनके लिअे यह शर्त रखना अुपयुक्त होगा कि वे आदतन खादीधारी हों और नियमपूर्वक कातनेवाले हों। जो कार्यकर्ता गांधीजी के सिद्धान्तों को पूरी तरह न मानते हुअे भी अपनी अपनी दृष्टि से लगन के साथ रचनात्मक काम करते हैं अुन्हें भी दर्शक की हैसियत से सम्मेलन में अुपस्थित होने की तथा अपने विचार समझाने की सुविधा करा देने में कोअी हर्ज न समझा जाय। अितनी सावधानी अलबत्ता रखनी होगी कि कहीं वे विचार ही सम्मेलन की चर्चा के मुख्य विषय न बन जायँ।

५. सम्मेलन में यह प्रबन्ध होना जरूरी मालूम होता है कि सारे प्रान्त में चलनेवाले रचनात्मक कार्यों का संक्षिप्त परन्तु संपूर्ण विवरण वहाँ आनेवालों को लिखित रूप में मिले। कार्य करने में कौन-सी कठिनाअियाँ आती हैं और वे किन अुपायों से दूर की जा सकती हैं, अिसका भी विवेचन हो। अिसके अलावा दूसरे प्रान्तों के रचनात्मक कार्यों का भी विवरण हो। अिसलिअे हर अेक प्रान्त से दो-अेक अैसे कार्यकर्ताओं को अवश्य बुलाया जाय, जो अपने प्रान्त के समग्र रचनात्मक कार्य का लिखित ब्यौरा दे सकें।

६. सम्मेलन के साथ आम जनता के लिअे प्रदर्शनी रखने से सम्मेलन को अेक बड़े भारी मेले का रूप आ जाता है। अिससे प्रबन्ध का काम बहुत बढ़ जाता है और धूमधाम के मारे ठोस कामों का गहरा विचार कम हो सकता है। अिसलिअे अैसी प्रदर्शनियों का न होना अच्छा है। हाँ, सम्मेलन में सम्मिलित होनेवालों को वहाँ के विचार-विनिमय में जो सहायक हो सकें अैसे विशेष शोधों का प्रदर्शन अवश्य कराना चाहिये।

७. ये सम्मेलन गांधी सेवा संघ की ओर से नहीं होंगे। वे अुन अुन प्रान्तों के कार्यकर्ताओं की ओर से कराये जायेंगे। सम्मेलन के प्रबन्धकों को संघ से मार्गदर्शन प्राप्त करने का हक होगा। खर्च की जिम्मेवारी प्रबन्धकों पर ही रहेगी। सम्मेलन का प्रबन्ध, भोजन, आदि सब—जैसा कि गांधीजी कहते आये हैं, अुस प्रकार का—सादा और आसान होना चाहिये। खर्च का बोझ सम्मेलन के प्रबन्धकों पर कितना रहे और सम्मेलन में शरीक होनेवालों पर कितना रहे अिसका निर्णय प्रबन्धक ही करें। सम्मेलन का अधिवेशन पाँच दिनों से अधिक तक रखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

८. अुक्त सूचनाओं से सम्मेलन के स्वरूप की प्रारंभिक भूमिका बनती है। अगर सम्मेलन बुलानेवाले अुनमें कुछ हेर-फेर करना चाहें, तो अुनका भी विचार किया जा सकता है। जब सम्मेलन करने का प्रत्यक्ष मौका आयेगा तब और भी नये नये प्रश्न अुपस्थित होंगे। अुनका निर्णय प्रबन्धकों को करना होगा। परन्तु महत्त्व की बातों का निर्णय संघ से परामर्श लेने के बाद ही करना अुपयोगी होगा। कारण, अुससे सिद्धान्तों का ठीक ठीक पालन हो सकेगा और सम्मेलनों की नीति में समानता तथा स्थिरता रह सकेगी।

९. अुक्त प्रकार के सम्मेलन भिन्न भिन्न प्रान्तों में अेक ही वर्ष में अनेक हो सकते हैं। परंतु गांधीजी तो अेक वर्ष में किसी अेक ही सम्मेलन में शामिल हो सकेंगे। वे कहाँ अुपस्थित हो सकेंगे, अिसका निर्णय अुन्हींकी सलाह से करना होगा।

वर्धा,　　　　श्रीकृष्णदास जाजू.
ता. २२:४:४०　　　　अध्यक्ष, गांधी सेवा संघ

सर्वोदय की दृष्टि

अहिंसा के कुछ पहलू

शरीर-धारण और दण्ड के लिये हिंसा

हिंसा-अहिंसा का सवाल हमारे बचपन में खाने-पीने के संबंध में ही अुठता था। जब वैष्णवों का दया-धर्म और प्रेम-धर्म हमारे जीवन में दाखिल हुआ तब, किसी भी व्यक्ति को अपने क्रोध से या कठोर वचन से दुःख पहुँचाने में भी हिंसा है और प्रिय और पथ्य वचन से और सेवा से सबको राजी रखने में अहिंसा है '— अितना हम स्थूलरूप से समझ गये।

अिसके बाद अिस प्रश्न ने अेक नया ही रूप पकड़ा। 'जालिम को सजा देने के लिअे, गुनहगार को दण्ड देने के लिअे, भी हम हिंसा का आश्रय न करें'—यह ख़याल गांधीजी ने हमारे सामने पेश किया। जलियानवाला बाग़ के बाद जो राष्ट्रव्यापी आन्दोलन गांधीजी ने शुरू किया, अुसमें यह ख़ासियत थी कि गांधीजी जनरल डायर को सजा नहीं दिलाना चाहते थे। हिन्दुस्तान के पैसे से जो पेन्शन डायर को मिलती थी अुतनी बन्द कराने से और सरकार के डायर का दोषी होना स्वीकार करने से गांधीजी को सन्तोष था। अिसी दृष्टि और वृत्ति को गांधीजी ने देश से भी स्वीकार कराया।

अहिंसा के चार पहलू

निरामिष आहार करके पशुपक्षियों की हिंसा न करना अहिंसा का अेक पहलू था। कठोरता को छोड़ कर सभों के साथ कोमलता से पेश आना अहिंसा का दूसरा पहलू था। अत्याचारी और गुनहगार को सज़ा न दे कर केवल अुसे दोषी ज़ाहिर कर के ही संतोष मानना अहिंसा का तीसरा पहलू था। फिर "गुनहगार ने गुनाह किया, हत्या करने में वह सफल हुआ, या निष्फल हुआ, किन्तु अन्त में वह राजपुरुषों के हाथ में आ गया। अब कानून की दुहाअी दे कर हम अुसका बदला लें यह अुचित है?—या केवल अुसे दोषी ठहरा कर छोड़ दें यही अच्छा है"?—यह अेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न, या पहलू, हमारे सामने आया।

अिससे आगे बढ़ कर 'आत्म-रक्षा के लिअे भी हम किसीकी हत्या करें या न करें, कहीं पर प्रतिहिंसा का प्रयोग करें या न करें'—यह महत्त्व का सवाल है।

आत्मरक्षणार्थ हिंसा

कुछ लोग यह कहते है कि पेट पालने के लिअे जो हिंसा करनी पड़ती है अुसे तो सदोष नहीं समझना चाहिये, कम-से-कम अुसे क्षम्य तो समझना ही चाहिअे। यह दृष्टि बहुत-से लोगों की है। 'अगर भरण-पोषण के लिअे हिंसा जायज़ है, तो आत्म-रक्षा के लिअे वह जायज़ क्यों नहीं है?'—यह सवाल स्वाभाविकतया अुठता है। और आत्म-रक्षा का सवाल अितना गूढ़ है कि आत्म-रक्षण किसे कहें और आक्रमण किसे कहें, अिसका निर्णय बड़े बड़े धर्मज्ञ पण्डित भी नहीं कर सकते। अगर अेक साँप मेरे बगीचे में या घर में घुस जाये, तो मैं अुसे मारूं या नहीं? न तो अुसने किसीको काटा है, न किसी पर आक्रमण किया है। तो भी लोग अुसे मार डालते हैं और कहते हैं कि शायद वह काट ले, शायद वह आक्रमण करे।

यह बात तो अैसी ही हुअी कि हलवाअी की दूकान के सामने जो बच्चे खड़े हैं, वे मिठाअी अुठा कर खा जायेंगे अितनी संभावना के लिअे अुन्हें पकड़ कर कैद में भेजवा दिया जाये! आज

अिंग्लैंड और जर्मनी—दोनों—आत्म-रक्षा के लिअे लड़ रहे हैं। जापान भी शायद चीन से आत्म-रक्षा ही के लिअे लड़ रहा है।

गांधीजी कहते हैं कि आत्म-रक्षा का प्रयत्न भी अहिंसक पद्धति से ही करना चाहिअे। अपवाद के रूप में अुनका अितना ही कहना है कि कायर बन कर भाग जाना और मन से हिंसा करते रहना ज्यादा बुरा है। अिसकी अपेक्षा निर्भय और बहादुर हो कर हिंसा करना भी अच्छा है; क्योंकि अुस रास्ते किसी-न-किसी दिन मनुष्य अहिंसा तक पहुँच जायगा।

जीवन में हिंसा और अहिंसा का स्थान

जब मैं अहिंसा का विचार करने लगता हूं, तो मुझे गीता का वह वचन याद आता है, जहाँ भगवान ने कहा है कि यह दुनिया सत् और असत्, दोनों, तत्त्वों से बनी हुअी है; दोनों भगवान की ही विभूतियाँ हैं। अुसी तरह जीवन में हिंसा और अहिंसा दोनों को स्थान है; किन्तु दोनों में यह भेद है कि हिंसा को जीवन में स्थान होते हुअे भी अुसमें जीवन की कृतार्थता नहीं है। हिंसा को स्थान होते हुअे भी अुसका समर्थन नहीं हो सकता। Violence is the fact of life, Non-violence is the law of life. Violence sometimes makes for life; Non-violence is the fulfilment of life.

(हिंसा जीवन की अेक वास्तविकता है, अहिंसा जीवन का धर्म है। हिंसा कभी कभी जीवन को निबाहती है; अहिंसा में जीवन की परिपूर्णता है।)

अैसी हालत में जिस प्रकार हम यह प्रार्थना करते हैं कि "हे प्रभो ! हमें असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ"; अुसी तरह हमें यह भी प्रार्थना करनी होगी कि "हे भगवन्, हमें हिंसा से अहिंसा की ओर ले जा"। प्रारंभ तो हिंसा में ही है, अुसपर विजय पा कर हमें अहिंसा की ओर बढ़ना है।

अहिंसा का प्रथम अुदय

जब मैं सोचता हूं कि अितिहास-पूर्व काल में, जब कि मनुष्य-प्राणी अग्नि सुलगाना भी नहीं जानता था और जब हाथी से भी बड़ी छिपकली दुनिया में घूमती थी और बड़े बड़े अजगर गाय, बैल जितने बड़े जानवरों को खा जाते थे तब, मनुष्य अपनी रक्षा किस अहिंसा से कर सकता था ? वहाँ जीने के लिअे हिंसा अपरिहार्य ही थी। अहिंसा का खयाल तक लोगों को नहीं था। अुस जमाने में दिन-रात अेक ही बात हर अेक के दिल में अुठती थी कि हम अपनी जान कैसे बचावें ? हमें आहार कैसे मिले ? औरों का खयाल करने के वे दिन थे ही नहीं। किन्तु अैसे वायुमण्डल में भी माता के दिल में अपने बच्चों के प्रति प्रथम अहिंसा का खयाल पैदा हुआ, बाद में स्वार्थ-त्याग का और बलिदान का। अुस जमाने में अगर हम साँप, सिंह, हाथी, आदि जानवरों से बचने के लिअे अहिंसा का ही प्रयोग करते, तो कौन जाने क्या नतीजा आता ?

आज हम मांसाहार के बिना जी सकते हैं। अेक जमाना था जब मनुष्य को यह विश्वास ही न था कि मांसाहार के बिना भी जीया जा सकता है। आज हम मानते हैं कि 'वनस्पति को मार कर खाये बिना हम जी ही नहीं सकते, और अिसलिअे हमें वनस्पति की हिंसा को हिंसा नहीं समझना चाहिअे।'

हिंसा के कुछ समाज-मान्य रूप

अिसी तरह आज हम सामाजिक जीवन सुरक्षित करने के लिअे प्लेग आदि रोगों के जन्तुओं का नाश करने में कोअी दोष नहीं देखते। मच्छरों को और खटमलों को मारते समय किसीको यह ख़याल नहीं होता कि अैसा करने का हमें कोअी अधिकार नहीं है।

गांधीजी ने भी अिस बात को स्वीकार किया है कि राष्ट्र राष्ट्र के बीच अहिंसा का पालन करने का अितना आग्रही प्रचार करते हुअे भी चोरों और लुटेरों के अुपद्रव से बचने का और अुनपर अहिंसा का प्रभाव डालने का अुनके पास कोअी अुपाय या तरकीब नहीं है। आदमी जब मतवाले हो कर किसी शहर में खून-खराबी करने लगते हैं, या मकान जलाने लगते हैं, तब भी अुन-पर गोली न चलाने की सलाह जो गांधीजी देते हैं और कहते हैं कि अैसी हालत में चन्द शूर-वीरों को अपने प्राणों की परवाह न कर, मतवाली जनता के सामने अपना बलिदान देने के लिअे जाना चाहिअे; वे ही गांधीजी चोर और डाकुओं के साथ वैसा व्यवहार करने की सलाह नहीं देते। अुन्मत्त जनता चाहे जितनी पागल क्यों न हो, आखिर वह समाज की प्रतिनिधि है। किन्तु चोर और डाकू समाज की केवल विकृति ही हैं। अिसलिअे चोरों और डाकुओं को समाज-प्रतिनिधि सरकार के द्वारा सजा दिलवाना जायज़ माना जाता है।

स्वाभाविक हिंसा का निग्रह

अब जो लोग लूट-खसोट का ही धन्धा करते हैं, आजीविका का दूसरा कोअी साधन जानते ही नहीं, अुनके द्वारा जो हिंसा होती है वह अुसी कोटि की हिंसा है, जो बिल्ली चूहे को मारते समय करती है। बिल्ली को यह ख़याल तक नहीं होता है कि वह चूहे को दुःख दे रही है। अिसी तरह लूट-खसोट करनेवाले लोग और मनुष्य का अपहरण करके अुसका धन छीन कर अुसको छोड़ देनेवाले पठान भी हिंसा-अहिंसा का ख़याल ही नहीं कर सकते।

जिसकी समझ में हिंसा का दोष आ सकता है, जिसके मन में अहिंसा का अुदय हो सकता है, अुसीके लिअे सत्याग्रह का मार्ग है। हिटलर, मुसोलिनी और स्टेलिन अपनी संहार-लीला भले ही चलाते हों; किन्तु वे भी अहिंसा को समझ सकते हैं। अितना ही नहीं; किन्तु अहिंसा से प्रभावित भी हो सकते हैं। किन्तु शेर या भालू के खिलाफ़ हम चाहे जितना सत्याग्रह क्यों न करें, वे हमारी बात समझ ही नहीं सकते।

घर में जब बिल्ली घुस जाती है तब हम अुसे बाहर जाने के लिअे मुंह से नहीं कहते, किसीके द्वारा सूचना भी नहीं देते, किन्तु अुसे प्रयत्नपूर्वक भगा देते हैं। अुसी तरह जो लोग स्वभावतः अत्याचारी हैं और जिनके पास दूसरा कोअी पेशा ही नहीं है अैसे लोगों को सामाजिक संगठन द्वारा रोकना बहुत ही ज़रूरी है और अैसे रोकने के प्रयत्न में थोड़ी हिंसा भी हो जाय तो भी हमें अुसे अहिंसा ही समझनी चाहिअे।

सरहद में क्या अुपाय करें?

सरहद से जब मनुष्य के अपहरण की, ज़बर-दस्ती धर्मान्तर कराने की और खून आदि की खबरें हम सुनते हैं तब यह सोचने लगते हैं कि अिसका क्या अिलाज करें?

लोगों के जानमाल की रक्षा करने का ठेका जिसने लिया है वह सरकार अिसका अिलाज या तो कर नहीं सकती है, या करना नहीं चाहती है। और अगर चाहती भी हो, तो अुसके लिअे काफी

प्रयत्न नहीं करती है। अैसी हालत में हमें क्या करना चाहिअे ? जवाब स्पष्ट है। यदि हम अपना बलिदान दे सकते हैं तो शुद्ध अहिंसक बन कर प्रसन्नता से बलिदान दे दें। यदि यह हमसे न बने, तो अपनी जान को खतरे में डाल कर जिस तरह हो सके, अत्याचारों का प्रत्यक्ष विरोध करना सीखें। और अगर यह भी न कर सकें या अैसा करने में राजकीय परिस्थिति के कारण कामयाब न हो सकें, तो हिजरत कर के अपनी शक्ति बढानी चाहिअे और साथ साथ सरकार को भी ठीक करने की कोशिश करनी चाहिअे।

जब तक अैसा कोअी अिलाज हाथ में नहीं आया है, तब तक या तो सब तरह के कष्ट सहन कर लेने चाहिअें, सब तरह की यंत्रणाअें बरदाश्त करनी चाहिअें; या फिर आत्महत्या करनी चाहिअे।

सरकार जिम्मेवार है

कहा जाता है कि काठियावाड़ के बहार-वटियाबागी लोग जब किसी राजा से न्याय नही पा सकते थे, तो निर्दय हो कर अुस राजा की बेकसूर रियाया को परेशान करते थे। अब जब सरहद्द की मुसलमान प्रजा से हम बच नहीं पाते हैं, तब अुनके साथ लड़ने की अपेक्षा हमें अपनी सरकार को ही तंग करना चाहिअे। राजा के दोष के लिअे जनता को दण्ड देना अुतना न्याय नहीं है जितना कि जनता के दोष के लिअे राजा को दण्ड देना है। अगर देशी राजा हमें परेशान करते हैं, तो हम अिसका अिलाज ब्रिटिश सरकार को ही ठीक कर के कर सकते हैं। अगर सरहद्द के मुसलमान हिन्दुओं का अपहरण करते हैं, तो अुसका अिलाज अुन मुसलमानों से बैर करने से नहीं होगा; किन्तु अैसी हालत को मंजूर रखनेवाली सरकार को ही दण्ड देने से हो सकता है। तब जाकर सरकार अपने कर्तव्य को पहचानेगी।

का० का०

छोटे राष्ट्रों की युद्ध-नीति

हिटलर ने कितना बडा अत्याचार किया है! अयुद्ध्यमान नॉर्वे पर आक्रमण करके अुस देश पर अुसने कब्जा कर लिया। नॉर्वे के लोगों का कुछ भी कसूर नहीं था। अुनका दोष अेक ही था कि वे पागल होने से अिनकार करते थे। अुनका तटस्थ रहना न अिंग्लैंड को पसन्द था, न जर्मनी को। जबरदस्त लोगों का अेक सिद्धान्त अंग्रेजी में बहुत सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—'Those who are not with us, are against us.' (जो हमारे साथ नहीं हैं वे हमारे खिलाफ़ हैं।) सत्ताभक्त अिसीमें थोड़ा सुधार करके कहते हैं—'Those who are not under us, are against us. (जो हमारे काबू में नहीं है वे हमारे दुश्मन हैं।) नॉर्वे के कठिन काल में भी चर्चिल साहब अुसकी हँसी करने से बाज़ नहीं आये। आप कहते हैं कि "हम जब कहते थे तब तुम हमारे साथ नहीं हुअे। तुमने तटस्थ रहना मंजूर किया। अब भुगतिये अुसका फल"। हिटलर भी अुनसे कहता होगा, "तुम्हारा तटस्थ रहना हमारे लिअे खतरनाक है। तुम तटस्थ रह ही नहीं सकते। अिंग्लैंड आत्म-रक्षा के लिअे तुमपर आक्रमण किये बिना नहीं रह सकता। देखो, ये सुरंग तुम्हारे समुद्र में वे बोने लगे हैं। कहाँ रही तुम्हारी तटस्थता? यह दुनिया या तो अीश्वर की रहे या शैतान की। अिसमें तीसरा कोअी भी रह नहीं सकता। या तो हमारे अधीन हो जाओ, या फिर हमारे विरोध में रहो"।

तमाम दुनिया का शस्त्रवाद अेकमुख से कहता है, 'Woe to the neutrals!'

(तटस्थों का बुरा हाल है !) और दुनिया-भर के तानाशाह अिसीको प्रतिध्वनित करते हुअे कहते हैं, 'Woe to the small nationalities, that dream of an independent existence'. (जो छोटे-छोटे देश आज़ाद रहना चाहते हैं अुनकी कज़ा है !)

हम भी ज़रा अपने देश का अितिहास देखें। प्राचीन अितिहास नहीं, अंग्रेजों के आगमन के बाद का।

अंग्रेजों को अपनी फौज सिंध में से ले जानी थी। सिंध मीरों का स्वतंत्र मुल्क था। अंग्रेजों को अपनी फौज सिंध में से ले जाने का कोअी अधिकार नहीं था। सिंध के मीरों ने अंग्रेजों का कोअी भी नुकसान नहीं किया था। अुन्होंने अंग्रेजों से कहा, 'तुम्हारे झगडे में हमें नहीं पड़ना है। हमें तटस्थ ही रहना है।' किन्तु अंग्रेजों को अपनी फौज ले ही जानी थी। अुन्होंने कहा कि, 'अगर तुम हमारी आक्रमणकारी नीति में मदद नहीं करते, तो तुम हमारे दुश्मन हो।' अंग्रेजों ने सर चार्ल्स नेपीयर को हुक्म दिया कि वह सिंध पर धावा बोल दे और अुस सूबे पर हमेशा के लिअे कब्जा भी कर ले। अगर अंग्रेज़ ज़बरदस्ती अपनी फौज ले जाते और सिंध के मीरों से कहते, 'माफ कीजिये, राजनीति में न्याय-अन्याय हमेशा नहीं देखा जा सकता। हमने ज़बरदस्ती तो की; किन्तु अब हमारा काम हो चुका है। आपका सिंध हड़प करनेका हमें कोअी कारण नहीं है। आप अपने देश में अमन-चैन से राज कर सकते हैं'—तो भी हम अुनकी बात समझ सकते। लेकिन बहाना मिलते ही—बल्कि असल बात तो यह थी कि बहाना नहीं; वरन् मौका मिलते ही—सर चार्ल्स नेपीयर ने सिंध पर कब्ज़ा कर लिया। बेचारा फौज का अफ़सर ठहरा। Theirs not to question why

Theirs not to make reply.

अुसको बहुत बुरा लगा। लेकिन अुसने सिंध पर कब्जा तो किया ही। जब अुसे सरकार को यह लिखना था कि सिंध मेरे हाथ में आगया है, तो अुसने लिपि से लाभ अुठा कर अपने दिल का दर्द भी व्यक्त किया। I have Sind लिखने की जगह अुसने लिखा I have sin'd।

कोअी भी अंग्रेज़ अमलदार या अितिहासकार अिस अत्याचार का समर्थन नहीं कर सका है। चन्द निर्लज्ज लेखक लिखते हैं कि हमारे अत्याचार के फलस्वरूप सिंध के लोगों को अच्छी राजव्यवस्था मिल गयी, यही सिंध लूटने का समर्थन है।

यूरोप का वर्तमान युद्ध अभी खतम तो नहीं हुआ है। अगर फ्रान्स या अिंग्लैंड आक्रमण के रास्ते और सख्ती की राजी-खुशी से बेलजियनों से अुनका देश ले ले, तो अुसमें कोअी आश्चर्य नहीं है।

हमें हिटलर के राक्षसी कृत्य का समर्थन बिलकुल नहीं करना है। हमें तो अितना ही कहना है कि—'युद्धातुराणां न नयो न लज्जा'—जो युद्धातुर होते हैं वे न धर्म को पहचानते हैं, न लोक-लज्जा का नियन्त्रण जानते हैं।

अेबीसिनिया से ले कर नॉर्वे तक का अितिहास जो हम अपनी आँखों के सामने बनता देख रहे हैं, अुससे सिद्ध होता है कि युद्ध का रास्ता अिंग्लैंड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस, अिटाली, अमेरिका और जापान के लिअे है। बाकी के जितने राष्ट्र हैं, अुनके लिअे फौज रखना और न रखना बराबर ही है। युद्ध करके देश के बहादुर-से-बहादुर नवयुवकों का नव दिन का बलिदान दे कर गुलाम बनो, अथवा Thank God we surrender (भगवान् को धन्यवाद, हम शरण

गये!) कह के बिना लड़े गुलाम बन जाओ। अेबीसिनिया, स्पेन, पोलैण्ड आदि देशों के लोग कुछ कम बहादुर नहीं थे। नसीबवादी चीन देश के लोगों ने तो—चन्द वीरों ने ही नहीं, किन्तु सारी-की-सारी जनता ने—जो वीरता बतायी है, अुसे भविष्य का अितिहास आश्चर्य-चकित हो कर अंकित करेगा और अुसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दैववाद में अीश्वर-निष्ठा से कम शक्ति नहीं है। लेकिन केवल बहादुरी से कुछ नहीं होता। धन-जन की बहुतायत, विज्ञान का वैभव और दंभ-मिश्रित अधार्मिक वृत्ति—अितनी तैयारी के बिना दुनिया में स्वतंत्र रहना ही अशक्य-सा हो गया है। और अगर अितनी तैयारी है तो आपस में लड़े बिना चल ही नहीं सकता।

शान्ति के दिनों में ये छोटे राष्ट्र आपस में लड़ नहीं सकते, क्योंकि बड़े राष्ट्र अुनका नियंत्रण करते रहते हैं; और बड़ों का कभी सवाल ही नहीं अुठता। पोलैण्ड बनने के लिअे अलबत्ता लड़ सकते हैं। मगर पोलैण्ड के जैसा अनुभव कोअी भी राष्ट्र दो दफ़ा नहीं ले सकता।

तब छोटे राष्ट्रों की फ़ौज किस काम की? फ़ौज के पीछे जो खर्च किया जाता है, वह किस काम का? "कुत्ते की ताक़त शिकारी की मदद के लिअे", अिसी न्याय से जेक प्रजा और ऑस्ट्रीयन प्रजा नॉर्वे पर आक्रमण करने के ही काम आ सकती है।

क्या अिससे बेहतर यह नहीं है कि अूपर बताअे हुअे राष्ट्र-सप्तक को ही लड़ने का सारा ठेका दे कर बाकी के सब-के-सब राष्ट्र अपनी अपनी फ़ौज तोड़ कर, या विसर्जन कर, अहिंसक नीति का प्रयोग करें और अपना अेक बड़ा अहिंसक संगठन कर के हिंसावाद को ही निर्वीर्य कर डालने की कोशिश करें?

अब देखना यह है कि अिसपर अमल कैसे हो सकता है? अिस हिटलर-युद्ध के अन्त में दुनिया के सामने सबसे महत्त्व का सवाल यही रहेगा।

का० का०

युद्ध और सद्गुण-विकास

सैनिक सद्गुणों के लिअे युद्ध हमसे बहुत ही बेशुमार कीमत लेता है। दुर्गुण और पाप तो अुन सद्गुणों के अस्तित्व की अनिवार्य शर्तें हैं। क्या दुष्टता के ज़रिये सद्गुणों का विकास भी कभी अुचित हो सकता है? जिनका यह विश्वास है कि स्वार्थ और सामाजिक शिष्टाचार से परे भी अेक वास्तविक और निरपेक्ष अच्छाअी (साधुभाव) है, वे तो तुरन्त यही अुत्तर देंगे कि "अैसा करना कदापि अुचित नहीं हो सकता।" किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह, अपनी कल्पना के शुभ परिणाम की आशा से कोअी बुरा काम करे।

—आल्डस हक्सले

आकाश-दर्शन

[काका कालेलकर]

पाठकों का सप्तर्षि, स्वाती, चित्रा और हस्त से बननेवाले हार से अब तक परिचय हो गया होगा। अिस हार को हम 'मन्दारमाला' कहते है। सप्तर्षि के पहले चार तारे और हस्त के पाँच तारे अिस हार के दोनों तरफ के हुक हैं। सप्तर्षि के आखिरी तीन तारे, स्वाती और चित्रा अिस हार के बीच के रत्न (कौस्तुभ) हैं।

अब सप्तर्षि का अन्तिम तारा मरीची और स्वाती के नीचे अेक छोटा-सा नक्षत्र है, जिसका आकार अंग्रेजी 'D' के जैसा दीख पड़ता है। अिस 'D' को ही किरीट, याने मुकुट, कहते हैं। अिस मुकुट के अन्दर जो अेक विशेष तेजस्वी तारा है, अुसे अल्फेका अथवा कोहिनूर कहते हैं। आकाश में अुत्तर की तरफ ध्रुवमत्स्य के दो तारे और दक्षिण की तरफ बिच्छू के सिर (अनुराधा नक्षत्र) के बीच में यह किरीट और अुसपर लगा हुआ कोहिनूर दीख पड़ता है। ध्रुव-मत्स्य और अनुराधा के बीच जो अन्तर है, अुसके ठीक बीच में कोहिनूर है।

कन्या-राशि को भी पहचानना चाहिअे। जब कन्या अुगती है, तब सिर नीचे और पाँव अूपर किये हुअे अंग्रेजी अक्षर 'Y' के जैसी कुछ टेढी अुगती है। अुसके अूपर जो छोटा-सा तारा है, वह अुसका वक्ष है। अुसके आगे हमारी बायीं ओर जो तारा दीख पड़ता है, वह कन्या का हाथ है, जिसमें वह अेक फल लिअे हुअे है। वक्ष के अूपर बढ़ने से नाभि का तारा आता है। वहाँ से अुसके दो पाँव दो जगह फैले हुअे हैं। कन्या की नाभि और कन्या के हाथ का फल, दोनों, आकाश की मध्यरेखा, जिसे विषुववृत्त कहते हैं, अुसपर है। अुस फल का नाम है अपांवत्स। नाभि के आगे जो पाँव अुत्तर की ओर जाता है अुसका नाम है आप। आप और अपांवत्स का जिक्र वेद में आता है। यही कन्या रामायण में शबरी के नाम से आती है और ऋषियों के पीछे पीछे रामदर्शन करके स्वर्ग में चली जाती है। महाभारत में यही कन्या पाण्डव-माता पृथा बनती है। चन्द लोग अिसे द्रौपदी भी कहते हैं। सावित्री भी वही है; क्योंकि वह सूर्य के मार्ग में ही है। दानवों के हाथों से अमृत का कलश छीन लेनेवाली मोहिनी भी वही है।

सप्तर्षि के जो अन्तिम तीन तारे है, अुनमें से अन्तिम वशिष्ठ और मरीची से सम-कोण अगर हम पश्चिम की ओर जायँ तो वहाँ दो तारे करीब करीब अिनसे समान्तर मिलते हैं। अिन्हें सारमेययुगल कहते हैं। ये स्वर्ग के कुत्ते है। मरीची से सारमेय तक का जितना अन्तर है अुससे दुगुना हम आगे बढ़ें, तो हमें अुत्तरा-फाल्गुनी का बड़ा योग-तारा मिलेगा। अिसे अंग्रेजी में 'डेनेबोला' कहते है और कुत्ते को 'केनिस वेनेटिसी' कहते हैं। अिस सारमेय (कुत्ते) और अुत्तराफाल्गुनी के योगतारे (डेनेबोला) के बीच अेक बहुत सुन्दर नक्षत्र-पुंज है। चाँदनी रात में अुसे देखना भी कठिन है। छोटी-सी दूरबीन से जब हम अिसे देखते है, तो अुसका सौंदर्य देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते है। अंधेरी रात को यह नक्षत्र-पुंज मकड़ी के जाले के जैसा दीख पड़ता है। हमारे पूर्वजों ने अुसे 'गणपति' या 'गणपति की शुंडा' कहा है।

अिन दो कुत्तों और मकड़ी के जाले के बारे में अेक वैदिक कथा है। कालकंज

नाम के असुर थे। अुन्होंने स्वर्ग जाने के लिअे अेक यज्ञ-वेदी बनायी। अिन्द्र को विश्वास हुआ कि ये कालकंज अब जरूर स्वर्ग पहुँच जायेंगे। अुसने ब्राह्मण का रूप धारण करके कहा कि मैं भी अेक अींट अिस वेदी में लगाअूंगा। वह अींट थी चित्रा नक्षत्र। जब वेदी पूरी होने लगी, तब ब्राह्मण ने झगड़ा किया और अपनी अींट खींच ली। वेदी टूट गयी और अुसमें से दो कुत्ते निकल कर आकाश में पहुँच गये। यह है हमारा सारमेययुगल। चित्रा के हटाने से अूपर का जो भाग गिर गया, वही छोटे छोटे टुकडे हो कर सारमेय और अुत्तराफाल्गुनी के बीच शोभा देने लगा। यही मकडी का जाला बन गया। अगर अिन्द्र ने धोखा नहीं दिया होता, तो चित्रा के आधार से देव और दानव स्वर्ग पहुँच गये होते।

अिसी मकडी के जाले के बारे में मिसर देश में अेक सुन्दर कथा है। अेक राजा के रानी का नाम वरेण्यकेशा था। रानी के बाल सुवर्णवर्ण के थे। देश देश के लोग रानी के बाल देखने के लिअे आते और राजा से आजिजी करके दर्शन पाते थे। अेक दिन राजा कहीं युद्ध में गया। रानी चिन्ता करने लगी। अुसने मन्दिर के ज्योतिषियों से पूछा। पुरोहित ने कहा, 'अिस युद्ध में राजा को जान का खतरा है। आप देवताओं को संतुष्ट करें।' रानी ने अपने सोने के बाल मन्दिर में चढ़ाने की मनौती की। देवताओं को संतोष हुआ और राजा विजयी हो कर वापस आया। रानी ने अपने वचन के अनुसार अपने बाल अुतार कर मन्दिर में चढ़ा दिये। वहाँ से किसीने अुनकी चोरी की। विजयी राजा ने आ कर देखा कि रानी का सिर गंजा हो गया है। गुस्से में आ कर अुसने पूछा, 'बाल कहाँ है?' लोगों ने कहा, 'पुरोहितजी की सलाह से रानी साहिबा ने अपने बाल मन्दिर को भेंट किये हैं।' राजा ने पुरोहित से कहा, 'दुनियाभर के लोग रानी के बाल देखने आयेंगे। अब मैं अुन्हें क्या दिखाअूं? लाओ, रानी के बाल, नहीं तो तुम्हारा सिर अुड़ा दूंगा।' पुरोहित चतुर था। अुसने कहा, 'महाराज, आज तक आप छोटे राजा थे। अब अपने सबसे बडे शत्रु का नाश करके आप विश्व-सम्राट बन गये हैं। अब सारी-की-सारी दुनिया रानी के बाल देखने आयेगी। आप अिजाजत भी कितने लोगों को देंगे? अिस सारी मुसीबत के ख्याल से ही मैंने रानी के बाल आकाश में रख दिये हैं"। साँझ होते ही पुरोहित राजा को मैदान में ले गया और वह तारों का पुंज अुसे बताया, जिसे हम मकडी का जाल कहते हैं। राजा पुरोहित पर निहायत खुश हो गया और कहने लगा— "पुरोहित हो तो अैसा ही अनागत-विधाता हो।" तभी से यह नक्षत्र-पुंज वरेण्यकेशा के नाम से पहचाना जाता है। अंग्रेजी में अिसे 'कोमा बेरिनिसी'—याने बेरिनिसी रानी के बाल—कहते है। अिसी पर से हमने अुसका नाम रख दिया है 'वरेण्यकेशा'; जिसका अर्थ होता है—जिसके लुभावने बाल हैं अैसी रानी।

धीरज कैसे हो ?

(साम्प्रदायिक समस्या पर मूलगामी विचार)

[किशोरलाल घ. मशरूवाला]

अेक पाठक का पत्र

'सर्वोदय' के अेक पाठक लिखते हैं कि अुनके नजदीक के अेक देहात में कुछ ही दिन पहले मुसलमानों द्वारा हिंदुओं की करीब ७५ लाख कीमत की जायदाद जला दी गयी। जो सक्कर में हुआ, और सरहद्द में बारबार होता रहता है, वही कुछ छोटे पैमाने पर अिस देहात में हुआी। अुक्त पाठक आगे लिखते हैं, "मैं यह जानना चाहता हूं कि वे लोग, जो हिन्दू-मुस्लिम संगठन चाहते हैं, किस प्रकार अुन अशान्त हिन्दुओं को धीरज दें, जिनकी पूरी जिन्दगानी ही बरबाद हो गयी? क्या ये अत्याचार हमारे संगठन के कार्य में बाधक सिद्ध न होंगे? और जिन्होंने अपने मुस्लिम भाअियों के अत्याचार स्वयं देखे हों, अुनको किस प्रकार समझाया जाय? प्रायः कांग्रेसी नेता मुस्लिम स्टेटों की ओर ध्यान देते ही नहीं। क्या सचमुच यह मुस्लिम सरकार के प्रबन्ध की कमजोरी है, या मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न? कृपया प्रकाश डालें"।

कुछ मौलिक बातें

अिस गंभीर सवाल के मूल में बहुत-सी समझने लायक बातें हैं और जब तक हम हर अेक को ठीक ठीक समझ कर अुसका अिलाज न करेंगे, तब तक अिस सवाल का हल होना मुझे संभवनीय नहीं मालूम होता। कुछ बातें हिन्दुओं के समझने की हैं, कुछ मुसलमान, अीसाअी आदि को भी समझना होगा। अिस विषय में मेरे जो विचार बने हैं, अुन्हें प्रकट करता हूं।

अिज्जत की जिन्दगी की कीमत

१. हिन्दुओं को बीज-फसल का संबंध खयाल में रखना जरूरी है। जो बीज को विचार और व्यवस्था के साथ बोने के लिअे तैयार होता है, वही फसल पाता है। अगर हमें अिज्जत के साथ जीना हो, तो हमें अिज्जत की जिन्दगी की कीमत भी देनी होगी। शरीर को किसी भी तरह आंच न लगे, किसी भी तरह बाल-बच्चे बढ़ते रहें और किसी भी तरह दो पैसे घर में बचते रहें—यही अगर हमारे जीवन का मुख्य ध्येय हो, तो शरीर भी जिन्दा रहेगा, बाल-बच्चे भी बढ़ेंगे, और जायदाद भी बढ़ेगी; लेकिन, यह नहीं कहा जा सकता कि अुस जिन्दगी में स्वाभिमान होगा ही। अुस हालत में हमपर हमला करनेवाले से हम अितना ही कहेंगे कि, 'हमें मारो भले ही, परंतु पीठ पर मारो, पेट पर न मारो।' यानी, "हमारा स्वाभिमान भले ही चूर चूर कर डालो; लेकिन हमारा खाने-पीने और आराम का सामान ज्यों-का-त्यों रहने दो।'

लेकिन अगर हमें स्वाभिमान के साथ, दुनिया में सिर अूंचा रख कर जीना हो, तो शरीर, परिवार और संपत्ति का बलिदान करना सीखना होगा। हमें अपने दिल से यह सवाल पूछना चाहिअे कि हममें अैसी कौन-सी कमजोरी पैदा हो गयी है जिसकी कि वजह से हम बहुसंख्य और ज्यादा साधनसंपन्न होते हुअे भी अैसे मौकों पर अक्सर पिटते ही हैं और रोने लगते हैं? अिससे बढ़कर अैसा और कौन-सा खतरा हमें मालूम होता है कि जिसके डर से हम पीटा जाना अथवा अपमान सहन कर

लेना भी मंजूर कर लेते हैं, मगर बहादुरी के साथ सामना करने का साहस नहीं कर सकते ? जिस खतरे के डर से हम अैसा करते हैं, अगर वह सचमुच मार या अपमान की अपेक्षा ज्यादा भयंकर हो, तब तो हमारी खामोशी राजी-खुशी की बात हो जाती है, और मार तथा अपमान के लिअे शिकायत करने की जरूरत ही नहीं रह जाती। परंतु, यदि वह डर सिर्फ हमारे कायरपन का ही परिणाम हो, तो जब तक हम अुसे हटा नहीं सकते और अपने जीवन में साहस को स्थान नहीं देते, तब तक हम यह भलीभाँति ध्यान में रक्खें कि, न हिन्दू राज, न मुस्लिम राज, और न ब्रिटिश राज ही हमारी रक्षा कर सकेगा। और अैसी घटनाअें हो जाने पर आक्रोश या तिरस्कार के प्रस्ताव पास करने से, या मुसलमानों या सरकार पर गालीगलौज अथवा शाप बरसाने से, कुछ फायदा न होगा। स्वयं हमें ही अपनी रक्षा करना सीखना होगा।

बहादुरी का रास्ता

२. साथ-साथ हमें यह भी समझ लेना चाहिअे कि कायरता हटाने अथवा साहस प्राप्त करने का रास्ता यह नहीं है कि सोलापुर में हिन्दू पीटे गये हों, तो पूना के हिन्दू पूना के मुसलमानों पर हमला करें और अुन्हें तबाह करें। यह भी रास्ता नहीं कि कादर महल्ले में अेक हिन्दू मारा गया, यह सुन कर किसन महल्लेवाले हिन्दू अपने महल्ले के मुसलमानों को मारें। यह भी अिसका अिलाज नहीं कि तूफान शांत हो जाने पर दंगैयों को या सब स्थानिक मुसलमानों को तबाह किया जाय। बल्कि बहादुरी तो अिसमें है कि जब दंगा हो, अुस वक्त पडोस में रहनेवाला कोअी हिन्दू अपने घर में छिप जाने या दूसरे महल्ले में भाग जाने की न सोचे। पडोस में मार-पीट होती हुअी देख कर कोअी अपना दरवाजा बन्द न कर ले, बल्कि अुसी दम—अगर अकेला हो तो अकेला ही—बाहर निकले और अपनी जान खतरे में डाल कर पीटे जानेवालों की रक्षा करे और दूसरों को भी पुकारे। अुस वक्त यह चिंता न करे कि शायद बाद में पुलीस अुसी पर दंगाखोरी का अिलजाम लगा देगी और अुसे सतायेगी। अैसा होना मुमकिन है, लेकिन अुस परिणाम से डरने में कायरता है। हिन्दू की अक्सर यह वृत्ति होती है कि संकट के समय वह अपनी ही जान बचाने की फिक्र करता है और पडोसी के लिअे मुसीबत में पडना नापसन्द करता है। अितना ही नहीं, बल्कि कभी कभी तो वह जिस पर सङ्कट आया हो अुस व्यक्ति को बाद में भी मदद पहुँचाने, समभाव प्रकट करने, अुसकी तरफ से गवाही देने, आदि से भी जान बचाता है। वह सिर्फ अितना ही कर सकता है कि जब घर में चार मित्र जमा हों, तो अुनसे हिन्दुओं की दुर्दशा की शिकायत करे, मुसलमानों के प्रति तिरस्कार बतावे, अथवा हिन्दू-मुस्लिम-अेकता की बातें करनेवालों पर गुस्सा और अुसकी संभवनीयता पर अविश्वास जाहिर करे। जब तक हिन्दू-वृत्ति अिस तरह की है, तब तक हिन्दुओं के लिअे अिज्जत का जीवन सम्पन्न करना नामुमकिन है। वे पैसे और बुद्धि के कारण कुछ आदर प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन बहादुरी की बदौलत नहीं।

समुदाय और समाज

अिस गर्मी के मौसम में खाने की जगह पर सैकडों मक्खियाँ जमा होती हैं। कअी लोग कपडे की फटकार से अुनका संहार करते हैं।

मक्खियाँ देखती हैं कि अुनका संहार होता है; लेकिन वे यह कोशिश नहीं करतीं कि सब मिल कर फटकार मारनेवाले के मुंह पर टूट पड़ें। क्योंकि मामूली मक्खियों में समाज-रचना जैसी कोओी बात नहीं है। लेकिन यदि कोओी आदमी किसी मधुमक्खियों के छाते के साथ अैसी हरकत करे तो, अगर अुसने अपनी रक्षा के लिअे कुछ प्रबंध न किया हो तो, खतरे की सूचना पहुँचते-न-पहुँचते ही सैकड़ों मधुमक्खियाँ अुस आदमी पर अैसी टूट पड़ेंगी कि वह बड़ी मुश्किल से अपनी जान ले कर भाग सकेगा। अिस मिसाल से हिन्दू अपने जीवन के लिअे कुछ सबक सीखें। क्या मधुमक्खी के बराबर भी समाजभाव हममें नहीं है? या, सिर्फ साधारण मक्खियों की तरह हम व्यक्तियों का अेक समूहमात्र हैं? अगर किसीपर अत्याचार होने पर हमारे दिल में यह खयाल आये बिना न रहे कि—वह तो हरिजन है वह तो पासी है, वह तो मोची की लड़की थी—अुसमें हमारी जात का कोओी नहीं है, तो हम किस मुंह से कह सकते हैं कि हिन्दुओं का अेक समाज है? और अगर हमारा समाजभाव ही बहुत क्षीण हो गया हो, तो हम कौन बचा सकता है? हमारी बहुसंख्यता या हमारी साधनसंपन्नता भी हमें स्वाभिमानी जीवन की प्रतिष्ठा न दे सकेगी।

हमारी ' चौके-बन्दी '

४. जब हिन्दू-धर्म की मान्यताओं और आचारों पर दूसरे धर्म के लोग कुछ आक्षेप करते हैं, तब हिन्दू विद्वान वेदान्त की अुत्कृष्ट अध्यात्म-विद्या और वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैज्ञानिकता संसार के सामने रख कर आर्य-संस्कृति की श्रेष्ठता का अत्यंत अुज्ज्वल चित्र खींचते हैं। लेकिन, हिन्दू-समाज के अन्दर कुछ गहरे अुतर कर हम जरा सोचें कि अिस प्रकार की ज्ञान की अुत्कृष्टता हमारे जीवन में कहाँ तक अुतरी है। क्या यह भी सच नहीं है कि 'चौका-बन्धन' भी हमारे धर्म का अेक समाजव्यापी लक्षण है? हम अपनी चौकेबन्दी के कारण केवल हिन्दू जातियों में ही परस्पर अूंच-नीच भाव का अपमान-कारक व्यवहार नहीं करते, बल्कि दूसरे धर्मों के लोगों के साथ भी हमारा व्यवहार असभ्यता का होता है। अपनी प्राचीन परंपरा जिन्होंने छोड़ नहीं दी है वे हिन्दू—और अुन्हींकी बहुजन-संख्या है—मुसलमान, ओीसाओी या अपने से हीन मानी हुओी जातियों के साथ, अथवा अुनके हाथों खा नहीं सकते, पानी नहीं ले सकते, अुनके बरतनों का भी अुप-योग नहीं कर सकते। 'सर्वात्मभाव' और 'सर्वत्र समदृष्टि' आदि अुच्च सिद्धान्तों से यह आचार किस तरह सुसंगत है? हिन्दू-हिन्दू और हिन्दू-अहिन्दुओं में अेकप्रजात्व का भाव बढ़ने में यह कितना बड़ा विघ्न है? हम क्यों अिस बात का विचार नहीं करते और क्यों अपनी चौकाबन्दी ढीली नहीं करते? अक्सर यह कहा जाता है कि यह चौकाधर्म होते हुअे भी सैकड़ों वर्षों तक हिन्दुओं की भिन्न भिन्न जातियाँ, और मुसलमान, ओीसाओी आदि हिलमिल कर साथ रहते थे, अिसलिअे अिनके होते हुअे ही हमें अेक-प्रजात्व बढ़ाना चाहिअे। लेकिन, यह दलील अब काम नहीं दे सकती। क्योंकि जब तक कोओी जाति जाग्रत् नहीं होती, तब तक अुसके प्रति सारे अनुचित व्यवहार भी निभ जाते हैं, पर जागृति आने के बाद ये व्यवहार कांटे की तरह चुभने लगते हैं। आज तक किसानों को अपने शोषण का, हरिजनों को अपनी अस्पृश्यता का, स्वयं हमें अपनी पराधीनता का, दुःख कहाँ मालूम होता था? अधिकारियों

के अपमान-कारक बर्ताव को हम अेक रूढ़ि की तरह बरदाश्त कर लेते थे। लेकिन, जब जागृति आ गयी, तो किसी बड़े अफ़सर का किसी देहाती से 'क्यों बे' कहना तक समाज को बरदाश्त नहीं होगा। हिन्दुस्तान की सब कौमों में अेकप्रजात्व की भावनायें रहें, अिसके लिअे हिन्दुओं को अपने चौकाधर्म को छोड़ना ही होगा। अिस बात को हम जितनी जल्दी समझ लें और जनता को समझा दें अुतना ही हमारा मार्ग सरल होगा।

अुपासना-भेद या अुपासना-संकर ?

५. जो बात 'चौकाधर्म' की है, वही 'देवधर्म' पर भी लागू होती है। अिस युक्ति से कि हिन्दूधर्म में अुपासना की विविधता का स्वीकार है, अथवा अुपासना-स्वातंत्र्य है, हमारे विद्वान् प्रचलित देवधर्म का समर्थन बड़े गर्व के साथ करते हैं; और अुमीमें से सर्वधर्म-समभाव तथा परमत-सहिष्णुता के सिद्धान्त निकालते हैं। लेकिन, जरा सोचिये। क्या अुपासना की विविधता और अुपासना की संकरता अेक ही बात है ? स्मार्त की शिव, वैष्णव की विष्णु और जैन की तीर्थंकर में श्रद्धा हो, और हरेक अपने अपने अुपास्य की भक्ति करता हुआ दूसरों की श्रद्धा का आदर करे और समदृष्टि से देखे—यह अेक बात है। लेकिन अेक ही मनुष्य गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, महामारी, शीतला, हनूमान आदि अनेक तरह के देवताओं की अेक साथ या भिन्न भिन्न मौकों पर अुपासना करता रहे—पाठशाला में गणेश और सरस्वती, व्यायाम-शाला में हनूमान, दूकान में लक्ष्मी, मंदिर में विष्णु, बीमारी में काली और मृत्यु के समय शिव की पूजा करे—तो अुसमें अुपासना की विविधता नहीं, बल्कि व्यभिचार अथवा संकर है। और जब विद्वान लोग सामान्य जनता की बुद्धि, दृष्टि और विश्वासों को सुलझाने के बजाय, अुसे अिन्हीं आचारों के चक्कर में फँसा देते हैं, और हरसाल अेकाध नया देव भी पैदा कर देते हैं; तब अिसके समर्थन में वे चाहे जो तार्किक दलीलें पेश करें और रोचक कथायें सुनावें, तो भी मेरे मन में कोअी शंका नहीं कि वे वेदान्त के आधार पर अेक तरह की श्रद्धालु नास्तिकता का ही प्रचार करते हैं। अीश्वर-विषयक नास्तिकता की अपेक्षा अिस नास्तिकता को मैं ज्यादा खतरनाक समझता हूं।

मुझे अिसमें आश्चर्य नहीं होता कि अीसाअी या मुसलमान हमारी अिस मनोरचना को समझ ही नहीं सकते, और अिसलिअे हमारे धर्म के प्रति समभाव अनुभव नहीं कर सकते। अिस्लाम के साथ अेक हजार वर्षों का सम्पर्क होने पर भी अेकेश्वर और अेकविध अुपासना के सूत्र में बँधे हुअे समाज का संगठन कितना तेजस्वी होता है; अपने अीमान और स्वधर्मियों के लिअे कष्ट सहन करने की अुसमें कितनी भारी शक्ति आ जाती है, अपने हमदीनों के प्रति समता की भावना सहज-स्वभाव-सी कैसे बन जाती है यह हमने नहीं सीखा। राजा राम-मोहनराय, रानडे, आगरकर आदि ने अिस दिशा में किये हुअे प्रयत्नों का 'राष्ट्रीय' या हिन्दू धर्माभिमानी नेताओं ने जो विरोध, अुपहास अथवा अुपेक्षा की, अुसके मूल में विचार की न्यूनता, फल-प्राप्ति की अधीरता, और अपने दोषों पर चिढ़ने के बजाय विरोधियों के प्रति द्वेष ही रहा। आर्थिक, राजकीय आदि हितों की समानता अेकप्रजात्व के कुछ अंग जरूर हैं। लेकिन, जिस तरह अिन कार्यक्रमों पर अमल करना जरूरी है, अुसी तरह धार्मिक

मान्यताओं का संशोधन भी महत्त्व का है। जिस तरह ट्रेन के अेक ही पहिये पर ब्रेक लगाने से सारी ट्रेन की गति रुक जाती है, अुसी तरह जिस अंग की अुपेक्षा करने से राष्ट्र की गति रुकने ही वाली है। यह दोष हमारी दृष्टि को कब स्पष्ट दिखायी देगा, यह दूसरी बात है। लेकिन, जब तक वह दूर नहीं किया जायगा, तब तक कहीं-न-कहीं हमारी राष्ट्रीय प्रगति में रुकावट पैदा होती ही रहेगी।

हमारे प्रतिपादन और आचार में विरोध

६. अेक तरफ़ से तो हिन्दूधर्म का यह दावा है कि हिन्दू की दृष्टि में 'धर्म केवल ओीश्वर-विषयक कुछ मान्यताओं और पूजा-विधियों का संग्रह नहीं है, बल्कि जीवन के सारे व्यवहारों के नियमों का समुच्चय है'। परन्तु दूसरी तरफ़ से हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि हिन्दुओं ने अपने तत्त्वज्ञान से निकलनेवाले स्पष्ट सिद्धान्तों को समाज-जीवन में अमल में लाने की बहुत कम कोशिश की है। समाज में प्रचलित धार्मिक आचार-विचारों और तत्त्व-ज्ञान के निष्कर्षों के बीच विरोध देख कर हिन्दू तत्त्वज्ञानियों ने संन्यासआश्रम का सहारा ले लिया, और खुद को समाज से अलग कर लिया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दू-तत्त्वज्ञान के विचारों का साहित्यिक प्रचार तो खूब हुआ, लेकिन प्रत्यक्ष समाज-जीवन पर अुनका असर नहीं के बराबर हुआ, अथवा जो हुआ वह विपरीत भी हुआ। अुदाहरणार्थ, खुद के सुख के लिअे जीवन सत्य, खुद को तकलीफ़ होने पर जगत् स्वार्थी, लेकिन समाज के सुख-दुःख के सवालों में जगत् मिथ्या का शुष्क-ज्ञान फैला। समाज में प्रचलित अुपासना-विधि, कर्मकाण्ड, जाति-पाँति, अुच्चनीच-भाव, चौकाधर्म आदि में संशोधन करने के लिये तत्त्वज्ञान के सिद्धान्तों का अुपयोग नहीं के बराबर हुआ। अगर किसीने किया भी तो जातिधर्म और चौकाधर्म के जोर पर वह समाज से हटा दिया गया।

अन्य धर्मों से हम क्या सीखें?

खैर जो हुआ सो हुआ। कम-से-कम अब तो हमें जागना होगा। सगुण अुपासना के बारे में हम अिस्लाम से बहुत कुछ ग्रहण कर सकते हैं। अुसमें कुछ संशोधन ज़रूरी हो सकता है। लेकिन हमें यह अश्रद्धा छोड़ देनी चाहिअे कि ओीश्वर की जो भावना करोड़ों अनपढ़ मुसलमान कर सकते हैं, वह करोड़ों हिन्दुओं की समझ से परे है, और अुनके लिअे कवियों ने कल्पना से सजाये हुअे विशेष आकार के देव और अुनकी विलक्षण कथाओं की अनिवार्य ज़रूरत है। फिर, हमें मानवों की समानता का भाव भी अिस्लाम से लेना होगा। अिसमें दोनों बातें आ जाती हैं—किसी मानव को नीच न समझना तथा किसी मानव-सन्तान को ओीश्वर की बराबरी पर न रखना। कोओी महात्मा कितना ही श्रेष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ और 'खुदा के नूर से जुदा नहीं,' क्यों न हो, अुसके स्थूल रूप में हमें अुसे सिर्फ़ अेक अूंचे दर्जे का मनुष्य, खुदा का अेक भक्त अथवा ओलिया ही समझना चाहिअे और अुसकी महिमा गाने तथा अिज्ज़त करने में संयम और विवेक करना ही चाहिअे। याद रहे कि यह 'चौका-धर्म' 'देव-धर्म' और 'ओीश्वर=पूज्यजन' की ये मान्यताअें नष्ट होने ही वाली हैं। ओीश्वर और धर्म के विषय में यथार्थ और सही ज्ञान दे कर अगर हम अुन्हें नहीं छुड़ायेंगे, तो धर्म पर नास्तिकता और अश्रद्धा का आक्रमण होने पर वे अपने आप छूटने ही वाली हैं।

अिसी तरह खिस्ती धर्म से हमें जीवों की सेवा द्वारा अीश्वर-पूजा का अुपदेश लेना होगा। 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'—यह है तो गीता का अुपदेश। लेकिन 'स्व' और 'कर्म' दोनों शब्दों को जितने व्यापक अर्थ में अीसाअियों ने अपनाया है, अुतना हमने नहीं अपनाया। दरिद्र, दलित, पीडित, रोगग्रस्त, आदि की सेवा को 'स्वकर्म' बनाने और अुसके द्वारा अीश्वर की पूजा कर अुसके स्वरूप को पाने का संस्कार हिन्दू-समाज में नहीं के बराबर है। हमारी 'स्वकर्म' की व्याख्या अक्सर अपने वर्णाश्रम के कर्मों तक ही सीमित रही है।

यह बात ठीक है कि हिन्दू-धर्म के ग्रन्थों में भी अुक्त बातों के अनुकूल विधान मिल जायेंगे। अगर अैसा न होता तो यह कहना ही असंभव होता कि किसी आदमी को अपने अुच्चतम अुत्कर्ष के लिअे धर्मान्तर करने की ज़रूरत नहीं है, और सर्वधर्मसमभाव हो सकता है। लेकिन, अनुकूल वचन होते हुअे भी हर अेक मज़हब में किसी अेक अुदात्त तत्त्व का ज्यादा विकास दीख पड़ता है, अिसलिअे अुसे अपनाने में और अुस मज़हब के प्रति अृण-बुद्धि रखने में शर्म या मिथ्याभिमान न होना चाहिअे।

अन्य-धर्मीय हमसे क्या सीखें ?

७. अगर अिस तरह हम खुद के समझने योग्य बातें समझ लें, और अपने स्वभाव, बर्ताव और मान्यताओं में सुधार करें, तो अन्यधर्मीयों से भी कहा जा सकता है कि अुन्हें अपने स्वभाव, बर्ताव और यकीनों में क्या फ़र्क करना होगा। कराची के प्रस्ताव की भिन्न भिन्न संप्रदायों को अभयदान देने के बारे में कुछ भी प्रतिज्ञा हो, मैं स्वयं यह मानता हूं कि हिन्दुस्तान में जितने भी मज़हब अथवा छोटे छोटे पंथ हैं, अुन्हें अपनी मान्यताओं और रिवाजों में जितना हेर-फेर करना ही होगा, जिससे सब हिन्दुस्तानी अेक समाज और अेक कौम बन सकें। और अहिंसा का पालन करते हुअे वैसा फेरफार करने के लिअे परस्पर को समझाने का हर अेक मज़हब को अेक-दूसरे के संबंध में अधिकार होना चाहिअे। वैसे फ़र्क करने के लिअे अुस मज़हब के प्राचीन ग्रंथों का सहारा मिल जाय तो ठीक ही है। न मिले तो पुरानी किताबों और हिदायतों के बावजूद भी वे करने होंगे। अुदाहरणार्थ, "धर्म की असल बुनियाद किसी रसूल के वचन नहीं, बल्कि आत्मतत्त्व की स्वयं अपने दिल में पैदा हुअी प्रतीति है, और किसी भी रसूल या किताब की प्रामाणिकता के मूल में अुसकी अनुभव कराने की शक्ति रही है"—यह हिन्दू आत्मज्ञान मुसलमान और अीसाअियों को समझना ही होगा। तभी वे जड़ श्रद्धा (Bigotry) से परे हो कर स्वतंत्र बुद्धि से धर्म को समझ सकेंगे। अिसी तरह वर्ण-व्यवस्था के मूल में रहे हुअे वैज्ञानिक अंश को भी अुन्हें समझना ज़रूरी है।

संयुक्त राष्ट्रीयता का निर्माण

तभी वे धार्मिक मान्यताओं के संशोधन में हिन्दुओं को सहयोग दे सकेंगे और सब मिल कर हिन्दुस्तान के लिअे अुसके सर्व-कल्याणकारी स्वरूप का अविष्कार कर सकेंगे। अिसके सिवा मैं मानता हूं कि हमें विवाह, विरासत आदि के बारे में भी सब हिन्दुस्तानियों के लिअे अेक ही प्रकार का कानून बनाना ज़रूरी है। भाषा और साहित्य के निर्माण में भी अपनी ही प्राचीन परंपरा को कायम रखने का मोह छोड़ कर ज्यादा समझदारी से काम लेना ज़रूरी है।

अिसमें आन्तरराष्ट्रीय परिभाषा और अंग्रेजी के कुछ शब्दों को मंजूर रखना ही होगा। भाषा को जटिल, विद्वानों के ही लिअे, अथवा विद्वानों की मदद से ही पढ़ने योग्य, बनाने की अपेक्षा आसान बनाने की तरफ ज्यादा ध्यान देना होगा। लेकिन ये सब बातें तभी हो सकती हैं, जब हिन्दू पहले अपना ही घर सुधार लें। अपनी प्राचीनता का और आर्यता का मिथ्याभिमान छोड़ दें। तभी वे दूसरी कौमों के जीवन के बारे में अधिकार-पूर्वक कुछ कह सकेंगे।

आवश्यकता धीरज की नहीं, चेतना की है

पत्र-लेखक पूछते हैं कि मुसीबत में पड़े हुअे हिन्दुओं को धीरज किस तरह दिया जाय? मैं कहूंगा अिसमें धीरज देने की जरूरत ही नहीं है। धीरज रखने की आदत तो हिन्दुओं में अितनी जमी हुअी है कि किसीको आश्वासन देना ही अनावश्यक है। जो आपत्ति अुठाते हैं, वे भी चार दिन के बाद शांत हो जाते हैं, और थोड़ा-सा रोष प्रदर्शित करनेवाले लोग भी बिना धीरज खोये ही अैसे सवाल पूछते हैं! जहां पर अत्याचार हुआ हो, वहां जा कर अिनमें से कितने लोग कुछ सहायता पहुँचाने का भी कष्ट अुठाते हैं? तात्पर्य, हिन्दुओं का धीरज अटूट है। अुन्हें तो जाग्रत् हो कर अिन सब अुपायों को अमल में लाने का प्रयत्न करने की जरूरत है। 'कैसे धीरज दें' की जगह मैं पूछता हूं कि, अगर सचमुच दिल में दुःख होता है तो, 'क्यों धीरज है?'

अुग्र से अुग्र युद्धवादी भी बहुधा यही घोषित करते आये हैं कि अुनका ध्येय शान्ति ही है। धर्मशास्त्री और दार्शनिकों ने भी अिसी युक्ति से युद्ध का समर्थन किया है। युद्ध करने की अनुमति अिसलिअे दी गयी है कि वह शान्ति और न्याय प्राप्त करने का अेक साधन माना गया है। परन्तु क्या वास्तव में शान्ति और न्याय युद्ध के द्वारा कभी प्राप्त हुअे हैं? क्या परमात्मा की नीयति में अुनका युद्ध के जरिये हासिल होना सम्भव है? अेक अंश में हम सभी वैज्ञानिक, शास्त्री, या कलाविद् हैं। अिसलिअे हम सबको यह मानना ही पड़ेगा कि जिस प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता है अुसीके अनुरूप साध्य प्राप्त होता है।

—अलडूस हक्सले

श्री अरविंद-ग्रंथमाला

श्री अरविंद और उनका योग

अिसमें संक्षेप में श्री अरविंद-चरित और श्री अरविंद के योग-संबंधी कतिपय लेख हैं। अिसके पढ़ने से पाठकों को श्री अरविंद और अनके योग के संबंध में काफी आनकारी होती है। अिसमें श्री अरविंद का चित्र भी दिया गया है। मूल्य ॥)

माता

अिस पुस्तक में श्री अरविन्द ने महाशक्ति और पुरुषोत्तम का संबंध, अिस योगसाधन के प्रधान अंग—अभीप्सा, त्याग और समर्पण, धन का योग में स्थान और महाशक्ति के चार प्रधान स्वरूप यथा महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—अिन सब विषयों का विस्तृत, ब्योरेवार और जीता-जागता चित्र खींचा है। मूल्य ॥)

योगप्रदीप

अिस पुस्तक में चार अध्याय हैं, हमारा लक्ष्य, आधार के लोक और अंग, समर्पण और कर्म, जो योग-साधन-संबंधी अनेक प्रश्नों पर प्रकाश डालने के लिअे वास्तव में प्रदीप का काम करते हैं। मूल्य ॥)

अिस जगत की पहेली

यह अेक अद्भुत और अत्यंत अुद्बोधक पुस्तक है। अिसमें मन के अूपर जो विभिन्न लोकों का ताँता लगा हुआ है, अिनके विषय में मन की भूमिका पर जो कुछ शब्दों द्वारा कहा जा सकता है, अुसका तथा अिस जगत की रचना, सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वंद्व क्यों पैदा हुअे, अिस पहेली का हल, अेक महान् तत्त्वदर्शी के अनुभूत दृष्टिकोण से पढ़ने को मिलता है। पुस्तक अपने विषय की अपूर्व है। मूल्य ॥=)

योग के आधार

अिस पुस्तक में योग-साधना से संबंध रखनेवाले बहुत-से विषयों पर श्री अरविंद के अुपदेश हैं। अिसमें योग-साधना की नींव स्थिरता, शांति और समता, श्रद्धा, अभीप्सा और आत्म-समर्पण, कठिनाअी के समय क्या करना चाहिअे, अिच्छा, आहार और काम-वासना से किस प्रकार बरतना चाहिअे और भौतिक चेतना, अवचेतना, निद्रा, स्वप्न और रोग अित्यादि विषयों पर काफी प्रकाश डाला गया है। साधकों और जिज्ञासुओं के लिअे यह पुस्तक बड़ी अुपयोगी है। मूल्य २)

श्री अरविन्द के अन्यान्य ग्रन्थ भी अिस ग्रन्थमाला द्वारा शीघ्र प्रकाशित किये जायेंगे।

प्राप्ति-स्थानः—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

त्यागरायनगर, मद्रास

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिअे रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg. No. N. 741

हिंसा के अनन्त पाठ

हिंसक पूजा—यज्ञ में खून से देवताओं को खुश करने की विधि—मनुष्य की प्राचीन बर्बर अवस्था से आज तक चली आ रही है। बड़े बड़े अुपदेशकों ने बार बार कहा कि अुपासना तो केवल प्रेम के ही द्वारा हो सकती है; लेकिन संसार ने अुनके वचन केवल आध्यात्मिक बल के ही लिअे सही माने, व्यावहारिक बल के लिअे नहीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में, जहाँ कि परिणामों की अुपेक्षा की जा सकती है, अिस सिखावन का कुछ अर्थ हो सकता है, लेकिन जहाँ परिणामों से ही मतलब है वहाँ तो—लौकिक बुद्धि की यह धारणा है—कि देवताओं को खून के चढ़ावे से ही रिझाना चाहिअे। अिसके पीछे कड़ुवी, तीखी, दवा में मरीज़ की श्रद्धा है। अुन दुःखदायी बूंदों को चख कर अुसे विश्वास हो गया है कि हो-न-हो, यह दवा ही है। अिसलिअे संसारभर के राजनैतिक दवाखानों में विषैली कड़ुवी दवाओं का ढेर लगाया जा रहा है—पौरुष की पौष्टिक दवाअें, जिनके रंगों में ही लाल सुर्ख ताकत का अिश्तहार है। जिन्होंने खुद मारे हुअे मरीजों की संख्या अेक-से-अेक बढ़कर है, अैसे चिकित्सकों की बड़ी अिज्ज़त हो रही है। अनगिनती लोगों की मृत्यु शायद किसी वैद्य की किसी खास चिकित्सा-प्रणाली के प्रति श्रद्धा नष्ट कर दे! जहाँ-तहाँ मृत्यु की संस्थाअें खोली गयी हैं; शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करने के लिअे लाखों विद्यार्थी मारे जा रहे हैं। शायद मनुष्य अिसमें कोअी स्थायी शिक्षा ले ले, लेकिन 'कब और कहाँ'? यह मैं आज ही नहीं बता सकता। आज तो हम अितना ही देखते हैं कि अेक के बाद अेक अनन्त पाठ पढ़ाये जा रहे हैं। वे हर अेक कक्षा के कमरे में बार बार ज़ोर से दुहराये जाते हैं; मगर खतम होते नहीं दीखते।

'मॉडर्न रिव्यू'
दिसंबर, १९३९

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण प्रि० वर्क्स लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

श्रेय वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष २ रा
अंक १२ वाँ

जुलाई
१९४०

अेक अंक...	... रु०	०–६–०
वार्षिक ...	... रु०	३–०–०
बर्मा में ...	... रु०	३–८–०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.
(सब डाक-व्यय सहित)		

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है :—

(१) शिष्ट साहित्य-भण्डार, आनंद-भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अैण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन-कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन-कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी-भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता
(६) सस्ता साहित्य-मण्डल, कॅनाट सर्कस, न्यू देहली
(७) सस्ता साहित्य-मण्डल, लखनअू
(८) गांधी-आश्रम, गोरखपुर
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअुस, नाणावट, सुरत
(१०) सस्ता साहित्य-मंडल, अिन्दौर
(११) सी. सी. पटेल अैण्ड कं., नडियाद

एक अंक... ... रु० ०–६–०
वार्षिक ... ... रु० ३–०–०
बर्मा में ... ... रु० ३–८–०
विदेश में... ... ६ शिलिंग
१.५० डॉलर.
(सब डाक-व्यय सहित)

अनुक्रमणिका

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्नलिखित स्थानों में की गयी है :—

(१) शिष्ट साहित्य-भण्डार, आनंद-भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २
(२) वोरा ऐण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २
(३) नवजीवन-कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २
(४) नवजीवन-कार्यालय, अहमदाबाद ।
(५) खादी-भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता
(६) सस्ता साहित्य-मण्डल, कॅनाट सर्कस, न्यू देहली
(७) सस्ता साहित्य-मण्डल, लखनऊ
(८) गांधी-आश्रम, गोरखपुर
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाउस, भागाघट, सूरत
(१०) सस्ता साहित्य-मंडल, इन्दौर
(११) सी. सी. पटेल ऐण्ड कं., नडियाद

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जुलाअी, १९४०
वर्धा

मुर्दार सूत और जिंदा सूत

[विनोबा के अेक पत्र से]

तुम प्रतिज्ञा के तौर पर प्रतिदिन १०-१५ तार कातने लगे हो, अिसमें मेरी कोअी विजय नहीं है। गेंती मूरत के घोड़े पर सवार होने से विजय क्या मिलनेवाली है? अिससे तो वह घोड़े पर सवार ही नहीं होगा, तो बेचारा कम-से-कम कुशल तो रहेगा। जब कि हमारी बुद्धि ने अुसका स्वीकार न किया हो, तो बतौर बेगार के १०-१५ तार कात लेना अपने-आपको धोखा देने का अेक तरीका है। स्वराज्य का सूत कातने से संबंध तो है, मगर अैसे मुर्दार सूत से नहीं। अुसके लिअे तो जिन्दा सूत चाहिअे।

सांप्रत हमारे देश को मतभेदों ने ग्रास लिया है। जर्मनी में सत्तर लाख फौज तैयार हो जाती है; और हमारे यहां "पिंडे पिंडे मतिर्भिन्ना; कुंडे कुंडे नवं पयः" के न्याय के अनुसार छोटी छोटी खोपड़ियों का भी गांधीजी-जैसों से मत-भेद हुआ करता है।

मेरी तो यह सलाह है कि प्रतिज्ञा का—अर्थात् प्रतिज्ञा की आत्मा का—पालन करना हो, तो तुम्हारे-जैसे देश के हित के लिअे तड़पने-वाले तरुण को खादी का विद्यापीठ बन जाना चाहिअे। प्रत्येक ग्रह के अिर्दगिर्द जिस प्रकार अुस ग्रह का अपना वातावरण होता है, अुसी प्रकार तुम्हारे चारों ओर खादी का स्वतंत्र वातावरण होना चाहिअे।

२४:'१.४०

('ग्राम-सेवा-वृत्त' से अनूदित)

भारत की कपडे की आवश्यकता

[विनोबा]

सारे हिन्दुस्तान की कपडे की जरूरत खादी द्वारा पूरी हो सकेगी या नहीं, अिसका हम कभी कभी हिसाब किया करते हैं। जब हम हिसाब करने बैठते हैं, तब सवाल यह होता है कि फी आदमी कितने गज़ कपडे की ज़रूरत मानी जाय।

दस-बारह साल पेश्तर हिन्दुस्तान में फी आदमी १४ गज़ कपडा बिकता था। अब १६-१७ गज़ बिकता है। १४ गज़ कपडा बिलकुल ही ना-काफी है। अुसके मुकाबले में १६-१७ गज़ कुछ तो ठीक है। लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दुस्तान की वास्तविक आवश्यकता प्रति मनुष्य २० गज़ कपडे की मानी जानी चाहिअे। पंडित जवाहरलालजी का तो अंतिम आँकडा ३० गज़ का है। वे कहते हैं कि अिसके बिना हिन्दुस्तान को पूरा वस्त्र-सुख नहीं मिलेगा।

अिस प्रश्न का अेक दूसरी ही दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है।

क्या बारह बरस में अधिक कपडा बिकने का यह मतलब है कि हिन्दुस्तान को अधिक वस्त्र-सुख मिलने लगा है? मिलों की आज की प्रवृत्ति देखने पर अिस प्रश्न के जवाब में निश्चितरूप से 'हाँ' नहीं कह सकते। कपडे की खपत बढ़ाने की गर्ज से मिलें दिनों-दिन ज्यादा छितरा (विरल बुनावट का) कपडा बनाने लगी हैं। यह कपडा कुछ सस्ता और वजन में हलका होता है, अिसलिअे लोग अुसे बडे शौक से खरीदते हैं। वह कम टिकता है, अिसलिअे अुतना कप ा अधिक खपता है; और हिन्दुस्तान की कपडे की माँग पूरी करने का श्रेय मिलों को नाहक मिलता है। यह छितरा कपडा छः महीनों से ज्यादा तो चलता ही नहीं और कभी कभी तो चार महीनों में ही फट जाता है। अेक व्यक्ति सालभर में ४ महीने चलनेवाले ३ धोती जोडे पहनता है, दूसरा ६ महीने चलनेवाले २ धोती जोडे बरतता है, और तीसरा १२ महीने टिकनेवाले १ ही धोती जोडे से काम चलता है। अब मान लीजिये कि हर अेक जोडा १० गज़ का है, तो अिन तीनों ने सालभर में क्रमशः ३० गज़, २० गज़ और १० गज़ कपडा फाडा। परन्तु तीनों ने सालभर में अेक से अधिक धोती नहीं पहनी। मतलब, जिसे हम वस्त्र-सुख कहते हैं, वह तीनों को समान ही मिला। हाँ, अगर पुरानी धोतियाँ जल्दी जल्दी फाड़ कर नयी नयी पहनना भी वस्त्र-सुख का ही अेक प्रकार माना जाय तब तो बात दूसरी है।

लेकिन वस्त्र-सुख का यह विध्वंसक रूप हिन्दुस्तान को लाभकारी नहीं हो सकता। कपडा टिकाअू बनाने के लिअे शास्त्र के अनुसार जितने सूत की कंघी चाहिअे, अुतने सूत से कम सूत में छितरा कपडा बुन कर कपडे की खपत में वृद्धि का आभास पैदा करने में राष्ट्र की सब तरह से हानि है। हमारी आवश्यकता अधिक कपडा बरतने की है, न कि अधिक कपडा फाडने की। अधिक कपडा फाडना हमारे लिअे व्यवहार्य भी नहीं होगा। हिन्दुस्तान में प्रति व्यक्ति मुश्किल से अेक अेकड़ ज़मीन है। अुसे व्यर्थ कपास की खेती के काम में लाने से कोअी फ़ायदा नहीं है।

अिसलिअे, 'कितने गज़ कपडे की ज़रूरत है?'—अैसा अिकहरा प्रश्न निरुपयोगी है। 'कितना टिकनेवाला कितने गज़ कपडा चाहिअे?'—अिस दुहरे प्रश्न पर हमें विचार करना चाहिअे।

जिन्होंने ३० गज़ की आवश्यकता मानी है, अुनसे यदि यह दुहरा सवाल पूछा जाय, तो वे बहुधा यह अुत्तर देंगे कि '६ महीने टिकनेवाले ३० गज़ कपड़े की ज़रूरत होगी।' साफ़ है कि ९ महीने टिकनेवाला २० गज़ कपड़ा वे ज्यादा पसंद करेंगे और १२ महीने टिकनेवाला १५ गज़ कपड़ा अगर अुन्हें मिल जाय, तो वे स्वाभाविक नाचने लगेंगे। टिकाअू कपड़े से मतलब मोटा कपड़ा नहीं है। मोटा-महीन, जो जैसा चाहे, अुसे वैसा मिलना चाहिये। वह भी पूर्ण, यानी १२ महीने टिकने लायक, बनाया जाना चाहिये।

खादी कार्यकर्ताओं को अिस बात पर ध्यान देना चाहिये। अुसके लिअे क्या करना चाहिये, यह दर्शाना अिस लेख का अुद्देश्य नहीं है। वह तो प्रत्यक्ष प्रयोग का विषय है। अुसके विषय में अलग लेख लिखना पड़ेगा। यहाँ तो कपड़े की आवश्यकता का शास्त्रीय अर्थ देखना था।

जून, १९४० (ग्रामसेवा-वृत्त से अनूदित)

आलस का अिलजाम

[*किशोरलाल घ० मशरूवाला*]

हिन्दुस्तान के देहातियों और मजदूरों पर आलसीपन या अलाली का अिलजाम लगाने का अिधर हमलोगों में अेक रिवाज-सा चल पड़ा है। क्या बूढ़ा और क्या नौजवान, चाहे वह खुद अेक ग्राम-सेवक हो या शहरिया व्यापारी हो, जो कोअी देहाती जीवन के बारे में अपनी राय देने का दम भर सकता है, यह कहने में नहीं हिचकता कि सुस्ती या आलस्य हिन्दुस्तानी देहाती का अेक प्रमुख दुर्गुण है। अिस बात पर सरकारी नौकर और राष्ट्रसेवक, या जमींदार-पूंजीपतियों के प्रतिनि[धि] और किसानों के प्रतिनिधि, के बीच कोअी मतभेद नजर नहीं आता।

जब हम आलसीपन या अलाली का अेक दुर्गुण के रूप में जिक्र करते हैं, तब हम अुसे केवल अेक मानसिक रोग समझते हैं, न कि शारीरिक। हम समझते हैं कि आवश्यक शिक्षा और अिच्छा-शक्ति के प्रयास से मनुष्य अुसे छोड़ सकता है। व्यक्ति के शरीर और जीवन की परिस्थिति का हम अुससे कोअी संबंध ही नहीं देखते। मैं समझता हूँ कि यहीं पर हम हिन्दुस्तानी देहाती के साथ अनजाने अन्याय करते हैं। शायद यह कहना अत्युक्तिपूर्ण होगा कि आलस बिलकुल अेक शारीरिक रोग ही है, जिसका आहार, अुपचार और व्यायाम से निवारण हो सकता है। परन्तु मेरी यह धारणा तो अवश्य है कि ये बातें भी बिलकुल नगण्य नहीं हैं; और किसी ग़रीब को सुस्ती या काहिली का अपराधी घोषित करने के पहले अिन बातों को भी खोज कर अुनका अिलाज करना ज़रूरी है। अेक हद तक—शायद बहुत बड़ी हद तक—देहातियों का आलस्य अुतना ही अनिवार्य होता है जितनी कि अुनकी बेकारी। अुनके अूपरी दोषों की तरफ़ देखने की हमारी दृष्टि पूर्णतया सही नहीं है।

अेक बच्चे की मिसाल ले लीजिये। बच्चों से हम सबको यही अुम्मीद होती है कि वे चपल और आनन्दी रहेंगे और अुन्हें अिधर-अुधर दौड़ने तथा अुछलने-कूदने का शौक होगा। अब अगर हम कोअी अैसा बच्चा देखें, जो हमारी यह अुम्मीद पूरी नहीं करता, बल्कि ढीला और सुस्त है, तो हम फौरन् यह अनुमान नहीं करते कि अुस बच्चे के स्वभाव में ही कोअी-न-कोअी नुक्स है। बल्कि हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि अुसके शरीर में किसी बीमारी के, भुखमरी के या पौष्टिक खुराक की कमी के कारण कोअी पीड़ा तो नहीं है? अुदाहरणार्थ, अैसा पाया गया है कि जिन बच्चों के पेट में कृमि हो जाते हैं, वे सुस्ती और बुद्धूपन के लक्षण बताने लगते हैं। अुसी तरह अगर किसी बच्चे के विषय में हम यह जानते हों कि अुसे पूरा पूरा खाना नहीं मिलता, या पूरी और शांत नींद नहीं मिलती, तो हमें अुसकी काहिली पर अचम्भा नहीं होगा। कोअी बच्चा देखने में मोटा-ताज़ा भले ही दिखायी देता हो, मगर यदि हमें यह पता चले कि अुसे आसानी से हजम होनेवाली खुराक नहीं मिलती और अिसलिअे अुसे अपनी भीतरी शक्ति अधिकतर अपने अन्न को रक्त और मांस में परिणत करने में खर्च करनी पड़ती है, तो अुस बच्चे से भी हम बहुत बड़ी मानसिक फुर्ती की आशा नहीं कर सकते।

अुसी प्रकार यदि २० से ५० साल के बीच की आयुवाला कोअी तरुण कुश्ती लड़ने की अिच्छा के बदले काम से छुटकारा पा कर आराम लेने की, या बीड़ी पीते हुअे अथवा गप-शप करते हुअे आलस में समय बिताने की, निरंतर अिच्छा दिखाने लगे, तो समझना चाहिये कि यह अेक अस्वाभाविक चीज़ है; यानी जिसका औसत स्वास्थ्य हो अुस व्यक्ति से अैसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। तरुण व्यक्ति से तो यही आशा की जा सकती है कि वह हमेशा चपल और कार्यमग्न रहे, चाहे फिर अुसकी करतूतें कुचाली अर्थात् समाज-विरोधी भले ही हों। बल्कि, तरुणों से हम अक्सर यह आशा करते हैं कि वे जी चुराने के बदले हद से ज्यादा परिश्रम कर डालेंगे। अिसलिअे यदि हम यह पाते हैं कि देहाती या शहरी कारीगर हमारी औसत अपेक्षा से कहीं नीचे है, तो हमें अुसके दिल या दिमाग को दोष लगाने से पहले अुसके शरीर, आहार और घर-बार की जाँच-पड़ताल करनी चाहिअे।

मैं अपने ही कार्यकर्ताओं में से किन्हीं किन्हीं का हाल जानता हूँ। हिन्दुस्तान के सभी निवासियों में से चित्पावन ब्राह्मण पर अुसके दुश्मन भी यह आरोप कभी नहीं करेंगे कि अुसका आलस की तरफ़ झुकाव है। मैं अेक चित्पावन राष्ट्र-सेवक को जानता हूँ, जो अब बूढ़े हो गये हैं; लेकिन अपनी अुम्र और सेहत के लिहाज़ से आज भी काफी क्रियाशील हैं। परन्तु बीस साल पहले अुनके विषय में यह संदेह प्रकट किया गया था कि अुनकी आलस्य की तरफ़ प्रवृत्ति है। वस्तुस्थिति यह थी कि कोंकण के आहार और हवा-पानी में पले हुअे होने के कारण अुन्हें गुजरात की गर्मी और आश्रम के खास भोजन के अभ्यस्त होने में कुछ वर्ष लग गये। अुन दिनों आश्रम के भोजन में दूध और दुग्धजात पदार्थ आवश्यक नहीं माने जाते थे। यह नहीं माना जाता था—शायद आज भी नहीं समझा जाता—कि मनुष्य की शारीरिक क्रियाशक्ति का अिन चीजों से कुछ ताल्लुक है। आजकल यह स्वीकार किया गया है कि सुदीर्घ मानसिक अुद्योग के लिअे दूध की ज़रूरत है। परन्तु

यदि आलस्य मन की सुस्ती का नाम हो, तो हमें यह भी मानना होगा कि सतत शरीरश्रम के लिअे सतत मानसिक प्रेरणा की भी ज़रूरत है। तो, क्या किसी अैसे मनुष्य के शरीर में जिसने कि अपनी माँ के दूध के बाद कभी दूध-घी चखा ही न हो, अैसी नसें, जिनके ज़रिये अिच्छा-शक्ति क्रियावान होती है, मज़बूत हो सकती हैं ?

मैं अेक दूसरे मित्र को भी जानता हूँ, जिन्होंने अपनी मर्ज़ी से दूध-घी छोड़ दिया था। वे अेक प्रान्त के जिम्मेदार कार्यकर्ता थे। अुन्होंने कुछ महीने अैसे ही काट लिये; मगर अुनका वज़न घटने लगा, और वज़न से भी अधिक घटने लगी अुनकी लगातार शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने की शक्ति। आखिर अुन्हें छुट्टी पर जाना पड़ा। वे अेक परिवार में रहने लगे, जहाँ अुन्हें मामूली महाराष्ट्रीय भोजन मिलता था, जिसमें थोड़ा-बहुत दूध, मट्ठा और घी होता है। थोड़े ही दिनों में अुनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। अुन्होंने महसूस किया कि बिना थोड़े-से दूध या दुग्ध-जन्य पदार्थों के, वे अपनी कार्यशक्ति टिका नहीं सकते। अुनके कुछ साथियों के विषय में भी अुन्हें अैसा ही अनुभव हुआ। वे जिस गाँव में काम करते थे, वहाँ काफी दूध प्राप्त करने में कुछ दिक्कत होती थी। अुनके कुछ विद्यार्थी या तो बार बार बीमार होते थे, या शुरू में जितना काम कर सकते थे अुतना काम करने में असमर्थ हो गये थे। अुन्होंने आबहवा बदलने के लिअे अपने कुछ विद्यार्थियों को वर्धा भेज दिया था। अुनके भोजन में केवल दूध या दूध से बनी हुअी कोअी चीज़ बढ़ा दी गयी। अुनका स्वास्थ्य तेजी से सुधरने लगा।

श्री विनोबा ने मुझे अेक लड़के का हाल सुनाया, जिसे वे कातना सिखा रहे थे। वह क़रीब दो-तीन मील के फ़ासले से आश्रम को आया करता था। अुसने काफी दिन शिक्षा ली; लेकिन फिर भी, वह कताअी की अपेक्षित गति नहीं प्राप्त कर सका। वह अलाल नहीं था। सच तो यह है कि वह अलाल हो भी नहीं सकता था; कारण, चरखा जितनी पूरी रोजी दे सकता है, अुसकी अुसे जबरदस्त आवश्यकता थी। अपनी मन्द प्रगति से लड़का भी परेशान था। अेक दिन अुसने विनोबाजी से कुछ दिन के लिअे आश्रम में रहने की अिजाजत माँगी; क्योंकि वह समझता था कि अपने गाँव से आने-जाने के परिश्रम से वह बिलकुल थक जाता था और शायद अुसकी अप्रगति का वही कारण हो। विनोबाजी राजी हो गये। अुन्होंने अुसे हफ्तेभर आश्रम में रख लिया। अुसे केवल विश्राम ही नहीं, आश्रम का भोजन भी मिलने लगा। अेक सप्ताह के भीतर अुसने नियत गति प्राप्त कर ली।

मैंने अैसा देखा है और मुझे आशा है कि दूसरे निरीक्षक भी मेरा समर्थन करेंगे कि जहाँ चरखा देहातियों को रोजी कमाने के लिअे नहीं, बल्कि वस्त्र-स्वावलम्बन के लिअे दिया गया है, वहाँ यह चमत्कार नज़र आता है कि बिलकुल ग़रीब किसान की अपेक्षा मध्यम किसान ने अुसका अधिक स्वागत किया है; ग़रीब किसान अुसकी जाँच-पड़ताल करता है, अुसके पक्ष में आपकी दलीलें मान लेता है; लेकिन फिर भी, अुसके दिल में अुसके लिअे अुत्साह नहीं पैदा होता। कारण यह है कि अुसमें वह गरम खून ही नहीं है, जो अुसे सालभर में ज्यादा-से-ज्यादा पाँच या छह रुपये बचाने या कमाने को प्रेरित करे। बड़े किसान की अपेक्षा अुसे अिस आमदनी की कहीं अधिक ज़रूरत है। लेकिन अमल करने की अिच्छा का फिर भी अभाव है। यह हालत क्यों ?

दोनों अेक ही गाँव मे रहते हैं; फिर, सुखी किसान की अपेक्षा दुःखी किसान काहिली का अधिक शिकार क्यों हो? अगर हम अुनकी खुराक कपड़े-लत्ते, और घरों का निरीक्षण करें तो शायद हमें अिसके कारण का पता चले। हमें दीख पड़ेगा कि अुस सुखी किसान के यहाँ ज्यादा ढोर-बछेरू होते हैं। वह दुग्धजात पदार्थों पर कुछ कमाअी बेशक कर लेता है। लेकिन फिर भी, वह अपने परिवार के खाने के लिअे थोड़ा-बहुत मही और घी अवश्य रख लेता है। ठंड का मुकाबला करने के लिअे अुसके पास काफी कपड़े-लत्ते होते हैं। जाड़ों में चारों ओर का वातावरण हमारे शरीर की गरमी कम करने की सतत चेष्टा करता रहता है और हमें अपनी शरीर की अुष्णता बराबर ९८ अंश पर स्थिर रखने के लिअे काफी अुष्णता पैदा करनी पड़ती है। अगर हमारे शरीर भलीभाँति आच्छादित हों, तो कम अुष्णता नष्ट होती है और अिसलिअे प्रति मिनिट कम अुष्णता पैदा करनी पड़ती है। अिस बचत के कारण हम दूसरी क्रियाओं में अधिक परिश्रम कर सकते हैं। अगर किसीको बिना आच्छादन के ठंड का मुकाबला करने में सारी रात बितानी पड़े तो अुतने ही से अुसे सख्त मेहनत हो जायगी। अगर कोअी अेक रात के लिअे भी यह प्रयोग करे, तो अुसे पता चलेगा कि दूसरे दिन कितनी थकावट आ जाती है। प्रचुर अच्छे कपड़े पहने हुअे बाबुओं को मैंने देहातियों के बारे में बड़े तुच्छ भाव से यह कहते सुना है कि "ये आलसी देहाती अपना आधा दिन धूप लेने में खराब कर देते हैं।" अुन्हें अिस बात का क्या पता—बल्कि वे यह भूल जाते हैं—कि अुन बेचारों को अपने शरीर की अुष्णता कायम रखने के लिअे सारी रात मेहनत करनी पड़ी है। वर्षा में जब अुसे गीले कपड़े पहने सोना पड़ता है तब भी यही होता है। अगर अुसकी झोंपड़ी अितनी जीर्ण-शीर्ण हो कि अुसमें पानी चूता हो, तो अुस बेचारे को अधिक भीगने से बचने की कोशिश करनी पड़ती है। अिन सारी मुसीबतों का सामना करने में अुसे जो शक्ति लगानी पड़ती है, अुसका हम कुछ भी खयाल नहीं करेंगे? अिसके अलावा अुसका रोजमर्रा का काम भी कड़ी मेहनत का होता है। निःसन्देह अुस काम में हल्की मजदूरी या मानसिक श्रम की अपेक्षा अधिक शक्ति खर्च होती है।

अब; अिस आलस्य के आरोप के दो पहलू हैं:—अेक, काम करने की अनिच्छा और दूसरा, हाथ में लिये हुअे काम पर डटे रहने की अनिच्छा। काम करने की अनिच्छा का कारण शुरू से ही कार्यशक्ति का अभाव हो सकता है। काम पूरा करने की अिच्छा के अभाव के निम्न कारण हो सकते हैं:—वह लगभग घण्टाभर काम करता है। अुतने ही में अुसकी नसें चूरचूर हो जाती हैं और विश्राम का तकाज़ा करने लगती हैं। कअी कारणों से विश्राम की यह माँग हमेशा सीधी व्यक्त नहीं होती। वह अक्सर तमाखू पीने की, गपशप लड़ाने की या टहलने की अिच्छा का रूप ले लेती है। थोड़े-से विश्राम से अुसकी नसें फिर से ताजा हो जाती हैं और वह फिर काम करने लगता है।

ये अुन अनेक कारणों में से कुछ थोड़े-से कारण हैं, जो देहातियों के माने गये आलसी स्वभाव के लिअे जिम्मेवार हैं। अगर हम और भी गहरे अुतरें, तो गांवों में प्रचलित दूसरे बहुत-से कारणों का हमें पता लगेगा। अुदाहरणार्थ, खटमल, जूँअें, पिस्सू, दाद, कृमि, मलेरिया और दूसरी बीमारियों के कीटाणु, शराबखोरी, नशीली चीजें, सिनेमा और ज्ञानतंतुओं को बहकानेवाले

और कामवृत्ति को अुत्तेजित करनेवाले, दिल-बहलाव के दूसरे साधन, वगैरा। अिनमें से अेक-अेक भी मनुष्य को कार्यप्रवृत्त और कार्य-मग्न रखनेवाली अिच्छा-शक्ति पर से अुसका काबू हटा देने के लिअे काफी है।

मैं यह नहीं सुझाना चाहता कि निरी अलाली हो ही नहीं सकती। अलाली और सुस्ती की शिक्षा पाना भी संभव है; परंतु मेरी राय में अैसा निर्णय देने से पहले हमें अिसका निश्चय कर लेना चाहिअे कि अुस मामले में आलस का कारण शारीरिक और स्थूल परिस्थिति नहीं है।

हमें देहातियों की अेकदम निन्दा ही नहीं करनी चाहिअे। देहातियो से अगर बार बार यह कहा जाय कि तुम आलसी हो, तो वे अुससे अवश्य बुरा मानते हैं। वे शायद सोचते हैं कि आखिर तुम भी अुनके प्रति सहानुभूति नहीं रखते, नुक्ता-चीनी ही करते हो। तुम्हारा रुतबा बड़ा है, अिसलिअे वे तुम्हारा प्रतिवाद नही कर सकते या तुम्हें अुन्हे आलसी कहने से रोक नहीं सकते। लेकिन वे मन-ही-मन ज़रूर कहते हैं, "बस अब माफ़ कीजिये। जानते हैं, आप बड़े बुद्धिमान है, लेकिन हमें आपकी ज़रूरत नहीं है। हमारा भाग्य है और हम हैं। हमें अपनी किस्मत से निपट लेने दीजिये।" अगर वे गुनाह कबूल करें, तो अुनके अन्दर अेक हीनता की भावना पैदा हो जाती है और वे यह समझने लगते है कि आर्थिक अुन्नति अुनके लिअे अप्राप्य है। फिर, सिर्फ अितना कह देने से कि सारी कंगाली की जड़ आलस है, आप कोअी मदद नहीं करते। अगर दर-असल आलस ही मूल कारण हो, तो हमें अुसका निवारण करने के लिअे प्रत्यक्ष अुपचार करने चाहिअें; फिर चाहे अुनका स्वरूप पारितोषिक और दण्ड का ही क्यों न हो। अुसके अभाव में आप सिर्फ अपनी असफलता के लिअे झूठ-मूठ का आश्वासन प्राप्त कर लेते हैं। आप समझते हैं कि आप सब कुछ कर चुके हैं, लेकिन जब-तक लोग अपना आलस नहीं छोड़ेंगे, कोअी तरक्की नहीं हो सकती।

याद रहे कि औसत मनुष्य बिना मजबूरी के निठल्ला रह ही नहीं सकता। सजीव सृष्टि का वह स्वभाव ही नहीं है। अिसलिअे अगर बड़ी मात्रा में निरुद्योग की प्रवृत्ति पायी जाती हो, तो अुसका कारण मानसिक दुर्गुणों के बदले स्थूल परिस्थिति ही होना अधिक संभव है। यह भी याद रहे कि ब्रिटिश राज की जड़ें मज़बूत होने से पहले हिन्दुस्तानी देहातियों ने आलस के विपरीत गुणों के लिअे नाम कमाया था। पुराने जमाने से ले कर औस्ट अिण्डिया कंपनी के ज़माने तक हर अेक विदेशी ने अुनकी श्रमशीलता की ही प्रशंसा की है; न कि अुनकी अलाली की निन्दा।

['रूरल अिंडिया' से अनूदित]

व्यापक लोक-सेवा के मार्ग

[नरहरिभाअी परीख]

१. जीवन-संबंधी

१. सारे दिन का कार्यक्रम बनाना चाहिअे।

२. खुराक, कपडा तथा अन्य रहन-सहन में सादगी।

३. थोडे खर्च में ठीक ठीक पौष्टिक खुराक मिलती रहे अिस दृष्टि से प्रयोग कर के अपनी खुराक निश्चित करना।

४. हाथ-कुटाअी के चावल तथा हाथ-पिसाअी के आटे का आग्रह, कम-से-कम अपने घर में तो, रखना ही चाहिअे। अगर हो सके, तो गाय का ही घी-दूध बरतना चाहिअे।

५. अपना कपडा अपने हाथ के कते हुअे सूत से बनवाने का यत्न होना चाहिअे।

६. स्वदेशी चीजें और, जहाँ तक हो सके, ग्राम-अुद्योग की चीजें ही बरतने का आग्रह।

७. शरीर-स्वास्थ्य की रक्षा के लिअे आरोग्यवर्धक आदतों तथा व्यायाम को जीवन में अुचित स्थान देना चाहिअे।

८. अस्पृश्यता-निवारण तो करना है ही। परंतु मनुष्य-मनुष्य के बीच जो अुच्च-नीच का भेदभाव (अुदाहरणार्थ—स्त्रियों के प्रति तुच्छ भाव, लडके-लडकियों के बीच का भेदभाव, नौकर-चाकर के प्रति व्यवहार) समाज में पाया जाता है, अुसका हममें से लोप हो जाना चाहिअे।

९. सांसारिक सुधारों में ग्राम-सेवक सबके आगे होना चाहिअे—जैसे कि तेरही मनाना, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, फिजूल-खर्ची, आदि वह स्वयं तो करेगा ही नहीं; किन्तु वैसे प्रसंगों में भाग भी नहीं लेगा और जहाँ संभव हो, वहाँ अुनका विरोध भी करेगा?

१०. ग्राम-सेवक जिस प्रकार यज्ञार्थ कातता है अुसी प्रकार अुसे यज्ञार्थ रोज थोडी ग्राम-सफाअी भी करनी चाहिअे।

११. मनुष्य को अपने जीवन तथा कार्य में स्फूर्तिमान् बनाये रखने के लिअे बाह्य मदद की अपेक्षा अन्दर की मदद अधिक अुपयोगी होती है और यही सच्ची मदद होती है। अतः अिस आन्तरिक शक्ति के विकास के हेतु तथा अपने चरित्र के विकास के लिअे ग्राम-सेवक को ओीश्वर के प्रति संपूर्ण श्रद्धावान् होना चाहिअे। अुसके लिअे अुपयुक्त वाचन और चिन्तन करते रहना चाहिअे तथा जो प्रेरणा दे सकें, वैसे व्यक्तियों का सहवास प्राप्त करना चाहिअे।

२. स्वाध्याय

१. अपने देश की राष्ट्रीय जागृति के अितिहास से तथा आज के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों से परिचय प्राप्त करने के लिअे और समाज में आज कौन-कौन-सी परिवर्तनकारी शक्तियाँ काम कर रही है तथा समाज का पुनः संगठन किस नीति के आधार पर होना जरूरी है—यह ठीक ठीक समझने के लिअे, अुपयुक्त अेवं नियमित वाचन तथा विचार करना चाहिअे।

२. अुसे स्वच्छता तथा स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का, दुर्घटनाओं आदि के तात्कालिक अुपायों का तथा सस्ती घरेलू दवाओं के अुपयोग का भी ज्ञान होना चाहिअे।

३ नियमित कातना तो आवश्यक है ही। परंतु अिसके अलावा चरखे के विषय में यांत्रिक जानकारी तथा अुसके अर्थशास्त्र का आवश्यक ज्ञान भी होना चाहिअे।

४. हिन्दुस्तान के विषय में व्यवहारोपयोगी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये।

३. प्रवृत्ति और कार्य-पद्धति

१. पूज्य गांधीजी के सुझाये हुये सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार ही जनता की सेवा करना हमारे ग्राम-सेवक का उद्देश है।

२. ग्राम-सेवक को अपने सारे कार्य शिक्षा की दृष्टि से ही चलाने चाहियें। उसका उद्देश किसी-न-किसी तरह काम पूरा करने का, या करा लेने का, ही न हो; बल्कि उसका यह प्रयास होना चाहिये कि हर एक चीज़ लोग ठीक ठीक समझ-बूझ कर करें।

३. गाँव का काम करते हुये गाँववालों का उत्तरोत्तर अधिक सहयोग तथा साथ प्राप्त करने की कला ग्राम-सेवक को हासिल करनी चाहिये।

४. ग्राम-सेवक को हमेशा निष्पक्ष रहना चाहिये। वह अगर किसी पक्ष में शामिल हो जायगा, तो थोड़ी देर के लिये उसका काम बढ़ता हुआ भले ही दिखायी दे; लेकिन वह काम करने की योग्यता गँवा देगा। ग्राम-सेवक को अपनी सेवा तथा चाल-चलन से लोगों के अन्दर यह खयाल पैदा कर देना चाहिये कि 'यह शख्स जो कुछ करेगा, समाज-हित के लिये ही करेगा; उसमें इसका अपना या किसी खास व्यक्ति अथवा मण्डल का स्वार्थ तो हो ही नहीं सकता'।

५. ग्राम-सेवक की कार्य-पद्धति सिर्फ दूसरों से कह कर कराने की न हो, किन्तु खुद काम करके कराने की होनी चाहिये।

६. ग्राम-सेवक को नीचे लिखी सारी प्रवृत्तियों में दिलचस्पी होनी चाहिये और उसका जीवन इन सब प्रवृत्तियों का पोषक होना चाहिये। परंतु इनमें से एक या दो प्रवृत्तियों में तो उसे निष्णात भी होना चाहिये:—

(१) खादी
(२) ग्राम-सफाई
(३) शिक्षण
(४) अस्पृश्यता-निवारण
(५) खेती-सुधार तथा सहकार
(६) ग्राम-उद्योग तथा गृह-उद्योग
(७) शारीरिक व्यायाम

१. खादी

(क) वस्त्र-स्वावलंबी परिवार तैयार करना।

(ख) मजदूरी दे कर सूत कतवाना।

(ग) बुनाई का केन्द्र कायम करना।

(घ) चरखे का सरंजाम बनवाना या मँगवा देना।

२. ग्राम-सफाई

(क) ग्राम-सफाई की भावना समाज-जीवन के हर एक अंग में फैलाने का प्रयत्न करना।

(ख) गाँव की गलियाँ, सार्वजनिक कुँए, तालाब, सार्वजनिक पाखाने, पेशाबखाने और नालियाँ साफ़ करने की योजना बनाना तथा उसपर अमल करने का इन्तजाम करना।

(ग) बीमारी पैदा करनेवाले कीटाणुओं का अध्ययन करना तथा समाज में उनके विषय के ज्ञान का प्रचार करना।

(घ) सब प्रकार के कूड़ा-करकट की ऐसी व्यवस्था करना कि जिससे गंदगी नष्ट हो जाय और कूड़ा-कचरा खाद आदि उपयोगी कामों के लिये उपलब्ध हो सके।

(ङ) परिस्थिति के अनुसार ग्राम-रचना तथा गृह-रचना की योजना बना कर उसमें यथा-

संभव हेरफेर करना और कराना। मनुष्य तथा मवेशियों के स्वास्थ्य का सब दृष्टियों से विचार करना और अुसके अुपाय काम में लाना।

(च) ग्राम-पंचायत की स्थापना के अनुकूल वातावरण बनाने के लिअे अुसके नियमों का अध्ययन कर लोकमत शिक्षित करना तथा अुसके लिअे योग्य व्यक्तियों को तैयार करना।

३. शिक्षण

(क) पाठशाला की शिक्षा।

(ख) प्रौढ शिक्षा—अक्षर-ज्ञान के वर्गों द्वारा, समाचार-पत्र तथा अच्छी पुस्तकें सुना कर, दीवाल-पत्र लिख कर, अुत्सव तथा मनोरंजन के नये नये कार्यक्रम बना कर, पुस्तकालयों अेवं वाचनालयों का प्रचार कर, सभाओं और व्याख्यानों द्वारा अि०।

(ग) विद्यार्थी-प्रवृत्ति—अभ्यास-गृह द्वारा, खेल-कूद के सम्मेलनों द्वारा, पर्यटन और प्रवास द्वारा, स्वयंसेवक-दलों द्वारा, अि०।

(४) अस्पृश्यता-निवारण

(क) हरिजन-वास में बार बार जा कर, वहाँ की सफाअी वगैरा करके।

(ख) हरिजनों में राहतकाम द्वारा—यथा, शिक्षण, कुआँ, ऋण-निवारण, बुरी आदतों से बचाने की कोशिश आदि।

(ग) पाठशालाओं में हरिजन विद्यार्थियों को भर्ती करा कर।

(घ) कुआँ आदि सार्वजनिक स्थानों का हरिजन अुपयोग कर सकें, अैसा वातावरण दोनों ओर से बनाने के प्रयत्न द्वारा।

(ङ) हरिजनों के धंधों को प्रोत्साहन दे कर तथा अुनमें सुधार करने के प्रयत्नों द्वारा।

(५) खेती-सुधार तथा सहकार

खाद, ढोर, बीज, कुआँ, बुवाअी, आदि कृषि-संबंधी मुख्य मुख्य बातों में क्या क्या सुधार हो सकते हैं, अिसका अध्ययन कर जनता में प्रचार करना चाहिअे, और अिन्हें सुगम बनाने के लिअे सहयोगी कृषि, सहयोगी मंडल, सहयोगी भंडार और सहयोगी बैंकों की धीरे धीरे स्थापना करनी चाहिये।

(६) ग्राम-अुद्योग तथा गृह-अुद्योग

पुराने ज़माने में गाँव में कौन-कौन-से अुद्योग थे? वे अब पुनर्जीवित हो सकते हैं कि नहीं? नयी नयी ज़रूरतें पूरी करने के लिअे कौन कौन-से नये ग्राम-अुद्योग या गृह-अुद्योग दाखिल किये जा सकते हैं?—आदि तमाम बातों का अध्ययन कर अुनके ज़रियों की खोज-बीन करनी चाहिअे।

ग्राम-अुद्योग क्यों नष्ट हुअे? अुनकी जगह नये अुद्योग दिये जा सकते हैं कि नहीं, अिसका विचार करना चाहिअे। जिनसे ग्राम-जीवन संगठित हो सके, अैसे आचार-विचारों का प्रचार तथा अमल करने के लिअे सब तरह से कोशिश करनी चाहिये।

(७) शारीरिक व्यायाम

(क) कवायत, कसरत, आसन, खेल, आदि।

(ख) अुत्पादक श्रम और अुसका महत्त्व।

(ग) शरीर-रचना का साधारण ज्ञान।

(घ) आकस्मिक चोट या बीमारियों के तात्कालिक अुपचार।

(ङ) स्वयंसेवक-दल—चौकी देना, आग बुझाना, आकस्मिक संकट-निवारण; अुदाहरणार्थ-बाढ़ या बीमारी का फैलाव।

(च) घरेलू दवाअियाँ।

(छ) शरीर-स्वास्थ्य के महत्त्व का प्रचार।

[गुजराती 'शिक्षण अने साहित्य' से]

साहित्य की दिशा-भूल

[विनोबा]

पिछले दिनों अेक बार हमने अिसकी खोज की थी कि देहात के सर्वसाधारण पढे-लिखे लोगों के घरों में कौन-सा मुद्रित वाङमय (छपा हुआ साहित्य) पाया जाता है। खोज के फलस्वरूप देखा गया कि कुल मिला कर पाँच प्रकार का वाङमय पढ़ा जाता है:—

(१) समाचारपत्र, (२) शालोपयोगी पुस्तकें, (३) अुपन्यास, नाटक, गल्प, कहानियाँ, आदि, (४) भाषा में लिखे हुअे पौराणिक और धार्मिक ग्रन्थ और (५) वैद्यक-संबंधी पुस्तिकाअें।

अिससे यह अर्थ निकलता है कि यदि हम लोगों के दिलों में अुन्नति करना चाहते हों, तो अुक्त पाँच प्रकार के वाङमय की अुन्नति करनी चाहिअे। अिस वर्ष के (मराठी) साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष ने, पहले प्रकार का, याने समाचार-पत्रों का, वाङमय मराठी भाषा में कितनी अधोगति को पहुँचा है, अिसकी तरफ़ महाराष्ट्र के विद्वानों और साहित्यिकों का ध्यान दिलाया। अैसा करने में अुन्होंने मराठी भाषा की अुचित सेवा की है, यह मानना पडेगा।

पारसाल का जिक्र है। अेक मित्र ने मुझसे कहा, "मराठी भाषा कितनी अूंची अुठ सकती है, यह ज्ञानदेव ने दिखाया; और वह कितनी नीचे गिर सकती है यह हमारे आज के समाचार-पत्र दिखा रहे हैं!" (साहित्य-सम्मेलन के) अध्यक्ष की आलोचना का और हमारे मित्र के अुद्गार का अर्थ "प्राधान्येन व्यपदेशः" के सूत्र के अनुसार निकालना चाहिअे। अर्थात्, अुनके कथन का यह अर्थ नहीं लेना चाहिअे कि सभी समाचार-पत्र अक्षरशः पैसिफ़िक महासागर की तह तक जा पहुँचे हैं। मोटे हिसाब से परिस्थिति क्या है, अितना ही बोध अुनके कथनों से लेना चाहिअे। अिस दृष्टि से बडे कष्ट से स्वीकार करना पड़ता है कि यह आलोचना यथार्थ है।

लेकिन अिसमें दोष किसका है? कोअी कहते हैं संपादकों का, कोअी कहते हैं पाठकगण का, कोअी कहते हैं पूंजिपतियों का। गुनाह में तीनों की शराकत है, और 'कमाअी का आधा हिस्सा' तीनों को बराबर बराबर मिलनेवाला है, अिसमें किसीको कोअी शक नहीं है। परन्तु मेरे मत से अपराध करनेवाले ये तीनों भले ही हों, अपराध करनेवाला दूसरा ही है, और वही अिस पाप का वास्तविक 'धनी' है। वह कौन? —साहित्य की परिभाषा करनेवाला चटोरा अथवा रुचिभ्रष्ट साहित्यकार।

"विरोधी विवाद का बल, दूसरों का जी जलाना, जली-कटी या पैनी बातें कहना, मखौल (अुपहास), छल (व्यंग्य), मर्मभेद (मर्मस्पर्श), आडी-टेढी सुनाना (वक्रोक्ति), कठोरता, पेचीदगी, संदिग्धता, प्रतारणा (कपट)"—ये ज्ञानदेव ने वाणी के अवगुण बतलाये हैं। परन्तु हमारे साहित्यकार तो ठीक अिन्हीं अवगुणों को 'वाग्भूषा' या साहित्य की सजावट मानते हैं। पिछले दिनों अेक दफ़ा रामदास की, 'ओछी तबियतवालों को विनोद भाता है,' अिस अुक्ति पर कअी साहित्यिक बहुत गरम हुअे थे। रामदास के भावार्थ पर ध्यान दे कर अुससे अुचित अुपदेश लेने के बदले अिन लोगों ने यह आविष्कार किया कि रामदास विनोद का जीवन में और साहित्य में जो स्थान है, वही नहीं समझ पाये थे। अुपहास, छल, मर्मस्पर्श

आदि ज्ञानदेव ने अस्वीकार किये, यह भी हमारे साहित्यकार—अुनकी साहित्य की परिभाषा के अनुसार—ज्ञानदेव के अज्ञान का ही फल समझेंगे।

ज्ञानदेव या रामदास की राष्ट्र-कल्याण की तड़पन थी और हमारे विद्वानों को चटपटी भाषा की फ़िक्र होती है, चाहे राष्ट्रघात ही क्यों न होता हो—यह अिन दोनों में मुख्य भेद है। हमारी साहित्य-निष्ठा अैसी है कि चाहे सत्य भले ही मर जाय, लेकिन साहित्य जीता रहे।

"हे प्रभो, अभी तक मुझे पूरा पूरा अनुभव नहीं होता है, तो क्या मेरे देव, मैं केवल कवि ही बन कर रहूँ?"—अिन शब्दों में तुकाराम अीश्वर से अपना दुःख कहता है, और यह (साहित्यकार) खोज रहे हैं कि तुकाराम के अिस वचन में काव्य कहाँ तक सधा है। हमारी पाठशालाओं की शिक्षा का सारा तरीका ही अैसा है। मैंने अेक निबंध पढ़ा था। अुसमें लेखक ने तुलसीदास की शेक्सपीयर से तुलना की थी और किसका स्वभाव-चित्रण किस दर्जे का है, अिसकी चर्चा की थी। मतलब यह कि जो तुलसीदास की रामायण हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों के लिअे—देहातियों के भी लिअे—जीवन की मार्ग-दर्शक पुस्तक है, अुसका अध्ययन भी यह भला आदमी स्वभाव-चित्रण की शैली की दृष्टि से करेगा। शायद कुछ लोगों को मेरे कथन में कुछ अतिशयता प्रतीत हो, लेकिन मुझे तो कअी बार अैसा ही जान पड़ता है कि अिन शैली-भक्तों ने राष्ट्र के शील की हत्या का अुद्योग शुरू किया है।

शुकदेव का अेक श्लोक है, जिसका भावार्थ यह है कि, "जिससे जनता का चित्त शुद्ध होता है, वही अुत्तम साहित्य है।" जो साहित्य-शास्त्रकार कहलाते हैं, और जिनसे आज हम प्रभावित हैं, वे यह व्याख्या स्वीकार नहीं करते। अुन्होंने तो शृंगार से ले कर बीभत्स तक विभिन्न रस मान्य किये हैं, और यह निश्चित किया है कि साहित्य वही है जिसमें ये रस हों। साहित्य की यह समूची व्याख्या स्वीकार कर लीजिअे, अुसमें कर्तव्यशून्यता मिला दीजिये, फिर कोअी भी बतला दे कि आज के मराठी समाचार-पत्रों में जो पाया जाता है, अुसके सिवाय और कौन-से साहित्य का निर्माण हो सकता है?

['ग्राम-सेवा-वृत्त से अनूदित']

जनता का प्रश्न

अुनके सामने नित्य जिवन-मरण का प्रश्न अुपस्थित रहता है, अुन्हें पेटभर भोजन प्राप्त करने में जान लड़ा देनी पड़ती है। अुनके निकट दो पैसे का कितना मूल्य है, अिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। अुनके साथ तुम्हारा क्या मुकाबला? जीवन के महल में अुनका सदा पहली मंजिल में वास रहा है और तुम्हारा दूसरी मंजिल में।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सत्याग्रही शिक्षण

[आचार्य अभयदेवजी]

-३-

रचनात्मक कार्य

अब अेक बात रह गयी कि "तो फिर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को स्वराज्य-स्थापना के लिये क्या करना चाहिये"? अिसका असली अुत्तर तो यह है कि जब तुम्हारा मन सत्य को ग्रहण करने और अुसको ठीक कल्पना में लाने में समर्थ हो जायगा और तुम्हारे भाव अुस सत्य-कल्पना में जीवन डालने के योग्य हो जायेंगे, तब तुम जो कुछ भी करोगे, वह ठीक करोगे। हरेक सच्चा और समर्थ व्यक्ति अपनी प्रकृति और शक्ति के अनुसार जो कुछ सेवा करेगा, अुससे देश को लाभ ही होगा। परन्तु फिर भी मैं अिस विषय में थोड़ा-सा रेखा-चित्रण अिसलिये करता हूँ, जिससे कि तुम कार्य करते हुअे यह परीक्षा कर सको कि तुम ठीक रास्ते से ही देश-सेवा कर रहे हो या नहीं।

पहली बात यह है कि तब तुम कुछ रचनात्मक और ठोस कार्य करने के लिये प्रवृत्त होगे। क्योंकि तुमने स्वराज्य के सत्य को जहाँ तक देखा होगा, अुसके अनुसार भारतीय स्वराज्य की अेक कल्पना तुम बना चुके होगे। स्वराज्य-सत्य की यह कल्पना तुम्हारे द्वारा क्रियान्वित हो कर मूर्त-रूप में आना चाहती होगी। अुसके लिये तुम कुछ-न-कुछ करना चाहोगे। प्रत्येक देशवासी के मन में स्वराज्य की कुछ कल्पना है, नेताओं के सामने तो अधिक विस्पष्ट कल्पना बनी होती है; परन्तु जिसने स्वराज्य के सत्य को अधिक-से-अधिक देखा है, जिसने भारत की अन्तरात्मा से अपने को अेक कर के भारत की आन्तरिक अभीप्सा के सत्य-रूप को जाना है, अुसकी स्वराज्य-कल्पना सच्ची-से-सच्ची होने के कारण अधिक-से-अधिक रचना-शक्ति रखनेवाली और बहुत बलवती होगी। आजकल वह रचना-शक्ति शायद गांधीजी द्वारा प्रकट हो रही है। अस्तु।

सत्य सदा कुछ रचना करना चाहता है। यदि सत्य किसी चीज़ का ध्वंस करना चाहता है, तो भी अुसके मूल में रचना का ही भाव होता है। हिंसात्मक युद्ध और ठीक प्रकार के युद्ध में (जिसे मैंने स्वाभाविक परिपाक कहा है और जिसे आजकल के अस्वाभाविक युद्ध के विरोध में अहिंसात्मक युद्ध कहना चाहिये) भेद यही है कि पहला ध्वंसात्मक और अप्रीति (द्वेष) मूलक होता है, तथा दूसरा रचनात्मक और प्रीतिमूलक होता है। अिसलिये हम अपनी स्वराज्य-प्राप्ति के लिये स्वराज्य की कल्पना को मूर्त-रचना के रूप में लाने की तरफ़ ही ध्यान देंगे और अिसलिये जो कुछ भी कर सकते होंगे, वह सब कुछ करेंगे। यदि हम ठीक प्रकार से रचना का कार्य करेंगे, तो जो कुछ विरोधी वस्तुअें हैं, वे हमारे रचना-बल के सामने अपने-आप दूर होती जायेंगी।

चर्चा

कल्पना करो कि तुममें से किसीके अन्दर देशभक्ति की अग्नि जल चुकी है (और वह अग्नि-सोम की अुपासना द्वारा तुम्हारे वश में भी है) तो तुम स्वभावतः यह चाहोगे कि हमारे देश के और लोगों में भी यह पवित्र अग्नि जल अुठे। सब देशवासियों का पर्याप्त

अंश में सच्ची स्वराज्य-कल्पना से युक्त प्रकाशमान देशभक्त बना देना स्वराज्य के भवन को आधे से अधिक खड़ा कर देना है। पर अपने बेपढ़े ग़रीब देशवासियों में व्याख्यान देने से या अुपदेश सुनाने मात्र से देशभक्ति नहीं आ जायगी। यदि देश की अवस्था को तुमने कुछ भी समझा है, तो तुम्हें अपने देश को असीम ग़रीबी दुःखी किये बिना नहीं रहेगी और सेवा द्वारा, और अुसमें भी ग़रीबी दूर करने की किसी सेवा द्वारा, ही तुम अपना संदेश अुनके हृदयों तक पहुँचा सकोगे। अिसी कारण चर्खा तथा अन्य ग्रामोद्योग हमारे स्वातन्त्र्य-युद्ध के हथियार बने हैं। यदि तुम्हारी स्वराज्य-कल्पना कुछ भी गम्भीर सत्य पर आश्रित है, तो तुम देखोगे कि भारतीय सभ्यता ग्रामप्रधान सभ्यता है। भारतीय संस्कृति चर्खों और ग्रामोद्योगों की पुण्य संस्कृति है। अतः हिंसात्मक युद्ध में जैसे ध्वंस करनेवाले तोप, बन्दूक, आदि हथियार होते हैं, वैसे हमारे सत्य और अहिंसा के (सत्य-कल्पना और प्रेम-भाव से अुठे) युद्ध में रचना करनेवाले कपड़ा तथा अन्य अत्यन्त जीवनोपयोगी वस्तुओं को बनानेवाले औज़ार ही हमारे हथियार हैं। अिन औज़ारों द्वारा न केवल कपड़ा आदि वस्तुओं बनेंगी, किन्तु भारत की नष्ट होती संस्कृति का ही पुनर्निर्माण होगा और हमलोगों की सच्ची देश-भक्ति के कारण हमारा खादी आदि का बनाना ही विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने की शक्ति भी रखनेवाला होगा। अतः यह खादी का काम स्वराज्य की सच्ची कल्पना सामने रखने के भाव से ही प्रेरित होकर होना चाहिये, देखादेखी या किसीको खुश करने के लिये, या किसी अन्य विपरीत या केवल जड़-भाव से—अतअेव अधूरे मन से—नहीं होना चाहिये। क्योंकि यदि हम अैसा करेंगे, तो अुससे हम अपने अन्दर के सत्य-विचार को और अपने ग़रीब देशवासियों के प्रति करुणा के भाव को नहीं प्रकट कर रहे होंगे। हम यूं ही दंभ से या जड़-भाव से चर्खा चला रहे होंगे। हमारा चर्खा कातना यदि हमारे अन्दर के अुस सत्यभाव का ही क्रिया में परिणत रूप होगा, तभी वह स्वराज्य-स्थापना की शक्ति से युक्त होगा।

अेकता

अिसी तरह राष्ट्रीय शिक्षा, मद्य-निषेध अछूतपन-निवारण आदि अन्य कभी रचनात्मक कार्य हैं, जिनकी तरफ़ मुझे तुम्हारा ध्यान खींचने की आवश्यकता नहीं। आर्य-समाज अिनकी तरफ़ पहले से ध्यान देता रहा है। परन्तु साम्प्रदायिक अेकता—जिसकी कि आजकल आवश्यकता और भी ज्यादह बढ़ी हुआी है—की ओर अवश्य विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, और सम्प्रदायों में भी हम आर्य-समाजियों को हिन्दू और मुसलमान अिन दो सम्प्रदायों की परस्पर अेकता की ओर। हमारी देशभक्ति घोर-से-घोर सांप्रदायिक मुसलमानों को भारतमाता का अपना-सा ही पुत्र और अतअेव अपना भाअी अनुभव कराये। परस्पर विद्वेष की आसुरी शक्तियाँ आज स्वराज्य की आधार-भूमि अिस सांप्रदायिक अेकता को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिये अुग्रता के साथ तत्पर हो रही हैं। हमें आत्म-बलिदान से अनुप्राणित प्रेम की शक्ति द्वारा अिन्हें परास्त कर भारतमाता की सच्ची विजय स्थापित करनी है। यदि तुममें कभी दूसरे सम्प्रदायवालों के प्रति कमजोरी के कारण द्वेष (अप्रीति) का अखनातन आसुरी भाव अुत्पन्न

होवे भी तब भी कम-से-कम तुम्हें जितनी सावधानी बरतनी चाहिये कि तुम साम्राज्यवाद की निपुण विभेद- नीति के कभी भी शिकार न बनो। मेरा मतलब यह है कि यदि हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ना ही चाहें, तो वे विदेशी सरकार की पुलिस और फौज की अधीनता में, परवशता में, कायरता की लड़ाअी कभी न लड़ें। स्वराज्य की भावना को स्पष्ट सामने रखते हुअे, अंग्रेजी शासन को (जो कि अेक असत्य है) बिलकुल भुलाकर हम यदि आपस में खुलकर लड़ेंगे भी, तो वह हमारी सच्ची लड़ाअी होगी और अतअेव हममें जल्दी ही अेकता को भी ले आनेवाली होगी। बहुत संभव तो यह है कि तब हम लड़ ही नहीं सकेंगे। पर यदि लड़ना अनिवार्य ही हो, तो वह सचाअी के साथ और स्वराज्य के सत्य को आँखों से ओझल न करते हुअे ही होना चाहिये। वह भाअी भाअी की लड़ाअी होनी चाहिये। अिसलियें स्वार्थ, मतों (वोट्स) की प्राप्ति, ओहदों की लालसा, आदि कारणों से जो कुछ लड़ाअी होती या छेड़ी जाती है, साम्प्रदायिकता को अुभाड़ कर लोगों को गुमराह किया जाता है, वह तो खतम होना चाहिये। देशभक्ति की पवित्र अग्नि में ये सब मैल दग्ध हो जाने चाहियें। देशभक्ति के जीवनदायी तेज के कारण अिस तरह लड़ने से—कितना भी अुकसाये जाने पर—अिन्कार करने की शक्ति हममें आजानी चाहिये।

यज्ञ और संग्राम

चर्खे और अेकता के अतिरिक्त यदि और कुछ करने को रहता है, तो वह सब यह कहने में आ जाता है कि हमें अपनी राष्ट्रीय महासभा की आज्ञा का, या अपने सेनानायक की आज्ञा का, पूरी तौर से न केवल बाह्य क्रिया के रूप में किन्तु पूरे मन और हृदय से—पूरे विचार और भाव से—पालन करना चाहिये।

यह जो कुछ मैंने कहा है, अुसे दूसरे शब्दों में कहूँ, तो वह यह है कि हमें आरंभ किये अिस स्वराज्य-प्राप्ति के यज्ञ को पूरा करना चाहिये। वैदिक साहित्य में सब संग्राम-वाचक शब्द यज्ञ-वाचक भी होते हैं। अिसका अर्थ यह है कि वैदिक दृष्टि से अेक सच्चा संग्राम यज्ञ-रूप ही होना चाहिये। जो संग्राम शुद्ध-से-शुद्ध आत्मबलिदान चाहता है, वह संग्राम अुतना ही अूंचा यज्ञ हो जाता है। तो यज्ञ की भाषा में हमारा यह स्वराज्य-प्राप्ति का संग्राम कैसे चले, अिसकी तरफ ज़रा-सा ध्यान आकृष्ट करके मैं अपना कथन समाप्त करता हूँ।

यज्ञ भावों का परिणत क्रियात्मक रूप है

मैंने भावों के प्रकरण में कहा था कि सब सनातन भावों का केन्द्रीय भाव प्रीति है और वह प्रीति भक्ति, मैत्री और करुणा अिन तीन रूपों में प्रकट होती है। अिन तीन भावों को ही हमें अपने अन्दर विशेषरूप से विकसित करना चाहिये। अर्थात् बड़ों के प्रति भक्ति (न कि अुद्धतता), बराबरवालों के साथ मैत्री (न कि द्वेष) और छोटों के साथ करुणा (न कि क्रूरता या अत्याचार)। पर अब मैं यह कहना चाहता हूं कि जब ये तीनों भाव क्रिया-रूप में परिणत होते हैं, तब वे यज्ञ बन जाते हैं। कर्मकाण्ड ही तो यज्ञ है, और यज्ञ का अर्थ है, 'देवपूजा संगति-करण दानेषु'। बड़ों के प्रति की गयी प्रीति भक्ति का रूप धारण करती है, और भक्ति जब क्रिया-रूप में आती है, तब वह देवपूजा नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होती है। बराबरवालों के साथ प्रीति

मैत्री-भाव का रूप धारण करती है, और मैत्री-भाव जब क्रिया में आता है, तब वह संगतिकरण नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होती है। अेवं छोटों के प्रति की गयी प्रीति करुणा-भाव का रूप धारण करती है और करुणा-भाव जब क्रिया-रूप में आता है, तब वह दान नामक यज्ञीय कर्म में परिणत होता है।

देवपूजा

तो, यदि हमें स्वराज्य-प्राप्ति के यज्ञ को पूरा करना है तो हमें अिन्हीं भावों को जगाकर ठीक प्रकार से अिन्हीं क्रियाओं में परिणत करना होगा। हमारी भक्ति देवपूजा में परिणत हो, देश के नेताओं की हम पूजा करें, अुनकी आज्ञाओं का पालन करें, अेक सैनिक के तौर पर सेनापति के आदेशों को पूरे विचार और भाव के साथ पालन करते हुअे हम सदा अनुशासन में रहें। भारतमाता की पूजा, राष्ट्र-पताका की वन्दना का अर्थ यही है कि हम राष्ट्रीय महासभा और अपने देश के नेताओं के आज्ञापालक और अनुशासित सेवक और सैनिक बनें। यह यज्ञ का अूपर का भाग है, अुत्तमाग है।

संगतिकरण

हमारा मैत्रीभाव संगतिकरण में परिणत हो, देश के सब भाअी परस्पर अेकता में जुड़े हुअे हों, किसी प्रकार की विसंगति न हो। परस्पर सहयोग, मेल, अेक-सूत्रता, यह सब संगतिकरण की ही व्याख्या है। सम्प्रदायों की अेकता के बारे में मैं अूपर कह चुका हूँ, वह अेकता हम यज्ञ के पवित्र भाव से करें तभी वह स्थिर और सच्ची अेकता होगी। हम सबने मिलकर अपना संगतिकरण करना है और अिस संगति करण के बल से ही अपने राष्ट्र-यज्ञ को पूरा करना है, यह पवित्र भावना हममें लगातार रहे।

दान

करुणाभाव दान में परिणत हो। जो हमसे छोटे हैं, कमजोर हैं, किसी भी बात में कम हैं, अुनके प्रति करुणा हो और वह करुणा अुन छोटों, दुर्बलों और ग़रीबों को देने में चरितार्थ हो। चर्खे का आन्दोलन आर्थिक दृष्टि से छोटे, ग़रीब लोगों को दे सकने के यज्ञीय कर्म का ही आन्दोलन है। और हमारे देश के आर्थिक दृष्टि से ही विशेष कमजोर होने के कारण अिस करुणा का और अिस दान का ही अिस समय विशेष महत्त्व हो गया है। अिसी प्रकार जिनमें ज्ञान की कमी है अुनको ज्ञानदान देना चाहिअे। 'अछूत' भाअियों की सेवा करना भी यज्ञ के अिसी अङ्ग में आता है। जो वस्तुतः अल्पमत में हैं, जो वस्तुतः कमजोर हैं, जो किसी प्रकार भी कम है, अुनको देने द्वारा पूरा करने की प्रवृत्ति हममें सहजभाव से होनी चाहिअे। तभी यह हमारा यज्ञ फलीभूत हो सकेगा।

आन्दोलन में प्राण-सञ्चार

मानसिक जगत में कल्पना या मानसिक रचना के रूप में तो भारतीय स्वराज्य बहुत कुछ बन चुका है, स्थापित हो चुका है। 'बहुत कुछ' अिसलिअे कि अब भी अेक प्रकार का संघर्ष चल रहा है। पर जहाँ तक विदेशी शासन से मुक्ति का संबन्ध है वहाँ तक मानसिक चित्र पक्का बन चुका है। यदि हम भक्ति, मैत्री और करुणा के भावों द्वारा अिसमें लगातार प्राण-सञ्चार कर सकें और वह प्राण-सञ्चार, देवपूजा, संगतिकरण और दान की क्रियाओं में अभिव्यक्त होता रहे, तो हमारे पवित्र स्वराज्य-यज्ञ की पूर्ति दूर नहीं है।

[हिन्दी 'गुरुकुल' से]

स्वतंत्रता और नियमन

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अेक विद्यार्थी ने नीचे लिखा सवाल पूछा है—

"हम स्वतंत्रता में माननेवाले हैं, लेकिन फिर भी पाठशालाओं में विद्यार्थियों पर व्यवस्थित काम कराने के लिअे नियमन का बोझ क्यों लादा जाता है? अगर वे स्वतंत्ररूप से काम न कर सकते हों, तो अिसका क्या कारण है? अुन्हें स्वतंत्ररूप से काम करना सिखाना किसका कर्तव्य है?"

स्वतंत्रता में मानने का अर्थ अराजकता या अव्यवस्था में मानना नहीं है। जिस स्वतंत्रता के लिअे आज देश में आन्दोलन हो रहा है, वह अेक खास प्रकार की ही स्वतंत्रता है। जिसकी बदौलत देश के कारोबार में देश के बाहर के लोग दखल न दे सकें, अैसी स्वतंत्रता के लिअे हमारा यत्न है।

अिसके अलावा हम देश का कारोबार अिस तरह चलाना चाहते हैं कि कुछ बातों में हरेक नागरिक तथा समाज को अपनी अिच्छा के अनुसार चलने की स्वतंत्रता हो। अिन बातों के सिवा दूसरी बातों में नियमन न रहे, अैसा विचार कोअी समझदार मनुष्य नहीं कर सकता। मतलब, स्वतंत्र हिन्दुस्तान में भी व्यक्तियों तथा समूहों पर कअी तरह के अंकुश, अनिवार्य कर्तव्य, आदि रहेंगे ही।

जो देश में होगा, वही संस्थाओं में भी होगा—अर्थात्, पाठशालाओं में भी।

'मुद्राराक्षस' के लेखक ने स्वतंत्रता की काफी अच्छी परिभाषा की है: स्वतंत्रता का अर्थ है अच्छे काम करने की स्वतंत्रता। जो बुरे कामों से, कर्तव्य-भ्रष्ट होने से, खाअी में गिरने से, रोकता है वह नियमन स्वतंत्रता का विरोधी नहीं है।

मतलब यह कि, व्यवस्थित समाज या संस्था में अैसा हो ही नहीं सकता कि नियमन कतअी न हो। आज्ञा देने और पालने के कर्तव्य तो रहने ही वाले हैं। जो सुधार हो सकते हैं, वे आज्ञा देने की, काम कराने की और व्यवस्था करने की रीति में हो सकते हैं। अनाड़ी शिक्षक बेंत से अपना रोब जमाने की कोशिश करेगा; मध्यम शिक्षक लालच दिखा कर अपना काबू जमाने का यत्न करेगा और अुत्तम शिक्षक कला और प्रेम से काम लेगा। अितना हो सकता है कि नियमन बिलकुल न अखरे, या कम-से-कम अखरे।

फिर भी, नियमन तो नियमन ही रहनेवाला है। वह कहीं-न-कहीं अवश्य चुभेगा। प्रेम का हो, तो भी आलसी को बिना अखरे न रहेगा। जड़-मूढ़ को भी अखरेगा। जिन्हें अपनी बुद्धि पर अत्यंत घमण्ड हो, अुन्हें भी अखरेगा। स्वच्छंदी, व्यसनी, शठ लोगों को भी नागवार गुजरेगा। वे तो कहते ही रहेंगे कि हमारी स्वतंत्रता पर प्रहार हो रहा है।

शाला या समाज में नियम के भंग पर पुराना अिलाज है दण्ड। हम अैसी आशा करें कि जिस प्रकार पाठशाला में से हलके हलके सजा का त्याग हो रहा है, अुसी प्रकार समाज में से भी होगा। अैसा हो सकता है कि नियम का भंग करनेवाले को अेक तरह का मरीज मान कर अुसकी चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाय। लेकिन यह चिकित्सा भी आवश्यक होगी, अिसलिअे यह नहीं कहा जा सकता कि वह भी पसन्द आयेगी। काम में आलस करनेवाले विद्यार्थी अस्पताल में जाने की बनिस्बत शायद बेंत खाना ज्यादा पसन्द करेंगे।

बच्चे या बड़े स्वतंत्ररूप से, राजी-खुशी से, अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकते, अिसके कअी कारण हो सकते हैं। अुदाहरणार्थ, काम करने की आदत का अभाव, शारीरिक या मानसिक व्याधि, हृदय या बुद्धि की जड़ता, कोअी बुरी आदत, कोअी स्वार्थ, आदि। अुससे स्वतंत्ररूप से काम कराने के लिअे नियामकों को अुस अुद्देश्य से आचरण करना ही पड़ेगा। अिसके लिअे कौन-से अुपाय काम में लाये जाने चाहिअे, अिसका शास्त्र धीरे धीरे खिलता और विकसित होता जाता है। विद्यार्थियों को अेक बात जान लेनी चाहिअे। जबरदस्ती नियमों का पालन कराना पड़े, यह हालत कभी किसी शिक्षक या अधिकारी को पसन्द नहीं आती। प्रेम के सिवा किसी दूसरी रीति का अमल करनेवाला नियामक भी अुस तरीके में किसी प्रकार का आनन्द अनुभव नहीं करता। जबरदस्ती नियम पालन कराने की आवश्यकता के कर्तव्य में से अुसे जो तरीका सूझता है, अुसका वह अमल करता है।

नियम तोड़नेवालों को स्वतंत्ररूप से कार्य करनेवाले बनाने का फ़र्ज़ सिर्फ नियामकों का ही नहीं है, बल्कि बराबर नियम पालनेवालों का भी है—यानी दूसरे विद्यार्थी और नागरिकों का भी है। कोअी विद्यार्थी स्वतंत्र रीति से काम न करे, तो अुसे सुधारने में दूसरे विद्यार्थियों को भी मदद करनी होती है।

[गुजराती 'शिक्षण और साहित्य' से]

ग्राम-संस्कृति की प्राण-प्रतिष्ठा

[काका कालेलकर]

(हुबली (बेळगाँव) के 'तरुण संघ' में २९.५.४० को दिये हुअे भाषण से)

हमारे देश में जाने कितनी संस्थाअें, खासकर तरुणों की संस्थाअें, स्थापित होती हैं, महीने-दो-महीने चलती हैं और बाद में अुत्साह के अभाव के कारण सो जाती हैं। अगर कोअी संघ साल-डेढ़-साल चल गया तो गनीमत है। अैसी दशा में आपका संघ आज भी कायम है, और अुसकी सदस्य-संख्या बढ़ रही है, अिसके लिअे मैं आपको बधाअी देता हूँ।

शुरू शुरू में आपने शरीर-श्रम की जो प्रवृत्ति हाथ में ली थी, अुसे अगर आपलोग अव्याहत-रूप से जारी रखते, तो मैं आपको विशेष बधाअी देता; कारण, शरीर-श्रम ही में संघ और समाज के अुद्धार का रहस्य निहित है।

यह अपेक्षा ही नहीं करनी चाहिअे कि आपके सिर्फ चार-छह महीने शरीर-श्रम करने से गाँववाले अुसके पक्षपाती हो जायेंगे। लोगों के स्वभाव में परिवर्तन कराना आसान नहीं होता। ये संस्कृति के काम सैकड़ों वर्षों की मेहनत से करने होते हैं। यह सामने अेक घोड़ा बँधा है। अिसे जंगल से ला कर पालतू बनाने में हमारे पुरखाओं को हजारों बरस लगे हैं।

गाय को हम पवित्र मानते हैं। हमारी संस्कृति और जीवन-व्यवस्था से अुसका अटूट गँठ-बंधन हो गया है। अुसे भी पालने और

अपनाने में मनुष्य-जाति के हजारों वर्ष बीते होंगे। प्राचीन काल में जिन्होंने यह कार्य किया, अुनका कितना धैर्य होगा, जिसका हमें विचार करना चाहिये।

पूर्व ॠषियों ने गाय पाल कर अुन्हें पवित्र ठहराया, वेदों ने अुन्हें 'अघ्न्या,' कहा। भविष्य के ॠषि हमें यह अुपदेश देंगे कि गाय के समान मधुमक्खी भी पवित्र है। अुन्हें मारने, या अुनके वंश का संहार करने के बदले हमें अुन्हें पालना चाहिये। वे भी मनुष्य से हिल जायेंगी और गाय जिस प्रकार दूध-घी देती है, अुसी प्रकार ये मधुमक्खियाँ हमें बहुत ही अुपयोगी मधु (शहद) और मोम देंगी। दूसरे देशों में मधुमक्खियाँ पालने की कला में बहुत तरक्की हुआी है। अुनका स्वभाव, अुनकी जरूरतें, अुनकी रुचि-अरुचि और अुनकी समाज-रचना आदि तमाम बातों का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। हमें भी वही करना चाहिये।

वैष्णव संत, जैन तीर्थंकर या बसवेश्वर जैसे लिंगायतों के महापुरुष,—अिन सबोंने मनुष्य-समाज के अुद्धार के लिये दीर्घकाल तक परिश्रम किये है। अगर तुममें से किसीने वैष्णव-साहित्य पढ़ा होता, तो तुम्हें वह श्लोक याद होता जिसमें विष्णु की कृपा से जिन जातियों का अुद्धार हुआ, अुनकी तालिका है। भिल्ल, पुलिंद, पुलकस, आभीर आदि अनेक जातियों में काम कर, अुन्हें धर्मोपदेश कर, अिन वैष्णवों ने अुनके जीवन में परिवर्तन कराया और अुन्हें वैष्णव-संस्कृति में दाखिल किया। अुनका संकल्प कितना बलिष्ठ और दृढ़िष्ठ रहा होगा! ये काम अल्पवीर्य व्यक्तियों के नहीं हैं! केवल दुर्बलों के ये काम नहीं है! कितना भी छोटा काम क्यों न हो; दृढ़ता से आजन्म अुसीमें जुट जाया जाय, तभी वह सिद्ध होता है और अुतनी मात्रा में जाति का अुत्थान होता है।

गुजरात में अेक संप्रदाय है, जिसका नाम स्वामीनारायण संप्रदाय है। अिस संप्रदाय ने गुजरात में लोक-जागृति के लिये प्रशंसनीय पुरुषार्थ किया है। लेकिन वह काम कोअी अपने-आप तो नहीं हुआ। चोर, लुटेरे, डाकू आदि लोगों में भी अिन सन्तों ने काम किया है। ये लोग अगर सिर्फ सभाओं में व्याख्यान देते, या मंदिरों में कथा-कीर्तन ही करते, तो अुनके अुपदेश सुनने के लिये कोअी न जाता। लेकिन अुन्होंने गरीबों को अपने पास बुलाने की जगह खुद अुनके पास जाने का तरीका अख्तियार किया था।

आप अपने मनश्चक्षु के सामने अेक चित्र खींचिये: अुत्तरा और चित्रा की सख्त धूप मनुष्य और पशुओं की पीठ भून रही है, जमीन तपी हुअी है, अेक किसान अपने खेत में हल चला रहा है—सबसे आगे दो बैल हैं, बीच में अेक हल है, हल पर हाथ रख कर बैलों के पीछे चलनेवाला किसान है, और अुस किसान की खेती का समय नष्ट न करते हुअे अुसके पीछे पीछे चल कर अुसे बड़े प्रेम और लगन से अुपदेश करनेवाला स्वामीनारायणपंथीय साधु सबसे पीछे है! वे बैलवाले जमीन तैयार कर रहे थे और यह साधु अुनके कठिन हृदय पर हल चला रहा था—'हे जीव, पाप करके कहाँ जायेगा तू? तुझे यह सारा सुख कब तक नसीब होगा, भैया? जितना कमाता है, अुसमें से अेक जर्रा भी तेरे साथ नहीं जायेगा। भाअी, पुण्य कर, झूठ मत बोल, किसीको नुकसान न पहुँचा, पशु-पक्षियों के साथ दया का व्यवहार कर। अुनका आशीर्वाद ही पुण्य का संचय है। वही पुण्य परलोक में तेरे काम आयेगा'।

शुरू शुरू में वह किसान अुसकी तरफ़ ध्यान ही नहीं देता था। शायद यह भी सोचता था कि यह क्या बला मेरे पीछे पडी है ? शायद वह अिस विचार से चिढ़ भी गया होगा कि यह सयुआ मुझे अपने बाल-बच्चों का ख़याल भी करने को मना करता है। लेकिन वह साधु अेक अेक बूंद से हौज भरता ही जाता था।

अगर तुम अीश्वर में मानते हो तो अुसके लिअे मुझे कोअी बडी खुशी नहीं होगी। मैंने कअी लोग अैसे देखे हैं जो केवल अिसलिअे आस्तिक कहलाते हैं कि नास्तिक होना शोभा नहीं देता। अपने लाभ के लिअे लोभी व्यक्ति भी अीश्वर में विश्वास करते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति का यह विश्वास हो कि अिन चोर, लुटेरों और डकैतों का भी जीवन-परिवर्तन हो सकता है, वही सच्चा आस्तिक है। तुम्हारा अीश्वर में जो विश्वास है, अुसकी कसौटी क्या हो सकती है ? मनुष्य-हृदय के प्रति तुम्हारी श्रद्धा की परीक्षा तुम्हारी सेवा से अनायास हो जाती है। जिसकी मनुष्य में अटल, अखंड, निष्ठा हो वही यथार्थ में आस्तिक है।

आज जो ख़ास बात मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि भविष्य में सभी देशों में संसार का नेतृत्व देहात करेंगे। यूरोप में आज जो लडाअी हो रही है, वह शहर की संस्कृति का नाश करेगी। अगर अिस युद्ध में नहीं तो अगले युद्ध में शहरी संस्कृति नष्ट होने ही वाली है। अुसने चाहे कितनी ही तरक्की क्यों न की हो, वह मनुष्य-जाति के विकास की पोषक नहीं है। चाहिअे तो यह था कि शहर देहातों के पोषक होते, मगर अुसके बदले वे आज देहातों के भक्षक हैं।

ग्राम-संस्कृति में स्वावलंबन, शरीर-श्रम, परस्पर विश्वास और सहयोग की प्रतिष्ठा होती है। शहरों में चढ़ा-अूपरी, होड, कमजोरों का शोषण और अूच-नीच की भावना का प्राधान्य होता है। आज सर्वत्र अिसी मनुष्यद्रोही शहरी संस्कृति का ही बोलबाला है। अुसीका अन्तिम स्वरूप है महायुद्ध। आज तो गाँवों में रहनेवाले भी शहरी संस्कृति के ही अुपासक हो गये हैं। जिस प्रकार जिसके पास धन है, वह तो धन-लोभी होता ही है, परन्तु जिसके पास धन नहीं होता, वह अधिक धन-लोभी होता है; अुसी प्रकार जिन्हें शहरी जीवन का आस्वाद नहीं मिला है, वे देहाती भी शहरी जीवन की ही अभिलाषा रखते हैं। यह सारा पलट जाना चाहिअे। हिन्दुस्तान में जब ग्राम-संस्कृति की स्थापना होगी, तभी हिन्दुस्तान का और जगत का अुद्धार होगा। खादी, ग्राम-अुद्योग, सर्व-धर्म समभाव, सहयोग और अूच-नीच-भाव का त्याग आदि सारी बातें ग्राम-संस्कृति की प्राण-प्रतिष्ठा ही के लिअे हैं। अुनमें आपकी श्रद्धा बढ़ती रहे, यही मेरी प्रार्थना है।

(मराठी 'नवाकाळ' से)

सत्याग्रही छावनी का शिक्षाक्रम

[डॉ० प्रफुल्लचंद्र घोष]

अिधर कुछ समय से देश के जुदे जुदे हिस्सों में सत्याग्रही शिक्षा-शिबिर खुल रहे हैं। अिसलिअे अिन शिबिरों के शिक्षाक्रम के विषय में कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा।

व्यक्ति की शिक्षा का क्रम निर्धारित करना अिस बात पर निर्भर है कि शिक्षा समाप्त करने के बाद अुस व्यक्ति से कौन-से कर्तव्यों की पूर्ति की अपेक्षा की जाती है। भारत की बंधमुक्ति के लिअे सत्याग्रही अहिंसक सिपाही है। वह यह प्रतिज्ञा लेता है कि (१) वह बिना रोष के कारावास तथा मृत्युदण्ड भी सहन करेगा। (२) नियमितरूप से कातेगा, (३) खद्दर के सिवा दूसरा कपड़ा नहीं बरतेगा, (४) अस्पृश्यता किसी भी आकार या प्रकार की नहीं मानेगा, (५) आंतर्जातीय अेकता की भरसक कोशिश करेगा।

मनुष्य की जब यह संदेश-रहित श्रद्धा हो कि अुसका मार्ग अुपयुक्त और अुदात्त है, तभी वह मुसकराता हुआ अपने प्राणों की आहुति दे सकता है। अिसलिअे सत्याग्रही की बुद्धि में यह बात जम जानी चाहिअे कि वास्तविक स्वाधीनता अहिंसा से—केवल अहिंसा ही से—प्राप्त हो सकती है। हिंसा द्वारा प्राप्त स्वराज्य का मतलब ही यह है कि अुसमें कमजोर बहुजन-समाज पर मुट्ठीभर बलवान् व्यक्तियों की सत्ता होगी। सच्चे स्वराज्य का यह रास्ता नहीं है। हिंसक लड़ाअी में कमजोरों को कोअी स्थान नहीं होता। अहिंसक युद्ध में तो शरीर से दुर्बल व्यक्ति भी हाथ बँटा सकते हैं। अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त होना तभी संभव है जब कि अुसे प्राप्त करने की चेष्टा में अधिकांश जनता योग दे। तब वह स्वराज्य यथार्थ में जनता द्वारा, और अिसीलिअे जनता के लिअे, स्थापित होगा। वास्तविक लोकतंत्र का यही रास्ता है। सत्याग्रही को जब तक अहिंसा की कार्यक्षमता में यह बुद्धियुक्त श्रद्धा नहीं होगी, तब तक बिना प्रतिहिंसा के या प्रतिहिंसा की भावना के, वह मौत का आवाहन नहीं कर सकता। यूरोप में अिधर जो घटनाअें घटी हैं, अुनके कारण यद्यपि बहुतेरे हिन्दुस्तानियों को हिंसक अुपायों की व्यर्थता का विश्वास हो गया है, तथापि अभी अुनके हृदय की तह तक अहिंसा पैठी नहीं है। कांग्रेसजन भी मामली तरीकों से हिन्दुस्तान की आत्मरक्षा की योजना का समर्थन कर रहे हैं। भीतरी शांति की रक्षा के लिअे भी वे संरक्षक दलों के संगठन का प्रतिपादन कर रहे हैं। वे यह नहीं समझते कि सत्याग्रही, जो कि अहिंसा और सांप्रदायिक अेकता आदि की शपथ ले चुके हैं—अगर वे अपनी प्रतिज्ञा के प्रति वफ़ादार रहे तो—वे ही भीतरी शान्ति की रक्षा के लिअे सबसे अधिक योग्य हैं। अगर ज़रूरत हो, तो अुन्हें अपनी आहुति दे कर भी अपनी सचाअी सिद्ध करनी चाहिअे। मुझे ज़रा भी संदेह नहीं कि अिस तरीके से कम-से-कम मनुष्यों की बलि देनी पड़ेगी और अुससे अधिक-से-अधिक आंतरिक शांति स्थापित होगी। अिसलिअे शिबिरों में हमारी वर्तमान समस्याओं के समाधान के लिअे अहिंसा के महत्त्व और परिणामकारिता पर कअी व्याख्यान दिये जाने चाहिअें।

प्रतिज्ञा में जो दूसरी धारायें हैं, अुन्हें अेक शब्द में कॉंग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम कह सकते हैं। स्वराज्य, अहिंसा और रचनात्मक कार्यक्रम में क्या संबंध है? जब तक अुनकी समझ में यह बात भली भाँति नहीं आती कि अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त करने के लिये रचनात्मक कार्यक्रम की प्रगति अत्यंत आवश्यक है, तब तक अुस कार्यक्रम का प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित होना अशक्यप्राय है। सन् १९२१ से ही रचनात्मक कार्यक्रम कांग्रेस के कार्यक्रम का अेक अविभाज्य अंग रहा है। परन्तु अभी तक कॉंग्रेस-कमेटियों के कार्यकारी सदस्यों ने भी, जिनको कि कांग्रेस की हिदायतों पर अमल करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी है, अब तक अुसके महत्त्व को महसूस नही किया है। कुछ तो सामुदायिक सत्याग्रह और कातने में कोअी संबंध ही नहीं देखते। यद्यपि चरखे को राष्ट्रीय झंडे पर गौरवपूर्ण स्थान मिला है, तथापि यह बात बहुत ही थोडे कांग्रेसजनों ने महसूस की है कि चरखा अहिंसक समाजवाद का प्रतीक है। कुछ लोगों की यह राय है कि हरिजन-आन्दोलन भी अेक तरह से किनाराकशी है। कुछ का यह भी ख्याल है कि हिन्दू-मुस्लिम अेकता जरूरी तो है; मगर वह स्वराज्य की प्राप्ति के लिअे अनिवार्य नही मानी जानी चाहिये। अिसलिअे सत्याग्रहियों को स्वराज्य, अहिंसा और रचनात्मक कार्यक्रम का मार्मिक संबंध समझाने के लिअे व्याख्यान होने चाहिये।

अिन विषयों पर व्याख्यानों के लिअे मेरी समझ में दो घंटे का समय बस होगा। अिनमें से अेक घंटा प्रश्नोत्तर तथा व्याख्यान के विषय में जो शंकायें अुठी हों अुनके निवारण के लिअे रक्खा जाय। दूसरी भी अेक बात आवश्यक है। अुक्त विषयों के संबंध में स्वयं व्याख्याता के मन में किसी प्रकार का भ्रम या संदेह नहीं होना चाहिये, वरना वही 'अंधेन नीयमाना अन्धाः' वाली कहावत चरितार्थ होगी।

बौद्धिक और सैद्धान्तिक शिक्षा के विषय में अितना विवेचन काफी है। अब व्यावहारिक या क्रियात्मक शिक्षा का प्रश्न लीजिये। रचनात्मक कार्यक्रम की केन्द्रीय क्रिया कातना है। हर अेक सत्याग्रही को कातना अच्छी तरह जानना चाहिये। अर्थात् अेक घंटे में कम-से-कम ४०० गज, बटदार और २० नंबर का सूत कात सकना चाहिये। अुसे धुनाअी आदि अन्य आवश्यक क्रियायों का और हिन्दुस्तान में मिलनेवाली कपास की मुख्य मुख्य किस्मों का ज्ञान भी होना चाहिये। कातने के लिअे चार घंटे (दो सवेरे और दो शाम को) रखे जायँ, अैसा सुझाया गया है। चार घंटे की मौन कताअी से शिबिर में अेक वातावरण बनता है। शिक्षा समाप्त करने पर सत्याग्रही को अपना सारा खाली वक्त जिस रचनात्मक काम में लगा देना है, अुसके लिअे यह कवायत अुसे योग्य बनाती है। सत्याग्रही सभ्य प्रतीकार तो तभी करेगा, जब कि अुसे आज्ञा दी जायगी। अुसे कैद और मौत का सामना करने के लिअे हमेशा तैयार तो रहना चाहिये; मगर जेल जाने के लिअे चंचल नही हो अुठाना चाहिये। महज कैदखाने भर देना ही तो सत्याग्रह नहीं है। बल्कि मेरा तो यह विश्वास है कि अगर हम रचनात्मक कार्यक्रम में सफलतापूर्वक प्रगति करें, तो संभव है कि हम बिना जेल के ही अपने अुद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे।

चरखे में ग्राम-अुद्योगों का पुनर्जीवन भी शामिल है। अिसलिये शिबिरों में, अगर पूर्णरूप से नहीं तो, यथासम्भव, ग्राम-अुद्योग की चीजों का ही अुपयोग करना चाहिये।

शिबिर में सत्याग्रहियों को जात-पाँत और धर्म का कोअी भेद नहीं मानना चाहिये। अुन्हें सफाअी का सारा काम—यानी पाखाने की सफाअी भी—खुद ही करनी चाहिये। जिस प्रकार की खुराक स्वास्थ्य के लिअे बिलकुल जरूरी हो, वही अुन्हें खानी चाहिये। असलिअे अुन्हें सम्यक् आहार का भी कुछ ज्ञान होना चाहिअे।

अिसके बाद क़वायत का सवाल आता है। मैं जानता हूँ कि हमारे अिस देश में दस आदमी भी अेक कतार में नहीं चल सकते। अिसलिअे क़वायत का महत्त्व तो है; लेकिन हिंसा और फौजी तैयारी में श्रद्धा रखनेवाले सिपाहियों के शिबिर में क़वायत का जो महत्त्व है, वह यहाँ नहीं है। सत्याग्रह-शिबिर में अुसका स्थान गौण है। आध घंटे की—या बहुत तो अेक घंटे की—क़वायत काफी है।

अिस प्रकार शिक्षा-शिबिर में ४ घंटे कताअी (अिसमें धुनाअी का समय भी शामिल है), २ घंटे बौद्धिक वर्ग, १ घंटा क़वायत और १ घंटा सफाअी आदि का शिक्षा-क्रम होना चाहिअे। अिस शिक्षा के मूल में कल्पना यह है कि सत्याग्रही रचनात्मक कार्यक्रम की प्रगति के अुपयुक्त साधन बनें। यह कोअी दिखावे की चीज़ नहीं है। अिसलिअे अेक अेक महीने के लिअे शिबिर खोलना अधिक अच्छा होगा। पहले तो अेक महीने के लिअे अेक प्रान्तीय शिबिर खोला जाय, जिसमें सभी ज़िलों के मुख्य मुख्य कार्यकर्ता शामिल हों। बाद में अिन शिक्षित कार्यकर्ताओं की सहायता से ज़िलों के शिबिर खोले जायँ। अिस प्रकार अगर हिन्दुस्तान के सभी सत्याग्रहियों को शिक्षा दी जाय, तो अेक अजस्र शक्ति पैदा होगी।

गांधीजी ने १ जून १९४० के 'हरिजन' में अपने "अभी नहीं" शीर्षक लेख में यह लिखा कि 'मेरा मत है कि मित्रराष्ट्रों के बीच हो रही लड़ाअी की गरमी शान्त हो जाने और भविष्य के अधिक स्पष्ट होने तक हमें प्रतीक्षा करनी चाहिअे'। यह पढ़ कर कुछ लोग सोचने लगे कि अब तो शिबिर न खोलना ही बेहतर है; क्योंकि सत्याग्रह तो बहुत दूर की संभावना है। यह तो परिस्थिति को ग़लत बूझना और ग़लत समझना है। कॉंग्रेस चाहे अभी जल्दी ही सत्याग्रह शुरू न करे; लेकिन वह रचनात्मक कार्यक्रम नहीं छोड़ सकती। रचनात्मक कार्यक्रम छोड़ने का मतलब सिवा आत्महत्या के और कुछ नहीं होगा। अिसलिअे सत्याग्रहियों को रचनात्मक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के योग्य बनाने के अुद्देश्य से सत्याग्रही शिबिर बराबर खोले जाने चाहिअें। यूरोपीय युद्ध की परिस्थिति से अिसका कोअी संबंध नहीं होना चाहिअे। यही हमारे परम कल्याण का मार्ग है।

खादी के अर्थशास्त्र की मौलिक समस्याअें

[गांधी सेवा संघ की सभा में गांधीजी का भाषण]

अभी आपकी चर्चा का सारांश मुझे सुनाया गया। अुसपर से मुझे अैसा लगता है कि अेक चीज़ का खयाल आपकी चर्चा में नहीं रक्खा गया है; और यदि रक्खा है तो आप मुझे बतावें। अगर न रक्खा गया हो, तो अब आप अुसपर विचार करें।

मुझे लगता है कि अिस सारी चर्चा में हमने यह मान लिया है कि खादी अनिवार्य है, बेकारी दूर करने के लिअे सबसे अच्छी वस्तु कातने की क्रिया है। अैसा मान कर चरखा-संघ काम कर सकता है। गांधी सेवा संघ का क्षेत्र अुस से विस्तृत है। चरखा-संघ का क्षेत्र अुतना विस्तृत नहीं है। चरखा-संघ अेक ही काम के लिअे है। अुससे कह दिया गया कि बेकारों के लिअे सूत कतवाओ और खादी पैदा करो। अुसके प्रधान कार्यकर्ता दूसरे कार्य में नहीं पड़ सकते। अुनके कार्य की पद्धति में या औज़ारों में कोअी दोष पैदा हो जावे, तो अुनका निवारण वे करेंगे। अुसके लिअे कुछ शोध भी करें; यह दूसरी बात है।

मगर गांधी-सेवा-संघ की स्थिति अलग है। अुसे खादी का विरोध करनेवाले लोगों की शंकाओं का निवारण करना चाहिअे। खादी का विरोध करनेवाले भी अच्छे आदमी हैं। अुन्होंने जैसी तालीम पायी है, अुसके मुताबिक वे बात करते हैं। अुनमें से कअी अच्छे अच्छे अर्थशास्त्री हैं। सैंकड़ो पुस्तकें पढ़ते हैं, अभ्यास करते हैं और अपने क्षेत्र में, जो अनुभव ले सकते हैं, ले लेते हैं, खादी का भी अूपर अूपर से अभ्यास कर लेते हैं। अुनका खादी का ज्ञान अपूर्ण है। अुसे हम पूरा करें। हम अुनकी दलीलों का तभी जवाब दे सकते हैं, जब हम खुद अभ्यास करें। अुनकी बात समझने की कोशिश करें। बाद में अुनकी दलीलें काटने के लिअे हम अुन्हें समझावें तो वे भी हमारी बात सुनेंगे। मेरा यह अनुभव है कि अगर हम अुन्हें समझावें तो वे अपने कान बन्द नहीं कर लेते।

मैंने अुनकी बातें सुनी हैं। काफी प्रभावित भी हुआ हूं। मेरा विरोध करनेवाले बहुत मीठी बातें करते हैं, लेकिन अुसीमें कड़ुआ घूंट भी पिला देते हैं। सर गंगाराम अैसे ही विरोधकों में से थे। वे अेक बड़े अेंजिनियर थे। लेकिन अुनमें आध्यात्मिकता भी काफी थी। प्रेम से मीठी मीठी बातें करते थे। लेकिन कड़ुअी बात भी सुना देते थे। कहते थे, "तू तो दीवाना है, यह कातने की बात चलनेवाली नहीं है। आर्थिक दृष्टि से बिलकुल बेकार है।" मैं यह कह कर टाल देता था कि "आप अिन बातों को क्या जानें, आप तो अेक अेंजिनियर हैं। आपका क्षेत्र अेंजिनियरिंग है, न कि अर्थशास्त्र।"

सर गंगाराम तो अब चले गये। अब यह आर्थिक योजना समिति (नैशनल प्लैनिंग कमेटी) जवाहरलाल ने बनवायी है। अुसके बाद अेक छोटी ग्राम अुद्योग समिति बनी। सतीश बाबू अुनके सदर हैं। अुस ग्राम अुद्योग समिति में प्रो० राव वगैरा अर्थशास्त्री हैं। अुनसे काफी बहस हुअी। अुन्होंने कहा कि यदि आप धैर्य से सुनें तो हम यह सिद्ध करने को तैयार हैं कि कातने की क्रिया शास्त्रशुद्ध आर्थिक प्रमेय नहीं है। मैंने अुनसे कहा कि मैं आपकी बात खुले दिल से सुन लूंगा, आपे

दिल से नहीं। अगर आपकी बात सिद्ध हो गयी तो मैं अुसे मान भी लूंगा। लेकिन मैं खादी छोडूंगा नहीं; क्योंकि मैं तो अुसे अेक दूसरी दृष्टि से भी देखता हूं। मेरे नज़दीक तो अुसका अहिंसा से सीधा और अनिवार्य संबंध है। अिसलिअे मैं अुसे छोड़ना चाहूं तो भी अब नहीं छोड़ सकता। मेरी बात आर्थिक दृष्टि से सिद्ध नहीं होती अितना मैं मान लूगा"।

जैसा कि गाय के बारे में भी यह कहा जाता है कि "गाय आर्थिक दृष्टि से टिक ही नहीं सकती। हमें गाय को खाना पड़ेगा। हम अुसे खायेंगे और बचायेंगे"। अमेरिका और युरोप में गायों को तगड़ी और हृष्टपुष्ट रखते हैं। बेकाम गायें कत्ल कर दी जाती हैं। लेकिन अुन्हें कत्ल कर के फेंक थोड़े ही देते हैं? अुन्हें खा लेते हैं। अर्थशास्त्री कहते हैं कि वही यहां भी करना होगा। मैं जानता हूं कि आर्थिक दृष्टि से अुनको जवाब देना मुश्किल है। लेकिन अिसलिअे मैं गाय को मार कर थोड़े ही खानेवाला हूं? मैं तो मानता हू कि मनुष्येतर प्राणियों का भी स्थान समाज में है। यह दिखाने के लिअे हमारे पूर्वजों ने गाय को अुनका प्रतिनिधि बनाया है। कम-से-कम यह मेरी कल्पना तो है। मैं अुसमें राज्य कर रहा हूं। अिसलिअे अर्थशास्त्र से डरता नहीं हूं। अर्थशास्त्री कहते हैं कि यह गाय हमको खा जायगी। आज तो अुसका बुरा हाल है। जैसे हम हड्डियों के ढांचे हो रहे हैं, गाय भी हो रही है। यह सच है कि गाय हमको खा रही है। मुझे तो गाय को हृष्टपुष्ट बनाना है; मनुष्यों को भी बनाना है। वे कहते हैं कि यह अर्थशास्त्र में नहीं बैठता। मैं क्या करूं? मैं गाय को नहीं खा सकता।

मेरे लिअे खादी की भी वही बात है। वे कहते हैं कि कातने का धंधा अर्थशास्त्र की दृष्टि से अुपयुक्त नहीं है। वह केवल अेक पारमार्थिक बात हो जाय तो बात अलग है। तब तो वह केवल अेक पुण्यकार्य के जैसा चलेगा। कुछ लोग करोड़ों रुपया देते जायेंगे और हम अुसे अुड़ाते जायेंगे। कुछ थोड़े-से लोग धार्मिक दृष्टि से कातते रहेंगे। तब अुसका सम्बन्ध राजनीति से नहीं रहता। अुसका धर्म के साथ सम्बन्ध हो जाता है। अगर देश के अर्थशास्त्र से अुसका संबंध नहीं रहता, तो कांग्रेस में भी अुसका स्थान नहीं रहेगा। तब तो हमें कहना पड़ेगा कि जो लोग हमारा तत्त्व मानते हैं, वे धर्म-दृष्टि से अिस कपड़े को पहनें और अुसके लिअे ज्यादा दाम दें। धार्मिक दृष्टि से लोग अैसा करते भी हैं। गंगाजल भी केवल पानी ही है। लेकिन जिनकी अुसमें श्रद्धा है, वे गंगाजल के अेक अेक लोटे के लिअे चार या पाँच रुपये दे देते हैं। अगर हम खादी को वैसा ही मानते हैं, तो हमें हिचकिचाना नहीं चाहिअे। साफ साफ यह बात कबूल कर लेनी चाहिअे। यह जो कुछ मैंने कहा है, वह मेरी अपनी राय नहीं है। यह सब मैं नहीं मानता। यह तो अर्थशास्त्रियों की दलीलें हैं। अुन दलीलों का माकूल जवाब मैं नहीं दे सका। अगर मैं अुनकी सारी शंकाओं का अुत्तर ठीक ठीक दे सका, तो वे मेरे सहायक हो जायेंगे; अिसमें मुझे शक नहीं है। वे भी गरीबों की सेवा करना चाहते हैं। नाहक मेरा विरोध नहीं करना चाहते।

श्री जाजूजी ने कहा कि हम कताओ और खादी पर बोण्टी (दान) हमेशा के लिअे नहीं दे सकते। यह तो मैं भी मानता हूं। हमेशा दान पर जो चीज़ चलती है, वह तो अेक धार्मिक चीज़ हो जाती है। अुसका राजनीति

से और अर्थकरण से कोओ संबंध नहीं रह जाता। अगर हम खादी को आर्थिक दृष्टि से स्वयं पूर्ण नहीं बना सकते, तो अुसे दान से चलाना व्यर्थ है। असलिये दान की बात तो हम छोड़ दें।

जब राज-सत्ता हमारे हाथ में आ जायगी, तब हम मिलों को ज़बरदस्ती नहीं अुड़ा देंगे। हमें वह अधिकार तो होगा, लेकिन हम अुसका वैसा दुरुपयोग नहीं करेंगे। जब हम खुली आँखों से देखेंगे और जनता को तथा सत्प्रवृत्त मिल-मालिकों को बता सकेंगे कि आपके धंधे से देश को हानि पहुँचती है, तब हम मिलों को अुड़ायेंगे। हमने शराब की दूकानें बन्द करा दीं; क्योंकि अुनका धंधा अनैतिक था। अुनके धंधे मिट गये, लेकिन हमने अुन्हें पैसा नहीं दिया। मिलवालों के भी धंधे मिट जायेंगे, लेकिन हम अुन्हें हरजाना दे देंगे। वे समझ जायेंगे कि हमारे धन्धे से देश का नुकसान है तो वे खुशी से मिट जायेंगे। लेकिन अगर हम यह सिद्ध न कर सकें कि खादी अर्थशास्त्र की दृष्टि से फायदेमन्द है, तो वे पैसे लेकर भी क्यों बन्द करें? अेक जालिम की तरह हम क्यों बन्द करायें? और मिल-मालिक क्यों कबूल करें?

अगर मेरी बात आप अच्छी तरह समझ गये हों, तो आज ही हममें अितनी शक्ति आनी चाहिये कि हम मिलों का सीधा मुकाबला कर सकें। क्योंकि सत्ता आने पर भी हम ज़बरदस्ती से काम नहीं लेनेवाले हैं। तो फिर, हम आज ही मिलों का मुकाबला क्यों नहीं कर सकते? अगर अहिंसा से मिलों को बन्द करना है, तो आज ही क्यों नहीं कर सकते?

हमारे रास्ते में रुकावटें तो हैं ही। लेकिन सवाल यह है कि क्या यह मौलिक रुकावट भी है कि देश के कपड़े का सवाल खादी हल ही नहीं कर सकती? हर साल साठ करोड़ का कपड़ा बाहर से आता था। हमने १८-२० साल में १०-२० करोड़ की खादी बना ली, जिसमें कोओ बड़ा भारी काम नहीं किया। असलिये हमें अभ्यास और शोध करके असका निर्णय करना चाहिये कि क्या दरअसल हमारे रास्ते में यह *मौलिक* रुकावट है? सभी खादी-सेवक तो यह नहीं कर सकते। अुनमें से कुछ को बैठ कर यही काम करना चाहिये। मैं खुद नहीं कर सकता। मैंने अुतना अभ्यास नहीं किया। मैंने गुलजारीलाल को यह काम सौंप दिया है। गुलजारीलाल का अभ्यास काफी है। राव वगैरा भी अच्छे आदमी हैं। मैंने गुलजारीलाल से कह दिया है कि वह अुनके साथ बैठ कर असकी छानबीन करे। या तो गुलजारीलाल खुद हार जायें या अुन्हें हरा दें। अितनी शक्ति हममें आनी ही चाहिये। अगर यह सब न कर के हम यह कहेंगे कि सारे अर्थशास्त्री निकम्मे हैं, तो वह तो बड़ा अहंकार होगा। दूसरे भी अिस चीज़ का स्वतंत्र अभ्यास करें, ज़रूरत हो तो राव वगैरा के पास चले जायें। अुन्हें वे न जानते हों, तो मैं खत भी देने को तैयार हूँ। दूसरे भी अर्थशास्त्री हैं। अुनके पास भी हमें चले जाना चाहिये और अुनसे सहायता लेनी चाहिये। हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम असकी अच्छी तरह छानबीन करें और समझ लें।

अगर हम कताओ को अेक स्वतंत्र धंधा मानते हैं, तो हमारे लिये यह सोचने की बात है कि वह अपने पैरों पर क्यों नहीं खड़ा हो सकता? हम जड़ परिश्रम (अन्‌स्किल्ड लेबर) के जो दाम देते हैं, वह अगर कताओ जैसे कलापूर्ण श्रम के भी दें, तो खादी पर क्या असर होगा, यह भी सोचने की बात है।

कताओी की मजदूरी अगर आठ आने हैं, तो खादी का दाम पंद्रह आना गज हो जाता है। करोड़ों लोगों के लिये यह शक्य नहीं कि पंद्रह आना गज की खादी खरीदें। पंद्रह आना गज का दाम देनेवाले हमारे पास कितने हैं? यह हिसाब सुन कर मैं ठंडा हो गया। हिन्दुस्तान की आज की हालत में यह असंभव है। मेरी आठ आने की बात खतम ही हो गयी। करोड़ों मजदूरों को चार आना भी नहीं मिलता; तीन आना भी नहीं मिलता। जो खुद की खेती करते हैं, अनको कुछ भी नहीं मिलता, घाटा आता है। अैसी हालत में किसी तरह हम चार आने तक पहुँचे हैं। लेकिन कत्तिन को आठ आने मजदूरी देने से अगर खादी के दाम पंद्रह आना गज हो जाते हैं, तब तो मेरी बात खतम हो जाती है। चार आने देने पर भी खादी महँगी ही होती है। अिसलिये हमें अिसमें अपनी बुद्धि लगानी चाहिये, शोध करनी चाहिये। यह जो शोध करनी है, वह आप करें।

मैंने जो विचार किया है, अुसका नतीजा लिखा है। लेकिन वह मोटा हिसाब है। मैंने कमरे में बैठ कर किया है। मैंने कहा है कि हम अैसी आशा न करें कि हम मिल के कपड़े जैसी खादी सिर्फ मजदूरों से तैयार करा लेंगे। अुस बात पर मैं कायम हूँ। हम खादी अिस तरह से नहीं पैदा कर सकते कि सब लोग खादी खरीदें। अिसका मतलब यह है कि करोड़ों को तो खुद कातना है। बाजारू खादी थोड़े आदमियों के लिये होगी। अुसके लिये हम कत्तिनों को अधिक-से-अधिक कितना दे सकते हैं, अिसकी भी शोध करनी चाहिये। यह सारी खोजबीन और शोध हमें करनी है जिसमें अर्थशास्त्री हमारी मदद नहीं कर सकते।

अिस दिशा में थोड़ा-बहुत काम हमने किया है। लेकिन अभी पुस्तक-रूप में अपने अनुभव के परिणाम लिपिबद्ध नहीं किये हैं। जो कुछ काम हुआ है, वह अेक शास्त्र बनाने के लिये काफी नहीं है। अब वह मौका आ गया है। खादी-सेवक अभ्यास और शोध करें। अभ्यासियों से मैंने अब तक अभ्यास नहीं कराया। अिसमें मेरा दोष है। अब चाहता हूँ कि थोड़े-से अभ्यासियों को रख कर अुनसे खोज और अभ्यास कराअूं। यंत्रवाद के जो पुजारी हैं, वे काफी अभ्यास और शोध करते हैं। अपने ढंग से अमली काम भी करते हैं। अपने अध्ययन और अनुभव के परिणाम जगत के सामने रखते हैं। हमारे पास अैसे कोअी आदमी नहीं हैं, जो चरखा भी चलावें और अध्ययन तथा शोध भी करते रहें। यह बात हमारे करने की है, न कि अुन अर्थशास्त्रियों की।

तो मैंने दो चीजें आपको बतायीं। अेक, हमें अर्थशास्त्र का अुनकी दृष्टि से अभ्यास करना चाहिये। अुस दृष्टि से खादी-शास्त्र में सुधार करने की जगह हो तो सुधार करने चाहिये। अुनको और बुद्धिमान तटस्थ व्यक्तियों को संतोषकारक हो, अैसे अुत्तर देने की शक्ति हममें आनी चाहिये। तभी खादी स्थायी हो सकती है।

दूसरी बात यह बतायी कि हमें शोध करनी चाहिये। अिस प्रकार की शोध करने की जिम्मेदारी कुछ खास खादी-सेवकों की है। अुन्हें शोध करके नयी नयी योजनायें बनानी चाहियें। जैसे प्रभुदास है; अुसके पास अेक योजना पड़ी है। अुसने मुझे भेज दी है। मैं पूरी पूरी समझ नहीं सका हूं। फिर भी, अुसमें मैंने दोष पकड़ लिये हैं। अुनका ज़िक्र नहीं करूंगा। आप अुसकी योजना अुससे समझ लीजिये;

जो दोष हैं, आप भी पकड़ लेंगे। अगर अुसमें कोओ शक्ति है, तो ले लीजिये। वह मानना है कि अुसके तरीके से खादी व्यापक हो सकती है।

दूसरा वह प्रयोग है, जो मैं सेवाग्राम में बैठ कर करने की कोशिश में हूं। अभी तो कोओ बड़ा भारी परिणाम आया है, अैसा नहीं कह सकता। यह भी नहीं कह सकता कि आज तक का काम कोओ बहुत आशाजनक है। लेकिन अुससे मैंने कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। बेकारी की बात तो हम झट-से मान लेते हैं। सेवाग्राम में जो लोग बैठे हैं वे बेकार नहीं हैं। वे पैसे ले कर भी कातने नहीं आते। बिना पैसे के कातने की राष्ट्रभावना या धर्मभावना तो अुनमें है ही नहीं। मतलब यह कि, हमें यह खोज करनी होगी कि बेकारी की जो बात हमने मान ली है वह कहाँ तक सच है। क्या दरअसल हम जिस मात्रा में बेकारी मानते हैं, अुस मात्रा में वह है? यह अध्ययन और खोज का विषय है।

अुदाहरणार्थ, बेकारी के विषय में जवेरभाओ कहते हैं कि 'मैं तो बेकारी देखता ही नहीं'। वे अभी गुजरात हो आये। वे कहते हैं कि 'कम-से-कम गुजरात में तो मैं बेकारी नहीं देखता'। अुनका निरीक्षण कहाँ तक सही है, वह तो लक्ष्मीदास कह सकते हैं। जवेरभाओ का कथन है कि गुजरात में कम-से-कम औरतें तो बेकार नहीं हैं। वे चावल कूटने, पीसने आदि कओ प्रकार के काम करती हैं। पुरुष बेकार हैं। थोड़ा-बहुत काम खेती का कर लेते हैं। लेकिन वे कातनेवाले नहीं हैं। हमें अिसकी छानबीन करनी चाहिये कि जवेरभाओ का अवलोकन कहाँ तक यथार्थ है। अुनके कथन के बाद भी मैं तो यही मानता हूँ कि हमारे यहाँ बहुत बड़े पैमाने पर बेकारी है। साल में चार महीने लोग बेकार रहते हैं। जहाँ अेक ही फसल होती है, वहाँ के किसान तो छह महीने बेकार रहते हैं। अब देखना यह है कि यह सिर्फ अनुमान ही है या वस्तुस्थिति भी है। हम तो यह मान कर बैठे हैं और आज भी मानते हैं कि यह वस्तुस्थिति है। अंग्रेज लेखकों ने और दूसरे अभ्यासकों ने यही लिखा है और जवेरभाओ ने अुसका प्रतिवाद किया है। हमें शोध करनी होगी कि अुनके प्रमाण कहाँ तक संतोषकारक हैं।

आपके सामने कओ गोलमाल सूचनाअें आ गयी होंगी। मैंने अेक सूचना और पेश कर के अुस गोलमाल को शायद बढ़ा ही दिया है। आप अिन सब सूचनाओं पर विचार करें और सर्व-मान्य निर्णय करें। खोज के लिअे प्रबन्ध करें।

अिस विषय में कोओ प्रश्न पूछने हों तो पूछें।

जाजूजी—हमारा खादी पर प्रेम है; अिसलिअे हम अुसके विषय में कोओ मूलगामी आक्षेप की बात सोचते ही नहीं। हम जिन बातों को मौलिक मानते हैं, अर्थशास्त्री अुनका कोओ मूल्य नहीं समझते।

गांधीजी—अिसीलिअे वे जितनी बातें कहते हैं, वे हमारे क्षेत्र के बाहर हो जाती हैं। हमें अुनके आक्षेपों को लेखबद्ध करके समझ लेना चाहिये। अुनकी और हमारी भूमिका में भेद जरूर है; लेकिन दोनों की भूमिकायें स्पष्ट हो जाने पर मालूम होगा कि जितना भारी भेद हम मानते हैं, अुतना बड़ा भेद अुनके और हमारे बीच नहीं है। कम-से-कम मुझे अैसा लगता है। हम दोनों मानते हैं कि हिन्दुस्तान गरीब मुल्क है। हमें अुसे धनाढ्य नहीं बनाना है, लेकिन सुखी तो बनाना है। आज करोड़ों को दूध, घी और अच्छा अन्न नहीं मिलता। पेटभर खाना भी नहीं मिलता।

हम तो चाहते हैं कि हर अेक को पेटभर खाना मिले। हम पेटभर खाना किसे समझते हैं, सुखी जीवन हम किसे कहते हैं, जिसकी व्याख्या करें। कितना घी-दूध हो, कितना कपडा हो, कैसा मकान हो, यह सब तय करें। यहाँ तक तो अुनके हमारे बीच कोअी भेद नहीं है। भेद तो आगे चल कर आता है, जब कि वे कहते हैं कि हर अेक के पास अेक अेक मोटर हो और हम कहते हैं कि अेक गाँव के लिअे भी अेक मोटर ज़रूरी नहीं है। लेकिन वह तो दूर की बात है। हमारी कल्पना के अनुसार हर अेक को अच्छा अन्न, घी, गुड़, कपडा, घर, आदि मिलने के लिअे कितनी आमदानी की ज़रूरत है, यह पहले तय करें। सुखी जीवन की अपनी कल्पना निश्चित करें। अिसकी खोज करें कि खादी अुसमें कहाँ तक सहायक होती है। बाकी की बातें छोड़ दें।

हमें देखना चाहिअे कि खादी में देहातों को ये सुविधायें प्राप्त करा देने की कितनी शक्ति है। किसी गाँव में खादी का प्रचार होने पर भी गाँववालों को अगर घी, दूध वगैरा नहीं मिलता तो समझ लेना चाहिअे कि हमारे अर्थशास्त्र में ही दोष है। यह अभ्यास का विषय है। आज तक मैंने अैसा अभ्यास नहीं कराया। यह मेरा दोष है। अगर मैं शंकरलाल को लिखता रहता कि अिन बातों की खोज करो, तो कुछ-न-कुछ काम हो ही जाता। अिसमें हमारी शिथिलता रही है। गांधी सेवा संघ के पास अैसे आदमी चाहिअे, जो संशोधन ही करते रहें। वे केवल ग्रंथ-कीटक नहीं होंगे। लेकिन अभ्यास और खोज अनिवार्य है। तभी खादी में सुधारणा होगी और अुसका प्रचार व्यापक होगा।

अहिंसक राज्य-पद्धति में आखिर यह आनेवाला है कि जो कुछ होगा, वह अूपर से नहीं किन्तु भीतर से होगा। याने जो सुधार होंगे, वे लोगों की अपनी प्रेरणा से होंगे; राज्य की ज़बरदस्ती से नहीं। राज्य केवल लोगों के समुदाय का प्रतिनिधि होगा। लोक-समुदाय का दोहन वह नहीं कर सकेगा। लोगों के कामों में राज्य दखल नहीं देगा। हमें तो आज ही हम राज्यकर्ता हैं, अैसा मान लेना चाहिअे। आज की सल्तनत भी हमारे अिन कामों में दखल कहाँ देती है? अुसका कर अदा करने के बाद अिन बातों में वह बाधा नहीं डालती। हम खुशी से ये प्रवृत्तियाँ चला सकते हैं। आज की सल्तनत से हमारी लडाअी दूसरे कारणों से है। लेकिन आज भी हम अहिंसक राज्य करना चाहें तो, वह रुकावट नहीं कर सकती।

मैं सेवाग्राम में बैठ कर देखता हूँ कि सरकार तो दखल नहीं देती। लेकिन फिर भी, वहाँ मेरा अहिंसक राज्य नहीं चल सकता। अहिंसक पद्धति से स्वराज्य तो हमारे पास पडा ही है। सरकार रुकावट नहीं कर सकती। काँग्रेस-सरकार ने कुछ मदद की। लेकिन मैं अुससे कोअी फायदा नहीं अुठा सका। क्योंकि अहिंसा का कार्य सत्ता या दण्ड से आगे नहीं बढ़ता। अिसलिअे मैं कहता हूँ कि अहिंसक स्वराज्य तो हम जिस क्षण चाहें, अुसी क्षण हमें प्राप्त है। अेक थोडी-सी चीज़ रुकावट करती है; वह अुडा देनी है। वह है हमारी अशक्ति। हममें शक्ति आनी चाहिअे। मेरा मतलब जेल में जाने की शक्ति से नहीं है। मैंने जो लिखा है, 'मेरी शर्तें पूरी हो जायें, तो स्वराज्य हमारे कदमों में पडा है', वह कोअी शब्दालंकार नहीं है। अुसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। वह सो-टका शुद्ध सत्य मैंने लिखा है। हमें लोगों के साथ ओत-प्रोत होना सीखना चाहिअे। अहिंसा की शक्ति का विकास करना चाहिअे।

फिर तो अेक भी आदमी के जेल जाने की जरूरत नहीं है। स्वराज्य हमारा है।

हमें यह भ्रम है कि स्वराज्य मिलने पर हम यह सब कुछ कर सकेंगे। यह हमारी भूल है। स्वराज्य का अनुभव तो हमने दो साल तक ले लिया। हमें अपने काम के लिअे दस-बीस हजार रुपया मिला। हम यह नहीं कह सकते कि हमने कौड़ी-कौड़ी का अुपयोग बुद्धिपूर्वक किया। केन्द्रीय सरकार हमारे हाथों में नहीं है, अिस शिकायत से भी खादी कार्य का कोअी संबंध नहीं है। केन्द्रीय सत्ता हमारे हाथ में न होने से हम केवल अितना ही नहीं कर सकते कि मिलों पर कर लगावें। लेकिन अिससे हमारे काम में कोअी रुकावट नहीं होती।

अन्नदाबाबू—आपने कहा है कि अिस काम में बड़ी दूर तक हम और समाजवादी साथ-साथ चल सकते हैं। लेकिन वे कहते हैं कि हर अेक के पास अेक अेक मोटर हो, और हम कहते हैं कि अिसकी जरूरत नहीं है, तो अिसकी सीमारेखा क्या मानी जाय? सुखी जीवन-मान की हमारी क्या कल्पना है?

गांधीजी—यह तो हमारा काम है—कार्यकर्ताओं का। हम तय करें कि कितना दूध-घी वगैरा होने से हम मनुष्य को सुखी मानेंगे।

सतीशबाबू—दिक्कत यह है कि वे पूछते हैं कि जीवन का यह मान नियत क्यों रहे? हम अुसे अुत्तरोत्तर बढ़ाते ही क्यों न जावें? यहीं हमारा और अुनका मार्ग-भेद हो जाता है।

गांधीजी—अुनका और हमारा यह मार्ग-भेद तो रहनेवाला ही है। अुसको मान कर अुनमें और हममें जो बातें सामान्य हैं, वहाँ तक तो हम साथ चलें। समाजवादी की कल्पना के अनुसार सुखी समाज का निर्माण करना आसान नहीं है। अिसके लिअे अितना भयंकर यंत्रीकरण करना होगा कि मनुष्य की बुद्धि के विकास के लिअे बहुत कम गुंजािश रहेगी। आज तो अेक तरह की अराजकता है। कारीगर अपनी बुद्धि से काम करते हैं। अपनी मर्जी से विश्राम लेते हैं। सबको अपनी बुद्धि के प्रयोग करने का अवसर है। अेक तरह से यह अराजकता भी अच्छी है। यांत्रिक व्यवस्था में तो सभी यंत्रवत जड़ हो जायगा। लेकिन यह तो दूर की बात है। आज हमें साधना करनी है अिस बात की कि हम अपनी कल्पना के अनुसार सुखी जीवन कैसे ला सकते हैं? खादी का अुसमें क्या स्थान है? यह व्यवस्थित बुद्धि के प्रयत्न का विषय है। हममें यह शक्ति आनी चाहिअे कि हम जो कुछ अनुभव, अवलोकन और अध्ययन करें, अुसको ठीक ठीक लेखबद्ध कर सकें और अुसके परिणाम अर्थशास्त्रियों के आगे रख सकें।

वर्धा,
ता. २१-६-४० }

वीरों की अहिंसा का प्रयोग

[गांधी सेवा संघ की सभा में गांधीजी का दूसरा भाषण]

मेरी साधना

मैंने जाजूजी के पास कुछ प्रश्न दिये। जिसका कारण यह है कि मेरे दिल में भी अनेक तरह के विचार आते रहते हैं। मैंने आज तक अहिंसा या ग्रामोद्योग के जो विचार और कार्यक्रम जगत के सामने रक्खे, अुसका मतलब यह नहीं था कि मेरे पास कोअी बने-बनाये सिद्धान्त पड़े हैं, या मैंने कोअी अन्तिम निर्णय कर लिये हैं। परंतु; फिर भी, अिस विषय में मेरे कुछ विचार तो हैं ही। पचास वर्ष तक मैंने अेक ही चीज़ की साधना की है। ज्ञानपूर्वक विचार भले ही न किया हो, लेकिन फिर भी, विचार तो होता ही रहा। अुसे आप मेरी अन्तर-आवाज कहें या अनुभव का परिणाम कहें। जो कुछ है, आपके सामने रखता हूं। पचास साल तक अुसी अन्दर की आवाज़ का श्रवण करता रहा हूँ।

'अहिंसा' शब्द निषेध पर

जो अहिंसक है, अुसके हाथ में चाहे कोअी भी अुद्यम क्यों न रहे, अुसमें वह अधिक-से-अधिक अहिंसा लाने की कोशिश करेगा ही। यह तो वस्तुस्थिति है कि बगैर हिंसा के कोअी भी अुद्योग चल नहीं सकता। अेक दृष्टि से जीवन के लिअे हिंसा अनिवार्य मालूम होती है। हम हिंसा को घटाना चाहते हैं, और हो सके तो अुसका लोप करना चाहते हैं। मतलब यह कि हम हिंसा करते हैं, परंतु अहिंसा की ओर कदम बढ़ाना चाहते हैं। हिंसा का त्याग करने की हमारी कल्पना में से अहिंसा निकली है। अिसलिअे हमें शब्द भी निषेधात्मक मिला है। 'अहिंसा' शब्द निषेधात्मक है।

'अहिंसा' की मर्यादित व्याख्या

अर्थात् जो अहिंसा को मानता है, वह जो अुद्योग करेगा, अुसमें कम-से-कम हिंसा करने का प्रयत्न करेगा। लेकिन कुछ अुद्योग ही अैसे हैं, जो हिंसा बढ़ाते हैं। जो मनुष्य स्वभाव से ही अहिंसक है, वह अैसे चन्द अुद्योगों को छोड़ ही देता है। अुदाहरणार्थ, यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि वह कसाअी का धंधा करेगा। मेरा मतलब यह नहीं है कि मांसाहारी कभी अहिंसक हो ही नहीं सकता। मांसाहार दूसरी चीज़ है। हिन्दुस्तान में थोड़े-से ब्राह्मण और वैश्यों को छोड़ कर बाकी के सब तो मांसाहारी ही हैं। लेकिन फिर भी, वे अहिंसा को परमधर्म मानते हैं। यहाँ हम मांसाहार की हिंसा का विचार नहीं कर रहे हैं। जो मनुष्य मांसाहारी है, वे सारे हिंसावादी नहीं हैं। मैं यह कैसे कह सकता हूं कि मांसाहारी मनुष्य अहिंसक नहीं होता? अैंड्रूज़ से बढ़ कर अहिंसक मनुष्य कहाँ मिलेगा? लेकिन वह भी तो पहले मांसाहारी था। बाद में अुसने मांसाहार छोड़ दिया। लेकिन जब मांसाहारी था, तब भी अहिंसक तो था ही। छोड़ने पर भी, मैं जानता हूं, कि कभी कभी जब वह अपने बहन के पास चला जाता था तब मांस खा लेता था, या डॉक्टर लोग आग्रह करते थे तो भी खा लेता था। लेकिन अुससे अुसकी अहिंसा थोड़े ही कम हो जाती थी? अिसलिअे यहाँ हमारी अहिंसा की व्याख्या परिमित है। हमारी अहिंसा मनुष्यों तक ही मर्यादित है।

हिंसक और अहिंसक अुद्योग

लेकिन मांसाहारी अहिंसक भी बाज चीज़ तो छोड़ ही देता है। जैसे वह शिकार कभी नहीं करेगा। यानी जिनसे हिंसा का विस्तार बढ़ता ही जाता है, अुन प्रवृत्तियों में वह कभी नहीं पड़ेगा। वह युद्ध में नहीं पड़ेगा। युद्ध के शस्त्रास्त्र बनाने के कारखानों में काम नहीं करेगा। अुनके लिअे नये नये शस्त्रों की खोज नहीं करेगा। मतलब, वह अैसा कोअी अुद्योग नहीं करेगा, जो हिंसा पर ही आश्रित है और हिंसा को बढ़ाता है।

अब, काफी अुद्योग अैसे भी हैं, जो जीवन के लिअे आवश्यक हैं; लेकिन वे बिना हिंसा के चल ही नहीं सकते। जैसे खेती का अुद्योग है। अैसे अुद्योग अहिंसा में आ जाते हैं। जिसका मतलब यह नहीं है कि अुनमें हिंसा की गुंजाअिश नहीं है; अथवा वे बिना हिंसा के चल सकते हैं। लेकिन अुनकी बुनियाद हिंसा नहीं है और वे हिंसा को बढ़ाते भी नहीं हैं। अैसे अुद्योगों में होनेवाली हिंसा हम घटा सकते हैं और अुसे अपरिहार्य हिंसा की हद तक ले जा सकते हैं। क्योंकि आखिरी अहिंसा हमारे हृदय का धर्म है। हम यह नहीं कह सकते कि किसी अुद्योग का अहिंसा से अनिवार्य संबंध है। वह तो हमारी भावना पर निर्भर है। हमारा हृदय अहिंसक होगा, तो हम अपने अुद्योग में भी अहिंसा लायेंगे।

अहिंसा केवल बाह्य वस्तु नहीं है। मान लीजिये अेक मनुष्य है, काफी कमा लेता है और सुख से रहता है। किसीका कर्ज वगैरा नहीं करता, लेकिन हमेशा दूसरों की अिमारत और मिलकियत पर दृष्टि रखता है, अेक करोड़ के दस करोड़ करना चाहता है, तो मैं अुसे अहिंसक नहीं कहूंगा। अैसा कोअी धंधा नहीं जिसमें हिंसा हो ही नहीं। लेकिन चन्द धन्धे अैसे हैं जो हिंसा को ही बढ़ाते हैं। अहिंसक मनुष्य को अुन्हें वर्ज्य समझना चाहिअे। दूसरे अनेक धन्धों में अगर हिंसा के लिअे स्थान है तो अहिंसा के लिअे भी है। हमारे दिल में अगर अहिंसा भरी हुअी है तो हम अहिंसक वृत्ति से अुन धन्धों को करें। हम अुन अुद्योगों का दुरुपयोग करें यह बात दूसरी है।

प्राचीन भारत की अर्थ-व्यवस्था

मेरे पास कोअी अैतिहासिक प्रमाण नहीं है। परंतु मेरा अैसा विश्वास है कि हिन्दुस्तान कभी सुखी रहा है। अुस ज़माने में लोग अपने अपने धन्धे परोपकारबुद्धि से करते थे। अुसमें से अुदर-निर्वाह तो ले लेते थे; लेकिन धन्धा समाज के हित का ही होता था। मेरा कुछ अैसा खयाल है कि जिन्होंने हिन्दुस्तान के गाँवों का निर्माण किया, अुन्होंने समाज का संगठन ही अैसा किया जिसमें शोषण और हिंसा के लिअे कम-से-कम स्थान रहे। अुन्होंने मनुष्य के अधिकार का विचार नहीं किया; अुसके धर्म का विचार किया। वह अपनी परंपरा और योग्यता के अनुसार समाज के हित का अुद्योग करता था। अुसमें से अुसे रोटी भी मिल जाती थी यह दूसरी बात थी। लेकिन अुसमें करोड़ों को चूसने की भावना नहीं थी। लाभ की भावना के बदले धर्म की भावना थी। वे अपने धर्म का आचरण करते थे; रोटी तो योंही चली जाती थी। समाज की सेवा ही मुख्य चीज़ थी। अुद्योग करने का अुद्देश व्यक्तिगत नफा नहीं था। समाज का संगठन ही अैसा था। अुदाहरणार्थ, गांव में बढ़अी की ज़रूरत होती थी। वह खेती के लिअे औज़ार तैयार करता था;

लेकिन गाँव अुसे पैसे नहीं देता था। देहाती समाज पर यह बन्धन लगा दिया था कि अुसे अनाज दिया जाय। अुसमें भी हिंसा काफी हो सकती थी। लेकिन सुव्यवस्थित समाज में अुसे न्याय मिलता था। और किसी ज़माने में समाज सुव्यवस्थित था अैसा मैं मानता हूं। अुस वक्त अिन अुद्योगों में हिंसा नहीं थी।

अेक अुदाहरण

मेरे अिस विश्वास के काफी सबूत हैं। अपने छुटपन में जब मैं काठियावाड़ के देहातों में जाता था तो लोगों में तेज था। अुनके शरीर हट्टे-कट्टे थे। आज वे निस्तेज हो गये हैं। घर में दो बरतन भी नहीं रहे। अिस पर से मुझको अैसा लगता है कि किसी वक्त हमारा समाज सुव्यवस्थित था। अुस वक्त अुसका जीवन अहिंसक था। अहिंसक जीवन के लिअे आवश्यक सब अुद्योग अच्छी तरह चलते थे। अहिंसक जीवन के लिअे जितने अुद्योग अनिवार्य हैं, अुनका अहिंसा से सीधा संबंध है।

शरीर-श्रम

अिसीमें शरीर-श्रम आ जाता है। मनुष्य अपने श्रम से थोड़ी-सी ही खेती कर सकता है। लेकिन अगर लाखों बीघे जमीन के दो चार ही मालिक हो जाते हैं तो बाकी के सब मजदूर हो जाते हैं। यह बगैर हिंसा के नहीं हो सकता। अगर आप कहेंगे कि वह मजदूर नहीं रखेंगे, यंत्रों से काम लेंगे; तो भी हिंसा आ ही जाती है। जिसके पास अेक लाख बीघा ज़मीन पड़ी है, अुसे यह घमण्ड तो आ ही जाता है कि मैं अितनी ज़मीन का मालिक हूं। धीरे धीरे अुसमें दूसरों पर सत्ता कायम करने की लालच आ जाती है। यंत्रों की मदद से वह दूर दूर के लोगों को भी गुलाम बना लेता है। और अुन्हें अिसका पता भी नहीं होता कि वे गुलाम बन रहे हैं। गुलाम बनाने का अैसा अेक खूबसूरत तरीका अिन लोगों ने ढूंढ़ लिया है। जैसे फोर्ड है। अेक कारखाना बना कर बैठ गया है। चन्द आदमी अुसके यहाँ काम करते हैं। लोगों को प्रलोभन दिखाता है, विज्ञापन निकालता है। अुसने हिंसक प्रवृत्ति का अैसा मोहक रास्ता निकाल लिया है कि हम अुसमें जा कर फँस जाते हैं और भस्म हो जाते हैं। हमें अिन बातों का विचार करना है कि क्या हम अुसमें फँस जाना चाहते हैं या अुससे बचे रहना चाहते हैं?

मेरा विशेष दावा

अगर हम अपनी अहिंसा को अविच्छिन्न रखना चाहते हैं और सारे समाज को अहिंसक बनाना चाहते हैं तो हमें अुसका रास्ता खोजना होगा। मेरा तो यह दावा रहा है कि सत्य, अहिंसा, वगैरा जो यम हैं वे ऋषि-मुनियों के लिअे नहीं हैं। पुराने लोग मानते हैं कि मनु ने जो यम बतलाये हैं वे ऋषि-मुनियों के लिअे हैं, व्यवहारी मनुष्यों के लिअे नहीं हैं। मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज़ है। केवल व्यक्तिगत चीज़ नहीं है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है और ब्रह्माण्ड भी। वह अपने ब्रह्माण्ड का बोझ अपने कंधे पर लिये फिरता है। जो धर्म व्यक्ति के साथ खतम हो जाता है, वह मेरे काम का नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है और आज भी कर रहा है। मैंने अिसी विश्वास पर चलने की कोशिश की है और

में मानता हूँ कि मुझे अुसमें निष्फलता नहीं मिली।

अहिंसा समाज का प्राण है

मेरे लिअे अहिंसा समाज के प्राण के समान चीज़ है। वह सामाजिक धर्म है, व्यक्ति के साथ खतम होनेवाला नहीं है। पशु और मनुष्य में यही तो भेद है। पशु को ज्ञान नहीं है, मनुष्य को है। अिसलिअे अहिंसा अुसकी विशेषता है। वह समाज के लिअे भी सुलभ होनी चाहिअे। समाज अुसीके बल पर टिका है। किसी समाज में अुसका कम विकास हुआ है, किसी में बेशी विकास हुआ है। लेकिन अुसके बिना समाज अेक क्षण भी नहीं टिक सकता। मेरे दावे में कितना सत्य है, अिसकी आप शोध करें।

आपका कर्तव्य

मैं जो यह कहा करता हूँ कि सत्य और अहिंसा से जो शक्ति पैदा हो जाती है, अुसकी तुलना किसी दूसरी शक्ति से नहीं हो सकती, क्या वह सच है? अिसकी शोध भी आपको करनी चाहिअे। हमें अुस शक्ति की साधना कर के वह अपने जीवन में बतानी चाहिअे। तब तो हम अुसका प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकेंगे। गांधी सेवा संघ का यह कर्तव्य है कि वह मेरे दावे का परीक्षण करे। क्या अहिंसा करोड़ों लोगों के करने जैसी चीज़ है? क्या हिंसा-अहिंसा का मिश्रण ही व्यवहार के लिअे ज़रूरी है? क्या अहिंसा दरअसल सामाजिक धर्म है? क्या हम अुसपर डटे रहें; या अुसे छोड़ दें? अिन सारी बातों का निर्णय आपको करना है। अहिंसा की शक्ति अपने जीवन द्वारा प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

हमने आज तक अहिंसा का प्रयोग नहीं किया

हम यह कर्तव्य नहीं कर सके, अिसका अनुभव कल हुआ। कॉंग्रेस के महामण्डल ने (हाओी कमाण्ड ने) कल जो प्रस्ताव किया, अुसपर से साफ़ है कि हम परीक्षा में अुत्तीर्ण नहीं हुअे। वह महामण्डल के लिअे शर्म की बात नहीं है। वह तो मेरे लिअे शर्म की बात है। मुझमें अितनी शक्ति नहीं है कि मेरी बात तीर जैसी सीधी अुनके हृदय तक पहुँच सके। कॉंग्रेस में भी तो मैं मुख्य कार्य-कर्ता रहा। अुनके दिलों पर मैं अपना असर नहीं कर सका। अिसमें शर्म तो मेरी है। अिससे यह सिद्ध हुआ है कि आज तक जिस अहिंसा का आश्रय हमने लिया, वह सच्ची अहिंसा नहीं थी। वह निःशस्त्रों की अहिंसा थी। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि अहिंसा बलवानों का शस्त्र है। हमने आज तक जो कुछ किया, वह अहिंसा के नाम पर दूसरा ही कुछ किया। अुसको आप और कुछ भी कह लीजिये; लेकिन अहिंसा नहीं कह सकते। वह क्या था, यह मैं नहीं बता सकता। वह तो आप काका साहब, विनोबा या किशोरलाल से पूछें। वे बतावें कि हमने आज तक जो किया, अुसे कौन-सा नाम दिया जाय। लेकिन मैं अितना जानता हूं कि वह अहिंसा नहीं थी। मेरे नज़दीक तो शस्त्रधारी भी बहादुरी में अहिंसक व्यक्ति की बराबरी नहीं कर सकता। वह तो शस्त्र का सहारा चाहता है, अिसलिअे वह अशक्त है। अहिंसा अशक्तों का शस्त्र नहीं है।

मेरा दोष

तो फिर आप पूछेंगे कि मैंने जनता से अुस शस्त्र का प्रयोग क्यों करवाया? क्या अुस

वक्त में यह नहीं जानता था ? मैं जानता तो था। लेकिन अुस वक्त मेरी दृष्टि अितनी शुद्ध नहीं हुअी थी। अगर अुस वक्त मेरी दृष्टि शुद्ध होती, तो मैं लोगों से कहता कि "मैं आपसे जो कुछ करा रहा हूँ, अुसे आप अहिंसा न कहें। आप अहिंसा के लिअे लायक नहीं हैं; डर से भरे हुअे हैं। आपके दिलों में हिंसा भरी हुअी है। आप अंग्रेजों से डरते हैं। अगर हिन्दू हैं तो मुसलमान से डरते हैं, अगर मुसलमान हैं तो तगड़े हिन्दुओं से डरते हैं। अिसलिअे मैं जो प्रयोग आपसे करा रहा हूँ, वह अहिंसा का प्रयोग नहीं है। सारा डरपोकों का समाज है। अुनमें से अेक डरपोक आदमी मैं भी हूँ।" यह सब मुझे साफ़ साफ़ कह देना चाहिये था। मुझे यह कह देना चाहिये था कि 'हम प्रतीकार की जिस नीति का प्रयोग कर रहे हैं, वह सच्ची अहिंसा नहीं है'। मैंने ग़लत भाषा का प्रयोग किया। अगर मैं अैसा न करता, तो यह करुणकथा, जो कल हुअी, असंभव थी। अिसलिअे मैं अपने-आपको दोषी पाता हूँ।

हमारा हेतु शुद्ध था

वह करुणकथा तो है, लेकिन फिर भी मुझे अुसका दुःख नहीं है। हमने ग़लत प्रयोग भले ही किया हो, लेकिन शुद्ध हृदय से किया। जो अहिंसा नहीं थी, अुसे अहिंसा मान कर अपना काम किया। हमारा काम तो निपट गया, लेकिन अुसमें से अेक अनुभव मिला। आज तक हमने जो किया, वह डर के मारे किया। अिसलिअे सफलता नहीं मिली। परंतु हमारा हेतु शुद्ध था। अिसलिअे अब भगवान ने हमें बचा लिया। ग़लत नीति को सही समझ कर हमने अधिकार-ग्रहण भी किया। वहाँ भी अहिंसा की परीक्षा में अुत्तीर्ण नहीं हुअे। तभी से मुझे तो विश्वास हो गया था कि हमें अधिकार-पदों का त्याग करना ही होगा। भगवान ने हमारी लाज रख ली। कभी-न-कभी हमें अधिकार-त्याग तो करना ही था। भगवान ने हमें निमित्त दे दिया। हमने अपनी मर्जी से अधिकार-न्यास कर दिया। किसीने हमको वहाँ से निकाला नहीं। हममें से बहुतेरों के दिल में अधिकार का मोह हो गया था। कुछ लोगों को थोड़ा-सा पैसा भी मिल जाता था। लेकिन काँग्रेस का हुक्म होते ही सब छोड़ कर अलग हो गये। साँप जैसे अपनी केंचुली फेंक देता है, अुसी तरह फेंक कर अलग हो गये। मान लिया कि ये अधिकार-पद निकम्मे हैं, क्योंकि हमारे वहाँ बैठे रहने पर भी सरकार ने हमें लड़ाअी में शरीक कर दिया, और हमें अुसका पता भी नहीं चला। भगवान ने ही लाज रक्खी, क्योंकि हम वहाँ रहते तो हमारी दुर्बलता का प्रदर्शन हो जाता।

शुद्ध अहिंसक प्रयोग का मौका

आज यह दूसरा मौका आया। यूरोप में महायुद्ध शुरू हो गया। जगत को बलवान अहिंसा का प्रयोग दिखाने का मौका आया। यह हमारी परीक्षा का समय है। हम अुसमें अुत्तीर्ण नहीं हुअे। आज देश को बाह्य आक्रमण से डर नहीं है। मेरा ख़याल है कि बाह्य आक्रमण नहीं होगा। लेकिन सल्तनत कमजोर हो जाने पर गुण्डों को मौका मिलेगा। चोर हैं, डाकू हैं, वे हमारे घरों पर हमला करेंगे। हमारी लड़कियों पर आक्रमण करेंगे। अगर हमारी अहिंसा बलवान की है, तो हम अुनपर क्रोध नहीं करेंगे। वे हमें पत्थर मारेंगे, गालियाँ देंगे; तो भी हमें

अुनके प्रति दया रखनी चाहिये। हम तो यही कहें कि ये पागलपन में अैसा कर रहे हैं। हमें अुनके प्रति द्वेष न रखते हुअे अुनपर दया करनी चाहिये और मर जाना चाहिये। जब तक हम जिन्दा हैं, वे अेक भी लड़की को हाथ न लगा सकें। अिसी प्रयत्न में हमें मरना है।

वर्किंग कमेटी की स्थिति

अिस प्रकार चोर, डाकू और आततायी हमला करें तो लोग अपना रक्षण किस प्रकार करे, यह प्रश्न आया। कॉंग्रेस के महाजनों (हाअी कमाण्ड) ने देखा कि शान्ति-सेना तो बन नहीं सकती। फिर कॉंग्रेस लोगों को क्या आदेश दे ? क्या कॉंग्रेस मिट जाय ? अिसलिअे अुन्होंने वह कलवाला प्रस्ताव किया। अुन्होंने समझा कि संपूर्ण अहिंसा का प्रयोग देश की शक्ति के बाहर है। देश को फौज की ज़रूरत है।

मेरे पास भी हमेशा पत्र आते हैं कि 'अन्धाधुंध होनेवाली है। तुम राष्ट्रीय सेना बनाओ, और अुसके लिअे लोगों को भर्ती करो'। लेकिन मै यह नहीं कर सकता।

'मेरी स्थिति'

मैंने तो अहिंसा की ही साधना की है। मैं डरपोक या और कुछ भले ही होअूं; लेकिन दूसरी साधना नहीं कर सकता। पचास वर्ष तक मैंने अहिंसा की ही अुपासना की है। कॉंग्रेस के द्वारा भी मैं वही बात सिद्ध करना चाहता था। मैं चवन्नी का सदस्य भी नहीं था, लेकिन मैं कहता था कि चवन्नी-सदस्य से मैं ज्यादा हूं। क्योंकि कॉंग्रेस के कार्यक्रम का नेतृत्व मैं करता था। मेरी नैतिक जिम्मेवारी चवन्नी-सदस्य से बहुत अधिक थी। अब वह नैतिक बंधन भी कल से छोड़ कर आया हूं। क्योंकि अब मैं अपना प्रयोग किसके द्वारा करूं ? आज तक तो कॉंग्रेस के द्वारा करता रहा।

'कार्य-समिति और मैं'

आज तक कॉंग्रेस ने मेरा साथ दिया। लेकिन जब वर्तमान महायुद्ध शुरू हुआ और मैं शिमले से लौटा, तभी से बात कुछ दूसरी हो गयी। शिमले में मैंने व्हाअिसरॉय से कहा था कि 'मेरी सहानुभूति तुम्हारे लिये है। लेकिन हम तो अहिंसक हैं। हम केवल आशीर्वाद दे सकते हैं। अगर हमारी अहिंसा बलवानों की अहिंसा है, तो हमारे नैतिक आशीर्वाद से संसार में आपका बल बढ़ेगा'। परंतु मैंने देखा कि मेरे विचारों से कॉंग्रेस के महाजन सहमत नहीं हो सकते थे। अुन्होंने अपना अलग प्रकार का वक्तव्य निकाला। अगर वे मेरी नीति स्वीकारते, तो कॉंग्रेस का अितिहास दूसरी ही तरह लिखा जाता।

यदि मैं बलपूर्वक कहता कि मेरी ही नीति माननी चाहिअे, तो राजेन्द्रबाबू, राजाजी और दूसरे सदस्य मान लेते। वे भी कह देते कि ठीक है, तुम्हारे साथ चलेंगे। लेकिन वह धोखाबाजी हो जाती। अुसमें अहिंसा नाम को भी नहीं रहती। अहिंसा का पहला लक्षण सचाअी और अीमानदारी है। मैंने अभी कहा कि अहिंसा बलवान का शस्त्र है। बलवान का क्या, वह तो बलिष्ठ का शस्त्र है। क्षमा तो वीर पुरुष का भूषण है; दुर्बलों का नहीं। ज़बरदस्ती कोअी चीज़ मान लेना दुर्बलता है। अिसलिअे मेरे कहने से वे मेरी बात मान लेते, तो वह दगाबाजी हो जाती। जो चीज़ मैं मानता हूं, वह अगर अुनकी बुद्धि को मंजूर नहीं है, तो जो सच है वही अुन्हें कहना चाहिअे। अिस दृष्टि से अुन्होंने जो किया, वह ठीक ही किया है।

'अब हम सहधर्मी नहीं रहे'

परंतु मेरी अहिंसक ज़बान अब अुनकी बात का अुच्चार नहीं कर सकती। अब तक तो वे सरकार से कहते थे कि "आप हमारी बात नहीं मानते, तो हम भी नैतिक दृष्टि से आपकी सहायता नहीं कर सकते। जा। अपने धर्म का अब तक पालन नहीं करते, तब तक हम आपके साथ सहयोग नहीं कर सकते"। मेरी अहिंसक ज़बान कॉंग्रेस की तरफ से यह सब कह सकती थी। अुसमें मेरी अहिंसा के प्रयोग के लिअे सामान मौजूद था। आज वह नहीं है। अब तो कॉंग्रेस के महाजन और मैं सह-धर्मी नहीं रहे। सक्कर के लोगों ने मुझसे पूछा; अुनसे भी मैंने कहा कि तुम मेरा रास्ता लो। अुन्होंने समझा कि वे मेरी सलाह पर नहीं चल सकते। अुन्होंने मारपीट का रास्ता अुचित समझा। अब वे मेरे सहधर्मी नहीं रहे। वही बात कल के प्रस्ताव से भी स्पष्ट हुअी है। सक्कर में भी कॉंग्रेसवाले हैं। अुनको और कॉंग्रेस के महामण्डल को मैं अपनी नीति पर नहीं ला सका। अिसलिअे अलग हो गया। अैसी यह करुणकथा है। कॉंग्रेस के महामण्डल ने मुझसे कह दिया कि "हम अपनी मर्यादा से बाहर नहीं जा सकते। तुम स्वतंत्र कर देते है। तुम बलवान की अहिंसा का प्रयोग करने के लिअे स्वतंत्र हो"।

हमारी दुर्बल अहिंसक नीति

आज तक हमने जो अहिंसा की, अुसमें यह बात रही कि हम अहिंसा के द्वारा अंग्रेजों से सत्ता छीन लेंगे। हम अुनका हृदय-परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। हमारे दिल में करुणा नहीं थी; क्रोध और द्वेष था। गालियाँ तो हममें भरी थीं। हम यह नहीं मानते थे कि अुनका हृदय बिगड़ा है, वे हमारी दया के पात्र हैं। हम तो यही मानते थे कि ये चोर और लुटेरे हैं। अिनको अगर हम मार सकते तो अच्छा होता। अिसी वृत्ति से हमने असहयोग और सविनय-भंग किया। जेल में जा कर बैठे, वहाँ नखरे किये।

'अहिंसा' के नाम का प्रभाव

परंतु अिसमें से भी कुछ अच्छा परिणाम निकल आया। अहिंसा हमारी ज़बान पर थी। अुसका कुछ शुभ परिणाम हुआ। थोड़ी-बहुत सफलता मिल गयी। रामनाम के विषय में हमने सुना है कि रामनाम से हम तर जाते हैं, तो फिर स्वयं राम ही आ जावें तो क्या होगा? अहिंसा के नाम ने भी अितना किया; तो फिर अगर दरअसल हममें सच्ची अहिंसा आ जावे, तो हम आकाश में अुड़ने लगेंगे। जो शक्ति हिटलर के हवाअी जहाजों में नहीं है, वह अुड़ने की शक्ति हममें होगी। हमारा शब्द आकाश-गंगा को भी भेदता हुआ चला जायगा। यह ज़मीन आसमान हो जायगी।

गांधी सेवा संघ क्या करे?

आज तक गांधी सेवा संघ ने जो काम किया वह निकम्मा काम था; लेकिन सच्चे दिल से किया था। अिसलिअे बिलकुल निष्फल नहीं हुआ। हम गलती कर रहे थे, लेकिन अुसके पीछे धोखेबाजी नहीं थी। फिर भी जो कुछ किया, वह हमारा भूषण नहीं कहा जा सकता। आज परीक्षा का मौका आ गया है। कॉंग्रेस के महाजन तो अुत्तीर्ण नहीं हुअे। अब देखना है, गांधी सेवा संघ क्या कर सकता है। गांधी सेवा संघ के लोग अगर जनता में अहिंसा की जागृति कर सकेंगे, तो

कौंग्रेस के महाजनों को भी खुशी होगी। कौंग्रेस के लोग अगर महाजनों से कहेंगे कि 'आप क्यों कहते हैं कि अहिंसा का पालन नहीं हो सकता; हम तो अहिंसक हैं और रहेंगे,' तो कौंग्रेस के महाजन नाचेंगे। आपलोग गांधी सेवा 'घ में माननेवाले हैं। आपमें से कुछ कौंग्रेस में हैं, कु नहीं है। मैं तो वहाँ नहीं रहा। अब जिन लोगों के नाम कौंग्रेस के दफ्तर में दर्ज हैं, वे अगर अहिंसक हैं; तो अुन्हें कार्य-समिति से कहना चाहिये कि हम अहिंसा में ही मानते हैं। लेकिन यों ही कह देने से काम नहीं चलेगा। आपके दिलों में सच्ची अहिंसा होनी चाहिये। जिस तरह की अहिंसा अगर कौंग्रेस-सदस्यों में है, तो ऑल अिण्डिया कौंग्रेस कमेटी में वे कहेंगे, कौंग्रेस का अधिवेशन होगा, अुसमें भी कहेंगे कि हम तो अहिंसक हैं। जब तक आप समझते हैं कि आपका अहिंसा का टट्टू कौंग्रेस में चल सकता है, तब तक वहाँ रहें, नहीं तो निकल जायें। कौंग्रेस का धर्म अेक रहे और आपका दूसरा, जिससे कार्य नहीं हो सकता। तब तो हमको अैलान कर देना चाहिये कि हम लोगों के प्रतिनिधि नहीं बन सकते।

दिली अहिंसा

अगर आप कौंग्रेस में रह कर अहिंसा का प्रचार करना चाहते हैं, तो आपको खबरदार रहना होगा। आपकी अहिंसा सच्ची अहिंसा होनी चाहिये। अगर मैं दिल से भी किसी आदमी को मारना चाहता हूँ, तो मेरी अहिंसा खतम है। मैं शरीर से नहीं मारता, जिसका मतलब यही है कि मैं दुर्बल हूँ। किसी आदमी को लकवा हो जाय तो वह मार नहीं सकता। अुसी तरह की मेरी अहिंसा हो जाती है। अगर आप दिल से भी अहिंसक हैं, तो आप कौंग्रेस के महाजनों से कह सकते हैं कि हम तो शुद्ध अहिंसा के प्रयोग के लिअे तैयार हैं।

भावुक न बनें

अुस हालत में आपको अपना परीक्षण करना होगा। फ़जर से शाम तक आप जो जो कार्य करेंगे, अुसके द्वारा शुद्ध अहिंसा की साधना करनी होगी। केवल दिखावे के लिअे नहीं, केवल भावुकता से नहीं। हम केवल भावुक बनेंगे तो वहम में फँस जायेंगे। भावुकता के सिलसिले में मुझे अेक किस्सा याद आता है। मेरे पिताजी के पास अेक सज्जन आया करते थे। बड़े भावुक थे, वहमी थे। जहाँ किसीने छींक दिया कि बैठ गये। अुनके घर से हमारे घर आने के लिअे पाँच मिनिट लगते थे। लेकिन अिन भाओी को पचास मिनिट लग जाते थे। छींकों के कारण बेचारे रुक जाते थे। अिसी तरह हम भावुकता से अहिंसा के नाम पर सभी कामों में से हट सकते हैं। मैं अैसा नहीं चाहता। हम सब अैसे भावुक न बनें।

स्वभावसिद्ध कर्तव्य ही स्वधर्म है

जो कुछ हम करें, वह धर्म की भावना से करें। केवल भावुकता से नहीं। मैं आज यहाँ बोलने आ गया हूँ। अपना धर्म समझ-कर आया हूँ। मौन तो मेरा स्वभाव हो गया है। मौन मुझको मीठा लगता है। वह मेरा विनोद हो गया है। मनुष्य का कर्तव्य भी जब स्वभावसिद्ध हो जाता है, तो वही अुसका विनोद हो जाता है। फिर कर्तव्य क्या रहा? वह तो अुसका स्वभाव हो गया, आनन्द हो गया। अब तो मेरे लिअे मौन स्वभावसिद्ध हो गया है। अिसी तरह अहिंसा-

धर्म हमारे लिअे स्वभाव-सिद्ध हो जाना चाहिअे। कर्तव्य जब स्वभाव-सिद्ध हो जाता है, तब वह हमारा स्वधर्म हो जाता है।

अुसी तरह आप दिनभर जो करेंगे, अुसके साथ अहिंसा का तार चलता ही रहेगा। चाहे झूठे तर्कशास्त्र के आधार पर ही क्यों न हो, आपके लिअे अहिंसा ही परम धर्म होगा। झूठे तर्कशास्त्र को ही माया कहते हैं। दूसरों के लिअे वह माया है, लेकिन हम जब तक अुसमें फंसे हैं, तब तक हमारे लिअे वह माया नहीं है। हमारे लिअे वह सत्य ही है। मैं मानता हूं कि अिस चरखे पर ज्यों ज्यों अेक तार कातता हूं, त्यों त्यों मैं स्वराज्य के नजदीक जाता हूं। यह माया हो सकती है; लेकिन वह मुझे पागलपन से बचाती है। आपको अिस तरह अनुसंधान करना चाहिअे।

अहिंसक अुपकरण के यज्ञ

यह चरखा मेरे लिअे अहिंसा की साधना का औजार है। वह जड़ वस्तु है। लेकिन अुसके साथ जब मैं अपनी चेतन वस्तु को मिला देता हूं, तो अुसमें से जो मधुर आवाज निकलती है वह अहिंसक होती है। अुसमें जो लोहा लगा है, अुससे खून भी हो सकता है। लेकिन मैंने अिस चरखे में मनुष्य के हित के लिअे अुसे लगाया है। मैं अुसके सारे अंग स्वच्छ रखता हूं। अुसमें से अगर मधुर आवाज़ न निकले, तो वह हिंसक चीज़ बन जाती है। हमें तो अहिंसा का यज्ञ करना है। यज्ञ की सामग्री बिलकुल शुद्ध होनी चाहिअे। खराब लकड़ी, खराब लोहा लगायेंगे तो रद्दी चरखा बनेगा। अुसकी आवाज़ कर्णकटु होगी। यज्ञ की सामग्री अैसी नहीं होती।

अिस प्रकार के अनुसंधान से अगर हम अपनी प्रत्येक क्रिया करेंगे, तो हमारी अहिंसा की साधना शुद्ध होगी। शुद्ध साधना के लिअे शुद्ध अुपकरण भी चाहिअे। चरखे को मैंने शुद्ध अुपकरण माना है। जो मनःपूर्वक यज्ञ करता है, अुसे यज्ञ की सामग्री ही प्रिय लगती है। अिसीलिअे मुझे चरखा प्रिय है। अुसकी आवाज़ मीठी लगती है। मेरे लिअे वह अहिंसा का संगीत है।

आप मुझसे आगे बढ़ें

हमको पता नहीं कि अिस तरह की साधना के लिअे किसे कितने वर्ष लगेंगे। किसीको हजार वर्ष लग जायें, तो कोअी अेक ही वर्ष में कर लेगा। मुझे यह अभिमान और मोह नहीं है कि मैंने पचास वर्ष तक साधना कर ली, अिसलिअे मैं जल्दी पूर्ण हूंगा और आप अभी शुरू कर रहे हैं, अिसलिअे आपको अधिक वक्त लगेगा। यह अभिमान मिथ्या है। मैं तो अपूर्ण हूं, डरपोक हूं। अिसलिअे मुझे अितने साल लग गये; और तो भी मैं पूर्ण नहीं हुआ। लेकिन यह हो सकता है कि कोअी आदमी आज ही शुरू करे और जल्दी पूर्ण हो जाय। अिसीलिअे मैंने पृथ्वीसिंह से कह दिया कि "तुममें हिंसक वीरता तो थी। मुझमें तो वह भी नहीं थी। अगर तुम सच्चे दिल से अहिंसा को अपनाओगे, तो बहुत जल्दी सफल होगे। मुझसे भी आगे चले जाओगे"।

मैं सफल शिक्षक बनना चाहता हूँ

मेरी अपेक्षा दूसरे लोग मेरे प्रयोग में अधिक सफल हों तो मैं नाचूंगा। वे अगर मुझे हरा दें तो मैं अपने आपको सच्चा शिक्षक समझूंगा। अिसी तरह मैं अपनी सफलता मानता आया हूं। मैंने लोगों को जूते बनाना सिखाया है। अब वे मुझसे आगे बढ़ गये हैं। यह प्रभुदास

तो पड़ा है। अिसे जूते बनाना मैंने सिखाया। अिसकी अितनी-सी अुम्र थी। यह मुझसे आगे बढ़ गया। दूसरा सेम था। वह तो कारीगर था। अुसने तो वह कला हस्तामलकवत कर ली। वे सब मुझसे आगे बढ़ गये। क्योंकि मेरे दिल में चोरी नहीं थी। मैं जो कुछ जानता था, सब अुन्हें देने को अधीर था। अुन्होंने मुझे हरा दिया, यह मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि अुसका यही मतलब है कि मैं सही शिक्षक हूं। अगर अहिंसा का भी मैं सही शिक्षक हूं तो जो लोग मुझसे अहिंसा सीखते हैं, वे मुझसे आगे बढ़ जायेंगे। मुझमें जो कुछ भरा है, वह सब मैं अुनको दे देना चाहता हूं। जो लोग आश्रम में मेरे साथ रहे हैं, और दूसरे भी जो आज मेरे साथ रहते हैं वे अगर मुझसे आगे नहीं बढ़ते, तो अिसका यह अर्थ होता है कि मैं सफल शिक्षक नहीं हूं।

आप मेरे सह-साधक हैं

मेरी यह अिच्छा है कि आपलोग अहिंसा की साधना में मुझसे भी आगे बढ़ जायें। क्योंकि मैं सिद्ध नहीं हूं। आप मेरे सह-साधक हैं। मेरे पास अहिंसा का जो धन है, अुसे मैं घर घर बाँट देना चाहता हूं। अुसमें कसर नहीं करना चाहता। आपको अपने दिल में सोचना चाहिये कि "यह जो कुछ हमें दे रहा है, अुसका हम सारी भूमि में सिंचन करें। यह तो बूढ़ा हो गया है; हम तो तरुण हैं। हम अिसके दिये हुअे धन को बढ़ायेंगे"। अिस तरह सोच कर आप मुझसे आगे बढ़ जायेंगे तो मैं आपको आशीर्वाद दूंगा।

मैं अकेला नहीं हूं

मैं जानना चाहता हूं कि आपमें से कितने मेरे साथ अिस रास्ते चलने को तैयार हैं? अगर कोअी न आया तो मुझे अकेला भी चलना ही है। मैं सत्तर साल का हो गया हूं, तो भी बूढ़ा हो गया हूं, अैसा तो नहीं समझता। और मैं कभी अकेला तो हो ही नहीं सकता। और कोअी नहीं तो भगवान मेरे साथ रहेंगे। मुझे अकेलेपन का अनुभव कभी होता ही नहीं।

आपकी अगर अहिंसा के मार्ग में श्रद्धा है, तो आप अपना परीक्षण करें। कितने आदमी अिस रास्ते चलने को तैयार हैं, अिसकी खोज करें। कॉंग्रेसवालों को टटोलें। यह सब खोज मैं नहीं कर सकता। क्या आप कॉंग्रेस के महाजनों को अहिंसा की शक्ति दे सकते हैं? वे क्या करते; वे तो लाचार थे। जब वे देखते हैं कि लोगों में अहिंसा का अेक बूंद भी नहीं है तो वे कह देते हैं, 'हम क्या करें, हम आपका रास्ता नहीं ले सकते।' मैंने जिस तरह पदाधिकार छोड़ दिया, अुस तरह वे तो नहीं छोड़ सकते। मैं अहिंसा को अपनी व्यक्तिगत साधना भी समझता हूं। वे तो नहीं समझते।

मैंने कॉंग्रेस क्यों छोड़ी?

अिसपर से आप समझ जायेंगे कि मैंने कॉंग्रेस छह साल पहले छोड़ दी यह ठीक ही किया। अुसकी अधिक सेवा की। अुसी वक्त मैंने देख लिया कि कॉंग्रेस में कअी लोग अैसे आ गये हैं, जो अहिंसा को नहीं मानते; जिनको अहिंसा ने स्पर्श भी नहीं किया है। मैं अुनसे काम कैसे ले सकता था? साथ साथ मैंने यह भी देखा कि कअी अहिंसा के पुजारी कॉंग्रेस के बाहर पड़े हैं। अिसलिअे मैंने अलग हो जाना ही ठीक समझा। आज आप देखते हैं कि मैंने सही काम किया।

क्योंकि मैंने देख लिया कि मैं दूसरी तरह से कोअी सेवा नहीं कर सकता। सिवा अहिंसा

के मुझमें दूसरी कोअी शक्ति नहीं है। तब मैं वहाँ रह कर क्या करता? मुझमें जो कुछ शक्ति है, वह अहिंसा की ही शक्ति है। मैं अपनी अपूर्णता जानता हूँ। मेरी अपूर्णता मुझसे अधिक कोअी नहीं जानता। लेकिन फिर भी मनुष्य अभिमानी होता है। अिसलिअे मैं अपनी जिन अपूर्णताओं को नहीं देखता, अुन्हें आप देख लेते हैं; और मैं आत्म-परीक्षण करता रहता हूं, अिसलिअे मेरी जिन अपूर्णताओं को आप नहीं देख सकते अुन्हें मैं देख लेता हूं। अिस तरह दोनों को जोड़ कर लेता हूं।

अहिंसा ही मेरा बल है

मुझमें अहिंसा की अपूर्ण शक्ति है, यह मैं जानता हूं; लेकिन जो कुछ शक्ति है वह अहिंसा की ही है। लाखों लोग मेरे पास आते हैं। प्रेम से मुझे अपनाते हैं। औरतें निर्भय हो कर मेरे साथ रह सकती हैं। मेरे पास अैसी कौन-सी चीज़ है? केवल अहिंसा की शक्ति है; और कुछ नहीं। अहिंसा की यह शक्ति अेक नयी नीति के रूप में मैं जगत को देना चाहता हूं। अुसको सिद्ध करने के लिअे हम क्या कर रहे हैं, अिसका हिसाब हमें अभी दुनिया को देना बाकी है। दुनिया में आज जो शक्ति प्रकट हो रही है, अुसके सामने मैं हारूंगा नहीं। लेकिन हमें सचाअी और सावधानी से काम लेना होगा; नहीं तो हम हार जायेंगे।

हिटलर की शक्ति का रहस्य

हम अपनी सारी शक्ति अहिंसा की साधना में नहीं लगायेंगे, तो हम जीत नहीं सकते। हिटलर को देखिये। जिस चीज़ को वह मानता है, अुसमें अपने सारे जीवन की शक्ति लगा देता है। पूरे दिल और पूरी श्रद्धा से अुसीमें लगा रहता है। अिसलिअे मैं हिटलर को महापुरुष मानता हूं। अुसके लिअे मेरे मन में काफी कद्र है। वह शक्तिमान पुरुष है। आज राक्षस हो गया है। जो जी में आता है सो करता है; निरंकुश है। लेकिन हमें अुसके गुणों को देखना चाहिअे। अुसकी शक्ति के रहस्य को पकड़ना चाहिअे। तुलसीदासजी ने यह बात हमें सिखायी है। अुन्होंने रावण की भी स्तुति की है। मेरे दिल में रावण के लिअे भी आदर है। अगर रावण महापुरुष न होता, तो रामचंद्रजी का शत्रु नहीं हो सकता था। रामचंद्रजी असाधारण थे, रावण भी अुनका असाधारण शत्रु था।

हिटलर की अेकाग्रता

मेरे नज़दीक तो वह सारी काल्पनिक कथा है। लेकिन अुसमें सच्चा शिक्षण भरा पड़ा है। हिटलर अपनी साधना में निरंतर जाग्रत है। अुसके जीवन में दूसरी चीज़ के लिअे स्थान ही नहीं रहा है। करीब करीब चौबीस घण्टे जागता है। अुसका अेक क्षण भी दूसरे काम में नहीं जाता। अुसने अैसे अैसे शोध किये कि अुन्हें देख कर ये लोग दिङ्मूढ़ रह जाते हैं। अुसके टैंक आकाश में चलते हैं और पानी में भी चलते हैं। देख कर ये लोग दंग रह जाते हैं। अुसने अैसी बातें कर दिखायी जो अिनके ख्वाब में भी नहीं थी। वह कितनी साधना कर सकता है! चौबीस घण्टे परिश्रम करने पर भी अपनी बुद्धि तीव्र रख सकता है। मैं पूछता हूं, हमारी बुद्धि कहाँ है? हम जड़वत् क्यों हैं? कोअी हमसे सवाल पूछता है तो हमारी बुद्धि कुंठित क्यों हो जाती है?

हमारी बुद्धि में तेज हो

मैं यह नहीं कहता कि हम वादविवाद करें। केवल वादविवाद में तो हम हारेंगे ही।

हमें तो श्रद्धा-युक्त बुद्धि की शक्ति बतानी है। अिसीका नाम शक्ति है। अहिंसा का अर्थ केवल चरखा चलाना नहीं है। अुसमें भक्ति होनी चाहिये। अगर भक्ति के बाद हमारी बुद्धि तेजस्वी नहीं हुअी, तो मान लेना चाहिये कि हमारी भक्ति में त्रुटि है। हिटलर की विद्या के लिये अगर बुद्धि का अुपयोग है, तो हमारी विद्या के लिये बुद्धि का अुससे कअी गुना अुपयोग है। हम यह न समझें कि अहिंसा के विकास में बुद्धि का कोअी अुपयोग ही नहीं है।

बुद्धि के अुपयोग का क्षेत्र

आपकी बुद्धि के अुपयोग का क्षेत्र बताने के लिये मैंने ये प्रश्न बनाये। ये मौलिक प्रश्न हैं। अुनका अुत्तर आप अेक दिन में नहीं दे सकते। मैं यहाँ तक नहीं पहुँचा कि अुनपर पुस्तक लिखूं। फिर भी, मेरे दिमाग में कुछ अुत्तर तो हैं। मैं पुस्तक-लेखक नहीं बन सकता। पुस्तक-लेखक तो दूसरों को बनना है। मेरे पास अितनी फुरसत कहाँ है? जो लोग अध्ययन और खोज करेंगे, वे पुस्तक लिखेंगे। पुस्तक लिखना भी कम महत्त्व का काम नहीं है। जैसे रिचर्ड ग्रेग हैं। वे मेरे पास से सिद्धान्त ले गये। अध्ययन और खोज करके पुस्तकें लिखते हैं। मैं जो कहने को डरता था वह आज ग्रेग कह रहा है। मैं तो कहता था कि चरखा हिंदुस्तान के लिये है। वह तो कहता है कि 'सारी दुनिया का कल्याण चरखे में और ग्राम-अुद्योगों में भरा है। यूरोप और अमेरिका के लिये भी अहिंसा की साधना का दूसरा रास्ता नहीं है'। ग्रेग कहता है कि दूसरी तरह से अहिंसक जीवन असंभव है। मैं कहने में हिचकता था। लेकिन वह तो बहादुर आदमी पड़ा है। अुसने निर्भय होकर कह डाला। मैंने अिस तरह खोजबीन और अध्ययन नहीं किया है। अन्तर्नाद ने जो मुझे आदेश दिया और प्रत्यक्ष अनुभव से जो मैंने देखा, वह जगत के सामने रखता गया। ग्रेग के समान लेख-बद्ध करके शास्त्र नहीं बनाया। अुसकी बुद्धि ने जो काम किया, क्या आपकी बुद्धि भी वह कर सकती है?

विपक्षी जो कहते हैं, अुसका अनादर नहीं करना चाहिये। अुनकी दृष्टि से अुन प्रश्नों का विचार करके अुन्हें अुनकी भाषा में समझाना हमारा काम है। मैं यह नहीं कहता कि हम अपना कार्य छोड़ दें। अुसे तो आग्रह-पूर्वक चलाना ही है। लेकिन हम जाग्रत हो कर काम करेंगे, तभी सिद्धि मिलेगी। हमारी बुद्धि मन्द होगी तो हमारा काम बिगड़नेवाला है।

मेरा दर्द

अिस दृष्टि से कल जो प्रस्ताव हुआ, वह आपको अध्ययन और खोज का मौका देगा। अुस प्रस्ताव से हमारी अबोहवा दुरुस्त होनी चाहिये। हमें अिस बात की खोज करनी चाहिये कि कॉंग्रेस के महामण्डल को यह प्रस्ताव क्यों करना पड़ा? जो यह कहेगा कि महा-मण्डल के लोग डरपोक हैं, वह देशद्रोह करेगा। अुन्होंने जो आबोहवा देखी, अुसका वह प्रस्ताव प्रतिघोष है। मैं अुस आबोहवा का प्रतिघोष नहीं हो सकता; क्योंकि अहिंसा मेरी व्यक्ति-गत साधना भी है। कॉंग्रेस की वह साधना नहीं है। मुझे तो अुसीमें मरना है। कॉंग्रेस के प्रतिनिधि मेरे जैसा नहीं कर सकते। अुनकी साधना अलग है। अिसलिये अब न वे मेरे साथ चल सकते हैं, और न मैं अुनके साथ चल सकता हूं। अुनके लिये मेरे दिल में धन्यवाद है। अिस बात का दुःख भी है कि अितने दूर तक साथ चलने पर भी मैं अुनपर अपना असर क्यों नहीं डाल सका? अुन्होंने मुझे

अपना मार्ग-दर्शक माना था। बडी श्रद्धा से बागडोर मेरे हाथ में दी थी। फिर भी, मैं अुनके दिल में विश्वास नहीं पैदा कर सका, अिसका मुझे दर्द है।

रचनात्मक कार्यक्रम का महत्त्व

आप अिस विषय की शोध करें। हमें तो अहिंसा की साधना वीर के शस्त्र के रूप में करनी है। यह बात बहुत बडी है। हम यह न समझें कि हमें जेल जाने की शक्ति बढानी है। हमें तो यह बताना है कि रचनात्मक कार्यक्रम स्वराज्य का अविभाज्य अंग है। हमने यह नहीं समझा कि चरखा हमें स्वराज्य देगा। 'गांधी कहता है अिसलिअे चरखा चला लो; अुससे ग़रीबों को थोडा-सा धन मिलता है' —यही हमारी वृत्ति रही। अब आपमें यह सिद्ध करने की शक्ति आनी चाहिअे कि रचनात्मक कार्य ही स्वराज्य दे सकता है। अिसका मतलब यह नहीं है कि आप रोज थोडा-सा कात लें, दो-चार मुसलमानों के साथ दोस्ती कर लें, अछूतों से मिलने-जुलने लगें और समझें कि अब हम स्वराज्य की लडाअी के लायक बन गये। आपको तो यही मानना चाहिअे कि रचनात्मक कार्यक्रम में ही स्वराज्य देने की शक्ति है। रचनात्मक कार्यक्रम के बाद लडाअी करनी है, अैसी मान्यता आपकी नहीं हो सकती। अुस कार्यक्रम में ही स्वराज्य की ताक़त है।

मैंने अुलटा प्रयोग कराया

मैंने अहिंसा का प्रयोग अिस देश में अुलटा किया। दरअसल तो यह चाहिअे था कि रचनात्मक कार्यक्रम से शुरू करता। लेकिन मैंने पहले सविनय-भंग और असहयोग का, जेल जाने का, कार्यक्रम रक्खा। मैंने लोगों को यह नहीं समझाया कि ये तो बाद में आनेवाली चीजें हैं। अिसीलिअे वे आन्दोलन कामयाब नहीं हो सके।

कानूनभंग का अधिकार

मुझे नडियाद का किस्सा याद आता है। रौलेट अैक्ट सत्याग्रह के वक्त की बात है। वहीं मैंने कबूल कर लिया था कि मेरी हिमालय-जैसी भूल हुअी। जिन्होंने ज्ञानपूर्वक कानून का पालन किया ही नहीं था, अुन्हें कानून-भंग बतलाया। अुनसे मुझे कहना चाहिअे था कि 'आज तक सरकार के दण्ड के भय से जो किया, वह पहले अपनी अिच्छा से करो। तब तुम्हें कानून-भंग का अधिकार प्राप्त होगा'।

अीश्वर ने मुझे ही क्यों चुना?

वह सारी अधूरी अहिंसा थी। मेरा अुसमें डरपोकपन था। मैं अपने साथियों को नाराज़ नहीं करना चाहता था। साथियों के डर से कुछ करने से हिचकना हिंसा है। अुसमें असत्य भरा है। मोतीलालजी, वल्लभभाअी और दूसरे लोग नाराज़ हो जायेंगे, यह डर मुझे क्यों रहा? ये सब मेरी त्रुटियां थीं। अुन्हें मैं तटस्थ हो कर देखता हूं, अुनका प्रत्यक्ष दर्शन करता हूं? क्योंकि मुझमें अनासक्ति है। अुन त्रुटियों के लिअे न तो मुझे दुःख है, न पश्चात्ताप। जिस प्रकार मैं अपनी सफलता और शक्ति परमात्मा की ही देन समझता हूं, अुसीको अर्पण करता हूं, अुसी प्रकार अपने दोष भी भगवान के चरणों में रखता हूं। अीश्वर ने मुझ जैसे अपूर्ण मनुष्य को अितने बडे प्रयोग के लिअे क्यों चुना? मैं अहंकार से नहीं कहता। लेकिन मुझे विश्वास है कि परमात्मा को ग़रीबों में कुछ काम लेना था, अिसीलिअे अुसने मुझे चुन लिया। मुझसे अधिक पूर्ण पुरुष होता, तो शायद अितना काम न कर सकता। पूर्ण मनुष्य को हिन्दुस्तान शायद पहचान भी न सकता। वह बेचारा विरक्त हो कर गुफा में चला जाता। अिसलिअे अीश्वर ने मुझ जैसे अशक्त और अपूर्ण मनुष्य को ही अिस देश के लायक समझा। अब मेरे बाद जो आयेगा, वह पूर्ण पुरुष होगा। मैं कहता यह हूं कि वह पूर्ण पुरुष आप बनें। मेरी अपूर्णताओं को पूरा करें।

वर्धा,
ता० २२-६-४०

सर्वोदय की दृष्टि

कांग्रेस के सदस्य क्या करें ?

कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी और गांधीजी के वक्तव्यों को कॉंग्रेस के सदस्यों ने पढ़ा ही होगा। आगामी जुलाअी में अखिल भारतीय कॉंग्रेस महासमिति की बैठक होनेवाली है। अुसमें अिन वक्तव्यों के विषय पर ज़रूर चर्चा होगी। अिसलिअे अिस विषय पर कुछ विचार कर लेना सबके लिअे ठीक होगा।

वर्किंग कमेटी ने बड़ी सरलता से कॉंग्रेस की कमजोरी की कबूलियत दी है। अुसने कहा है कि अहिंसा की शक्ति का हम अभी तक अच्छी तरह संगठन नहीं कर पाये है। यह तो हर अेक को मंजूर करना होगा कि यह बयान सही ही है। लेकिन, अिस कबूलियत के मानी ये भी होते हैं कि जिस सभा के सदस्यों में से वर्किंग कमेटी की नियुक्ति होती है, अुन सदस्यों द्वारा अहिंसा का संगठन कराने की आशा भी वह नहीं कर सकती।

हिंसक संगठन की निष्फलता और अव्यवहार्यता देखते हुअे भी जो दूसरा अेक ही रास्ता रह जाता है, अुसके लिअे भी कॉंग्रेस के सदस्य अपनी शक्ति लगाना और मेहनत करना नहीं चाहते। अिसमें वे कॉंग्रेस-सदस्य भी शामिल माने जा सकते हैं, जो अहिंसा में करीब करीब धर्म के तौर पर श्रद्धा रखते आये हैं। अिस निराशा-जनक परिस्थिति में केवल न्याय-बुद्धि के लिअे ही वर्किंग कमेटी को गांधीजी को कॉंग्रेस की तमाम जवाबदारियों से मुक्त कर देने का रास्ता लेना पड़ा है। वर्किंग कमेटी के वक्तव्य का मैं यह मतलब नहीं समझता हूँ कि खुद अुस कमेटी का ही अहिंसा में विश्वास नहीं रहा है और वह यह मानने लगी है कि आज की परिस्थिति में अहिंसा से काम नहीं चल सकता। बल्कि अुस वक्तव्य का यह मतलब है कि वर्किंग कमेटी तो अहिंसा-बल को मजबूत करने की ज़रूरत मानती है, मगर अुसे कॉंग्रेस के सदस्यों से अुस काम में पूरी पूरी सहायता नहीं मिल रही है। अर्थात्, कॉंग्रेस के सदस्य अुस वक्तव्य में अपने अूपर अेक अिलजाम लगाया हुआ मान लें।

मुझे अैसा लगता है कि यदि अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के सदस्य अुसे यह यकीन दिला सकें कि अहिंसा में अुनका विश्वास आज भी कायम है; बल्कि हिंसा की निष्फलता का जो बड़ा भारी प्रमाण यूरोप ने पेश किया है, अुसके कारण अहिंसा में अुनका विश्वास और भी बढ़ गया है और अगर अुनके द्वारा कोअी संगठन कराया जा सकता है, तो वह केवल अहिंसा का ही हो सकता है—तो वर्किंग कमिटी को बड़ी खुशी होगी।

हिंसा-अहिंसा की तात्त्विक चर्चा छोड़ दें, तो भी अितनी बात तो साफ़ है कि जिस बात पर हमारी श्रद्धा ही नहीं बैठ सकती, अुसका सफल संगठन हम कभी नहीं कर सकते। थोड़ा-सा भी यशस्वी संगठन हम अपने विश्वास के मार्ग का ही कर सकेंगे। 'मैं जिन्दा नहीं अुतर सकूंगा', अैसा मान कर वैमानिक छाते के सहारे कूदनेवाला क्या काम देगा ?

हिंसा के सफल संगठन के लिअे न हमारे पास साधन है, न पैसा है। अब हिंसा की अिजाजत मिल गयी, अैसा मान कर बने हुअे स्वयंसेवकों के दल अपने अपने नगर या देहात की रक्षा तो जब करेंगे तब करेंगे; लेकिन

यह बहुत संभव है कि कॉंग्रेस के अंतर्गत या कॉंग्रेस-बाह्य प्रतिपक्षी दलों के साथ लड़ाओी-झगड़ा करने में अपनी शक्ति लगा देंगे, और राजकीय तथा सांप्रदायिक बखेड़े मिटाने के बदले, अुन्हें शुरू कर देंगे।

मेरी नम्र राय में सब बातों को देखते हुअे यदि अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी अपनी बैठक में यह राय दे कि जिन्हें हिंसा करने की अिजाज़त हो, अैसे दलों का विचार छोड़ ही देना चाहिये और अहिंसक दल बनाने की ही कोशिश करनी चाहिये, तो वर्किंग कमेटी तथा जनता दोनों की ज्यादा सेवा करेगी, और कॉंग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ायेगी।

अिसमें वर्किंग कमेटी के प्रति अविश्वास की कोअी बात नहीं है; बल्कि अुसका हाथ मज़बूत करने की, अुसके दिल में कॉंग्रेस के सदस्यों के बारे में जो अविश्वास पैदा हो गया है, अुसे हटाने की बात है।

मैं आज कॉंग्रेस का सदस्य नहीं हूं। पर, मेरे मन में कॉंग्रेस के लिअे जो भक्ति है, अुसके कारण यह लिखने की प्रेरणा हुअी है। आशा करता हूं कि अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के सदस्य अिसपर विचार करेंगे।

२७-६-४० किशोरलाल घ० मशरूवाला

गांधीजी की राय

देश पर बाहर से आक्रमण हो या देश के अन्दर अशान्ति हो, तो, मौका आने पर, दोनों का मुकाबला बल-प्रयोग से करने के लिअे, कॉंग्रेस कार्य-समिति की ओर से अिजाज़त दी गयी है। अिस दशा में कॉंग्रेसजनों का क्या कर्तव्य है, अिस के बारे में श्री किशोरलालभाअी ने अपने विचार अूपर प्रकट किये हैं। अिसके विषय में गांधी सेवा संघ की पिछली बैठक में ता० २२ जून, १९४० को मैंने गांधीजी से जो प्रश्न पूछा था, वह प्रश्न और गांधीजी का अुत्तर नीचे दिया जा रहा है:—

प्रश्न—"क्या गांधी सेवा संघ के वर्तमान और पुराने सदस्य यह प्रचार करें कि जनता को वीरों की शुद्ध अहिंसा के प्रयोग के लिअे तैयार हो जाना चाहिये? क्या वे कॉंग्रेस के सदस्यों में यह प्रचार करें कि हमें अपना काम अहिंसा से ही चलाना चाहिये?"

अुत्तर—"मैं तो चाहता हूँ कि हर अेक कॉंग्रेसजन अैसा करे। वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव में कोअी आज्ञा थोड़े ही दी गयी है। अुन्होंने तो अपनी लाचारी प्रकट की है। अगर अुनसे देश यह कहे कि हम तो अहिंसा के रास्ते पर ही चलेंगे, तो वे तो खुश होंगे। अुन्होंने तो अपने प्रस्ताव में आत्मरक्षा के लिअे हिंसा की अिजाज़त दी है; आज्ञा नहीं दी है। अगर लोग अहिंसा पर कायम रहने को तैयार हों तो वर्किंग कमेटी तो खुश होगी। हम अिस तरह का प्रचार अवश्य करें। मगर सभा में फसाद या बखेड़ा होने का संभव हो तो न करें। नम्रता से और वर्किंग कमेटी के सदस्यों के विषय में ग़लतफ़हमी न फैलाते हुअे प्रचार करे। अगर यह न हो सके, तो कॉंग्रेस से हट कर चुप बैठ जायें। किसी भी हालत में ज़हर या वैर न पैदा होने दें। मालिकान्दा में मैंने कहा था कि गांधी सेवा संघ तो टूट जाता है, किन्तु अुसका हर अेक सदस्य अेक अेक जंगम संघ बन जाता है। संघ के बाकायदा सदस्य तो दस ही आदमी हैं, बाकी सब असभ्य-सभ्य हैं। आज आप सच्चे सभ्य बन जाते हैं। संघ के रजिस्टर पर आपका नाम नहीं है। जैसा कि मैंने मालिकान्दा में कहा था, अब वह दिन आ गया है जब संघ स्थूल रूप में लुप्त हो कर सच्चे रूप में जीवित हो जाता है।

अगर हम वर्किंग कमेटी को यह बता दें कि देश तो अहिंसा ही चाहता है, तो जिस मजबूरी के कारण अुसे यह प्रस्ताव करना पड़ा, वह मजबूरी दूर हो जायगी। अिसलिये अिस तरह का प्रचार करना अहिंसा में श्रद्धा रखनेवाले हर अेक व्यक्ति का धर्म है।"

अिस अुत्तर से पूज्य गांधीजी की राय मालूम होगी।

अहिंसा-प्रेमियों से अनुरोध

अिस धर्म का पालन करने की अिच्छा और शक्ति कॉंग्रेस के सदस्यों में निर्माण हो, यही सभी अहिंसाप्रेमी लोग चाहेंगे। परंतु हिंसा-अहिंसा के भिन्न भिन्न मतों की अिस नाजुक परिस्थिति में अहिंसा में दृढ़ विश्वास रखनेवालों और हर हालत में अहिंसा से ही हिंसा का मुकाबला करने की अिच्छा रखनेवालों को गंभीरता से सोच लेना चाहिये कि अब अुनका क्या कर्तव्य है। यदि दंगा-फ़साद हो और बहुजन समाज अुसका मुकाबला हिंसा से करने लग जाय, अुस समय अहिंसावादी—चाहे वे मुट्ठीभर ही क्यों न हों—यह थोड़े ही कह सकेंगे कि "हिंसा में हमारा विश्वास नहीं है; अिसलिये हम अभी दंगों का मुकाबला करने में हाथ नहीं बँटा सकते हैं; केवल चुप ही रह सकते हैं। जब बहुजन समाज हमारे मत के अनुसार अहिंसा से ही काम लेने को तैयार होगा, तब हम भी जो हमसे बनेगा सो करेंगे"। अैसा कहने से काम नहीं चलेगा। हम थोड़े-से ही क्यों न हों, हमारे प्रयत्न का फल थोड़ा ही या बिलकुल नहीं के बराबर ही क्यों न निकले, अशान्ति के समय, अन्य लोग चाहे कुछ भी करते रहें, हमको भी अपने तरीके से अुसका मुकाबला करने का भरसक प्रयत्न करना होगा और अिसके लिये हर हालत में अहिंसा का ही अुपयोग करनेवालों का संगठन करना होगा। यह संगठन कैसे किया जा सकता है, अिसके बारे में डेलांग के सम्मेलन में बापूजी ने अपनी कल्पना विस्तार से समझायी थी और बाद में 'हरिजन' में भी अिसकी चर्चा की थी। खास कर ता० १८ जून, १९३८ के 'हरिजन' में प्रकाशित अुनका "शान्ति-दल" शीर्षक लेख हमें मार्गदर्शक होगा। यद्यपि शान्ति-सेना की कल्पना सांप्रदायिक झगड़ों से पैदा हुअी है, तथापि हिंसा का मुकाबला अहिंसा से करने में, सभी क्षेत्रों में, वह अुपयोगी और कारगर सिद्ध होगी, अैसा बापूजी का ख़याल था और है। अतः अहिंसा में विश्वास रखनेवाले सज्जनों से प्रार्थना है कि वे अिस प्रकार का संगठन करने में तुरन्त लग जायँ। यह संगठन किसी केन्द्रीय संस्था द्वारा होना संभव नहीं है। अपने अपने क्षेत्रों में अपनी ही श्रद्धा और कार्य-शक्ति के आधार पर वह हो सकता है। अहिंसा-प्रेमियों को चाहिये कि वे अपने अपने क्षेत्रों में पहचानवाले अहिंसावादियों को अिस काम के लिये तैयार करें, अुनकी सूची बनावें और शान्तिदलों की तुरन्त स्थापना करें।

२७-६-'४० श्रीकृष्णदास जाजू

छोटे राष्ट्र और सशस्त्र युद्ध

जिस देश ने सौ-सवा-सौ वर्ष तक शान्ति का ही अनुभव किया है—और वह भी जीवन की शान्ति नहीं, किन्तु श्मशान की शान्ति का—वह देश युद्ध का नाम सुन कर अस्वस्थ हो जाय, तो कोअी आश्चर्य की बात नहीं है। और हिटलरी युद्ध-पद्धति भी अैसी भयानक है कि युद्ध-कला में प्रवीण राष्ट्र भी अुसके सामने काँप अुठते हैं।

जैसा कि हमने पिछले अंक में कहा है, अब दुनिया में हिंसक युद्ध केवल जर्मनी, रूस,

जापान, अमेरिका और अिंग्लैंड के हो लिये है। शिकारी के साथ जैसे अुसका कुत्ता भी शिकार में शरीक हो सकता है, वैसे ही हिटलर के साथ मुसोलिनी और फ्रैंको भी शरीक हो सकते हैं। किन्तु अुनकी अलग गिनती करने की ज़रूरत नहीं है।

बाकी के सब देश और राष्ट्र या तो अिस राष्ट्रपंचक की शरण जावें और अुनके युद्धों में मार खावें, अथवा गांधीजी का तरीका समझ और सीख कर अुसके अनुसार अहिंसक संगठन करें। मैं तो लिखने जा रहा था कि 'वे हिन्दुस्तान का अहिंसक तरीका सीखें'; लेकिन अब हिन्दुस्तान ने बता दिया है—कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने बता दिया है—कि अहिंसा पर निष्ठा होते हुअे भी अुसी रास्ते चलने की अुसकी हिम्मत नहीं है। अहिंसा का अमोघ शस्त्र धारण करने की शक्ति न होने से जो शस्त्र निकम्मा साबित हो चुका है, अुसीके सहारे चलने का निश्चय वर्किंग कमेटी ने किया है। भाषा में यह कितना भी विचित्र मालूम होता हो, तो भी व्यवहार का रास्ता यही है। व्यवहार हज़ार दफ़ा परास्त होने पर भी अपने-आपको सफल ही समझता है।

वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव

वर्किंग कमेटी मानती है कि देश का अहिंसक संगठन करना बहुत मुश्किल है; अिसलिअे हिंसात्मक ही सही, किन्तु पुराना परिचित संगठन करने की कोशिश करनी चाहिअे। वर्किंग कमेटी ने यह भी देखा होगा कि आत्मरक्षा के लिअे किसी-न-किसी दिन सरकार के साथ सहयोग करना ही पड़ेगा और सरकार तो हिंसात्मक रक्षा ही संगठित कर सकती है। कांग्रेस अगर शुद्ध अहिंसा को पकड़ कर बैठे, तो यह तेल और पानी का मिलाव कैसे हो?

यह बात स्पष्ट है कि अगर हिटलर का आक्रमण हुआ, तो हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय संगठन हिंसक तरीके से देश की रक्षा नहीं कर सकेगा। वहाँ तो अगर काम आयेगी तो गांधीजी की अहिंसा ही काम आयेगी; नहीं तो कोअी चारा ही नहीं है। अिसलिअे कांग्रेस ने यह स्पष्ट किया है कि वर्तमान सरकार ढीली पड़ने पर देश में जो आन्तरिक अन्धाधुन्धी होगी, केवल अुससे बचने के लिअे हमें जैसा हो सके वैसा रक्षा-संगठन करने की चिन्ता है।

अराजकता के विविध रूप

आन्तरिक अशान्ति के दो प्रकार हो सकते हैं—अेक तो हिन्दू-मुस्लिमों का झगड़ा (श्री जवाहरलाल जैसों को अिसकी संभावना कम मालूम होती है), और दूसरा देश में जो गुण्डों का दल पैदा होगा, अुसका मौका पा कर धनिकों पर आक्रमण। यह भी डर है कि छोटे-मोटे ज़मींदार अपने को खतरा देख कर अपने पैसे से गुण्डों को रख कर स्वयं लूटमार करते जायँ। देशी राजा भी शायद अपनी छोटी छोटी फौजें ले कर अपने राज का विस्तार बढ़ाने की कोशिश करेंगे। यह सब तो स्वाभाविक-सी बात है। अिसमें साम्यवाद की बाढ़ आ कर शान्ति और व्यवस्था का समूचा नाश हो जायगा अैसा भी डर है।

स्थिर बुद्धि की आवश्यकता

अैसी हालत में फौज का या अहिंसक सेना का कुछ-न-कुछ संगठन करना ही पड़ेगा। लेकिन हमारी राय में अिससे भी बढ़कर दूसरी अेक तैयारी की ज़रूरत है। अशान्ति के दिनों में लोगों को जितनी ज़रूरत सेना की रहती है, अुससे भी अधिक स्थिर बुद्धि की होती है। अगर कांग्रेस अपना मस्तिष्क जगह पर रक्खे और लोग कांग्रेस के प्रति

अपनी निष्ठा दृढ रक्खें तो हम समझते हैं कि जंगी फौज का या शान्ति-सेना का काम बहुत ही कम रहेगा। लोग जब घबडा जाते हैं, तब अुन्हें शान्त करनेवाला और समय समय पर सच्ची सलाह देनेवाला कोअी स्वाभाविक नेता अगर अुनके बीच रहा, तो लोग फौरन अुसकी बात मान लेते हैं। अैसे नेता में अगर अुच्च चारित्र्य, व्यापक-हृदय और दूर-दृष्टि रही तो अशान्ति के दिनों में अुसका नेतृत्व लोग तुरन्त कबूल कर लेते हैं।

गुंडे और सिद्धान्तवादी शस्त्रधारी

अगर गुण्डों की ओर से खतरा है, तो अुसको दूर करना अितना कठिन नहीं है जितना अुस खतरे का सामना करना मुश्किल है, जो मुस्लिम लीग, खाकसार दल, हिन्दूसभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल, आदि संस्थाओं के मतभेदों के कारण पैदा होना संभव है।

गुण्डे लोग सामाजिक संगठन के सामने और सामाजिक चारित्र्य के सामने आसानी से दब जाते हैं; लेकिन सिद्धान्तवादी पक्ष और अुपपक्ष के नेताओं में जब मतभेद होते हैं, तब अुन्हें समझाने का काम प्रत्यक्ष भगवान भी शायद ही कर सकें।

स्वाभाविक नेताओं का संगठन

अिस खतरे का अिलाज कुछ भी हो, कॉंग्रेस को सारे देश भर में जगह जगह राष्ट्रीय वृत्ति के स्वाभाविक नेताओं को ढूंढ कर अुनका संगठन करना चाहिये और जहाँ तक हो सके, सबों को सम्हाल कर अहिंसा के अुपाय से ही देश को बचाना चाहिये। जब यह देखा जाय कि आम जनता बलिदान के लिये तैयार नहीं है और रूढ ढग से आत्मरक्षा करना चाहती है, तब अुसे वैसा करने की अिजाजत देनी ही पडेगी। लेकिन साथ साथ लोगों को अुसका खतरा भी बताना चाहिये। आज हिंसा का संगठन बडे खतरे का है। अुससे आपस की हिंसा बढेगी, घटेगी नहीं। और जहाँ अेक द। हिंसा-मार्ग को हमने प्रतिष्ठित किया; तो फिर नैतिक तेज की कीमत नहीं रहेगी और ग्रेशहॅम के प्रख्यात सिद्धान्त के अनुसार, जो पक्ष अधिक निर्लज्ज और निर्दय होगा अुसीकी जीत होगी।

नैतिक बल का संगठन

अभी भी देश के नेताओं को अिस बात पर विचार करना चाहिये और शरीर-बल के संगठन पर विश्वास रखने की अपेक्षा नैतिक बल के संगठन पर ही विश्वास रखना चाहिये। अगर छूत के रोगों के दिनों में, बाढ के दिनो मे और आग और भूचाल के प्रसंग पर हम अहिंसक संगठन कर सकते हैं और अहिंसक बहादुरी से कुदरत के कोप को शान्त कर, जनता की रक्षा कर सकते हैं, तो प्रकृति-कोप (जनता की अन्धाधुन्धी) में हम वैसा क्यों नहीं कर सकते? सवाल फक्त होश ठिकाने पर रखने का है।

नेताओं की ज़रूरत

हमने समाज के रूढ तरीके से फौज तैयार की अथवा शान्ति-सेना की स्थापना की, तो भी वह केवल फौज ही होगी अुसमें काम लेनेवाले, अुसे हुक्म करनेवाले, देश के स्वाभाविक नेताओं का संगठन सबसे महत्त्व का है। अिसलिये हिंसा-अहिंसा की चर्चा छोड़ कर समाज के स्वाभाविक नेताओं का संगठन सबसे पहले करना चाहिये और अुस संगठन के द्वारा लोगों की समय-समय पर रहनुमाअी करनी चाहिये।

२८-३-'४० का० का०

वर्तमान महायुद्ध पर दृष्टिपात

कल्पना-शक्ति को भी बधिर करनेवाला महायुद्ध यूरोप में चल रहा है। रोमन साम्राज्य के प्रारम्भ के दिनों में जूलियस सीज़रने अपनी

अेक विजय का वर्णन तीन शब्दों में किया था —'मैं आया, मैंने देखा, मैंने जीता'। अिसी ढंग से हिटलर अपनी अमानुषी शक्ति का परिचय दे रहा है। हमने सुना था कि गदर के दिनों में अंग्रेजों ने दो बागी भाअियों को पकड़ने पर अेक को दूसरे के हाथों फांसी पर चढ़वाया। बात सही हो या न हो; आज हिटलर फरान्स को कब्जे में कर के अुसीके हाथ अिंग्लैंड पर वार करने के लिअे काम में लाना चाहता है। अैसे युद्ध में हम केवल प्रेक्षक ही बन सकते हैं। मासिक के सम्पादक का काम युद्ध-लीला का वर्णन करने का और अुस पर से अनुमान करते बैठने का नहीं है, तो भी युद्ध के रोज आनेवाले वर्णनों में कभी कभी अैसी बातें होती हैं, जो मानस-शास्त्र या समाज-शास्त्र की दृष्टि से बडी कीमती होती हैं। अैसी ही चंद बातों का यहां पर विवेचन करना है।

अीश्वर किसकी तरफ़ है ?

जब पैरिस पर जर्मनी का पहला बम-आक्रमण हुआ, तब अमेरिका का प्रतिनिधि किसी रेस्तोरां में खाने बैठा होगा। ये महाशय बडे रसिक हैं और शौकीन तबियत के हैं, अैसी अुनकी ख्याति है। हर शहर में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अेलचियों के अलग अलग स्थान होते हैं। जंग के दिनों में ये सब दूत अपने अपने स्थान पर ही रहने के लिअे बाध्य हैं और शत्रु भी अिन तटस्थों के स्थानों को आक्रमण से बचाने की कोशिश करते हैं। अमेरिका के ये रसिक दूत अपने स्थान में न रह कर कहीं आनंद करने गये थे। वहां पर अेक बम गिरा और दूत महाशय के करीब चार हाथ पर गिरने पर भी फूटा नहीं। तब अुन्होंने टेलीफोन से अपने प्रेसिडेंट रूज़्वेल्ट को खबर दी कि मैं बच गया; क्योंकि अीश्वर मेरे साथ था।

शौकीन लोग भी अीश्वर को तो मानते ही हैं। और अीश्वर भी कभी कभी अुन्हींको बचाता है। सवाल अितना ही है कि क्या सचमुच अीश्वर महाशय बुलियेट के साथ था; और जो लोग बम से मर गये अुनके साथ नहीं था ? फरान्स और अिंग्लैंड अिस युद्ध के प्रारम्भ में कहते थे कि अिस युद्ध में हमारी ही जीत होनेवाली है; क्योंकि सत्य और न्याय हमारी ओर है। हम भी चाहते हैं कि सत्य और न्याय की ही विजय हो; किन्तु हमने यह कभी नहीं माना कि शस्त्र-युद्ध में सत्य और न्याय की ही विजय होती है। शस्त्र-युद्ध निरा जंगलीपन है। अुसके द्वारा अगर विजय होती ही है, तो संख्या-बल, शस्त्र-बल, बहादुरी, मक्कारी और निर्लज्जता की ही हो सकती है। संभव है कि अिस युद्ध में जो लोग मारे गये, अुन्हींमेंसे अधिकांश लोगों के साथ भगवान था और जो बच गये, अुनमें से चंद अैसे जरूर हैं जिनके हृदय में भगवान न होने के कारण ही वे बच गये। बात बात में भगवान को बीच में ले आना भगवान की और मानवीय श्रद्धा की दिल्लगी करना है।

मनुष्य को चाहिअे कि वह नम्र बने, अीश्वर-निष्ठ बने और जिस किसी हालत में आ पड़े, अुसमें अपनी सत्यनिष्ठा, न्याय-निष्ठा और मानव-निष्ठा न छोडे।

फ्रान्स की बहादुरी

फरान्स देश बडी बहादुरी से लडा। अब यह जाहिर होने के बाद कि फरान्स के पास शस्त्र-बल कम था, और मनुष्य-बल भी कम था, फरान्स की बहादुरी का ख्याल और भी अूंचा हो जाता है। गत युद्ध के अंत में तीन साल के महासंहार के बाद फरान्स के पास ३२ लाख ८० हजार फौज थी। अब की बार युद्ध के

प्रारम्भ में ही जिस संख्या से पाँच लाख कम फौज थी। हवाई फौज में तो फ्रान्स के हरेक जहाज को जर्मनी के छः छः हवाई जहाजों के साथ मुकाबला करना पड़ा। फ्रान्स के प्रधानमंत्री महाशय पीतैं ने और भी आँकड़े दिये हैं। सन् १९१८ में जहाँ ब्रिटेन की ८५ फौजें उनकी मदद में थीं, अब की बार केवल दस थीं। सन् १९१८ में इटली की ५८ फौजें और अमेरिका की ४२ फौजें भी थीं; जो अब की बार थीं ही नहीं। फौज के सिपाही तो बहादुरी से लड़े; किन्तु उनकी साधन-संपत्ति जर्मनी से कम दर्जे की थी। यह सब फर्क सुन कर हमारे दिल में फ्रान्स के लिये इज्जत बढ़ती ही है। मनुष्य-शक्ति से जितना कुछ हो सकता था सब किया और जब देखा कि अब कुछ नहीं हो सकता, तो एक दूसरे की अर्थविहीन कतल करना छोड़ कर शस्त्र छोड़ देने का वीरोचित निर्णय उन्होंने किया। महाशय पीतैं ने शस्त्र-संन्यास के साथ जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, वह बिलकुल छोटा होते हुये भी, सारी दुनिया के लिये विचार-प्रवर्तक है।

फ्रान्स के पराभव का सबक

Too few children, too few arms, too few allies—there is the cause of our defeat. (लड़ने के लिये देश में बच्चे नहीं थे, शस्त्रास्त्र नहीं थे और साथ देनेवाले काफी मित्र भी नहीं थे—इसलिये हम हार गये)। यूरोप के शौकीन ऐयाश और आरामतलब लोगों ने संतति-निग्रह का मजहब चलाया। आत्मसंयम का मजहब राष्ट्र की तेजस्विता बढ़ाता है। केवल संतति-निग्रह से ऐयाशी बढ़ती है; और लोक-संख्या घटती है। फ्रान्स में शायद यही हुआ होगा। महाशय पीतैं हृदय की वेदना से कहते हैं कि हरेक राष्ट्र को उत्थान और पतन के दिन देखने पड़ते हैं। उत्थान और पतन का राष्ट्र कैसा स्वागत करते हैं, इसीपर से उनकी कमजोरी या महत्ता सिद्ध होती है। आज के पराभव से हम सबक सीखे बिना न रहेंगे (व्हार्साय के सुलहनामे के बाद जर्मनों ने इसी तरह से सोचा होगा।)

सेनापति पीतैं अंत में कहते हैं—"१९१८ की विजय के बाद लोगों की (फ्रेन्च लोगों की) त्यागवृत्ति का अस्त हुआ और भोग-लालसा बढ़ गयी। कम-से-कम देना और ज्यादा-से-ज्यादा माँगना—यही उनका स्वभाव हो गया। जी चुराने की उन्हें आदत-सी पड़ गयी। वे आरामतलब हो गये। आज उसका फल हम भुगत रहे हैं"।

हरेक देश के राष्ट्रसेवकों को और जनहित के चिंतकों को सेनापति पीतैं के ये वचन अपने हृदय पर अंकित कर लेने चाहिये। जहाँ संयम गया, वीर्यरक्षा का आग्रह शिथिल हुआ, पुरुषार्थ क्षीण हुआ, भोग-लालसा बढ़ी, देने का धर्म अरुचिकर मालूम हुआ और लेने की ही कामना बढ़ गयी, वहाँ राष्ट्र का अधःपात निश्चित ही है। बहादुर फ्रेंच लोगों के लिये अगर यह बात सही है, तो सैकड़ों बरसों से जिन्होंने लड़ाई देखी ही न हो और जो लोग न हिंसा के लिये संगठित हैं और न अहिंसा के लिये संगठित होना चाहते हैं, उनके लिये यह और भी सोचने की बात हो जाती है।

हिटलर की शक्ति-साधना

जब अमन और चमन चलता है, तब मनुष्य भोग-विलास की फिलसूफी पसंद करता है। क्या अमेरिका में और क्या फ्रान्स में जीवन का उद्देश्य ही बदल डालने की कोशिशें हो रही थीं और वहाँ जर्मनी में पराभव का कलंक धोने के लिये हिटलर ब्रह्मचर्य का महत्त्व बढ़ा रहा था। कहा जाता है कि हिटलर ने न तो शादी

की है, न वह औरतों के पीछे दौड़ता है। अपने निजी जीवन में यहाँ तक संयमी है कि मांस तक नहीं खाता।

हम क्या करें?

हिटलर चाहे जितना मानवद्रोही हो, अुससे भी हम कुछ सबक सीख सकते हैं। दीख पड़ता है कि अुसमें न है व्यक्तिगत स्वार्थ, न है अैयाशी। अिसीलिअे वह अपने राष्ट्र के अुत्थान में अितनी ध्यान-धारणा से तैयारी कर सका है। फ्रान्स ने तो विजय पाने के बाद अैयाशी शुरू की होगी। हमारे देश में गिरी हुअी हालत में भी अगर हम साहित्य द्वारा और हीन फिलसूफी के प्रचार द्वारा अैयाशी बढायेंगे तो हम किस अन्तहीन गर्त में जा कर गिरेंगे? जिन्होंने अुत्थान का शिखर प्राप्त कर लिया है, अुन्हें गिरने के लिअे कुछ तो जगह है। जो पतन की खाअी की तह में दीर्घ काल से पड़े हुअे हैं, अुन्हें कुछ दूसरी ही किस्म की तैयारी करनी चाहिअे।

का० का०

संघ-वृत्त

संघ की बैठक

पिछले अंक में दी गयी सूचना के अनुसार संघ के नये काम की रूपरेखा बनाने के लिअे तथा संघ के द्वारा शोध और विचार के लिअे और पू० बापूजी के सुझाये हुअे विषयों के बारे में विचार-विनिमय करने के लिअे संघ के सदस्य और संघ के काम में दिलचस्पी रखनेवाले कुछ निमंत्रित मित्रों की अेक खास बैठक ता०२० जून से ता०२३ जून तक वर्धा में हुअी। अखिल भारत चरखा संघ की सभा भी अिसी मौके पर वर्धा में बुलायी जाने से, चरखा संघ के सदस्यों की अुपस्थिति का भी लाभ बैठक को अनायास ही मिला। गां. से. संघ के वर्तमान ९ सदस्यों के अलावा वर्धा के बाहर से आये हुअे और वर्धा के मिला कर करीब चालीस सज्जनों ने बैठक के काम में भाग लिया था। ता० २१ को सुबह और ता० २२ को दोपहर में पू० बापूजी भी अुपस्थित हुअे थे। अुनके भाषण अिसी अंक में अन्यत्र दिये गये हैं।

बैठक में जो चर्चा हुअी अुसका साररूप अंश नीचे दिया जा रहा है। हो सका तो जानने लायक कुछ खास बातें थाड़े विस्तार से अगले अंक में देने का विचार है।

प्र० १—खादी व्यापक कैसे हो?

जब तक खादी में विश्वास रखनेवाली लोकमान्य सरकार कायम नहीं होती और जब तक खादी को मिल के सस्ते और सुन्दर कपड़े का मुकाबला करना पड़ता है, तब तक अुसका प्रचार कांग्रेस जैसी संस्थाओं के अनुशासन और भावना पर ही अवलम्बित रहेगा और अिसी कारण वह मर्यादित भी रहेगा। और यही कारण है जो अब तक भी अिसका प्रचार अेक सीमा से आगे नहीं बढ़ा। अब तक का प्रचार सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। अिसका अेक कारण यह भी है कि अब तक हमने खादी

का प्रचार बेकारी मिटाने और गरीबों को रोटी देने के विचार के आधार पर ही किया है। खादी के पूरे दर्शन या तत्वज्ञान (जैसे अहिंसात्मक समाज-रचना, जीवन-निर्वाह-मजूरी तथा समग्र जीवन-परिवर्तन) की दृष्टि के आधार पर नहीं किया। अतः अब खादी का प्रचार बढाने के लिअे नीचे लिखे अुपाय करना जरूरी है—

(१) खादी का सम्पूर्ण तत्वज्ञान और भावना का लोगों में जोर से प्रचार करना।

(२) खादी की भिन्न भिन्न क्रियाअें करनेवाले सब कामगारों में खादी के ज्ञान और भावना का यथावत् प्रचार करना।

(३) वस्त्र-स्वावलम्बन की दिशा में अधिक प्रयत्न करना।

(४) यंत्रों में सुधार और कपडे की मजबूती की तरफ ज्यादा ध्यान देना।

श्री मथुरादासभाअी की विशिष्ट सूचना— चरखा संघ का वर्तमान कार्य धीरे धीरे कम कर के कार्य का विकेन्द्रीकरण किया जाय। देहात के छोटे छोटे केन्द्रों में देहातियों से खादी बनवा कर सस्ती बेची जाय और अुसकी घटी की पूर्ति देहात के लोगों से द्रव्य प्राप्त करके की जाय।

अिस पर अधिकांश लोगों की यह राय रही कि अधिक समय तक अैसी बाअुंटी देना शक्य और अुचित नहीं है।

श्री सतीशबाबू— जीवन-निर्वाह मजूरी के सिद्धान्त को ढीला करके खादी का काम खानगी व्यापारियों को सौंपा जाय, जिससे खादी सस्ती हो और अुसका प्रचार बढे। अेक सुझाव यह भी था कि अिससे पूंजी का प्रश्न भी अेक हद तक हल हो जायगा।

श्री अप्पासाहब— गाँव के लोगों को अपील की जाय कि गाँव के दरिद्र और दुखी लोगों की सेवा करने की, अुन्हें काम देने की जिम्मेवारी अुनपर है। अिससे लोग खादी-प्रचार में अधिक दिलचस्पी ले सकेंगे।

श्री कौजलगी— वस्त्र-स्वावलम्बन की बुनाअी में कुछ सहायता दे कर प्रचार बढाना चाहिअे।

श्री काकासाहब— हमें खादी के सिद्धान्त पर स्थित समाज-रचना का पूरा चित्र लोगों के सामने रखना चाहिअे। अुसकी सामग्री अेकत्र करके पुस्तक बनानी चाहिअे। खादी और स्वराज्य का संबंध भी अभी लोगों को विधिवत् नहीं समझाया गया है—अिसकी पूर्ति होनी चाहिअे।

श्री किशोरलालभाअी— खादी व्यक्तिगत अर्थशास्त्र की दृष्टि से चाहे महँगी भले ही पड़ती हो, परन्तु सारे देश के अर्थशास्त्र की दृष्टि से सस्ती ही है। मिलों से जो बेकारी बढ़ती है, अुसका बोझ जनता को अुठाना पड़ता है, अिससे मिल का कपडा सस्ता मालूम होता है; क्योंकि बेकारी का हिसाब अुसके कपडे की कीमत में नहीं लगाया जाता। दूसरे, मिलों को जो सुविधायें मिलती हैं, अुनका बोझ भी देश को अुठा लेना पड़ता है।

* * *

—चरखा संघ में अभी जीवन-निर्वाह-मजूरी का जो नियम है, वह रक्खा जाय या अुडा दिया जाय, अिसपर विशेष चर्चा होकर यह तय हुआ कि वह कायम रक्खा जाय।

—सारे देश के लिअे हाथ-कताअी का कपडा बनाने के लिअे आवश्यक श्रम-बल देश में है या नहीं, अिसपर चर्चा हुअी। पाया गया कि अैसा श्रम-बल देश के पास पर्याप्त है; क्योंकि कताअी अेक दोयम धन्धा है और प्रायः हर किस्म के लोग, बच्चे-बूढे आदि भी, थोडा-बहुत समय अुसके लिअे निकाल ही सकते हैं।

—यह श्रम-बल मोटे सूत के लिअे तो अवश्य प्राप्त है; परन्तु महीन सूत के लिअे भी है या नहीं,

अिसका हिसाब लगा कर देख लेना चाहिअे। मिल के कपड़े की सुघड़ता, सुन्दरता तथा लोगों की शौकीनी खादी-प्रचार में बाधक होगी, अैसा भय न रखना चाहिअे; क्योंकि अिस वृत्ति पर काफी नियंत्रण रक्खा जा सकेगा और लोगों की रुचि बदली जा सकेगी—अैसा अधिकांश का मत हुआ।

—बुनियादी तालीम के लिअे, दरिद्रों और बेकारों को अुद्योग देने के लिअे तथा अहिंसात्मक समाज-रचना और अर्थशास्त्र के साधन के तौर पर हाथ-कताअी का चालू रखना लाज़िमी है।

—हाथ-कताअी का आग्रह छोड़ कर कताअी मिल में होने देना, और मिल में बुनाअी बन्द करके मिल के सूत की सारी बुनाअी हाथ से कराना अिष्ट है या नहीं, अिसकी चर्चा हो कर तय पाया गया कि अैसा करना अुपयोगी न होगा।

—जो भी सरकार हो, अुसे हमें खादीवालों के द्वारा यह सूचित करना अुचित होगा कि बेकारी हटाने के लिअे, जो लोग हाथ से सूत कात कर बेचना चाहें अुसे नियत दर से खरीद लेना सरकार का कर्तव्य है। सरकार अुसका कपड़ा बुना कर बेचने का प्रबन्ध करे और अिसमें जो हानि हो अुसे मिलों पर कर लगा कर पूरी कर ले।

* * *

अिस चर्चा के फल-स्वरूप नीचे लिखी बातें तय हुअीं—

१. वर्तमान अर्थशास्त्र की दृष्टि से खादी की योजना पर जो आक्षेप किये जाते हैं, अुनका पूरा विचार तथा आवश्यक शोध का काम गांधी सेवा संघ द्वारा किया जाय। अिस काम में सहायता देने के लिअे श्री नरहरिभाअी परीख और कुन्दरजी दिवाण से अनुरोध किया जाय।

२. वस्त्र-स्वावलंबन का काम तीव्रता से बढ़ाने के लिअे कुछ प्रयोगात्मक केन्द्र खोले जायँ। अिस विषय में कार्यकर्ताओं को मार्ग-दर्शन कराना श्री विनोबाजी ने मंजूर किया।

३. खादी और ग्राम-अुद्योगों के आधार पर जो समाज-रचना होगी, अुसका पूरा चित्र खींचने के लिअे तथा अुसपर किये जानेवाले आक्षेपों का खंडन करने के पहले "जीवन का मान (स्टैंडर्ड) क्या हो?" अिसका निर्णय कर लेना आवश्यक होने से अिसपर राय देने के लिअे श्री सतीशबाबू, श्री मथुरादासभाअी (बिहार) और श्री नरहरिभाअी की अेक समिति बनायी जाय।

(अिस समिति ने अपना लिखित अभिप्राय ता० २२ की रात की बैठक में विचारार्थ पेश किया था। लेकिन जल्दी में तैयार किया जाने से वह अधूरा रह गया था। वह पूर्ण कर लेने के लिअे समिति से प्रार्थना की गयी है। पूरा हो जाने पर प्रकाशित किया जायगा।)

प्र० २—क्या हिन्दुस्तान में अहिंसा की दृष्टि से कोअी विशेषता है?

अिसपर काकासाहब, किशोरलालभाअी, नरहरिभाअी, सतीशबाबू, अप्पा पटवर्धन और विनोबा के मार्मिक तथा अुद्बोधक भाषण हुअे। अेक बात पर सब सहमत हुअे कि भारत की संस्कृति, वर्तमान विशेष परिस्थिति तथा जनसंख्या के कारण यहाँ दूसरे देशों की अपेक्षा अहिंसा के प्रयोग के लिअे विशेष अनुकूलता है। अिस संबंध में अधिक निश्चित निर्णय पर पहुँचने के लिअे शोध की आवश्यकता है, यह भी सबने महसूस किया।

प्र० ३ और ४—क्या कताअी और ग्राम-अुद्योगों का अनिवार्य संबंध है? यदि है तो किस प्रकार का? वे अुद्योग कौन-से हैं जो अहिंसा बिना चल ही नहीं सकते और वे कौन-से हैं, जिनमें

हिंसा अनिवार्य है ? वे कौनसे कि जिनमें हिंसा-अहिंसा दोनों का मिश्रण है ? या अैसा भेद करना ही गलत है ?

अिन प्रश्नों की काफी सूक्ष्म और मौलिक चर्चा हुअी । हिंसा के दो पहलुओं का विचार हुआ—अेक शोषण और दूसरा बलात्कार । पाया गया कि दोनों अन्योन्याश्रित और अेक तरह से अविभाज्य हैं । ग्राम-अुद्योगों में अुनकी मात्रा कुछ कम भले ही हो, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रामोद्योग या कताअी में अुनके लिअे गुंजाअिश नहीं है । अिस दृष्टि से हिंसा-अहिंसा की बुनियाद पर ग्राम-अुद्योग और यंत्रोद्योगों में परिमाण का कुछ भेद हो सकता है; लेकिन कोअी प्रकार-भेद नहीं है ।

विनोबाजी ने प्रश्न को पलटा कर रक्खा । अुन्होंने कहा कि हमें अिस दृष्टि से विचार करना चाहिये कि 'क्या अहिंसक समाज का निर्माण ग्राम-अुद्योगों के बिना हो सकता है ?' तब शायद हमारे विचारों में अधिक स्पष्टता आयेगी और हम किसी निर्णय पर पहुँच सकेंगे।

यंत्रोद्योग और ग्रामोद्योगों का विचार करने की अिस दृष्टि का समर्थन करते हुअे काकासाहब ने सुझाया कि हम यह न देखें कि शरीरश्रम करनेवाले भी हिंसक होते हैं या नहीं ? बल्कि अिस बात पर गौर करें कि जो शरीरश्रम नहीं करते, क्या वे भी कभी अहिंसक हो सकते हैं ? यंत्र शरीरश्रम की आवश्यकता घटाता है, अिस दृष्टि से वह हिंसा की अनुकूलता बढ़ाता है । ग्राम-अुद्योग शरीरश्रम के अधिक अनुकूल हैं ।

कौन-से यंत्र निषिद्ध माने जायँ, अिसके विषय में भी कुछ चर्चा हुअी । कोअी निश्चित राय कायम नहीं हो सकी । साधारण-रूप से यह विचार रहा कि अुपयोगी और आवश्यक यंत्रों का स्थान भी अहिंसक समाज में रहे ।

अिस सिलसिले में यंत्रोद्योगों का राष्ट्रीयकरण, जड़ परिश्रम के परिणाम और अुसके भेद, यंत्रोद्योगों की आधुनिकतम अुन्नति के कारण अुनमें भी व्यक्ति के विकास की गुंजाअिश है या नहीं, आदि कअी प्रश्न अुपस्थित हुअे । अुनकी तथा संरक्षकता के सिद्धान्त की चर्चा हुअी ।

विकृत अहिंसा और शुद्ध अहिंसा पर भी काफी बहस हुअी ।

किसी निश्चित निर्णय या मन्तव्य पर नहीं पहुँचे । साधारणरूप से सबकी यह राय हुअी कि अहिंसक समाज के निर्माण के लिअे ग्राम-अुद्योग अधिक अनुकूल हैं । लेकिन क्या यंत्रोद्योगों में हिंसा का आना अनिवार्य ही है ? समाजवादियों का यह दावा कि अुनके आदर्श समाज में यंत्रों के रहते हुअे भी शोषण और बलात्कार नहीं रहेंगे, बिलकुल असमर्थनीय ही है ?—यह खोज का और अध्ययन का विषय है यह भी सबकी राय रही ।

अेक नयी योजना

गांधी सेवा संघ की कार्यवाहक समिति ने अपनी ता० २०-६-४० की बैठक में नीचे लिखा प्रस्ताव मंजूर किया है, जिसे चरखा संघ ने भी स्वीकृति दी है—

"कुछ कार्यकर्ता ग्रामों की सेवा करने की अिच्छा रखते हैं; पर आर्थिक कठिनाअी के कारण वे अुसे पूरा नहीं कर सकते, या किसी प्रकार बड़ी मुश्किल से अपना काम निभाते रहते हैं । वे बहुत थोड़े खर्च में अपना निर्वाह कर लेने को राजी रहते हैं; पर अुतने के लिअे भी अुनको दूसरों का आसरा ढूंढ़ना पड़ता है । अैसे कार्यकर्ताओं के लिअे अेक अैसी योजना बनायी जाय कि जिसमें यदि कार्यकर्ता रुअी की धुनाअी करे अथवा मगन चर्खे पर काते, तो से धुनाअी

या कताअी अुस दर से दी जाय, जिसमें अुसे ४ घंटों के पूरे काम के लिअे ६ आने मिल जायें; पर महीने भर में रु० १०) से अधिक न मिलें। अपने बचे हुअे समय में वह निश्चित योजना के अनुसार देहात की सेवा करे। चर्खा संघ की आज की कताअी तथा धुनाअी की दर की अपेक्षा अुसे जो ज्यादा धुनाअी या कताअी देनी पड़ेगी अुसका आधा बोझ गांधी सेवा संघ सहन करे और आधा जिस प्रान्त में कार्यकर्ता काम करेगा, वहाँ की चर्खा संघ की शाखा या और कोअी स्थानिक संस्था सहन करे। अुसका सूत भी वही शाखा ले। यदि कार्यकर्ता के कार्यक्रम में कताअी के प्रचार का काम न रहे, तो अुसके खर्च का बोझ चर्खा संघ की शाखा पर न रहे। अुस दशा में सारा बोझ गांधी सेवा संघ पर ही रहे। अुसको मगन चर्खा गांधी सेवा संघ दे और, अुसे मगन चर्खे पर कातना न आता हो तो, वह सिखाने के लिअे अेकतर्फा सफ़र-खर्च और ३ महीनों के लिअे मासिक रु० ८) तक छात्रवृत्ति भी गांधी सेवा संघ दे। कार्यकर्ता पर आखिरी नियंत्रण गांधी सेवा संघ का रहे।

गांधी सेवा संघ के अध्यक्ष को यह भी अधिकार रहे कि योजना अमल में लाने में अड़चनें खड़ी होने के कारण अुसमें थोड़ा परिवर्तन करना आवश्यक मालूम हो, तो वे कर सकें।"

रचनात्मक कार्यकर्ताओं से निवेदन है कि अिस योजना से वे पूरा लाभ अुठावें। योजना के संबंध में पत्र-व्यवहार गांधी सेवा संघ के पते से करना चाहिअे।

अिस योजना के लिअे कार्यकर्ता की पसंदगी करते समय नीचे लिखी बातों का ध्यान रहे—

(१) अुसकी अुम्र १८ के नीचे न हो।

(२) पुरुषों की शिक्षा-विषयक योग्यता कम-से-कम मिडिल की और स्त्रियों की प्राथमिक चतुर्थ श्रेणी की हो।

(३) धुनाअी और तकली तथा मामूली चरखे पर कातने में वह निपुण हो।

(४) प्रतिदिन चार घंटों की कताअी के बाद बाकी के समय में देहात की सेवा की अुसकी निश्चित योजना हो। योजना में वस्त्र-स्वावलंबन की दृष्टि से कताअी-प्रचार का कार्य-क्रम अवश्य हो।

विनोबाजी

मालिकान्दा में संघ को नया रूप देने का निर्णय हुआ, तभी से संघ के पुराने-नये सदस्यों के मन में यह विचार प्रबल रूप से अुठा था कि श्री विनोबाजी को किसी तरह अिस नये संघ में क्रियात्मक भाग लेने के लिअे राजी किया जाय। पू० बापूजी अिस विचार को पसंद करते थे। अितना ही नहीं, किन्तु अुन्हें विश्वास था कि वे विनोबाजी को अिसके लिअे राजी कर सकेंगे। मालिकान्दा से वर्धा लौटने के बाद बापूजी और जाजूजी ने विनोबाजी से अिसके संबंध में बातचीत की थी। फलस्वरूप विनोबाजी ने संघ का सदस्य बनना स्वीकार किया। अब ता० २०-६-४० की संघ की बैठक में वे विधिपूर्वक संघ के सदस्य बनाये गये हैं।

संघ के ट्रस्टी

मालिकान्दा में संघ की जो कार्य-वाहक समिति बनायी गयी थी अुसमें जाजूजी, किशोर-लालभाअी और धोत्रेजी संघ के ट्रस्टी नियुक्त किये गये थे। श्री किशोरलालभाअी के ट्रस्टी रहने की अनिच्छा प्रकट करने से ता० २०-६-४० की सभा में अुनकी जगह गोपबाबू ट्रस्टी नियुक्त हुअे हैं।

सम्मेलन

मअी मास के संघवृत्त में सम्मेलनों के बारे में सूचनाअें प्रकाशित की गयी थीं। अुनमें सम्मेलनों में बापूजी की अुपस्थिति के बारे में जो सूचना थी अुसके अनुसार स्वामी अभयदेवजी के निमंत्रण से होनेवाले युक्तप्रान्तीय सम्मेलन में अुपस्थित रहना बापूजी ने स्वीकार कर लिया है। यह सम्मेलन संभवतः आगामी मार्च के अन्त में या अप्रैल के प्रारंभ में होगा।

वर्धा, ता० २८:६:४० } श्री० धोत्रे, मंत्री, गांधी सेवा संघ

श्रीकृष्ण की दरिद्रता

[विनोबा]

तंदुल देत रीझ जात। सागपात सों अघात ॥

अेक दफ़ा कृष्ण विदुर के घर गये। भोजन में चटख़ारे ले ले कर कनियों का मज़ा चखने लगे। जब सारी कनियाँ चाट चाट कर साफ़ कर गये, तब कृष्णदेव की आँखें डबडबा आयीं। यह देख कर विदुर ने पूछा, 'कृष्ण, रोते क्यों हो? मेरे घर में जो कुछ था, सो मैंने तुम्हें खिलाया। मैं दरिद्री हूँ; सिवा कनी के मेरे यहाँ भला और क्या मिल सकता था?'

कृष्ण गद्गद हो कर बोले, 'हे विदुर! मुझे तो मेरी अपनी दीनता देख कर दुःख हो रहा है।'

'कृष्ण, यह क्या कह रहे हो, तुम? तुम तो अितने बड़े द्वारकाधीश हो। तुम्हारी दीनता कैसी? मेरी ग़रीब की अिस कनी पर तुम्हें गुज़र करनी पड़ी, अिसके लिअे दुखी न हो।'

'विदुर, बाल्यावस्था में यशोदा का पिलाया हुआ दूध पिया, अुसके बाद सुदामा के वे मुट्ठीभर तंदुल खाये, फिर द्रौपदी की थाली में से वह साग की पत्ती खाने को मिली और अुसके बाद अब अितने दिनों में तुम्हारे घर यह कनी मिली है! भाअी, मेरे समान दरिद्री और दूसरा है ही कौन? फिर भी बदकिस्मती यह कि जब दूध था, तब तुम्हारी यह कनी नहीं थी। दरअसल, विदुर, मुझ जैसा दरीद्री जगत में दूसरा कोअी नहीं है।

['ग्राम-सेवा-वृत्त' से अनूदित]

सर्वोदय

दूसरे वर्ष की विषय-सूची

[अगस्त १९३९ से जुलाई १९४०]

जीवन-साहित्य

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय

(डिमाई अठपेजी आकारके ४८ पृष्ठ : वार्षिक मूल्य २)

एक प्रति का तीन आना

आजकल हिन्दी में जोरों से प्रकाशन-कार्य हो रहा है; पर यह सब लोग अनुभव करते हैं कि जो भी हो रहा है, वह अधिकांश में वास्तविक जीवन से बहुत दूर है और उससे जीवन बनने के बजाय नष्ट-सा होता देखा गया है। जीवन और साहित्य में सामंजस्य का यह जो अभाव है, अुसे स्थापित करने के ख्याल से अिस छोटे-से मासिक को प्रकाशित करने का आयोजन मण्डल ने किया है। जो लोग 'मण्डल' साहित्य से परिचित और अुसके प्रशंसक हैं, वे अिस प्रकार के पत्र के लिये काफी अर्से से सलाह देते आ रहे थे। अब अुनको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आगामी १ अगस्त (लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि) से यह पत्र प्रकाशित हो जायगा। 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को यह पत्र पौने मूल्य में मिलेगा। विचारपूर्ण और जीवनमय लेखों के अलावा हिन्दी-साहित्य की वर्तमान गति-विधि से यह पत्र अपने पाठकों को अद्यतन् (Up-to-date) रखने का पूर्ण यत्न करेगा। ग्राहक बनने के लिये शीघ्र लिखें—

व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य'
C/o. सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली
शाखायें—दिल्ली, लखनऊ, अिन्दौर

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वांछनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्णायकमंडल के लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह मर्यादा केवल जनता-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से बरती जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

जीवन-साहित्य

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय

रॉयल अठपेजी आकारके ४८ पृष्ठ : वार्षिक मूल्य २)

एक प्रति का तीन आना

आजकल हिन्दी में जोरों से प्रकाशन-कार्य हो रहा है; पर यह सब लोग अनुभव करते हैं कि जो भी हो रहा है, वह अधिकांश में वास्तविक जीवन से बहुत दूर है और उससे जीवन बनने के बजाय नष्ट-सा होता देखा गया है। जीवन और साहित्य में सामंजस्य का यह जो अभाव है, अुसे स्थापित करने के ख्याल से अिस छोटे-से मासिक को प्रकाशित करने का आयोजन मण्डल ने किया है। जो लोग 'मण्डल' साहित्य से परिचित और अुसके प्रशंसक हैं, वे अिस प्रकार के पत्र के लिअे काफी अर्से से सलाह देते आ रहे थे। अब अुनका यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आगामी १ अगस्त (लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि) से यह पत्र प्रकाशित हो जायगा। 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को यह पत्र पौने मूल्य में मिलेगा। विचारपूर्ण और जीवनमय लेखों के अलावा हिन्दी-साहित्य की वर्तमान गति-विधि से यह पत्र अपने पाठकों को अद्यवत् (Up-to-date) रखने का पूर्ण यत्न करेगा। ग्राहक बनने के लिअे शीघ्र लिखें—

व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य'
C/o. सस्ता साहित्य मंडल, नअी दिल्ली
शाखायें—दिल्ली, लखनअू, अिन्दौर

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिअे रहेगा। अिनके अिश्तिहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च ले कर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

Reg. No. N. 741

परीक्षा का अवसर

यदि भारत तलवार के सिद्धान्त का स्वीकार करेगा, तो शायद अुसे क्षणिक विजय प्राप्त हो जाय। अुस दिन भारत मेरे हृदय के अभिमान का पात्र नहीं रहेगा। मैं भारत से अिसलिअे संबद्ध हूँ कि मैंने अपना सर्वस्व अुससे पाया है। मेरा यह संपूर्ण विश्वास है कि संसार में अुसे अेक विशेष कार्य करना है। वह यूरोप का अन्ध अनुकरण नहीं करेगा। जब भारत तलवार के तत्त्व को अपनायेगा, वह मेरी परीक्षा का अवसर होगा। मुझे आशा है कि अुस परीक्षा में मैं असफल नहीं रहूँगा। मेरा धर्म भौगोलिक मर्यादाओं से परे है। मेरी यदि अपने धर्म में जीवित श्रद्धा है, तो वह मेरी देशभक्ति से भी अूपर अुठेगा। जिस अहिंसा को मैं हिन्दूधर्म का मूल मानता हूँ, अुसके द्वारा भारत की सेवा के लिअे मैंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है।

'यंग अिंडिया' ११.८.'२० —गांधीजी

प्रकाशकः—शंकर त्र्यंबक धर्माधिकारी, बजाजवाड़ी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास बाजू, श्रीकृष्ण प्रि० वर्क्स लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।